ओ३म्

बलिदान

[भारत की स्वतन्त्रता की एक शताब्दि की अपूर्व गाथा]

सम्पादक
श्री भगवान्देव आचार्य
श्री वेदव्रत व्याकरणाचार्य

प्रकाशक
विश्वम्भर वैदिक पुस्तकालय
गुरुकुल झज्जर, जि० रोहतक (पञ्जाब)

प्रथम संस्करण १००० | दीपमाला २०१५ वि० 10 नवम्बर १९५८ ई० | मूल्य सजिल्द बारह रुपये मात्र

मुद्रक—सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज, देहली।

सर्वविध क्रान्ति के जन्मदाता—



महर्षि दयानन्द सरस्वती

हम किसी के दास नहीं अपितु गुरु हैं। इस प्रकार भारत भूमि को इस योग्य बनाया कि जिसमें स्वराज्य पादप विकसित पुष्पित, और फलेग्रही हो सके।

१८५७ के पश्चात् की क्रान्ति के जन्म दाता महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके शिष्य ही हैं। विदेशों में जितनी क्रान्ति हुई हैं वह महर्षि दयानन्द के प्रमुख शिष्य पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा के कारण हुई हैं। पं० श्याम जी को विदेश में जाने की प्रेरणा महर्षि दयानन्द ने ही की थी। श्याम जी कृष्ण वर्मा क्रान्तिकारियों के गुरु थे। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी विनायक दामोदर सावरकर, लाला हरदयाल, भाई परमानन्द, सेनापति बापट, मदनलाल धींगड़ा आदि सभी क्रान्तिकारी इनके शिष्य वा साथी थे। इङ्गलैंड में भारत के लिए जितनी क्रान्ति हुई वह श्याम जी कृष्णवर्मा के "इण्डिया हाउस" से ही हुई है।

अमेरिका में जो क्रान्ति भारत की स्वधीनता के लिये हुई, वह देवता स्वरूप भाई परमानन्द के सदुद्योग का फल है। आपने आजीवन आर्यसमाज का प्रचार किया।

पंजाब में श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार जो अभी जीवित हैं, क्रान्तिकारियों के गुरु रहे हैं। आप डी० ए० वी० कालेज लाहौर में इतिहास और राजनीति के प्रोफेसर थे। सरदार भगतसिंह और उनके क्रान्तिकारी साथी इनसे राजनीति की शिक्षा लिया करते थे।

सरदार भगतसिंह तो जन्म से ही आर्यसमाजी था। इसका दादा सरदार अर्जुनसिंह कट्टर आर्यसमाजी था। और इसका पिता श्री किशनसिंह भी आर्यसमाजी था। भगतसिंह का यज्ञोपवीत संस्कार भी पं० लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति ने करवाया था। सांडर्स को मारकर भगतसिंह आदि पहले तो लाहौर के डी० ए० वी० कालेज में ठहरे, फिर वहां से योजना बनाकर सीधे कलकत्ते जाकर आर्यसमाज में ठहरे, और आते समय आर्यसमाज के चपड़ासी तुलसीराम को अपनी थाली, यह कहकर दे आये थे कि कोई देशभक्त आये तो उसको इसमें भोजन करवा देना। देहली में भगतसिंह वीर अर्जुन कार्यालय में स्वामी श्रद्धानन्द और पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति के पास ठहरता था। क्योंकि उस समय ऐसे लोगों को ठहराने का साहस केवल आर्यसमाज के सदस्यों में ही था।

मिस्टर गांधी जब अफ्रीका से लौटकर भारत में आये तब उनको ठहराने का किसी में साहस न था। लाला मुन्शीराम (स्वनाम धन्य नेता स्वामी श्रद्धानन्द) ने ही उनको गुरुकुल कांगड़ी में ठहराया था। और मिस्टर गांधी को महात्मा गांधी की उपाधि भी स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ही दी थी।

राजस्थान केसरी कुंवर प्रतापसिंह बारहट ने डी० ए० वी० हाई स्कूल में शिक्षा प्राप्त की थी। इसके पिता श्री कृष्णसिंह जी बारहट महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्तों में से थे।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' और उनके अनेक साथी पक्के आर्यसमाजी थे। इनके सम्बन्ध में श्री मन्मथनाथ गुप्त ने, जो स्वयं क्रान्तिकारी रहे हैं, साप्ताहिक हिन्दुस्तान १३ जुलाई ५८ के अंक में लिखा है।

"पंडित रामप्रसाद कट्टर नहीं, तो नित्य हवन में विश्वास रखने वाले, आर्यसमाजी जरूर थे। बाद को शहीद होने वाले श्री रोशनसिंह उन्हीं के पदाङ्कों का अनुसरण करते थे।"

"जो लोग धर्म के समर्थक थे वे आपस में मतभेद रखते थे। उदाहरण स्वरूप रामप्रसाद 'बिस्मिल' वेदों का अर्थ स्वामी दयानन्द के ढंग पर करते थे, तो श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल इस मामले में मुख्यतः विवेकानन्द तथा अरविन्द के मार्ग पर चलते थे।"

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व लगभग सभी स्थानों में ऐसी स्थिति थी, कि कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ताओं

को यदि कहीं आश्रय, भोजन, निवास आदि मिलता था, तो वह किसी आर्य के घर में ही मिलता था। प्रायः दूसरे लोग इनसे इतने डरते थे कि उनमें इनको आश्रय देने का साहस ही न था।

हैदराबाद दक्षिण में निजाम सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह चलाकर जनता के हितों की रक्षा केवल आर्यों ने ही की है। वहां पर आर्यसमाज के प्रति जनता की जितनी श्रद्धा है उतनी किसी अन्य के प्रति नहीं है।

अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन करवाने का साहस अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द में ही था। उस समय की स्थिति को देखकर किसी भी कांग्रेसी में इतना साहस न था, जो सन्मुख आता और कांग्रेस का अधिवेशन करवा सकता।

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता थे, उनकी देशभक्ति किसी से तिरोहित नहीं। इसी प्रकार के और भी अनेक उदाहरण हमें मिलते हैं जो यह सिद्ध कर रहे हैं कि देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई में आर्य समाज ने बढ़ चढ़कर भाग ही नहीं लिया, अपितु नेतृत्व भी किया है। स्वदेशी प्रचार, विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार, अछूतोद्धार, शुद्धि-प्रचार गोरक्षा, शिक्षा-प्रसार, स्त्री शिक्षा, विधवा उद्धार आदि सभी श्रेष्ठ कार्यों में आर्यसमाज अग्रणी रहा है। देश धर्म के लिये जो भी आन्दोलन और सत्याग्रह हुए हैं उनमें आर्यों ने किसी से कम भाग नहीं लिया।

यदि कोई पक्षपाती इतिहास लेखक इस ध्रुव सत्य को अतीत के निबिड़ान्धकार में छिपाने का प्रयत्न करे, तो दूसरी बात है किन्तु कोई भी निष्पक्ष सहृदय व्यक्ति इससे इन्कार नहीं कर सकता कि देश की स्वतन्त्रता और सर्वविध क्रान्ति में महर्षि दयानन्द और उनके अनुयायी आर्य, सर्वदा अग्रणी रहे हैं।

बलिदान क्यों ?

यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि जब अन्य अनेक ग्रन्थ इस विषय के प्रकाशित हो चुके हैं, और अब भी हो रहे हैं तब 'बलिदान' के छापने की आवश्यकता क्यों अनुभव हुई ? इसके उत्तर में हमारा सक्षिप्त निवेदन यही है कि आप एक बार इसे आद्योपान्त पढ़ने का कष्ट करें, आपको इसकी आवश्यकता का ज्ञान हो जायेगा। यह अपने ढङ्ग से लिखकर तैयार किया गया इतिहास है। लेखकों के अपने-अपने दृष्टिकोण होते हैं, जिसकी जैसी धारणा होती है वैसा ही वह लिखता है। इतना सस्ता स्वतन्त्रता का इतिहास अन्यत्र मिलना कठिन है। इसमें ऐसी भी सामग्री अनुसन्धान करके प्रकाशित की गई है जो कि आज तक किसी भी इतिहास लेखक ने नहीं लिखी।

प्रायः सभी स्वतन्त्रता के इतिहास लेखकों ने क्रान्तिकारी वीरों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा। कोई उनके कार्यों को भावुकता में किया गया लड़कपन बतलाता है कोई उनको विद्रोही अथवा आतङ्कवादी कहता है। भारत की स्वतन्त्रता के लिए फांसी के तख्ते पर चढ़ने वाले देश-भक्त वीरों के प्रति ऐसी उपेक्षा की भावना वास्तव में निन्दनीय मनोवृत्ति है। इन लोगों ने क्षात्र धर्म को कोई महत्त्व नहीं दिया। इन्हीं क्रान्तिकारी वीरों ने अंग्रेज साम्राज्य की जड़ों को काटा था और इनके बलिदानों से ही अनेक शताब्दियों से दास बने हुए भारतीयों के मन में स्वतन्त्रता की लहर दौड़ी थी। इनका यही उद्देश्य था कि लोगों को अपने देश के लिये वलिदान होने का पाठ पढ़ाया जाये। यदि क्रान्तिकारी वीर चाहते तो लुक-छिपकर अपनी प्राण रक्षा कर सकते थे किन्तु उन्होंने ऐसा करना उचित न समझा। अपने खून से स्वतन्त्रता के पौधे को सीचा। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि हमारा बलिदान व्यर्थ नहीं जायेगा। उनकी भावना का प्रतीक देखिये—

बलिदान ग्रन्थ के लेखक

श्री आचार्य भगवानदेव—आचार्य गुरुकुल झज्जर (रोहतक)
,, वेदव्रत सिद्धान्तशिरोमणि—सम्पाक 'सुधारक' गुरुकुल झज्जर
,, ब्र० महादेव सिद्धान्त शास्त्री गुरुकुल झज्जर
,, बलदेवसिंह बी० ए० गुरुकुल झज्जर रोहतक
,, स्व० पं० बस्तीराम आर्योपदेशक
,, रामनारायण अग्रवाल
,, रवीन्द्रनाथ शास्त्री लूखी (महेन्द्रगढ़)
,, जगदेवसिंह शास्त्री सिद्धान्ती महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब
,, ब्र० धर्मपाल व्याकरण शास्त्री गुरुकुल झज्जर
,, ब्र० सोमदेव व्याकरण शास्त्री गुरुकुल झज्जर
,, ब्र० सत्यदेव व्याकरणोपाध्याय गुरुकुल झज्जर
,, ब्र० धर्मव्रत व्याकरण शास्त्री गुरुकुल झज्जर
,, वंशीधर अग्रवाल कुचामन सिटी
,, कपिलदेव शास्त्री मदीना दाँगी
,, मूलचन्द चौधरी नागौर मारवाड़
,, ब्र० वेदपाल व्याकरण शास्त्री गुरुकुल झज्जर
,, रामस्वरूप शर्मा सम्पादक "वीर बालक" जमालपुर
,, ब्र० यशपाल व्याकरणाचार्य गुरुकुल झज्जर
,, स्व० रामप्रसाद 'बिस्मिल
,, विजयपालसिंह वर्मा
,, सत्यव्रत 'सत्यार्थी' आर्यसमाज लुहारु हिसार
,, रामावतार शर्मा 'विकल' मण्डी धनौरा मुरादाबाद
,, स्व० अशफाकउल्ला खाँ
,, यज्ञदेव शास्त्री गुरुकुल झज्जर रोहतक
,, ब्र० सोमवीर व्याकरणाचार्य गुरुकुल झज्जर
,, फतहसिंह सिद्धान्त शास्त्री गुरुकुल झज्जर
,, ब्र० मनुदेव व्याकरणाचार्य गुरुकुल झज्जर
,, ब्र० महावीर व्याकरणाचार्य गुरुकुल झज्जर

श्री ब्र० दयानन्द आयुर्वेद महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर
,, भीष्मप्रताप शास्त्री भापड़ौदा
,, ब्र० सुदर्शनदेव शास्त्री व्याकरणाचार्य गुरुकुल झज्जर
,, पं० महामुनि आचार्य गुरुकुल भैंसवाल रोहतक
,, सुखदेव शास्त्री आसन रोहतक
,, स्व० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज
,, ब्र० देशपाल व्याकरणोपाध्याय गुरुकुल झज्जर
,, पं० देवराज मुनि विद्यावाचस्पति गुरुकुल झज्झर
,, पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड श्रद्धानन्द प्रतिष्ठान गुरुकुल कांगड़ी
,, रणजीतसिंह 'तन्मय' एम० ए० एल० एल० बी० जयपुर
,, पं० नरेन्द्र प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य दक्षिण हैदराबाद
,, स्वामी ईशानन्द जी महाराज
,, रामनारायण चौधरी मंत्री भारत सेवक समाज दिल्ली
,, चौ० कबूलसिंह मंत्री सर्वखाप पञ्चायत सोरों मुजफ्फर नगर
,, स्वामी नित्यानन्द आर्यभजनोपदेशक
,, पं० सत्यदेव वाशिष्ठ अध्यक्ष आयुर्वेद महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर

(पृष्ठ ७ का शेष)

विषय-सूची

बङ्गाल और बिहार के बलिदान

भारतीय-स्वातन्त्र्य, संग्राम के मूल कारण

लगभग एक शताब्दि पूर्व सन् १८५७ ई० में भारतीय क्रांतिकारी वीरों ने अंग्रेज शासकों से भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी। इस स्वाधीनता संग्राम का अनेक लेखकों ने 'गदर' वा 'विद्रोह' नामकरण किया है, किन्तु वास्तव में वह 'गदर' वा 'विद्रोह' नहीं अपितु एक राष्ट्रीय और शुद्ध धार्मिक युद्ध था। अंग्रेज इतिहास लेखक जस्टिन मैक्कार्थी ने इस सत्य की संपुष्टि की है। A National and Religious war" (History of our own times, vol, iii)

इसलिए १८५७ के धर्मयुद्ध को 'गदर' अथवा 'विद्रोह' कहना उन सहस्रों अमर हुतात्माओं के प्रति अन्याय है जिन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। इस युद्ध का वास्तविक नामकरण प्रथम "भारतीय-स्वातन्त्र्य-संग्राम" होना चाहिए क्योंकि भारत की स्वतन्त्रता के लिए यह प्रथम युद्ध था।

इस स्वातन्त्र्य संग्राम का मूल कारण कुछ इतिहास लेखक राजनीतिक मानते हैं और कुछ धार्मिक। इस क्रांति का मूल कारण वास्तव में धार्मिक और राजनीतिक दोनों ही थे। क्योंकि धर्म और राजनीति परस्पर सम्बद्ध हैं, धर्म को राजनीति से पृथक समझना भूल है। उस समय भारत में कम्पनी का राज्य था। 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के राज्य में अंग्रेज अधिकारी (अफसर) मन चाहे भीषण अत्याचार भारतीय जनता पर करते थे। उनके इन भयङ्कर अत्याचारों से भारतीय जनता और सैनिक क्षुब्ध हो गये थे। अंग्रेज शासकों के असह्य अत्याचारों के कारण जनता और सैनिकों की क्रोधाग्नि ने इतना भयङ्कर रूप धारण कर लिया था कि वे इन अत्याचारों का बदला लेने के लिये उतावले हो रहे थे। कम्पनी के राज्य से सभी लोग दुखी थे। एक ओर सर्वसाधारण की प्रतीकार की भावना जाग उठी थी और दूसरी ओर कम्पनी ने जिन नवाबों और देशी राजाओं की रियासतों पर कब्जा कर लिया था वे बदला लेने के लिये उद्यत हो गये और स्थानीय नेता के रूप में समर की तैय्यारी में जुट गये। इन विक्षुब्ध भारतीयों की प्रतीकार की भावना ने कम्पनी राज्य के समूल विनाश का निश्चय कर लिया।

सन् १८५३ ई० में 'कम्पनी' ने अपनी भारतीय सेना के लिये एक नये ढङ्ग के कारतूस प्रचलित करवाये। भारत में अनेक स्थानों पर इन कारतूसों के बनाने के लिये कारखाने खोले गये। पहले के कारतूस हाथ से तोड़े जाते थे किन्तु नए कारतूसों को दान्तों से काटना पड़ता था। प्रारम्भ में केवल एक दो पलटनों में यह नए कारतूस प्रचलित किये गये। वास्तविकता का ज्ञान न होने के कारण भारतीय सैनिकों ने नए कारतूसों को दान्तों से काटना स्वीकार कर लिया। शनैः शनैः इन नए कारतूसों का प्रयोग बढ़ाया गया।

बैरकपुर में इन नए कारतूसों के निर्माण का एक कारखाना खोला गया। एक दिन दैवयोग से एक घटना इस प्रकार घटी। दमदम का एक ब्राह्मण सिपाही पानी का लोटा भरकर अपनी बारिक की ओर जा रहा था। मार्ग में एक भङ्गी ने आकर पानी पीने के लिये लोटा मांगा तो उस जन्मजात ब्राह्मण सिपाही ने अपनी प्रचलित प्रथा के अनुसार लोटा देने से इनकार कर दिया। इस पर भङ्गी ने कहा—

"तुम अब जात पांत का घमण्ड न करो ! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि शीघ्र ही तुम्हें अपने दान्तों से गाय का माँस और सूअर की चर्बी काटनी पड़ेगी ? जो नए कारतूस बन रहे हैं उनमें जान बूझकर यह दोनों चीजें लगाई जा रही हैं।"

ब्राह्मण सैनिक क्रुद्ध हुआ अपनी छावनी में पहुँचा, जब दूसरे सैनिकों ने यह दुःखद वृत्तान्त सुना तो वे भी क्रोध से लाल हो गये। वे परस्पर एक दूसरे को कहने लगे कि अंग्रेज सरकार जान बूझकर हम भारतीयों को धर्मभ्रष्ट करना चाहती है। इसके पश्चात् उन सैनिकों ने अपने अंग्रेज अफसरों से पूछा तो अफसरों ने स्पष्ट उत्तर दिया कि यह सर्वथा झूठी अफवाह है और नए कारतूसों में इस प्रकार की कोई वस्तु नहीं है। सैनिकों को अंग्रेज अफसरों के उत्तर पर विश्वास नहीं हुआ, इसलिये उन्होंने बैरकपुर कारतूस कारखाने में काम करने वाले हिन्दुस्तानी मजदूरों से इस विषय में पूछ-ताछ की। पता लगा कि वास्तव में यह सत्य है कि नये कारतूसों के निर्माण में हिन्दू और मुसलमान धर्म में निषिद्ध गाय तथा सूअर की चर्बी का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार निश्चय करने के पश्चात् बैरकपुर के सैनिकों ने यह सूचना समस्त हिन्दुस्तान में फैला दी। बैरकपुर से पेशावर और महाराष्ट्र तक इस विषय के हजारों पत्र भेजे गये। इस प्रकार नये कारतूसों का वृत्तान्त बिजली की भाँति प्रत्येक भारतीय सैनिक के कानों तक पहुँच गया। प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान सैनिक अंग्रेजों से इस अन्याय का बदला लेने के लिये बेचैन हो उठा, किन्तु सैनिकों के नेताओं ने उनको ३१ मई तक रोके रखने के सभी प्रकार के प्रयत्न किये।

प्रायः सभी अंग्रेज इतिहास लेखकों ने विशेषतया उन्होंने जो सरकारी स्कूलों के लिये पाठ्य पुस्तकें लिखा करते थे, कारतूसों में चर्बी की अफवाह को झूठा बतलाया है और उस पर विश्वास करने वाले सैनिकों को कहा है। १८५७ में गवर्नर जरनल लार्ड कैनिङ्ग से लेकर छोटे से छोटे अंग्रेज अफसर तक सबने गम्भीरतापूर्वक यह घोषणा की और सैनिकों को विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि कारतूसों में चर्बी की बात सर्वथा मिथ्या है और बदमाश लोगों ने फौज को बर्बाद करने के लिए फैलाई है। किन्तु १८५७ की जन क्रान्ति का प्रामाणिक इतिहास लेखक 'सर जान के' लिखता है—

"There is no question that beef fat was used in the composition of this tallow"—Kay's Indian Mutiny. vol i P. 381.

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस चिकने मसाले के बनाने में गाय की चर्बी का उपयोग किया गया था।"

'सर जान के' यह भी लिखता है कि दिसम्बर १८५३ ई० में करनल टकर ने लिखा था कि नए कारतूसों से गाय और सूअर दोनों की चर्बी लगाई जाती थी। दमदम के कारखाने में जिस ठेकेदार को कारतूसों के लिए चर्बी का ठेका दिया गया था उस से ठेके कागज पर यह स्पष्ट शब्दों में लिखवा लिया गया था कि "मैं गाय की चर्बी लाकर दूँगा" चर्बी का भाव चार आने सेर रखा गया था। लार्ड राबर्ट विलियम लैकी आदि ने भी कारतूसों में चर्बी मिलाने की सत्यता स्वीकार की है।

सैनिकों में इस असन्तोष के फैलने के कुछ दिन पश्चात् कम्पनी राज्य की ओर से विज्ञप्ति प्रकाशित हुई कि एक भी इस तरह का कारतूस फौज में नहीं भेजा गया। किन्तु उसी में साढे बाईस हजार कारतूस अम्बाला डीपो से और चौदह हजार कारतूस सियालकोट डीपों से, दोनों से साढे छत्तीस हजार कारतूस भारतीय फौज में भेजे जा चुके थे। अनेक पलटनों में अंग्रेज अफसरों ने भारतीय सैनिको को धमकाना प्रारम्भ कर दिया था कि तुम्हें नए कारतूसों का प्रयोग करना पड़ेगा। एक दो स्थानों में सैनिकों ने हठ किया तो पूरी रेजिमेंट को कठोर दण्ड दिया गया।

कम्पनी राज्य के अंग्रेज अफसरों के अत्याचारों के विरुद्ध परतन्त्र भारतीय जनता और सैनिकों में कम्पनी राज्य को समाप्त कर भारत को स्वतन्त्र कराने की जो अग्नि जल उठी थी उसमें गाय और सूअर की चर्बी से सने हुए कारतूसों की घटना ने पट्रोल का कार्य किया। और प्रतिशोधाग्नि ने भयंकर रूप धारण कर लिया। बहुत से इतिहास लेखक कारतूसों की घटना को ही क्रान्ति का एक मात्र प्रमुख कारण मानते हैं, किन्तु वास्तव में यह मूल कारण नहीं अपितु क्रान्ति को भयङ्कर रूप देने वाला विस्फोटक कारण था। चार्ल्स बाल ने अपने विप्लव के इतिहास में लिखा है कि डिजरेली, जो पीछे इंगलिस्तान का प्रधान मन्त्री हुआ, कहा करता था कि कोई भी मनुष्य कारतूसों को विप्लव का वास्तविक कारण नहीं मानता।

१८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम का प्रमुख कारण था—"कम्पनी राज्य में अंग्रेजी अफसरों और अंग्रेजों का भारतीय जनता पर भीषण अत्याचार इसका हम उल्लेख कर चुके हैं। उस अत्याचार वा अनुचित व्यवहार के कुछ उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं, जो कि इस क्रांति के कारण हैं—

१—दिल्ली के तात्कालिक सम्राट् के साथ अंग्रेजो का निरन्तर अनुचित व्यवहार।

२—अवध के नवाब और अवध की प्रजा के साथ अत्याचार।

३—लार्ड डलहौजी की व्यापक अपहरण नीति।

४—अन्तिम पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नानासहाब के साथ कम्पनी का अन्याय।

५—भारतीय शिक्षा का सर्वनाश।

६—उद्योग-धन्धों का ह्रास।

७—भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा और भारतीय सेना में ईसाई-मत प्रचार।

इन में से एक-एक कारण का अति संक्षिप्त रूप में वर्णन करना अत्यावश्यक है।

१. दिल्ली सम्राट् और अंग्रेज

सम्राट् शाह आलम के समय तक, जो सन् १७५६ से १८०६ तक दिल्ली के तख्त पर रहा, भारतवासी सभी अंग्रेज अपने आप को दिल्ली सम्राट् की प्रजा कहा करते थे। सम्राट् की आज्ञा से ही 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' को व्यापारिक कोठियां बनाने के लिए कलकत्ता, मद्रास, सूरत आदि में जागीरें मिलीं। गवर्नर जनरल से लेकर छोटे से छोटा भी अंग्रेज सम्राट् के दरबार में जाता था वह अन्य दरबारियों की भाँति सम्राट् का सत्कार करता था। प्रत्येक गवर्नर जनरल की मोहर में 'दिल्ली के बादशाह का फिदवी खास" (अर्थात् विशेष नौकर) यह शब्द खुदे रहते थे। शाह आलम ने १७६५ में क्लाइव को बंगाल और बिहार की दीवानी के अधिकार प्रदान किये थे।

इसके पश्चात् शनैः शनैः दिल्ली सम्राट् का बल घटता गया। कम्पनी ने भारत में अपना राज्य स्थापित करने के लिए मराठों की बढ़ती हुई सत्ता को कुचलना आवश्यक समझा। यह द्वितीय मराठा युद्ध का काल था। जनरल 'लेक' ने कम्पनी की ओर से 'इकरारनामा" लिखकर शाह आलम के सन्मुख उपस्थित किया। जिसमें कम्पनी ने शाह आलम को वचन दिया था कि हम समस्त देश में आपका प्राचीन आधिपत्य फिर से स्थापित कर देंगे। अदूरदर्शी शाह आलम अंग्रेजों की कूटनीति में आ गया और शाह-आलमकी सहायता से १८०४ ई० में अंग्रेजों ने मराठों को दिल्ली से खदेड़ दिया।

१८०६ ई० में शाहआलम की मृत्यु के पश्चात् सम्राट् अकबर शाह दिल्ली के तखत पर बैठा। उस समय 'सीटन' कम्पनी की ओर से दिल्ली में रेजिडेण्ट नियुक्त था वह एक साधारण व्यक्ति की भांति

सम्राट्-कुल के प्रत्येक बच्चे का यथोचित सत्कार करता था। किन्तु सीटन के पश्चात् चार्ल्स मेटकाफ रेजिडेण्ट नियुक्त हुआ। इस समय अंग्रेजों की शक्ति बढ़ चुकी थी। इसलिए मेटकाफ ने तुरन्त अपने अंग्रेज स्वामियों की आज्ञा से सम्राट् अकबर शाह की ओर अपना व्यवहार बदल दिया। उसने ऐसी चेष्टायें प्रारम्भ कर दीं जो सम्राट् और उसके कुल के लिए अपमान जनक थी। सम्राट् और उसके हितचिन्तकों के मन में अंग्रेजों के प्रति घृणा बढ़ती चली गई और दिल्ली में अंग्रेजों के विरुद्ध असन्तोष फैलने लग गया।

१८३७ ई० में सम्राट् बहादुरशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। बहादुर शाह ने 'इकरार नामे' की एक शर्त के अनुसार अपने व्यय की राशि में वृद्धि करवानी चाही तो सम्राट् को उत्तर मिला कि यदि अपने और अपने वंशजों के समस्त शेष अधिकार विधिवत् कम्पनी को सौंप दो तो व्यय राशि में वृद्धि कर दी जायगी। बहादुरशाह ने यह न स्वीकार किया। इस से दिल्ली में अंग्रेजों के विरुद्ध और भी अधिक असन्तोष फैल गया।

प्रत्येक ईद, नौरोजे और सम्राट की वर्ष गाँठ पर गवर्नर जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ सम्राट् को नजरें पेश किया करते थे किन्तु लार्ड एलेनब्रुक ने गवर्नर जनरल बनते ही यह कार्य भी बन्द कर दिया। इस प्रकार अंग्रेजों ने पद-पद पर दिल्ली के सम्राट् का अपमान करना प्रारम्भ कर दिया।

२—अवध के साथ अत्याचार

स्वातन्त्र्य संग्राम से एक वर्ष पूर्व बिना किसी कारण अवध की समस्त भू-सम्पत्ति अंग्रेजी राज्य में मिला ली गई और नवाब वाजिदअली शाह को निर्वासित कर कलकत्ते भेज दिया गया। कम्पनी की सेना ने वलात् लखनऊ पर आधिपत्य जमा लिया, महल को लूटा और बेगमों का अपमान किया। अवध के नबाब के हजारों बड़े-बड़े जमीदार और ताल्लुकेदार हिन्दू थे, इनकी पैतृक जमींदारियाँ निष्कारण छीन ली गई और इनमें से अनेक को दर-दर का भिखारी बनने के लिए बाधित किया गया। नबाब से लेकर छोटे से छोटे किसान तक सब कम्पनी के दुर्व्यवहार से दुखी थे।

३—लार्ड डलहौजी की अपहरणनीति

उस समय कम्पनी की सेना में अधिकांश सैनिक अवध से ही लिये जाते थे, अवध निवासियों के साथ लार्ड डलहौजी के अत्याचारों ने समस्त अवध और अंग्रेज सेना के बीच में गहरे असन्तोष के बीज बो दिये थे। लार्ड डलहौजी की भू-पिपासा साधारण न थी उसने एक के पश्चात् दूसरा, सतारा, पंजाब, झाँसी, नागपुर, पगू, सिक्किम, सम्बलपुर इत्यादि देशी रियासतों का अपहरण किया। लार्ड डलहौजी ने 'इनाम-कमीशन' की नियुक्ति की थी, इसने समस्त भारत की लगभग ३५ हजार जागीरों और इनामों की जाँच की और दस वर्ष के अन्दर २१ हजार जमींदारियाँ जब्त कर कम्पनी राज्य में मिला दीं और भारत के हजारों पुराने प्रतिष्ठित घरानों की दुर्दशा कर डाली।

४—नाना साहब के साथ अन्याय

सन् १८५१ में अन्तिम पेशवा बाजीराव की मृत्यु हुई। बाजीराव के राज्य के बदले में कम्पनी ने सन् १८१८ ई० में "उसके, कुटुम्बियों और आश्रितों के पोषण के लिये" ८ लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया था। सन् १८२८ में बाजीराव ने नाना धोन्धोपन्त को गोद लिया, उस समय नाना साहब की आयु ३ वर्ष की थी। कानपुर के साथ निकट बिठूर में पेशवा के उस समय लगभग ८ हजार स्त्री-

पुरुष और बालक रहा करते थे, इन सब का पालन पोषण इसी ८ हजार रुपया वार्षिक की पेन्सन से होता था। बाजीराव पेशवा के मरते ही लार्ड डलहौजी ने यह पेन्सन तत्काल बन्द कर दी और मृत्यु से पूर्व के शेष ६२ हजार रुपये कम्पनी की ओर शेष थे वे भी देने से निषेध कर दिया। इतने से भी डलहौजी को सन्तोष न हुआ, उसने नाना साहब को यह नोटिस भी दे दिया कि विठूर की जागीर भी तुम से जब चाहें छीन ली जायेगी।

समस्त अंग्रेज इतिहास लेखकों ने यह स्वीकार किया है कि इससे पूर्व नवयुवक नाना साहब का अंग्रेजों के प्रति बहुत ही अच्छा व्यवहार था किन्तु अंग्रेजों के अन्याय के कारण यही नाना साहब १८५७ की क्रान्ति का प्रमुख संयोजक बन गया।

५—भारतीय शिक्षा का सर्वनाश

अंग्रेजों के भारत में आने से पूर्व योरूप के किसी भी देश में इतना शिक्षा का प्रचार नहीं था जितना कि भारत वर्ष में था। भारत विद्या का भण्डार था। सार्वजनिक शिक्षा की दृष्टि से भारत सब देशों का शिरोमणि था। उस समय असंख्य ब्राह्मण आचार्य अपने-अपने कुल में शिष्यों को शिक्षा देते थे। मुख्य-मुख्य नगरों में विद्यापीठें स्थापित थीं। छोटे बालकों की शिक्षा के लिए प्रत्येक ग्राम में पाठशालायें थीं, जिनका संचालन पंचायतों की ओर से किया जाता था। इंगलिस्तान पार्लियामेंट के सदस्य केर हार्डी ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया' में लिखा है—

"मैक्समूलर ने, सरकारी उल्लेखों और मिशनरी की रिपोर्ट के आधार पर जो बंगाल पर कब्जा होने से पूर्व वहाँ की शिक्षा की अवस्था के सम्बन्ध में लिखी गई थी, लिखा कि उस समय बंगाल में ८० हजार पाठशालायें थीं।'

सन् १८२३ ई० की 'कम्पनी' की एक सरकारी रिपोर्ट में लिखा है—"शिक्षा की दृष्टि से संसार के किसी भी अन्य देश में किसानों की अवस्था इतनी ऊँची नहीं है जितनी ब्रिटिश भारत के अनेक भागों में।"

भारत के जिस-जिस प्रान्त में 'कम्पनी' का राज्य स्थापित होता गया उस उस प्रान्त में सहस्रों वर्ष पुरानी शिक्षा प्रणाली सदा के लिए मिटती चली गई। ग्राम पंचायतों और देशी रियासतों के साथ-साथ पाठशालाओं का भी लोप होता गया। क्योंकि ग्राम-पंचायतें पाठशालाओं का प्रबन्ध करना अपना कर्त्तव्य समझती थीं और देशी रियासतों के राजाओं की आय का बहुत बड़ा भाग शिक्षा प्रचारार्थ पाठशालाओं को दिया जाता था। यह सहायता मासिक और वार्षिक बँधी हुई थी।

हमारे प्राचीन इतिहास और साहित्य को नष्ट कर उसके स्थान में मिथ्या इतिहास लिखवाकर भारतीय स्कूलों में पढ़ाना प्रारम्भ किया गया, सखेद लिखना पड़ता है कि वही मिथ्या इतिहास स्वतन्त्र भारत में आज भी पढ़ाया जा रहा है। सन् १७५७ से लेकर १८५७ तक निरन्तर एक शताब्दी तक यह विवाद रहा कि भारतियों को शिक्षा देना अंग्रेजों की राज्य सत्ता के लिए हितकर है या अहितकर। प्रारम्भ में प्राय: सभी अंग्रेज शासक भारतीयों को शिक्षा देने के कट्टर विरोधी थे। जे० सी० मार्शमैन ने १५ जून १८५३ ई० को पार्लियामेन्ट की सिलेक्ट कमैटी के सन्मुख साक्षी देते हुए कहा था—

"भारत में अंग्रेजी राज के कायम होने के बहुत दिन बाद तक भारतवासियों को किसी प्रकार की भी शिक्षा देने का प्रबल विरोध किया जाता रहा।"

भारतीयों में शिक्षा का ह्रास हो गया। अंग्रेज शासकों को सरकारी विभागों में हिन्दुस्तानी कर्मचारियों की आवश्यकता अनुभव हुई, क्योंकि इनके बिना उनका कार्य चल सकना सर्वथा असम्भव था। १८ वीं शताब्दी के अन्त में अंग्रेज शासकों के विचारों में परिवर्तन हुआ। उन्होंने अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए ऐसी शिक्षा प्रणाली प्रचलित की जिससे लेखक (क्लर्क) तैयार किये जा सकें। डाइरेक्टरों ने ५ सितम्बर १८२७ के पत्र में गवर्नर जरनल को लिखा कि इस शिक्षा का धन—"उच्च और मध्यम श्रेणी के उन भारतवासियों के ऊपर व्यय किया जाये, जिनमें से कि आपको अपने शासन के कार्यों के लिए सबसे अधिक योग्य देशी एजेन्ट मिल सकते हैं और जिनका अपने देश वासियों के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव है।

इस प्रकार अंग्रेजों ने भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली को नष्ट कर दिया। जिससे भारत में विद्वानों का अभाव होता गया और क्लर्कों की वृद्धि होती गई। क्योंकि शिक्षित भारतियों से अंग्रेज बहुत डरते थे। अंग्रेजों का अतीत काल इतना प्रभावशाली न था जितना भारतीयों का। भारतवासियों को ज्यों-ज्यों ब्रिटिश भारतीय इतिहास के आन्तरिक वृत्तान्त का ज्ञान होता है, त्यों-त्यों उनके चित्त में यह विचार उत्पन्न होता है कि भारत जैसे विशाल देश पर मुट्ठी भर विदेशियों का आधिपत्य होना बड़ा भारी अन्याय है। अतएव उनकी इच्छा हो जाती है कि वे अपने देश को इस विदेशी शासन से स्वतन्त्र करने में सहायक हों। यह मैं ही नहीं लिख रहा अपितु एक अनुभवी अंग्रेज मेजर रालेएडसन जो वहाँ की शिक्षा-कमेटी का मन्त्री भी रह चुका है, उसने ४ अगस्त १८५३ ई० में पार्लियामेण्ट कमेटी के सन्मुख ऐसी सम्मति प्रकट की थी। इसीलिए अंग्रेजों ने हमारे इतिहास, साहित्य और शिक्षा-प्रणाली का सर्वनाश कर डाला।

(६) उद्योग-धन्धों का ह्रास

सार्वजनिक शिक्षा-प्रणाली के सर्वनाश का एक कारण यह भी था कि भारतीय उद्योग-धन्धों के ह्रास और कम्पनी की लूट तथा अत्याचारों के कारण देश उस समय अति तीव्र गति से निर्धन होता जा रहा था। देश के करोड़ों बालक जो पाठशालाओं में शिक्षा ग्रहण करते थे, वे निर्धनता के कारण अपने माता-पिता के साथ मजदूरी कर पेटपूर्ति करने में लग गये। विदेशों से सामान यहाँ आने लग गया और यहाँ के उद्योगों को समाप्त प्रायः कर दिया। इस प्रकार भारत का करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष विदेशी सामान के परिवर्तन में विदेशों में चला गया और जो भारत कभी "सोने की चिड़िया" कहाता था, उसके निवासी दर-दर के भिखारी बन गये।

(७) भारतीयों को ईसाई बनाने की आकांक्षा

१८५७ से बहुत पूर्व से ही अनेक कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों को भारतीयों को ईसाई बनाने में ही अपने राज्य की स्थिरता दिखाई देती थी। 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के अध्यक्ष मिस्टर मैङ्गल्स ने १८५७ में पार्लियामेन्ट में कहा था—

"परमात्मा ने हिन्दुस्तान का विशाल साम्राज्य इङ्गलिस्तान को सौंपा है, इसलिए ताकि हिन्दुस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ईसा मसीह का विजयी झण्डा फहराने लगे। हम में से प्रत्येक को अपनी पूरी शक्ति इस कार्य में लगा देनी चाहिये जिससे समस्त हिन्दुस्तान को ईसाई बनाने के महान् कार्य में देश भर के अन्दर कहीं पर भी किसी कारण थोड़ी सी भी ढील न होने पावे।"

इसी के समकालीन एक दूसरा विद्वान् अंग्रेज रेवरेण्ड कैनेडी लिखता है—

"हम पर कुछ भी आपत्तियां क्यों न आयें, जब तक भारत में हमारा साम्राज्य है तब तक हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारा मुख्य कार्य उस देश में ईसाई मत को फैलाना है। जब तक कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक सारा हिन्दुस्तान ईसा के मत को ग्रहण न कर ले और हिन्दू तथा मुसलमान धर्मों की निन्दा न करने लगें तब तक हमें निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए। इस कार्य के लिये हम जितने प्रयत्न कर सकें, हमें करने चाहियें और हमारे हाथ में जितने अधिकार और जितनी सत्ता है, उसका इसी के लिए उपयोग करना चाहिये।"

यही विचार लार्ड मैकाले के लेखों में पाये जाते हैं। जिसने भारतीय शिक्षा-प्रणाली का सबसे अधिक नाश किया। वह लिखता है—

"हमें भारत में इस प्रकार की एक श्रेणी पैदा कर देने का भरसक प्रयत्न करना चाहिये जो कि हमारे और उन करोड़ों भारतीयों के बीच जिन पर हम शासन करते हैं, समझाने-बुझाने का काम करें। ये लोग ऐसे होने चाहियें जो कि केवल रक्त और रंग की दृष्टि से हिन्दुस्तानी हों। किन्तु जो अपनी रुचि, भाषा, भाव और विचारों की दृष्टि से अंग्रेज हों।"

अंग्रेजों ने अपने राज्य में ईसाइयत का कितना प्रचार किया और वह क्या करना चाहते थे, यह ऊपरिलिखित उद्धरणों से सर्वथा स्पष्ट हो जाता है। उनका अपना राज्य था, भारतीयों की कोई सुनने वाला न था, अतः अंग्रेज अफसरों ने भारतीयों के साथ यथेच्छ अन्याय और अत्याचारपूर्ण व्यवहार किया। भारतीयों के धार्मिक भावों पर पद-पद पर आघात किया। ईसाई पादरियों ने अपनी वक्तृताओं और पत्र-पत्रिका में हिन्दू तथा मुसलमान धर्म की घोर निन्दा की।

सन् १८४९ में पञ्जाब पर कम्पनी का अधिकार हुआ, इसके उपरान्त कम्पनी ने पञ्जाब को आदर्श ईसाई-प्रान्त बनाने के प्रयत्न किये। सर हेनरी लारेन्स, सर जान लारेन्स आदि पञ्जाब के प्रसिद्ध अंग्रेज शासक इसी विचार के थे। इनमें से अनेकों का मत था कि पञ्जाब में शिक्षा का सब कार्य ईसाई पदारियों के हाथ में दे दिया जाये और सरकार की ओर से स्कूलों को पूरी सहायता दी जाये तथा अंग्रेज सरकार अपने स्कूल बन्द कर दे। स्कूल और कालेजों में इञ्जील और ईसाई मत की शिक्षा दी जाया करे। अंग्रेज सरकार हिन्दूधर्म और इसलाम धर्म को किसी प्रकार की सहायता न दे। किसी भी सरकारी विभाग में हिन्दू और मुसलमान कर्मचारी को त्योहार की छुट्टी न दी जाये। न्यायालयों में हिन्दू, मुसलमान धर्मशास्त्रों को और धार्मिक रीति-रिवाजों को कोई स्थान न दिया जाये। हिन्दू-मुसलमानों के धार्मिक कीर्तन बन्द कर दिये जायें।

धीरे-धीरे इन अत्याचारी शासकों ने सैनिकों के धार्मिक भावों की भी अवहेलना प्रारम्भ कर दी। बात-बात में उनके धार्मिक नियमों का उल्लङ्घन किया जाने लगा। कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी लगाना और फिर उनको मुँह से तुड़वाना, इसका क्रियात्मक उदाहरण है। कम्पनी की सेना के अनेक अंग्रेज अधिकारी स्पष्टरूप से सैनिकों के धर्म-परिवर्तन के कार्य में लग गये। बंगाल की पदाति सेना के एक अंग्रेज कमाण्डर ने अपनी सरकारी रिपोर्ट में लिखा है कि "मैं निरन्तर २८ वर्ष से भारतीय-सैनिकों को ईसाई बनाने की नीति पर आचरण करता रहा हूँ और गैर ईसाइयों की आत्मा को शैतान से बचाना मेरे फौजी कर्त्तव्य का एक अंग रहा है।"

सैनिकों को पदवृद्धि का भी लोभ दिया गया गया कि जो सिपाही अपना धर्म छोड़ देगा उसको हवलदार बना दिया जायेगा और हवलदार को सूबेदार तथा सूबेदार को मेजर इत्यादि। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय सिपाहियों में बहुत असन्तोष फैल गया। भारतवासियों को ईसाई बनाने का प्रयत्न सैनिकों का बलात् धर्म-परिवर्तन इत्यादि कारणों से भारतीय जनता के मन असन्तोष और प्रतीकार की भावनाओं से भर गये। अत्याचार के प्रतिशोध की भावना से ही सत्तावन की महान् क्रान्ति का जन्म हुआ।

नाना साहब पेशवा

बाजीराव जो अन्तिम पेशवा थे। उसके राज के बदले कम्पनी ने १८१८ में उसके सारे परिवार के पोषण के लिए आठ लाख रुपये वार्षिक पेन्सन देने का वचन दिया और बाजीराव कानपुर के निकट बिठूर में अपने ८ सहस्र आश्रित पुरुष-स्त्री-बच्चों सहित रहता था। सबका निर्वाह इस पेन्सन से होता था। सन्तान न होने के कारण पेशवा ने सन् १८२७ में नाना धोन्धोपन्त को गोद लिया। उस समय नाना की आयु तीन वर्ष की थी। सन् १८५१ में बाजीराव पेशवा की मृत्यु हो गई। पेशवा की मृत्यु होते ही गवर्नर जनरल डलहौजी ने इस पेन्सन को बन्द कर दिया। बाजीराव की मृत्यु के पहले की पेन्सन के ६२ हजार रुपये कम्पनी की ओर शेष थे। डलहौजी ने शेष रुपये भी देने से इनकार कर दिया। नाना साहब को यह भी नोटिस दे दिया कि बिठूर की जागीर भी तुमसे जिस समय चाहें छीन ली जायेगी। यह नाना साहब के साथ कम्पनी का अन्याय था। १८५७ की क्रान्ति के मुख्य कारणों में से एक था। समस्त अंग्रेज इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि इससे पूर्व युवक नाना साहब का व्यवहार अंग्रेजों के साथ बहुत ही अच्छा था। सर जान ने लिखा है कि "नाना शान्त स्वभाव और आडम्बर रहित युवक था। उसमें कोई भी बुरी आदत नहीं थी और अंग्रेज कमिश्नर की सदैव सम्मति मानने को तैय्यार रहता था।" कानपुर के समस्त अंग्रेज और उनकी मेमें नाना साहब के महल में ठहरती थीं। नानासाहब सबकी खूब सेवा-सुश्रूषा करता था, चलते समय मूल्यवान् दुशाले और आभूषण उनको भेंट करता था, नाना के हाथी घोड़े और गाड़ियाँ सदैव अंग्रेजों की सेवा के लिए खड़ी रहती थीं। फिर भी डलहौजी ने नाना साहब की पेन्सन पेशवा के मरते ही बन्द करके घोर अन्याय किया। नाना साहब ने अपने खर्च के लिए कठिनाइयाँ और कम्पनी की सन्धियों को दर्शाते हुए डलहौजी के पास प्रार्थना-पत्र भेजा कि पेन्सन जारी रखी जाये। नाना ने इंगलिस्तान के शासकों से अपील की और अपना एक योग्य वकील अजीमुल्लाखाँ को इसी कार्य के लिए विलायत भेजा। किन्तु नाना साहब के साथ किसी ने न्याय नहीं किया, सरजान आदि सब अंग्रेज इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि न्याय नाना के पक्ष में था। परिणाम यह हुआ कि इस अन्याय से नाना साहब के चित्त में अंग्रेजों के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। फिर वह अपने देश को अंग्रेजों के पञ्जे से छुड़ाने के उपाय सोचने लगा। इस प्रकार स्वाधीनता युद्ध की योजना सर्वप्रथम नाना साहब ने की थी। नाना साहब का वकील अजीमुल्ला और सातारा के मराठा छत्रपति राजा का वकील रंगो बापू इन दोनों के मन में इस क्रान्ति का विचार पहले लन्दन में ही आया था। यह दोनों अपने-अपने स्वामियों की पैरवी करने लन्दन गये थे, वहीं दोनों विचार विनिमय करते रहते थे।

अजीमुल्ला ने बाल्यकाल में अंग्रेज अफसरों के यहाँ खानसामे का कार्य किया था। उनके सम्पर्क में वह फ्रेंच और अंग्रेजी में अच्छी प्रकार से लिखता और बोलता था। उनके रीति-रिवाजों और विचारों से भली भाँति परिचित था। वह यों भी एक असाधारण प्रतिभाशाली सुन्दर और मोहक शिष्टाचार से सम्पन्न युवक था। लन्दन में अंग्रेजों के उच्च समाज में घुल-मिलकर उसने वहाँ की अवस्था को खूब ध्यान

स्वातन्त्र्य संग्राम के प्रमुख सूत्रधार—





नाना साहब पेशवा और ताँत्या टोपे



बिहार का राजा कुँवरसिंह



अन्तिम सम्राट् बहादुरशाह की गिरफ्तारी

झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई—



जिसने सन् १८५७ में मध्यभारत में अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतन्त्रता संग्राम का संचालन किया।

से देखा परखा। स्वदेश लौटते समय वह योरुप के दूसरे अनेक देशों में भ्रमण कर उनकी दशा का भी निरीक्षण करता और मार्ग में मिश्र के सुलतान तथा ईरान के शाह से भारत के स्वाधीनता युद्ध में सहायता के लिए बातें करता आया। योरुप में उस समय रूस और तुर्की के बीच युद्ध छिड़ा था, उस समय अंग्रेज रूसियों के विरुद्ध तुर्की का पक्ष ले क्रीमियां के मैदान में रूसियों से उलझे थे। वहाँ रूस ने उन्हें अनेक शिक्षायें दीं। अजीमुल्ला उस मैदान में जा युद्ध का निरीक्षण कर आया और रूसियों के द्वारा होती हुई अंग्रेजी सेनाओं की दुर्गति अपनी आँखों देखता आया था। अंग्रेजों की शक्ति की धाक उसके मन से सर्वथा उठ चुकी थी। उसके मत में भारत में क्रान्ति करने का वह उपयुक्त समय था। उसने नाना साहब से मिलकर क्रांति की योजना बनाई। भारत के तमाम राजा नवाबों, जागीरदारों, जमीदारों से लेकर साधारण पुलिस के सिपाही और अंग्रेजी सैनिकों और अफसरों के खानसामों, चपरासियों, भिश्तियों तक तथा गाँव-गाँव में उनके दूत क्रांति का सन्देश लेकर पहुँचे। इस समय नाना साहब से मिलकर हिन्दू साधु अवध के नवाब की बेगम हजरत महल की प्रेरणा पर मुसलमान फकीर गुप्तरूप से उत्तरीय भारत के सब देशी फौजों में प्रचार का कार्य कर रहे थे। १८५७ के युद्ध में हरिद्वार कनखल के स्वामी पूर्णानन्द जी महाराज तथा मथुरा के दण्डी स्वामी विरजानन्द जी महाराज और ऋषिवर दयानन्द का प्रमुख हाथ भारतीय इतिहास लेखक मानते हैं। इसका पूर्ण विवरण पृथक् लिखा गया है। इन्हीं साधु-फकीरों के द्वारा देशी फौज ने भारतीय अफसरों के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया। इन प्रचारकों की प्रेरणा पर हजारों हिन्दू सिपाहियों और उनके अफसरों ने गंगाजल लेकर अथवा अपने धर्मग्रन्थ लेकर और मुसलमानों ने कुरान हाथ में लेकर राष्ट्रीय-संग्राम में भाग लेने और अंग्रेजों को भारत देश से बाहर निकालने की शपथ खाई। नाना साहब ने सम्राट् बहादुरशाह और उसकी योग्य बेगम जीनतमहल ने नाना साहब और देश का पूरा साथ देने का निश्चय कर लिया। दिल्ली के सम्राट् ने ईरान के बादशाह से भी सहायता देने के लिए पत्र-व्यवहार किया। दिल्ली आदि नगरों में गुप्त सभायें होने लगीं, क्रान्ति की सफलता के लिए सर्वत्र उपाय सोचे जाने लगे। पहले-पहले नाना साहब के पत्रों का उत्तर अनेक राजा और नवाब, अंग्रेजों के भय के कारण नहीं देते थे। किन्तु जब अंग्रेजों ने अवध के नवाब जैसे अपने आज्ञाकारी साथी का राज्य भी छीन लिया। तब सब राजे-महाराजे, नवाब इत्यादि अंग्रेजों से निराश हो गये और फिर नाना साहब के पत्रों का उत्तर देने लगे। जब सब स्थानों पर अच्छी तैयारी हो गई तो नाना साहब ने तीर्थयात्रा के बहाने सारे संगठन को देखना चाहा।

नाना साहब की तीर्थयात्रा

अन्त में इस गुप्त संगठन के अनेक केन्द्रों को एकसूत्र में बाँधने और देश भर में क्रान्ति का दिन नियत करने के लिए मार्च सन् १८५७ के प्रारम्भ में नाना साहब और अजीमुल्लाखाँ तीर्थयात्रा के बहाने बिठूर से निकले। नाना साहब का भाई, बालासाहब भी उनके साथ था। सर्वप्रथम यह देहली पहुँचे। लालकिले के दीवान खास में सम्राट् बहादुरशाह, बेगम जीनतमहल और दिल्ली के मुख्य-मुख्य नेताओं के साथ इन लोगों की गुप्त मन्त्रणायें हुईं। इसके पश्चात् वे अम्बाला पहुँचे। इसी प्रकार अनेक अन्य स्थानों पर चक्कर लगाते हुए १८ अप्रल को नाना साहब अपने साथियों सहित लखनऊ पहुँचे। लखनऊ में नाना साहब का समारोह के साथ स्वागत किया गया। नाना जहाँ-जहाँ जाता था अंग्रेज अफसरों से मिलकर उन्हें भांति-भांति के बहाने करके अपनी ओर से निःशंक करने का पूरा प्रयत्न करता था। इसके पश्चात् कालपी, झांसी आदि स्थानों पर होते हुए नाना अप्रैल के अन्त में बिठूर लौट कर आ गया। इस यात्रा

में नाना साहब तथा अजीमुल्ला मार्ग में समस्त कम्पनी की देशी फौज की छावनियों में अवश्य जाते थे। तात्यांटोपे भी इसी प्रकार अनेक वर्षों से नाना साहब की आज्ञानुसार कार्य कर रहा था। नाना साहब की इस यात्रा में ३१ मई १८५७ का दिन समस्त भारत में एक साथ क्रान्ति करने के लिए नियत किया गया। किन्तु पूर्व योजनानुसार इस तिथि की सूचना प्रत्येक केन्द्र के केवल मुख्य-मुख्य नेताओं को और प्रत्येक पलटन के तीन-तीन अफसरों को दी गई। शेष का कर्तव्य केवल अपने नेताओं की आज्ञानुसार कार्य करना था। पलटनों में परस्पर भी पत्र-व्यवहार चल रहा था। एक इतिहास लेखक लिखता है—"विविध देशी पलटनों में इस समय परस्पर क्रान्ति के विषय में खूब पत्र-व्यवहार हो रहा था। एक पत्र में लिखा था—भाइयो! हम स्वयं विदेशियों की तलवार अपने शरीर के अन्दर घोंप रहे हैं। यदि हम खड़े हो जायें तो सफलता निश्चित है। कलकत्ते से पेशावर तक सारा मैदान हमारा होगा।" इतिहास लेखक लिखता है कि सैनिक, रात्रि में गुप्त सभायें करते थे जिसमें बोलने वालों के मुख पर नकाब पड़ा होता था।

क्रान्ति के दो मुख्य चिह्न

सन् ५७ की क्रान्ति में नेताओं के संगठन के दो मुख्य चिह्न एक कमल का फ़ूल और दूसरा रोटी (चपाती) थे। कमल का फूल उन सब देशी फौजी पलटनों में, जो इस संगठन में सम्मिलित थीं घुमाया जाता था। किसी एक पलटन का एक सैनिक, फ़ूल को लेकर दूसरी पलटन में जाता था। उस पलटन में हाथों हाथ वह फूल सबके हाथों में से घूमकर निकलता था। जिसके हाथ में वह सबसे अन्त में आता था उसका कर्त्तव्य था कि वह इस कमल के फ़ूल को अपने पास की दूसरी पलटन तक पहुँचा दे। इसका गुप्त अर्थ था कि उस पलटन के सब सैनिक क्रान्ति में भाग लेने को तैय्यार हैं। इस प्रकार के सहस्रों कमल के फूल पेशावर से लेकर बैरकपुर (कलकत्ते) तक पलटनों के अन्दर घुमाए गये। वह रक्तवर्ण कमल भारतीय-संस्कृति का प्रतीक और सैनिकों के लिये क्रान्ति का गम्भीर अर्थसूचक चिह्न था।

दूसरा चिह्न चपाती (रोटी) को एक गांव का व्यक्ति दूसरे गांव तक ले जाता था। वहाँ जिस व्यक्ति को देता था वह अपना कर्त्तव्य समझता था कि वह उस रोटी में से थोड़ी सी स्वयं खाकर शेष गांव के दूसरे लोगों को खिला दे। फिर गेहूं या दूसरे आटे की रोटियाँ बनवाकर वह अपने निकट के गांव में पहुंचा दे। इसका यह अर्थ होता था कि उस गांव की सब जनता क्रान्ति-युद्ध में भाग लेने को तैयार है। यह चमत्कार ही हुआ कि थोड़े दिनों में यह रोटियाँ भारत समान विशाल देश में इस सिरे से दूसरे सिरे तक लाखों ग्रामों के अन्दर पहुँच गई। रोटी इस गम्भीर अर्थ की सूचक थी कि विदेशी अत्याचारी अंग्रेजों का जहाँ भी शासन होता है, यह वहाँ की जनता की रोटी तक छीन लेते हैं। अतः जनता को कम से कम पेट भर रोटी के लिए ही धूर्त अंग्रेजों को भारत देश से निकालने के लिए स्वतन्त्रता युद्ध में सम्मिलित होना चाहिए।

इस प्रकार नाना साहब अपने साथियों सहित क्रान्ति की योजना में जुटे हुए थे। अजीमुल्ला तात्यां टोपे आदि भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपनी योजना घूम-घूमकर पूरी कर चुके थे। रंगोबापू जो छत्रपति सातारा के वकील के रूप में विलायत में अजीमुल्ला के साथ रह चुके थे और जिनके साथ में बैठ-बैठकर योजना का पूर्वरूप लन्दन में तैयार किया था। वे रंगोबापू भी दक्षिण भारत में अपना कार्य कर रहे थे। अजीमुल्ला के विषय में यह भी कहा जाता है कि रूस और इटालिया के राज्याधिकारियों को विप्लव के समय भारतीयों को सहायता देने के लिए इस चतुर क्रान्तिकारी अजीमुल्ला ने तैयार कर लिया था।

विप्लव के समय जनता यह अफवाह भी उड़ाती थी कि नाना साहब ने अंग्रेजों के विरुद्ध रूस के जार से सन्धि कर ली है और जब भारत में विप्लव यौवन पर था उस समय इटालिया के प्रसिद्ध देशभक्त गैरी बाल्डी, भारतवासियों की सहायता के लिए अपने देश से सेना और सामान सहित आ रहा है। यह सत्य भी था कि अपने देश की आन्तरिक कठिनाइयों के कारण वहाँ से शीघ्र चलने आ अवकाश गैरी बाल्डी को न मिल सका, जिस समय गैरी बाल्डी अपने जहाजों में सेना व सामान भरकर भारतीय क्रान्तिकारियों की सहायतार्थ अपने देश से चलने को तैयार हुआ उस समय भारत में विप्लव शान्त हो चुका था। अतः गैरी बाल्डी ने बड़े दुःख के साथ अपनी सेना को जहाजों से उतार लिया। यह भारत का दौर्भाग्य था।

अजीमुल्ला और नाना साहब जब अपनी योजना और तैय्यारी पूरी कर चुके तो इन्होंने सभी केन्द्रों पर आवश्यक सूचनायें भेज दीं। यह पहले निश्चय हो चुका था कि भारत के समस्त हिन्दू मुसलमान दिल्ली के बूढ़े बादशाह सम्राट् बहादुरशाह के हरे झण्डे के नीचे मिलकर अंग्रेजों को देश से बाहर निकाल दें और फिर इसी सम्राट् के झण्डे ही के नीचे अपने सुशासन का नये सिरे से प्रबन्ध करें। अब सब केन्द्रों में ३१ मई १८५७ की तिथि की प्रतीक्षा हो रही थी कि देश के दौर्भाग्य से क्रान्ति नये कारतूसों के कारण नियत समय से पूर्व प्रारम्भ हो गई। यही क्रान्ति की विफलता का एक कारण बना।

बैरकपुर से क्रान्ति का प्रारम्भ

जो नये प्रकार के कारतूस बनाये गये थे इनमें सूअर और गाय की चरबी जो हिन्दू और मुसलमान दोनों के धर्मों में निसिद्ध है. लगाई गई थी। इसका पता बैरकपुर से पेशावर तक सभी छावनियों में भारतीय सैनिकों को लग चुका था। फरवरी सन् १८५७ में बैरकपुर की १६ नम्बर पलटन को नये कारतूस उपयोग करने के लिए दिये गए। इन कारतूसों को उपयोग करने से पहले मुख से काटना पड़ता था। १६ नम्बर पलटन के सिपाहियों ने कारतूसों का उपयोग करने से साफ इन्कार कर दिया। अंग्रेजों ने तुरन्त बरमा से गोरी पलटन मँगवा ली और भारतीय सिपाहियों को परेट के मैदान में बुलाया गया और हथियार रखवा कर अंग्रेज उस सारी पलटन को दण्ड देना चाहते थे। सिपाहियों ने चुपचाप हथियार रखने की अपेक्षा तुरन्त क्रान्ति करने का विचार किया। किन्तु उनके भारतीय अफसरों ने ३१ मई तक रुके रहने की सम्मति दी।

देश भक्त मंगलपाण्डे का बलिदान

उसी समय एक भारतीय नवयुवक सैनिक मंगलपाण्डे अपने आपको रोक नहीं सका और तुरन्त अपनी भरी हुई बन्दूक को लेकर सामने कूद पड़ा और चिल्लाकर शेष सिपाहियों को अंग्रेजों के विरुद्ध धर्म-युद्ध करने के लिए आमंत्रित करने लगा। एक अंग्रेज अफसर ह्यूसन ने सिपाहियों को मंगलपाण्डे को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी, किन्तु कोई सिपाही आज्ञापालन के लिए आगे न बढ़ा। इतने में मंगलपाण्डे ने अपनी बन्दूक की गोली से उस अंग्रेज अफसर का ढेर कर दिया। फिर दूसरा अंग्रेज अफसर लेफ्टिनैण्ट बाघ अपने घोड़े पर आगे लपका। उस पर भी मंगलपाण्डे ने गोली चलाई, वह भी घोड़े सहित जख्मी होकर भूमि पर गिर पड़ा। मंगलपाण्डे तीसरी बार अपनी बन्दूक को भरकर चलाना चाहता था लेकिन बाघ ने उठकर और आगे बढ़कर पाण्डे पर अपनी पिस्तौल की गोली चलाई किन्तु पाण्डे बच गया। पाण्डे ने तुरन्त अपनी तलवार निकालकर इस अंग्रेज अफसर को भी वहीं पर समाप्त कर दिया।

फिर कर्नल व्हीलर ने सिपाहियों को पाण्डे को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी। सिपाहियों ने निषेध कर दिया। करनल घबराकर जनरल के बंगले पर पहुँचा। वहाँ से जनरल हयिर ने समाचार जानकर गोरे सिपाहियों सहित पाण्डे को पकड़ने के लिए उसकी ओर बढ़ा। मंगलपाण्डे ने यह देखकर स्वयं अपनी छाती पर गोली चलाई वह जख्मी होकर गिर पड़ा और गिरफ्तार कर लिया गया। मंगलपाण्डे को फाँसी ८ अप्रैल १८५७ को दे दी गई।

१६ नम्बर और ३४ नम्बर पलटनें नौकरी से निकाल दी गईं। ३४ नम्बर के सूबेदार को भी फाँसी दे दी गई। इन दोनों पलटनों के नेताओं ने क्रांति के संचालकों की आज्ञा का ध्यान रखते हुए ३१ मई से पहले विप्लव नहीं किया, किन्तु मंगलपाण्डे की घटना का समाचार समस्त उत्तर भारत में फैल गया। अप्रैल मास में ही अंग्रेजों के बँगलों में लखनऊ, मेरठ और अम्बाले में आग लगा दी गई। अपराधियों का तो पता नहीं चला, क्योंकि पुलिस भी क्रान्तिकारियों से मिली हुई थी, किन्तु यह सब निश्चित समय से पूर्व हो गया।

मेरठ की घटना

६ मई को ९० भारतीय सवारों की एक कम्पनी को उन्हीं चरबी वाले कारतूसों को दाँत से काटने की आज्ञा हुई। ९० में से ८५ ने साफ इन्कार कर दिया। इन सब सिपाहियों को हथकड़ी-बेड़ी डालकर दस-दस वर्ष की जेल की सजा करके जेलखाने में भेज दिया। सभी सिपाही भीतर से अत्यन्त दुःखी और क्रोध से भरे हुए थे। किन्तु उन्हें तीन सप्ताह और शान्त रहने की आज्ञा थी; वे अपने क्रोध को पीकर बारगों में चले गये। यह घटना प्रातःकाल हुई। सायंकाल भारतीय सैनिक मेरठ शहर में कार्यवश गये तो शहर की स्त्रियों ने स्थान-स्थान पर उन्हें चिढ़ाया—"छिः तुम्हारे भाई तो जेलखाने में हैं तुम यहाँ बाजार में मक्खियाँ मार रहे हो, तुम्हारे जीने पर धिक्कार है।" मेरठ की स्त्रियों के शब्द, तीर की भाँति सिपाहियों के दिलों में चुभ गये और वे धैर्य छोड़ बैठे। रात को बारगों में गुप्त सभायें हुई। निश्चय हुआ कि ३१ मई तक चुप बैठना असम्भव है। ६ मई को ही रात को मेरठ के सिपाहियों ने दिल्ली नेताओं को सूचना भेज दी कि हम कल वा परसों दिल्ली पहुँच जायेंगे आप तैयार रहें। अगले दिन रविवार था। शहर में सहस्रों गाँव निवासी तथा नगर निवासी सशस्त्र आ-आकर इकट्ठे होने लगे। उधर छावनी में जोरों की तैय्यारी हो रही थी। सबसे पहले कुछ सवार जेलखानों की ओर गये। जेलखाने की दीवारें गिरा दी गईं, जेलर भी क्रान्तिकारियों से मिले हुए थे। समस्त कैदियों की बेड़ी काट दी गईं। सब सेना के हिन्दू, मुसलमान, पैदल, सवार, तोपखाने वाले सिपाही, मेरठ की जनता भी इधर-उधर मेरठ में अंग्रेजों का खात्मा करने के लिए पिल पड़े। अनेक अंग्रेज मारे गये। अंग्रेजों के बंगलों, दफ्तरों और होटलों में आग दी गई। चूंकि शहर और छावनी दोनों स्थानों में एक साथ विप्लव हुआ। वहाँ थोड़ी-सी अंग्रेज-सेना मेरठ में थी वह कुछ भी न कर सकी। प्रायः सभी मारे गए या बंगले में जल गये। जो कोई बचा वह अपने नौकरों के पास नालियों अथवा अस्तबलों में छिप गया।

दिल्ली में क्रान्ति

१० ता०की रात को मेरठ के सैनिक दिल्ली की ओर चल दिये। दो हजार सशस्त्र देशी सैनिक सवार मेरठ से चलकर ११ मई को प्रातःकाल ८ बजे दिल्ली पहुँच गये। दिल्ली के नेताओं को उनके आने का पहले से पता ही था किन्तु अंग्रेजों को इनका किंचित् मात्र भी ज्ञात न था, अतः दिल्ली की कम्पनी की

फौज का अंग्रेज अफसर करनल रिपले समाचार पाते ही ५४ नम्बर की देशी पलटन को जमा करके मेरठ के विद्रोहियों से लड़ने के लिए बढ़ा। आमना-सामना होते ही मेरठ के सिपाहियों ने "सम्राट् बहादुरशाह की जय" अंग्रेजी राज्य का क्षय" का जयघोष किया कि—दिल्ली के सिपाही आगे बढ़कर मेरठ के भाइयों से गले मिलने लगे। करनल रिपले घबरा गया और वहीं मारा गया। दिल्ली की सेना के सब अंग्रेज़ अफसर मार दिये गये। कश्मीरी दरवाजे से समस्त सेना ने प्रवेश करके दरियागंज में सब अंग्रेजों के बंगले जला दिये और दिल्ली के लालकिले पर क्रान्तिकारियों का कब्जा हो गया। इतने में मेरठ की पैदल सेना और तोपखाना भी दिल्ली पहुँच गया। मेरठ के तोपखाने ने लालकिले में घुसते ही सम्राट् बहादुरशाह के नाम पर २१ तोपों की सलामी दी। सेना के भारतीय अफसरों ने सम्राट् बहादुरशाह को जाकर नमस्कार किया और मेरठ का सब कुछ हाल कह सुनाया। इन अफसरों में हिन्दू-मुसलमान दोनों ही सम्मिलित थे। "उस समय सम्राट् बहादुरशाह ने कहा कि मेरे पास खजाना नहीं, मैं आप लोगों को तनख्वाह कहाँ से दूँगा? सैनिकों ने उत्तर दिया– "हम लोग भारत भर के अंग्रेजी खजाने ला-लाकर आपके चरणों पर डाल देंगे।" बूढ़े बहादुरशाह ने स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व स्वीकार कर लिया। समस्त लालकिला सम्राट् की जय-जयकार से गूंज उठा। सहस्रों देहली नगर के क्रान्तिकारी भी उनके साथ मिल गये। मेरठ से आने वाली सेना का दिल्ली वालों ने खूब स्वागत किया। दिल्ली के अंग्रेजी बैंक पर क्रान्तिकारियों ने कब्जा कर लिया जो अंग्रेज जहाँ मिला कतल कर दिया गया। उनके बंगले भस्मसात् कर दिये गये। लालकिले के ऊपर हरा झण्डा फहरा दिया गया। उस समय देहली में कोई गोरी पलटन नहीं थी किन्तु किले के निकट अंग्रेजों का बहुत बड़ा मेगजीन था जिसमें लगभग ६ लाख कारतूस, दस हजार बन्दूक और बहुत-सा गोला बारूद था। क्रान्तिकारी सेना मेगजीन पर कब्जा करने के लिए बढ़ी और मेगजीन के अध्यक्ष अंग्रेज अफसर लैफ्टिनैन्ट विलोबी को 'मेगजीन दिल्ली के सम्राट् के नाम पर क्रान्तिकारियों को सौंप देने के लिए सन्देश भेजा। बिलोबी ने निषेध कर दिया। मेगजीन के भीतर ६ अंग्रेज और कुछ भारतीय थे। भारतीय तो लाल किले पर हरे झण्डे को फहराता हुआ देखकर अपने क्रान्तिकारी भाइयों से आ मिले। यह हरा झण्डा ही क्रान्ति के समय सारे भारत में स्वतन्त्रता युद्ध का झण्डा था। ६ अंग्रेजों ने कुछ समय तो क्रान्तिकारियों का मुकाबला किया किन्तु अन्त में यह देख कि मेगजीन नहीं बच सकता, अतः अंग्रेजों ने मेगजीन में आग लगा दी।

मेगजीन के उड़ने पर एक सहस्र तोपों के एक साथ छुटने के समान शब्द हुआ जिससे सारी दिल्ली के मकान हिल गये। उन नौ अंग्रेजों के साथ २५ भारतीय सैनिक और आस-पास की गलियों के ३०० नगर निवासी टुकड़े-टुकड़े होकर उड़ गये। बन्दूकें सब क्रान्तिकारियों के हाथ आई। प्रत्येक क्रान्तिकारी के पास चार-चार बन्दूकें हो गई। ११ मई से १६ मई तक दिल्ली में अंग्रेजों का कत्ले आम चलता रहा। अनेक अंग्रेज जान बचाने के लिए दिल्ली से भाग गये। कोई मार्ग में मर गया, कोई स्वयं गर्मी से मर गया, कोई ग्राम वालों ने दया करके बचा लिया। १६ मई ५७ से सम्राट् बहादुरशाह भारत की प्राचीन राजधानी दिल्ली में यथार्थ में सम्राट् गिना जाने लगा। दिल्ली कम्पनी के हाथों से पूर्णतया स्वतन्त्र हो गई। शेष भारतवर्ष पर इसका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। नाना साहब और क्रान्ति के नेताओं ने बहादुरशाह के ही नाम पर समस्त भारत के राजे, नवाबों, सैनिकों और प्रजा को अंग्रेजों के विरुद्ध युद्धार्थ आह्वान किया। सम्राट् का हरा झण्डा सारे भारतवर्ष में क्रान्तिकारियों का झण्डा बनकर फहराया।

अलीगढ़ में क्रान्ति

दिल्ली की स्वाधीनता की सूचना विद्युत् के समान सारे भारत वर्ष में फैल गई। अनेक स्थानों पर नेताओं के सामने यह समस्या थी कि तुरन्त क्रान्ति आरम्भ करें या नियत तिथि ३१ मई तक ठहरें। किन्तु अब क्रान्ति की आग को रोकना नेताओं के वश की बात न रही और ११ मई से ३१ मई तक समस्त उत्तर भारत में ही स्थान-स्थान पर क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। कम्पनी की ९ नम्बर पलटन अलीगढ़ मैनपुरी, इटावा और बुलन्दशहर में बँटी हुई थी। २० मई को क्रान्ति के एक विद्वान् ब्राह्मण प्रचारक को अंग्रेजों ने पकड़कर सब देशी सिपाहियों के सामने सायंकाल फाँसी पर लटका दिया। यह ब्राह्मण प्रचारक बुलन्दशहर की छावनी से पकड़कर लाया गया था ब्राह्मण को फाँसी पर लटका हुआ देखकर सिपाहियों का खून उबलने लगा। अब सैनिकों के लिए ३१ मई की प्रतीक्षा करना असम्भव था। इस पलटन के सिपाहियों ने अपने अंग्रेज अफसरों को शान्ति से कहा कि "यदि आप अपने प्राण बचाना चाहते हैं तो तुरंत अलीगढ़ को छोड़ दीजिए उसी समय आबाल वृद्ध वनिता सब अंग्रेज अलीगढ़ से चले गए और २० मई को अलीगढ़ में भी स्वतन्त्रता का हरा झण्डा आधीरात से पहले फहराने लगा। सिपाही बहुत-सा खजाना और अस्त्र-शस्त्र लेकर दिल्ली को चल दिये।

मैनपुरी में क्रान्ति

अलीगढ़ की भाँति २२ तारीख को पलटन के सब सिपाही बिगड़ गये। अंग्रेजों को सुरक्षित छोड़ दिया और गोला बारूद तथा शस्त्र ऊँटों पर लादकर मैनपुरी में स्वाधीनता का झण्डा फहराकर २३ मई को दिल्ली को सब सैनिकों ने प्रस्थान किया।

इटावा में क्रान्ति

असिस्टेंन्ट मजिस्ट्रेट अंग्रेज डेनियल लड़ाई में मारा गया। जनता क्रान्तिकारी सैनिकों से मिल गई। २३ मई को भारतीय सैनिकों ने जेलखाना तोड़ दिया। खजाने पर कब्जा कर लिया। अंग्रेजों को स्त्री-बच्चों सहित भागने का अवसर दे दिया। वहाँ का कलक्टर ह्यूम साहब एक भारतीय स्त्री के वस्त्र पहनकर बचकर निकल भागा। नगर स्वतन्त्र हो गया। ९ नम्बर पलटन के सैनिक इस प्रकार अलीगढ़, बुलन्दशहर, मैनपुरी, इटावा और आस-पास के प्रान्त को स्वतन्त्र करके सब खजाना हथियारादि साथ ले और अंग्रेजों को सुरक्षित छोड़ दिल्ली को चल दिये। इन नगरों का शासन प्रबन्ध नगरवासियों को सौंप दिया गया। इन सब स्थानों पर यहाँ तक कि मेरठ और दिल्ली में किसी अंग्रेज बच्चे और स्त्री को कोई कष्ट नहीं दिया गया। न किसी अंग्रेजी स्त्री की कहीं बेइज्जती ही की गई। इसी विषय में एक अंग्रेज अफसर विलियम म्योर के० सी० एस० आई० का बयान है "चाहे और कितना भी अत्याचार और रक्तपात क्यों न हुआ हो जो किस्से अंग्रेज स्त्रियों की बेइज्जती के फैल गये थे वे सब मैंने जहाँ तक खोजा और जाँच की बिल्कुल निराधार थे।

नसीराबाद में क्रान्ति

मेरठ के सिपाही दर-दर फैल गये थे। कुछ मेरठ के सैनिक नसीराबाद छावनी में भी पहुँच गये। २८ मई को वहाँ की भारतीय सेना के सिपाही बिगड़ गये। वहाँ एक कम्पनी गोरों की भी थी। तोपखाना भी था। गोरों की कम्पनी से देशी सैनिकों का अच्छा संग्राम हुआ। कुछ अंग्रेज मारे गये और शेष जान बचाकर भाग गये। देशी पलटन के नेता खजाना शस्त्रादि लेकर अपने कई हजार सिपाहियों सहित दिल्ली को चल दिये। नगर के शासन का प्रबन्ध भी कर दिया।

रुहेलखण्ड में क्रान्ति

बरेली के ग्रास-पास का प्रान्त रुहेला पठानों के शासन में रह चुका था। बरेली ही राजधानी थी। इस समय ग्रन्तिम रुहेला नवाब के वंशज खान बहादुर खां कम्पनी की ग्रोर से जजी के पद पर नियुक्त थे। यही रुहेलखण्ड में क्रान्ति के नेता थे। खान बहादुरखां ने योजना के ग्रनुसार ३१ मई तक प्रतीक्षा की। वहां की पलटनों का ग्रंग्रेजों के साथ ऐसा सुन्दर व्यवहार था कि ग्रंग्रेजों को ग्रन्त समय तक कुछ भी सन्देह नहीं हुग्रा। बरेली में ८ नम्बर देशी सवार १८ ग्रौर ६८ नम्बर पैदल देशी पलटनें ग्रौर कुछ तोपखाना था मेरठ की क्रान्ति थी सूचना १४ मई को यहाँ पहुंच गई थी। मेरठ की घटना के पश्चात् ग्रंग्रेज कमाण्डर इन-चीफ ने भारत की सेनाग्रों में यह घोषणा की कि नये कारतूस बन्द कर दिये हैं। सैनिक पुराने कारतूसों का ही प्रयोग करें। किन्तु क्रान्ति पर ग्रब इसका कुछ भी प्रभाव नहीं हो सकता। देहली से एक पत्र रुहेलखण्ड की पलटनों के नाम पहुंचा। दिल्ली की सेना के सेनापति की ग्रोर से बरेली ग्रौर मुरादाबाद की पलटनों के सेनापतियों के नाम हार्दिक ग्रालिङ्गन। भाइयो दिल्ली में ग्रंग्रेजों के साथ युद्ध हो रहा है। ईश्वर की कृपा से हम ने ग्रंग्रेजों को जो पहली पराजय दी है उससे वे इतने घबरा गये हैं कि जितने दूसरे ग्रवसर पर दस पराजयों से भी नहीं घबराते। ग्रसंख्य भारतीय वीर सैनिक दिल्ली में ग्रा ग्राकर इकट्ठे हो रहे हैं। ऐसे ग्रवसर पर यदि ग्राप वहां पर भोजन कर रहे हों तो हाथ यहां पर ग्राकर धोईये। ... ग्राप का कर्तव्य है कि ग्राप तुरन्त ग्रायें। दिल्ली का सम्राट् ग्रापका स्वागत करेगा। हमारा घर ग्रापका घर है। बिना ग्रापके ग्राये बसन्त के गुलाब में फूल नहीं खिलते हैं।" इसी प्रकार के पत्र सर्वत्र पलटनों को लिखे गये।

बरेली में क्रान्ति

३१ मई को प्रातःकाल सब से पहले कप्तान ब्राउनलो का बंगला जलाया गया। ठीक ग्यारह बजे दोपहर को ग्रकस्मात् एक तोप छूटी। यही क्रान्ति के प्रारम्भ होने का संकेत था। बरेली का संगठन बहुत ग्रच्छा था। ६८ नम्बर पलटन ने ग्रंग्रेजों के बंगलों को जलाना ग्रौर ग्रंग्रेजों को मारना शुरू कर दिया। ग्रंग्रेज नैनीताल की ग्रोर भागने लगे। केवल ३२ ग्रंग्रेज प्राण बचा कर नैनीताल पहुंच पाये। जनरल सिबल्डादि ग्रनेक ग्रंग्रेज ग्रफसर मारे गये। ग्रंग्रेजी झण्डा उतार कर स्वाधीनता का हरा झण्डा फहराया गया। उसी समय क्रान्तिकारी सेना के सेनापति तोपखाने के सूबेदार बखतरखां ने प्रधान सेनापति का पद ग्रहण किया। समस्त प्रजा ने खानबहादुरखां को सम्राट् की ग्रोर से रुहेलखण्ड का सूबेदार स्वीकार किया। रुहेलखण्ड की स्वतन्त्रता की सूचना सम्राट को देने के लिए दिल्ली उसी दिन ग्रादमी भेज दिया गया।

शाहजहांनपुर में क्रान्ति

बरेली से ४७ मील दूर शाहजहांनपुर भी २८ नं० पलटन के प्रयत्न से बरेली के समान ही ३१ मई को सायंकाल स्वाधीन हो गया।

मुरादाबाद में क्रान्ति

मेरठ से क्रान्तिकारी सिपाही मुरादाबाद की छावनी में ग्राये हुए थे। ३१ मई को प्रातःकाल २९ नं० की पलटन ने यहां पर भी योजनानुसार क्रान्ति करके खजाने तथा सब सरकारी माल पर कब्जा कर

लिया। अंग्रेज सब भाग गये। मुरादाबाद का कमिश्नर पावेल अपने साथियों सहित मुसलमान हो गया। उसके प्राण बच गये। सूर्यास्त से पूर्व स्वाधीनता का हरा झण्डा मुरादाबाद पर फहराने लगा।

बदायूं में क्रान्ति

सिपाहियों तथा पुलिस और जनता ने मिल कर पहली जून को सायंकाल क्रान्ति की। बदायूं के अंग्रेज जंगल में भाग गये। स्वाधीनता का झण्डा फहरा दिया गया। खानबहादुरखां ने एक नई सेना बना कर सारे रुहेलखण्ड में शान्ति और सुशासन स्थापित किया और रुहेलखण्ड की स्वाधीनता के सब समाचार देहली सम्राट् की सेवा में भेज दिये। खानबहादुरखां ने एक एलान लिख कर सारे रुहेलखण्ड में बंटवाया, जिस का सारांश इस प्रकार से है। "भारत निवासियो! स्वराज्य का पवित्र दिन जिसकी बहुत समय से प्रतीक्षा थी आ पहुंचा। आप इस महान् शुभावसर से लाभ उठायेंगे, वा इसे हाथ से जाने देंगे? यदि अंग्रेज भारत में रह गये तो हम सब को कत्ल कर देंगे। अंग्रेज लोग बड़े चालबाज और दगाबाज हैं। वे कभी अपने वचन पूरे नहीं करते। अपने मजहब के अतिरिक्त सब के मजहबों को संसार से मिटाने का यत्न करते हैं। उन्होंने गोद लिये बच्चों के हक छीन लिए। लखनऊ की नवाबी और नागपुर का राज छीन लिया। इन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों को पैरों तले रोंदा है। मुसलमानो? यदि तुम कुरान की इज्जत करते हो तो, और हिन्दूओ तुम्हें यदि गोमाता का सन्मान है तो अब आपस के छोटे मतभेदों को भूल जाओ। स्वतन्त्रता के युद्ध में कूद कर एक झण्डे के नीचे लड़ो। गाय का मारा जाना बन्द कर दिया जावे। इस पवित्र युद्ध में जो मनुष्य स्वयं लड़ेगा वा धन से सहायता करेगा, इन दोनों को इस लोक और परलोक में दोनों स्थान पर निजात (मोक्ष) मिलेगी।"

बखतरखां बरेली, शाहजहांनपुर, मुरादाबाद और बदायूं की कम्पनी की भारतीय सेना, कम्पनी के खजानों, तोपों अन्य सब हथियारादि सहित राजधानी दिल्ली की ओर चल दिया।

आजमगढ़ तथा गोरखपुर और बनारस में क्रान्ति

३१ मई को बनारस की बारगों में आग लगी। ३ जून को गोरखपुर और आजमगढ़ के खजानों से सात लाख रुपये नकद बनारस के लिये आ रहे थे। उस दिन १७ नम्बर पलटन ने आजमगढ़ में क्रान्ति आरम्भ कर दी। केवल दो अंग्रेजों को छोड़ कर शेष सब अंग्रेजों को बाल-बच्चों सहित सुरक्षित बनारस भेजने का गाड़ियों तक प्रबन्ध कर दिया। सात लाख खजाने पर, गोले बारूद पर, जेलादि पर क्रान्तिकारियों ने कब्जा कर लिया। आजमगढ़ में भी उसी रात स्वतन्त्रता का झण्डा फहरा दिया गया।

४ जून को आजमगढ़ के समाचार बनारस पहुंचे। अंग्रेज अफसरों ने देशी सिपाहियों से हथियार रखवाने चाहे। देशी सिपाहियों ने अंग्रेज अफसरों पर हमला कर दिया। अंग्रेजों की ओर से तुरन्त एक सिख पलटन मुकाबले पर लड़ने के लिए आ गई। अंग्रेजी तोपखाने ने आकर सब पर गोले बरसाने आरम्भ कर दिए। अंग्रेज अफसर घबराहट में हिन्दू और सिख की तमीज न कर सके। उन्होंने दोनों पर ही गोले बरसाये। पहले जो सिख अंग्रेजों का साथ दे रहे थे विवश होकर उन्हें क्रान्तिकारियों का साथ देना पड़ा। सन् ५७, ५८ की सारी क्रान्ति में शायद यही एकमात्र अवसर था जब कि सिख सेना ने (विवश होकर) हिन्दू और मुसलमानों का साथ दिया। बनारस की जनता तो क्रान्तिकारियों के साथ थी किन्तु सिखों ने, वहां के रईसों ने, राजा चेतसिंह के वंशज बनारस के उपाधिधारी राजा ने अंग्रेजों की

पूरी सहायता की। विप्लवकारी नगर छोड़कर इधर-उधर फैल गये। बनारस क्रान्तिकारियों के हाथों में नहीं आया।

जौनपुर में क्रान्ति

५ जून को जौनपुर में विप्लव हुआ। कई अंग्रेज मारे गये। शेष नगर छोड़ कर बनारस भाग गये। खजाना क्रान्तिकारियों के हाथों में आ गया। अपने-अपने नगरों को स्वतन्त्र कर जौनपुर आजमगढ़ के सिपाही फैजाबाद की ओर चल दिये। वहां भी हरा झण्डा फहरा दिया। यद्यपि बनारस पर अंग्रेजों का कब्जा था किन्तु आस-पास का ग्रामीण प्रान्त सब क्रान्तिकारियों के हाथों में था सर्वत्र हरे झण्डे फहरा रहे थे, अंग्रेजों के नियुक्त किये जमींदारों को हटाकर पुराने पैतृक जमींदार उनके स्थान पर नियुक्त कर दिए। सब स्थानों पर अंग्रेजी जेलखानों, अदालतों और दफ्तरों को समाप्त कर दिया। तार काट डाले, रेल की लाइनें उखाड़ कर फेंक दी गईं। गांव-गांव में हरे झण्डे लेकर स्वयंसेवक रक्षा और प्रबन्ध का कार्य करने लगे। बनारस के प्रान्त भर में क्रान्तिकारियों ने एक भी अंग्रेज स्त्री को नहीं मारा। जिन अंग्रेजों ने हथियार रख दिये वे भी सुरक्षित बनारसादि स्थानों पर भेज दिए।

इलाहाबाद में क्रान्ति

प्रयाग के पंडे स्वाधीनता युद्ध के प्रचार में बहुत बड़ा भाग ले रहे थे। यहां पर एक बहुत सुदृढ़ किला था। जिस में गोले बारूद और अस्त्र-शस्त्रों का बहुत बड़ा संग्रह था। मुसलमानों में भी अच्छा उत्साह था। ६ जून को यहां क्रान्ति हुई। वहां ६ नम्बर देशी पलटन, २०० सिख सिपाही, कुछ अंग्रेज अफसर थे। अवध से देशी सवारों की एक पलटन और बुला ली गई थी। ६ नम्बर पलटन की बारगें किले से बाहर थीं। जिस समय अंग्रेज अफसर भोजन कर रहे थे सिपाहियों की बिगुल बजी। ६ जून की रात थी, उसी दिन अनेक अंग्रेज मारे गये। शेष किले में जाकर छिप गये। अंग्रेजों के बंगलों में आग लगा दी गई। दो पलटनों के अधिकांश अफसर मारे गये। सिखों ने अंग्रेजों का साथ दिया। अतः किला अंग्रेजों के हाथ में रह गया। किले पर अंग्रेजी झंडा रहा। नगर की जनता ने क्रान्तिकारियों का सहयोग दिया। अंग्रेजों के मकान सब जला दिये गए। जेलखाने के कैदी छोड़ दिए। खजाने पर कब्जा कर लिया गया। रेल की लाइन और तार तोड़ डाले गए। ३० लाख रुपया खजाने का हाथ लगा। ७ जून को हरे झंडे का जलूस निकाला गया। सब ने झंडा अभिवादन किया। नगर कोतवाली पर झंडा फहराने लगा। आस-पास के सैकड़ों ग्रामों में भी हरे झंडे फहराने लगे। जनता ने मिलकर मौलवी लियाकत अली को जो योग्य और चरित्रवान् व्यक्ति था, उस प्रान्त का सम्राट् की ओर से सूबेदार नियुक्त कर लिया। उसने खुसरो बाग को अपना केन्द्र बनाया। नगर और ग्रामों में शान्ति स्थापनार्थ अच्छा प्रबन्ध किया। दिल्ली सम्राट् को यहां के सब समाचार देता रहा। मौलवी लियाकतअली ने किले पर कब्जा करने का भी प्रयत्न किया किन्तु सिखों ने अंग्रेजों का साथ देकर अपने देश से विद्रोह किया अतः किला अंग्रेजों के हाथ में ही रहा।

झांसी और महारानी लक्ष्मीबाई

मार्च १८५८ में जब क्रान्ति के मुख्य केन्द्र दिल्ली, कानपुर, लखनऊ आदि क्रान्तिकारियों के हाथों से निकल गये यहाँ तक कि अंग्रेजों ने पंजाब और गंगा यमुना का समूचा प्रान्त और अवध का पूर्वी आंचल भी फिर से दबा लिया तब क्रान्तिकारियों के दो दल बन गये। मुख्य दल नानासाहब पेशवा, अजीमुल्ला और अवध की बेगम के नेतृत्व में छापा मार युद्धों द्वारा अवध, रुहेलखण्ड में अंग्रेजों के पांव न जमने देने का यत्न करता रहा। दूसरा दल नाना साहब के भाई रावसाहब को उनका प्रतिनिधि बना तात्या टोपे, महारानी झांसी के नेतृत्व में यमुना से दक्षिण कालपी. ग्वालियर आदि में अपना केन्द्र बना कर वह बुन्देलखंड, राजस्थान और महाराष्ट्र तक युद्ध चालू रखने की चेष्टा कर रहा था। महारानी झांसी ने जो वीरता झांसी, ग्वालियर आदि स्थानों में स्वतन्त्रता युद्ध में दिखाई उसके विषय में संक्षेप से लिखा जाता है। इससे पूर्व महारानी झांसी के जीवनवृत्त के विषय में भी लिखना अत्यन्त आवश्यक है।

महारानी लक्ष्मीबाई का जन्म सन् १८३५ में बनारस में हुआ। उनके पिता का नाम मोरोपन्त ताम्बे था, वे महाराष्ट्र के ब्राह्मण थे। लक्ष्मीबाई का जन्म का नाम मनूबाई था। अन्तिम पेशवा के भाई चिम्मन जी आपा पेशवाई समाप्त होने पर काशी चले आये। इन के पास ही मोरोपन्त ताम्बे काशी में रहते थे। कुछ समय पश्चात् आपा जी का देहान्त हो गया। ताम्बे जी विवश हो आपा जी के भाई बाजी-राव पेशवा के पास बिठूर चले गये। वहीं अपना जीवनयापन करने लगे। चार पाँच वर्ष की आयु में मन्नूबाई की माता जी की मृत्यु हो गई। ताम्बे जी ने ही मन्नूबाई का पालन-पोषण किया। पेशवा भी मन्नूबाई से विशेष प्रेम करता था। मन्नूबाई पेशवा के दत्तक पुत्र नानासाहब के साथ खेलना, लिखना-पढ़ना, घोड़े पर चढ़ना, शिकार खेलना, तलवार चलाना, आदि सब कार्य सीखती थी। जो कार्य नाना-साहब करते उसी का वह भी अनुकरण करती थी। नानासाहब से भी शीघ्र सब कार्य में निपुणता प्राप्त कर लेती थी। एक दिन नानासाहब को हाथी पर चढ़ते देख मन्नूबाई भी हाथी पर चढ़ने का आग्रह करने लगी। पेशवा ने कहा "तेरे भाग्य में हाथी की सवारी कहाँ है" मन्नूबाई को बात चुभ गई। उसने तुरन्त उत्तर दिया। "मेरे भाग्य में एक हाथी नहीं दस हाथी लिखे हैं।" वह हीनभावना कभी नहीं रखती थी। थोड़े ही समय में वह लिखने पढ़ने के साथ युद्ध विद्या में भी विशारद और निपुण हो गई।

मन्नूबाई अत्यन्त रूपवती थी। उसका आठ वर्ष की आयु में ही झांसी के राजा गंगाधर से विवाह हो गया। विवाह के समय से ही उसका नाम लक्ष्मीबाई रख दिया गया। १६ वर्ष की आयु में लक्ष्मीबाई के एक पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु वह शीघ्र ही मर गया। जिससे राजा गंगाधर को बड़ा दुख हुआ। उसी पुत्र के वियोग के शोक के कारण उनका शरीर दिन पर दिन दुर्बल होने लगा और इसी दुःख और चिन्ता से उनकी मृत्यु हो गई। मरने से पूर्व उन्होंने एक पुत्र गोद लिया। इस दत्तक पुत्र का नाम दामोदरराव था। महारानी जी ने अपने पति की अन्त्येष्टि क्रिया विधिवत् की।

इस समय महारानी की आयु १८ वर्ष की थी। उसे यह असह्य दुःख सहना पड़ा। पति के वियोग का दुःख, दूसरा राज्य के प्रबन्ध का भार। उस समय केवल उसकी आशा का केन्द्र उसका दत्तक पुत्र ही था। महारानी ने कम्पनी-सरकार के पास प्रार्थनापत्र भेजा कि सरकार उनके दत्तकपुत्र को राज्य का

उत्तराधिकारी स्वीकार कर ले। किन्तु सरकार ने कुछ समय तक तो उसका कुछ उत्तर नहीं दिया. फिर रानी ने दूसरा प्रार्थनापत्र भेजा उसका भी कोई उत्तर नहीं मिला। उत्तर न देने का रहस्य यही था कि अंग्रेजी सरकार रानी के दत्तकपुत्र को स्वीकार नहीं करना चाहती थी। धूर्त लार्ड डलहौजी ने रानी को एक आज्ञापत्र भेजा कि कम्पनी-सरकार ने झांसी के राज्य को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया; लक्ष्मीबाई किला खाली कर दे। रानी को ५ हजार रुपया मासिक पेन्शन दी जाये। वह अपनी सेना को भंग कर दे। महारानी लार्ड का पत्र पाकर बहुत दुःखित तथा व्याकुल हो गई। उसको जो आघात पहुँचा वह अवर्णनीय है। रानी मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। कुछ दिन तो बहुत दुःखी रही। विवशतार्थ पेन्शन स्वीकार करनी पड़ी। महारानी लक्ष्मीबाई ने एक सती साध्वी के समान पवित्र जीवन बिताना प्रारम्भ किया। प्रातःकाल चार बजे उठना, स्नान, ध्यान पूजा, प्रतिदिन गीता का पाठादि श्रद्धापूर्वक करती थी। आठ बजे नित्यकर्म से निवृत्त हो महल के अन्दर ही भ्रमण व्यायामादि करती थी। इसके पश्चात् अपने हाथ से ग्यारह सौ रामनाम की आटे की गोलियां बनाकर मछलियों को खिलाती थी। फिर रात के आठ बजे तक गीतादि धर्मशास्त्रों को सुनती थी। उसके पश्चात् भजन, भोजन करके ईश्वर का स्मरण करती हुई सो जाती थी। यही उनका प्रतिदिन का कार्य था। उसके पिता मोरोपन्त अन्य घर का काम संभालते थे।

रानी के साथ जो व्यवहार अंग्रेजों ने किया यह सारी जनता को खटकता था। लार्ड डलहौजी की यह स्वार्थपरायणता भी स्वतन्त्रता युद्ध का एक कारण बना था। मध्यभारत और उत्तरभारत के बीच झांसी का राज्य अंग्रेजों के लिये एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक केन्द्र था; इसे वह कैसे छोड़ सकते थे। इस स्थान से सिंधिया तथा अन्य राजाओं को वश में किया जा सकता था। इसीलिए दत्तकपुत्र को स्वीकार न करके झांसी को अपने आधीन करना अंग्रेज अत्यावश्यक समझते थे, किन्तु इस व्यवहार से जनता में अंग्रेजों के प्रति अत्यन्त घृणा उत्पन्न हो गई। महारानी लक्ष्मीबाई भी अवसर की खोज में थी तथा धीरे-धीरे तैयारी में लगी हुई थी। १८५७ की क्रान्ति की अग्नि जब देश में भड़की तो झांसी भी कैसे शान्त रह सकती थी। अतः क्रांति ने अपना रूप दिखाया।

४ जून १८५७ को झांसी में १२ नं० पलटन के हवलदार गुरुबख्शसिंह ने किले के मेगजीन और खजाने पर कब्जा कर लिया। इसके पश्चात् लक्ष्मीबाई ने महल से निकल के स्वयं शस्त्र धारण कर क्रांतिकारी सेना का सेनापतित्व स्वीकार किया। उस समय लक्ष्मीबाई की आयु केवल २१ वर्ष की थी। ७ जून को रिसलदार कालेखां, तहसीलदार मोहम्मदहुसेन ने किले पर हमला किया। किले के अन्दर की देशी पलटन भी इनके साथ मिल गई। किला भी हाथ में आ गया। रिसलदार कालेखां की आज्ञा से ६७ अंग्रेज मार दिये गये। यह कार्य महारानी की आज्ञा के बिना ही सैनिकों ने कर डाला। इतिहास लेखक सर जॉन के० लिखता है कि "इस हत्याकांड से रानी लक्ष्मीबाई का कोई सम्बन्ध नहीं था। न उसका कोई आदमी मौके पर विद्यमान था न उसने इसकी आज्ञा ही दी" अन्त में उसी दिन झांसी से कम्पनी का राज्य हटा दिया गया। बालक दामोदर के संरक्षक के रूप में रानी लक्ष्मीबाई झांसी की गद्दी पर बैठी। कम्पनी का झंडा उतार दिया गया। सम्राट् का हरा झंडा झांसी पर फहराने लगा। सारे राज्य में स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई।

गुलाम गौसखां मुख्य तोपची बनाया गया। उसने रानी को सलामी की तोपें दाग दीं। तोपों की मरम्मत की गई। नई तोपें ढलने लगीं। बारूद बनने लगी। भाऊबख्शी को तोपें ढालने का कार्य सौंपा गया। लक्ष्मणराव प्रधान मंत्री नियुक्त हुआ। प्रधान सेनापति दीवान जवाहरसिंह को बनाया गया। पैदल

डाला। वह अपनी तोपें और सामान छोड़कर भागा। रानी का एक कर्नल जमाखां मारा गया। दीवान रघुनाथसिंह एक दूर गाँव में थे उन्होंने नत्थेखां की सेना पर पीछे से हमला करके उसकी सारी सेना को छलनी बना दिया। फिर एक दो दिन साधारण लड़ाई हुई। सागरसिंह ने भी इस लड़ाई में खूब वीरता दिखाई। रानी की जीत हुई। नत्थेखां शेष सेना सहित बहुत तोपें व सामान छोड़ हार कर भाग गया।

रानी ने सब सेना को विशेषतया गुलाम गौस खाँ और भाऊ बख्शी को विशेष रूप से पुरस्कृत किया। रानी ने आज्ञा दी कि स्त्रियाँ भी तोप चलाना सीखें। कुछ समय में ही, सुन्दर, मुन्दर, काशीबाई मोतीबाई आदि सब तोप चलाने में भी सिद्ध हो गई।

अंग्रेजों से युद्ध करना अभी शेष था। महारानी जी इसी तैयारी में लगी हुई थी। अपनी ओर से तैयारी में कोई कमी नहीं छोड़ी। उधर दिल्ली का पतन हो चुका था बहादुरशाह अंग्रेजों की कैद में था। लखनऊ भी अंग्रेजों के हाथ में आ चुका था। दिल्ली के पतन का क्रान्तिकारियों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। कानपुर में तात्यां टोपे ने अंग्रेजों के कम से कम तीन बड़े जनरलों को युद्ध में हराया। अवध में अवधी-स्वतन्त्रता का युद्ध चालू था। विठूर का पतन हुआ। नाना साहब कठिनाई से रात के समय अपनी पत्नियों और विमाता को लेकर नाव द्वारा निकल गये। उनकी कन्या मैनाकुमारी कहीं महल में रह गई। उसे अंग्रेजों ने पकड़ कर जीवित ही जला दिया। नाना का विठूर तोपों से उड़ा दिया गया। जिसका वृत्त अन्य स्थान पर लिखा गया है। नाना साहब लखनऊ की बेगम से जा मिले। वे फिर झांसी वालों के संसर्ग में कभी नहीं आये। रावसाहब और तात्यां टोपे अपनी सेना लेकर कालपी पहुँच गये। यहीं से अपनी युद्ध की योजना चलाते रहे। यह सब समाचार झांसी आ चुके थे।

झांसी से हार खाकर नत्थेखां टीकमगढ़ में शान्ति से नहीं बैठा, अपितु वह झांसी के परगनों में दो मास लूट मार करता रहा। उसने पंडवाहा, गरीठा और नौटा में खूब लूट मार की। किन्तु महारानी ने थोड़े समय में ही यह सब लूट मार कुचल डाली और नत्थेखां को झाँसी प्रान्त छोड़ कर भागना पड़ा। अनेक विपत्तियों के होते हुए रानी कभी घबराई नहीं। उसका कार्यक्रम दिनचय और सद्भावना एक समान ही रहती थी। जनता की सेवा, रक्षादि कार्य बड़े दृढ़ संकल्प से और स्थितप्रज्ञ होकर करती थी। गीता के पाठ का उसके जीवन पर क्रियात्मक प्रभाव था। मरने से डरना और भयंकर से भयंकर आपत्तियों में घबराना वह जानती ही नहीं थी। रानी ने जो गीतादि शास्त्रों में पढ़ा था वह उसे याद था और उसके कण-कण में व्याप्त था। इसी धार्मिक ग्रन्थ के स्वाध्याय से उसका आदर्श-पवित्र, धार्मिक जीवन था। वह इस समय की अद्वितीय वीरांगना थी। अंग्रेजों ने भी यह निश्चय कर रखा था जब तक झांसी का दुर्ग उनके हाथों में नहीं आयेगा तब तक क्रान्तिकारियों को विजय करना असम्भव है। इसी विचार से कम्पनी ने एक विशाल सेना जनरल सर ह्यू रोज के आधीन भेजी जिसमें हैदराबाद, भोपाल और अन्य रियासतों की सेनायें भी सम्मिलित थीं तोपों सहित इस प्रदेश को विजय करने के लिये भेजी गई। यमुना के दक्षिण और विन्ध्याचल के उत्तर का समस्त प्रदेश ११ मास तक क्रान्तिकारियों के हाथों में रहा। जिसका मुख्य श्रेय महारानी लक्ष्मीबाई को है। ६ जनवरी १८५८ को सर ह्यू रोज मऊ से चला। रायगढ़, सागर, बानापुर, चन्देरी इत्यादि स्थानों को विजय करती हुई इसकी सेना २० मार्च को झांसी के निकट पहुंची। झांसी इस समय समस्त प्रदेश के क्रान्तिकारियों का

सबसे मुख्य केन्द्र था। झांसी में बानापुर के राजा मरदानसिंह और अन्य अनेक राजा और सरदार रानी की सहायतार्थ विद्यमान थे।

झांसी का भीषण संग्राम

महारानी लक्ष्मीबाई ने कम्पनी की सेना के पहुंचने से पूर्व झांसी के चारों ओर दूर तक के प्रान्त को वीरान करवा दिया था ताकि शत्रु की सेना को झांसी पर आक्रमण करते समय रसदादि न मिल सके। न खेतों में अन्न था न कहीं घास का तिनका न छाया के लिये कोई वृक्ष ही था।

किन्तु महाराज सींधिया ने और टिहरी टीकमगढ़ के राजा ने कम्पनी की सेना के लिए रसद घासादि का इतना अच्छा प्रबन्ध कर दिया कि अंग्रेज सेना को कोई कठिनाई वा कष्ट नहीं हुआ।

अंग्रेजी सेना को बढ़ते देख कर महारानी लक्ष्मीबाई ने क्रान्तिकारी सेना का सेनापतित्व स्वयं ग्रहण किया। प्रत्येक मोरचा उसने अपनी उपस्थिति में तैयार करवाया। अपने सन्मुख ही चारदीवारी पर तोपें चढ़वाईं। सर ह्यू रोज अंग्रेज जनरल लिखता है कि रानी के साथ झाँसी की सैंकड़ों स्त्रियाँ तोपखानों और मेगजीनों में आती जाती और काम करती दिखाई दे रही थीं।

२३ मार्च मंगलवार १८५८ को रोज ने हमला करने की आज्ञा दी। युद्ध आरम्भ हो गया। सैंय्यर फाटक की बाईं ओर एक टेक पर अंग्रेजों का तोपखाना था। वहाँ से सैंय्यर फाटक ओछी फाटक पर तथा उन फाटकों की दीवार पर गोली की वर्षा हुई। चलते हुए गोलों की चादर के नीचे गोरी पलटनें संगीनें, बन्दूकें लिये दीमक की भाँति चलीं। रानी के गोलन्दाज खुदाबख्श और दुल्हाजु चुप रहे उन्हें बढ़ने दिया, जब अंग्रेजी सेना मार के पर्याप्त भीतर आ गई तब उन्होंने अपनी तोपों से आग बरसानी आरम्भ की। गोरों की पलटन धरती में बिछ गई। फिर खुदाबख्श ने टेक पर अंग्रेजी तोप-खाने को अपना लक्ष्य बनाया। अंग्रेज तोपची मारे गये तोपों का मुँह बन्द हो गया। तोपखाने के पीछे वाली सेना पीछे भागी। उसके ऊपर गुलाम गौस ने अपनी "घनगरज" की मार फेंकी। कठिनाई से कुछ व्यक्ति बचकर रोज के पास पहुँचे। पूर्व की ओर भाऊ बख्शी की 'कड़क बिजली' ने खूब काम किया। अब रोज ने दिन रात लगकर एक मोर्चा जीवनशाह की टोरियों के ठीक बगल में पूर्व की ओर किले से ३०० गज के अन्तर पर बनाया। इसकी सहायतार्थ तीन मोर्चे और बनाये। इस मोर्चों के निर्माण में पर्याप्त समय और आदमी 'रोज' को खर्च करने पड़े। रानी के तोपची रात भर जागते रहे दोपहर को तोपची बदलते थे। जो मोर्चा रोज ने तैयार किया था वह गुलाम गौस और लालता ब्राह्मण ने दूरबीन से देख लिया। गुलाम गौस के कहने पर लालता ने स्वर में गाया "जननी जन्म दिया है तो खां बस आजहि के लानै" इसकी समाप्ति हुई कि गौस ने तोपखाने में पलीता लगाया। 'घनराज' और उसकी बहनों ने इतनी जोर से गरज की कि भूमि में कम्पन आ गया। थोड़ी ही देर में रोज के तोपखानों ने ऐसी मार बरसाई कि रोज का दम फ़ूल उठा, उसका दक्षिणी दस्ता नष्ट भ्रष्ट हो गया। अंग्रेजों के सब तोपखाने बन्द हो गये। एक तोपखाना कोलाहल कर रहा था।

गुलाम गौस ने अपनी 'घनराज' को एक अंगुल इधर-उधर करके निशाना लिया और फटने वाला गोला छोड़ दिया। गोला ठीक निशाने पर बैठा। अपनी सफलता पर गौस उछल कर बोला "वह मारा" गोरे तोपची मारे गये, तोप भी उलट कर बेकार हो गई। गौस दक्षिणी मोर्चे को ठण्डा करके भोजनार्थ चला गया। लालता ने स्थान को सम्भाला। पूर्व की ओर से अंग्रेजी तोपों के गोले शहर में

गिरकर जन-धन का नाश कर रहे थे। भाऊ बख्शी ने अपनी कड़क बिजली का लक्ष्य ठीक करके पलीता दिया। वह पूर्वीय मोर्चा भी ठण्डा हो गया। तोपची मारे गये। तोपें बेकार हो गईं। बख्शी अपनी पत्नी को तोपखाना सौंपकर भोजन, विश्रामार्थ चला गया। मुन्दर ने रघुनाथसिंह का स्थान लिया। सुन्दर ने दुल्हाजू का, मोतीबाई ने खुदाबख्श का स्थान लिया दीवान जवाहरसिंह को भी छुट्टी दे दी गई।

रानी घोड़े पर सवार होकर सब मोर्चों को सम्भालने के लिये चल दी। चौथे पहर तक स्त्री तोपचियों ने दृढ़तापूर्वक कार्य किया। रात को भी उन्होंने कार्य करना था। सागरसिंह अपने एक नायक के साथ खण्डेराव फाटक पर कार्य कर रहा था। सागर खिड़की पर बरहामुद्दीन नाम का एक बुन्देलखण्डी पठान कार्य कर रहा था। इसी खिड़की पर पीरअली था जो अंग्रेजों से मिला हुवा था उसे बरहामुद्दीन का आना अच्छा न लगा। विवश होकर चला गया। इसी धूर्त पीर अली ने धोखा दिया। जिसका पहले रानी को पता नहीं था। यह पीर अली ह्यू रोज से गुप्त मोरी से निकल कर मिला। ह्यू रोज ने पीर अली को किले के किसी एक फाटक पर रहने वाले रानी के एक तोपची को अंग्रेजों से मिलने के लिये कहा। और पीर अली ने दुल्हाजू को इस कार्य के लिये तैयार करके अंग्रेजों से जागीर का लोभ देकर मिला लिया।

दुल्हाजू ने फाटक सोंपने का बचन जागीर के लोभ में दे दिया। इसका कुछ सन्देह बुन्देलखण्डी पठान बुरहामुद्दीन को हो गया। इसकी सूचना उसने रानी को दे दी। महारानी कार्यबाहुल्य से सारी बात को ध्यान से सुन नहीं सकी। अतः यह विश्वासघात ही झांसी के पतन का कारण बना। इसका विवरण आगे आयेगा।

धूर्त विश्वासघाती पीर अली ने रोज को जो स्थान मोर्चा लगाने के लिए बताया था उसी स्थान पर रोज ने तोपें लगाकर तोपें छोड़नी आरम्भ की। उससे शहर का विध्वंस होने लगा। सर्वत्र शहर में आग लग गई। लोग भूखे प्यासे मरने लगे। महारानी स्वयं वहाँ पहुँची, आग बुझाई और लोगों को उत्साहित किया। रानी की आज्ञानुसार गुलाम गोस पश्चिमीं बुर्ज पर पहुँचा। तोपें ठीक जंचाकर दूर-बीन से लक्ष्य साधकर तोप में पलीता दिया कि उधर अंग्रेजों के तोपची मारे गये। तोपें उलट गईं। तोपों का उधर आना बन्द हो गया।

गोस ने झुक कर रानी को प्रणाम किया। रानी ने सोने के कड़े मंगवा कर गौस को अपने हाथ से पहनाये। फिर कुमक बदली, स्त्रियों ने तोपें सम्भालीं भीषण गोला बारी शुरू कर दी। रोज ने दूरबीन से देखा और कहा ओह स्त्रियाँ तोप चला रही हैं स्त्रियाँ गोला बारूद ढो रही हैं। कुछ खाना और पानी बाँट रही हैं टूटी हुई दिवारों की ओर कंगूरों की मरम्मत कर रही हैं। इतनी चतुराई से इतनी तीव्रगति से भारतीय देवियों को कार्य करते आज देखा, आश्चर्य होता है। पेड़ों के बीच में कुछ स्त्री-पुरुष कार्य कर रहे हैं, अंग्रेजी फौज का एक गोला उनके बीच में पड़ा। धूल उड़ी। किन्तु फिर भी वे सब वहीं के वहीं कार्य करते रहे। रोज ने कहा "रानी "जौन आफ पार्क' के समान जान पड़ती है। "इसे जीवित पकड़ना चाहिए': एक दूसरे अंग्रेज स्टुअर्ट ने कहा। उस समय उन्हें अपना मोर्चा खराब होने की सूचना मिली। दोनों काम पर लग गये।

रोज की आज्ञा से दक्षिण बुर्ज से जोरसे हमला किया गया। अंग्रेजों का तोपखाना भयंकर आग उगलने लगा बख्शिन ने जवाब पर जवाब दिया, उसके घनराज तोपखाने ने अंग्रेजों का संहार कर दिया। बहुत सी अंग्रेजीं सेना मारी गई, उन्हें हारकर वहाँ से लौटना पड़ा। किन्तु अंग्रेजी तोप के गोलेने

बख्शिन का कन्धा तोड़ दिया। वह बेहोश होकर गिर पड़ी। बख्शी को पूर्वी बुर्ज पर समाचार मिला निर्मम होकर बख्शी ने उत्तर दिया "उससे बढ़कर झांसी और झांसी की रानी हैं।" शाम को देखूंगा। तब तक दाह संस्कार न करना। बख्शी अपने कार्य पर जुट गया। उसने एक बार आकाश की ओर देख कर गीता के कृष्ण को याद किया और तोपों को दुगनी तेजी से चलाने लगा। 'रोज' के पूर्वी मोर्चे को बुझा दिया। बख्शिन चली गई, किन्तु बख्शी का पलीता सुलगता और आग देता रहा। रानी तुरन्त आई, बख्शिन के रक्तमय शरीर को गोद में लिया। अंग्रेजों के गोले दीवारों से टकरा-टकरा कर दीवारों को तोड़ रहे थे। रानी का गला रुद्ध था एक शब्द नहीं निकला। मुन्दर ने दूरबीन से देखा घबरा कर दौड़ी हुई रानी के पास आई, घबरा कर बोली "बाई साहब रानी के मुख से एक शब्द निकला "गौस" मुन्दर दौड़ कर गौस को बुला लाई।

गौस ने देखा झाँसी की रानी धूल में बैठी बख्शिन के शव से लिपटी हुई है। गौस ने कहा "यह क्या है सरकार, न जाने कितने सरदार कुरबान होंगे? हजूर हम लोगों को समझाती हैं कि स्वराज्य की लड़ाई किसी के मरने जीने पर निर्भर नहीं है और फिर बख्शिन तो अमर हो गई है। उठिये देखिये, उस वीर पुरुष बख्शी को। वह अपने ठिये पर अटल है। आप ऐसा मोह करेंगी तो हम लोग गोरों से कितने दिन लड़ सकेंगे? आप यहां से हट जायें दीवान खास में बैठकर आज्ञा देती रहें। मैं इनको मजा चखाता हूं।"

रानी, बख्शिन के शव का उचित प्रबन्ध करके चली गई। गौस ने घनराज को सम्भाला। तीन वारों में ही अंग्रेजों के मोर्चे का तोपची, तोपखाना और सब कार्य करने वाले स्वाहा हो गये। गुलाम गौस ने कहा यह तो मेरे साथी सरदार के मारने का बदला हुआ। अब कुछ प्रसाद भी देता हूँ। अंग्रेज सैयद फाटक पर गोलाबारी कर रहे थे। उधर मन्दिर थे। खुदाबख्श मन्दिर टूटने के डर से उत्तर नहीं दे सकता था। गौस ने घनराज तोप का मुहरा मोड़ा किन्तु वहाँ से सीध नहीं बैठती थी। गौस ने रघुनाथसिंह वाली बुर्ज पर पहुंच कर विनय पूर्वक तोप माँगली। रघुनाथसिंह ने भी कहा मन्दिर नहीं बच सकते। दूरबीन लेकर गौस ने तोप के ठिये को सम्भाला। लक्ष्य लेकर गोला छोड़ा अंग्रेज तोपची मारे गये तोप नष्ट हो गई, मन्दिर बच गये। उसी समय गुलाम गौस को रानी ने अपना तौल भर चान्दी का तोड़ा पुरस्कार में दिया। सन्ध्या समय बख्शिन के शव का दाह हुआ। रात हो गई लड़ाई शान्त हो गई। बख्शी हर्षोन्मत्त था उसके मुख से "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः "यह महावाक्य निकला, जिसको रानी समझती थी और कोई समझा हो वा न समझा हो।

अगले दिन भी लड़ाई इसी प्रकार चलती रही। सायंकाल सन्ध्या के समय किले के पश्चिमी मोर्चे का तोपखाना बन्द हो गया। कारण था दीवार का टूट जाना। दीवार टूट जाने से तोपखाना दिखलाई पड़ने लगा। कठिनता से तोपों को आड़ में किया गया। झार पहाड़ी की ओर से एक दस्ता झपटा खण्डेराव फाटक पर सागरसिंह था। सागरसिंह ने तोपें चलाईं वह शीघ्रता करता था, निशाना ठीक न बैठता था। सागरसिंह साथियों सहित रस्से की सीढ़ी लगाकर धड़ा-धड़ सौ आदमी नीचे उतर गये। ये सपाटे से बगल वाली टोडियों की ओट में पहुंच गये। जैसे ही अंग्रेजी दस्ता आया इन लोगों ने बन्दूकों की बाढ़ छोड़ी। दस्ते ने भी उत्तर में बन्दूकें छोड़ी किन्तु सागरसिंह की टुकड़ी की कोई हानि नहीं हुई और अंग्रेजों का दस्ता छिन्न-भिन्न हो गया। वह इकट्ठा होने को ही था कि सागरसिंह अपने साथियों सहित तलबार

लेकर पिल पड़ा। अंग्रेजी दस्ता सब नष्ट हो गया। किन्तु कुंवर सागरसिंह भी खण्डेराव के फाटक के पास मारा गया। उसके कुछ आदमी बच गये। वे भीतर वापिस आ गये। रात को रानी को सागरसिंह का समाचार मिला। सागरसिंह और उसके दल की वीरता ने उस दिन झांसी का किला बचा लिया। रानी की आँखों के आगे बरवासागर की घटना का पूरा चित्र खिंच गया। रानी ने मन में कहा "जिस देश में सागरसिंह सरीखे लोग जन्म लेते हैं वह स्वराज से बहुत दिनों तक वाञ्चित नहीं रह सकता।"

रानी ने दीवार की मरम्मत अपने आगे कराई कारीगर कम्बल ओढ़कर दीवारों की मरम्मत करने लगे। रात भर में दीवार को पूर्ववत् करदिया जैसे इसका कुछ बिगड़ा ही नहीं था। फिर अत्यन्त भीषण युद्ध हुआ। दीवार टूटी, उसकी दिन में ही मरम्मत कर दी गई। मरम्मत का कार्य पुरुष, तथा पत्थर चूना इत्यादि देने का कार्य स्त्रियां करती थीं। गोले पड़ रहे थे किन्तु सब कार्य पूर्ववत् चल रहा था। न तो झांसी की हिम्मत टूटती थी, न ही झांसी की रानी की। जैसे-जैसे संकट बढ़ता वैसे-वैसे इनका साहस भी बढ़ता था। एक गोला भीतर वाले गणेश मन्दिर पर पड़ा, मन्दिर टूट गया। दूसरा शंकर किले में गिरा उस समय आठ-दस ब्राह्मण जल भर रहे थे, उनमें से आधे मर गये, शेष भाग गये। ये गोले पश्चिमी मोर्चे से आये थे। पानी की कमी पड़ी ३-४ घण्टे लोगों को प्यासा रहना पड़ा। पश्चिमी मोर्चा सम्भाला गया। अंग्रेजी मोर्चे का मुँह बन्द हुआ तब पानी की व्यवस्था हुई। रात हो गई। युद्ध भी कुछ शान्त सा हुआ।

दोनों पक्ष थकावट से चूर थे। रात को पीर अली, दुल्हाजू को गुप्त मोरी के द्वारा रोज के पास ले गया। ह्यू रोज ने दो गांव जागीर में सदा के लिये देने का वचन दिया। दुल्हाजू ने ओछों फाटक अंग्रेजों को सौंपने का वचन गङ्गा जी की शपथ खाकर दिया। इन्हीं धूर्तों के विश्वासघात से झांसी का दुर्ग अंग्रेजों के हाथ में आया। इस धूर्तता को बरहामुद्दीन पठान समझ गया था। उसने पीरअली के विषय में रानी को सूचना दी और रानी को सावधान किया कि पीरअली की ओर से धोखा होने वाला है। उसके साथ कोई दीवान भी गया था मैं दीवान साहब को पहचान नहीं सका। ये दोनों अंग्रेजों की फौज से लौटकर आये जब ये दोनों अलग हुए तब पीरअली ने कहा दीवान साहब "लाल झंडे वाली बात याद रखना।" हजूर इस कार्यवाही में दगा है. द्रोह है, खतरा है, यह बरहामुद्दीन पठान ने महारानी को कहा। महारानी रात को जागी थी सैनिकों का प्रबन्ध करना था। मार्ग की टोका टाकी सहन नहीं हो रही थी। घोड़ा आगे बढ़ने के लिये लगाम चबा रहा था और पांव पटक रहा था। रानी ने बरहामुद्दीन को रुखाई से कहा "अपना काम सम्भालो तुम अपना काम न करके व्यर्थ औरों के पीछे फिरते हो।" रानी जवाहरसिंह के साथ आगे बढ़ी। जवाहरसिंह ने विनय की कि "सरकार यह पठान मूर्ख नहीं है पीर अली की जांच होनी चाहिए" रानी ने जवाहरसिंह को कहा आप पता लगाना कि यह दीवान साहब कौन है जो पीरअली के साथ गया। पीरअली इतना धूर्त था रानी के आगे इधर उधर की बातें बनाकर ठगी करता रहता था। यह पीर अली अंग्रेजों का जासूस था। जो वेश्यापुत्र अली बहादुर खां का नौकर था। यह अली बहादुर खां झांसी से नत्थेखां की लड़ाई के समय भाग गया था। पीरअली झांसी में रह गया था। रानी का चालाकी से विश्वासपात्र बना हुआ था। झांसी के सब समाचार अंग्रेजों के पास तथा अली बहादुर के पास भेजता रहता था।

झांसी वालों को इसका पता नहीं चला। इसी ने अंग्रेजों से मिलकर विश्वासघात किया। दुल्हाजू को लोभ देकर इस नीच कर्म के लिये तैयार करने वाला यही पिशाच था। रानी ने मोतीबाई

से बरहामुद्दीन वाली बात कही। मोतीबाई बोली पीरअली बेईमानी कर सकता है, उसके साथ में दीवान दुल्हाजू गये होंगे। आप उनसे रुष्ट हुई थीं। सुन्दर को रानी ने सावधान कर दिया। वह थोड़ा खा पीकर ओछी फाटक पर पहुँच गई। उस दिन भी घन घोर युद्ध हुआ तथा दोनों ओर विकट नर-संहार। दुल्हाजू ने ओछी फाटक से तोप अच्छी नहीं चलाई और एक गोला महल के सामने जहां बारूद बनता था आकर गिरा। बारूद जलकर धड़ाके के साथ २५, ३० स्त्री पुरुषों को अपने साथ हवा में उड़ा ले गई। उनके अंगों का भी पता न चला कि कहां गये। इस घटना से कुछ निराशा छाई हुई थी सन्ध्या के समय रानी शहर में गई। टूटी दीवारों की मरम्मत कराई गई, रात हो गई थी, किन्तु गोलाबारी आज और दिनों की अपेक्षा अधिक हो रही थी। रानी महादेव के मन्दिर में गई। ध्यान के पश्चात् कुछ देर के लिये लेट गई। एक झपकी आई और उन्होंने एक स्वप्न देखा।

"एक गौरवर्ण युवती, सुन्दर आकृति वाली, बड़े बड़े काले नयन, लाल रङ्ग की साड़ी का आंचल बांधे हुए है। आभूषणों से लदी हुई है। वह स्त्री किले के बुर्ज पर खड़ी हुई अंग्रेजों के लाल गोलों को अपने कोमल करों में झेल रही है, कह रही है लक्ष्मीबाई देख इन गोलों को झेलते-झेलते मेरे हाथ काले पड़ गये हैं। चिन्ता मत कर स्वराज्य की देवी अमर है।" रानी की आंखें खुलीं, भयङ्कर गोलाबारी हो रही थी और होती रही। रानी को न कोई चिन्ता थी न थकान। झटपट जीने से उतर कर अपने रक्त का सम्वाद सेनापति और मुख्य-मुख्य दलपतियों को सुनाया। प्रातः काल होते ही स्वप्न का सम्वाद सर्वत्र किले और नगर में फैल गया। सब स्त्री पुरुषों में उत्साह भर गया। पहले दिन की अपेक्षा भी अधिक घनघोर युद्ध हुआ। पीर अली और बरहामुद्दीन के मामले की जांच न हो सकी। किन्तु यह पता चल गया कि दुल्हाजु ने अनमने होकर कार्य किया। मुन्दर और रघुनाथ सिंह दोनों मिलकर बहुत अच्छा कार्य कर रहे थे। मुन्दर भोजन भी वहीं ले आई वहीं बैठ कर भोजन किया एक गोला उनके बुर्ज के पास पड़ा किन्तु दोनों बच गये। दोनों निर्भय होकर कार्य करते रहे।

महारानी लक्ष्मीबाई ने तात्यां को अपनी सहायता के लिये बुलाया था अंग्रेजों से युद्ध आरम्भ होने से पहले ही जूही और काशीबाई मरदाना वेश में घोड़े पर सवार होकर रानी का पत्र लेकर कालपी गई थीं। रानी का पत्र मिलते ही तात्यां ने सेना को चलने की तैयारी की आज्ञा दी साथ में बीस हजार सेना लेकर प्रस्थान किया। काशीबाई जूही भी साथ गई। तात्यां टोपे ने वीरता पूर्वक संग्राम किया। किन्तु उसकी हार होगई। वह सेना सहित कालपी लौट गया। उसकी चारों तोपें बेतवा के रेत में फंस गईं। वहीं छोड़नी पड़ी। काशीबाई का भी इस युद्ध में बलिदान हो गया।

इस दिन अंग्रेजों की सेना तात्यां से लड़ रही थी। अंग्रेजी तोपों के गोले अस्त व्यस्त पड़ रहे थे। झांसी वाले ठीक नहीं समझ सके कि आज क्या कारण है अंग्रेज ठीक लड़ाई नहीं कर रहे। जब पता चला कि अंग्रेज सेना तात्यां से लड़ाई कर रही है और तात्यां की हार और अंग्रेजों की विजय हो गई इससे झांसी में गहरी निराशा फैल गई। अंग्रेज काशीबाई के शव को लक्ष्मीबाई का शव समझते रहे थे और बड़ी खुशियाँ मना रहे थे। किन्तु सायंकाल काशीबाई का शरीर पहचाना गया। ओछी के लोग महारानी को खूब जानते थे। "आश्वासन दिया कि यह रानी का नहीं है।" काशी का शव जला दिया गया। जवाहरसिंह ने रानी को शहर की वार्ता सुनाई रानी ने अपने आदमियों को समझाया। वह हँसते हुए बोली "आप लोगों को घबराना नहीं चाहिए। पेशवा की सेना आज लौट गई कल फिर आ

सकती है तात्यां असाधारण सेनापति है उनके अधिकार में असंख्य सेना और तोप हैं। मान लो पेशवा की सेना नहीं भी आती फिर क्या हम हथियार डालकर झांसी का मुख काला करेंगे ? अपने पूर्वजों का स्मरण करो, स्वराज्य की स्थापना में कितने खप गये। स्मरण रखो, कर्म करने का ही केवल हमें अधिकार है, फल पर नहीं। 'जीवन' कर्त्तव्य पालन का दूसरा नाम है। जो लोग अंग्रेजों से वा मरने से डरते हों वे हथियार रख कर आराम से घर पर चले जायें। जो स्वराज्य के लिए प्राण विसर्जन करना चाहते हों वे मेरे पास रहें।" रानी कुछ मुस्कराई, सबकी ओर देखा, सबने लड़ने मरने का आश्वासन दिया। रानी ने भी सब को पुरस्कृत किया। उस रात रानी झांसी के किले से भीषण गोलाबारी हुई। रोज की सेना ने बहुत हल्का उत्तर दिया। यदि उस रात झांसी की सेना फाटक खोलकर टूट पड़ती तो रोज की सेना सारी नष्ट भ्रष्ट हो जाती। रानी सब मोर्चों पर पहुंचती थी और सब को उत्साहित करती थी। उसी रात एक गोला महल पर गिरा, महल के दो खण्ड नष्ट हो गये। महारानी ने वहाँ पहुँचकर सब को उत्साहित किया। गुलाम गौस सावधानी से कार्य कर रहा था। लालता ब्राह्मण मारा गया। झांसी के गोल अन्दाजों को जब महल की घटना का पता चला तो वे अधिक सावधान हुए और ठीक लक्ष्य लेकर तोपें दागी। अंग्रेजों के तोपखाने बन्द हो गये। फिर सब कार्य किले में भली भाँति चालू हो गये। प्रातःकाल होते ही वराहमुद्दीन ने एक पत्र महारानी को दिया वह, उसका त्यागपत्र था उसमें लिखा था "मेरा विश्वास नहीं किया गया, मुझ को उलटा डाटा फटकारा गया, मेरा मन कार्य में नहीं लगता। मैं नौकरी छोड़ता हूँ। हथियार पीर अली को दे दिये हैं। पीरअली और दुल्हाजु से होशियार रहियेगा" रानी को क्रोध आया किन्तु संयम करके बोली "ठीक समय पर तुम जैसे लोग ही काम छोड़ते हैं। जाओ हटो।" चिट्ठी रानी ने अपने अङ्गरखे की जेब में डाल ली। दूसरे दिन ऐसा भयङ्कर युद्ध हुआ कि रोज की सेना घबरा गई। लड़ाई दिन रात चलती रही। रानी ने दुल्हाजु और पीर अली से पृथक् पृथक् बातें की। परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध उल्टी सीधी बातें करने लगे। रानी को उनकी बातों से संशय तो हुआ किन्तु फिर मोर्चे को सम्भालने चलीं, बात का निर्णय नहीं कर सकीं। यही झांसी का दुर्भाग्य हुआ। रानी सब फाटकों पर घूमती हुई सबको उत्साहित करती हुई आगे बढ़ी। उन्नाव फाटक पर पूरन कोरी अन्य कोरियों के साथ तोप खाने पर कार्य करता था। उसकी स्त्री झलकारी भी कार्य करती थी। कोरियों को शाबाशी दी। शहर, बाजार सब सम्भाल कर रानी लौट आई। प्रातःकाल हुआ, रानी ने सब सिपाहियों को सन्देश भेजा कि सेना के लिए आज मैं स्वयं अपने हाथसे कलेवा तैयार करूँगी। खूब खाओ और डट कर लड़ो।" यह सुनते ही थके हारे और अर्धमृत सैनिकों में जीवन आ गया। सबकी छातियाँ फूल उठीं। रानी ने भोजन बनाने में सहयोग दिया। किले के भीतर वाले सैनिकों और सरदारों को रानी ने अपने हाथ से ठीयों पर जाकर कलेवा वितरित किया। सब सिपाही उन्मत्त हो गये। रानी के हाथ के भोजन ने सारी सेना में जीवन फूंक दिया, प्राणों की बाजी लगा कर लड़ने लगे। रानी ने फिर पीर अली की खोज की। वह ढूंढने पर भी नहीं मिला। रानी समझ गई पीर अली झूठा और विश्वास घातक है, किन्तु यथार्थ बात का पता नहीं लगा। इसी चिन्ता में थी कि अंग्रेजों ने चारों दिशाओं में गोला बारी प्रारम्भ कर दी। अंग्रेज परकोटे की दीवार को तोड़ कर झांसी के किले में घुसना चाहते थे। किन्तु झांसी वालों का निश्चय था कि जब तक शरीर में रक्त है तब तक शत्रु का पग झाँसी के भीतर न पड़ने देंगे। दोनों तरफ की तोपें आग उगल रही थीं, परकोटे की बुर्जों की मार से अंग्रेजी पलटन बिछुड़ने लगी। भागी, पैर उखड़ गये। लेकिन एक दस्ता ओछी फाटक की ओर बढ़ गया। सैंयर फाटक की ओर भी

दूसरा अंग्रेजी दस्ता आगे बढ़ा। अंग्रेजी तोपखाने ने भीषणतर गोलाबारी आरम्भ की। रानी और मोतीबाई ने दूरबीन से देखा, ओछी फाटक की सामने वाली टेक के पीछे लाल झण्डा उठा और ओछी फाटक पर का तोपखाना कुछ धीमा पड़ गया। मोतीबाई ने उधर जाना चाहा। खुदाबख्श सैंयर फाटक पर था मोतीबाई को उसने आगे नहीं बढ़ने दिया। एक अंग्रेज दस्ता सीढ़ी लगा कर चढ़ना चाहता था खुदाबख्श ने तोप, बन्दूकों की बाढ़ दे दी और मोतीबाई को पत्थर, ईंटें, लक्कड़ इन लोगों के ऊपर डालने का आदेश दिया। मोतीबाई ने आदेशानुसार वही कार्य किया। अंग्रेज गिरते पड़ते लौट गये। अंग्रेज पलटन को बिगुल बजाकर इकट्ठा किया गया। रोज, जीवन शाह की टोरियों के पीछे घोड़े पर था। रोज ने सबको मरने मारने के लिये उत्साहित किया। रोज की आज्ञा से उसके चार युवक लैफ्टीनैण्ट सैंयर फाटक के पास, जहाँ दीवार पहले धंस गई थी, उस स्थान के झांसी के सैनिक मर चुके थे, वहाँ अंग्रेज अफसर अपने शरीर की सीढ़ी बनाकर चढ़ने लगे। शेष दोनों उन पर से ऊपर चढ़ गये। मोतीबाई तलवार लेकर दोनों पर टूट पड़ी और दोनों को ही लड़ते हुये समाप्त कर दिया। नीचे वाले दोनों अफसर पत्थर की आड़ में छिप गये। इतने में झाँसी के सिपाही आगये। खुदाबख्श के तोपखाने के आगे बढ़ते हुये दस्ते को समाप्त कर दिया। वे दोनों अंग्रेज लैफ्टिनैन्ट भी बन्दूक की मार से मारे गए आज इस मोर्चे पर अंग्रेजी सेना की दूसरी हार हुई। उत्तरी फाटकों पर भी कोरियों, कच्छियों और ठाकुरों की वीरता के आगे टिक न सके, हार खाकर पीछे हटे। रानी ने किले के ऊपर से देखा, ओछी फाटक का तोप खाना काम नहीं कर रहा। यही धूर्त दुल्हाजु उस लाल झंडे को देख कर देश से विश्वासघात कर रहा था।

रानी ने रामचन्द्र देशमुख को तुरन्त वहाँ भेजा किन्तु वहाँ तक पहुंचने में समय चाहिए था। दुल्हाजु ने लाल झण्डे को देख कर केवल बारूद भर कर तोप चलाई। सुन्दर उस से हट कर ऊंची बुर्ज से तोप चला रही थी। उसके साथी गोल अन्दाज भर चुके थे। केवल उनकी तोप चल रही थी। उसने दुल्हाजु के विश्वासघात को भांप लिया। सामने की टेक के पीछे गोरी पलटनें टिड्डीदल की भाँति टूट पड़ीं। और घोष करती-हुई विश्वास के साथ ओछी फाटक की ओर दौड़ीं। दुल्हाजु एक लोहे का छड़ लेकर बुर्ज के नीचे तुरन्त उतरा। सुन्दर को समझने में एक क्षण की भी देर न लगी। उसने तोप छोड़ दी। केवल तलवार उसके पास थी। तलवार खींच कर वह भी बुर्ज के नीचे उतरी। वहाँ से ओछी फाटक कुछ दूर पड़ता था। सुन्दर के नीचे उतरने से पहले धूर्त दुलहाजु फाटक के पास पहुंच चुका था। फाटक पर मोटी सांकलों और कुन्दों में मोटी झट वाले ताले पड़े हुए थे। कुन्जियाँ किले में थी किन्तु दुल्हाजु के हाथ में लोहे की मोटी छड़ थी। उसने कुछ भी विलम्ब नहीं किया। उछल-उछल कर ताले में छड़ डाली, तड़ाक से ताला टूट गया। दूसरे और तीसरे में ताले सब टूट गये। दो सांकलों को भी तोड़ दिया। और तीसरी सांकल भी खोल दी। फाटक केवल भिड़े रह गये। वह उनको खोल नहीं सका था कि इतने में नंगी तलवार लिए सुन्दर आ पहुँची।

देशद्रोही ? नरक, के कीड़े ? सुन्दर ने कड़क कर कहा-'तू अंग्रेजों से कुछ नहीं पाएगा।' सुन्दर दुल्हाजु पर टूट पड़ी। उसकी तलवार का वार दुल्हाजु ने लोहे की छड़ पर झेला। तलवार झन्नाकर बीच से टूट गई। तलवार का टुकड़ा जो सुन्दर की मुट्ठी में बचा था। उसी को तान कर सुन्दर फिर दुल्हाजु पर उछली। उस धूर्त ने छड़का सीधा हूल दिया वह सुन्दर के बायें वक्ष पर लगा। चोट की परवाह न करके फिर सुन्दर ने वार किया, किन्तु उस नीच ने सुन्दर के पेट में छड़ अड़ा दी और पीछे हट गया। उधर गोरों ने धक्के से फाटक खोल लिया।

सुन्दर के मुख से हर हर महादेव निकला था कि एक गोरे की गोली ने वीराङ्गना देवी सुन्दर को अमर कर दिया। गोली उसके सिर पर लगी थी। अंग्रेज अफसर के इशारे से दुल्हाजु बच गया। गोरे बन्दूकें नीची करके टिड्डी दल की भांति अन्दर घुस गए। अफसर सुन्दर को रानी समझता था। दुल्हाजु के बताने पर उसे पता चल गया। अंग्रेज अफसर ने वीर सैनिक के समान सुन्दर का आदर किया। अब भी उसके हाथ में वह टूटी हुई तलवार थी उसके शव को अफसर की आज्ञा से दो गोरों ने पत्थरों के नीचे दबा दिया। जहाँ उनके अपने भी अनेक अंग्रेज सिपाहियों के शव दबाये गये थे।

इसके पश्चात् यह सब शहर में घुस गये। रोज ने दुल्हाजु को दो गाँव जागीर के इनाम की घोषणा कर दी। दुल्हाजु के इस नीच कृत्य का समाचार शीघ्र चारों ओर फैल गया। फिर रोज ने सैयर फाटक को तोड़ने, नगर में घुसने और क्रान्तिकारियों का नाश की आज्ञा दी। खुदाबख्श मारा गया। मोतीबाई ने दीवार पर चढ़ने वाले अंग्रेज को समाप्त किया। इतने में रामचन्द्र देशमुख वहाँ पहुंचा। वह घोड़े पर खुदाबख्श के शव और मोतीबाई को बैठाकर किले पर चढ़ गया। उसके किले में आते ही किले का फाटक बन्द हो गया। लाश को महल के पास रखा। रानी ने मोतीबाई को उत्साहित किया। उनकी वीरता की प्रशंसा की। मोतीबाई ने कहा—महारानी जी किला हमारे हाथ में सुरक्षित है। मैं सब प्रबन्ध करती हूँ। रानी ने कुंवर खुदाबख्श की लाश को महल के पास ही दफनाने को कहा। देशमुख ने पूछा सुन्दर कहाँ है? मोतीबाई ने कहा—"ओर्छी फाटक पर लड़ती हुई मारी गई। दुल्हाजु ने देशद्रोह करके फाटक खोल दिया।" रानीने होंट सटाये. धीरे से बोली "जीवन में यही बड़ा भारी धोखा खाया" फिर उन्होंने जोर से कहा "बराहमुद्दीन ने ठीक कहा था, उसके साथ अन्याय हुवा। कहाँ है वह? कुछ जानते हो देशमुख?" देशमुख ने उत्तर दिया—"पता नहीं सरकार" बराहमुद्दीन का पत्र अभी रानी की जेब में ही पड़ा था। खुदाबख्श के शव के लिये खुदकर कब्र तैयार हो गई।" रानी ने दूरबीन से देखा शहर में भयङ्कर संग्राम हो रहा था। रानी ने आदेश दिया "बाहर निकल लड़ो, गोरों को शहर से बाहर निकालो। गोल अन्दाज अपने ठीयों पर कार्य करते रहें। बख्शी भी रानी की आज्ञा से साथ गया। रानी फुर्ती से घोड़े पर सवार हो किले से बाहर हो गई। उसके साथ १५ सौ पठान और बुन्देल खण्डी सैनिक थे। पीछे से भोपट कर भी गया। रानी झञ्झावात की भांति दक्षिण की ओर झपटी। रानी का छापा इतना प्रचण्ड था कि अंग्रेजी सेना भाग खड़ी हुई थी।

रानी जिधर जाती थी, अंग्रेजी सेना भागती दिखाई देती थी, गोरी सेना छिपकर गोली चला रही थी। सिपाही कुछ अटक रहे। रानी उसी ओर बढ़ी। रानी ने देखा एक सिपाही किसी मकान में निकल पड़ा और अकेले ही कई गोरों से भिड़ गया। उसने ऐसी तलवार चलाई कि कई गोरे यमलोक पहुंचा दिये। कुछ और गोरे आ गये वह अकेला सैनिक घिर गया।

रानी ने अपना घोड़ा तेज किया। पीछे पीछे उनके सिपाही दौड़े। रानी के पहुंचते पहुँचते, वह सिपाही और गोरे लड़ते लड़ते पंचकुइयों से नीचे की ओर चले गये। उस अकेले सिपाही ने फिर कई गोरों को समाप्त किया। किन्तु अकस्मात् उस पर कई वार पड़े और वह गिर गया। इतने में रानी भी सैनिकों सहित पहुँच गई। रानी ने पास जाकर देखा—बरहामुद्दीन था। उसके मरने में कुछ क्षण शेष थे। दुखी था। रानी घोड़े से उतरी। बरहाम के सिर पर हाथ फेरा। बरहाम ने पहचान लिया। आँखें फाड़ीं। पूरा बल लगाया, लेकिन कठिनाई से बोला--'हजूर माफी'। रानी ने कहा-"तुम सच्चे सेवक हो माफ किया" बहराम फिर जोर लगा कर बोला—"सरकार जान नहीं निकलती। मेरी चि···ट्ठी।" रानी ने जेब से

उसके त्यागपत्र वाली चिट्ठी निकाली। 'यह लो' रानी बोली। बरहाम ने बड़ी कठिनाई से कहा "फाड़ डालिये तब प्राण निकलेंगे।" रानी ने तुरन्त चिट्ठी के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। बरहाम के मुख पर आनन्द की छाप लग गई। बरहाम अल्लाह का नाम लेकर परलोक सिधार गया। रानी ने उसकी उसी स्थान पर कब्र बनवा दी। रानी फिर गोरों पर झपटी, गोरे भागे। सैनिक गोरों पर झपटे। रानी को आगे जाने से भोपटकर और गुलमुहम्मद पठान सरदार ने रोका। क्योंकि मकानों की आड़ से गोरे गोली चला रहे थे। झाँसी के सिपाही लड़ते हुए हताहत हो रहे थे। रानी गुलमुहम्मद और तीन सौ पठान, भाऊ और नाना भोपटकर को लेकर किले के भीतर गई। किले के फाटक बन्द कर लिए गये। झाँसी के शेष सब सैनिक लड़ाई में कट मरे।

गोरों ने शहर के सब फाटक बन्द कर लिये। पाँच वर्ष की आयु से लेकर ८० वर्ष तक के जितने भी पुरुष मिले सब का कत्ल प्रारम्भ कर दिया। बाजार में आग लगा दी। सब लोग मारे गये। स्त्रियाँ अपने सतीत्व की रक्षार्थ कुओं में गिर कर मर गईं। गोरों ने घर-घर घूम कर लूट तथा कत्ले आम की। महल और अस्तबल पर भयङ्कर युद्ध हुवा। जब झाँसी के सैनिक समाप्त हो गये। फिर अंग्रेजों ने महल में भी आग लगा दी। नाटकशाला जला दी गई। महल के सामने का बहुमूल्य पुस्तकालय भी जलाकर भस्मसात् कर दिया। कभी बर्बर युग में रोम सिकन्दरिया और राजगृह में विद्या के शत्रु यवनों ने भी ऐसा नहीं किया था। राजमहल, अस्तबल फिर बन सकते थे। किन्तु पुस्तकालय? वेद, शास्त्र, पुराण, काव्य, इतिहास इत्यादि संस्कृत के तथा अरबी फारसी के अनेक हस्त-लिखित ग्रन्थ जिनकी प्रतिलिपि करने के लिये देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर से विद्या व्यसनी आते थे, उसे फिर कौन उत्पन्न करेगा? रानी का सिर यह देख कर घूमने लगा। जो कभी किसी आपत्ति से भी विचलित नहीं होती थी वह जलते हुए पुस्तकालय को देख कर मूर्छित होने को हुई। मुन्दर साथ थी, उसने रानी को सम्भाल लिया। जल मंगवा कर रानी को पिलाया गया और प्रयत्न पूर्वक मूर्च्छा को दूर किया।

शहर में कत्ले आम हो रहा था। झाँसी की दुर्गति को देख कर जिसका वक्षस्थल वज्र का था और हाथ फौलाद के थे, जिसके कोष में निराशा का शब्द न था। जो भारतीय नारीत्व का गौरव और शोभा थी। वह रोई। वह हिन्दुओं की दुर्गा, झाँसी की दुर्दशा देख कर रोई। कठिनाई से रोना बन्द हुवा। देशमुख ने सूचना दी कि कुंवर गुलाम गौस खां शत्रु की गोली से मारे गये। रानी सिंहनी की भाँति उछलकर खड़ी हो गई आज्ञा दी भाऊ को उनके स्थान पर भेज दो। लाश महल के पास ले आओ। मोती-बाई को भी एक तोपखाने पर कार्य करने के लिए भेज दिया। वह यहाँ कार्य करने लगी कि एक अंग्रेज की गोली से मोती बाई भी जख्मी हो गई। उधर गुलामगौस की लाश आई इधर एक सिपाही मोतीबाई को उठाकर लाया। वह अचेत थी। सुन्दर तोपखाने को सम्भालने चली गई, किंतु उसे जाते-जाते रानी ने रोक लिया। मोतीबाई का सिर रानी ने अपनी गोद में लिया। मोतीबाई ने रानी की गोद में मरने का सौभाग्य प्राप्त किया। तीन कबरों में पृथक्-पृथक् तीनों को दफना दिया। रघुनाथसिंह ने तीनों को तोप की सलामी दी। कबरों के ऊपर चबूतरा बना दिया गया। फिर रानी ने स्नान किया, वस्त्र बदले। वेष वही पुरुष सैनिक का था। महल के नीचे खण्ड में मुख्य मुख्य-लोगों को इकट्ठा किया। सब की सम्मति पूछी। नाना, भोपट की सम्मति से अन्तिम श्वास के रहते स्वराज्य का युद्ध लड़ना है यही निश्चय हुआ।

नाना भोपट के उत्साहित करने से रानी ने अंग्रेजों की सेना को लड़ते हुए चीर कर निकलने का

और कालपी पहुंचने का दृढ़ संकल्प किया रानी ने नाना भोपटकर के पैर छुए और प्रणाम किया कि यदि समस्त अंग्रेजों का मुझ को अकेले भी सामना करना पड़े, तो करूंगी। रानी ने कहा थोड़ा सा खा पी लो। जो लोग शस्त्र धारण नहीं कर सकते, वे गुप्त मार्ग से चले जायें। रानी की आज्ञा मानकर पुराने सेवक सेविकायें पैर छू-छू कर रो-रो कर वहां से चले गये। नाना भोपटकर भी चला गया। रानी मुन्दर ने कुछ देर महादेव के मन्दिर में ध्यान किया। मोरोपन्त ताम्बे रानी के पिता ने बहुत सा द्रव्य और जवाहर इकट्ठे किये और हाथी पर लाद ली। कुछ अशरफियाँ लोगों की कमरों पर बान्धी। रानी और मुन्दर पुरुष वेश में घोड़े पर सवार हुईं। रानी ने एक चादर से दामोदरराव को पीठ पर कसा और अपने तेजस्वी घोड़े को किले के उत्तरी भाग से निकलकर आगे किया। बख्शी ने गुप्त मार्ग से जाकर भाण्डेरी फाटक का प्रबन्ध अपने जिम्मे लिया। इसी फाटक से निकल कर कालपी पहुँचना था। रानी के पीछे-पीछे पठान, मुन्दर, जवाहरसिंह, रघुनाथसिंह इत्यादि थे। द्वार से निकलते ही किले को नमस्कार किया। झाँसी को नमस्कार किया। उत्तर दिशा को चली, मोरोपन्त का हाथी बीच में था।

सवार अधिक न थे। उनकी रक्षा के हेतु शेष सैनिक पैदल थे, नङ्गी तलवार लिए हुए। यह टोली भाण्डेरी फाटक की ओर अग्रसर हुई। कोतवाली के पास अंग्रेजी सेना से टक्कर हुई। रानी उच्च स्वर से "हर-हर महादेव" उच्चारण करती हुई उनको चीरती हुई, मुन्दर सहित निकल गई। पठान शत्रुओं से बड़ी वीरता से लड़े, बहुत से मारे गये। शेष बचे वह आगे बढ़े। रानी और उसके साथी द्रुतगति से भाण्डेरी फाटक के पास पहुंच गये। वहां बख्शी कोरियों को लिए अंग्रेजी फौज की एक टुकड़ी को तलवार के युद्ध में उलझाये हुए था, उधर से रानी की टुकड़ी पहुंची। जलते हुए मकानों के प्रकाश में थोड़ी देर विकट युद्ध हुआ। बख्शी ने फाटक खोल दिया और फिर अपने कोरी सैनिकों को लेकर अंग्रेजों पर टूट पड़ा। वह उसी फाटक पर हर-हर महादेव बोलता हुआ महारानी झांसी का जय घोष बोलकर लड़ता हुआ मारा गया। अपनी आंखों से रानी ने उसे देखा तथा उसने भी रानी को निकलते हुए देख लिया, समय धन्यवाद करने का भी नहीं था पठान भी खूब लड़े।

रानी थोड़े से साथियों सहित निकल गई। बचे हुए अंग्रेज भाग गये। कोरियों ने फाटक फिर बन्द कर लिया। आगे अञ्जेनी की टोरियों के पास अंग्रेज छावनी तथा ओछी की सेना थी। वहां रोक-टोक तथा लड़ाई भी हुई। महारानी के साथ केवल दस-बारह साथी रह गये और मुन्दर थी। यह टोली जब दस बारह मील निकल गई तब ठहरी। वहाँ रानी ने जवाहरसिंह को कटेली की ओर सेना संग्रह करने तथा फिर कालपी में मिलने की आज्ञा देकर भेज दिया। वह महारानी के पैर छूकर चला गया। रानी की टोली के साथ पठान गुलमुहम्मद और उसके कुछ पठान भी थे। जनरल रोज ने रानी का पीछा करने के लिए एक गोरों का दस्ता तथा निजाम का दस्ता भेजा। मोरोपन्त भाण्डेरी फाटक से तो साथ निकल आये किन्तु अञ्जनी की टोरियों से हाथी दतियां की ओर तेजी से भगा ले गया। अंग्रेज घुड़सवारों ने पीछा भी किया। उसकी जाँघ में किसी घुड़सवार की तलवार से घाव भी लगा, किन्तु वह निकल गया और प्रातःकाल दत्तियाँ में पहुंच ही गया। किन्तु वहाँ पकड़ा गया। राज्य ने हीरे जवाहर सब छीन लिये। मोरोपन्त को पकड़ कर तुरन्त झांसी भेज दिया गया। रोज ने दिन के दो बजे जलते हुए महल भस्मीभूत पुस्तकालय के बीच में मोरोपन्त को फांसी दे दी। उधर पूरन कोरी रानी के निकल जाने पर भाण्डेरी फाटक को बन्द कर अपने घर चला गया। इसने यत्न किया कि अपनी पत्नी

झलकारी को लेकर कहीं सुरक्षित स्थान पर चला जाऊँ। किन्तु झलकारी घर छोड़कर जाने को तैयार नहीं हुई। पूरन विवश हो बाहर चला गया। थोड़ी देर में एक बिना सवार का घोड़ा, जीन लगाम समेत उधर आ गया। घोड़ा बढ़िया और झाँसी की सेना का था। झलकारी ने घोड़ा पकड़ कर घर के पास वृक्ष से बाँध दिया। उसने एक विचार कर योजना तैयार की। प्रातः होते ही हाथ मुँह धोकर अपना श्रृंगार किया बढ़िया से कपड़े पहने। ठीक उसी प्रकार जैसे लक्ष्मीबाई करती थी। गले में काञ्च की गुटियों का कण्ठा डार पौ फटते ही घोड़े पर सवार हो बड़ी ऐंठ के साथ अंग्रेजी छावनी की ओर चल दी। साथ कोई हथियार न लिया। चोली में केवल एक छुरी रख ली।

आगे चलकर गोरों का पहरा मिला, वहां रोकी गई। गोरों के पूछने पर झलकारी ने उत्तर दिया "हम तुम्हारे जनरैल से मिलना चाहता है।" एक गोरा कुछ हिन्दी जानता था उसने पूछा तुम कौन हो? झलकारी ने उत्तर दिया—"झांसी की रानी लक्ष्मीबाई।" उत्तर बड़ा गर्व पूर्ण था। झलकारी को विश्वास था कि मेरी जांच पड़ताल और हत्या में जब तक अंग्रेज उलझेंगे, तब तक रानी को इतना समय मिल जायेगा कि वह पर्याप्त दूर निकल जायेगी। गोरों ने उसे घेर लिया और उसको जनरल रोज के पास ले गये। शहर भर के गोरों में हल्ला फैल गया कि झांसी की रानी लक्ष्मीबाई पकड़ी गई। गोरे हर्ष में पागल हो गये। झलकारी उनसे बढ़कर पागल थी। झलकारी की आकृति महारानी से बहुत कुछ मिलती थी। केवल रंग का कुछ अन्तर था। झलकारी रोज के सामने पहुंचाई गई। वह घोड़े से नीचे नहीं उतरी। रानियों जैसी शोभा, वैसा ही गर्व, वही हेकड़। रोज भी कुछ समय के लिए धोखे में आ गया। किन्तु कुछ देर पश्चात् दुल्हाजु ने आकर पहचान कर रोज को बता दिया—"यह रानी नहीं झलकारी कोरिन है रानी इस प्रकार सामने नहीं आ सकती।" झलकारी को दुल्हाजु को देख कर क्रोध आ गया। अपने आपको भूल गई। वह क्रुद्ध स्वर में बोली –"अरे पापी तूने ठाकुर होकर यह नीच कर्म क्यों किया?" दुल्हाजु भूमि में गड़ सा गया। रोज ने सब बात समझ कर कहा—"तुम रानी नहीं हो झलकारी कोरिन हो। तुमको गोली मारी जायेगी।" झलकारी ने निर्भय होकर कहा—"मार दो। मैं क्या मरने से डरती हूं? जैसे इतने सैनिक मरे हैं एक मैं भी सही।" फिर रोज ने झलकारी का सारा रहस्य समझ कर तंग नहीं किया, एक सप्ताह कैद में डालकर छोड़ दिया। क्योंकि उनका गोरा अफसर बोकर अपने दल सहित रानी के पीछे गया हुआ था।

प्रातःकाल होते ही पहूज नदी के तट पर पहुंच गये। तुरन्त स्नान आदि नित्यकर्म से निवृत्त हो सब ने कलेवा जलपानादि किया। रानी ने कुछ नहीं खाया कुछ अञ्जली जल ही पिया। वह झांसी की दुर्दशा के कारण उदास थी उस की कलेवे में रुचि नहीं थी। उन्हें झांसी की ओर से धूल उड़ती हुई दिखाई दी। दूरबीन से देखने से पता लगा कि अंग्रजी दस्ता पीछा किये आ रहा है। महारानी की आज्ञानुसार वे सब टोरियों के पीछे छिप गये। लैफ्टिनैन्ट बोकर का दस्ता जब इतना निकट आ गया कि पिस्तोल की मार के अन्दर था। रानी की टोली ने पिस्तोल की बाढ़ दागी। बाढ़ का भयङ्कर प्रभाव हुआ। बोकर के दल की पिस्तोलें खाली थीं। बन्दूकें आवरों में पड़ी हुई थीं, यह कुछ न कर सके। रानी ने तुरन्त तलवार से हमला किया। अंग्रेजों का दस्ता बड़ा था किन्तु रानी और उसकी टोली की वीरता के आगे वह ठहर न सके, लड़ाई हुई। रानी की विलक्षण चतुराई से अंग्रेज दस्ता नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

बोकर घायल होकर घोड़े से नीचे गिर पड़ा। रानी के घोड़े को भी एक गोली से पीठ पर थोड़ा सा

घाव हुआ। रानी के चार साथियों सुन्दर. देशमुख, गुलमुहम्मद और रघुनार्थसिंह को छोड़ कर सब काम आये। जखमी बोकर को उसके साथी झांसी उठा ले गए। रानी पहूज नदी पार कर कालपी की ओर तेजी से चल पड़ी। घोड़े सरपट दौड़ रहे थे। प्रात: काल से दोपहर हो गया और दोपहर से सायंकाल आ गया, किन्तु रानी को ठहरने का अवकाश नहीं मिला। चलते-चलते रात हो गई, तारे निकल आये, किन्तु रानी दामोदर को कमर पर बांधे झांसी से कालपी तक का १०२ मील की यात्रा लगभग आधी रात को पूरी करके कालपी में प्रवेश करती है। दिन भर कुछ भी न खाकर उस तेज धूप में इस पर भी पहुंचते ही उन्होंने तात्यां के मिलते ही काशीबाई और जूही के विषय में पूछा। तात्याँ ने उत्तर दिया काशीबाई युद्ध में मारी गई। जूही रावसाहब के रनवास में पास के शिविर में है। तात्यां ने सविस्तार अपनी झाँसी वाली लड़ाई का वृत्तान्त थोड़े समय में सुना दिया। महारानी ने धैर्यपूर्वक सुना फिर उन्होंने स्नान ध्यान किया, कपड़े बदले और केवल शर्वत पीकर सो गई। रानी का प्यारा घोड़ा मार्ग में घायल हो गया था। उसके घाव से मार्ग में पर्याप्त रक्त निकल गया था। वह कालपी पहुंचते ही शक्ति से अधिक परिश्रमादि के कारण मर गया। किसी-किसी लेखक का यह मत है कि वह मार्ग में ही एक गांव में मर गया था वहां किसी गांव वाले से घोड़ा लेकर और वहाँ जल पीकर रानी उस घोड़े से कालपी पहुंची थी। कुछ भी हो महारानी का घोड़ा झाँसी नगर के बलिदान के साथ अपनी स्वामिनी की रक्षार्थ अपनी बलि दे गया।

झाँसी के किले पर अधिकार होते ही अंग्रेजों ने लगभग तीन सहस्र निरपराध बालक, युवा तथा वृद्ध, गोलियों से उड़ा दिये। बेहद लूटमार हुई। असंख्य मकान जला दिये गये। लाशों के ढेर लग गये। सात दिन लाशें सड़ती रहीं। महालक्ष्मी का मन्दिर लूटा गया। मन्दिरों की मूर्तियाँ स्वयं अंग्रेज अफसर मन्दिरों से अपनी झोलियाँ भर कर अपने शराबखानों को सजाने के लिये ले गये। मुरली मनोहर के मन्दिर की मूर्ति न देने पर पुजारी और उसके लड़के को वहीं मार दिया गया। रोज का एक दस्ता घूमता भटकता मऊ-रानीपुर पहुँचा।

झांसी के पतन का समाचार पाने पर मी काशीनाथ भैया और आनन्दराव इस दस्ते से भिड़ गये। मऊ की गढ़ी छोटी सी थी। तोपें पास में न थीं। अत: ये लोग अपनी छोटी सी बन्दूकची मण्डली लेकर मऊ के बाहर टोरियों की आड़ लेकर खूब डटकर लड़े। और सब मारे गये। आनन्द राव ने कहा—यदि कभी रानी साहब के दर्शन हों तो कहना कि मऊ झाँसी से पीछे नहीं रही। लड़का कुछ मास पश्चात् गिरफ्तार हुआ किन्तु विक्टोरिया की क्षमाघोषणा के कारण वह फांसी से बच गया। रोज, को झांसी जिले में कम्पनी सरकार का पुन: राज्य स्थापन करने में लगभग एक मास लग गया।

बांदा का नवाब

मेजर ह्विटलॉक १७ फरवरी को जबलपुर से सागर आदि को फिर विजय करने के लिये निकला था। उसके साथ भी पर्याप्त देशी गोरी पलटनें थीं। यह ओछी के राजा को साथ लेकर बांदा की ओर बढ़ा। बान्दा का नवाब इस प्रान्त के क्रान्तिकारियों का मुख्य नेता था। नवाब की ह्विटलॉक के साथ कई लड़ाइयां हुईं। अन्त में नवाब की पराजय हुई। वह अपनी कुछ सेना सहित नगर छोड़ कर कालपी की ओर चला गया।

करबी का राव

इसके पश्चात् करबी के राव माधोराव पर चढ़ाई की। माधोराव १० वर्ष का बालक था। उसने क्रान्ति में कोई भाग नहीं लिया। क्योंकि वह बालक था। फिर भी वह ह्विटलाक के आने का समाचार सुनकर स्वागतार्थ आगे बढ़ा। किन्तु ह्विटलाक ने माधोराव को कैद कर लिया। महल को गिरा दिया। राजधानी को लूट लिया, रियासत को कम्पनी के राज्य में मिला लिया। मालसेन लिखता है--"अटलांटिक की सेना पर वहां किसी ने एक गोली भी न चलाई थी... इस बेईमानी और अन्याय का कारण यह था। करवी के महल के तहखानों और खजानों में सोना चान्दी जवाहरात और कीमती हीरे भरे हुए थे। × × ह्विटलाक को इस धन का लोभ था।" इसके पश्चात् ह्विटलाक महोबा पहुँचा वहीं से उसने सेना भेज कर आस-पास के क्रान्तिकारियों का दमन करना प्रारम्भ किया।

कालपी की लड़ाई में क्रान्तिकारियों की व्यवस्था अच्छी न होने से क्रान्तिकारियों की हार हो गई। इसके विषय में तात्यांटोपे के विषय में लिखते हुए लिखा है। कालपी का दुर्ग और बहुत सा सामान अंग्रेजों के हाथ में चला गया। कालपी के युद्ध में भी महारानी लक्ष्मीबाई ने खूब वीरता दिखाई। इस युद्ध में महारानी की वीरता ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। किन्तु अन्य क्रान्तिकारियों के सहयोग के बिना लक्ष्मीबाई अकेली कब तक लड़ती, अतः पेशवा की सेना का संगठन ठीक न होने से क्रान्तिकारियों को पराजय का मुख देखना पड़ा। अब विवश हो क्रान्तिकारियों को कालपी छोड़ भागना पड़ा। महारानी और तात्यां टोपे की चतुराई से ग्वालियर का किला सामान सेना सहित क्रन्तिकारियों के हाथ में आ गया। रावसाहब आदि तों सब निराश हो गये थे। किन्तु महारानी लक्ष्मीबाई की वीरता और तात्याँ टोपे की भेद नीति से एक नया केन्द्र ग्वालियर फिर कान्तिकारियों के हाथ में आ गया सींधिया की सेना पर यदि महारानी लक्ष्मीबाई अपने ठीक तीन सौ वीर सैनिकों को लेकर भूखे सिंह के समान न टूट पड़ती तो क्रान्तिकारियों की विजय न होती।

महारानी की लपलपाती हुई तलवार से घबरा कर ग्वालियर का राजा सीन्धिया भाग गया। ग्वालियर का किला, सेना, सामान तथा एक बड़ा कोष क्रान्तिकारियों के हाथ में आ गया। किन्तु दुःख की बात है कि महारानी लक्ष्मीबाई के अनेक बार समझाने पर भी सेना को सुव्यवस्थित करने के स्थान पर पेशवा रावसाहब अपने अन्य साथियों सहित विजय की खुशी में दावतों और उत्सवों में अमूल्य समय खोता रहा। उधर सर ह्यू रोज अपनी सेना सहित सीन्धिया को साथ लेकर ग्वालियर के किले पर टूट पड़े ग्वालियर की सेना को लेकर तात्यां ने युद्ध किया किन्तु थोड़ी देर के संग्राम के पीछे क्रान्तिकारियों की सेना में भगदड़ पड़ गई। रावसाहब घबरा गया। सब किंकर्तव्य विमूढ़ हों गये। अब रावसाहब को लक्ष्मीबाई याद आई किन्तु उसके पास किसी के जाने का साहस न था।

जनरल रोज ने उस दिन केवल दो घण्टे की लड़ाई में पेशवा की मुरार वाली सेना को हरा दिया और मुरार पर कब्जा कर लिया। जब पेशवा की हारी हुई सब सेना भागकर ग्वालियर गई तब पेशवा का नशा उतरा उधर जनरल सर ह्यू रोज ने एक चाल चली। एक लिखित घोषणा प्रकाशित की गई कि अंग्रेज तो पुनः ग्वालियर के राजा जियाजीराव को उसकी गद्दी दिलवाने के लिये आये हैं। इससे सीन्धिया की सेना जो पेशवा के पक्ष में ग्वालियर में थी, उसके सैनिकों और सरदारों में फूट पड़ गई। उनके मन फिर गये। पेशवा के उत्सवों पुरस्कारों आदि की रिश्वत व्यर्थ सिद्ध हो गई। पेशवा ने तात्यां

को लक्ष्मीबाई के पास भेजा। तात्यां भी डरता-डरता कलेजा साधकर उनके पास पहुंचा। महारानी ने व्यङ्ग से पूछा—"क्या बात है सेनापति जी, ये तोपें कहां चल रही हैं?" तात्यां ने अत्यन्त नम्रता से निवेदन किया "अब क्षमा प्रार्थना करने का भी समय नहीं है बाई साहब।" लक्ष्मीबाई ने फिर व्यंग किया "क्या भांग छानने और एक तान सुनने का भी समय नहीं?" तात्याँ महारानी के पैरों पर गिरने को हुआ "रक्षा करो महारानी" रानी ने उसे बीच में ही पकड़ लिया और हंसकर कहने लगी—"तात्यां तुमसे मुझे बड़ी आशायें थी अब भी दृढ़ता से कुछ करो तो बहुत कुछ हो सकता है। तात्याँ ने विश्वास दिलाया कि आपकी आज्ञानुसार सर्वस्व लगा दूँगा आपको उपालम्भ देने का आगे कभी अवसर नहीं मिलेगा। महारानी ने तात्यां को आश्वासन दिया और अपनी सारी योजना बताई और कहा पेशवा से कहें घबराये नहीं, सम्भव है इस योजना के अनुसार विजय हो जाये। हो सकता है मेरी यह अन्तिम लड़ाई हो। यदि हमारी विजय न हो तो आप सामान और सेना सहित दक्षिण की ओर चलने का प्रबन्ध करना। तुम इस कार्य में तो आचार्य हो। रानी ने अपनी सारी योजना तात्याँ को विस्तार पूर्वक समझ दी और अपने पांच सरदारों की बुद्धि में बैठा दी।

महारानी की आज्ञानुसार सेना की व्यवस्था की गई। रावसाहब और तात्यां आदि का भी महारानी के उत्साहित करने पर उत्साह बढ़ा। १७ जून को प्रातः ही ब्रगेडियर ने कोटा की सराय से नगर पर आक्रमण करना था। ज्योंही अंग्रेजों की सेना आगे बढ़ी और पूर्व की दिशा से रानी की तोपों की मार के भीतर आई। रानी ने गोलन्दाजों को संकेत किया। गोलाबारी होते ही अंग्रेजों की सेना की बड़ी दुर्गति हुई और वह पीछे हटी। रानी के लालकुर्ती सवारों ने तुरन्त छापा मारा। स्मिथ ने एक चाल चली। उसने अपनी सेना की टुकड़ी को और अधिक पीछे हटा लिया और रानी के सवारों को और आगे बढ़ने दिया। इन सवारों के अधिक आगे निकल जाने से बीच में स्थान खाली हो गया। इस समय स्मिथ ने कई दिशाओं से रानी के पार्श्व पर दो पलटनें जो अब तक चुपचाप खड़ी थीं आक्रमणार्थ आगे बढ़ाईं। रानी के सवारों को पीछे हटना पड़ा। स्मिथ ने सामने की पंक्तियाँ तोड़ कर अपने सवारों सहित आगे बढ़ने का यत्न किया। वह उस दिन फूलवाग पर अधिकार करना चाहता था। अपने सवारों को पीछे हटता देख कर रानी घोड़े को तेज करके विद्युतगति से उनके समीप पहुंची। उसे पठान गुल मुहम्मद दिखाई दिया। उसके पास पहुँच कर अंग्रेजों की ओर तलवार की नोक करके बोली—"खान आज हाथ ढीला क्यों पड़ रहा है?" इतना कहना था पठान सरदार चिल्लाता हुआ रेल-मेल करता हुआ अपने सवारों को उत्साहित करता हुआ आगे बढ़ा। रानी साथ थी ही। गुलमुहम्मद ने रानी से प्रार्थना की कि जूही सरदार का तोपखाना ठीक करवायें। जूही अपनी लालकुर्ती सेना को पीछे हटा देखकर घबरा गई थी, गोरे घुड़ सवार उसकी ओर बढ़ रहे थे।

रानी ने तोप का मुहरा एक अंगुल नीचा करवा गोले दागने आरम्भ कर दिये। गोरे सवारों की लाशें बिछ गईं शेष उल्टे भागे। इसी प्रकार रानी अपने सैनिकों को उत्साहित करती हुई दोनों हाथों से तलवार चलाकर शत्रु को नाकों चने चबा रही थी। रानी के योद्धा संख्या में बहुत न्यून होते हुए भी बड़ी वीरता से युद्ध कर रहे थे। स्मिथ की सब चालें व्यर्थ गईं। वह रानी के व्यूह को भेदन न कर सका। रानी के सवारों ने युद्ध में कमाल कर दिखलाया। अंग्रेज बहुत मारे गये। उन्हें रानी से हार खाकर लौटना पड़ा। अंग्रेजों ने उस दिन बड़े मुह की खाई। उस दिन रानी और उसके सरदारों ने निरन्तर घोर

परिश्रम किया था। किन्तु रात को देर तक योजनायें सुधारी, सलाह सम्मति की, कार्यक्रम ठीक बनाया। जिन योद्धाओं ने विशेष वीरता की थी उनको पुरस्कार दिये और पठान सरदार गुलमुहमद को कुंवर की उपाधि प्रदान की। उस दिन तो ग्वालियर की सेना ने प्रकट रूप से कोई धोखे का कार्य नहीं किया। रानी को उस सेना पर अविश्वास था किन्तु तात्यां और रावसाहब ने निवारण किया इस समय वैसे भी विवशता थी। उपलब्ध साधनों से ही काम लेना था।

अठारह जून का दिन था। प्रातः काल ही रानी स्नान ध्यान और गीता के अठारहवें अध्याय के पाठ से निवृत्त हो अपनी लाल कुर्त्ती रिसाले वाली मर्दाना युद्ध की पोशाक धारण की। दोनों ओर एक एक तलवार बान्धी और पिस्तौलें लटकाईं। गले में मोतियों और हीरो की माला धारण की। जिससे उसे सैनिकों की पहिचान रहे। अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित उनके पाँचों सरदार भी आ गये। सुन्दर ने सूचना दी, "सरदार आपका घोड़ा लंगड़ाता है कल लड़ाई में चोट खाकर घायल हो गया है।" रानी की आज्ञा से मुन्दर अस्तबल से देखकर, देखने में जो अच्छा सुदृढ़ घोड़ा था तुरन्त ले आई। रानी ने अपने सरदारों को उचित आज्ञायें दीं और शीघ्र खा पीकर युद्ध के लिये तैय्यार होने को कहा। सब खा पीकर तैय्यार हो गये। जूही और महारानी ने केवल शरबत ही पीया। दामोदर को खिला पिला कर रानी की आज्ञा से रामचन्द्र देशमुख ने अपने पीछे बाँधा। सब तैय्यार होकर युद्ध क्षेत्र में यथा स्थान पहुँच गये। रानी के लिये जो घोड़ा लाया गया था वह उन्हें अच्छा नहीं जँचा। पर उस समय विवशता थी। उस पर ही सवार हो कार्य लेने का निश्चय किया। यही निकम्मा घोड़ा महारानी की मृत्यु का कारण बना। युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों ओर से तोपें आग उगलने लगीं। उत्तर और पश्चिम में तात्यां और राव साहब के मोर्चे थे। दक्षिण में बाँदा के नवाब का था। रानी ने अपना मोर्चा पूर्व में लगाया।

पिछले दिन की पराजय के कारण अंग्रेज जनरल आज अधिक सावधान थे। उन्होंने अपनी पैदल पलटन जंगल में छिपाली और अपने घुड़सवारों से कई दिशाओं में आक्रमण करने की योजना बनाई। तोपें रक्षा के लिए पीठ पीछे थीं। अंग्रेजों के हुजर सवारों ने कड़ाबीन बन्दूकों से आक्रमण किया। बन्दूकों से ही रानी की ओर से उत्तर दिया गया। महारानी ने आक्रमण पर आक्रमण करके हुजर सवारों को पीछे हटाया। रानी के रणकौशल से अंग्रेज थर्रा गये किसी भी प्रकार से बहुत देर तक अंग्रेज आगे न बढ़ सके। जूही की तोपें भी गजब ढा रही थीं। अंग्रेज सवार भी मरते जाते थे और आगे बढ़ते जाते थे, उन्होंने जूही की तोपों के मुंह बन्द करने का निश्चय किया। रानी ने जुही की सहायता के लिये कुमुक भेजी। उसी समय रानी को पता चला कि पेशवा की अधिक तर ग्वालियरी सेना विश्वासघात करके अपने सरदारों सहित अंग्रेजों से जा मिली है।

जिस बात का महारानी को सन्देह था वह पूरा हो गया। अब क्या हो सकता था, विवशता थी। अब रानी के लालकुर्ती सवार तलवार खींच कर आगे बढ़े और खूब घमासान युद्ध करने लगे। इतने में ही सूचना मिली कि रावसाहब के दो मोर्चे छिन गये और अंग्रेज उस में घुसने लगे। रानी ने अपनी पैदल पलटन को आगे बढ़ने की आज्ञा दी उधर अंग्रेज जूही के तोपखाने पर पिल पड़े वह भी तलवार लेकर भिड़ गई और वीरतापूर्वक बढ़ी, अन्त में मारी गई। फिर रानी ने तोपखाने का प्रबन्ध किया। इस समय स्मिथ की आज्ञा से छिपे हुए दोनों पलटनों के सैनिक संगीन लेकर रानी की पैदल पलटन पर दोनों पार्श्वों से टूट पड़े। पेशवा की पलटनें सवारों और पलटन के बीच में आकर घबराई। रानी ने प्रोत्साहित किया।

उत्तेजना दी। किन्तु पेशवा की पलटनें घिर गईं। मरने लगीं। पेशवा की दो तोपें भी अंग्रेजों ने छीन ली। रानी की रक्षार्थ लालकुर्ती सवार अटूट शौर्य और विक्रम दिखा रहे थे। न उन्होंने कड़ाबीन की परवाह की न संगीन का भय किया, तलवार तो उनकी मानो ईश्वरीय देन थी। वह वीरों का दल घण्टों डट कर युद्ध करता रहा। रानी अपने दक्षिण पश्चिमी मोर्चे से मिलने के लिए मुड़ी। किन्तु उस समय रानी और मोर्चे के बीच में बहुत अंग्रेज सवार और पैदल सैनिक थे। रानी ने घोड़े की लगाम अपने दांतों में पकड़ी और दोनों हाथों से तलवार चलाकर अपना मार्ग बनाना आरम्भ किया। मुन्दर रानी के साथ थी। दोनों पार्श्वों में रघुनाथसिंह और रामचन्द्र देशमुख थे। पीछे कुँवर गुलमुहम्मद। और केवल बीस पच्चीस अवशिष्ट लाल कुर्ती सवार लड़ रहे थे। अंग्रेजों ने इन सब को चारों ओर से घेर लिया।

रानी की दोनों तलवारें मार्ग साफ कर रही थीं। रानी के पीछे लड़ते-लड़ते लगभग सब सवार मारे गए। उसी समय तात्यां ने अपनी रुहेली और अवधी सवारों की सहायता से अंग्रेजों के इस व्यूह पर भयङ्कर प्रहार किया। तात्यां कठिन से कठिन व्यूह में होकर बच निकलने की विद्या में पारंगत पण्डित था। अब अंग्रेज कुछ सवारों को छोड़कर तात्यां की ओर मुड़ गये। सूर्यास्त होने में कुछ थोड़ा सा समय था। लाल कुर्ती का अन्तिम सवार भी मारा गया। रानी के पास अब केवल तलवारों सहित चार सरदार रह गये। उनके पीछे दस पन्द्रह गोरे सवार थे और आगे कुछ गोरे पैदल लड़ रहे थे। रानी ने पीछे देखा तो गुलमुहम्मद और रघुनाथसिंह अंग्रेज सैनिकों को भूखे शेर की भांति लड़कर कम कर रहे थे। एक ओर रामचन्द्र देशमुख दामोदर की रक्षार्थ रणकौशल दिखा रहा था। देशमुख की सहायतार्थ रानी ने देशमुख को संकेत किया। और स्वयं दोनों तलवारों से शत्रु का सफाया करते हुए आगे बढ़ने लगी। एक संगीन वाले ने रानी के सीने के नीचे अपनी संगीन की हुल की वेग से चोट की। रानी की आँतें तो बच गईं किन्तु जोर का आघात पहुंचा। रानी ने उसी समय संगीन सरदार को अपने तलवार के वार से समाप्त कर दिया। रानी अब समझ गई कि उनका स्वराज्य के लिए बलिदान होने वाला है। रानी आगे बढ़ी। उनके साथी भी पीछे-पीछे लड़ते हुए आ रहे थे। आठ दस गोरे घुड़सवार उनका पीछा कर रहे थे। रघुनाथसिंह जो पास था उसे रानी ने कहा "मेरी देह को अंग्रेज न छूने पावें" गुलमुहम्मन ने भी सुना वह और जोर से लड़ने लगा।

उसी समय एक अँग्रेज सवार ने मुन्दर पर पिस्तौल से वार किया। मुन्दर के मुख से केवल ये शब्द निकले "बाई साहब, मैं मरी, मेरी देह ····· भगवन्" अन्तिम शब्द कहते हुए वह घोड़े से नीचे गिर पड़ी। रघुनाथसिंह मुड़कर अंग्रेज सवारों पर टूट पड़ा कई उसके वारों से मारे गए। मुन्दर को मारने वाला भी मारा गया। उसने मुन्दर के शव को नीचे उतरकर उठा कर, अपना साफा फाड़ बान्धकर घोड़े पर सवार हो कर आगे बढ़ा। गुलमुहम्मद शेष सवारों से उलझ गया। रानी ने सोनरेखा नाले की ओर घोड़े को बढ़ाया। देशमुख साथ था। गुलमुहम्मद शेष पांच अंग्रेज सवारों को झाँसा देकर रानी के पास पहुँच गया। रानी बड़े वेग से नाले के तट पर आ गई। घोड़ा अड़ गया। रानी ने पुचकारा किन्तु सब यत्न व्यर्थ गये। वह आगे नहीं बढ़ा। वे अंग्रेज सवार भी आ पहुँचे एक गोरे ने पिस्तोल से रानी पर वार किया। गोली उसकी बाईं जांघ में लगी। खून की धारा फूट निकली। रानीने बायें हाथ की तलवार फककर अपना आसन सम्भाला, बायें हाथ से घोड़े की लगाम पकड़ी। इतने में वह गोरा पास आ पहुंचा। रानी ने दायें हाथ के तलवार के वार से उसे समाप्त कर दिया। उस वार के पीछे एक अंग्रेज और आगे बढ़ा। रानी ने फिर घोड़े को आगे बढ़ाने के लिए एक पैर की एड़ लगाई। किन्तु वह निकृष्ट घोड़ा दोनों पैर से खड़ा हो गया।

घोड़ा किसी प्रकार भी, बहुत प्रयत्न करने पर भी आगे नहीं बढ़ा। रानी के पेट और जाँघ के घाव से खून की धारा बड़े वेग से बह रही थी। गुलमुहम्मद आगे बढ़े हुए अंग्रेज सवार की ओर लपका, किन्तु अंग्रेज सवार गुलमुहम्मद के वहां पहुँचने से पूर्व अपनी तलवार का वार रानी के शिर पर कर चुका था। इस भयङ्कर वार से रानी के शिर का दायां भाग कट गया। और दाईं आंख बाहर निकल आई। इस पर भी रानी ने अपनी तलवार के वार से अपने घातक का कन्धा काट दिया। गुलमुहम्मद ने अपने तलवार के एक भरपूर वार से उसके दो टुकड़े कर डाले। बाकी दो तीन अंग्रेज सवार बचे थे उन पर गुलमुहम्मद विद्युत् गति से पिल पड़ा। उसने एक को घायल कर दिया, दूसरे के घोड़े को अधमरा कर डाला ये तीनों मैदान छोड़ कर भाग गये।

झांसी की रानी का अमर बलिदान

अब वहां कोई शत्रु नहीं था। रानी को घोड़े से गिरने से रोकने के लिए देशमुख रामचन्द्र पकड़े हुए था। रघुनाथसिंह और देशमुख ने रानी को घोड़े से सम्भाल कर उतारा और आवेश में आकर उस अड़ियल घोड़े को एक लात मारी वह वहां से भाग गया।

इधर गुल मुहम्मद दिन भर का युद्ध से थका-मान्दा भूखा-प्यासा धूल और खून से लथपथ रानी को देखकर बच्चों के समान बिलख-बिलख कर रोने लगा। रानी को अपने घोड़े पर रखकर बहुत ही शीघ्र बाबा गंगादास की कुटिया पर देशमुख और रघुनाथसिंह जी ले आये। देशमुख का गला रुन्धा हुआ था। उधर बालक दामोदर अपनी माता को देखकर रो रहा था। रामचन्द्र ने उसे पुचकारा, समझाया, "रोवो मत दवा करेंगे ठीक हो जायगी।"

सूर्यास्त होने वाला था। बाबा गंगादास ने उन्हें पहचान कर कहा। सीता वा सावित्री के देश की ये लड़कियां हैं। रानी के पानी माँगने पर बाबा गंगादास उसी समय गंगाजल पानी ले आया और रानी को पिलाया, उसको कुछ चेतना आई। फिर मुंख से पीड़ित स्वर से हर हर महादेव करती हुई फिर अचेत हो गई। मुन्दर के मुख में भी कुछ गंगाजल की बूंदें डालीं। उसका प्राणान्त हो चुका था। बाबा गंगादास ने पहचान कर कहा यह कई बार लक्ष्मीबाई के साथ मेरी कुटिया पर आई थीं।

रानी को फिर एक बार चेतना आई और उसके मुख से ओ३म् वासुदेवाय नमः निकला और इसी के साथ झांसी का सूर्य भी अस्त हो गया। सब विलख-विलख कर रोने लगे। बाबा गंगादास के समझाने पर वे दाहकर्म के लिये तैयारी करने लगे। बाबा की कुटिया को उधेड़, घास की गञ्जी पर लकड़ियों से चिता बनाई और महारानी लक्ष्मीबाई तथा उसकी सखी मुन्दर के शव को रख कर अग्नि संस्कार कर दिया। अपनी और रघुनाथ की वर्दी भी चिता पर रख दी। थोड़ी देर में दोनों शव जल कर भस्मसात् हो गये।

देशमुख रामचन्द्र दामोदरको घोड़े की पीठ पर बान्ध दक्षिण को चला गया। रघुनाथसिंह रानी की खोज में आने वाले अंग्रेजों से लड़ने के लिए बैठ गया। पठान गुल मुहम्मद जो कभी ५०० पठान सैनिक लेकर महारानी के पास झांसी में आया था, आज अकेला रह गया। वह फकीर बनकर चिता के पास ही सो गया। केवल एक लंगोटी लगाकर वहीं कुटिया के पास रहा, अपनी वर्दी चिता में फैंक दी। रघुनाथसिंह अंग्रेजों के साथ लड़ता लड़ता मारा गया।

अगले दिन जब गुल मुहम्मद सोकर उठा। चिता शान्त हो चुकी थी। उसने उस पर ईंटों से एक चबूतरा बनाया और उस पर कहीं से फूल लाकर चढ़ा दिये। एक; अंग्रेज सैनिकों का दल उधर रानी की खोज में आया और पूछने लगा यह कैसा चबूतरा है? गुल मुहम्मद जो फकीर बना हुआ था उसने बता दिया कि "यह हमारे पीर साहब का मजार है।"

तांत्या टोपे और नानासाहब

तांत्या टोपे का जन्म पूना में महाराष्ट्र प्रान्त में हुआ। यह अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि का असाधारण व्यक्ति था। मराठी की शिक्षा प्राप्त करके संस्कृत भाषा का अध्ययन करने लगा। थोड़े ही समय में उसने देववाणी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। रामायण महाभारतादि अपने प्राचीन इतिहास को वह बड़ी श्रद्धा से पढ़त था। वीर पुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ने में उसे बड़ा आनन्द आता था। वह भारत की उस समय की दरिद्रता, पराधीनता और भीरुता को देखकर बड़ा दु:खी होता था। प्राचीन भारत के गौरव की तत्कालीन देश की पतित अवस्था से तुलना करके कई बार वह निराशा के चक्र में फंसने को होता था किन्तु उसी समय वीर शिवाजी आदि आदर्श वीरों का जीवन उसकी निराशा का नाश कर उसे फिर से उत्साह और वीरता से परिपूरित कर देता था, अत: तांत्या बाल्यकाल से ही आदर्श वीर सैनिक बनने की धारणा कर चुका था किन्तु इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए उसके पास साधनों का अभाव था। उसके पितामह पेशवा अत्यन्त विश्वासपात्र सेवक रह चुके थे। उस समय इस के परिवार की अवस्था अच्छी न थी। अब पेशवाओं का भी वह समय नहीं था। इनके पिता की मृत्यु हो गई थी। इसके अतिरिक्त वृद्ध माता का और कोई आश्रय नहीं था। यह अपनी ध्रुव धारणा "कि समय अनुकूल आने पर विदेशी अत्याचारी अंग्रेज को भारत से निकाल कर पूर्ण स्वतन्त्र और समृद्ध करूँगा।" के कारण विवाह के बन्धन में फंसना नहीं चाहता था। वह भलीभाँति जानता था कि विवाह के चक्र में फंसकर देश को स्वतन्त्र करने की यह दृढ़ धारणा व्यर्थ ही रह जायेगी। किन्तु माता के मोह में फंस गया, उनके विवाह के आग्रह को टाल न सका। इस गृहस्थ की दल-दल में फंसकर कुछ समय के लिये वह अपने मुख्य ध्येय से दूर हो गया। परिवार के निर्वाह के लिये इधर-उधर मारामारा फिरा कोई नौकरी नहीं मिली। इसी चक्र में वह नाना साहब पेशवा के पास विठूर में पहुंचा। उन्होंने प्रेम से इसे अपने पास रख लिया। थोड़े ही समय में तांत्या की असाधारण योग्यता ने नाना साहब को मन्त्र-मुग्ध कर लिया। उन्होंने शीघ्र ही इसे अपना सेनापति बना लिया। उस समय अंग्रेजों के अत्याचार भारत में विद्रोह की अग्नि को भड़का रहे थे। अंग्रेज अफसरों के अत्याचारों के कारण भारतीय सिपाहियों और जनता में क्रोधाग्नि भयंकर रूप धारण कर रही थी। प्रतीकार की भावना ने लोगों को उन्मत्त कर दिया। देश में अनेक साधु-सन्यासी, घूम-घूम कर स्वतन्त्रता की भावना फूंक रहे थे। तात्यां समान वीर योद्धा भी देशभक्त राजा महाराजाओं, नवाबों, जागीरदारों, तथा सैनिकों को देश के स्वतन्त्रता-युद्ध के लिये सन्नद्ध तथा सुसंगठित कर रहा था। जिस सुवर्णावसर की खोज वा प्रतीक्षा वीर तांत्याटोपे कर रहा था, वह आन पहुँचा। तांत्या इसी अनुकूल अवसर के लिये शक्ति संचय कर रहा था। नाना साहब को वह पहले से ही इस स्वतन्त्रता युद्ध के लिये तैयार कर रहा था। नाना साहब स्वयं भी बहुत योग्य थे, इस पर तांत्या की अपूर्व योग्यता असाधारण शौर्य, वीरता और विचित्र सैन्य संचालन शक्ति ने नाना साहब के यश और कीर्ति को चारों दिशाओं में खूब फैला दिया। इस स्वतन्त्रता युद्ध में जो श्रेय नाना साहब को मिला। उसका मुख्य कारण उसके चतुर और वीर सेनापति तांत्या का अपूर्व पराक्रम ही था। इस युद्ध की सारी योजना विठूर में ही बनाई थी।

इस योजना के बनाने में [illegible] का पूरा हाथ था । सन् ५७ की क्रान्ति के मुख्य नेताओं में भी नाना साहब तथा इनके सेनापति तांत्या टोपे मुख्यतम थे । इस योजना को पूर्ण करने के लिए सारे भारतवर्ष में एक विशाल गुप्त संगठन किया गया था । इस संगठन के निर्माण में तांत्याटोपे ने घोर परिश्रम किया था एतदर्थ इसने लगभग सारे ही देश में अनेक वर्ष रात-दिन यात्रा की थी । क्रान्ति के समय जो सफलता तथा प्रसिद्धि तांत्या ने प्राप्त की उसका मुख्य कारण उसकी योग्यता ही थी । वह लोगों को मिलाना खूब जानता था, उसका विरोधी उससे कुछ समय बातें करके वश में हो जाता था । विरोधियों की सेना को तोड़कर अपने पक्ष में करना उसे खूब आता था । उसके अपने सैनिक तो सर्वथा उसकी आज्ञानुसार चलते थे। शत्रु भी उसकी योग्यता से चकित थे । वह उस समय के योग्यतम सेनापतियों में से थे । इसकी योग्यता क्रान्ति के समय खूब चमकी । जब मेरठ, दिल्ली, इलाहाबाद आदि स्थानों पर क्रान्तिकारियों का राज्य हो गया, उस समय तांत्या टोपे नाना साहब के दरबार बिठूर में था । दिल्ली की स्वाधीनता की सूचना नाना साहब को १५ मई को मिली उस समय कानपुर में अंग्रेजी सेना का सेनापति सर ह्यू ह्वील तीन सहस्र सैनिकों की सेना सहित विद्यमान था । एक सौ अंग्रेज सिपाही भी उसके साथ थे । उसे १८ मई को दिल्ली का समाचार मिला । कानपुर की जनता तथा देशी सेना के सिपाही भी तैयार थे । गुप्त तथा प्रकट रूप में क्रान्ति के लिये सभायें होने लगीं । नाना साहब के पास घबराकर अंग्रेज सेनापति ने सन्देश भेजा। कि आप कानपुर की रक्षार्थ स्वयं पधारें और अंग्रेजों की सहायता करें । २२ मई को नाना साहब थोड़ी सी सेना तथा दो तोपों सहित कानपुर में आये । बहीलर ने खजाना नाना साहब को सौंप दिया । अपना मैगजीन भी अंग्रेज सेनापति ने नाना साहब की रक्षा में छोड़ दिया । नाना साहब पर अंग्रेज अब भी विश्वास करते थे । यथार्थ बात तो यह है कि अंग्रेज कानपुर में इतने डरे हुए थे कि २४ मई को मुसलमानों की रमजान के बाद ईद थी । उसी दिन विक्टोरिया महारानी का जन्म दिवस था । उसके उपलक्ष में सदा तोपों की सलामी दी जाती थी, किन्तु कभी भारतीय सिपाही विद्रोह न कर डालें अतः इस डर से तोपें नहीं छोड़ी गईं । अंग्रेजों के बाल-बच्चे सब डर के कारण नये किले में सेनापति के पास जमा थे जो नाना साहब ने अंग्रेजों द्वारा उन्हीं दिनों बनवाया था, ३१ मई तक तो चुप रहने का निश्चय कर रखा था । किन्तु नाना साहब अपने साथियों के साथ किश्तियों में बैठकर कुछ घण्टे तक गुप्त मन्त्रणायें करते रहते थे । तांत्या सब मन्त्रणाओं में साथ रहता था । उधर सर व्हीलर ने गंगा के दक्षिण में एक नया स्थान बना कर किला बन्दी करली, उसी में रक्षा के साधन जुटा रहे थे । कुछ सेना लखनऊ से व्हीलर की सहायतार्थ और पहुंच गई । क्रान्तिकारी अपनी तैयारी वहां पूर्ण कर चुके थे । देशी सिपाहियों की सेना क्रान्तिकारियों का साथ देने का विश्वास दिला चुकी थी यहां तक कि गुप्तमन्त्रणा में कम्पनी की देशी सेना के मुख्य नेता सूबेदार टीकासिंह और शम्सूद्दीन नाना साहब के साथ रहते थे । अजीमुल्लाखां ज्वालाप्रसाद और मोहम्मदअली आदि अनेक नाना साहब के विश्वस्त साथियों में थे । कानपुर की छावनी में ४ जून की [illegible] फायर हुए सैनिकों को क्रान्ति करने की यह पूर्व से ही निश्चत सूचना थी । सब से आगे कम्पनी [illegible] के सूबेदार टीकासिंह घोड़े पर सवार होकर लपके पीछे-पीछे सैकड़ों सवार और हजारों सेना के पदाति सैनिक थे । अंग्रेजों के मकानों में आग [illegible] दी गई । अंग्रेजी झंडे गिराकर सर्वत्र हरे झंडे फहरा दिये । अपने सब साथी सैनिकों को भी सूचना दे [illegible] नाना साहब की सेना के सिपाही भी क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर कार्य कर [illegible] । ५ जून को कम्पनी का मेगजीन तथा खजाना भी क्रान्तिकारियों ने सर्वथा अपने कब्जे में कर लिया । भारतीय सेना तथा नगर निवासियों ने मिलकर नाना साहब को अपना राजा चुन लिया । ५ जून को ही हाथी के ऊपर दिल्ली सम्राट के हरे झण्डे [illegible] जलूस

बड़े सामारोह से सारे नगर में निकाला गया। नगरनिवासी नाना साहब की सब आज्ञाओं का पालन हर्ष तथा श्रद्धा पूर्वक करते थे। ६ जून को नाना साहब ने अंग्रेज सेनापति को चेतावनी दी की आज आप किला हमें सोंप दें नहीं तो सायंकाल किले पर चढ़ाई कर दी जायेगी। सायंकाल क्रान्तिकारी सेना ने अंग्रेजी किले को घेर लिया प्राय: सभी अंग्रेज आबाल वृद्ध वनिता किले में थे। कोई एकाध भूला-भटका शहर में गया था, वह मारा गया। नाना साहब के पास भी पर्याप्त तोपें थीं अत: नाना साहब की तोपों ने किले पर गोले बरसानें प्रारम्भ कर दिये, जिससे किले के अन्दर अंग्रेज बड़ी तेजी से मरने लगे। उनका दफनना भी कठिन हो गया। किले में एक ही जल पीने का कुँआ था, नाना साहब की सेना ने ऐसे ढंग से गोले बरसाये कि अनेक अंग्रेज पानी न मिलने के कारण तड़फने लगे। २१ दिन तक यह गोला बारी चलती रही। जो अंग्रेज गोलों से नहीं मरे थे, वे ज्वर, हैजे आदि रोगों से मरने लगे। अंग्रेज भी किले की दीवारों से खूब गोला बारी कर रहे थे। घेरा किले का बड़ा सख्त था फिर भी अंग्रेज कम्पनी का कोई भारतीय नौकर गुप्त रूप से बचकर (रक्षार्थ पत्र लेकर) लखनऊ पहुँच गया। नाना साहब को भी किले के अन्दर के समाचार अपने गुप्तचरों द्वारा मिलते रहते थे। नाना साहब के आस-पास के जमीदार जन और धन से जी खोल कर सहायता कर रहे थे। नाना साहब के पास चार सहस्र के लगभग सेना थी। कानपुर के स्त्री-पुरुष सभी जी-जान से सर्व प्रकार की सहायता कर रहे थे। यहां तक कि अजीजन नामक वेश्या भी हथियार बान्धे घोड़े पर सवार हो सबको उत्साहित करती-फिरती थी। सभी निर्भय होकर युद्ध में जुटे हुए थे। नाना साहब ने शहर का भी प्रबन्ध कर रक्खा था। सर्वसम्मति से हुलाससिंह को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया, फौज के सामान का कार्य एक मुल्ला नाम के व्यक्ति को सोंप रखा था। दीवानी के अभियोगों के निर्णय के लिये नाना साहब, अजीमुल्लाखां और ज्वालाप्रसाद तीनों को मिलाकर न्यायालय बनाया गया अपराधियों को यथोचित दण्ड दिया जाता था. नगर में पूर्ण सुख-शान्ति थी। १८ जून और २३ जून को घोर संग्राम हुआ, विवश होकर २५ जून को जनरल व्हीलर ने किले पर सफेद सन्धि का झण्डा गाड़ दिया। २६ तारीख को दोनों ओर से प्रतिनिधि इकट्ठे हुए। अजीमुल्ला जो अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञाता था, उसने अंग्रेज प्रतिनिधियों को हिन्दी भाषामें बात-चीत के लिए विवश किया। वार्तालाप के पश्चात् किला, तोपखाना, अस्त्र-शस्त्र नाना के हवाले कर दिये। नाना साहब ने वचन दिया कि सब अंग्रेजों को भोजन आदि व्यय देकर किश्तियों द्वारा इलाहाबाद भेज दिया जायेगा। उसी दिन चालीस किश्तियों तथा आवश्यक सामान का प्रबन्ध कर दिया गया। प्रातःकाल सब अंग्रेजों को हाथियों और पालकी में बैठाकर किले से डेढ़ मील दूर सतीचौक घाट पर जहाँ नौकायें तैयार थीं पहुँचा दिया। किले पर से अंग्रेजी झण्डा उतार कर सम्राट् का हरा झण्डा फहरा दिया। २७ जून को प्रात: काल दश बजे किश्तियां सतीचौक घाट से चलने वालीं थीं, नाना साहब अपने महल में थे। घाट पर देशी सिपाहियों और जनता की भीड़ थी, वहाँ पर ऐसे लोग भी पहुँच गये थे जिन्होंने इलाहाबाद के निकट जनरल नील, अंग्रेजी सेनापति के स्त्री बाल-बच्चों, सगे सम्बन्धियों तथा घर को जलाकर भस्मसात् कर दिया था। ऐसे अत्याचार से पीड़ित लोगों में से किसी एक ने करनल ईवर्ट पर हमला कर दिया, मार-काट हो गई। ज्यों ही नाना साहब को ज्ञात हुआ, उन्होंने तुरन्त आदेश दिया "अंग्रेज पुरुषों को मारो किन्तु स्त्रियों और बच्चों को कोई हानि न पहुंचाओ।" नाना जी की आज्ञा मिलते ही १३५ अंग्रेजी स्त्रियां और बच्चे कैद करके उनको सौदा कोठी पहुंचा दिया और अंग्रेज पुरुषों की लाइन बान्ध कर सती चौरा घाट पर खड़ा किया गया। एक पादरी ने ईश प्रार्थना के लिए आज्ञा मांगी, उसे आज्ञा दे दी गई। उस पादरी ने इञ्जील में से सब अंग्रेजों को प्रार्थना पढ़कर सुनाई, प्रार्थना कर चुकने के बाद सब अंग्रेजों के

सिर तलवार से काट दिये। किसी प्रकार चार अंग्रेज बचकर किश्ती में बैठकर भाग गये । स्त्री बच्चे नाना की उदारता से बच गये। यह सतीचौंरा घाट का हत्या काण्ड जनरल नील के घोर अत्याचारों के कारण हुआ। नाना साहब का इसमें कोई दोष नहीं। अंग्रेजों के अत्याचारों ने लोगों को पागल बना रखा था।

कैदी अंग्रेज स्त्री बच्चों के साथ नाना का व्यवहार अत्यन्त उदार था। भोजन के लिये दूध, रोटी मांस का प्रबन्ध था। न उनसे बड़ा कार्य लिया जाता था। तीन-तीन बार वायु सेवन के लिए उन्हें बाहर जाने की आज्ञा थी, साफ वस्त्र दे रखे थे और सेवा के लिए नौकरों का प्रबन्ध था। अंग्रेज इतिहासकार भी ऐसा ही मानते हैं। कानपुर नगर छावनी तथा आस-पास के प्रान्त में से अंग्रेजी राज के सभी प्रकार के चिह्न समाप्त करके नाना साहब धोन्धोपन्त ने बड़ा दरबार २८ जून १८५७ को कानपुर में किया। सारी सेना आस-पास के जमींदार और असंख्य जनता ने दरबार में बड़े उत्साह से भाग लिया पहले सम्राट् बहादुरशाह के नाम पर तथा नाना साहब के सम्मानार्थ बम व तोपें छोड़ीं गईं। एक लाख रुपया फौज में पारितोषिक के रूप में बांटा गया। फिर नाना साहब बिठूर चले गये। वहां पहली जुलाई १८५७ को नाना साहब विधिवत् पेशवा की गद्दी पर बैठे। इस ५७ की क्रान्ति में कुछ समय के लिए पेशवा की सत्ता पुनः जीवित हो गई। जिस समय कानपुर के समाचार इलाहाबाद पहुंचे। जनरल नील ने मेजर रिनाडा के आधीन सेना कानपुर भेजी। वह सेना अत्याचारी जनरल नील के आदेशानुसार मार्ग में [illegible] ग्रामों में आग लगाती और कतले आम करती हुई आगे बढ़ी। जब कानपुर में अंग्रेजों की हार और सतीचौंरा घाट का समाचार इलाहाबाद पहुंचा तो जनरल हैवलाक भी अंग्रेज और सिख सेना व तोपखाने सहित कानपुर की ओर बढ़ा। आगे चलकर इसकी सेना रिनाडे के साथ मिल गई मार्ग में सार्वजनिक वध ग्रामों व पशुओं के जलाने का कार्य पूर्ववत् चालू रहा। एक अंग्रेज जो इस यात्रा में सेना के साथ था, जिसका नाम सर चार्ल्सडिल्क है लिखता है "इस कूच में गांव के गांव क्रूरता के साथ जला डाले गये और इस क्रूरता के साथ निर्दोष ग्राम वासियों का संहार किया गया कि जिसे देखकर एक बार मोहम्मद तुगलक भी शरमा जाता।"

नाना साहब की सेना जो ज्वालाप्रसाद और टीकासिंह के आधीन थी अंग्रेजों से लड़ने के लिए आगे बढ़ी। १२ जुलाई को फतहपुर के निकट दोनों का घोर संग्राम हुआ। नाना की सेना थोड़ी थी उसकी हार हुई। अंग्रेज सेना फतहपुर नगर में घुस गई। फतहपुर नगर स्वाधीन हो चुका था, कुछ अंग्रेज अफसर भी यहाँ मारे गये थे। एक अंग्रेज मैजिस्ट्रेट शरेर को प्राणदान देकर छोड़ दिया था वह भी अब अंग्रेज सेना के साथ था। अब हैवलाक और शरेर ने पहले तो नगर को खूब लुटवाया फिर सारे नगर तथा नगरवासियों को इसी के अन्दर जलाकर भस्मसात् कर दिया। इस भयानक अत्याचार के समाचार कानपुर पहुंचे। नाना साहब अपनी सेना सहित इन क्रूर अंग्रेजों से लड़ने को तैयार ही था। कानपुर के निकट दोनों का घोर संग्राम हुआ। किन्तु हैवलाक की विशाल सेना का प्रतिरोध नाना साहब की थोड़ी-सी सेना कब तक करती। अतः विवश होकर नाना साहब सेना सहित विठूर की ओर चला गया। १७ जौलाई को हैवलाक की विजयी सेना कानपुर में घुसी। जनरल सर व्हीलर का बदला सार्वजनिक लूट और कतल से लिया गया। चार्ल्सबाल लिखता है—"भारतीयों के समूह के समूह फांसी पर लटकाये गये। मृत्यु के समय कुछ क्रान्तिकारियों ने (योगी समान) जिस प्रकार चितकी शान्ति और अपने व्यवहार में ओज का परिचय दिया वह उन लोगों के सर्वथा योग्य था जो कि किसी सिद्धान्त के नाम पर शहीद होते हैं।" इस लूट और फांसियों के अतिरिक्त एक विशेष कार्य जनरल हैवलाक ने यहां और किया। बीबीगढ़ में भूमि पर [illegible] खून

का बड़ा धब्बा था सन्देह था यह खून अंग्रेजों का है। नगर के अनेक ब्राह्मणों को वह खून बलात् चटवाया और फिर झाड़ू से धुलवाकर साफ करवाया, तत्पश्चात् उन्हें फांसी पर लटकाया गया। उस समय के अंग्रेज अफसर ने कहा है कि—"मैं जानता हूँ कि फिरंगियों के खून को जबान से चाटने और मेहतर की झाड़ू से साफ करने से एक उच्च जाति का हिन्दू अपने धर्म से पतित हो जाता है। अतः मैं ऐसा जानकर कराता हूँ।" जब तक हम उन्हें फांसी देने से पहले उनके समस्त धार्मिक भावों को पैरों तले न कुचल लेंगे तब तक हम पूरा बदला नहीं ले सकते। ताकि उन्हें सन्तोष न हो सके कि वे हिन्दू धर्म पर कायम रहते हुए मरे। सतीचौंरा घाट पर जिन अंग्रेजों को मारा उन्हें कम से कम मरने से पूर्व उनकी इच्छानुसार इञ्जील का पाठ करने का अवसर दे दिया गया था।

नाना साहब विठूर छोड़कर अपने खजाने और सेना सहित गंगा पार कर फतहगढ़ की ओर चला गया। जब हैवलाक कानपुर का सर्वनाश करके मार्ग में सर्वनाश करता हुआ लखनऊ की ओर बढ़ रहा था और मंगलवार में ही पहुँचा था तो नाना साहब ने फिर एक बार कानपुर पर हमला करने की तैयारी शुरू की। अतः इस डर से हैवलाक आगे नहीं बढ़ा, उस मंगलवार में ही ठहरना पड़ा। २६ जुलाई को कानपुर से चला हुआ हैवलाक ११ अगस्त तक मंगलवार से आगे न बढ़ सका। मार्ग में उसे अवध निवासी ग्रामीणों से भयङ्कर संग्राम करना पड़ा, उसकी सेना का छठा भाग मार्ग में समाप्त हो गया। ग्रामीणों के इस वीरतापूर्ण पराक्रम को देखकर इतिहास लेखक लिखता है–"कम-से-कम अवध निवासियों के संग्राम को हमें स्वाधीनता का युद्ध मानना पड़ेगा।" ग्राम वालों ने हैवलाक को आगे नहीं बढ़ने दिया इस बीच में ताँत्या के विशेष प्रयत्न से नाना साहब को सागर, ग्वालियर इत्यादि स्थानों से पर्याप्त सहायता मिल चुकी थी। नाना ने फिर गङ्गा पार कर एक बार कानपुर पर धावा बोल दिया। जनरल नील कानपुर में था। सूचना मिलते ही हैवलाक सेना सहित नील की सहायतार्थ कानपर लौट गया। इसी बीच नाना साहब ने बिठूर पर फिर कब्जा कर लिया था। १७ अगस्त को हैवलाक ने नाना साहब की सेना पर चढ़ाई की, एक घोर संग्राम के पश्चात् दोनों ओर की सेनायें पीछे हट गईं। अब हैवलाक को पता चला कि नाना ने एक अधिक विशाल सेना जमना के किनारे कालपि में जमा कर रखी है। यदि हैवलाक लखनऊ की ओर बढ़ता तो नाना साहब कानपुर पर कब्जा कर लेते। हैवलाक घबरा गया, उसने कलकत्ता से अपनी सहायता और सेना भेजने के लिये लिखा। जब अंग्रेज लखनऊ पर हमला कर रहे थे इसी समय में तांत्या टोपे ने अंग्रेजों की सेना को हराकर कानपुर पर अपना कब्जा कर लिया। कैम्पवेल ऊटारम को लखनऊ में छोड़कर स्वयं कानपुर विजय करने के लिए चल दिया। इस समय फिर और संग्राम हुआ, इसमें अंग्रेज जीत गये। नाना साहब अपने भाई बाला साहब, भतीजे रावसाहब, सेनापति ताँत्या टोपे, घर की स्त्रियों और खजाने सहित बिठूर से निकल कर फतहपुर चला गया। नाना साहब ने ताँत्या टोपे को शिवराजपुर भेजा वहा पहुँचकर तात्यां टोपे ने ४२ नं० कम्पनी की देशी पलटन को तोड़ कर अपनी ओर कर लिया और इस पलटन की सहायता से फिर एक बार विठूर पर जाकर कब्जा कर लिया हैवलाक लखनऊ जाना चाहता था। तांत्या ने पीछे से इनके ऊपर आक्रमण कर दिया। उसने लखनऊ जाने का विचार छोड़ दिया। इस बार फिर तात्या से हैवलाक का युद्ध हुआ। तांत्या की सेना हार गई। तांत्या टोपे बचकर सेना सहित नाना के पास फतहपुर पहुंच गया। इसके बाद तात्या गुप्त रीति से ग्वालियर पहुंचा ग्वालियर के निकट मुषर की छावनी में सींधिया की विशाल सेना थी। इस सेना को तोड़कर अपनी ओर मिला लिया। इसमें सवार, पलटनें तथा तोप खाना भी था, सबको साथ लेकर कालपि पहुंचे। कालपि का किला

कानपुर से ४६ मील दूर जमुना पार था। इसे युद्ध की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान समझ कर कालपी के किले पर तांत्या ने ६ नवम्बर को कब्जा कर लिया। अब नाना ने कालपी को अपना केन्द्र बनाया। नाना साहब को वहाँ पर नियुक्त किया और तांत्या कालपी से सेना लेकर फिर कानपुर की ओर बढ़ा। निःसन्देह शौर्य पराक्रम, स्फूर्ति, अन्य शत्रुओं को अपने पक्ष में करने की शक्ति तांत्या में कूट-कूट कर भरी हुई थी। जनरल बिनढम कानपुर में था। तांत्या ने उसे चारों तरफ से घेर लिया। बाहर से सामग्री की सहायता सर्वथा बन्द थी। बिनढम अपनी सेना सहित कानपुर से युद्धार्थ बाहर निकला। २६ नवम्बर को घमासान युद्ध थाएड नदी पर हुआ। तांत्या की इस दिन युद्ध में पर्याप्त हानि हुई। किन्तु बड़ा कुशल सेनापति था, शत्रु की निर्बलता को समझ गया। तांत्या की योग्यता को बिनढम इतिहास लेखक मालसेन अंग्रेज लिखता है—"विद्रोही सेना का नेता मूर्ख न था, विनढम ने उसे जो हानि पहुंचाई उससे डर जाने के स्थान पर वह अंग्रेज सेनापति को अच्छी प्रकार से समझ गया। तांत्या टोपे ने उस समय विनढम की स्थिति और उसकी आवश्यकता को इतनी अच्छी प्रकार पढ़ लिया, जिस प्रकार कोई खुली हुई पुस्तक को पढ़ लेता है। तांत्या में एक सच्चे सेनापति के स्वाभाविक गुण विद्यमान थे। उसने विनढम की इन कमजोरियों से लाभ उठाने का निश्चय कर लिया।" अगले दिन तांत्या की सेना ने विनढम की सेना को तीन ओर से घेर पीछे हटाना प्रारम्भ किया। यहाँ तक कि बढ़ते-बढ़ते आधा कानपुर तांत्या की सेना के कब्जे में आगया। तीन दिन के निरन्तर संग्राम के पीछे सारा नगर तांत्या टोपे ने जीत लिया। विनढम की सेना ने हार पर हार खाई और मैदान छोड़कर भाग गई। अंग्रेज सेना के अनेक अच्छे अफसर मारे गये। अंग्रेज सेना की पराजय के विषय में एक अंग्रेज ने इस प्रकार लिखा है—

"इन भारतवासियों ने जिन्हें हम तुच्छ समझ रहे हैं और चिढ़ाते रहे हैं, अंग्रेजी सेना उसका कैम्प उसका सामान और मैदान सब कुछ छीन लिया। शत्रु को अब यह कहने का अधिकार हो गया कि फिरङ्गी पिट गये। ये पिटे हुए फिरङ्गी अपनी खाइयों में लौट आये, उनके खेमे उलट दिये गये, सामान छीन लिया गया, ऊँट, घोड़े हाथी इत्यादि सब कुछ ले लिया। यह समस्त घटना अत्यन्त शोक-जनक और लज्जास्पद।" चारलेस बाल भर कालिन कैम्पबेल लखनऊ से कानपुर को चल दिया ताँत्या टोपे ने अंग्रेज सेना को रोकने के लिये गंगा का पुल तोड़ दिया, गंगा के ऊपर तोपें लगादीं। इस समय नाना साहब भी तांत्या की सहायतार्थ कानपुर पहुंच गये। सर कैम्पबैल तांत्या टोपे की तोपों से बचकर अन्य स्थान से गंगा पार कर ३० नवम्बर को कानपुर के निकट पहुंच गया। मालसेन लिखता है कि—"सेनापति के रूप में तांत्या टोपे की स्वाभाविक योग्यता बहुत ही बढ़ी-चढ़ी हुई थी। गंगा के किनारे ही उसने कैम्पबैल की सेना को घेर लिया, पर्याप्त दिनों नक घोर संग्राम होता रहा। अंग्रेजों की विजय हुई। कानपुर पुनः उनके हाथ में आ गया। तांत्या अपनी सेना सहित कालपी की ओर चल दिया। अंग्रेजी सेना ने उसका पीछा किया। शिवराजपुर में फिर युद्ध हुआ। तात्या बचकर सेना सहित कालपी की ओर चला गया। अंग्रेजों के हाथों में कानपुर फिर आ गया। इस बार सर कालिन कैम्पबैल ने नाना साहब के बिठूर के महलों को गिराकर जमीन में मिला दिया। एक लेखक श्री आनन्दीप्रसाद मिश्र ने इस विषय में इस प्रकार लिखा है कि—

नाना साहब को पुत्री मैना

"अंग्रेज सेनापति ने बिठूर में जाकर नाना साहब के महलों को लूटा, फिर महलों को तोप के गोलों से उड़ाने का निश्चय किया। उस समय नाना साहब की अत्यन्त सुन्दर बालिका बरामदे में आकर खड़ी हो

गई और उसने सेनापति को गोले बरसाने से मना किया। उसे देखकर सेनापति ने आश्चर्य किया, क्योंकि महलों को लूटते समय वह बालिका कहीं भी दिखाई नहीं दी थी। जिस समय नाना साहब कानपुर छोड़ कर गये, अपनी पुत्री मैना को जो बिठूर के महलों में रहती थी साथ न ले जा सके। उस अल्पवयस सुन्दर, करुणा पूर्ण मुख वाली बालिका को देखकर सेनापति को भी दया आई उसने मैना से पूछा कि—आप क्या चाहती हैं। बालिका ने शुद्ध अंग्रेजी भाषा में उत्तर दिया—"मेरे पिता जी ने आपके विरुद्ध शस्त्र उठाये हैं, वे दोषी हैं किन्तु इस जड़ पदार्थ मकान ने आपका क्या बिगाड़ा है। यह स्थान मुझे बहुत प्रिय है इस मकान की आप रक्षा करें।" इसके पश्चात् मैना कुमारी ने कहा कि—"मैं जानती हूँ कि आप जनरल हैं आपकी प्यारी कन्या "मेरी" मेरी सहेली थी। वह मुझे हृदय से चाहती थी। उस समय आप भी हमारे यहाँ आते थे और आप मुझे अपनी पुत्री के समान ही प्यार करते थे। आप वे सब बातें भूल गये हैं। मेरी की मृत्यु से मैं बहुत दुःखी हुई थी उसका एक पत्र अब तक मेरे पास है।' यह सुनकर सेनापति को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह नाना साहब की कन्या मैना को पहचान गया। उसने कहा कि सरकार की आज्ञा है—"कि नाना साहब का कोई चिह्न शेष नहीं रहना चाहिये।" फिर भी मैं तुम्हारी रक्षा का प्रयत्न करूँगा। उसी समय प्रधान सेनापति आऊटरम वहाँ पहुंचा, उसने बिगड़कर कहा कि अभी तक ये महल क्यों नहीं उड़ाये। जनरल ने विनय पूर्वक कहा—"क्या किसी प्रकार नाना का महल बच सकता है।" आऊटरम ने उत्तर दिया कि गवरनर जनरल तथा लंदन के मन्त्री मण्डल का यह मत है—कि नाना का कोई चिह्न शेष न रहें, सब नष्ट-भ्रष्ट कर दिये जांय।" सेनापति मन में दुःखी होकर चला गया। उसी दिन क्रूर जनरल आऊटरम की आज्ञा से तोप के गोले बरसने लगे। घण्टे भर में वह राज महल मिट्टी में मिल गया। महल को उड़ाने से पूर्व मैना की खोज सारे राजमहल में की गई, किन्तु वह न जाने कहाँ गई। जब रात हो गई, अर्धरात्रि के समय चान्दनी में फिर मैना कुमारी स्वच्छ वस्त्र पहने हुए नाना साहब के भग्न प्रासाद के ढेर पर बैठी रोती हुई देखी गई। कुछ सैनिकों ने उसकी रोने की आवाज को सुना। उसे सुनकर वे तथा क्रूर आऊटरम भी आया, उस जनरल ने बालिका को पहचान लिया। कन्या से अनेक प्रश्न किये, वह रोये ही जा रही थी, किसी भी प्रश्न का उत्तर उसने नहीं दिया। वह किसी से डरी नहीं। जनरल ने उसे गिरफ्तार करके हथकड़ी लगाली और कानपुर के किले में कैद कर दी गई। कुछ दिन पश्चात् जिन्दा मैना को आग में जला दिया गया। इसके कुछ दिन पश्चात् महाराष्ट्रीय इतिहास लेखक महादेव चिटमवीस के 'बाँखर' पत्र में यह समाचार छपा—"कल कानपुर के किले में एक भीषण हत्या-काण्ड हो गया। नाना साहब की एक मात्र कन्या मैना धधकती हुई आग में जलाकर भस्म कर दी गई। भीषण अग्नि में शान्त और सरल मूर्ति अनुपम बालिका को जलता देख सबने उसे देवी समझ प्रणाम किया।"

तांत्या टोपे अपनी सेना सहित यमुना के उत्तर में था वह यमुना पार कर चरखारी पहुँचा। वहाँ के राजा ने स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग लेने से इन्कार कर दिया तांत्या ने चरखारी पर चढ़ाई कर दी। राजा से २४ तोपें और तीन लाख रुपया युद्ध के व्ययार्थ ले लिया। और वह कालपी पहुंच गया। वहाँ महारानी लक्ष्मीबाई का एक पत्र मिला, उसमें झांसी पहुंच कर सहायता के लिये लिखा था तांत्या झांसी को अपनी विशाल सेना सहित बढ़ा। कम्पनी की सेना एक बार संकट में पड़ गई। एक ओर से लक्ष्मीबाई दूसरी ओर तांत्याटोपे की सेना थी। किन्तु कम्पनी की सेना ने खूब साहस का कार्य किया। तांत्या की सेना ने डटकर युद्ध किया किन्तु अंग्रेजों की हलकी तोपें थी उनको साथ लेकर अनेक छोटी-छोटी टुकड़ियों ने तांत्या की सेना पर हमला किया। तांत्या को बेतवा पार जाना पड़ा। करनल रोज ने पीछा किया। तांत्या

की भारी-भारी तोपें बेतवा के रेते में फँस गईं। भारी बोझ के कारण खिच नहीं सकीं, तांत्या को हार खाकर भागना पड़ा। तांत्या के १५०० सैनिक मारे गये। तांत्या एरच घाट और कौच होकर कई दिन में कालपी पहुँचा। लक्ष्मीबाई की एक सहेली काशीबाई वीरता पूर्वक युद्ध करती हुई इस युद्ध में मारी गई। झाँसी का कुछ दिन पश्चात् पतन हो गया। महारानी लक्ष्मीबाई कुछ साथियों सहित कालपी पहुंच गई। प्रातः काल रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब, रायसाहब, और तांत्याटोपे में परस्पर बात-चीत हुई। बांदा का नवाब, शाहगढ़ और बानापुर के राजा तथा अनेक क्रान्तिकारी नेता उस समय अपनी-अपनी सेना सहित कालपी में पहुंचे हुए थे। इस विशाल सेना से अंग्रेजों पर विजय पाना अधिक कठिन कार्य नहीं था। किन्तु क्रान्तिकारियों में कोई एक व्यक्ति ऐसा न था जो सबको अपनी आज्ञा के अनुसार चलाकर कार्य ले सके। महारानी झांसी सबसे योग्य थी, किन्तु अपनी उसकी सेना सारी की सारी झांसी में काम आ चुकी थी। वह केवल २२ वर्ष की स्त्री थी अतः उसे सेनापति नहीं बनाया गया। यही भारी भूल क्रान्तिकारियों से हुई। तांत्याटोपे वीर और दक्ष सेनापति था किन्तु वह साधारण घराने में उत्पन्न हुआ था। प्राचीन खानदानी नरेशों का एक स्त्री के व साधारण कुल में जन्म लिए हुए मनुष्य के आधीन काम करना उस समय सरल न था। ठीक यही दोष दिल्ली के पतन का कारण बना था। फिर भी महारानी कुछ सेना लेकर कालपी से ४२ मील दूर कंचगाव पहुंची। सर ह्यू रोज की सेना से महारानी की टक्कर हुई। नेताओं का मतभेद अव्यवस्था का कारण बना। किसी ने भी रानी को यथेच्छ सहायता नहीं दी। परिणाम यह हुआ कि फिर कञ्च गाव में क्रान्तिकारियों की हार हुई। किन्तु क्रान्तिकारी सेना सुरक्षित रूप में कालपी लौट आई। फिर सर ह्यू रोज ने कालपी पर हमला किया। रानी ने अपनी सेना को उत्साहित किया, वह अपने सेना के सवारों सहित स्वयं रोज के मुकाबले के लिये आगे बढ़ी। खूब विकट संग्राम हुआ। एक बार अंग्रेजी सेना का दाहिना भाग पीछे हट गया। कम्पनी के तोपची अपनी तोपें छोड़ कर भाग गये। लक्ष्मीबाई घोड़े पर सबसे आगे थी। फिर रोज ने बढ़कर मुकाबला किया, अन्त में अंग्रेजों की विजय हुई। २४ मई १६५८ को कालपी अंग्रेजों के हाथ में आ गई। पर्याप्त सामान भी कालपी के किले में अंग्रेजों के हाथ आया। लक्ष्मीबाई, रावसाहब, तांत्याटोपे थोड़ी सी सेना सहित बच कर निकल गये। अब इनके पास सामान भी नहीं था, न कोई ढंग का किला था। फिर महारानी तथा तांत्या दोनों ने धैर्य नहीं छोड़ा। तांत्या गुप्त रीति से ग्वालियर पहुँचा महाराजा सींधिया की सेना और प्रजा को अपनी ओर करने में तात्यां सफल हो गया। इस नई सेना को लेकर वह फिर पीछे मुड़ा। गोपालपुर में फिर ये सब मिल गये।

लक्ष्मीबाई ने ग्वालियर विजय करने की सम्मति दी। अतः सब क्रान्तिकारी २८ मई को ग्वालियर पहुंच गये। महाराजा सींधिया से पत्र लिखकर सहायता मांगी। किन्तु सीन्धिया १ जून को सेना, तोपखाना लेकर मुकाबला करने आया। महारानी लक्ष्मीबाई केवल ३०० सवारों को लेकर सीन्धिया की तोपों पर टूट पड़ी। सीन्धिया की अधिक सेना पहले ही तात्यां को वचन दे चुकी थी, अतः वह सब अपने अफसरों सहित क्रान्तिकारियों से आ मिले। जिससे ग्वालियर की सब तोपें ठण्डी पड़ गई जयाजीराव सीन्धिया अपने मन्त्री दिनकर राव सहित मैदान छोड़ आगरे की ओर भाग गये।

ग्वालियर की प्रजा ने हर्ष के साथ विजयी क्रान्तिकारियों का स्वागत किया। ग्वालियर की सेना ने पेशवा नाना साहब के प्रतिनिधि राव साहब को पेशवा मानकर तोपों की सलामी दी सींधिया का सारा कोष अमरचन्द भाटिया अर्थसचवि ने क्रान्तिकारियों को सोंप दिया। ३ जून १६५८ को फूल बाग में दरबार हुआ। सब सेना और प्रजा उपस्थित थी। सारे दरबार ने पेशवा का शिरपना और कलगी तुर्रा राव साहब

को पेशवा मानकर उनके सिर पर रक्खा। पेशवा के मन्त्री भी नियुक्त हुए। तांत्यांटोपे प्रधान सेनापति बनाए गये। बीस लाख रुपये सेना में बांट दिये गए। अन्त में तोपों से सलामी हुई।

इस प्रकार तात्यां और लक्ष्मीबाई की योग्यता से क्रान्तिकारियों का दिल्ली, कानपुर और लखनऊ के समान एक बड़ा केन्द्र ग्वालियर भी बन गया। इतिहास लेखक मालसेन लिखता है - "इस प्रकार जो बात असम्भव प्रतीत होती थी वह तो हो गई सर ह्यू रोज समझ गया — अब देर करने से कितनी बड़ी हानि हो सकती है। यदि ग्वालियर तुरन्त क्रान्तिकारियों के हाथों से न छीन लिया गया तो कोई यह पहले से नहीं कह सकता कि परिणाम क्या कितना बुरा हो सकता है। यदि विद्रोहियों को अवकाश मिल गया तो तात्यांटोपे जिसका राजनैतिक और सैनिक बल ग्वालियर पर कब्जा करने के कारण अत्यन्त बढ़ गया है और जिसके पास इस समय ग्वालियर के समस्त जन वहाँ का धन और सामान विद्यमान कालपी की पराजित सेना के अवशेषों पर एक नई सेना खड़ी कर लेगा और समस्त भारत के अन्दर एक मराठा विप्लव उत्पन्न कर देगा। तात्यांटोपे इस काम में बड़ा चतुर था, ऐसी अवस्था में सम्भव है कि वह पेशवा का झण्डा फहराकर दक्षिण महाराष्ट्र के जिलों को भड़का देगा। उन जिलों में अंग्रेजी सेना विद्यमान नहीं है। यदि मध्यभारत में क्रान्तिकारियों को अच्छी सफलता मिल गई तो सम्भव है कि दक्षिण के लोग फिर से पेशवा की उस सत्ता के लिए खड़े हो जायें, जिसके लिए उनके पूर्वज युद्ध कर चुके थे और अपना रक्त बहा चुके थे।

लक्ष्मीबाई ने इस बात पर बल दिया कि सब कार्य छोड़कर सेना को तुरन्त मैदान में लाकर व्यवस्था में किया जाये। राव साहब तथा अन्य नेताओं ने महारानी की इस अमूल्य सम्मति की अवहेलना की। अमूल्य समय उत्सवों और दावतों में खोया गया।"

इतने में सर ह्यू रोज अपनी सेना सहित वेग के साथ ग्वालियर पर टूट पड़ा। वह अपने साथ महाराजा सीन्धिया को लाया था। उसने घोषणा की कि कम्पनी की सेना केवल सीन्धिया को ग्वालियर की गद्दी पर फिर से बैठाने के लिए आई है। तांत्या टोपे मुकाबले के लिये आगे बढ़ा। ग्वालियर की सेना इससे पूर्व उत्तर भारत में एक बार कम्पनी की सेना से हार खा चुकी थी। अतः थोड़ी देर के संग्राम के पश्चात् ग्वालियर की सेना में उथल-पुथल मच गई। रावसाहब घबरा गया। लक्ष्मीबाई ने फिर एक बार बिखरी हुई सेना में नई जान फूँकी। उसने फिर से सेना की व्यूह रचना की और नगर के पूर्वीय फाटक की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। लक्ष्मीबाई इतनी वीरता से लड़ी कि जनरल स्मिथ मदान छोड़कर पीछे हट गया। १७ जून को लक्ष्मीबाई की विजय हुई। १८ जून को जनरल स्मिथ जनरल ह्यरोज भारी सेना सहित महारानी से लड़ने के लिए मैदान में आये, प्रातः काल से सायंकाल तक भयङ्कर संग्राम हुआ। महारानी की वीरता से लाशों के ढ़ेर लग गये। अंग्रेज उसका युद्ध देखकर आश्चर्य में पड़ गये, किन्तु अंग्रेज सेना ने चारों ओर से रानी को घेर कर रखा। इस दिन के युद्ध में महारानी का अपनी सहेलियों सहित बलिदान हो गया। महारानी के वीरता-पूर्ण युद्ध और बलिदान का विस्तृत विवरण पृथक प्रकरण में पढ़ें।

कहा जाता है कि नाना साहब और बाला साहब, ने अन्य क्रान्तिकारी साथियों सहित जिन में स्त्री बालक और पुरुषों ने जिनकी संख्या साठ हजार बताई जाती है, नैपाल में प्रवेश किया। नैपाल के महाराज से अंग्रेजों के विरुद्ध नाना साहब ने सहायता की प्रार्थना की, और इसके पश्चात् नैपाल में रहने की आज्ञा चाही। किन्तु नैपाल के महाराज जङ्गबहादुर ने इन में से कोई भी बात स्वीकार नहीं की। बल्कि अंग्रेजी सेना को क्रान्तिकारियों के विनाशार्थ नपाल प्रवेश की आज्ञा दे दी। अनेक क्रान्तिकारी पहाड़ों

जङ्गलों में खप गये। अनेक हथियार फेंक कर भारत वापिस लौट आये। नाना साहब का जनरल होप ग्राएट के साथ कुछ पत्र-व्यवहार हुआ। जिसमें अन्तिम पत्र नाना साहब ने अंग्रेजों का अन्याय दिखाते हुए लिखा—"आपको भारत पर कब्जा करने का और मुझे दण्डनीय सिद्ध करने का क्या अधिकार है ? भारत पर राज करने का आपको किसने अधिकार दिया ? क्या ! आप फिरङ्गी लोग बादशाह हैं और हम इस अपने देश के अन्दर चोर हैं ? इसके पश्चात् कुछ पता नहीं चलता कि नाना साहब का क्या हुआ ?

अब केवल इनके मुख्य सेनापति तांत्या टोपे के अन्तिम प्रयत्नों का वर्णन करना शेष रहता है। तांत्या टोपे के साथी सब खफ़ चुके थे। अंग्रेजों की सत्ता पुनः भारत में जम चुकी थी। अब तात्यां के पास न कुछ सामान था न कोई ढंग की सेना ही थी। ऐसी अवस्था में भी तांत्या ने आशा नहीं छोड़ी। २० जून १६५८ को ग्वालियर से निकल कर अपने साथी रावसाहब, बाँदा के नवाब और कुछ बचे-खुचे मुट्ठी भर सैनिकों सहित तात्यां ने नर्मदा की ओर बढ़ना चाहा। तांत्या का उद्देश्य नर्मदा पार कर पेशवा के नाम पर दक्षिण के नरेशों और प्रजा को क्रान्ति के लिये फिर से तैयार करना था। २२ जून को अंग्रेजों ने उसे जौरा अलीपुर में जा घेरा। तात्यां फिर बचकर निकल गया। तांत्या किसी भी प्रकार से नर्मदा पार करना चाहता था। अंग्रेज उसे नर्मदा पार करने से रोकने का जी जान से यत्न कर रहे थे। ताँत्या ने फिर भरतपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। अंग्रेज सेना तांत्या को पकड़ने के लिये भरतपुर पहुंच गई। तात्यां वहां से जयपुर की ओर बढ़ गया। जयपुर की प्रजा और सेना तात्यां से प्रेम करती थी। तांत्या ने उन्हें तैयार करने की सूचना दी। अंग्रेजों को जब पता चला तो उन्होंने तुरन्त अपनी अंग्रेजी सेना नसीराबाद से जयपुर की ओर भेज दी। तांत्या यह देख दक्षिण की ओर मुड़ गया। करनल होम्स के आधीन एक सेना ने उसका पीछा किया। ताँत्या अंग्रेजी सेना से आंख बचाकर टोंक पहुँच गया। टोंक के नवाब ने नगर के सब द्वार बन्द कर लिये और अपनी कुछ सेना चार तोपों सहित तात्याँ से लड़ने के लिये भेज दी। यह सेना सामने आते ही तात्याँ से जा मिली और अपनी तोपें तांत्या को सोंप दीं। तांत्या नई सेना और तोपों को लेकर इन्द्रगढ़ की ओर बढ़ा। वर्षा बड़े जोर से हो रही थी। पीछे होम्स अंग्रेज सेना सहित तांत्या का वेग से पीछा कर रहा था। राजपूताने की ओर से सेनापति रॉबर्टस अपनी सेना लिये तांत्या से लड़ने आ रहा था। तांत्या के सामने खूब चढ़ी हुई चम्बल नदी थी। अब तांत्या बचकर पूर्वोतर में बूँदी की ओर बढ़ा। वह भीलवाड़ा नामक ग्राम में जाकर ठहरा। ७ अगस्त १८५८ को जनरल रांबर्टस ने हमला किया। सारे दिन संग्राम होता रहा। रात को तांत्या सेना और सामान सहित उदयपुर राज्य में कोठरा ग्राम की ओर निकल गया। १४ अगस्त को फिर अंग्रेजों की सेना ने तांत्या को कोटरा में आ घेरा। इस बार तांत्या को अपनी तोपें मैदान में छोड़ पीछे हटना पड़ा। अंग्रेजी सेना रात- दिन इसका पीछा कर रही थी।

तांत्या टोपे के अन्तिम प्रयत्न

तांत्या फिर चम्बल की ओर बढ़ा। इस समय अंग्रेजी सेना पीछे से बढ़ी चली आ रही थी। दाहिनी ओर दूसरी अंग्रेजी सेना बढ़ रही थी और इसके ठीक सामने चम्बल के किनारे ही शत्रु की सेना थी। किन्तु वह वीर धोखा देकर किसी तरह बचकर चम्बल के तट पर पहुँच गया और आश्चर्य जनक स्फूर्ति से अंग्रेजी सेना के कुछ थोड़े ही अन्तर पर चम्बल नदी को पार कर गया। चम्बल नदी अब अंग्रेज सेना और तांत्या के मध्य में पड़ गई। किन्तु तांत्या के पास न भोजन सामग्री थी, न तोपें। तांत्या सीधे झालरा पाटन की ओर बढ़ गया। वहाँ का राजा अपनी सेना और तोपों सहित

तांत्या से लड़ने के लिए आया। किन्तु सम्मुख आते ही वहाँ की सेना तांत्या से आ मिली। उसके हाथ में ३२ तोपें आ गईं। वहां के राजा से १५ लाख रुपये युद्ध के खर्च के लिये ग्रहण किये। पांच दिन तक तांत्या वहां ठहरा। उसने अपनी सेना को वेतन दिया। इस समय भी उसके रायसाहब और बाँदा के नवाब दोनों थे। तीनों ने मिलकर फिर नर्मदा पार करने का विचार किया। अंग्रेजों ने इन्हें रोकने के लिये सेनाओं का जाल बिछा रखा था। किन्तु तांत्या के पास अब मुकाबले के लिए पर्याप्त सेना तथा सामग्री थी। वह इन्दौर की ओर बढ़ा। इस समय छः बड़े-बड़े अंग्रेज सेनापति रॉबर्ट्स, होम्स, पार्क, मिचेलु, होप और लौरवार्ट तांत्या को घेरने का प्रयत्न कर रहे थे। कई बार तांत्या की सेना अंग्रेजों को स्पष्ट दिखाई देती किन्तु फिर भी वह बचकर निकल जाता था। रामगढ़ के निकट मिचले की सेना तांत्या पर टूट पड़ी। तांत्या टोपे अपनी तीस तोपें वहीं छोड़कर, बचकर निकल गया। मार्ग में एक स्थान पर इसे चार तोपें और मिलीं। इसके पश्चात् उत्तर की ओर बढ़कर तात्यां ने सीन्धिया के नगर ईशगढ़ पर हमला किया। वहाँ पर आठ तोपें और मिल गईं। तांत्या नर्मदा पार करने की धुन में था, अंग्रेज उसे रोकने का पूर्ण प्रयत्न कर रहे थे। तांत्या की समस्त यात्राओं, चालों, विजयों और पराजयों का लिखना सर्वथा असम्भव है। अंग्रेज लेखक लिखता कि—"इसके पश्चात् तांत्या के बचने का और भागने का वह आश्चर्य जनक क्रम प्रारम्भ हुआ और वह दस मास तक चलता रहा। इससे यह प्रतीत होता था कि हमारी विजय निष्फल हो गई। इससे तांत्या योरुप में हमारे अंग्रेज सेनापतियों की अपेक्षा भी अधिक प्रसिद्ध हो गया। तांत्या की समस्या सरल न थी। +++ उसे अपनी अव्यवस्थित सेना को निरन्तर इतनी तेज गति से ले जाना पड़ता था, जिससे कि उसका पीछा करने वाली सेना ही नहीं, बल्कि वे सेना भी जो कभी दाहिनीं ओर से ओर कभी बाईं ओर से अकस्मात् उस पर टूट पड़ती थी, उसके बच जाने के कारण हाथ मल जाती रहती थी। एक ओर वह इस प्रकार उन्मत्तवत् सेना को भगाये लिये जाता था, दूसरी ओर वह दर्जनों शहरों पर कब्जा कर लेता था। अपने साथ नई युद्ध सामग्री इकट्ठी कर लेता था और इसके अतिरिक्त अपनी सेना के लिये इस प्रकार के नये स्वयं सेवक (रंगरूट) भरती कर लेता था जिन्हें कि साठ साठ मील प्रतिदिन लगातार भागना पड़ता था। तांत्या ने अपने अल्प साधनों से जो कुछ कर दिखाया उससे सिद्ध है कि उसकी योग्यता साधारण न थी। वह उस श्रेणी का मनुष्य था जिस श्रेणी का कि हैदरअली था। तात्यॉं नागपुर होकर मद्रास पहुंचना चाहता था। यदि वास्तव में वह मद्रास पहुंच जाता तो वह हमारे लिए इतना ही भयंकर सिद्ध होता जितना कि हैदर अली किसी समय सिद्ध हो चुका था।" जनरल पार्क और करनल नेपियरादि तात्यॉं का पीछा खूब तेजी से कर रहे थे फिर भी तांत्या बचकर निकलता रहा। अंग्रेज लिखता है—"गर्मियाँ निकल गईं, सारी वर्षा निकल गई, सारा शीतलकाल बीत गया और फिर सारा गर्मी का ऋतु निकल गया तो भी तांत्या निकला चला जा रहा था। उसके साथ कभी दो सहस्र थके हुए सैनिक होते थे और कभी पन्द्रह हजार।"

इसके पश्चात् तांत्या ने अपनी सेना के दो टुकड़े किए। एक अपने आधीन दूसरा रावसाहब के आधीन। दोनों दल दो ओर से आगे बढ़े। कई स्थानों पर अंग्रेजी सेना से लड़ाइयाँ लड़ते हुए दोनों दल ललितपुर में जाकर फिर मिल गये। यहां पर दक्षिण में मिचेल की सेना, पूर्व में करनल लिडेल की सेना, उत्तर में करनल मीड की सेना, पश्चिम में करनल पार्क की सेना और चम्बल की ओर से जनरल राबर्ट्स के अधीन की एक सेना। पांच ओर से पांच अंग्रेज सेनाओंने तात्यॉं को घेर लिया। तांत्या ने अंग्रेजों को धोखा देने के लिए दक्षिण की यात्रा छोड़ कर बहुत तेजी से उत्तर की ओर बढ़ना आरम्भ किया, अंग्रेज

समझे कि तांत्या ने दक्षिण जाने का विचार छोड़ दिया। किन्तु तांत्या फिर अकस्मात् मुड़ गया। तेजी से उसने बेतवा नदी पार कर ली। कजूरी में अंग्रेज सेना के साथ एक संग्राम हुआ। वहां से रामगढ़ पहुंच गया और सीधा तीर के समान दक्षिण की ओर लपका। अंग्रेज उसकी इन चालों से घबरा गए। जनरल पार्क एक ओर से लपका। मिचेल पीछे मे, बेचर सामने से, तांत्या की ओर बढ़ा। किन्तु तांत्या अपनी सेना सहित नर्मदा पहुँच ही गये। और होशंगाबाद के निकट संसार के बड़े से बड़े युद्ध विशारदों को चकित कर अपनी सेना सहित नर्मदा को पार कर गया। इतिहास लेखक मालसेन लिखता है—"जिस दृढ़ता और धैर्य के साथ तांत्या ने अपनी इस योजना को पूरा किया, उसकी प्रशंसा न करना असम्भव है।' लन्दन टाइम्स के सम्वाददाता ने लिखा है कि "हमारा अत्यन्त अद्भुत मित्र तांत्या इतना कष्ट देने वाला और चालाक शत्रु है कि उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। पिछले जून के मास में उसने मध्य-भारत में तहलका मचा रखा है। उसने हमारे स्थानों को रोंद डाला। खजानों को लूट लिया। हमारे मैगजीनों को खाली कर दिया है। उसने सेनायें इकट्ठी कर ली हैं, और खाइयाँ खोदी हैं। लड़ाइयां लड़ देशी नरेशों की तोपें छीन ली हैं और तोपों को खो दिया है। फिर और तोपें प्राप्त की हैं उसकी यात्रा विद्युत के समान तेज गति से होती है...कभी नर्मदा के इस पार कभी उस पार। वह तीस-तीस और चालीस-चालीस मील प्रतिदिन चला है। हमारे सैन्यदलों के कभी वह बीच से निकल गया, कभी पीछेसे कभी सामने से। कभी पहाड़ों पर कभी नदियों पर से, कभी नदियों में से। कभी घाटियों में से, कभी दलदलों में से, कभी आगे से, कभी पीछे से कभी घूमकर। फिर भी हाथ नहीं आया।

अन्त में अक्तूबर १८५८ में अपनी सेना सहित रावसाहब और बांदा के नवाब को साथ लिए हुए नागपुर के निकट पहुंच गया। लार्ड कैनिंग और उसके साथी खूब घबरा गये। मालसेन लिखता है—जिस मनुष्य को महाराष्ट्र अन्तिम पेशवा का न्याय उत्तराधिकारी स्वीकार करता था उसका भतीजा सेना सहित महाराष्ट्र की भूमि पर जा पहुंचा, हमें यह भय था कि कहीं ऐसा न हो कि तांत्या की सेना समस्त महाराष्ट्र को हमारे विरुद्ध शस्त्र उठा लेने के लिए उत्तेजित कर दे और जब सारी महाराष्ट्र जाति विदेशियों के विरुद्ध शस्त्र उठा ले तो इसे देखकर दक्षिण (निजाम के प्रान्त) के लोग भी रोके न रुक सकेगें।

निस्सन्देह यह घटना एक वर्ष पूर्व हुई होती तो सम्भव था कि शेष भारतीय इतिहास की गति पलटकर दूसरी ही हो जाती, देश का दुर्भाग्य था कि इस पिछले एक वर्ष के भीतर भारतवासियों का उत्साह पर्याप्त टूट चुका था। उत्तर भारत के लोग जिस तात्यां को स्वयं आ-आकर प्रसन्नता से सर्व प्रकार की सहायता करते थे। वहां उसी तांत्या के पास नागपुर के महाराष्ट्रीय लोग अब आने से भी डर गये। सहायता तो करना दूर रहा। तांत्या की सेना कुछ दिन वहां ठहरी, अंग्रेज सेना ने फिर उसे चारों ओर से घेरना आरम्भ कर दिया। तांत्या के उत्तर और दक्षिण में अंग्रेजों की विशाल सेना थी। उनकी सेना नर्मदा पार कर बढ़ी चली आ रही थी। नागपुर से तांत्या को कोई सहायता न मिल सकी। तात्यां ने विवश होकर बड़ौदा की ओर जाने का विचार किया। दोनों ओर नर्मदा के प्रत्येक घाट पर अंग्रेज सेनायें पड़ी थीं। मेजर सण्डरलैण्ड की सेना के साथ तांत्या का संग्राम हुआ। तांत्या ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि सब तोपें पीछे छोड़कर नर्मदा में कूद पड़ो। तात्यां और उसकी सेना एक पल भर से नर्मदा के पार दिखाई दी। मालसेन लिखता है—"संसार की किसी भी सेना ने कभी कहीं पर इतनी तेजी के साथ कूंच नहीं किया, जितनी तेजी के साथ कि तांत्या की भारतीय सेना इस समय कूंच कर

रही थीं।' तांत्या राजपुरा पहुँचा वहाँ के सरदार से उसने घोड़े और कुछ धन वसूल किया। अगले दिन वह छोटा उदयपुर पहुंचा। बड़ौदा यहां से केवल ५० मील था। इतने में यार्क अपनी सेना सहित छोटा उदयपुर आ पहुंचा। तात्यां ने बड़ौदा का विचार छोड़ दिया, वह फिर उत्तर की ओर मुड़ा। ठीक इसी समय बांदा के नवाब ने निराश होकर हथियार रख दिये और अंग्रेजों को आत्म-समर्पण कर दिया। अब तांत्या और रावसाहब रह गये। मालसेन लिखता है—"किन्तु ये दोनों सेना इस कठिन आपत्ति के समय भी इतने ही शान्त, धीर और चतुर बने रहे जितने कि वे पहले किसी समय में रह चुके थे।

तांत्या अब उदयपुर मेवाड़ की ओर बढ़ा। तुरन्त कई अंग्रेज सेनायें उस पर टूट पड़ीं। वह मुड़कर जंगल में घुस गया। तात्यां के लिये अब बच सकना असम्भव प्रतीत होता था। एक दिन तांत्या और रावसाहब प्रतापगढ़ की ओर बढ़े। मेजर रांक ने सामने से उनका मार्ग रोक लिया। तात्यां मेजर राक की सेना को परास्त करता हुआ आगे निकल गया। २५ दिसम्बर को तांत्या बांसबाड़े के जंगल से निकला। ठीक इसी समय दिल्ली के राजकुल का प्रसिद्ध शाहजादा फिरोजशाह जो अवध के संग्रामों में भाग ले चुका था, अपनी सेना सहित तांत्या की सहायता के लिए आ रहा था। १३ जनवरी १८५६ को ये सब मिल गये। वहाँ सींधिया का एक सरदार मानसिंह भी उसी समय इनसे आकर मिल गया। ये सब इन्द्रगढ़ में मिले। किन्तु इस समय तांत्या बुरी तरह चारों ओर से घिर रहा था। नेपिगर उसके उत्तर में, शॉवर्स उत्तर पश्चिम में, सोमरसट पूर्व में, स्मिथ दक्षिण-पूर्व में, मिचेल और वेनसन दक्षिण में और बॉनर दक्षिण पश्चिम में। ये सब तांत्या को घेर लेने के लिये बढ़े चले आ रहे थे। तांत्या बढ़ते-बढ़ते देवास पहुँचा। १६ जनवरी १८५६ को सवेरे देबास में तात्यां, रावसाहब और फिरोजशाह तीनों खेमे में बैठे बात-चीत कर रहे थे कि अकस्मात् किसी अंग्रेज अफसर का हाथ तांत्या की कमर पर पड़ा, अंग्रेज सिपाही खेमे में आ डटे। प्रतीत होता था तांत्या पकड़ लिया गया, किन्तु अकस्मात् ये तीनों नेता अंग्रेजों के चंगुल से निकल गये। चारों ओर खोज हुई किन्तु इनका कुछ पता न चला। २१ जनवरी को ये तीनों अलवर के निकट शिखर जी में दिखाई दिये। अंग्रेजी सेना इन्हें निरन्तर घेरने का प्रयत्न कर रही थी। तांत्या की सब आशायें निराशा में परिवर्तित हो चुकी थीं। वह बहुत थका हुआ था। मानसिंह पास के जंगल में छिपा था। तांत्या ने फिरोजशाह और रावसाहब को सेना के साथ छोड़ा और स्वयं तीन साथियों सहित मानसिंह से मिलने चला गया। मानसिंह इस समय अंग्रेजों से मिल चुका था। उसे जागीर देने का वचन मिल गया था। फिरोजशाह ने तात्यां को उलटा अपने पास बुलाना चाहा। मानसिंह ने उसे रोक लिया और ७ अप्रैल १८५६ को ठीक आधीरात के समय सोते हुए वीर तांत्या को दुष्ट देशद्रोही मानसिंह ने अंग्रेजों को सोंप दिया।

१८ अप्रैल १८५६, तांत्या के लिए फाँसी का दिन नियत था। चारों ओर से सेना का पहरा था किन्तु फिर भी चारों ओर से फौज के पीछे से टीलों पर खड़े हजारों ग्रामनिवासी तांत्या को दूर से श्रद्धापूर्वक 'नमस्ते कर रहे थे। तांत्या धैर्य और उत्साह पूर्वक फाँसी के तख्ते पर चढ़ा। उसकी बेड़ियाँ काट दी गईं। तांत्या ने हँसते हुए अपने हाथ से फाँसी का फंदा गले में डाल लिया। तख्ता खिंच गया। सायंकाल तक तांत्या का शरीर (शव) फांसी पर लटकता रहा। सायंकाल को अनेक अंग्रेजों ने दौड़कर तांत्या के सिर के दो-दो चार-चार बाल तोड़ लिये। वीर तात्या की स्मृति स्वरूप उन्हें अपने पास रखा। वह वीर तांत्या भारत का मुख उज्वल कर सदैव के लिए अमर हो गया।

रावसाहब और शाहजादा फिरोजशाह एक मास पश्चात् तक जी तोड़ कर लड़े। इसके पश्चात् वेष बदल कर दोनों जंगलों में निकल गये। फिरोजशाह १८६४ तक भारत के जंगलों में घूमता रहा, फिर अवध चला गया। जहाँ १८६६ में वह अन्य अनेक निर्वासित भारतीय क्रान्तिकारियों के साथ फकीर के वेष में देखा गया।

रावसाहब तीन वर्ष पीछे पकड़ा गया और २० अगस्त सन् १८६२ को कानपुर में फाँसी पर लटका दिया गया।

इस प्रकार भारत को विदेशी शासन से स्वाधीन करने का सबसे महान् और व्यापक प्रयत्न निष्फल हो गया। और अंग्रेजी राज्य की जड़ फिर से जम गई।

पंजाब में क्रान्ति

उस समय पंजाब का चीफ़ कमिश्नर सर जॉनलारेन्स था। उसने उस समय अंग्रेजी सरकार की भक्ति रखने के लिए सिखों को भड़काया, उन्हें इस प्रकार समझाया "कि मुसलमान बादशाह तुम्हारे सिख-धर्म का नाश करने का सदा यत्न करते रहे हैं। औरंगजेब ने गुरु तेग बहादुर को कत्ल करवाया, गुरुगोविन्द के पुत्रों को कत्ल करवाया, अब अंग्रेजों की सहायता से अपने धर्म के शत्रुओं से बदला लो और दिल्ली पर चढ़ाई करके इस्लामी राज्य को समाप्त करने का अवसर है।" बूढ़े सम्राट् बहादुरशाह के नाम से एक जाली एलान उन दिनों स्थान-स्थान पर दीवारों पर लगवाया गया। जिसमें लिखा था कि बहादुरशाह की पहली आज्ञा है "कि सब सिखों को मार डाला जाय।" सम्राट् बहादुरशाह को जब पता चला तो उसने हाथी पर चढ़ कर दिल्ली की गलियों में अपने मुख से घूम-घूमकर घोषणा की कि युद्ध केवल फिरंगियों के साथ है और किसी भारतवासी को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाई जाये। पंजाब में सर जांन लारेन्स की चाल सफल हुई, सिख उनकी चालों में आ गए। सम्राट् बहादुरशाह ने अपना एक विशेष दूत रजुद्दीन पटियाला, नाभा और जीन्द के राजाओं तथा अन्य सब सिख सरदारों के पास भेजा। ताजुद्दीन इन सब से मिला और उसने मिलने के पश्चात् एक पत्र सम्राट् को दिल्ली, उसी विषय में लिखा। उसका सारांश यह था—"पंजाब के सिख सरदार सुस्त और कायर हैं। बहुत कम आशा है कि वे क्रांतिकारियों का साथ दें। ये लोग फिरंगियों के हाथ के खिलोने बने हुए हैं। मैं स्वयं इनसे एकान्त में मिला। मैंने इनके सामने अपना कलेजा पानी कर दिया है। मैंने उनसे कहा—"आप लोग फिरंगियों का साथ क्यों दे रहे हैं? और देश की स्वाधीनता के साथ विश्वासघात क्यों करते हैं? क्या आपका स्वराज्य इससे अच्छा न रहेगा? इसलिए कम-से-कम अपने लाभ के लिए ही आपको दिल्ली के बादशाह का साथ देना चाहिए।" इस पर उन्होंने उत्तर दिया "देखिये हम सब समय की प्रतीक्षा में हैं, ज्योंही हमें सम्राट् की आज्ञा मिलेगी हम एक दिन के अन्दर इन काफिरों को मार डालेंगे, किन्तु मेरा विचार है कि उन पर बिलकुल विश्वास नहीं करना चाहिए।" कुछ दिन पश्चात् सम्राट् का सन्देश लेकर कुछ सवार इन सिख राजाओं के पास पहुंचे, तो सिख राजाओं ने दिल्ली के सम्राट् के सन्देश का तिरस्कार किया और पत्र लाने वाले सवारों को भी मरवा डाला। दूत की हत्या करने का नीच कर्म करने में भी इन्होंने लज्जा न की और ये सब बात को भूल गए कि पञ्जाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र राजा दलीपसिंह और उसकी माता की अंग्रेजों ने क्या दुर्गति की थी। सब सिख राजा और सिख सरदारों ने सर जॉनलारेन्स की आज्ञा पर चल अपने देश से विश्वासघात किया। इसके फलस्वरूप क्रान्ति युद्ध की समाप्ति पर जब झज्झर के नवाब का राज्य छीना गया तो उसी में दादरी का प्रान्त जीन्द के राजा को, नारनौल का

पटियाला के राजा को और बावल का प्रान्त नाभा के राजा को इस देश-द्रोह के पारितोषिक (इनाम) के रूप में दिया गया। सम्भव है यह लोभ पहले दिखा कर ही इन्हें अंग्रेजों ने अपने जाल में फँसाया हो। कुछ भी हो सर जांनलारेन्स के तीर, सिख राजाओं के हृदय और मस्तिष्क पर चल गये। लारेन्स अपनी चाल में सफल हो गया। उसे पंजाब में शान्ति रखने तक दिल्ली को फिर से विजय करने के लिए पंजाब से सेनायें तक सब सहायता सिखों की कृपा से मिल गई। यदि पंजाब उस समय रुहेलखण्ड के समान क्रान्ति का साथ देता तो अंग्रेजों के लिए दिल्ली को ही नहीं किन्तु भारत के अन्य प्रान्तों को भी फिर विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता। इस बात को लारेन्स खूब अच्छी तरह से समझता था। अतः उसने सिखों को फँसा दिया। पंजाब की प्रजा को अपनी ओर रखने के लिए सर जाँन लारेन्स ने ६ प्रतिशत ब्याज पर कम्पनी के नाम ऋण लेना आरम्भ किया। इससे दो लाभ हुए। यह धन बड़े संकट के समय अंग्रेजों के काम में आया। दूसरे जिन सहस्रों सेठों से कम्पनी ने ऋण लिया था उन्हें कम्पनी के राज्य के बने रहने में ही अपना हित दिखाई देने लगा। वे अंग्रेजों के हितैषी बन गए। सर जाँन लारेन्स ने सरहद में मुसलमानों को अपने वश में रखने के लिए खूब धन व्यय किया। उनमें प्रचार करने के लिए अनेक मुल्ला नौकर रखे। पंजाब में सिख और गोरी पटलनों को छोड़ कर हिन्दू और मुसलमान सैनिकों की अनेक पलटनें थीं। ये सब राष्ट्रीय-क्रान्ति में भाग लेने के लिए शपथ ग्रहण कर चुके थे। अनेक नगरों को हिन्दू और मुसलिम जनता भी क्रान्ति युद्ध के साथ सहानुभूति रखती थी। इससे लारेन्स असावधान नहीं था। अब पंजाब ने क्रान्ति युद्ध में कहाँ-कहाँ भाग लिया और अंग्रेजों ने उनके दमनार्थ क्या अत्याचार किये, संक्षेप से उसी विषय में लिखते हैं—

पंजाब की सबसे बड़ी छावनी उस समय लाहौर के निकट मियांमीर में थी। यहां भारतीय सैनिक, गोरे सैनिकों से चौगुने थे। यहाँ यह निश्चय किया हुआ था कि सबसे पूर्व मियाँमीर की देशी सेनायें लाहौर के किले पर चढ़ाई करके उस पर कब्जा करें और फिर पेशावर, अमृतसर, फिलोर और जालन्धर की पलटनें एक साथ क्रान्ति आरम्भ करदें। मियाँमीर की पलटनें रावर्ट माएटगुमरी के अधीन थीं। मेरठ की छावनी के समाचार पहुंचते ही वह सावधान हो गया और उसने १३ मई को प्रातः काल ही सब सिपाहियों को परेड पर बुलाया और गोरे सवारों को तोपखाने सहित देशी सिपाहियों के चारों ओर खड़ा किया और सब देशी सैनिकों के हथियार रखवा लिये। वे विवश थे, हथियार रख चुपचाप बारगों से चले गए। उसी समय एक गोरी पलटन लाहौर के किले में पहुँची और उसने तोपखाने का भय दिखा कर देशी सिपाहियों को हथियार रखवा कर किले पर कब्जा कर लिया। देशी सैनिकों को दुर्ग के बाहर बारगों में भेज दिया। माएटगुमरी की ठीक समय की सावधानी तथा साहस और स्फूर्ति ने पंजाब को कम्पनी के हाथों से निकलने से बचा लिया। सर जाँनलारेन्स लिखता है—"यदि पंजाब चला जाता तो हमारा सर्वनाश हो जाता। उत्तरी प्रान्तों तक सहायता पहुंचने से बहुत पहले से ही समस्त अंग्रेजों की हड्डियाँ धूप में पड़ी सूखतीं और इंगलिस्तान उस विपत्ति से कभी छुटकारा नहीं पा सकता था और न एशिया में फिर से अपनी सत्ता स्थापित कर सकता था।

फीरोजपुर में क्रान्ति

१३ मई को फीरोजपुर छावनी में क्रान्ति का आरम्भ हुआ। अंग्रेजों ने मेगजीन को आग लगा दी। नगर निवासियों ने भी क्रान्ति में पूरा हाथ बँटाया। अंग्रेजों के मकान जला डाले, जो अंग्रेज मिला, मार डाला गया। तत्पश्चात् वहां की भारतीय सेना ने दिल्ली को प्रस्थान किया। गोरी सेना ने कुछ पीछा किया, किन्तु असफल हो फीरोजपुर लौट आई।

पेशावर की २४, २७ और ५१ नम्बर पैदल और ५ नम्बर सवार इन चार देशी पलटनों ने २२ मई को क्रान्ति करने का निश्चय कर रखा था। चारों पलटनें पेशावर के निकट पृथक्-पृथक् छावनियों में थीं। मियां मरे का समाचार मिलते ही अंग्रेज अफसरों ने अपनी गोरी सेना और विश्वास-पात्र देशी पलटनों को इकट्ठी कर तोपों की सहायता से चारों पलटनों से हथियार रखवा लिए, और १३ वा १४ सैनिकों को तुरन्त फाँसी पर लटका दिया जिससे सब शेष सैनिकों पर आतंक बैठ जाये। इसके पश्चात् फिर अनेक सैनिकों को फाँसी दी गई, और अनेकों को तो तोप के मुँह पर बाँध कर उड़ा दिया गया। पेशावर के निकट होती मरदान में ५५ नम्बर पलटन थी। पंजाब सरकार ने उनके अफसर करनल स्पार्टिश बुड को उस पलटन के हथियार रखवाने की आज्ञा दी। करनल को अपनी पलटन पर विश्वास था। उसने हथियार तो नहीं रखवाये किन्तु अपने कमरे से जाकर आत्महत्या करली। पेशावर की गोरी सेना तोपों सहित इस पलटन के हथियार रखवाने के लिए होती मरदान पहुंची। सिपाहियों ने जो किले में थे, उन्हें देख कर भगाना चाहते थे, किन्तु गोरी सेना के पास भारी तोपें थीं, उन्हें घेर लिया। १५० सैनिक वहीं मार दिए गये शेष को गिरफ्तार करके तोप के मुँह पर बाँध कर उड़ा दिया गया। पंजाब में विप्लव के दिनों में तोपों के बुँह पर बाँध कर उड़ाये जाने का कार्यक्रम अनेक स्थानों पर अनेक बार दुहराया गया।

सन्देह पर ही १० नम्बर सवार पलटन के हथियार रखवा लिए। इन सवारों के अपने घोड़े थे वे भी जब्त कर ५० हजार रुपये में बेच कर कम्पनी के खजाने में जमा करा दिए और इनके आठ हजार रुपये जो इनके पास से निकले वे भी छीन लिये गए और इन सब देशी सैनिकों को बलात् किश्तियों पर बैठा कर सिन्धु नदी की गहरी धार में डुबो दिया। पेशावर के निकट के प्रांत के क्रांतिकारियों को भयंकर यातनायें दे देकर मारा गया।

३० जुलाई की रात को २६ नम्बर की पलटन के अधिकांश सनिक जो हिन्दू थे, जिनके हथियार रखवाये जा चुके थे, छावनी से चल दिये। इनके ऊपर गोरों और सिखों का पहरा था। न इनके पास हथियार थे। इन्होंने विप्लव में भाग लिया था। ये रावी पार करना चाहते थे। न इन्हें रावी पार करने से रोका गया। ये रावी के तट अमृतसर की ओर बढ़े। ये थक कर तहसील फ्रेडटिक अजनाले से ६ मील दूर रावी के तट पर विश्राम कर रहे थे। अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर कूपर ने अमृतसर के तहसीलदार को कुछ सशस्त्र सिख सिपाहियों सहित उन्हें घेरने को भेजा और स्वयं कूपर, लगभग ४ बजे ९० सवारों सहित मौके पर पहुँचा। उन थके हुए भूखे लोगों पर गोलिया चलाई गईं। इनकी संख्या लगभग ५०० थी। इनमें से १५० गोलियों से जख्मी हो कर पीछे हटे और रावी में डूब गए। कूपर स्वयं लिखता है कि वे निर्बलता के कारण धार में डूब गए और रावी का जल उनके रक्त से रंगा गया। कुछ भाग कर तैर कर एक मील के अन्तर पर एक टापू में ठहर गए। सशस्त्र सवार किश्तियों में बैठ कर उन्हें पकड़ने गए। दूर से बन्दूक देखकर उन पीड़ितों ने हाथ जोड़ कर अपनी निर्दोषता प्रकट की और प्राण दान चाहा। इनमें से लगभग ५० निराश हो जल में कूद पड़े और फिर दिखाई नहीं दिये। शेष को गिरफ्तार कर बाँध कर अजनाले पहुँचा दिया। ये कुल २८२ थे। इनमें से कुछ अफसर थे। वर्षा के कारण इन्हें उस समय तो थाने में बन्द कर दिया। ६६ सैनिकों को नई इमारत के एक छोटे से गुम्बद में बन्द कर दिया। यह गुम्बद बहुत तंग था। उसके द्वार चारों ओर से बन्द कर दिये। अगले दिन बकरीद का त्यौहार था। कूपर थाने के सामने बैठ गया। दस सिख सिपाही बंदूक लेकर

खड़े हो गये। उनकी सहायतार्थ ४० सिख वहाँ और खड़े थे। फिर उन थके, भूखे और अभागे हिन्दू सैनिकों को दश-दश करके बाहर लाया गया। सामने आते ही उन लोगों को गोलियों से उड़ा दिया जाता था। उनमें से कुछ ने मरते समय सिखों को गंगा की दुहाई देकर लानत मलानत की। किन्तु उन नीच सिखों को कुछ भी लज्जा न आई। जब थाने के कैदी सैनिक मारे जा चुके जिनकी संख्या २३७ थी, फिर गुम्बद में से २१ सैनिक निकाले गये और गोली से उड़ा दिये गए। कूपर ने स्वयं वहाँ जाकर देखा तो ४५ सिपाहियों की लाश पड़ी हुई थीं। कूपर के शब्द हैं—"अजनाले में ही हॉलवेल का ब्लैकहाल का हत्याकांड फिर से दोहराया गया।" हॉलबेल के ब्लैकहाल की घटना तो अंग्रेजों की घठी हुई बिलकुल झूठ थी किन्तु कूपर नीच ने अजनाले में यथार्थ ब्लैकहाल सचमुच बना कर दिखा दिया। ४५ व्यक्ति थकान, गरमी और वायु की कमी के कारण मर गए। बाहर घसीट कर लाशें डाल दी गईं। अजनाले के थाने के लगभग १०० गज पर एक कुएँ को मिट्टी से भर कर टीला बना दिया। २६ नं० पलटन के ५०० सैनिकों को २४ घण्टे के अन्दर परलोक पहुंचा दिया। जो शेष सैनिक इसके लाहौर, अमृतसर रह गये थे, उनको पकड़ कर तोप के मुँह पर बाँध कर उड़ा दिया गया। उस नीच तहसीलदार और सिपाहियों को बड़ी-वड़ी रकमें पुरस्कार (इनाम) रूप में दी गई। पंजाब में इस प्रकार के अत्याचार किये गए।

जालन्धर फिल्लौर में क्रान्ति

९ जून को जालन्धर छावनी में रात को देशी पलटनें अकस्मात् बिगड़ गईं। वहाँ की गोरी पलटन डर गई और उनका कुछ न कर सकी। जालन्धर के सैनिक वहाँ से तुरन्त दिल्ली की ओर चल दिये। इन्होंने किसी अंग्रेज को नहीं मारा। फिल्लौर पहुँच कर वहाँ की पलटनों को साथ लेकर लुधियाने की ओर चल दिये। लुधियाने के अंग्रेजों को इसका पता चल गया था उन्होंने सतलुज के ऊपर का किश्तियों का पुल तोड़ दिया। गोरी और सिख पलटनें और महाराज नाभा की कुछ पलटनें सतलुज नदी के तट पर क्रान्तिकारी पलटनों को रोकने के लिए खड़ी थीं। क्रान्तिकारियों को सतलुज पार करने से इन्होंने रोका और तोपों से इन पर आक्रमण किया। दो घण्टे घमासान युद्ध हुआ। एक सिपाही की गोली से अंग्रेज-सेना का कमाण्डर विलियम्स मर गया। अंग्रेज और सिख हार गये। और विजयी देशी सेना दोपहर को लुधियाने पहुँच गई। लुधियाना उस समय पंजाब में क्रांति का विशेष केन्द्र था। सारे नगर में क्रांति का दर्शनीय दृश्य था। अंग्रेजों के मकान जला दिये गए। सरकारी खजाने पर कब्जा कर लिया गया। जेलखाना तोड़ दिया गया। जालन्धर, फिल्लौरा और लुधियाने की सेनायें मिल कर स्वाधीनता युद्ध में भाग लेने के लिए दिल्ली को चल पड़ीं। सन् १८५७ की क्रांति में पंजाब की ओर से मुख्य सहायता थी। अंग्रेजों ने सहस्रों निर्दोष पूर्बियों को पंजाब के अनेक नगरों और ग्रामों से निर्वासित कर सतलुज के पार भेज दिया क्योंकि पूर्वी प्रान्त के रहने वालों से उस समय अंग्रेजों को अधिक सन्देह था।

दिल्ली पर अंग्रेजों की चढ़ाई की तैयारी

लार्ड कैनिंग ने दिल्ली का समाचार मिलते ही कमाण्डर-इन-चीफ जनरल ऐनसन को तुरन्त दिल्ली पर चढ़ाई करके दिल्ली विजय करने की आज्ञा दी। ऐनसन शिमले से अम्बाला पहुंचा। उसके सामने बड़ी कठिनाई आई। वह दिल्ली पर चढ़ाई करने की तैयार करने लगा। उसे बड़ी देर लगी। कारण यह था कि इस बार हरियाणा प्रान्त में अम्बाला के आस-पास नगरों और ग्रामों में कोई भारतीय अंग्रेजों को किसी भी प्रकार की सहायता देने को तैयार न था। ऐनसन को न गाड़ियां मिलती थीं न

मजदूर, न रसद मिलती थी और न चारा। इस विषय में इतिहास-लेखक अंग्रेज लिखता है—"हर श्रेणी के भारतवासी हम से दूर रहे। ये लोग खामोश बैठे इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि परिस्थिति किस ओर को मुड़ती है। पूंजीपतियों से लेकर कुलियों तक सब एक समान हमें सहायता देने में संकोच करते थे, क्योंकि उन्हें संदेह था कदाचित् हमारी सत्ता एक दिन के अन्दर उखाड़ कर फेंक दी जाये।

ऐनसन के मस्तिष्क में एक दूसरी कठिनाई भी थी। पंजाब और दिल्ली के बीच में पंजाब की तीन बड़ी प्रमुख रियासतें पटियाला, नाभा और जीन्द के इलाके पड़ते थे। यदि ये तीनों सिख रियासतें उस समय देश का साथ दे जातीं तो निस्संदेह अंग्रेजों के लिये दिल्ली फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता। भारत स्वतंत्र हो जाता और अन्यायी अंग्रेजों का पता कट जाता। यदि पटियाला, नाभा और जीन्द तटस्थ भी रहते तो भी परिणाम अंग्रेजों के लिए अहित कर ही होता किन्तु अंग्रेजों के सौभाग्य से इन तीनों सिख रियासतों ने उस समय भारतीय देश-भक्त क्रांतिकारियो के विरुद्ध अंग्रेजों को धन, जन और माल तीनों से भरपूर सहयोग दिया। सर जांन लारेन्स तथा उनके साथियों की नीतिज्ञता से ऐनसन को अपनी सहायतार्थ पंजाब से पर्याप्त अंग्रेजी और सिख सेना भी मिल गई। इस प्रकार अम्बाला से दिल्ली तक मार्ग सिखों की सहायता से साफ मिल गया। क्योंकि पटियाला के राजा ने अपनी सेना भेज कर थानेश्वर की रक्षा की और जीन्द के राजा ने अपनी रियासत सहित पानीपत की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। इसके पश्चात् कमाण्डर इन-चीफ ऐनसन अंग्रेजी और सिख सेना सहित, जिसमें बहुत-सी सेना इन तीनों सिख राज्यों की थीं, २५ मई को अम्बाला से दिल्ली चल पड़ा। जनरल ऐनसन उस विकट परिस्थिति से घबरा रहा था। उसे मार्ग में हैजा हुआ और २७ मई को हरयाणा प्रान्त के प्रसिद्ध नगर करनाल में वह मृत्यु के विकराल गाल में समा गया, क्योंकि अम्बाला से दिल्ली तक वीर हरयाणा प्रान्त है। इससे भी अंग्रेजो को सहयोग नहीं मिला और अपना आतंक जमाने के लिए प्रतीकार की भावना अंग्रेजी सेना ने जो अकथनीय अत्याचार किये वे किसी अंश में जनरल नील के अत्याचारों से कम अमानुसिक न थे। मार्ग में असंख्य ऐसे लोगों को जो दिल्ली की ओर जा रहे थे, इस सन्देह में कि वे दिल्ली जा कर क्रांतिकारियों की सहायता करेंगे उन्हें पकड़-पकड़ कर मार डाला गया। एक अंग्रेज जो इस सेना के साथ था, लिखता है—"अम्बाला से दिल्ली तक मार्ग की जनता के ऊपर अंग्रेजी सत्ता का रोब फिर कायम करने के लिए सैकड़ों ग्रामों में हजारों ही ग्राम-निवासी अत्यन्त तीव्र यातनायें दे दे कर मार डाले गए। पहले उन्हें कष्ट देने के लिए उनके शिरों से एक-एक कर के बाल उखाड़े जाते थे, उनके शरीरों को संगीनों से बींधा जाता था और सब से अन्त में किन्तु मृत्यु से पहले भालों और संगीनों के द्वारा इन हिन्दू ग्राम-निवासियों के मुख में गाय का मांस ठूंस दिया जाता था। एक ओर उन्हें ये यातनाएें दी जाती थीं और दूसरी ओर उनकी आंखों के सन्मुख फाँसियाँ तैयार की जाती थीं। फांसियाँ तैयार होने पर उन्हें अधमरी अवस्था पर उन फांसियों पर लटका दिया जाता था। इनमें से अधिकांश ग्राम-निवासियों ने अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध कभी भी शस्त्र न उठाये थे, किन्तु अंग्रेज यहाँ भी मेरठ का बदला ले रहा था। मेरठ के भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों को कत्ल किया, यह ठीक है, किन्तु जंगली क्रूरता से नहीं। तलवार के एक ही वार से शिर पृथक् कर दिया जाता, बस समाप्त। किन्तु अंग्रेजों की महत्ता इसमें थी कि अंग्रेजी फौजी पंचायत का स्वांग किया जाता, निर्दोष ग्रामीणों को फाँसी की आज्ञा होती, उनको सता-सता कर गोमांस खिला, धर्म भ्रष्ट कर, संगीन घोंप-घोंप कर उनके शरीरों से खिलवाड़ करना उनके अंगों का पृथक्-पृथक् छेदन करना। अग्नि में जीवित ही जला देना, ग्रामों को

घेर-घेर मनुष्य ही नहीं पशुओं सहित भस्मसात् कर देना। ये सब कुकृत्य अंग्रेजों की महत्ता के सूचक तथा इनकी सभ्यता के प्रतीक थे। दिल्ली वा मेरठ में मरे मुट्ठी भर अंग्रेजों की हत्या का भयंकर राक्षसी बदला लेने के लिए हाथ आये हर मानव की हत्या की जाती। इस प्रकार हरयाणा के हजारों निर्दोष मजदूर किसान मारे गये और मरने से पहले सब पर उपर्युक्त पाशविक अत्याचार किये जाते थे। करनाल में पुराने जनरल सेनापति ऐनसन की हैजे से हुई मृत्यु का बदला नया सेनापति बरनार्ड शायद हरयाणा के निर्दोष मजदूर किसानों को मार-मार कर ले रहा था। यह मेरठ की अंग्रेजी सेना से मिलने के लिए मुड़ गया, क्योंकि १० मई को कर्त्तव्यविमूढ अंग्रेज सेना जनरल बरनार्ड की सेना से मिलने के लिए मेरठ से चल पड़ी थी। ये दोनों सेनायें मिलें। इससे पूर्व दिल्ली की क्रान्तिकारी सेना ने हिण्डन नदी के ऊपर ३० मई १८५७ ई० को मेरठ की अंग्रेजी सेना पर आक्रमण किया। संग्राम हुआ क्रान्तिकारी सेना का बायां भाग कुछ निर्बल पड़ गया। उनकी ५ तोपों पर अंग्रेजी सेना ने कब्जा करना चाहा। ठीक उसी समय जब कई अंग्रेज अफसर सैनिकों सहित तोपों पर कब्जा करने पहुँचे। एक भारतीय सैनिक ने जो ११वीं पलटन का था मौत के साथ खेल किया। उस वीर बाँकुरे ने प्राणों की बाजी लगाकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया और अपनी राष्ट्रसेवा का व्रत पूर्ण कर दिखाया। अंग्रेजों के हाथ अपनी तोपों पर पड़ने से उस सच्चे देशभक्त ने बारूद में आग लगादी, जिससे प्रचण्ड धमाके के साथ कैप्टन अण्डून आदि अंग्रेज अपने अनेक साथियों सहित जलकर भस्मसात् हो गए। अनेक अंग्रेज घायल भी हुए। इस प्रकार अनेक शत्रुओं के शिर भारतमाता पर चढ़ा देने के पश्चात् उस वीर ने अपना शिर भी माता की पवित्र गोद में चढ़ा दिया। किन्तु दुर्भाग्य है कि उस वीर हुतात्मा का नाम इतिहास को सुशोभित न कर सका, क्योंकि इसका नाम इतिहास के लिए अज्ञात ही रहा। इस सैनिक नहीं, नहीं अज्ञात अनामिक सैनिक की सूझ और वीरता की प्रशंसा करते हुए अंग्रेज इतिहास लेखक लिखता है "विद्रोहियों में भी ऐसे वीर थे जो राष्ट्र-कार्य को सफल करने लिए प्राण हथेली पर रखकर कराल काल के गाल में घुसने के लिए तैयार फिरते थे। इस घटना से हमें यह प्रत्यक्ष शिक्षा मिली है।" दिल्ली की सेना उस दिन पीछे लौट गई। ३१ मई को फिर वह सेना मेरठ की सेना से संग्रामार्थ दिल्ली से बाहर निकली। उस दिन विकट संग्राम हुआ। बहुत अंग्रेज मारे गए। सायंकाल अंग्रेजी सेना को अस्त व्यस्त करके क्रान्तिकारी सेना फिर दिल्ली लौट गई। अगले दिन मेजर रीड के अधीन एक गोरखा सैना अंग्रेजों की सहायतार्थ ठीक समय पर पहुँच गई और ७ जून को इस सेना से अम्बाला वाली सेना भी जनरल बटनार्ड के अधीन और सिख सेना भी मेरठ वाली सेना से आ मिली। दिल्ली की चढ़ाई के लिए बहुत-सा सामान और सेना नाभा के सिख राजा ने अंग्रेजों की सहायतार्थ भेजी। ये विशाल संयुक्त अंग्रेज सेनायें अलीपुर के निकट पहुँच गईं। ८ जून को बुन्देले की सराय के निकट प्रातः से सायंकाल तक भीषण संग्राम हुआ। क्रान्तिकारी सेना का सेनापति बहादुरशाह का एक पुत्र मिरजा मुगल था जिसने सारी आयु में कभी भूल कर भी युद्धक्षेत्र न देखा था। अंग्रेजों की ओर योग्य-से-योग्य सेनापति थे और सिखों और गोरखों की सहायता। दिल्ली की सेना सायंकाल फिर दिल्ली लौट गई। उस दिन कम्पनी की सेना दिल्ली की दीवार के नीचे तक पहुंच गई। जीत अंग्रेजों की हुई, किन्तु अंग्रेजों ने यह समझ रखा था कि "दिल्ली की लड़ाई एक दर्शनीय खेल होगा" यह स्वप्न इस दिन इनका दूर हो गया क्योंकि क्रांतिकारियों ने इस दिन वह वीरता और रणकौशल दिखाया कि अंग्रेजों को जँच गया कि यह लड़ाई खेल नहीं प्राणों की बाजी होगी। आज की लड़ाई में अंग्रेजों के ४ अफसर और ४७ सैनिक मारे गए

सैकड़ों घायल हुए। प्रसिद्ध जनरल चेस्टर इस युद्ध में काम आया। इसका अंग्रेजों को पर्याप्त दुःख था, किन्तु इनको हर्ष यह था कि अब दिल्ली अंग्रेज सैनिकों के घेरे में थी। क्रान्तिकारियों की कुछ तोपें अंग्रेजों के हाथ लगीं। इन दिनों दिल्ली में खूब उत्साह और चहल-पहल थी।

दिल्ली की तैयारी

इन दिनों अनेक प्रान्तों से पलटनें आ रही थीं। वे अस्त्र-शस्त्र और खजाना भी अपने साथ ला ला कर दिल्ली में जमा कर रही थीं। सम्राट् बहादुरशाह के नाम भिन्न-भिन्न स्थानों से वफादारी के पत्र आ रहे थे। नगर के भीतर बारूद बनाने के और अस्त्र-शस्त्र ढालने के लिए अनेक कारखाने खुल गए थे। जिनमें अनेक तोपें प्रतिदिन ढाली जाती थीं। सहस्रों मन बारूद तैयार होती थी। अकेले चूड़ीवालों के मोहल्ले के एक कारखाने में सात सौ मन बारूद प्रतिदिन तैयार होती थी। बादशाह बहादुरशाह हाथी पर बैठकर नगर में निकलता था। जनता औरे सैनिकों को प्रोत्साहित करता था।

गोहत्या निषेध की घोषणा

सम्राट् की ओर से यह घोषणा हो चुकी थी कि जो गोहत्या करेगा उसको गोली से उड़ा दिया जायेगा, वा उसके हाथ काट लिए जायेंगें। गोहत्या पहले भी बाबर आदि बादशाहों के समय भी बन्द थी। दिल्ली और उसके निकट प्रान्तों में कम्पनी का राज्य जमने से गोरी सेना के आहारार्थ गोहत्या की जाती थी। इससे जनता में असन्तोष बढ़ गया था। अतः फिर एक बार पुनः सम्राट् को कई सौ वर्ष पुरानी मुगल सम्राटों की आज्ञा को दोहराना पड़ा। इसके अतिरिक्त एक और घोषणा सम्राट् ने सारे भारतवर्ष में प्रकाशित की, जो इस प्रकार की थी "ऐ भारत के पुत्रो ! यदि हम दृढ़ संकल्प करलें तो बात की बात में शत्रु को समाप्त कर सकते हैं। हम शत्रु का नाश कर डालेंगे और अपने धर्म और अपने देश को जो हमें प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं आपत्ति से मुक्ति कर लें।" इसी प्रकार सम्राट् ने अनेक घोषणापत्र स्वराज्य और स्वधर्म की रक्षार्थ और अंग्रेजों के विरुद्ध लड़कर उन्हें भारत से निकालने के लिए निकाले। जो सारे भारतवर्ष में जनता तथा सेनाओं में बांटे गए। इसका अच्छा प्रभाव पड़ा।

दिल्ली का नगर पूर्णरूप से क्रांतिकारियों के हाथ में था। और कम्पनी की सेना ने दिल्ली के पश्चिम में पहाड़ी पर कब्जा कर लिया था। यह स्थान दिल्ली पर आक्रमणार्थ बड़ा अच्छा था। अंग्रेज सेनापतियों ने विचार विनिमय किया किन्तु वे दिल्ली पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सके। इन्हीं दिनों दिल्ली की क्रान्तिकारी सेना ने बाहर निकल अंग्रेजी सेना पर बारबार हमले किए। इन्हीं दिनों भारतीय सैनिकों का एक दल जिस पर अंग्रेजों को पूर्ण विश्वास था क्रान्तिकारियों से जा मिला। अंग्रेजी सेना की पर्याप्त हानि करके दिल्ली की सेना नगर लौट जाती थी।

दिल्ली में यह नियम था कि जो नई पलटन दिल्ली में बाहर से आती थी वह अपने आने से अगले दिन अंग्रेजी सेना पर आक्रमण करती थी। इन युद्धों में १७, २० और २३ जून की लड़ाइयाँ अधिक भयंकर थीं। अंग्रेज, अंग्रेजी अफसर और सैनिक मारे गए। अंग्रेजी सेना को अपने स्थान से पीछे हटना पड़ा। अंग्रेज कमाण्डर अधिक नई सेना की सहायता के बिना पंजाब से कुछ करने में असमर्थ था। २३ जून का दिन पलासी की शताब्दी का दिन था इस दिन दिल्ली की तोपों ने प्रातःकाल ही अंग्रेज सेना पर आग बरसानी आरम्भ कर दी थी। क्रान्तिकारी सेना में विशेष उत्साह था। उसने विकट युद्ध किया। इस विषय में मेजर रीड लिखता है कि "लगभग १२ बजे क्रान्तिकारियों ने हमारी सेना के ऊपर एक

भीषण आक्रमण किया। कोई मनुष्य उनसे अच्छा नहीं लड़ सकता था जितना कि क्रान्तिकारी लड़े। उन्होंने हमारी सारी पलटनों पर बारबार हमले किये। और एक वार ऐसा प्रतीत होता था कि हम मैदन ख बैठे।" जिस समय अंग्रेज हारने को थे उसी समय अंग्रेजों के सौभाग्य से ठीक संकट के समय एक और नई सेना पंजाब से सहायता के लिए आ पहुँची। क्रान्तिकारियों के लिए अब कार्य सरल न रहा। फिर भी वे सायंकाल तक डट कर लड़े। यदि उस दिन सिखों और गोरखों ने अंग्रेजों का साथ न दिया होता तो २३ जून सन् ५७ को दिल्ली की चार दीवार के नीचे कम्पनी की सेना का सर्वनाश हो गया होता। और उनका भारत में अपनी सत्ता कायम रखना असम्भव था।

२ जुलाई को मोहम्मद बख़्त खां अपनी सेना सहित दिल्ली में प्रविष्ट हुआ। सम्राट् ने उसका विशेष स्वागत किया। सम्राट् ने अपने पुत्र मिरजा मुगल को सेनापति पद से हटा कर सबकी सम्मति लेकर बख़्त खां को दिल्ली की समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति बनाया। और दिल्ली का गवर्नर भी उसे नियुक्त किया। बख़्त खां वास्तव में अत्यन्त योग्य और वीर था। उसने सम्राट् से कहा, यदि कोई शाहजादा भी नगर के प्रबन्ध में कोई बाधा डालेगा तो तुरन्त उसके नाक कान कटवा डालूँगा। सम्राट् ने स्वीकार कर लिया।

बख़्त खां के साथ १४ हजार पैदल, तीन सवार पलटन और अनेक तोपें थीं। वह अपनी सेना को छः महीने की वेतन अगाऊ दे चुका था। उसने चार लाख रुपये इसके अतिरिक्त सम्राट् के पास जमा कराये। बख़्त ख़ाँ ने नगर की अव्यवस्था समाप्त कर सुप्रबन्ध किया। सब नगर निवासियों को हथियार दिये। इस प्रकार नगर की व्यवस्था कर ३ जुलाई को २० सहस्र सेना की परेड कराई। सेना को व्यवस्थित कर, ४ जुलाई को बख़्त ख़ाँ ने अपनी सेना सहित अंग्रेजों पर आक्रमण किया। अंग्रेजों की सेना भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। पंजाब से नई-नई सेनाएँ और अनुभवी अंग्रेज सेनापति आकर मिल रहे थे। किन्तु प्रधान सेनापति बर्नाड को दिल्ली पर आक्रमण करने का साहस नहीं हुआ। पहले अंग्रेजों को विश्वास था कि दिल्ली पहुँचने के पश्चात् दो-चार घण्टे लड़ाई के पश्चात् दिल्ली हमारे हाथ में होगी। किन्तु अब एक मास से अधिक हो चुका था वे निराश थे। इसी निराशा की अवस्था में ५ जुलाई सन् ५७ को जनरल बरनार्ड भी हैजे से मर गया। दूसरे अंग्रेज सेनापति की कबर हरयाणे के प्रसिद्ध नगर इन्द्रप्रस्थ में बनी। इसका स्थान जनरल रीड ने लिया। यह तीसरा कमाण्डर-इन-चीफ था। किन्तु दिल्ली अब तक अजेय थी। ९ जुलाई को दिल्ली की सेना ने बख़्त खां के आधीन जोर से आक्रमण किया कि अंग्रेजी सेना भाग खड़ी हुई। उनकी तोपें बन्द हो गईं। अनेक अंग्रेज अफसर मारे गए। उस दिन अपनी हार का क्रोध अंग्रेज अफसरों के कैम्प में जाकर अपने निर्दोष गरीब भिश्तियों और काले नौकरों को मार कर उतारा। वे नीच गोरे क्रोध में उन काले सेवकों की सेवा को भी भूल गए। एक अंग्रेज लिखता है, "इन गोरे सैनिकों के हृदयों में समस्त काले एशिया निवासियों के प्रति प्रचण्ड घृणा की आग भड़क रही थी।" १४ जुलाई के आक्रमण से अंग्रेजों की इससे भी बुरी दुर्गति हुई। जनरल रीड घबरा गया। और रोगी पड़ गया। वह त्यागपत्र देकर १४ जुलाई को पहाड़ पर चला गया। अब चौथे सेनापति जनरल विलसन ने कार्य सम्भाला। दिल्ली के मीनारों पर दो मास से स्वराज्य की हरी पताका लहरा रही थी। चौथे कमाण्डर-इन-चीफ ने जव कार्य भार सम्भाला तव भारत भर में अंग्रेज यह कहने लग गए थे "कि जो सेना दिल्ली का मोहासरा कर रही है उनका स्वयं मोहासरा हो रहा है।" इस समय अंग्रेज अफसर यह विचार करने लगे थे कि दिल्ली विजय करने का विचार छोड़ कर दूसरी ओर

ध्यान देना चाहिए। दिल्ली में पश्चिमी दीवार के नीचे ही केवल अंग्रेजों की सेना थी। और तीनों ओर क्रान्तिकारियों का साम्राज्य था। प्रतिदिन क्रान्तिकारी सेना दिल्ली नगर से निकल कर अंग्रेजों की सेना पर आक्रमण करती, उन्हें पर्याप्त हानि पहुँचा कर पीछे से हटती जाती थी। अंग्रेजी सेना उनका पीछा करती जब अंग्रेजी सेना दिल्ली के परकोटे के ठीक नीचे आ जाती तब पासिल के ऊपर की तोपें उन पर बुरी तरह गोले वरसाती थीं। इस प्रकार कम्पनी के सैनिक दीवार के नीचे चरणों की भांति भुन जाते थे।

इस प्रकार अनेक बार कम्पनी की सेना के बहुत अधिक सैनिक मारे गये। फिर विवश हो जनरल विलसन ने अपनी सेना को उनका पीछा करने से रोक दिया। इस समय अंग्रेज घबराये हुए थे। उनका दिल्ली नगर में घुसने का साहस नहीं होता था। क्रातिन्कारी सेना एक बार दिल्ली से निकल कर मैदान में डट कर युद्ध करती तो निश्चय से इनकी विजय होती। दिल्ली की सेना में वीरता, संख्या वा सामान किसी की कमी नहीं थी। दिल्ली के अन्दर कोई ऐसा योग्य और प्रभावशाली नेता न था जो सब प्रान्तों की सेनाओं को अनुशासन में रख कर, सब को संगठित करके एक निर्णायक युद्ध के लिए आगे बढ़ा सकता हो।

सम्राट् बहादुरशाह अत्यन्त वृद्ध था। सेनापतित्व ग्रहण करने में असमर्थ था। मिरजा मुगल (शाहजादा) पहले ही अयोग्य सिद्ध हो चुका था। सेनापति बखत खाँ उस समय क्रान्तिकारी सेनापतियों में से सबसे अधिक योग्य और विचारशील था वह किसी राजघराने में उत्पन्न न हुआ था। उच्च-कुल का मिथ्याभिमान अभी तक भारतीयों में कूट-कूट कर भरा था। उसका जन्म सामान्य घर में हुआ था। दिल्ली की अनेक सेनाओं के सेनापति छोटे-मोटे नरेश वा राजकुलों के लोग थे। उन लोगों पर बखत खां का प्रभाव न पड़ता था। उनमें से अनेक बखत खां के साथ ईर्ष्या करते थे। परस्पर प्रतिदिन खींचातानी बढ़ती जा रही थी।

सम्राट् बहादुरशाह ने समझाने का यत्न भी किया, किन्तु बात नहीं बनी। यदि उस समय जयपुर, जोधपुर, सींधिया, होलकर वा महाराजा उदयपुर जैसा कोई नरेश दिल्ली आकर नेतृत्व सम्भाल लेता तो दिल्ली में ५० सहस्र क्रान्तिकारियों की सेना थी। अस्त्र-शस्त्रादि सामग्री थी। यदि वह सेना किसी योग्य नेता के आधीन फसील के नीचे अंग्रेजी सेना को समाप्त कर विजय उत्साह से भरी हुई सारे भातवर्ष में फैल जाती तो फिर अंग्रेज सदैव के लिए अपना बँधना बोरियाँ बाँध कर इंगलिस्तान को चले जाते। भारत देश स्वतन्त्र हो जाता। किन्तु देश का दुर्भाग्य था। बूढ़े सम्राट् बहादुरशाह ने अपने हाथ से पत्र लिख कर इसी कार्य के लिए जयपुर, जोधपुर, बीकानेर अलबर और अनेक राजाओं के पास भेजे। उसने लिखा, "मेरी हार्दिक इच्छा है कि किसी भी प्रकार से और किसी भी मूल्य पर हो सके, फिरङ्गियों को भारत से बाहर निकाला जाये। सारा भारतवर्ष स्वतन्त्र हो जाये इसी उद्देश्य के लिए क्रान्तिकारी युद्ध प्रारम्भ कर दिया गया है। किन्तु यह सफल हो सकता है जब उत्तरदायित्व को सम्भालने वाला कोई योग्य व्यक्ति राष्ट्र की सब शक्तियों को संगठित करके एक ओर लगा सके और इस क्रान्ति का नेतृत्व अपने हाथों में ले ले। अंग्रेजों को निकाल देने के पश्चात् अपने व्यक्तिगत लाभार्थ भारत पर राज्य करने की मुझे किंचित् भी इच्छा नहीं है। यदि आप सब देशी नरेश, शत्रु को निकालने के लिए अपनी तलवार खींचने के लिए उद्यत हों तो मैं इस बात को भी तैयार हूँ कि अपने सब राजकीय अधिकार देशी नरेशों के किसी भी इस कार्य के लिए चुने हुए संगठन को सौंप दूँगा।" यह पत्र बूढ़े सम्राट् की सुभेच्छा और उदारता का दर्पण है। किन्तु संदिग्ध दुर्बलहृदय भारतीय नरेशों पर इसका यथेच्छ प्रभाव नहीं पड़ सका।

इधर जनरल निकलसन के आधीन नई सेना ने पंजाब से आकर कम्पनी की सेना में प्राण फूंक दिए। इस नई सेना में अधिकतर सिख गोरखों आदि की संख्या अंग्रेजों की अपेक्षा कई गुना थी। अगस्त के अन्त तक क्रान्तिकारी सेना बारबार कम्पनी की सेना पर आक्रमण करती रही किन्तु कम्पनी की सेना में फसील की ओर बढ़ने का साहस नहीं हुआ। २५ अगस्त को सेनापति बखत खाँ ने दो मुख्य बरेली और नीमच की सेनाओं को लेकर अंग्रेजों के मुख्य स्थान नजफगढ़ पर बहुत जोर से आक्रमण किया। नीमच की सेना ने बखत खाँ की आज्ञा का उल्लङ्घन किया। इस सेना ने उस स्थान को छोड़ दिया जहाँ उसे ठहरने की आज्ञा बखत खाँ ने दी। वह किसी दूसरे गाँव के पास ठहरी। ये लोग शेष क्रान्तिकारी सेना पृथक् हो गये। जनरल निकलसन को पता चल गया। उसने पहले इस नीमच की सेना पर आक्रमण किया। घमासान युद्ध हुआ। जिसमें नीमच का एक-एक सैनिक कट-कट कर मर गया। अंग्रेजों की विजय हुई। बखत खाँ अपनी शेष सेना सहित वापस लौट गया।

अपने मत से अपने चुने हुए सेनापति की आज्ञा अहंकार से ठुकराने का यह ही परिणाम था। बिना अनुशासन की वीरता कायरता के समान व्यर्थ होती है। नीमच की सेना खूब वीरता से लड़ी थी किन्तु सेनापति की श्रद्धापूर्वक आज्ञापालन किये बिना संसार की कोई सेना भी विजय प्राप्त नहीं कर सकती।। २५ अगस्त का वह प्रथम दिवस था दिल्ली नगर में निराशा का साम्राज्य छा गया। और कम्पनी की सेना की इस विजय से निराशा दूर हुई और वे दिल्ली पर टूट पड़ने के लिए आतुर दिखाई देने लगे। अंग्रेज सेनापतियों ने विजयोन्मत्त होकर आवेशपूर्ण आदेश दिया, "आज तीन मास तक सेनापतियों की सैनिक चतुरता की दाल न गली और दिल्ली स्वतन्त्र बनी रही। आज दिल्ली की ईंट से ईंट बजा कर तुम अपने यत्न को यश का मुकुट पहना कर ही रहोगे। यह स्पष्ट दीख पड़ता है।" इस समय अंग्रेजों की सेना में ३५०० गोरे ५००० सिख गोरखा आदि २५०० कशमीरी और स्वयं जीन्द नरेश अपने सेना सहित थे। अंग्रेजी सेना में बड़ी अच्छी व्यवस्था थी। दिल्ली नगर में अव्यवस्था बढ़ती जा रही थी। सितम्बर के पहले पखवाड़े में अंग्रेज-सेना धीरे-धीरे आक्रमण करने का साहस करने लगी। इससे दिल्ली के सैनिकों को घबराहट होने लगी। दिल्ली के परकोटे पर अंग्रेज सेना धैर्य से अनुशासन-पूर्वक चढ़ाई कर रही थी।

भारतीय सेना में अव्यवस्था, अराजकता और अनुशासनहीनता थी। अंग्रेजी सेना के देशी सैनिक मोर्चे बांधने का कार्य जी जान और उत्साह से कर रहे थे। दिल्ली के तोपखाने से बिलकुल नहीं डरते थे। फारेस्ट लिखता है, "हमारी सेना के भारतीय सैनिक अतुल शौर्य और दृढ़ता दिखा कर सबसे आगे बढ़ गये, लाशों पर लाशें पड़ रही थीं किन्तु उन्होंने अपना कार्य बन्द नहीं किया।" अंग्रेजों के आधीन सेवक खूब अनुशासन में काम करते थे और दिल्ली के देशी सैनिक अपने ही अधिकारियों के नीचे कार्य से बचने का यत्न करते थे। योग्य नेता का अभाव और सैनिकों की अनुशासनहीनता ही दिल्ली को ले डूबी।

दिल्ली का पतन

१४ सितम्बर को अंग्रेजी सेना के चार विभाग किये गये। जिसमें तीन विभाग ने निकलसन के अधीन कशमीरी दरवाजे की ओर से प्रवेश करना चाहा। दूसरे दलने मेजर रोड़ के अधीन काबुली दरवाजे

ग्रौर सब्जी मण्डी की ग्रोर से बढ़ना चाहा। कबसे पहले निकलसन ग्रपने दल सहित परकोटे की ग्रोर बढ़ा। भीतर से क्रान्तिकारियों की तोपों ने गोले बरसाने ग्रारम्भ किये। दीवार के नीचे ग्रंग्रेज ग्रौर सिख सैनिकों की लाशों के ढेर लग गए, फिर भी उन्हें रौंदते हुए निकलसन ग्रौर उसके साथी दीवार तक पहुँच गए। पिछले सात दिनों के युद्ध में कुछ दीवार का भाग टूट गया था। इस टूटे हुए स्थान पर सीढ़ी लगा दी गई। निकलसन पहला ग्रंग्रेज वीर था, जिसने सबसे पहले दीवार पर चढ़ कर गोले, गोलियों की वर्षा में कशमीरी दीवार के निकट विजय का बिगुल बजाया। इसी प्रकार दूसरा दल भी मरते-मरते फसील पर चढ़कर नगर के भीतर कूद पड़ा। तीसरा दल कशमीरी दरवाजे की ग्रोर बढ़ा। इसने बारूद से द्वार के एक भाग को उड़ा दिया। कप्तान बरगेस वहीं काम ग्राया। करनल कैम्पबेल कुछ साथियों के सहित कशमीरी दरवाजे के ग्रन्दर पहुँच गये। चौथे दल ने मेजर रीड के ग्रधीन काबुली दरवाजे की ग्रोर बढ़ना चाहा किन्तु पहले ही बार में मेजररीड में घायल होकर गिर पड़ा, उसकी सेना पीछे हट गई। उस पर होप ग्रान्ट कुछ देशी सवारों सहित ग्रागे बढ़ा। घमासान युद्ध हुग्रा, खून की नदियाँ बहने लगीं, दोनों पक्ष खूब वीरता से लड़े। ग्रन्त में ग्रंग्रेजी सेना को पीछे हटना पड़ा। इस दल ने हार खाई। शेष तीनों दलों ने कशमीरी दरवाजे से घुस कर नगर पर ग्राक्रमण किया। जिस मकान को या मीनार को जीत लेते, उसी पर ग्रंग्रेजी झण्डा खड़ा कर देते थे। एक-एक मकान के सन्मुख युद्ध हो रहा था। इस प्रकार लड़ते-लड़ते ये तीनो दल काबुली दरवाजे की ग्रोर बढ़े। बर्न बैस्टियन के पास पहुँच कर इन्हें एक तङ्ग गली से निकलना पड़ा। यहाँ क्रातिकारियों ने गोलियों की बाढ़ पर बाढ़ चलाई। पग-पग पर भूमि पर रक्तपात ग्रौर मृत्यु के चिन्ह मिलते थे। जो ग्रंग्रेज विजय के उन्माद में ग्रन्दर घुस ग्राये थे फिर से पीटे जाने से पीछे हटने लगे। निकलसन वीरता के साथ ग्रागे बढ़ा फिर घमसान युद्ध होने लगा। गली के उस दो सौ गज के स्थान में पानीपत का छोटा संस्करण दिखाई देने लगा। ग्रंग्रेज देखा नहीं कि झट क्रातिकारी वीर ने गोली से उड़ाया नहीं। छज्जों, छाजनों, खिड़कियों, छतों ग्रौर बरामदों से यह हटीली स्वाधीनता प्रेमी रण बाँकुरी गली ग्रपने ग्रनगिनत मुखों से ग्राग उगल रही थी। वीर निकलसन को भी पीछे हटना पड़ा। मेजर जैनब मारा गया। ग्रब निकलसन फिर ग्रागे बढ़ा किन्तु एक क्रान्तिकारी वीर की गोली खा कर भूमि पर लोट-पोट हो गया। वाह री ग्रमर गली! तू ग्रंग्रेजों के लिए मृत्युमुखी सिद्ध हुई। यह सारी गली ग्रंग्रेजों की लाशों से भर गई। इस विजयी गली से पीछे हट कर ग्रंग्रेजी सेना कशमीरी दरवाजे के पास लौट गई। जिस समय निकलसन इस ग्रमर गली में पिट रहा था, उसी समय कैम्पबेल ग्रपनी सेना सहित जामा मस्जिद पर जा चढ़ा। वहाँ पर मुसलमानों ने तलवारों से ग्रंग्रेजों पर वीरता से ग्राक्रमण किया। कैम्पबेल घायल हो गया ग्रौर यह ग्रंग्रेजी सेना दल भी मार खाकर कश्मीरी दरवाजे की ग्रोर भागा। १४ सितम्बर का युद्ध समाप्त हुग्रा। दिल्ली में ग्रंग्रेजी सेना के प्रवेश का यह प्रथम दिवस था। दोनों पक्ष खूब वीरतापूर्वक लड़े। खून की नदियाँ बह गई। ग्रंग्रेजों के चार मुख्य सेनापतियों में से तीन घायल हुए, जिनमें से निकलसन २३ सितम्बर को हस्पताल में मर गया। कम्पनी के ६६ ग्रफसर ग्रौर ११०४ सैनिक उस दिन युद्ध में मारे गये। क्रान्तिकारियों के १५०० सैनिक खेत रहे। चार मास के घेरे के पश्चात् दिल्ली के भीतर कम्पनी की सेना प्रविष्ट हुई। उसके पश्चात् क्रान्तिकारियों में ग्रव्यवस्था बढ़ने लगी। कुछ सेना तो तुरन्त दिल्ली छोड़ कर चली गई। १५ सितम्बर से २४ सितम्बर तक दिल्ली की एक-एक चप्पा भूमि के लिए शत्रु के साथ क्रान्तिकारियों ने वीरता पूर्वक डट कर संग्राम किया। इन संग्रामों में लगभग ग्रंग्रेजी सेना के ४ सहस्र मनुष्य मारे गए। इसी प्रकार इतने वा कुछ

अधिक दिल्ली के सैनिक मारे गए। धीरे-धीरे ¾ नगर का भाग कम्पनी के कब्जे में आ गया। १९ सितम्बर को बखतखाँ सम्राट् से मिला, उसने सम्राट् से प्रार्थना की "कि आप अंग्रेज से पराजय स्वीकार न करें, आप मेरे साथ दिल्ली निकल कर चलें, अनेक स्थान दिल्ली की अपेक्षा सामयिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है इनमें से किसी भी स्थान पर जम कर युद्ध करने से मेरी अवश्य विजय होगी।" सम्राट् बखत खाँ की बात पर लगभग राजी हो गया और अगले दिन प्रातः मिलने को बुलाया। विश्वासघातक मिरजा इलाही बखश ने जो सम्राट् बहादुरशाह का समधी था बखत खाँ के चले जाने के पश्चात् सम्राट् को समझाया कि "विप्लव के सफल होने की अब कोई आशा नहीं है। बखत खाँ के साथ जाने से आपको केवल कष्टों और हानि के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा, और यदि आप यहीं रह जायेंगे तो मैं प्रतिज्ञा (वादा) करता हूँ कि अंग्रेजों से मिल कर सब बातों की सफाई करा दूँगा, आप और आपके कुटुम्बियों पर किसी प्रकार की आँच न आने पायेगी।" यह इलाहीबखश बहादुरशाह को रोकने के लिए दाँव-पेच खेल रहा था। यह अंग्रेजों का गुप्तचर था। यह प्रायः सदा बादशाह के साथ रहता था और महल की तमाम बातों और सलाहों की खबरें मेजर हडसन तक पहुंचाता रहता था। यह हडसन अंग्रेजों के गुप्तचर विभाग का प्रधान था। अंग्रेजों ने इस नीच मिरजा इलाही बखश पर इस बात का बल दे रखा था कि तुम किसी प्रकार बादशाह को दिल्ली से बाहर जाने से रोक लो। इस कार्य के लिए मिरजा इलाही बखश को बहुत बड़े पारितोषिक (इनाम) का बचन दिया गया था। इसी लिए अंग्रेजी राज की समाप्ति तक अर्थात् सन् १९४७ ई० अगस्त मास तक मिरजा इलाही बखश के वंशजों को बारह सौ रुपये मासिक पेन्शन मिलती रही। इस नीच की बातों में बहादुरशाह आ गया। अगले दिन सम्राट् से बखत खां हमायूँ के मकबरे में मिला। बखत खां ने बहादुरशाह को फिर चलने के लिए समझाया। उसकी कुछ चलने की इच्छा भी हुई तो उस नीच इलाही बख्श को जब कोई उपाय रोकने का नहीं सूझा तो उसने बखत खाँ पर यह दोष लगाया कि यह बखत खाँ पठान है और वह मुगलों से अपनी कौम का पुराना बदला लेना चाहता है इस लिये छल से बहादुरशाह को फँसाना चाहता है। इस पर उस देश-भक्त बखतखाँ ने इस नीच इलाही बख्श पर तलवार खींच ली, किन्तु बहादुरशाह ने उसका स्वयं हाथ रोक लिया। बूढ़ा निर्बल बादशाह उस नीच की बातों में न जाने कैसे फँस ही गया और उसने बखत खाँ से ये शब्द कहे "बहादुरशाह ! मुझे तेरी प्रत्येक बात पर विश्वास है और दिल से तेरी सम्मति को मानता हूँ। किन्तु शरीर की शक्ति ने जबाव दे दिया है, अतः अपने आपको भाग्य पर छोड़ता हूँ। मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो और बिस्मिल्लाह करो। यहाँ से जाओ और कुछ कार्य करके दिखाओ। मैं नहीं, मेरे कुटुम्ब से नहीं, न सही तुम वा और कोई भारत की लाज रखे। हमारी चिन्ता न करो, अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करो।"

दिल्ली के स्वतन्त्रता संग्राम का मुकुट बहादुरशाह था और हाथ पैर सहस्रों हिन्दू और मुसलमान वीर सैनिक थे। उस सङ्ग्राम का हृदय और मस्तिष्क बखतखाँ था बखतखां का हृदय, सम्राट् के इस उत्तर को सुनकर खण्ड-खण्ड हो गया। वह ग्रीवा नीची करके मकबरे से निकल कर चला गया। इसके पश्चात् बखत खाँ अपनी समस्त सेना सहित यमुना को पार कर किसी ओर निकल गया। वह कहाँ गया, उसकी सेना का क्या हुआ, इतिहास इस विषय में मौन धारण किये हुए है। बखत खाँ के मकबरे से निकलते ही नीच इलाही बखश ने मकबरे के पश्चिमी द्वार से बाहर निकल तुरन्त अंग्रेजों को सूचना दी और तुरन्त हडसन ने पचास सवार लेकर मकबरे में पहुंच सम्राट् बहादुरशाह, बेगम जीनत, महल और शाहजादे,

जवाँ बखत को गिरफ्तार किया और उन्हें लाल किले में कैद कर दिया। तब सम्राट् को इलाही बख्श की नीचता का पता चला। गिरफ्तारी के समय वह नीच हडसन के साथ ही था, बहादुरशाह ने उसकी ओर घूर कर देखा और कहा "तुमने मुझे बखत खाँ के साथ जाने से रोका" सम्राट् की गिरफ्तारी के पश्चात् दिल्ली नगर १३४ दिन के कठिन परिश्रम और भयंकर से भयंकर संग्राम के पश्चात् पूर्णतया अंग्रेजों के हाथ में आ गया। कप्तान हडसन और जनरल विलसन तो सम्राट् बहादुरशाह को तुरन्त मार डालना चाहते थे किन्तु अनेक अंग्रेज अफसरों का मत इसके विरुद्ध था। क्योंकि अभी भारत का बहुत सा भाग क्रान्तिकारियों के हाथ में था, अतः अन्त में बहादुरशाह को कैद ही कर दिया गया!

मिरजा इलाही बख्श के बताने से और उसकी सहायता से हडसन ने बहादुरशाह के दो बेटों मिरजा मुगल, मिरजा अखजर सुल्तान और सम्राट् के एक पोते को जिसका नाम मिरजा अकबर था। पुनः हुमायुँ के मकबरे से पकड़ कर कैद कर लिया। हडसन इन तीनों शाहजादों को रथ में बैठा कर नगर की ओर ले चला। नगर से एक मील दूर इन तीनों को रथ से नीचे उतार दिया। उनके कपड़े उतरवाये और हडसन ने उन तीनों को गोली मारकर समाप्त कर दिया। जब शाहजादों को गोलियां लगीं वे "हाय दगा" कह कर इस लोक से चल दिये। मिरजा इलाही बख्श ने तीनों शाहजादों से यह वादा किया था कि मैं जनरल विलसन से तुम्हारी जान बख्शवा दूँगा। शाहजादों के सिर काट कर बहादुरशाह के पास लाये गये। सिरों को पेश करते हुए हडसन ने बहादुरशाह से कहा "कम्पनी की ओर से यह आपकी नजर है जो अनेक वर्ष से बन्द थी।" सम्राट् ने शाहजादों के सिर कटे हुए देख कर आश्चर्यजनक धैर्य से मुख फेर लिया और कहा—"अलहम्दोलिल्लाह! तैमूर की सन्तान ऐसे सुर्खरु होकर पिता के सामने आया करती थी।" इसके पश्चात् शाहजादों के सिर खूनी दरवाजे के सामने लटका दिये गये और धड़, कोतवाली के सामने टांग दिये गये। अगले दिन तीनों लाशें यमुना में फिकवा दी गईं। शाहजादों के विषय में दिल्ली में यह भी प्रसिद्ध है, कि जिन शाहजादों को विश्वासघात करके मारा वे चार थे। इनमें शाहजादा अब्दुल्ला भी था और हडसन ने इन शाहजादों को मार कर तुरन्त अपने चुल्लू में भर कर उनका गरम-गरम खून पीकर यह कहा—"यदि मैं इनका खून न पीता तो पागल हो जाता यह घटना प्रकट करती है कि हडसन से बढ़ कर पागल नीच और राक्षस कौन हो सकता है?

दिल्ली पर अत्याचार

अंग्रेजों ने दिल्ली पर जो अत्याचार किये उनके विषय में लार्ड एल्फिन्सटन ने सरजान लारेन्स को लिखा—"मोहासरों के समाप्त होने के पश्चात् हमारी सेना ने जो अत्याचार किये हैं उन्हें सुनकर हृदय फटने लगता है। बिना मित्र व शत्रु में भेद किए ये लोग सबसे एक समान बदला ले रहे हैं। लूट में तो वास्तव में हम नादिरशाह से भी बढ़ गये।" मोहासरे के दिनों में किले के छत्ते में रोगी और घायल सैनिकों का एक हस्पताल था। जिस समय कम्पनी की सेना किले में घुसी तब हस्पताल में जितने घायल रोगी थे सब गोली से मार कर समाप्त कर दिये गये। अन्यत्र भी जो रोगी और घायल मिले सब कत्ल कर दिये गये। मास्टगुमरी मार्टिन लिखता है—"जिस समय हमारी सेना ने दिल्ली नगर में प्रवेश किया तो जितने नगर निवासी नगर की दीवारों के अन्दर पाये गये उन्हें उसी स्थान पर संगीनों से मार डाला गया। आप समझ सकते हैं उनकी संख्या कितनी अधिक रही होगी। जब मैं आपको यह बताऊँ कि एक मकान में चालीस और पचास पचास तक आदमी छिपे हुए थे। ये लोग विद्रोही न थे किन्तु नगर के

निवासी थे, जिन्हें हमारी दयालुता और क्षमाशीलता पर विश्वास था। मुझे हर्ष है कि उनका भ्रम दूर हो गया।"

एक अंग्रेज इतिहास लेखक लिखता है—"दिल्ली के निवासियों के कत्लेआम की खुली घोषणा कर दी गई। यद्यपि हम जानते थे कि उनमें बहुत से हमारी विजय चाहते हैं।"

लार्ड राबर्ट्स उस समय की अवस्था लिखता है। हम प्रातः ही लाहौरी दरवाजे से चांदनी चौक गये तो हमें शहर वास्तव में मुर्दों का ही दिखाई देता था। कोई शब्द हमारे घोड़े की टापों के अतिरिक्त सुनाई न देता था। कोई जीवित मनुष्य दृष्टिगोचर न होता था। सब ओर मुर्दों का बिछौना बिछा हुआ था, जिसमें कुछ मरने से पूर्व सिसक रहे थे। मुर्दों की लाशों को एक ओर कुत्ते खा रहे थे और दूसरी ओर लाशों पर गिद्ध इकट्ठे हो गये थे, जो उनके मांस को नोंच नोंच कर स्वाद से खा रहे थे। लाशें पड़ी सड़ती थीं और दुर्गन्ध फैल रही थी। इस भयानक दृश्य से हमें डर लगता था। भय से हमारे घोड़े बिदकते और हिनहिनाते थे।"

सिखों और गोरों ने अपनी संगीनों से मनुष्यों के चेहरों को बार-बार बीन्धा और अधमरे करके अग्नि में जला कर सता-सता कर मारा। कुछ मुसलमानों को तांबे की शलांकों से नंगे शरीर को सिर से पांव तक जला कर तड़पा-तड़पा कर समाप्त किया। रसल लिखता है "मुसलमानों को मारने स पहले उन्हें सूअर की खाल में सी दिया जाता था, उन पर सूअर की चर्बी मल दी जाती थी, और फिर उनके शरीर जला दिये जाते थे। हिन्दुओं को बलात् गोमांस खिला कर धर्म भ्रष्ट किया जाता था। इस प्रकार सारी दिल्ली मनुष्य का बूचड़खाना बन गई। सारा नगर उजड़ गया। जो कोई फांसी और कत्ल से बचा उसे बलपूर्वक नगर से निकाल दिया गया। होम्स लिखता है—"दिल्ली के निवासियों को विप्लव के बदले बड़ा भारी प्रायश्चित्त करना पड़ा। दस सहस्र स्त्री पुरुष और बालक बिना घर के इधर उधर के प्रान्त में घूम रहे थे, जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया था। अपना जो धन, वैभव था उसे वे नगर में अपने घरों में छोड़ गये थे। उससे वे सदा के लिए हाथ धो चुके थे, क्योंकि सैनिकों ने गली-गली और घर-घर जाकर प्रत्येक मूल्यवान् वस्तु को खोज कर निकाल लिया गया और जो सामान वे उठाकर नहीं ले जा सके उसे उन्होंने नष्ट कर डाला।"

शहर पर कब्जा करने के पश्चात् तीन दिन तक कम्पनी के सेना के सब सैनिकों को नगर की लूट माफ रही। इसके पश्चात् जो सामान घरों में पुस्तकें, बरतन, चारपाई, चक्की, गड़ा हुआ धन यहां तक कि मकानों के किवाड़ और उनके अन्दर का लोहा और पीतल तक कोई वस्तु नहीं छोड़ी। सब कुछ नीलाम कर दिया गया। जो लोग जीवित बचे थे उनका सर्वस्व लूट कर करनल बर्न ने बाल बच्चों सहित धक्के देकर दिल्ली से बाहर निकलवा दिया। ख्वाजा हसन निसायी लिखता है—"दिल्ली नगर के बाहर इस प्रकार सहस्रों स्त्री, पुरुष और बालक असहाय, नंगे पांव, नंगे सिर, भूखे, प्यासे फिर रहे थे। सैकड़ों बालक भूख के मारे चिल्लाते हुए माताओं की गोदियों में मर गये। सैकड़ों मातायें छोटे बच्चों का दुःख न देखकर उन्हें अकेला छोड़ कर कुए में डूब मरीं। नगर में सहस्रों देवियां अपना सतीत्व धर्म बचाने के लिए कुओं में कूद गईं। कुए भर गये पानी तक न रहा। एक कुए से कुछ जीवित स्त्रियों को एक सेना के अफसर ने निकालना चाहा तो वे चिल्लाने लगीं ईश्वर के लिए हमें हाथ न लगायें, गोली से मार डालो, हम श्रेष्ठ कुलों की बहू बेटियां हैं हमारी इज्जत खराब न करो।" स्त्रियों का

सतीत्व धर्म भी इन नीच सैनिकों ने बिगाड़ा। लिखा है—"दिल्ली में ऐसे भी लोग थे जिनके घर की देवियों के सतीत्व धर्म बिगाड़ा जाने लगा तो पुरुषों ने अपने हाथ से विवश हो अपनी बहू बेटियों को कत्ल कर दिया और उन्होंने स्वयं आत्म हत्या कर ली।"

ख्वाजा साहब लिखते हैं—"मन्दिर और मस्जिदों को सैनिकों ने खराब किया। दिल्ली की बड़ी जामामस्जिद में सिख सैनिकों ने सूअर काट काट कर पकाये। मस्जिद में ही पाखाने और पेशाब घर बनाये। अंग्रेजों के कुत्ते भी मस्जिद में साथ ही फिरते थे। मस्जिदों में गधे भी बांधे, अनेक मस्जिद और मन्दिर ढाकर भूमिसात् कर दिये गये। दिल्ली एक प्रकार से सर्वथा उजाड़ दी गई।

दिल्ली फिर बसी

पहिले कुछ हिन्दुओं से भारी जुर्माने ले लेकर उन्हें मुहल्लों में बसने की आज्ञा दी गई। फिर मार्च १८५८ में मुसलमानों को पास लेकर बसने दिया गया। मुसलमानों के मकान १८५९ तक जब्त रहे। मुसलमान बिना पास लिये नगर में चल फिर नहीं सकते थे।

दिल्ली का राजकुल

पहले तो सम्राट् बहादुरशाह के परिवार के लोग कैद में लालकिले में डाल दिये गये। फिर सब को पकड़-पकड़ कर फांसी पर लटका दिया गया। शाहआलम का बेटा जो बड़ा था उसे फांसी दे दी गई। सम्राट् अकबर का पोता जो गठिया का रोगी था, खड़ा होने में भी असमर्थ था, उसका नाम मिर्जा मोहम्मद शाह था, उसे फांसी दे दी गई। कुछ शाहजादों को जेल में रख कर उनसे चक्कियां पिसवाईं। जब वे अपना कार्य पूर्ण नहीं कर सकते थे उन पर कोड़ों की मार पड़ती थी। अनेक शाहजादे और शाहजादियां देहली के बाहर इधर-उधर मारे-मारे फिरे। कुछ कैद में मार खाकर मर गये। सम्राट् बहादुरशाह की एक बेटी राबेया बेगम ने भूख के मारे तंग आकर एक दिल्ली के बावर्ची हुसेनी से विवाह कर लिया। सम्राट् की दूसरी बेटी फातिमा सुलताना ने ईसाइयों के जनाने स्कूल में नौकरी करली। जो सहस्र का दान किया करते थे वे दर-दर के भिखारी बन गये। सम्राट् बहादुरशाह उनकी बेगम जीनत महल और शाहजादा जवाबख्त को कैद करके रंगून भेज दिया गया। रंगून में कैद के अन्दर सन् १८६३ में सम्राट् बहादुरशाह का देहान्त हो गया। उसके साथ मुगल राज्य का अन्तिम चिन्ह संसार से मिट गया। इस शाही खानदान के साथ एक बार दिल्ली भी मिट गई। भले ही दिल्ली का पतन हो गया किन्तु कोई भी सच्चा इतिहास-लेखक दिल्ली और क्रान्तिकारियों की वीरता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। यह पुरानी नगरी ने स्वधर्म और स्वराज्य के उच्च भावों से प्रेरित होकर अंग्रेजों के समान प्रबल शत्रु से १३५ दिन और रातें अविराम घोर संग्राम करती रही। उस दिन से लेकर जिस दिन लालकिले से फिरंगी झण्डा उखाड़ कर स्वराज्य की घोषणा की और उस दिन तक जब बहादुरशाह के राजप्रासाद में अंग्रेजी तलवारें स्वदेशी रक्त को पी गईं। इस प्राचीन इन्द्रप्रस्थ नगरी ने पवित्र स्वराज्य समर को शोभा देने वाली निष्काम उच्च वीर वृत्ति के द्योतक कुछ न्यून कार्य नहीं किए। आश्चर्य तो यह है कि न नेता, न संगठन, न अंग्रेजों के समान सैनिक, विद्या विशारद शत्रुओं से टक्कर, फिरंगियों से भी बढ़कर अपने ही नीच देश द्रोही भाई गोरखों और सिखों से युद्ध, ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में क्रान्तिकारियों ने डटकर संग्राम किया। क्रान्तिकारी सच्चे राष्ट्रीय तथा धार्मिक हुतात्माओं के समान लड़े। इस से दिल्ली के घेरे का इतिहास अमर रहेगा। इन वीरों का गुण गान आगामी पीढ़ियों को श्रद्धा और आदर पूर्वक करना चाहिये। दिल्ली के बलिदान का तेज सदैव चमकता रहे यही इच्छा है।

बिहार और राजा कुंवरसिंह

(आचार्य भगवान् देव)

बिहार में सन् सत्तावन का संगठन अवध और दिल्ली के समान न था। पटना बिहार में क्रान्तिकारियों का अच्छा केन्द्र था। नित्य गुप्त सभाऐं होती थीं। पुलिस भी इन सभाओं में सम्मलित होती थी। पटने में मुख्य नेता पीर अली था। पटने के केन्द्र के पास धन बहुत था सैकड़ों वैतनिक तथा अवैतनिक क्रान्ति में प्रचारक ग्रामों में प्रचारार्थ फिरते थे। इस प्रकार प्रान्त भर में इस केन्द्र की शाखाऐं फैली हुई थीं। यहाँ के नेताओं का सम्बन्ध दिल्ली लखनऊ के केन्द्रों से था। अंग्रेजों को जब यहाँ का पता चला और ३ जौलाई को कुछ थोड़ा विप्लव भी पटना में हुआ तो सिख सेना की सहायता से विप्लव दबा दिया गया। पीर अली को पकड़ कर फांसी दे दी। फांसी पर चढ़ाने से पूर्व अंग्रेजों ने अपने नीच स्वभाव के अनुसार पीर अली को खूब यातनाऐं दीं। इसी प्रकार जिला तिरहुत के पुलिस जमादार को क्रान्ति के सन्देह पर गिरफ्तार करके फाँसीं दे दी गई। पटने में तीन प्रभाव शाली मौलवियों को पटने के कमिश्नर टेलर ने धोखे से गिरफ्तार कर लिया। पीर अली को फाँसी लगने के पश्चात् २५ जौलाई को दानापुर की देशी पलटनों ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी। और ये पलटनें जगदीश पुर के राजा कुवंर के पास पहुँच गईं।

"राजा कुंवरसिंह"

राजाकुँवर सिंह का जन्म सन् १७८२ के लगभग जिला आरा बिहार प्रान्त के छोटे से राज्य जगदीश पुर में हुआ था। इन के पिता जी का नाम शाहबाजाद सिंह था। कुँवर सिंह बाल्य काल से ही वीर लड़ाकू था। इन का मन पढ़ने में नहीं लगता था। ये बड़े ही स्वतन्त्र प्रकृति के धनी थे। लड़ाई झगड़ा और वीरता पूर्ण कार्यों में विशेष रुचि थी। आप यथार्थ में जन्म से ही नहीं किन्तु गुण, कर्म, स्वभाव से ही सच्चे क्षत्रिय थे। पढ़ने की दृष्टि से तो उनकी विशेष शिक्षा नहीं थी किन्तु घोड़े की सवारी, बन्दूक, तलवार आदि शस्त्र चलाने में आप पूर्ण शिक्षित थे। आपके उच्च चरित्र और प्रजापालनादि गुणों के कारण आप सर्वप्रिय तथा विख्यात थे। राजाकुवंर सिंह का सम्बन्ध पहले से ही नाना साहब आदि क्रान्तिकारियों के साथ था। इसके विषय में वीर सावरकर जी लिखते हैं। "आपने राजवंश और भारत पर हुये अन्यायों का बदला लेने के विचार में जगदीश पुर के अपने राज महल की बारहदरी में यह बूढ़ा युवक कुँवर सिंह अपनी मूछों में बल देता हुआ खड़ा था। बूढ़ा युवक ! हाँ सचमुच ही आयु से बूढ़ा होने पर भी नौजवान सा दीख पड़ता था। लगभग अस्सी धूपकाल उसके शिर से गुजर चुके थे फिर भी उसके हृदय की वीराग्नि ज्यों की त्यों प्रज्वलित थी। उसके भुजाओं के स्नायुओं में अब भी नरमुण्डों की माला के गूथने की सामर्थ्य फड़क रही थी। ८० बर्ष का कुँवर और फिर सिंह। अंग्रेज इस देश को लूटते जायें और यह देखता रहे ? असम्भव"। डलहौजी ने अवध के नवाब का राज्य जब हड़प लिया तो कुँवर सिंहँ का छोटा सा राज्य भी अंग्रेजों की अन्याय की चक्की से कैसे बच सकता था। जिस अन्याय की तलवार से

अंग्रेजों ने भारत के स्वराज्य का नाश किया था। उस तलवार के टुकड़े-टुकड़े कर देने की प्रतिज्ञा राजा कुवंर सिहँ ने की थी। यह ८० वर्ष का वृद्ध पलंग पर लेट कर शान्ति से मृत्यु की प्रतीक्षा करने के स्थान पर रणभूमि में कूदने के लिये व्यग्र था। पटने का कमिश्नर टेलर आप को धोखे से पटना बुलाना चाहता था। किन्तु यह राजनीति का वृद्ध खिलाड़ी उसकी चालों में नहीं आया। यदि ये पटना चले जाते तो वह इन्हें बन्दीखाने में ठूँस देता। उस वीर ने विप्लव के लिए अच्छी तैय्यारी की थी। यथार्थ में बिहार में सच्चे आर्यों में यह क्रान्ति का आदर्श नेता था। जिस समय दाना पुर के क्रान्तिकारी सैनिक अपने सामान सहित जगदीश पुर पहुँचे। तुरन्त बूढ़े कुवंरसिंह ने अपने महल से निकल शस्त्र उठा कर इस सेना का स्वागत कर नेतृत्व ग्रहण किया। कुँवरसिंह इस सेनाको लेकर आरा पहुँचा। वहां पर इन्होंने सरकारी खजाने पर अधिकार कर लिया। बन्दी गृह से कैदी छोड़ दिये। अंग्रेजी दफ्तरों को गिरा कर धरातल में मिला दिया। और आरा के छोटे दुर्ग को घेर लिया। तीन दिन तक इसका घेरा रहा। २९ जौलाई को दानापुर से कप्तान उनबर ४०० गोरे और सिख सैनिक लेकर आरा की अपनी सेना की सहायतार्थ चले। राजा कुँवरसिंह ने अपने कुछ सैनिक एक बाग में आम के वृक्षों पर शाखाओं में छिपा रखे थे। रात का समय था। जिस समय अंग्रेज सेना ठीक वृक्षों के नीचे पहुंची अन्धेरे में उधर से गोलियों की वर्षा आरम्भ हुई। प्रातः ४१५ में से केवल ५० जीवित सैनिक दानापुर की ओर लौटे। कप्तान उनवर भी उस आम्र बाग में मारा गया। उसके पश्चात् मेजर आयर बड़ी सेना तोपों सहित लेकर किले के अंग्रेजों की सहायतार्थ आगे बढ़ा। आठ दिन के संग्राम के पश्चात् आरा का नगर और किला फिर से अंग्रेजों के हाथों में आ गया। राजा कुवंरसिंह जी जगदीश पुर पहुंच गये। मेजर आयरों ने उनका सेना सहित पीछा किया। कई दिन संग्राम हुआ १४ अगस्त को जगदीशपुर का महल अंग्रेज के हाथों में आ गया। राजा कुवंरसिंह बारहसौ सैनिकों और अपने परिवार को लेकर वहाँ से चल पड़े। राजा कुँवरसिंह ने आजम गढ़ से पचास मील की दूरी पर अतरौलिया नामक स्थान पर अपना डेरा लगाया। पता लगने पर मिल मैन ने अपनी कुछ अंग्रेज सेना और दो तोपें भेज कर कुवंरसिंह से मुठभेड़ की। २२ मार्च सन् ५८ की बात है लड़ते-लड़ते कुँवरसिंह अपनी सेना सहित बेग से पीछे हटने लगा। अंग्रेजों ने यह समझा कि कुवंर सिंह हार कर मैदान से भाग गया है। मिल मैन ने विजय के हर्ष से एक आम के बगीचे में अपनी सेना को ठहरा कर भोजन करने की आज्ञा दे दी। उसी समय वह बूढ़ा फुर्तीला सिंह अंग्रेज सेना पर टूट पड़ा। थोड़ी देर के संग्राम के पश्चात् राजा कुवंर सिंह की विजय हुई। कुँवरसिंह ने मिल मैन का पीछा किया। वह जान बचाकर भाग गया। कुछ तोपें और बहुत सा सामान राजा कुँवरसिंह के हाथ आया। अंग्रेज सेना के बहुत से सैनिक इस युद्ध में मारे गये। मिल मैन आजमगढ़ पहुंच गया। मिल मैन की सहायता के लिये एक सेना, बनारस तथा दूसरी सेना गाजीपुर से आजम गढ़ पहुंची। २८ मार्च को इस संयुक्त सेना के साथ जो करमल जेम्स की अपनी थी कुवंरसिंह की सेना का संग्राम आजम गढ़ से दूर स्थान पर हुआ। इस युद्ध में विजय राजा कुँवरसिंह की हुई। जेम्स मैदान को से भाग कर आजम गढ़ के किले में चला गया। राजा कुवंरसिंह ने इस का पीछा किया। आजम गढ़ नगर पर कब्जा कर लिया। आजम गढ़ के दुर्ग के घेरे के लिये अपने एक दल को छोड़ कर स्वयं राजा कुवंरसिंह बनारस की ओर बढ़ा। इसके साथ लखनऊ से भागे हुए अनेक क्रान्तिकारी आ मिले। लार्ड-कैनिङ्ग घबरा गया। उसने कुवंरसिंह से लड़ने के लिए तुरन्त सेनापति लार्ड मार्ककर को बड़ी सेना तथा तोपों सहित भेजा। घमासान युद्ध हुआ। ८१ वर्ष का बूढ़ा राजा ऐसी वीरता से लड़ा कि लार्ड मारकर

आजमगढ़ भाग गया और आजमगढ़ के किले में आश्रय लिया। कुवंवर सिंह ने मार्क का पीछा किया। और किले को फिर जा घेरा। पश्चिम की ओर सेनापति लर्गड अंग्रेजी सेना सहित लार्ड मार्ककर की सहायतार्थ आजमगढ़ की बढ़ा। कुवंरसिंह फिर से अपना पैतृक राज्य जगदीश पुर जीतना चाहता था। उसने एक चाल चली। लगर्ड की सेना तानु नदी के पुल पर से आजमगढ़ आने वाली थी। राजा ने अपनी सेना का एक दल पुल पर अंग्रेज सेना से युद्धार्थ भेज दिया। अपनी शेष सेना सहित वह गाजीपुर की ओर बढ़ा। यह छोटा सा दल पुल पर शत्रु की सेना से डट कर लड़ा। जब दल को पता लग गया कि मुख्य सेना दूर निकल गई तो यह दल भी धीरे-धीरे पीछे हट कर उस सेना से जा मिला। अंग्रेज को पहले इस चाल का पता न चला। पीछे लर्गड की सेना ने १२ मील तक कुवंरसिंह की सेना का पीछा किया किन्तु राजा कुँवरसिंह निकल गया हाथ न आ सका। कुछ समय के पीछे राजा कुँवरसिंह की सेना ने चक्कर देकर अकस्मात् लगर्ड की सेना पर आक्रमण किया। अंग्रेज सेना पर्याप्त हानि उठा तथा हार खा कर पीछे भागी और फिर राजा कुंवरसिंह गङ्गा की ओर बढ़ा। एक ओर सेना–सेनापति डगलस के आधीन राजा कुँवर सिंह से लड़ने के लिये आगे बढ़ी। राजा ने अपनी सेना के तीन दल किये एक दल डगलस की सेना से युद्ध करने लगा। और दूसरे दोनों दल घूमकर आगे बढ़े पहला दल खूब वीरता से लड़ा। किन्तु इसकी संख्या अल्प थी अतः चार मील डगलस इसे दबाता चला गया। अन्त में ज्यों ही डगलस की सेना थक कर रुकी, वे दोनों दल घूम कर अंग्रेजों की सेना पर टूट पड़े। डगलस की पराजय हुई और वह उलटा भागा। फिर उसका पीछा किया किन्तु व्यर्थ। राजा कुवंरसिंह आश्चर्य जनक विद्युत् की गति के समान-चलकर सिकन्दरपुर पहुंचे उसने घाघरा नदी पार कर मनोहर ग्राम में जाकर विश्राम किया। यहां पर फिर डगलस से मुठ भेड़ हुई। राजा कुवंर सिंह ने अपनी सेना के अनेक छोटे-छोटे दल किये। सब पृथक-पृथक मार्गों से चल दिये। अब डगलस को पृथक-पृथक दलों का पीछा करना असम्भव हो गया। किन्तु कुँवरसिंह के सारे दल निश्चित स्थान पर फिर मिल गये और गङ्गा की ओर बढ़े। गङ्गा के निकट पहुंच कर राजा कुवंर सिंह ने यह अफवाह उड़ा दी कि सेना बलिया के निकट हाथियों पर गङ्गा पार करेगी। अतः अंग्रेज सेना उसी स्थान पर रोकने के लिये डट गई। किन्तु राजा कुवंरसिंह ने रात्री में वहां से सात मील नीचे शिवपुर घाट से नावों द्वारा गङ्गा पार करने का यत्न किया। अंग्रेजों को जब पता लगा वे शिवपुर पहुंच गये। सेना सब पार हो चुकी थी। केवल अन्तिम नौका रह गई थी। और उसमें स्वयं कुँवरसिंह था। जब किश्ती धार के बीच में थी किसी अंग्रेजी सेना के सैनिक की गोली कुवंरसिंह की दाहिनी कलाई पर लगी। कुँवरसिंह ने यह विचार कर कि हाथ तो निकम्मा हो गया। और समस्त शरीर में विष फैलने का भय है, अतः उसे कोहिनी के पास से तलवार से काट कर गङ्गा में फैंक दिया। हाथ पर पट्टी बाँध गङ्गा को पार किया। गङ्गा पार करने पर अंग्रेजी सेना उनका पीछा न करसकी। आठ मास के पश्चात् २२ अप्रैल को कुँवरसिंह ने जगदीशपुर पर फिर कब्जा किया। उनका भाई अमरसिंह उनकी सहायतार्थ कुछ सैनिकों सहित राज कुँवरसिंह से आकर मिल गया। आरा के अंग्रेज अधिकारी चकित हो गये २३ अप्रैल को लीग्रेड के अधीन अंग्रेज सेना फिर जगदीशपुर पर आक्रमणार्थ आरा से चली। आठ मास निरन्तर राजा कुँवरसिंह और उसकी सेना के दिन संग्राम और कठिन यातनाओं में बीते थे। जगदीश पुर पहुँचे उसे २४ घण्टे भी नहीं हुए थे। राजा का दाहिना हाथ कट चुका था और उसके पास सेना में सैनिक एक सहस्र से अधिक न थे। उनके शत्रुओं की सेना सुसज्जित और ताजा थी। उस समय

कुवंर सिंह के पास कोई तोप न थी। डेढ़ मील के अन्तर पर संग्राम हुआ। राजा इतनी वीरता से लड़ा कि अंग्रेजों की बुरी तरह से हार हुई। अंग्रेजों की सेना का बहुत सा सामान और तोपें राजा कुँवरसिंह के हाथ आई। इतिहास लेखक ह्वाइट लिखता है—इस अवसर पर अंग्रेजों को पूरी और बुरी से बुरी पराजय हुई" वीरवर सावर कर जी लिखते हैं "किसी राष्ट्र के पुनरुत्थानार्थ युद्ध करने वाले नेता का व्यक्तिगत जीवन सार्वजनिक कर्त्तव्य के समान महान और विशुद्ध होना बहुत कम पाया जाता है। किन्तु कुवंरसिंह में महान् चरित्र तथा महान् कर्त्तव्य का अपूर्व संगम दीख पड़ा। उसके सैनिकों पर उस का इतना प्रभाव था कि उसके आदर युक्त भय से उसके सम्मुख हुक्का पीने का साहस कोई भी नहीं करता था। सत्तावन के क्रान्ति युद्ध में युद्धनीति और रणकौशल में कुवँरसिंह के जोड़ का कोई भी नहीं था। क्रान्ति युद्ध में वृकयुद्ध का महत्त्व सब से पूर्व उसी ने जाना। शिवाजी महाराज के समान वृक युद्ध तन्त्र के दाव पेचों को पूर्णतया समझ कर अनुकरण करने वाला वही एक मात्र वीर था। तांत्या टोपे और कुवंरसिंह १८५७ के क्रान्ति युद्ध में अग्रसर दो सेनापतियों ने वृक युद्ध पण्डितों के नाते जो कार्य कर दिखाये हैं उनका तुलनात्मक परीक्षण किया जाये तो राजा कुँवरसिंह को प्रथम स्थान देना पड़ेगा। यह यथार्थ है कि वृकयुद्ध के विध्वंसक भाग में तांत्या टोपे के जोड़ का वीर न था किन्तु कुँवरसिंह विध्वंसक तथा विधायक दोनों भागों का उपयोग करने में सिद्धहस्त था। कुँवरसिंह ने लड़ाई करने तथा टालने दोनों भागों का उपयोग करने में सिद्धहस्त था। कुँवर सिंह ने लड़ाई करने तथा टालने, दोनों में उसने असाधारण बुद्धि का परिचय दिया। इसी से शत्रु को नष्ट भ्रष्ट कर विजय इन्हें प्राप्त हुई। इन का पराक्रम साहस तथा अनुशासन सराहनीय था अन्त में स्वातंत्र्य ध्वज की छत्र छाया में तथा स्वाधीन सिंहासन पर यह बूढ़ा राजा किन्तु असाधारण वीर भारतीय योद्धा पुण्य-प्रद वीरगति को प्राप्त हुआ।

"राजा अमरसिंह"

२२ अप्रैल १८५८ को राजा कुवंरसिंह के समान महान् व्यक्ति के भारत भूमि से बिदा होने पर उसी के जोड़ के शूरवीर देश भक्त उन ही के भाई राजा अमरसिंह ने उनकी सेना की बागडोर सम्भाली। वह जगदीश पुर की गद्दी पर बैठा। बड़े भाई की मृत्यु के पश्चात् अमरसिंह ने दो चार दिन भी विश्राम नहीं किया। वह सच्चे क्षत्रिय के समान केवल जगदीशपुर पर ही अधिकार जमाये रखने से सन्तुष्ट न रहा। उसने तुरन्त अपनी सेना का संगठन कर आरा पर चढ़ाई कर दी। लीग्रेण्ड की वीर सेना की हार के पश्चात् जंनरल डगलस और लगंड की सेनायें भी गङ्गा पार कर आरा की सहातार्थ पहुँच चुकी थी ३ मई के इन की सम्मलित सेना से राजा अमरसिंह का युद्ध हुआ। उसके पश्चात् बिहिया, हातम पुर-दलील पुर इत्यादि अनेक स्थानों पर दोनों सेनाओं में अनेक युद्ध हुये। राजा अमरसिंह ठीक अपने भाई कुँवरसिंह की तरह नीति से युद्ध करता था। वह बार २ अंग्रेजों की सेना को हराता तथा हानि पहुंचाता रहा। घबराकर और निराश होकर १५ जून को अंग्रेज जनरल लगंड त्याग पत्र दे कर विश्राम करने के लिये इंगलेंड चला गया। उस की सेना छावनी को लौट गई। ऐसा अपमान अंगेजों का किसी युद्ध में नहीं हुआ था। विजयी सेनापति मैदान में आ डटा। गया की पुलिस भी क्रान्ति युद्ध में सम्लित हो गई। अमरसिंह फिर आरा पर चढ़ गया शहर पर कब्जा कर लिया। जून से लेकर सितम्बर समाप्त होने लगा। जगदीशपुर के बुर्जों पर स्वतन्त्रता का विजयी ध्वज लहरा रहा था। और प्रजा-प्रिय राजा अमरसिंह विराजमान था। डगलस के साथ सात हजार सेना थी। उसने

अमरसिंह को परास्त करने की शपथ खाई। किन्तु उसने अनेक बार हार खाई। वह बड़ा अपमानित और दुखी हुआ। उसने घोषणा कर दी कि अमरसिंह का सिर काट कर लाने वाले को बहुत बड़ा पुरस्कार दिया जावेगा। किन्तु इस से भी कुछ न बना। अंग्रेजों ने जंगल काट कर सड़क बना ली थी। जगदीशपुर पर सात ओर से अंग्रेज विशाल सेनाओं ने चढ़ाई की १७ अक्टुबर को इन विशाल सेनाओं ने जगदीशपुर को घेर लिया। किन्तु चतुर सेनापति राजा अमरसिंह अपनी सेनासहित अंग्रेजों को चीरता हुआ साफ बच कर निकल गया। अंग्रेज हाथ मलते रह गये। जगदीशपुर अंग्रेजों के फिर हाथ में आ गया। उस समय जगदीशपुर की देवियों ने जिन की संख्या १५० थी नीच शत्रुओं के हाथ पड़ने की अपेक्षा हँसते हंसते अपने पतियों के समान वीर गति प्राप्त करना उचित समझा। उन्होंने तोपों में बारूद डाल कर स्वयं पलीता दिया और तोपों के मुख के आगे खड़ी हो गईं। इस प्रकार वीराङ्गनाएँ परलोक सिधारीं। चित्तौड़गढ़ की तरह जगदीशपुर में भी यह साँका हुआ। कम्पनी की सेना अब भी राजा अमरसिंह का पीछा कर रही थी। १६ अक्टुबर को नौनदी ग्राम में अमरसिंह अपने चार सौ सैनिकों सहित फिर अंग्रेजी सेना के घेरे में आ गया। घोर संग्राम हुआ। राजा अमर सिंह के ३०० सैनिक इस युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुये। शेष १०० वीरों ने कम्पनी की सेना को हरा कर पीछे हटा दिया। किन्तु अंग्रेजों की और सेना सहायतार्थ पहुँच गई। अमरसिंह के इन १०० वीरों ने अपनी जान हथेली पर रख कर भयङ्कर युद्ध किया। ६७ वीर वहीं लड़ते-लड़ते कट मरे। किन्तु सहस्रों शत्रुओं को अपने साथ ही समर भूमि में सुला गये। केवल अमरसिंह और उनके दो साथी बच कर निकल गये। कम्पनी की सेना अब भी इस वीर का पीछा कर रही थी। कुछ अंग्रेज सवार राजा अमरसिंह के हाथी के निकट पहुंच गये और और हाथी को पकड़ लिया। किन्तु अमरसिंह कूद कर निकल गया। अमरसिंह कौमूर की पर्वत माला में प्रविष्ट हुआ। शत्रु वहां भी उनका पीछा कर रहा था किन्तु राजा अमर सिंह ने हार स्वीकार नहीं की। इसके पश्चात् राजा अमर सिंह कहां गया। कुछ पता नहीं चलता। उस प्रान्त वालों ने क्रान्तिकारियों की सहायता की, और गोरों को कुछ पता नहीं दिया। इन पर्वत मालाओं में भी जब तक क्रान्तिकारी जीवित रहे हर टीले और उपत्यका से युद्ध करते रहे। एक भी क्रान्तिकारी पुरुष वा स्त्री शत्रु के हाथ न आया। वह अन्तिम श्वास तक देश धर्म के लिये युद्ध करते हुये वीरगति को प्राप्त हुये। विदेशी शत्रुओं के साथ अपनी मातृ-भूमि की स्वाधीनतार्थ बिहार के रणबाकुरों ने ऐसी होली खेली जिस से बिहार का शिर सदैव ऊँचा रहेगा।

१८५७ में अंग्रेजों का भयङ्कर अत्याचार

(आचार्य भगवान् देव)

लार्ड कैनिंग की आज्ञा से जनरल नील एक विशाल सेना जिसमें अधिकतर गोरे कुछ सिख और कुछ मद्रासी थे लेकर बनारस पहुंचा। बनारस का नगर अंग्रेजों के हाथ में था। बनारस नगर में भी गिरफ्तारियां की गईं। फिर जनरल नील की आज्ञा से उसकी सेना के अनेक दल फिर से ग्रामीण प्रान्त को विजय करने के लिये ग्रामों पर चढ़ाई करने लगे। जिस ग्राम में सैनिक घुसते थे, जितने मनुष्य उन्हें मार्ग में मिलते थे वे उन्हें बिना किसी भेद-भाव के, तलवार से वा गोली से उड़ा देते थे, अथवा फांसी पर लटका देते थे। चौबीस घंटे यह कत्ल कार्य चालू रहता था। सर्वत्र वृक्षों पर लाशें लटकी दिखाई देती थीं। फांसी का कार्य वृक्षों से ही लिया जाता था। इतने पर भी अंग्रेज संतुष्ट नहीं हुए उन्होंने गांव के गांव जलाने प्रारम्भ कर दिये। गांव के बाहर तोपें लगा दी जाती थीं और समस्त आबाल वृद्ध वनिता यहाँ तक कि पशुओं सहित आग में भस्मसात् कर दिये जाते थे। आग इतनी चतुरता से लगाई जाती थी कि एक भी गांव वाला न बच सके। चार्ल्स बाल लिखता है—"कि मातायें अपने दूध मुँहे बच्चों सहित और अगणित बूढ़े पुरुष और स्त्रियाँ जो अपने स्थान से हिल न सकते थे, बिछौनों के अन्दर ही जला दिये गये। एक अंग्रेज लिखता है—"कि जो लोग आग की लपटों से निकल कर भागते थे, वे गोलियों से उड़ा दिये गये।" एक अंग्रेज लिखता है—"कि सड़कों चौराहों पर और बाजारों में जो लाशें टंगी हुई थीं, उनको उतारने में सूर्योदय से सूर्यास्त तक मुर्दे ढोने वाली आठ-आठ गाड़ियां बराबर तीन-तीन मास लगी रहीं। इस प्रकार केवल एक स्थान पर छः हजार मनुष्यों को झटपट समाप्त कर परलोक भेज दिया गया।' नील के एक दल का व्यक्ति अपने एक दिन के अत्याचार के विषय में अपने अंग्रेज मित्र को अभिमान से लिखता है—कि आप यह जानकर सन्तुष्ट होंगे कि मैंने २० ग्रामों को भूमि से मिलाकर बराबर कर दिया। बनारस और इलाहाबाद के बीच में जनरल नील ने सहस्रों ग्रामों को ग्रामवासियों सहित जलाकर भस्मसात् कर डाला। वह ११ जून को इलाहाबाद पहुंच गया। उसने किले के सिखों को पास के गांवों को जलाने के लिये भेज दिया। उन नीच सिखों ने यह कार्य सहर्ष किया। १७ जून को अंग्रेज सेना ने खुसरो बाग पर चढ़ाई की। मौलवी लियाकतअली ने बड़ी वीरता से युद्ध किया किन्तु नील की विशाल सेना के सम्मुख ठहरना असम्भव देख १७ जून की रात को मौलवी लियाकतअली ३० लाख के भारी खजाने को लेकर अपने परिवार सहित कानपुर की ओर निकल गया। कानपुर के पतन के पीछे मौलवी लियाकतअली दक्षिण की ओर चला गया। वहीं से गिरफ्तार करके वह अण्डमान काले पानी भेज दिया गया। कई वर्ष के पीछे उसकी वहीं मृत्यु हो गई। लियाकतअली का जन्म स्थान महां गांव इलाहाबाद से १५ मील की दूरी पर था। वहीं उसकी एक कन्या थी। जनरल नील ने खूब अत्याचार किये। जहां वह पहुंचता था, कत्ले आम करता, अग्नि लगाता और लूट मार करवाता था। प्रयाग में उसने छोटे-छोटे बच्चों को केवल इस अपराध पर कि वे हरे झण्डे लेकर जलूस निकालते थे। फांसी पर लटका दिया। वृक्षों पर लटका-लटका कर सहस्रों व्यक्तियों को प्रयाग में फांसी दी गई। भागते हुए लोगों को तोप के गोले और गोलियों से उड़ा दिया जाता था। इलाहाबाद में केवल एक स्थान पर ही छः हजार मनुष्य मौत के घाट उतार दिये। सरजार्ज कैम्पबेल लिखता है—"मैं जानता हूँ कि इलाहाबाद में बिलकुल किस तमजिके कत्लेआम किया गया था, +++ और इसके पीछे नील ने वे कार्य किये जो कत्ले आम से भी बढ़कर थे। उसने लोगों को जानबूझकर इस प्रकार की यातनायें दीं और इतना सता-सता कर मारा कि इस प्रकार की यातनायें भारतवासियों ने कभी किसी को नहीं दीं। इसके पश्चात् कानपुर में जो हुआ उसके विषय में नानासाहब के प्रकरण में लिखा गया है। इन्हीं दिनों भगवान् ने अंग्रेजों को दण्ड दिया। उनके कैम्प में हैजा फैल गया।

अवध की क्रान्ति

अवध में क्रान्ति की तैय्यारी सब स्थानों से अच्छी थी। अतः वहां की पुलिस, फौज, जमींदार, वहाँ की समस्त जनता ने इस स्वाधीनता युद्ध की सफलतार्थ अपना सर्वस्व लगा दिया। हजारों पण्डित, साधु और मौलवी एक-एक बारग और एक-एक गाँव में आगामी युद्ध के लिए सैनिकों और जनता को तैय्यार करते थे। लखनऊ में सात नम्बर पलटन के हथियार थोड़ी से गड़ बड़ करने पर रखवा लिए गये। लखनऊ में किले बन्दी कर दी। दो स्थानों में मच्छी भवन दूसरे रेजीडेंसी सब अंग्रेज स्त्री बच्चे पहुँचा दिये गये। और पुरुषों को सैनिक प्रशिक्षण देने लगा। ३० मई की रात को सब से पहले ७१ नम्बर की पलटन की बन्दूकों का शब्द सुनाई दिया। यह क्रान्ति के प्रारम्भ होने का नियत चिह्न था। अंग्रेजों के बंगले जला दिये गये। जो अंग्रेज मिला, मार डाला गया। ३१ मई को ४८,७१ नम्बर पैदल और सात नम्बर अन्य देशी पलटनों में स्वाधीनता का हरा झण्डा फहराने लगा। ३ जून को लखनऊ से २० मील दूर सीतापुर छावनी कम्पनी की तीन देशी पलटनों ने भी स्वाधीनता पताका फहराकर खजाने पर कब्जा कर लिया और जो अंग्रेज मिला मार डाला। वहां २४ अंग्रेज मारे गए शेष प्राण बचाकर भाग गये। सीतापुर के सैनिकों ने फरुखाबाद पहुंचकर किले पर चढ़ाई कर दी। उस किले में बहुत से अंग्रेज थे। विकट संग्राम के पश्चात् किला देशी क्रान्तकारी सैनिकों के हाथों में आगया। सब अंग्रेज मारे गये। वहाँ पदच्युत नवाब को फिर गद्दी पर बैठा दिया। पहली जुलाई फरुखाबाद की रियासतों में एक अंग्रेज भी शेष न रहा। इस प्रकार मोहम्मादी, मालन, बहराईच, गोंडा, सिकरोरा मेलापुर इत्यादि अवध के समस्त प्रान्त १० जून सन् तक पूर्णतया स्वाधीन हो गये। बहुत से अंग्रेज मारे गये बहुत से भाग कर आस-पास के जमींदारों के पास छिप गए। अवध के बहुत से जमींदारों तथा तालुकेदारों की जागीरें छीन ली थी। उन्हीं में से मौलवी अहमद शाह था उस को पदच्युत कर दिया था। वह तब ही से स्वतन्त्रता युद्ध के प्रचार और तैय्यारी में लगा हुआ था। सारे अवध में खूब दौरे करते थे। अनेक व्याख्यान दिए, लेख लिखे। उसे अंग्रेज सरकार ने फौज द्वारा गिरफतार करवाया और फांसी का हुक्म सुना दिया गया। और उसे फांसी की तारीख तक फैजाबाद जेल में डाल दिया। इस से सारे जिले फैजाबाद में क्रान्ति की अग्नि भड़क उठी। फैजाबाद शहर की दो पलटनें कुछ सवार तथा तोपखाना और जनता ने मिलकर स्वाधीनता का झण्डा फहरा दिया। सूबेदार दिलीपसिंह ने आगे बढ़कर सब अंग्रेज अफसरों को कैद कर लिया। जेलखाने की दीवारें तोड़ मौलवी अहमदशाह की बेड़ियां काट डालीं। वहाँ की जनता ने उन्हें अपना नेता चुना। मौलवी अहमदशाह ने सब अंग्रेजो को किश्तियों में बैठा कर वहां से चलता कर दिया। भोजन सामग्री भी उनको दे दी गई। ९ जून को सारे प्रान्त में स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई। कम्पनी का राज्य समाप्त कर फिर नवाब वाजिदअली के राज्य की स्थापना कर दी गई। मौलवी अहमद शाह की आज्ञा के कारण फैजाबाद शहर में एक भी अंग्रेज नहीं मारा गया। राजा मानसिंह जो विप्लवी नेता था और अंग्रेजों का पदच्युत किया हुआ राजा था। इसके पास २९ अंग्रेज स्त्रियां और बच्चे

उसके अपने किले में अन्त तक सुरक्षित रहे। यह इसने नेताओं की आज्ञा से ही किया। ६ जून को सुलतानपुर तथा १० जून को सालौनी में भी स्वाधीनता की पताका फहराने लगी। सालौनी के जमींदार रुस्तमशाह और काला के राजा हनुमन्तसिंह दोनों ने प्रतिज्ञा की थी कि भारत से अंग्रेजी राज्य के बिना निकाले विश्राम न लेंगे। किन्तु इन दोनों ने भी अंग्रेजों के बाल बच्चों, स्त्रियों को अपने यहां शरण दी थी। भारतीय नरेश सभी इस विषय में उदार रहे।

राजा हनुमन्तसिंह

राजा हनुमन्तसिंह के विषय में इतिहास लेखक मालसन अंग्रेज लिखता है "अंग्रेजों ने लगान को नयी पद्धति के कारण इस वीर उदार राजपूत की अधिकांश जागीर अर्थात् आय का बहुत बड़ा भाग छीन लिया था फिर भी वह स्वभाव से इतना उदार था कि जिस अंग्रेज जाति ने उसका लगभग सर्वनाश कर दिया था, उस जाति के भागे हुए अफसरों के साथ वह वैसा ही व्यवहार करता था जैसा किसी दुःखित मनुष्य के साथ। उसने विपत्ति में उनकी सहायता की। उसने उनके स्थानों तक सुरक्षित पहुंचा दिया। जब विदा होते समय कप्तान बैरो ने कहा कि "मुझे आशा है आप इस विप्लव के शान्त करने में अंग्रेजों की सहायता करेंगे, तब राजा हनुमन्त ने अकड़ से सीधे खड़े होकर कहा—'साहब तुम्हारे देश के लोग हमारे देश में घुस आये और उन्होंने हमारे राजा को हटा दिया। तुमने अपने अफसरों को जिले और तहसीलों में भेजा ताकि पुराने रईसों और जमींदारों के पट्टों की वे जाँच करें। कलम के जोर से तुमने मुझ से वे जमीनें छीन लीं जो सदा से मेरे कुटुम्ब में चली आती थीं। सारी आमदनी को तुम हड़प कर गये। मैंने विवश हो सहन किया। अकस्मात् तुम पर आपत्ति आई तुम्हारे भाग्य ने पलटा खाया। जिस मुझ को लूटकर आपने बरबाद किया था उसी के द्वार पर रक्षार्थ आप आये फिर भी मैंने तुम्हारी रक्षा की। किन्तु अब मैं अपनी सेना इकट्ठी करके लखनऊ जा रहा हूँ। और तुम्हारे भारतवर्ष से भगा देने के प्रयत्न में अपना जीवन लगा दूँगा।" ३१ मई और १० जून के बीच लखनऊ नगर के एक भाग को छोड़कर समस्त अवध स्वतन्त्र हो चुका था। किन्तु राजा हनुमन्तसिंह के समान अंग्रेजों के साथ वीरोचित उदारता अवध वालों ने दिखलाई थी। प्रसिद्ध इतिहास लेखक फारेस्ट लिखता है, "इस प्रकार दस दिन के अन्दर अवध से अंग्रेजी राज्य स्वप्न के समान मिट गया। उसका कोई प्रवेश विशेष न रहा। सेना और जनता ने पराधीनता की बेड़िया तोड़ कर फेंक दीं किन्तु उनमें से किसी ने बदला नहीं लिया, किसी ने अन्याय नहीं किया। विद्रोही जनता ने भागते हुए अंग्रेजों के साथ स्पष्ट दयालुता का व्यवहार किया। जिन अंग्रेज शासकों ने अवध निवासियों के साथ घोर अन्याय किया था, उन शासकों का जब पतन हो गया तो अवध वालों ने उन अंग्रेजों के साथ उच्च श्रेणी की उदारता और दयालुता बरती" अवध में समस्त हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर वाजिद अलीशाह को फिर से सिंहासन पर बैठा दिया। इससे कम्पनी के शासन की अप्रियता और नवाब के शासन की सर्वप्रियता सिद्ध होती है। सारे अवध ने दस दिन के भीतर कम्पनी के भाण्डे को फोड़कर रख दिया और सर्वत्र अवध में स्वतन्त्रता की ध्वजा फहराने लगी। यदि अवध की उदार वीर जनता ने सुयोग्य तथा अनुभवी अंग्रेज अफसरों को जीवित न छोड़ा होता, तो नौसिखिये अंग्रेजों के लिए फिर से अवध जीतना असम्भव हो जाता। यह क्रान्तिकारियों की हिमालय के समान राजनैतिक भूल थी। इन सब अंग्रेज अफसरों को जेल में डालकर बन्दी बनाना चाहिए था और उनके पहले के किये

हुए अन्याय और अत्याचारों के अनुरूप से यथोचित दंड देना चाहिए था। मुहम्मदगोरी को बार-बार छोड़ने की जो भूल राजा पृथ्वीराज ने की थी वैसी ही मूर्खता हमारे क्रान्तिकारी नेतागण कर बैठे।

अवध के सभी क्रान्तिकारी जमींदार अपने सहस्रों सैनिक सहित लखनऊ में इकट्ठे हो गये। इस समय कानपुर में अंग्रेजों की हार हो चुकी थी। इससे क्रान्तिकारियों का और उत्साह बढ़ गया। २८ जून को अंग्रेजों की पराजय का समाचार जब लखनऊ पहुँचा तो अंग्रेजों के सेनापति हेनरी लारेन्स की हिम्मत टूट गई। २९ जून को लोहे के पुल के निकट कम्पनी की सेना इकट्ठी हुई। क्रान्तिकारियों ने आक्रमण किया। एक अत्यन्त घमासान युद्ध हुआ। अन्त में अंग्रेजों की हार हुई। इनकी तीन तोपें कान्तिकारियों के हाथ आई। अंग्रेज विवश हो रेजीडेन्सी के किले में चले गये। क्रान्तिकारियों ने रेजीडेन्सी और मच्छी-भवन दोनों को घेर लिया। अंग्रेजों ने मच्छीभवन के मैगजीन में आग लगा दी। मच्छीभवन फिर क्रान्ति-कारियों के हाथ आगया। उस समय क्रान्तिकारियों में इतना उत्साह था कि बेगम हजरत महल के आधीन अवध की अनेक स्त्रियां तक मरदाना वेष पहन कर हथियार बाध कर अपने अलग दल बनाकर लड़ रही थीं। अब अंग्रेजों के हाथ में रेजीडेन्सी का किला था उसमें लगभग एक सहस्र अंग्रेज और आठ सौ आदि भारतीय थे। उनके प.स अस्त्र-शस्त्र और भोजनादि की सामग्री पर्याप्त थी। रेजीडेन्सी में अंग्रेज घिरे हुए थे। मालसेन अंग्रेज लिखता है, "समस्त अवध ने हमारे विरुद्ध शस्त्र उठा लिये थे। सब सेना नवाब जमींदार उनकी ढाई सौ किले जिनमें से बहुतों पर भारी तोपें लगी हुई थीं—सबके सब हमारे विरुद्ध खड़े हो गये थे। उन्होंने यह तोलकर देख लिया था कि उनको अपने नवाबों का शासन कम्पनी के शासन से बहुत अच्छा था। हमारी सेना के पेन्शनर सैनिक तक हमारे विरुद्ध प्रत्येक विप्लव में सम्मिलित थे।" लखनऊ में चिनहट की जाति के पश्चात् अवध की प्रजा ने कैदी नवाब वाजिद अलीशाह (जो उस समय कलकत्ते में अंग्रेजों के बन्दी थे) के पुत्र नवाब बिरजीस कादिर को लखनऊ के सिंहासन पर बैठाया। वह नाबालिग था, अतः शासन प्रबन्ध उसकी माता बेगम हजरतमहल ने संभाला। सबने सहर्ष बेगम को अपना अधिराज स्वीकार कर लिया। बेगम ने सर्वप्रथम अवध की स्वाधीनता का शुभ सन्देश अनेक उपहारों सहित सम्राट् बादशाह की सेवा में दिल्ली भेजा। इसके पश्चात् राजा बालकृष्णसिंह को अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त किया वह बड़ा चतुर था। उसने कठिन समय में सारी व्यवस्था ठीक करके समस्त अवध में शान्ति स्थापित कर दी।

रेजीडेन्सी में अंग्रेज घिरे हुए थे। २० जुलाई सन् १८५७ को लखनऊ में क्रान्तिकारी सेना ने अंग्रेजों पर बेग से आक्रमण करने प्रारम्भ किये। दोनों ओर से कई दिन तक खूब तोपों ने आग उगली। रेजी-डेन्सी के अन्दर सिख सिपाही अंग्रेजों की जान से सहायता कर रहे थे। बाहर से भारतीय सैनिकों ने अनेक बार सिखों को समझा कर अपनी ओर करने का प्रयत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ। इन्हीं संग्राम में अवध का अंग्रेज चीफ कमिश्नर सर हेनरी लारेन्स क्रान्तिकारियों की गोली से मारा गया। फिर ब्रिगेडियर इङ्क्लिस बे बं उनके स्थान पर काम करने लगा। क्रान्तिकारियों ने रेजीडेन्सी की दीवार के कई भाग उड़ा दिये। अनेक मकान भी गोलियों से गिर गये। रेजीडेन्सी के अन्दर अंग्रेज अत्यन्त निराश हो गये। कानपुर से हैवलांक इनकी सहायतार्थ आ रहा था वह भी न आ सका। उसे तांत्या वहाँ उलझाये हुए थे। कानपुर और लखनऊ का अन्तर केवल ४५ मील का है जनरल हैवलांक का विचार था कि मैं लखनऊ दो चार दिन में पहुंच जाऊँगा। किन्तु जब उसने २९ जुलाई सन् ५७ को कानपुर से निकल कर गंगा को पार किया। अवध की भूमि पर पैर रखते ही पग-पग पर उसे युद्ध करना पड़ा। उसने ब्रि० इङ्गलिश को

लखनऊ पत्र लिखा कि मैं अभी कम से कम २५ दिन लखनऊ नहीं पहुँच सकता।" रेजीडेन्सी के अंग्रेज बुरी तरह घबरा गये। इधर क्रान्तिकारी रेजीडेन्सी पर बार-बार आक्रमण कर रहे थे। रेजीडेन्सी की दीवारें टूटती जा रही थीं। एक दिन तो दीवार के ऊपर तलवारों और संगीनों का युद्ध हुआ। क्रान्तिकारी कई अंग्रेज सैनिकों की संगीन तक छीन ली। किन्तु योग्य और प्रभावशाली सेनापति के प्रभाव के कारण पूर्ण सफलता क्रान्तिकारियों को नहीं मिली। अंग्रेजों को हैवलाँक की सफलता की आशा थी अतः उन्होंने हथियार नहीं डाले। हैवलाँक लखनऊ की ओर बढ़ने का यत्न कर रहा था। उसे सारे अवध में प्रत्येक ग्राम में लड़ाई लड़नी पड़ रही थी। हैवलांक को २९ जुलाई को उन्नाव और बशरित गंज दोनों स्थानों पर दो कठिन युद्ध लड़ने पड़े। इन युद्धों में इसकी सेना का छठा भाग समाप्त हो गया। ३० जुलाई को उसे पुनः बशरितगञ्ज से पीछे हटना पड़ा और वह लौट कर मगेलवार में ठहरा। नाना साहब और तांत्या के कानपुर पर पुनः आक्रमणों के कारण हैवलांक को पीछे लौट कर कानपुर जाना पड़ा। इससे अवध निवासियों का उत्साह बढ़ गया। लखनऊ दरबार की आज्ञायें सारे अवध में चलने लगीं। सारी जनता उन आज्ञाओं का श्रद्धा पूर्वक पालन करने लगी। तन, मन, धन से सारा अवध क्रान्तिकारियों के साथ था। कानपुर पहुँच कर हैवलाँक ने कलकत्ता से नई सेना अपनी सहायतार्थ मंगवाई। सर जेम्स आऊटरम १५ सितम्बर को बड़ी सेना लेकर कानपुर पहुँच गये। उसने फिर लखनऊ पहुंचने के लिए एक बड़ी सेना लेकर १५ जुलाई को गंगा पार किया। उसे दो मास तक आगे बढ़ने में सफलता नहीं मिली, बार-बार कानपुर लौटना पड़ा। इस समय अंग्रेजी सेना बड़ी विशाल थी। नील, ऊटरम, कूपर और आयर चार अनुभवी सेनापति हैवलांक की सहायतार्थ साथ थे। २॥ हजार अंग्रेज एक रेजीमेन्ट सिखों की और बढ़िया तोपें इनके साथ थी। किन्तु अवध में ग्राम वासियों ने जिन के पास शस्त्रों की भी कमी थी इस विशाल और सुसन्नद्ध अंग्रेज सेना से चप्पे-चप्पे भूमि पर युद्ध किया। साधनों के अभाव ग्राम वाले कब तक लड़ते। कानपुर से लेकर लखनऊ तक सारे मार्ग पर लाशों के ढेर पड़े थे। मार्ग की नदियां दोनों ओर से रक्त से लाल हो गईं। अंग्रेजों ने ग्रामों में आग लगा कर भस्मसात् कर डाला। २३ सितम्बर को अंग्रेज सेना आलम बाग लखनऊ पहुंच गई। २४ सितम्बर को दिन और रात घमसान युद्ध हुआ। उसी दिन दिल्ली का पतन हो गया जिस से अंग्रेजों का साहस बढ़ गया। २५ ता० को बड़ा घमासान युद्ध हुआ दोनों पक्ष बड़ी वीरता से लड़े, लाशों के ढेर लग गये। जनरल नील मारा गया। किन्तु अंग्रेज सेना रेजीडेन्सी में पहुंच ही गई। किले के अंग्रेजों को बड़ा हर्ष हुआ क्योंकि ८७ दिन से वे घिरे हुए थे। उनके सात सौ आदमी मर चुके थे। ६०० अंग्रेज और भारतीय सैनिक वहां थे। हैवलांक की सेना के मार्ग में ७२२ व्यक्ति मारे जा चुके थे, उन्हें हर्ष था किन्तु हर्ष चिन्ता के रूप में शीघ्र बदल गया। क्रान्तिकारियों ने फिर रेजीडेन्सी का घेरा दे दिया। वे सब कैद हो गये। उन्हें कैद से छुड़ाने के लिए सरकालिन कैम्पबेल कम्पनी की सेनाओं का नया कमान्डर-इन-चीफ विलायत से कलकत्ते और फिर एक जिहाजी बेड़ा, नई तोपें एक विशाल सेना सहित ३ नवम्बर को कानपुर पहुँच गया। इसका एक करनल पावल मार्ग में मारा गया। दिल्ली के पतन के पश्चात् जनरल ग्रेटहेड बड़ी सेना सहित मार्ग में कत्ले आम करता हुआ और ग्रामों को जलाता लूट-मार करता हुआ कानपुर पहुँच गया। इसने जनरल नील से बढ़कर अत्याचार किये। कानपुर में एक विशाल सेना सहित लखनऊ आलम बाग पहुंचा। इसके पीछे-पीछे कैम्पबेल स्वयं भी सेना लेकर ९ नवम्बर को आलम बाग लखनऊ पहुँच गया। कानपुर में विनढम को सेना सहित वहाँ की रक्षार्थ छोड़ गया। १४ नवम्बर को खूब घमासान युद्ध हुआ। दिल खुश बाग तक अंग्रेजी सेना पहुँच गई। १६ को सिकन्दर

बाग में भयंकर युद्ध हुआ। जनरल कूपर, जनरल लम्सडेन मारे गये। सिकन्दर बाग की रक्षार्थ क्रान्तिकारी बड़ी वीरता लड़े। दो हजार क्रान्तिकारी इस स्थान पर वीरता से लड़ते-लड़ते शहीद हुए। उस दिन यह स्थान रक्त की झील बन गया। ६ दिन के भयंकर युद्ध के पश्चात् २३ नवम्बर को कैम्पबेल की सेना और रेजीडेन्सी की सेना एक दूसरे से मिल गई। दिल्ली की क्षति से अंग्रेजों का साहस बढ़ा हुआ था। क्रान्तिकारियों के दिल बुझ रहे थे। किन्तु क्रान्तिकारी लखनऊ में बड़ी वीरता से युद्ध कर रहे थे। २४ नवम्बर को जनरल हैवलांक भी मारा गया। सारी व्यवस्था करके कैम्पबेल ने लखनऊ पर आक्रमण की तैयारी की। इतने में ही सूचना मिली कि तांत्या टोपे ने फिर कानपुर पर कब्जा कर लिया। कैम्पबेल ऊटरम को लखनऊ के लिये छोड़ स्वयं कानपुर चला गया। दिल्ली की विजय के पश्चात् अंग्रेज अवध और रुहेलखण्ड जहां क्रान्तिकारियों का भी गढ़ था। सब ओर से सेनायें लेकर चल पड़े। भिन्न-भिन्न अंग्रेजों के सैनिक दलों ने नील और हैवलांक के समान कत्ले आम ग्राम ग्राम लगा कर ग्रामों का विध्वंस किया। ये अपने अत्याचारों से ग्रामीण लोगों पर अपनी धाक जमा रहे थे। १८ दिसम्बर को जनरल वालदोल कुछ सेना और तोपों सहित कानपुर से उत्तर की ओर बढ़ा। इटावे के निकट मार्ग पर एक छोटा सा मकान था। इस में २५ क्रान्तिकारी सैनिक थे। इन्होंने सारी सेना को बिना लड़े आगे नहीं बढ़ने दिया। उन्हें तोपों से डराया गया, सन्धि के लिये वालपोल ने कहा, किन्तु वे बिना लड़े नहीं माने। इतिहास लेखक मालसन लिखता है "वे गिनती में थोड़े थे उनके पास साधारण बन्दूकें थीं किन्तु वे पवित्र उद्देश्य के लिये शहीद होने का दृढ़ संकल्प कर चुके थे। उनके मकान के अन्दर हाथ से बम फेंके गये। बाहर भुस जला कर उन लोगों को धुएं में घोट देने का प्रयत्न किया गया जिस से वे बाहर निकल आयें किन्तु सब व्यर्थ हो गये। ये छिद्रों के अन्दर से अंग्रेजों के ऊपर आग बरसाते रहे। उन्होंने सारी अंग्रेज सेना को तीन घण्टे तक रोके रखा। अन्त में तोपों से मकान के उड़ाने से उन वीरों को जिस यश की अभिलाषा थी, वह उन्हें प्राप्त हो गया। वे सब शहीद हो गए और सब के सब उस मकान के खण्डहरों में दब कर अमर हो गये।

फरुखाबाद का नवाब

फरुखाबाद के नवाब ने भी स्वतन्त्रता युद्ध में खूब भाग लिया था। उसको अपनी राजधानी फतहगढ़ में बालपोल, सीटन और स्वयं कैम्पबेल ने तीन सैन्यदलों से तीन ओर से आक्रमण किया। कई दिन तक घमासान युद्ध हुआ। १४ जनवरी ५८ ई० को अंग्रेजों की विजय हुई। और नवाब को कैद कर लिया गया। नीच अंग्रेजों ने इस नबाब को फाँसी देने से पूर्व उसके सारे शरीर पर उसके धर्म विरुद्ध सूअर की चरबी मल दी और फिर इसे फांसी दी।

नादिरखां

यहीं पर नानासाहब का एक सेनापति नादिरखां भी गिरफ्तार हुआ। और उसे भी फांसी पर ाढ़ा दिया गया। चार्ल्स बॉल लिखता है कि "फांसी पर चढ़ते समय नादिरखां ने भारतीय लोगों को ापथ दी कि तलवार खींच कर और अंग्रेजों को बाहर निकाल कर अपनी स्वाधीनता को फिर से स्थापित ़रें।" इन्हीं दिनों यह अफवाह उड़ी कि नानासाहब बूढ़े बादशाह बहादुरशाह को छुड़ाने के लिये दिल्ली ा रहे हैं। चार्ल्सबाल लिखता है "कि बहादुरशाह के पहरेदारों को गुप्त आज्ञा दी गई कि यदि वास्तव नानासाहब दिल्ली के निकट पहुंच जाये तो बूढ़े सम्राट् को गोली से उड़ा देना।" दिल्ली से प्रयाग तक

सारा प्रदेश अंग्रेजों के हाथ में आ चुका था। कैम्पबेल के लिये अवध और रुहेलखण्ड लेना शेष था। २३ फरुवरी को कानपुर से चलकर कैम्पबेल १७ सहस्र पैदल, ५ सहस्र सवार और १३४ तोपें लेकर ११ मार्च सन् ५८ ई० को लखनऊ के निकट पहुँच गया। इसकी सेना में अंग्रेज तथा सिख सैनिक थे। उसी समय नैपाल से ६ सहस्र सेना लेकर नैपाल का राजा अंग्रेजों की सहायतार्थ कैम्पबेल की सेना से आकर मिल गया। कैम्पबेल की सेना ने मार्ग में बहुत से ग्राम बारूद से उड़ा दिये। नेपाल के राजा ने इससे पूर्व ३ सहस्र गोरखा सेना अंग्रेजों की सहायतार्थ अगस्त सन् ५७ में आजमगढ़ और जौनपुर भेजी थी। इसी सेना के साथ क्रान्तिकारी नेताओं मोहम्मद हुसेन, बेनीमाधव और राजा नादिरखां ने घोर संग्राम करके पूर्वीय अवध की रक्षा करने में सफलता प्राप्त की थी। दो अंग्रेजी सैन्यदल नई नेपाली सेना के साथ लखनऊ की ओर बढ़े। तीनों दल घाघरा पार कर अम्बरपुर के दुर्ग पर चढ़गये। इस दुर्ग में केवल ३४ सैनिक थे। उन्होंने इस विशाल सेना के साथ डट कर युद्ध किया। ये इतनी विशाल सेना से लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए। नेपाली सेना ने प्रर्याप्त हानि उठाकर इस दुर्ग पर कब्जा कर लिया। लखनऊ दरबार से गफ़ूरबेग सेना लेकर इस नेपाली सेना और जनरल फ्रैंक्स की अंग्रेज सेना को रोकने के लिये आगे बढ़ा। सुलतानपुर आदि कई स्थानों पर कई घोर संग्राम हुए। किन्तु अंग्रेजों की यह विशाल सेना नेपालियों की सहायता से विजय प्राप्त करती हुई आगे बढ़ गई।

दौरारे का अजेय दुर्ग

मार्ग में एक दौरारे का दुर्ग था, इसे विजय करने के लिये फ्रैंक्स अपनी सेना सहित आगे बढ़ा। किन्तु दौरारा दुर्ग में हार खाकर फ्रैंक्स को पीछे हटना पड़ा। इस हार के कारण उसको कैम्पवैल ने यह दण्ड दिया। उसका नाम कमाण्डरों की सूची से निकाल दिया। फ्रैंक्स की सेना चक्कर खाकर दूसरी ओर से लखनऊ कैम्पवैल की सेना से जा मिली। इधर अवध की समस्त प्रजा, वहां के प्रायः सब राजा और ताल्लुकेदार उत्साह के साथ इस समय अंग्रेजी राजा के विकट शत्रु के रूप में युद्ध में सम्मिलित थे। ये सब नवाब बिरजसिंह कादिर और बेगम हजरत महल के लिये अपने सर्वस्व की आहुति देने को उद्यत थे। रसल अंग्रेज लिखता है "कि अवध के लोग अपने देश और बादशाह के लिए देश-भक्ति के भाव में प्रेरित होकर लड़ रहे थे।

मौलवी अहमदशाह

लखनऊ नगर में क्रान्तिकारियों में सब से योग्य नेता मौलवी अहमदशाह था। उसकी योग्यता के विषय में इतिहास लेखक होम्स लिखता है। "फैजाबाद का मौलवी अहमदुल्लाह एक ऐसा व्यक्ति था जो अपने भावों और अपनी योग्यता दोनों की दृष्टि से एक महान् आन्दोलन को चलाने और एक विशाल सेना का नेतृत्व ग्रहण करने के योग्य था।" किन्तु लखनऊ की सेनाओं में धीरे-धीरे अव्यवस्था घर करती जा रही थी। जिस प्रकार दिल्ली में बखतखां के विरुद्ध दिल्ली सेना के लोग थे उसी प्रकार अहमदशाह से द्वेष करने वाले लोग लखनऊ में गड़बड़ कर रहे थे। अहमदशाह की आज्ञाओं का यथोचित पालन नहीं होता था। अनुशासन की शिथिलता ही आगे चलकर पराजय का कारण बनी। कैम्पवैल के पहुँचने से पूर्व अहमदशाह ने कई बार चाहा कि ऊटरम को चार हजार सेना सहित आलम बाग में एक बहुत जोर का आक्रमण करके समाप्त कर दिया जाये, किन्तु उसकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। यहां तक बात बिगड़ी

कि द्वेष के कारण कुछ लोगों के बल देने से एक बार अहमदशाह को बेगम ने कैद तक कर लिया। किन्तु जनता की श्रद्धा के कारण उसे छोड़ देना पड़ा। कैम्पबैल अपने दलबल सहित लखनऊ पहुँच गया। फिर अहमदशाह ने सेना को सम्भाल लिया। जितनी बार क्रान्तिकारियों की सेना ने आलम बाग पर आक्रमण किया, मौलवी अहमदशाह घोड़े या हाथी पर सदा सब से आगे लड़ता हुआ दृष्टिगोचर होता था। १५ जनवरी को मौलवी अहमदशाह के एक हाथ में गोली लगी। और १७ जनवरी को क्रान्तिकारियों का एक मुख्य सेनापति विदेही हनुमान घायल होकर पकड़ा गया और उसी समय राजा बालकृष्णसिंह मन्त्री की भी मृत्यु हो गई। किन्तु संग्राम चलता रहा। हाथ का घाव कुछ अच्छा होते ही अहमदशाह फिर युद्ध क्षेत्र में १५ फरवरी को आ डटा। कुछ समय पश्चात् बेगम हजरतमल स्वयं शस्त्र धारण कर घोड़े पर सवार हो युद्ध करने लगी। किन्तु अव्यवस्था सेना में पूर्ववत् चल रही थी। क्रान्तिकारियों की सेना में ३० सहस्त्र सैनिक तथा ५० सहस्त्र स्वयं सेवक थे। कैम्पबेल के पहुँचने के पश्चात् उत्तर और पूर्व से दो ओर से आक्रमण किया गया। ६ मार्च से १५ मार्च तक खूब घमासान युद्ध हुआ। तीसरी बार लखनऊ की गलियों में रक्त की नलियाँ बहने लगीं। वैसे तो क्रान्तिकारी खूब वीरता पूर्वक लड़े, किन्तु अव्यवस्था के कारण दिल्ली के समान लखनऊ का पतन हो गया। अंग्रेजी सेना ने क्रमशः दिल कुश बाग कदम रसूल, शाहनजफ बेगम कोठी आदि मोर्चों को जीत लिया। १० मार्च को अत्याचारी हडसन जिसने दिल्ली में निरपराध शाहजादों का खून किया था। लखनऊ के संग्राम में मारा गया। १४ मार्च को अंग्रेजों ने महल पर कब्जा कर लिया। बेगम हजरत महल, नवाब बिरजसिकादिर और मौलवी अहमदशाह तीनों लखनऊ से निकल गये। किन्तु अहमदशाह थोड़ा सा चक्कर देकर अपने सैनिकों सहित फिर लखनऊ में प्रविष्ट हो संग्राम करने लगा। मोहल्ले शहादत्तगञ्ज में अपना मोर्चा लगा लिया उसके पास इस समय केवल दो तोपें थीं। दो अंग्रेज पलटनें उसके सन्मुख लड़ रही थीं। किन्तु मौलवी अहमदशाह ने बहुत वीरता से युद्ध किया। शत्रु को पर्याप्त हानि हुई। किन्तु अन्त में विजय असम्भव समझ फिर मौलवी साहब लखनऊ से निकल गये। यही लखनऊ का अन्तिम युद्ध था। अंग्रेजी सेना ने ६ मील तक अहमदशाह का पीछा किया किन्तु वह मौलवी अंग्रेजों के हाथ न लगा। लखनऊ का सारा नगर अंग्रेजों के हाथ में आ गया। लखनऊ में बिना किसी भेदभाव के अंग्रेजों ने सार्वजनिक संहार और सार्वजनिक लूट की। लोगों को जीवित अग्नि में जलाया गया। जो अंग्रेज अत्याचार कर सकते थे अधिक से अधिक उन्होंने किया। जिस समय अंग्रेज भयंकर अत्याचार कर रहे थे उस समय कुछ क्रान्तिकारी सैनिक बेगम के पास पहुँचे और अंग्रेज कैदियों को प्रतिहिंसा की भावना से मांगा। बेगम ने सात-आठ पुरुष कैदी उनको सौंप दिये वे उसी समय गोली से उड़ा दिये गये। क्रान्तिकारी सैनिकों ने बेगम से अंग्रेज स्त्रियों को जो कैदी थीं मार डालने का हठ किया। किन्तु बेगम ने इस प्रकार का नीच कर्म करने से सर्वथा निषेध कर दिया। इतिहास लेखक चार्ल्सबाल लिखता है, "स्त्रियों के विषय में बेगम ने उन लोगों की मांग पूरा करने से इन्कार कर दिया। बेगम ने तुरन्त महल के जनानखाने के अन्दर उन अंग्रेज स्त्रियों को अपने संरक्षण में ले लिया। बेगम का यह कार्य स्त्री जाति के मान को बढ़ाने वाला है।

लखनऊ की बेगमें

अंग्रेजों की सेना ने राजमहल में घुसकर लूट और संहार किया। महल के जनान खाने में अनेक स्त्रियां मारी गईं, कुछ स्त्रियां बन्दी बनाई गईं। महल की इन स्त्रियों के अपने आन्दोलन की पवित्रता और उसकी अन्तिम विजय में पूर्ण विश्वास था। एक दिन इन कैदी बेगमों से अंग्रेज सैनिक "क्या आप

का यह विचार है कि यह युद्ध समाप्त हो गया है ?" बेगमों ने उत्तर दिया नहीं हमारा विश्वास इसके प्रतिकूल अर्थात् अन्यथा है कि अन्त में तुम्हारी ही विजय होगी।" लखनऊ के पतन के पश्चात् भी अवध के कई भागों तक भारत के अन्य अनेक प्रान्तों में स्वतन्त्रता का युद्ध चालू रहा। किन्तु क्रान्ति का कोई विशेष केन्द्र भारतवर्ष में इस समय नहीं रहा था। इस समय भारत में क्रान्ति के दमन के लिए कम्पनी की ९६०० तो गोरी सेना थी और अंग्रेज जाति के बड़े से बड़े अनुभवी सेनापति भारत में उपस्थित थे। दूसरे गोरखों और सिखों दोनों ने अपनी पूरी शक्ति से अंग्रेजों का साथ दिया था। कम्पनी की हिन्दुस्तानी सेना और देशी राज्यों की सेना गोरी सेना के अतिरिक्त अंग्रेजों का साथ दे रही थी। विशाल भारतीय साम्राज्य को अपने हाथों से खिसकता देखकर इंगलिस्तान के शासकों ने उस समय अपनी सारी शक्ति भारतीय क्रान्ति के दमन के लिये लगा रखी थी। क्रान्तिकारियों के अन्दर व्यवस्था का प्रभाव था। दिल्ली कानपुर लखनऊ समान बड़े केन्द्र हाथ से निकल चुके थे। अतः ऐसे समय में नेताओं ने क्रान्तिकारियों के नाम जो इधर-उधर फैले हुए थे एक आज्ञा प्रकाशित की "तुम लोग विधर्मियों की व्यवस्थित सेनाओं को खुले मैदान में सामना करने का प्रयत्न न करो। उनमें हमारे से बढ़ कर व्यवस्था है और उनके पास बड़ी-बड़ी तोपें हैं। उनके आने जाने पर दृष्टि रखो। नदियों के सब घाटों पर पहरा रखो। उनके पत्र व्यवहार मध्य में रोक दो। उनकी रसीद को रोक लो, उनकी डाक और चौकियों को तोड़ दो सदा उनके कैम्प के इधर-उधर फिरते रहो। फिरङ्गी को सर्वथा शान्ति से न बैठने दो।" इस घोषणा से नेताओं की बुद्धिमता सिद्ध होती है। बारीका युद्ध मौलवी अहमदशाह लखनऊ से तीस मील दूर बारी नामक स्थान पर था। और बेगम हजरत महल छः हजार सैनिकों सहित बिटावली में थी। होप ग्राण्ड तीन हजार सेना लेकर और तोपखाने सहित लखनऊ से पीछा करता हुआ बारी की ओर बढ़ा। मौलवी अहमदशाह को पता चलने पर अपनी पैदल सेना को लेकर बारी से चार मील दूर एक गांव में ठहर गया और सवार सेना को किसी दूसरे स्थान पर छिपा दिया और मौलवी ने उन्हें यह आदेश दिया कि जिस समय तक पैदल सेना के साथ अंग्रेजों का युद्ध न हो तब तक छिपे रहना। और फिर अकस्मात् पीछे से आकर अंग्रेज सेना को घेर लें। किन्तु मूर्ख सवारों ने मौलवी की आज्ञा के विरुद्ध अधीर हो, अंग्रेज सेना को सामने देखते ही अपने स्थान से निकलकर आक्रमण कर दिया। इस अव्यवस्था के कारण थोड़ी सी लड़ाई के पश्चात् अंग्रेजों की विजय हो गई। और मौलवी अहमदशाह को गांव छोड़ कर भागना पड़ा।

शाहजहानपुर

नाना साहब और मौलवी अहमदशाह शाहजहानपुर में पहुँच गये। कमाण्डर-इन-चीफ कैम्पबेल ने एक विशाल सेना लेकर चारों ओर से शाहजहानपुर को घेर लिया। वह नाना साहब और मौलवी को पकड़ना चाहता था किन्तु ये दोनों नेता अंग्रेज सेना के बीच से बचकर निकल गये और बरेली पहुँच गये।

बरेली

बरेली रुहेलखण्ड की राजधानी अब भी स्वतन्त्र थी, इसका प्रबन्ध खानबहादुर खां के आधीन था। इस समय दिल्ली का एक शहजादा मिरजा फिरोजशाह, नाना साहब, मौलवी अहमदशाह, बालासाहब, बेगम हजरत महल, राजा तेजसिंह और अन्य अनेक नेता बरेली में थे। सर कैम्पबेल बरेली की ओर बढ़ा क्रान्तिकारी नेता पहले ही बरेली छोड़ कर चारों ओर रुहेलखण्ड में फैल जाने का निश्चय कर

चुके थे। ५ मई को अंग्रेजी सेना ने बरेली को घेर लिया। बरली के असंख्य क्रान्तिकारी सैनिक तलवार लेकर अंग्रेजी सेना पर टूट पड़े। दोनों के पर्याप्त सैनिक मारे गये। अन्त में ७ मई सन् ५८ ई० को खान बहादुर खां कुछ सेना और नेताओं सहित बरेली छोड़ कर निकल गये। बरेली नगर अंग्रेजों के हाथों में आ गया। इधर मौलवी अहमदशाह ने घूम कर फिर शाहजहानपुर हमला करके अंग्रेजी सेना को हरा कर फिर नगर पर कब्जा कर लिया।

कैम्पबेल ने फिर शहाजहानपुर पर चढ़ाई की। इस बार तीन दिन तक संग्राम हुवा और ऐसा प्रतीत होता था कि मौलवी अहमदशाह अब यहां से बचकर नहीं निकल सकेगा। किन्तु चारों ओर से क्रान्तिकारी नेता बेगम हजरत महल, शाहजादा, फिरोजशाह, नाना साहब आदि सब अपनी सेनायें लेकर १५ मई को सर्वप्रिय मौलवी अहमदशाह की सहायतार्थ शाहजहानपुर पहुंच गये। तब वहां से निकल मौलवी अहमदशाह फिर अवध में घुस गया। मौलवी अहमदशाह ने अंग्रेजों को तंग कर दिया वह किसी प्रकार से भी वश में नहीं आता था। अब अवध में फिर मौलवी ने अपनी शक्ति बढ़ानी आरम्भ की।

विश्वासघात

मार्ग में यवन नाम एक छोटा हिन्दू राज्य था। वहां का राजा जगन्नाथ था। उसके पास मौलवी अहमदशाह ने सहायतार्थ एक पत्र बेगम हजरत महल की मोहर लगा कर भेजा। राजा ने तुरन्त मौलवी अहमदशाह को अपने पास बुलाया। मौलवी साहब हाथी पर बैठ पवन पहुंच गया। राजा जगन्नाथसिंह और उसके भाई के साथ बात चीत हो ही रही थी कि जगन्नाथ के भाई ने धोखे से मौलवी अहमदशाह पर गोली चला दी। विश्वासघातक की गोली लगकर गिर पड़े। उस समय नीच पिशाच जगन्नाथ ने अहमदशाह का सिर काट, कपड़े में बांध अंग्रेजों के कैम्प में पहुँचा दिया। जगन्नाथ को इस विश्वास-घात के बदले में कम्पनी सरकार ने ५० हजार रुपये पुरस्कार में दिये। अगले दिन मौलवी अहमदशाह का सिर शाहजहानपुर की कोतवाली के सामने टांग दिया। अंग्रेज लेखक के लेखानुसार "मौलवी अहमद-शाह उत्तर भारत में अंग्रेजों का सबसे महान् शत्रु" समाप्त हो गया। भारत के सन् ५७ के स्वाधीनता युद्ध के हुतात्माओं में मौलवी अहमदशाह का भी नाम सदा के लिए अमर हो गया। और भारत की आने वाली सन्तति उन्हें सदैव श्रद्धा की दृष्टि से देखेगी।

इतिहास लेखक मालसेन लिखता है "मौलवी एक बड़ा अद्भुत मनुष्य था। सेनापति के रूप में उसकी योग्यता विप्लव में अनेक बार प्रमाणित हुई + + कोई भी और मनुष्य अभिमान के साथ यह न कह सकता था कि मैंने दो बार सर कालिन कैम्पबेल को रणभूमि में परास्त किया। फैजाबाद के मौलवी अहमदशाह की इस प्रकार मृत्यु हुई। यदि एक ऐसे मनुष्य को जिसकी जन्म भूमि की स्वाधीनता का अन्याय द्वारा अपहरण कर लिया गया हो और जो फिर से उस स्वाधीनता को स्थापित करने के लिये योजना करे और युद्ध करे, देशभक्त कहा जा सकता है, तो इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि मौलवी अहमदशाह सच्चा देशभक्त था। उसने किसी को गुप्त हत्या करके अपनी तलवार को कलंकित नहीं किया था, निहत्थे और निर्दोष मनुष्यों की हत्या को उसने कभी सहन तक न किया था, उसने वीरों के समान आन के साथ और डटकर खुले मैदान में उन विदेशियों के साथ युद्ध किया जिन्होंने उसका देश छीन लिया था, हर देश के वीर और सच्चे लोगों को मौलवी अहमदशाह का आदर के साथ स्मरण करना चाहिये।

वीरनरपतसिंह

लखनऊ से ५० मील दूर रुइया किले में राजा नरपतसिंह ताल्लुकेदार २५० सैनिकों सहित था। १५ अप्रैल को वालपोल ने अपनी अंग्रेज सेना से इस रुइया के दुर्ग पर चढ़ाई की। इसके पास कई हजार सेना और तोपें थीं। ज्यों ही अंग्रेज आगे बढ़े किले की दीवारों से गोलियों की वर्षा हुई। ४६ अंग्रेज मारे गये शेष सेना पीछे मार खाकर हट गई। दूसरी ओर से बालपाल ने किले पर गोलावारी की। बालपाल की तोपों के गोले दुर्ग के ऊपर से पार कर दूसरी ओर की अंग्रेजी सेना पर जाकर गिरने लगे। इससे अंग्रेजी सेना ही मरी। बालपाल की घबराहट को देखकर जनरल होप आगे बढ़ा। होप मारा गया। समस्त अंग्रेज सेना तिरस्कृत हो, हार कर किले के पीछे हट कर भागी। जनरल होप अंग्रेजों के मुख्यतम और अनुभवी सेनापतियों में से था। उसकी मृत्यु से अंग्रेजों ने भारत तथा इग्लैंड में बहुत शोक मनाया। नरपतसिंह ने फिर विचार कर इस छोटे से दुर्ग को छोड़ना उचित समझा। क्योंकि वह अकेला थोड़ी सेना से विशाल अंग्रेजी सेना से कब तक लड़ाई करता। अतः वह अपनी सेना सहित दुर्ग छोड़ चला गया।

अवध में पुनः क्रान्ति की अग्नि

लार्ड कैनिंग ने अवध में यह घोषणा की कि जो लोग हथियार रख देंगे उन्हें क्षमा कर दिया जायेगा। और उनकी जागीरें आदि लौटा दी जायेंगी। किन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। ५ जून सन् ५८ को मौलवी अहमदशाह की हत्या के पश्चात् अवधवासियों की क्रोधाग्नि फिर एक बार वेग से भड़क उठी। निजाम अलीखां ने पीलीभीत पर आक्रमण कर दिया। खान बहादुर खां ने चार हजार सेना इकट्ठी की और युद्धार्थ आ डटा। फरुखाबाद में पुनः पांच हजार सैनिकों ने संगठन किया। नानासाहब, बालासाहब, विलायतशाह और अलीखां मेवाती के आधीन सहस्रों सैनिक इकट्ठे होने लगे। घाघरा नदी के तट पर चौक-घाट में बेगम हजरतमल और सरदार मामूखां की सेना थी। शाहजादा फिरोजशाह भी इस समय अवध में था। इसके अतिरिक्त रुइया का राजा नरपतसिंह, राजा रामबख्श, बहुनाथसिंह, चन्दासिंह, गुलाबसिंह, भूपालसिंह, हनुमन्तसिंह आदि अनेक बड़े-बड़े जमींदार अपनी सेनाओं सहित अवध को फिर अंग्रेजों के हाथों से छीनने के लिए यत्नशील थे। बूढ़े राजा वेणीमाधव ने फिर लखनऊ पर चढ़ाई की तैयारी आरम्भ की।

राजा वेणीमाधव

राजा वेणीमाधव के स्थान शंकरपुर पर अंग्रेजों की तीन विशाल सेनाओं ने तीन ओर से चढ़ाई की। कहां अंग्रेजों का उस समय का बढ़ा हुआ बल और कहां राजा की छोटी-सी सेना और थोड़ा-सा सामान। किन्तु राजा ने डटकर युद्ध किया। कैम्पबैल ने सन्धि करने के लिए सन्देशा भेजा। क्षमा करने और जमींदारी वापस करने का प्रलोभन भी दिया। किन्तु वेणीमाधव ने उत्तर दिया "इसके पश्चात् दुर्ग की रक्षा करना मेरे लिये असम्भव है अतः मैं दुर्ग को छोड़ रहा हूँ। किन्तु अपना शरीर आपको कदापि नहीं सौंप सकता। क्योंकि मेरा शरीर मेरा नहीं है। बल्कि मेरे बादशाह का है।" जो घोषणा अंग्रेज करते थे उनका खण्डन क्रान्तिकारी कर देते थे। क्रान्तिकारियों की घोषणाओं का निचोड़ यह था "हमारी प्रजा में से कोई अंग्रेजों के एलान के धोखे में न आयें।" मलका विक्टोरिया के ऐलान के पश्चात् भी छः मास पश्चात् तक अवध का प्रान्त अंग्रेजों के वश में नहीं हो सका। समय-समय शंकरपुर ढ़ढ़ियाखेड़ा

रायबरेली, सीतापुर आदि अनेक स्थानों पर संग्राम होते रहे। अन्त में अवध के सब क्रान्तिकारी नैपाल की सीमा के उस पार निकाल दिये गये। लगभग ६० हजार पुरुष, स्त्री, बालकों ने नानासाहब, बालासाहब, बेगम जीनतमहल और नवाब बिरजिसकादिर के साथ नैपाल में प्रविष्ट हुए। नाना साहब ने नैपाल के महाराना से अंग्रेजों के विरुद्ध सहायतार्थ प्रार्थना की। इसी विषय में परस्पर पत्र-व्यवहार हुआ किन्तु सहायता करना तो दूर रहा महाराजा जंगबहादुर ने निर्वासित क्रान्तिकारियों की नेपाल में रहने की आज्ञा भी नहीं दी। इससे उल्टी अंग्रेजी सेना को नेपाल में प्रविष्ट कर भारतीय क्रान्तिकारियों के संहार करने की स्वीकृति दे दी। अनेक क्रान्तिकारी शस्त्र फैंक कर भारत में लौट आये अनेक जंगलों में मारे गये, वा मर गये। नाना साहब का कुछ पता नहीं क्या हुआ। बेगम हजरत महल और नवाब बिरजिसकादिर को कुछ समय पश्चात् नेपाल राज्य ने अपने यहां आश्रय दे दिया। अवध की क्रान्ति के विषय में इतिहास लेखक मालसेन लिखता है "जिस कान्ति को उन सैनिकों ने आरम्भ किया था उनमें से अधिकांश अवध निवासी थे। उस क्रान्ति युद्ध में समस्त अवध निवासियों ने स्वाधीनता के लिये इतना दृढ़ता के साथ डटकर और इतनी अधिक देर कक हमारा मुकाबला किया कि भारत में किसी दूसरे भाग ने भी ऐसा युद्ध नहीं किया। इस समस्त युद्ध में उस अन्याय को जो इनके साथ सन् ५६ ई० में किया गया था याद करके अवध निवासियों का हृदय और संकल्प अधिकाधिक दृढ़ होता रहता था। अन्त में कमाण्डर कैम्प-वैल ने सब अवध के क्रान्तिकारियों को चुन-चुन कर नेपाल के जंगल में आश्रय लेने को विवश कर दिया। तो इन वीर लोगों ने प्रायः पराजय मानने की अपेक्षा भूखों मर जाना अधिक पसन्द किया। कृषकों जमींदारों और तालुकेदार आदि ने बहुत दिनों के लगातार युद्ध के पश्चात् उस समय युद्ध से विराम लिया, जब कि इन्होंने देख लिया कि अब सब कुछ हो चुका है।" इस प्रकार भारत को विदेशी शासन से स्वतन्त्र करने का सबसे महान् और व्यापक प्रयत्न निष्फल गया और अंग्रेजों के राज की जड़ कुछ काल के लिए अधिक दृढ़ता से जम गई।

असफलता के मुख्य कारण

इस विषय में सभी इतिहासकारों का एक मत है कि मेरठ की घटना के कारण स्वतन्त्रता संग्राम नियत समय से पूर्व हो गया। यदि महायुद्ध पूर्व निश्चित तिथि ३१ मई ५७ ई० को सब स्थानों पर एक साथ प्रारम्भ हुआ होता तो अंग्रेज शासक पुनः किसी प्रकार भी भारत को विजय नहीं कर सकते थे। यही मुख्य और पराजय का प्रथम कारण बना। द्वितीय कारण यह है कि सिख राज्यों अर्थात् पटियाला, नाभा, जीन्द आदि ने देशद्रोह करके यदि अंग्रेजों की सहायता न करते तो दिल्ली को अंग्रेजों के लिये जीतना असम्भव था। गोरखों और सिखों की सहायता से अंग्रेजों ने दिल्ली और लखनऊ जैसे केन्द्र कान्तिकारियों से जीतकर छीन लिये। यदि ये केन्द्र क्रान्तिकारियों के पास रहते और एक बार दिल्ली की क्रान्तिकारी सेना विजय प्राप्त करके पूर्व और दक्षिण में उतर आती तो भारत सदैव के लिये स्वतन्त्र हो जाता। अंग्रेज लेखक रसल लिखता है—"यदि समस्त भारतवासी पूर्णरूप से हमारे विरुद्ध हो जाते तो भारत में अंग्रेजों का चिह्न तक कहीं शेष न रहता। हमारी सेनाओं ने जी तोड़कर वीरता से अपने स्थानों और किलों की रक्षा की किन्तु इस वीरता में भारतवासी सम्मलित थे और इन्हीं की सहायता के कारण उन स्थानों की रक्षा करना हमारे लिये सम्भव हो सका। यदि पटियाला और जीन्द के राजा हमारे साथ मित्रता न दर्शाते और यदि सिख हमारी पलटनों में भरती न होते और उधर पंजाब को शान्त न रखते तो हमारा दिल्ली का जीतना सर्वथा असम्भव होता। लखनऊ में भी सिखों ने हमें खूब

सहायता दी। देशी फौजें ही सबसे आगे रहकर हमारी रक्षा कर रही थी। देशी लोग ही हमारे साईस रसोइया आदि सेवक हैं इनकी सहायता के बिना हमारी पलटन एक सप्ताह भी जीवित न रह सकती।" जिस प्रकार सिखों के बिना दिल्ली उसी प्रकार गोरखों के बिना लखनऊ का विजय हो सकना असम्भव था।

क्रान्तिकारियों का संगठन सुन्दर और प्रशंसनीय था किन्तु लाखों भारतवासी अपने देशवासी क्रान्तिकारियों के विरुद्ध देशद्रोह करके अंग्रेजों की सहायता करते रहे। तीसरा कारण यह था कि राजपूताने के देशी नरेश सीन्धिया, होल्कर, आदि ने संकोच और अविश्वास के कारण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता युद्ध में भाग नहीं लिया। यदि महाराजा जयाजीराव सीधिया वा कोई प्रमुख राजपूत नरेश समय पर अपनी सेना सहित क्रान्तिकारियों की सहायतार्थ दिल्ली पहुँच जाता तो कम्पनी की सेना किसी प्रकार भी युद्ध में नहीं ठहर सकती थी और राजधानी के अन्दर प्रभावशाली नेता की कमी पूर्ण हो जाती। सम्राट बहादुरशाह ने इन लोगों को क्रान्तियुद्ध में सहायतार्थ बहुत प्रयत्न किया किन्तु उसे सफलता न मिली।

चौथा कारण दक्षिण की उदासीनता वा भीरुता थी। यदि विन्ध्याचल के नीचे के भाग महाराष्ट्र मद्रास, बम्बई आदि प्रादि प्रान्त उत्तरभारत के साथ उसी प्रकार क्रान्तियुद्ध आरम्भ कर देते तो उन प्रान्तों से अंग्रेज अपनी सेना फिर उत्तर की ओर किसी प्रकार भी नहीं भेज सकते थे। निजाम हैदराबाद ने अंग्रेजों की सहायता करके दक्षिण में बड़ा भारी देशद्रोह करके अपने आपको कलंकित किया। दक्षिण भारत के निजाम हैदराबाद आदि नरेश तथा वहाँ की जनता इस स्वतन्त्रता के युद्ध में अपना कर्तव्य पूर्ण करते तो अंग्रेज जनरल नील, जनरल हैवलांक आदि कलकत्ते तक भी न पहुंच सकते और काशी प्रयाग कानपुर और अन्त में लखनऊ को विजय कर सकना अंग्रेजों के लिये असम्भव होता। और भारत की दासता की इतिश्री होकर यह उस समय स्वतन्त्र हो जाता।

जन् ५७ की असफलता का स्मरण किसी भी विचारशील भारतीय के हृदय को दुःखी और सन्तप्त किये बिना नहीं रह सकता। हमारे देश को अभी कुछ समय और विदेशी शासन के अत्यारों से पीड़ित होना था।

यदि सन् ५७ ई० की यह क्रान्ति न हुई होती तो वह समझना चाहिए था कि भारतवासियों में से आत्मगौरव, कर्तव्यपरायणता, जीवनशक्ति और साहस का अन्त हो चुका था। और अंग्रेज शासकों का साहस इतना बढ़ जाता कि वे सारे भारत को ईसाई विधर्मी बना डालते और भारतवासियों का स्वधर्म और स्वराज्यप्रेम सदैव के लिए लुप्त हो जाता और इनमें जीवन की छटा भविष्य में कभी देखने को न मिलती। हिन्दू वा मुसलमान एक भी देशी रियासत भारत में शेष बची न रहती। जिस प्रकार अफ्रीका और अमरीका के आदिमवासियों का योरोपियन जातियों ने उन देशों से सर्वथा अस्तित्व मिटाकर अपने उपनिवेश बना लिये। वैसे ही भारत की अवस्था होती। अत्याचार करने वाले से अत्याचार सहन करने वाला अधिक पतित और पापी होता है। इसके अनुसार हमारे अन्दर मनुष्यता नाम की वस्तु ढूंढ़ने को न मिलती। अंग्रेज लेखक ने ठीक लिखा है—"यदि इन हालात में उन लोगों के पक्ष में जिनके राज्य छीन लिये गये थे और छीनने वालों के विरुद्ध भारतवासियों के भाव न भड़क उठते तो भारतवासी मनुष्यत्व से गिरे हुए समझे जाते।" इन सब दृष्टियों से सन् ५७ के क्रान्तिकारियों का बलिदान कदापि व्यर्थ नहीं गया। मरती हुई भारतीय जाति में इसने पुनः जीवन फूंक दिया और भारतीय राष्ट्रीय जीवन में आशा और आत्मविश्वास की वह अग्नि सुलगा दी जो सौ वर्ष तक भी कभी बुझ नहीं सकती। इस क्रान्तियुद्ध

ने अंग्रेजों को अपने अत्याचार करने की प्रवृत्ति पर पुनः विचार करने के लिए सावधान कर दिया। इन अत्याचारी शासकों की आंखें भी खुलीं। यही नहीं अंग्रेज ठीक सन् ५७ में चीन के साथ युद्ध करने का संकल्प कर चुके थे। किन्तु जो अंग्रेज सेनायें चीन पर आक्रमण करने के लिये चल पड़ी थीं वह भारत के क्रान्तियुद्ध के कारण रोककर भारत में बुलानी पड़ी। और चीन को ४० वर्ष के होने वाले बौकसर युद्ध तक अधिक शक्ति संचय करने का अवसर मिल गया।

जापान ने भी भारत की अवस्था को देखकर लाभ उठाया और उसने सैंकड़ों वर्षों की पुरानी २७३ रियासतों को समाप्त कर अपने देश में एक प्रधान सुदृढ़ शासन की स्थापना की। अतः भारत की क्रान्ति से एशियाई देशों ने लाभ उठाया और ब्रिटिश शासकों की महत्वाकांक्षा को इससे बड़ा भारी धक्का पहुंचा। इस क्रान्ति से भारत के पग कुछ न कुछ स्वतन्त्रता तथा उत्थान की ओर ही बढ़े। अंग्रेज लेखक फारेस्ट लिखता है "सन् ५७ की क्रान्ति से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमारा साम्राज्य एक ऐसे पतले छिलके के ऊपर स्थित है जिसके किसी भी समय सामाजिक परिवर्तनों और धार्मिक क्रान्तियों की प्रचण्ड ज्वालाओं द्वारा टुकड़े-टुकड़े हो जाने की सम्भावना है।"

१८५७ के स्वतन्त्रता के युद्ध से अंग्रेज नीतिज्ञों की आँखें खुल गईं। वे समझ गये साम्राज्य को और अधिक बढ़ाने की अपेक्षा उसकी दृढ़ता के उपाय करना अधिक आवश्यक है। अब अंग्रेजों को अपने साम्राज्य की स्थिरता भारत की शेष देशी रियासतों के कायम रहने में ही दिखाई देने लगी। लार्ड डलहौजी की अपहरण की नीति विप्लव का एक विशेष कारण था। अतः इसका परित्याग किया गया। अतः विप्लव के पश्चात् वर्मा को छोड़कर किसी नई देशी रियासत पर कब्जा नहीं किया गया।

ये देशी रियासतें शनैः शनैः अंग्रेजी राज्य की स्थिरता में किसी प्रकार का खतरा न होकर ब्रिटिश साम्राज्य की विशेष रूप से पोषक बन गईं। कम्पनी के हाथ से राज्य लेकर पार्लियामेंण्ट के हाथों में दे दिया गया। सन् ५७ के पश्चात् अधिकांश अंग्रेज नीतिज्ञों ने निश्चय किया कि भारतीयों में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार और इनमें ईसाईमत का प्रचार करके इनके दिलों से स्वदेशप्रेम और स्वधर्म में आस्था वा श्रद्धा को समाप्त कर देना चाहिये। यदि भारतीय अपने धर्म और देश से प्रेम करना छोड़ दें तो इनके राष्ट्रीयता के रहे सहे भाव मिट सकते हैं। ऐसा करने से अंग्रेजी साम्राज्य भारत में स्थिर हो जायेगा।

अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार और ईसाईमत का प्रचार सन् १८५५ के पश्चात् अंग्रेजों ने भारत में पूर्णशक्ति लगाकर किया। इससे उनको अभीष्ट फल मिला। भारत का आगे का इतिहास इसका साक्षी है।

सशस्त्र क्रान्ति के आद्य प्रचारक

क्रान्तिकारियों के पितामह भीष्म वीर श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा

(आचार्य भगवान्देव)

सशस्त्र क्रान्ति का व क्रान्ति करने वालों का जब कभी स्मरण किया जाता है, तब स्वातन्त्र्य वीर सावरकर, सेनानी वापट, लालाहरदयाल, भगतसिंह आदि की मूर्ति हमारे आगे आ जाती है। परन्तु सशस्त्र क्रांन्ति के आदि संचालक पं० श्याम जी कृष्णवर्मा का परिचय बहुत कम दृष्टिगोचर होता है। विदेश में रहकर भारत माता की परतन्त्रता की बेड़ियों को खण्ड-खण्ड करने में उनका सबसे ऊँचा स्थान है।

काठियावाड़ प्रान्त ने अनेक महापुरुषों को जन्म दिया है। उनमें से पं० श्याम जी कृष्णवर्मा का नाम भी विशेषतया उल्लेखनीय है। ये वैदिक साहित्य और संस्कृत के बड़े विद्वान् थे। इन्होंने अपनी प्रतिभा तथा विद्वत्ता का सिक्का पश्चिमी विद्वानों पर जमाया था। विलायत में संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् श्री मैक्समूलर अपकी विद्वाता का लोहा मानते थे। इनमें स्वदेशाभिमान कूट-कूट कर भरा हुआ था। स्वदेश की स्वतन्त्रता के लिये किसी के साथ किसी भी प्रकार का समझौता करने के लिये कभी उद्यत नहीं हुए और जीवन भर स्वतन्त्रता के लिए देश व विदेश में लड़ते रहे।

सशस्त्र क्रान्ति के आविष्कारक का जन्म ४ अक्तूबर १८५७ में काठियावाड़ प्रान्त के माण्डली ग्राम में हुआ था। आपके घर में अत्यन्त दारिद्रय था। आपके पिताजी का नाम श्रीकृष्ण जी था वे बम्बई में किसी व्यापारी के यहाँ नौकरी करते थे। श्याम जी का प्रारम्भिक शिक्षण माण्डली ग्राम में ही हुआ था। इसके बाद आपको भुज नामक ग्राम में अंग्रेजी पढ़ने के लिए भेजा। वहां आपने अपनी बुद्धिमत्ता का अच्छा प्रमाण दिया। एक दिन कार्यपरम्परा से श्याम जी की बुद्धिमत्ता की बात बम्बई के सेठ मथुरादास के पास पहुंची। उस दानवीर ने श्याम जी को बम्बई में बुलाकर विद्या पढ़ने व रहने की व्यवस्था कर दी। श्याम जी ने विल्सन स्कूल में प्रवेश किया, आप अपनी श्रेणी में सर्वदा प्रथम रहते थे। श्याम जी कुशाग्रबुद्धि नवयुवक होने के कारण और संस्कृत में अच्छी प्रगति के कारण स्कूल में सबसे अच्छे माने जाते थे। जब कभी कोई सम्भ्रान्त व्यक्ति कालेज का निरक्षण करने आता था, तब प्रिंसिपल श्याम जी वर्मा को उनके आगे कर देते और वह अपने उत्तरों से सबको चकित कर देते थे।

श्याम जी प्रातः कालेज में जाकर सायंकाल पुनः श्री विश्वनाथ शास्त्रीजी के पास संस्कृत पाठशाला में जाते थे। कालेज तथा पाठशाला का पाठ पर्याप्त होता था परन्तु आप रात्रि जागरण कर विद्याभ्यास करते थे। इस प्रकार आपने दिन-रात एक करके विद्याभ्यास किया। आपको अपने परिश्रम

का फल शीघ्र ही मिल गया। आप को गोकुलदास कान्हदास जी से छात्रवृत्ति मिलने लगी। इस के बाद इनकी भरती एलफिन्सटन कालेज में हो गई।

उसी समय छबीलदास लल्लूभाई बम्बई के लक्ष्मी पुत्र (धनिक) माने जाथे थे। आपको कपड़े के व्यापार पर करोड़ों रुपयों की आय होती थों। इन्हीं धनपति का सुपुत्र रामदास श्याम जी की श्रेणी में पढ़ता था। एक दिन अकस्मात् लाला ने अपने सुपुत्र से कहा तेरी श्रेणी में सर्वप्रथम विद्यार्थी कौन है। तब रामदास ने उत्तर में श्याम जी का नाम लिया। उसके पिता जी ने उनको घर लाने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार श्याम जी को रामदास के घर जाना पड़ा उसके घर आते जाते एक वर्ष हो गया। एक दिन सेठ जी ने सोचा कि अपनी प्रिय कन्या भानुमती व श्याम जी का जोड़ा अच्छा रहेगा। तब जी ने भानुमती की विचारधारा को जानना चाहा कि यह इसमें सहमत है वा नहीं। परन्तु भानुमती ने पहले ही श्याम जी को वर लिया था। एक गरीब लड़के को लखपति ने अपनी सुन्दर कन्या देने की घोषणा कर दी। तब सेठ जी के सम्बन्धी और साथियों ने विवाह की खूब हँसी की। परन्तु सेठ जी ने धयशाली होकर विवाह कार्य सम्पन्न किया।

श्याम जी ने संस्कृत की इतनी योग्यता प्राप्त की कि लोग आपको संस्कृत का पण्डित कहने लगे। उस समय संस्कृतज्ञ मोनियर विलियम्स भारत में आये थे। श्याम जी की संस्कृत योग्यता को देखकर आश्चर्यचकित हो गये और प्रसन्न होकर यह कहा कि यदि श्याम जी आंक्सफोर्ड में आयेंगे तो उन्हें मैं पूरा सहयोग दूँगा। इस प्रकार अपना विद्याभ्यास का मार्ग साफ होता हुआ देखकर आप और भी अधिक उत्साह से पढ़ने लगे।

आधुनिक सुधारक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा संस्थापित आर्य समाज इस समय भारी तोड़ ोड़ पद्धति से चल रहा था। स्वामी जी महाराज अपनी वाक्यटुता और वाद-विवाद से विपक्षी दल को पीछेकरके अपने अस्तित्व की छाप लगा देते थे महर्षि दयानन्द जी महाराज की विद्वता की छाप उस समय के सुधारक अग्रणी गोपाराव देशमुख, महादेव गोविन्द नाराडे, लोकमान्य तिलक आदि पर श्याम जी पर उनका प्रभाव पड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं। श्याम जी की दसवीं श्रेणी की परीक्षा थी, परन्तु आपको सूचना मिलते ही आपने अपनी पुस्तक लपेट कर रख दी और पूना, नासिक आदि में स्वामी जी के साथ गये। इन स्थानों पर स्वामी महाराज के संस्कृतभाषा में वयाख्यान होते थे। आप के व्याख्यान का विषय हिन्दू धर्म सुधार रहता था श्याम जी स्वामी जी महाराज के सच्चे शिष्य बन गये। और आपने भी व्याख्यान देने का अभयस धीरे-धीरे आरम्भ कर दिया। विदेश जाने से पूर्व आप अच्छे व्याख्यात हो गये थे। यहां तक कि आपके पास प्रसंशा पत्रों का ढेर लग गया था।

स्वामी दयानन्द जी महाराज की दृष्टि केवल समाज सुधार तक ही सींमित नहीं थी। वे भारत की उन्नत स्वतन्त्र-स्वावलम्बी और बलवान् बनाना चाहते थे। धर्म या समाज सुधार का कार्य-क्रम उनकी दृष्टि में मुख्यतः इस लिये आवश्यक था कि लोगों का अज्ञान और अन्ध-विश्वास दूर हुए बिना यह मार्ग रुद्ध हो रहा था अतः एव राष्ट्रीय शिक्षा पर भी आपका ध्यान आरम्भ से लगा था और वह शिक्षा किस प्रकार की हो इस सम्बन्ध में आपने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों में पर्याप्त प्रकाश डाला है। आपने संस्कृत शिक्षा प्रचार के लिए अपने जीवन काल में फर्रुखाबाद, कासगञ्ज और बनारस आदि में अपने विचारानुसार पाठशालायें १८६८ में खोलीं। आप की यूरोप के शिल्प और विज्ञान की शिक्षा भी अपने विद्यार्थियों को निज भाषा की अर्थात् संस्कृत मे माध्यम् से दिलाने की अभिलाषा बड़ी उत्कट थी, और साथ ही विदेश में भारतीय प्रचार और

सांस्कृतिक आदान-प्रदान द्वारा जगत् में भारत को सम्मान का स्थान दिलाने के महत्व को भी आप जानते थे। अपनी इच्छा पूर्ति के लिये १८७९ में आपने श्याम जी कृष्णवर्मा को इङ्गलैण्ड जाकर अध्ययन करने और भारत सम्बन्धी प्रचार करने के लिए प्रेरणा की। यहीं आपने श्याम के खर्चे का भी भार उठाया और साथ ही आपने जर्मन विद्वान् बिस से पत्रव्यवहार भी किया।

स्वामी जी के पत्र और विज्ञापन में इस सम्बन्ध में २१ पत्र विद्यमान हैं जिससे पता चलता है कि आप श्याम जी कृष्णवर्मा को किस प्रकार की बनाना चाहते थे।

(पहला पत्र)

पं० श्याम कृष्ण वर्मा!

विदेश जाने से पूर्व हमारे पास रहकर वेद और शास्त्र के मुख्य-मुख्य विषय देख लेते तो अच्छा होता।

(दूसरा पत्र)

श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा आनन्दित रहो।

विदित हो कि हमने सुना है आपका इरादा संस्कृत पढ़ने-पढ़ाने के लिए इलैङ्गण्ड जाने को है सो यह विचार बहुत अच्छा है। परन्तु आपको पहले भी लिखा था और अब भी लिखते हैं कि जो हमारे पास रह कर वेद और शास्त्र मुख्य-मुख्य विषय देख लेते तो अच्छा होता। अब आपको उचित है कि जब वहां जायें तो जो आपने अध्ययन किया है उसी में वार्तालाप करें और कह देवें कि मैं कुछ वेदशास्त्र नहीं पढ़ा किन्तु मैं तो देश का छोटा विद्यार्थी हूँ और कोई बात वा काम ऐसा न हो कि जिससे अपने देश का ह्रास होवे. क्योंकि वे लोग संस्कृत पढ़ाने वालों की अत्यन्त इच्छा रखते हैं इसलिए आपके पास सब तरह के पुरुष मिलने और बात-चीत करने के कारण आवेंगे। सो जो कुछ उनके मध्य में कहें समझकर कहें और इस चिट्ठी का जवाब हमारे पास भेज देवें।

दयानन्द सरस्वती

२५ जुलाई १८७८ अमृतसर

सन् १८७९ में श्याम जी कृष्णवर्मा भारत को छोड़कर विलायत गये। विलायत में मोनियर विलियम्स साहब ने श्याम जी का भव्य स्वागत किया। आपको बलिअल कालेज में प्रविष्ट करवा दिया। रिटर्ड टम्पल साहब की कृपा से कच्छ से उनको छात्रवृत्ति मिली। वहां श्याम जी ने एक भाषा में पढ़ना आरम्भ नहीं किया अपितु ग्रीक वलैटिन आदि का भी पढ़ना आरम्भ किया। शीघ्र ही वालिका कालेज में बी० ए० हो गये। वहां आप संस्कृत मराठी आदि में भाषण करते थे।

श्याम जी कृष्णवर्मा ने इंग्लैंड में राजकीय प्राच्य-परिषद् में १८८१ में पहिले पहल "प्राचीन भारत में लेखन कला" विषयक एक विद्वत्तापूर्ण निबन्ध पढ़कर प्राच्य विद्या विशारद के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की। १८८२ में आक्सफोर्ड विद्यालय का प्रथम भारतीय स्नातक होने के पश्चात् १८८३ में भारत आये। उनके आने से पूर्व ही महर्षि दयानन्द जी महाराज का देहान्त हो गया था। भारत में आकर अपनी पत्नी को भी साथ लेकर पुनः विलायत चले गये सन् १८८५ में बैरिस्टर होने के पश्चात् आप भारत आ गये।

जब श्याम जी स्वदेश में आये तब लोग आपको आशा भरी दृष्टि से देखते थे। स्वामी जी को श्याम जी के पाण्डित्य और वक्तृत्व कला की अच्छी पहचान थी, स्वामी जी आप में विश्वास करते थे और यह

सोचते थे कि यह तरुण तपस्वी प्राच्य विद्या व पाश्चात्य विद्या में पारंगत होकर आर्यसमाज की धुरा को अपने कंधे पर रखकर विवेक पूर्वक सारे संसार में आर्य समाज की ध्वजा लहरा देगा। जब श्याम जी विदेश में थे तब स्वामी दयानन्द ने एक पत्र संस्कृत में लिखा था उसमें श्याम जी से कुछ प्रश्न किये थे। इसका क्या कारण है कि धर्मोपदेश करने में अभी तक इंगलिस्तान में तुम्हारी प्रसिद्धि नहीं फैली। इसका या तो यह कारण है कि मैं दूर हूँ और तुम्हारी ख्याति मुझे ज्ञात न हो या यह है कि तुम्हें इस कार्य के लिये अवकाश न मिलता हो। हमारे मित्र प्रोफेसर मोनियर विलियम्स की और मैक्समूलर साहब की वेदशास्त्र के सम्बन्ध में क्या सम्मति है। और इनकी व औरों की वेद भाष्य के सम्बन्ध में जो इन दिनों मैं कर रहा हूँ, क्या सम्मति है।

श्याम जी कृष्ण वर्मा ने यह पत्र प्रोफेसर मोनियर विलियम्स को दिखाया। जिसकी सरल सुबोध और ललित संस्कृत को देखकर वह इतने मोहित हुए कि उन्होंने उसका अंग्रेजी अनुवाद एथीनियम नाम के पत्र में १३ अक्टूबर १८८० के अंक में प्रकाशित कराया और पत्र को आदर्श मानते हुए लिखा कि संस्कृत-भाषा अभी तक आर्यावर्त के पत्र-व्यवहार और दैनिक बोलचाल की भाषा है। आर्यावर्त में शिक्षित मनुष्यों के बीच में यही भाषा विचार विनिमय का माध्यम है। आर्यावर्त में लगभग २०० भाषायें बोली जाती हैं, यदि ये भाषा माध्यम न हों तो एक प्रान्त के मनुष्य को दूसरे प्रान्त के मनुष्यों से बात-चीत करने में अत्यन्त कठिनता होती। ऐसी दशा में लोग यह कहते हैं कि संस्कृत भाषा अप्रयुक्त और अवनत दशा में है। यह भयङ्कर भूल है।

श्याम जी कृष्णवर्मा का परिचय देते हुए मोनीयर विलियम ने लिखा था कि आपने ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति से शिक्षा पाई है जो केवल प्राचीन संस्कृत-भाषा के विद्वान् नहीं अपितु जिन्होंने मूर्ति-पूजा आदि का खण्डन और एकेश्वर पूजा का समर्थन करके धर्म सम्प्रदाय में बड़ी हल-चल कर डाली है। स्वामी जी शुद्ध एकेश्वर बाद को मानने वाले हैं और अपने धार्मिक सिद्धान्तों को तो वेद पर ही निर्भर करते हैं। इस प्रगति समर्थक देशोद्धारक का नाम दयानन्द सरस्वती है। जिसके भाषण लालित्य और लेखन की गम्भीरता का मैं स्वयं साक्षी हूँ क्योंकि जब मैं बम्बई में था तब मैंने स्वामी जी को आर्य समाज के उत्सव में धर्मविषयक उपदेश देते सुना था।

भारत में आने के पश्चात् आपके घरवासी यह सोचते थे कि हमारा लड़का वकील बन कर अपने बुद्धिचातुर्य से धन कमायेगा। परन्तु श्याम जी को आर्यसमाज के तत्वों से प्रेम था। अगाध श्रद्धा थी। श्याम जी ने इस प्रकार की हलचल मचानी प्रारम्भ की कि आर्यसमाज का ध्वज फहराने का कार्य प्रारम्भ हुआ। आपने जिस प्रकार बम्बई में वकालत में ख्याति प्राप्त की, ठीक उसी भाँति आर्य समाज के कार्य में निपुणता प्राप्त की।

कुछ दिन पश्चात् आपने रतलाम नगर में जाकर श्री गोपालराव देशमुख से भेंट की। श्री देशमुख जी लोकोपकारी पुरुष थे, और आप दीवान का कार्य भी करते थे, वे वृद्ध होने के कारण अपना दीवान पद छोड़ना चाहते थे, वह इस कार्य से विरक्त हो गये थे। श्याम जी भी उसी समय वहां पहुंचे। श्री गोपालराव जी ने अपने स्थान में श्याम जी को दीवान बनाने की इच्छा राजा जी से प्रकट की। रतलाम के राजा को देशमुख की मन्त्रणा पसन्द आई उसने तरुणवीर श्याम जी को मासिक ७००) रुपया के वेतन पर अपना दीवान का स्थान दे दिया। ता० १० नवम्बर १८८६ के दिन आपने दीवानपद ग्रहण किया।

दीवानं पद प्राप्त होने पर दुष्ट खलपुरुष माकानिक को यह सह्य न हुआ। श्याम जी कृष्णवर्मा के विषय में कौन जानता था कि इस प्रकार साधारण घर में जन्मा हुआ बालक इस प्रकार के उच्चपद को प्राप्त करेगा। आपने बीमारी के कारण दीवान का पद १८८८ में छोड़ दिया। और स्वास्थ्य प्राप्त करने अजमेर चले गये। वहां आप बड़ी सफलता से वकालत करते रहे। अजमेर में रहते हुए आप सर्वप्रथम भारतीय थे जो अजमेर म्युनिसिपल कमेटी के सभापति चुने गये। ब्यावर में रूईपेच खोलकर राजस्थान में आधुनिक शिल्पों का प्रवेश भी पहले-पहल आपने ही कराया। अजमेर में राजपूताना प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना तथा ब्यावर में राजपूताना काटन मिल की स्थापना आपने ही की थी। सन् १८९२में महाराणा फतहसिंह जी मेवाड़ाधिपति के मन्त्री बनकर कार्य करने लगे। दीवान के स्थान पर मन्त्री का पद उस समय मेवाड़ में होता था। मेवाड़ में दीवान का पद उड़ा दिया था। आपका उदयपुर निवासस्थान बन गया। सन् १८९४ में श्याम जी कृष्णवर्मा को मेवाड़ से जूनागढ़ राज्य में दीवान बनकर जाना पड़ा। महाराणा फतहसिंह जी में स्वाधीनता वृत्ति से प्रेम कुलाभिमान और तेजस्विता आदि गुण होने के कारण आप श्यामजी कृष्णवर्मा के गुणों पर मोहित थे। "समानशील व्यसनेषु सख्यम्" अर्थात् समान गुण कर्म स्वभाव वालों में प्रेम और मित्रता होना स्वाभाविक है। अतः अब महाराणा जी को श्याम जी से अत्यन्त प्रेम हो गया था। आपने श्याम जी को बड़े दुःख और शोक से विदाई दी। और साथ ही उन्होंने, जब कभी अवकाश हो, उदयपुर आने का स्थायी निमन्त्रण दे दिया।

अब माकीनिक के विषय में लिखते हैं—जब श्याम जी औक्सफोर्ड में थे तब उनकी जिनके साथ मैत्री थी यह भी था। इसने साहब की सिहिल परीक्षा पास की थी। और भरपूर वेतन भारत सरकार से मिलता था। जब श्याम जी जूनागढ़ के दीवान हो गये उसी समय इसकी बदली बड़ौदा में हुई। उस समय इसको १७०० रु० वेतन २०० प्रवास भत्ता २५० ऐलौंस मिलता था। परन्तु वह यहां की नौकरी नहीं करना चाहता था। क्योंकि बड़ौदा का पापट मामलेदार गोद लेने के कारण दक्षिणी ब्राह्मण भड़क जावेंगे। यह उसकी शिकायत थी। उसने श्याम जी के पास इस प्रकार पत्र भेजा कि हे महाराज मेरी इच्छा राजपूताने में नौकरी करने की है। मुझे उस प्रान्त के राजपूत बहुत पसन्द हैं। बड़ौदा भिखारियों का स्थान है। यहां भलेपन व प्रगति का बहुत द्वेष है, यहां मत्सर-मद-जुलम का साम्राज्य है।" पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा का माकीनिक पर निश्वास था। अतः जूनागढ़ में स्थान देने का प्रयत्न करने लगे। आपका प्रयास सफल हुआ, परन्तु तीन मास तक माकीनिक को शिमला में कार्य करना पड़ा। एक मास के बाद उसने श्याम जी को पत्र लिखा कि जूनागढ़ में रहने के लिए जगह अच्छी नहीं। बड़ौदा सरकार ने मेरे लिये एक बंगला बनवाया है। आप मेरे लिये एक विशेष घर बना दें जो कि मोतीबाग के पास हो। तब श्याम जी ने बड़ौदे के बंगले का नक्शा मंगाकर उसी प्रकार का बंगला बनवाने लगे। जब तैयार हुआ वह नीच २५ जुलाई को परिवार सहित वहां आया। इस इमारत के बनवाने में श्याम जी ने कोई कमी न रक्खी थी। परन्तु यह तो एक मांग पूरी होने पर दूसरी मांग रख देता था। उसकी मांगें पूरी करने के कारण भारत सरकार की श्याम जी को शिकायतें आने लगीं। इधर इतना कार्य करने पर भी वह आप से अप्रसन्न रहता था। उसकी अप्रसन्नता हटाने के लिये उसे श्याम जी ने वह पत्र दिखाये। परन्तु वह न माना। और अन्ततो गत्वा मित्रद्रोही माकीनिक श्याम जी का विरोधी हो गया। जिस प्रकार श्याम जी ने उसके साथ भलाई की, ठीक उसी प्रकार दुष्ट पामर माकीनिक ने श्याम जी के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने शुरू किये। यह नीच यहां तक कि उनके विरोधियों को साक्षी का काम देता था। यही नहीं उसने श्याम

जी पर हजारों आरोप लगाये। इस व्यवहार से दुःखी होकर आपने १७६५ में दीवान पद से त्यागपत्र दिया और माकीनिक के इस निन्दनीय व्यवहार से श्याम जी की गौरकाय पुरुषों से श्रद्धा हट गई।

श्याम जी कृष्ण वर्मा वहाँ से उदयपुर चले आये और महाराणा जी के पास रहने लगे। मेवाड़ के तात्कालीन प्रेजीडेण्ट सर विलियम कर्नल वामली ने महाराणा पर दबाव डाला कि श्याम जी को मेवाड़ में न रखा जाये। इतने पर भी महाराणा ने आपको अपने पास रख लिया। महाराणा फतहसिंह में देश-भक्ति और प्राचीन पुरुषों का गौरव कूट-कूट कर भरा था। अतः आप देशभक्त श्याम जी के साथ हृदय से प्रेम करते थे। वहाँ पर रहकर श्याम जी ने सरकार से लिखा पढ़ी की और राजनैतिक विभाग द्वारा लगाये आरोपों का निराकरण किया, साथ ही माकीनिक को दोषी तथा बेईमान सिद्ध करके जूनागढ़ से निकलवाया। परन्तु अंग्रेजी सरकार अपने पिट्ठू को किस प्रकार छोड़ सकती थी उस नीच को अपने यहाँ नौकर रख लिया।

भारत की स्वाधीनता की महत्वाकांक्षा श्याम जी में महर्षि दयानन्द की शिक्षा और सत्संग के कारण पहले से ही कूट-कूटकर भरी थी। अंग्रेज सरकार से उनका वैमनस्य था। उनके दुर्व्यवहार ने श्याम जी के हृदय में अंग्रेजों के प्रति अत्यन्त घृणा उत्पन्न कर दी। अंग्रेजों के इस दुर्व्यवहार पूर्ण सम्पूर्ण विषय को 'केसरी' समाचार पत्र में प्रकाशित करने के लिये लोकमान्य तिलक ने श्याम जी से सम्पर्क स्थापित किया। इस पर श्याम जी का महाराष्ट्र के स्वाधीनता वादी युवकदलों से सम्बन्ध हो गया।

सन् १८६६–६७ में भारत में भारी अकाल था तब अंग्रेज करोड़ों का अनाज इंगलैण्ड ले गये और भारत के सीमान्तों पर साम्राज्यवादी युद्ध चलाते रहे। इससे जनता में रोष की अग्नि भड़क उठी। ठीक इसी समय पूना में प्लेग रोग ने आक्रमण किया। पुलिस अधिकारी समस्त इलाके को खाली करने के लिये जनता से बड़ी धृष्टता और असभ्यता पर उतर आये। इससे दुःखी होकर एक स्वाभिमानी युवक ने दो अंग्रेज अधिकारियों को मार डाला। 'केसरी' के सम्पादक श्री तिलक जी ने इस घटना की आलोचना करते हुए उसे अंग्रेज और अधिकारियों के प्रति चिढ़ाने वाले व्यवहार के विरुद्ध चेतावनी देकर उसका समर्थन किया। इस पर श्री तिलक जी को १॥ वर्ष की सजा मिली। छः मराठे युवक पकड़ कर फांसी पर चढ़ा दिये गये। और अनेकों को लम्बी-लम्बी सजायें देकर बन्दी बना दिया गया। इस काण्ड में श्याम जी का हाथ था। अतः आपने जेल में बन्द होकर सड़ने से अच्छा यह समझा कि विदेश में जाकर अपनी माता के फन्दे काट दूं इस विचार से आप अपनी भूमि माता को नमस्कार कर चले गये। साथ ही अपनी पत्नी को भी ले गये।

विलायत में जाकर श्याम जी की काया पलटा खा गई, क्यों कि उन्हें नौकरी का कटु अनुभव हो गया था। आपने विलायत में पांव रखने से पूर्व ही यह प्रतिज्ञा की कि जीवन का विशेष भाग भारत माता की मुक्ति में लगाना है। वहां जाकर वह १६०५ तक प्रायः अज्ञात रहते हुए वहां पढ़ने वाले भारतीय युवकों में स्वाधीनता की भावना जगाने और भारत स्वाधीनतावादी आन्दोलन को संगठित करने का यत्न करने लगे। यही कार्य करते हुए आप प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक हरबर्ड स्पेंशर तथा यूरोप अमेरिका के दूसरे क्रान्तिकारी विचारकों और नेताओं के सम्पर्क में भी आ गये। उनके विचारों, क्रान्ति सम्बन्धी साहित्य तथा शस्त्र अस्त्र सम्बन्धी ज्ञान व उपकरणादि को भारत में पहुँचाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

लन्दन में श्याम जी कृष्णवर्मा ने "भारतीय समाज तत्ववित्" (इन्डियन सोश्योलोजिस्ट) नामक मासिकपत्र निकाला। इसका पहला अङ्क जनवरी १६०५ में निकाला था। इस पत्र को निकालने का उद्देश्य अपने पत्र के पहले अङ्क में इस प्रकार दिया है—

हमारी बहुत अधिक प्रमाण में विलायत की ब्रिटिश जनता को भारतीय जनता की मांग वा कामना है, उसको अच्छी प्रकार रखने का प्रयत्न आज तक किसी ने नहीं किया। भारतवासी हिन्दू जनता की शिकायत ब्रिटेन आदि की जनता के सन्मुख रखना इसका मुख्य उद्देश्य है। इस पत्र के साथ आपने एक "भारतीय स्वराज्य सभा" (होमरूल बीज आफ इण्डिया) नामक संगठन खड़ा कर दिया, उसने प्रकट रूप से भारतीय स्वाधीनता के लिए आन्दोलन आरम्भ कर दिया। हरवर्ट स्पेंशर की फेलोशिप की योजना का श्याम जी ने शीघ्र ही अपने पत्र से प्रसारित कर, भांडा फोड़ कर दिया। क्योंकि इस योजना का उद्देश्य भारतीय विद्यार्थी मण्डली को अंग्रेजी में शिक्षण पूरा करने वाले को आर्थिक सहायता करना था (फेलोशिप १३५ पौण्ड की होती है) और इसके पीछे प्रतिज्ञा कराई जाती थी कि जो इस शिक्षा से शिक्षा ग्रहण करता है उसको आजीवन सरकार की नौकरी करनी पड़ती थी। इसके विरुद्ध श्याम जी ने अपनी लेखनी उठाई और जोरदार शब्दों में इसका खण्डन किया। उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों को इससे बचने की मार्मिक अपील की।

पण्डित श्याम जी कृष्ण वर्मा अपने वृत्तपत्र द्वारा किसी के भय व लालच से सर्वथा पृथक् रह कर अति कठोर भाषा में ब्रिटिश राज्य का (जो भारत में था) खण्डन करते थे। इसी कारण आपके पत्र का प्रसार अल्पकाल में अत्यधिक हो गया। श्याम जी अपनी कल्पना का उपयोग करके वाचक महोदयों को आश्चर्यचकित करते थे। सन् १६०५ में अपने खच पर ऐसे भारतीय विद्यार्थियों के लिए जो अपना सारा जीवन भारत की स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करने में लगाने का प्रण करें और अंग्रेजों की कृपा पाने या नौकरी स्वीकार करने का कभी यत्न न करने का व्रत लेने को तैयार हों, इस प्रकार के छः छात्रों को छात्रवृत्तियाँ देने की घोषणा की। सन् १६०६ में लन्दन के एक अच्छे स्थान में तीन मंजिल का मकान बनवाकर भारतीय विद्यार्थियों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए वहां २५ छात्रों के लिये निवास, भोजन, खेल-कूद, आदि का प्रवन्ध कर तथा पुस्तकालय वाद-विवाद, व्याख्यान गोष्ठी आदि सभी उन्नति की सुविधायें उपस्थित कर "भारत भवन" (इण्डिया हाउस) नाम से भारतीय स्वाधीनतावादियों का एक केन्द्र स्थापित किया। विनायक दामोदर सावरकर दिल्ली से ला० हरदयाल सेनापति बापट जैसे अनेक देशभक्त युवक उनकी छात्रवृत्तियां पाकर वहां रहने लगे और आप से देशभक्ति का पाठ पढ़ने लगे।

सेनापति बापट ने अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध भाषण दिया। जिससे सब का सब विलायत गुञ्जायमान हो उठा, तथा श्याम जी ने अपने पत्र द्वारा उसका समर्थन कर अग्नि में घी का काम किया। पञ्जाब केशरी लाला लाजपतराय जी को देश निर्वासन की सूचना मिली तब आपने उस दुःखद घटना पर भी लेखनी उठाई। और आपने लिखा कि लाला लाजपतराय को भारत से निकालने का अभिप्राय ब्रिटिश के सौ वर्ष के पाप का घड़ा भर जायेगा। लाला जी के आपने देशभक्ति और त्याग के जो उदाहरण दिये थे उनका परिणाम यह हुआ कि भारतवासियों को बगावत करने में घी का काम दिया और प्रत्येक भारतीय बेडेल फिलिप्स के कथनानुसार देशोन्नति के लिए शूली पर चढ़ने के लिये तैयार हो गये। ११ मई को लाला जी का देश बहिष्कार का दिन था। साथ ही वह स्वातन्त्र्य समर का पचासवां स्मृति दिवस था।

इधर पैरिस में पं० श्याम जी कृष्णवर्मा का मित्र सरदारसिंह राणा था। श्याम जी की प्रेरणा से उसने भी पैरिस में उनकी भांति दो छात्रवृत्तियां देने की घोषणा की। इस पर श्री हेमचन्द्र नामक एक बङ्गाली युवक अपनी समस्त चल अचल सम्पत्ति बेचकर पैरिस पहुंचा और विस्फोटक पदार्थों का ज्ञान करने लगा। उसी समय उल्लासकरदत्त नामक एक दूसरा बंगाली भी बम्ब बनाने के प्रयोग कर रहा था। इस प्रकार बम्ब बनाने वाले तरुण देशभक्तों की मण्डली तैयार हो गई। इन सबके साथ श्याम जी का घनिष्ठ सम्बन्ध था।

लन्दन में इसी साल १९०८ में भारतीय भवन में २१ मई को १८५७ के प्रथम भारतीय स्वाधीनता समर की वर्षी मनाई गई। श्री विनायकराव दामोदर सावरकर ने १८५७ का स्वातन्त्र्य समर नामक ग्रन्थ लिखा था। उसको पढ़कर सुनाया जाता रहा और उसकी अनेक प्रतियां गुप्त रूप से सभाओं में प्रचार के लिये भारत में भेजी गई। श्री हरदयाल जी १९०७ में भारत लौट आये थे और दिल्ली, राजस्थान पञ्जाब सीमाप्रान्त तथा पश्चिमी युक्त प्रान्त में संगठन फैलाने और दृढ़ करने में लग गये। एक वर्ष कार्य करके पुनः हरदयाल जी यूरोप चले गये थे। तभी लन्दन में मेवाड़ के भूतपूर्व प्रेजीडेण्ट सर विलियम को जिस ने १८९५ में श्याम जी को मेवाड़ से निकालने का प्रयत्न किया था। वही अब लन्दन में अंग्रेजों के भारत मन्त्री के कार्यालय में उनके प्रधान सलाहकार के पद पर रह कर भारतीय विद्यार्थियों से हिल मिल कर उन से भेद लेने का यत्न करता था।

मदनलाल धींगड़ा ने १ जुलाई १९०९ में कर्नल वापालीची की हत्या कर दी। यह तरुण युवक पञ्जाब प्रान्त का रहने वाला था। साथ ही यह 'भारतीय भवन' का छात्र था। श्री सावरकर हरदयाल द्वारा संस्थापित अभिनव भारत समिति का सदस्य था। इसको इस अपराध में प्राणदण्ड दिया गया और श्री विनायकराव सावरकर को पकड़ कर आजन्म कारावास की सजा दे दी गई। उनके दीर्घ भ्राता गणेश सावरकर को पहले सजा दी जा चुकी थी। राजस्थान में ग्वालियर राज्य में अभिनव भारत समिति के अनेक सदस्य पकड़े गये। उन पर ग्वालियर राजनीतिक षड्यन्त्र नाम से दो अभियोग चलाये और पर्याप्त सदस्यों को लम्बी लम्बी सजायें दी गईं। पण्डित श्यामकृष्ण वर्मा का कर्नल के मारने में हाथ था। अतः आप इंगलैंड छोड़कर पैरिस चले गये। वहाँ सरकार ने इस हत्या का दोष आपके सिर लगाया, परन्तु धींगड़ा ने अपने बयान में कहा श्याम जी का इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। धींगड़ा की अमर स्मृति में आपने और चार छात्रवृत्तियां देने की घोषणा कर दी।

पं० श्याम जी कृष्णवर्मा के विषय में नेहरू जी इस प्रकार लिखते हैं—"जो लोग राष्ट्रसंघ में शामिल होने के लिये आते थे तो श्याम जी उनके पास जा नहीं सकते थे। परन्तु मजदूर कार्यालय में कभी-कभी हिन्दुस्तानियों से मिलने जाते थे। श्याम जी इनसे मिलने का प्रयत्न करते थे। श्याम जी से मिलकर जो असर होता था वड़ा ही मनोरञ्जक होता था। जब कभी श्याम जी मिलते तो मिलते ही यह लोग घबरा उठते थे और न केवल जनता में ही उनसे मिलने से बचने का प्रयत्न करते बल्कि एकान्त में भी आप से मिलने पर किसी न किसी बहाने से क्षमा मांग कर बच निकलते थे क्योंकि वे जानते थे कि श्याम जी से सम्बन्ध रखने या उनके साथ देखे जाने से हमारी खैर नहीं।"

अतएव श्याम जी और उनकी पत्नी को एकांकी जीवन यात्रा बितानी पड़ी। उनके न कोई बाल बच्चे ही थे न कोई सम्बन्धी था—वह पुराने जमाने के स्मृति चिन्ह थे। सचमुच उनका जमाना व्यतीत हो चुका था और वर्तमान देश की अवस्था उनसे विपरीत थी। इतना होते हुए भी आपकी आंखों में पुराना

तेज था, यद्यपि उनमें और मुझ में एक सी कोई चीज नहीं। फिर भी मैं अपनी हार्दिक भावना व इज्जत को नहीं रोक सकता था।

इस प्रकार के आदर्श वीर श्याम जी कृष्णवर्मा के जीवन पर कई नीच पुरुषों ने कीचड़ उछालने का दुस्साहस किया। एक ने यहां तक कहा कि आप देशभक्ति का ढोंग रचते हैं। यही नहीं आप अत्यन्त रमणीय सौंदर्य के शहर में रहते हैं। वहां ऊँचे-ऊँचे वृक्षराज से युक्त मन्दिर विराजमान हैं। वहां राजकीय सजावट भी है। विद्युत् प्रकाश, गरम और शीतल स्नान के लिये सुन्दर स्नानागार, व भोजन के लिये पकवानों तथा फलों की भरमार रहती है इत्यादि। परन्तु वह वीर अपनी धुन का पक्का था इन बातों की कहाँ परवाह करने वाला था, वह अपने पथ पर अग्रसर होता ही गया। आदर्श पुरुष पर टीका टिप्पणी करना ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार सूर्य की ओर थूकना।

श्री पं० श्याम कृष्णवर्मा के निरन्तर दस वर्ष तक अथक परिश्रम करने से वह स्वातन्त्र्यवीर सावरकर सेनानी श्री वापट, लाला हरदयाल, भाई परमानन्द, मदनलाल धींगड़ा आदि क्रान्तिकारी वीर देशभक्त, भारतमाता की सेवा के लिये मिले। इनके और आपके प्रयत्न से ब्रिटिश राज्य की भारत में होली खेली गई। आपका देहावसान देश सेवा कार्य करते-करते पेरिस में हो गया।

——:*:——

श्रीमती कामादेवी

श्रीमती कामादेवी एक पारसी देवी थी। यह पेरिस में "वन्दे मातरम्" नामक एक पत्र निकालती थीं। अमेरिका, जर्मनी, आदि देशों में ईसाई पादरियों द्वारा भारत के विषय में फैलाई गई झूठी बातों का निराकरण भी यह किया करती थी। दादाभाई नौरोजी को पार्लियामेंट का सदस्य चुनवाने के लिये इन्होंने अथक परिश्रम किया था। बाद में ये "होमरूल आन्दोलन" (श्याम जी द्वारा संचालित) में सम्मिलित हो गईं। कुछ दिन के पश्चात् जब 'अभिनव भारत" का कार्य बढ़ा तो आप इसकी सदस्या बन गईं। एक बार ये जर्मनी में अखिल जर्मन सोशलिस्ट सम्मेलन में सम्मिलित हुईं। सावरकर द्वारा निर्मित भारतीय राष्ट्रीय पताका (झण्डे) को साथ लेती गईं। जब ये बोलने खड़ी हुईं तो अपनी जेब से उस ध्वज को निकाल कर बोली "यह है भारतीय राष्ट्र का स्वतन्त्र झण्डा। यह देखिये फहरा रहा है भारतीय देशभक्तों के रक्त से यह पवित्र हो चुका है। सभ्यगण! मैं आपसे अनुरोध करती हूं कि आप लोग खड़े होकर भारत की इस स्वतन्त्र पताका का अभिवादन करें।" श्रीमती कामादेवी के भाषण का बड़ा प्रभाव पड़ा और सभी ने टोपी उतार कर भारतीय ध्वज का आदर किया। यह प्रथम ही अवसर था जब किसी भारतीय ने अपने राष्ट्र की स्वतन्त्र पताका फहराने का साहस किया था।

जब वीर सावरकर जी रोगी होकर इंग्लैंड से पेरिस गये थे श्रीमती कामादेवी के पास पेरिस में ठहरे थे। इन्होंने माता के समान ही सावरकर की प्रेमपूर्वक शुश्रूषा की जिससे ये शीघ्र ही रोगमुक्त हो गये। वीर सावरकर के लिखे हुए प्रसिद्ध ग्रन्थ सन् ५७ का 'स्वातन्त्र्य संग्राम" मराठी भाषा की पाण्डु लिपि लण्डन से देवीकामा के पास पेरिस में सुरक्षार्थ भेजी गई। वीर सावरकर इस समय गिरफ्तार हो चुके थे। देवी कामा ने इस पाण्डु लिपि को "जेवर बैंक आफ पेरिस" में सुरक्षित रख दी। किन्तु जर्मनी के आक्रमण से न पेरिस बैंक ही रहा और न श्रीमती कामा की मृत्यु से जेबर का ग्राहक ही रहा। बहुत खोज करने पर भी इसका कुछ पता नहीं चला। और मराठी साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ देवीकामा की मृत्यु के साथ ही नष्ट हो गया।

———

हरयाणा का स्वातन्त्र्य-सङ्ग्राम

(आचार्य भगवान् देव)

दिल्ली के चारों ओर डेढ़ सौ-डेढ़ सौ, मील की दूरी तक का प्रदेश हरयाणा प्रान्त कहलाता है। सारे प्रान्त में जाट, अहीर, गूजर, राजपूत इत्यादि योद्धा (जऊजू) जातियां बसती हैं। इसीलिये हरयाणे ने इस युद्ध में सब प्रान्तों से बढ़ चढ़ कर भाग लिया था। इसी प्रान्त के एक भाग मेरठ में यह क्रान्ति की चिनगारी सब से पहले सुलगी और शनैः-शनैः सारे भारत में फैल गई। इस स्वतन्त्रता युद्ध के शान्त होने पर हरयाणा प्रान्त की जनता पर जो भीषण अत्याचार अंग्रेजों ने किये उनको स्मरण करने से वज्रहृदय भी मोम हो जाता है। कोठपुतली जयपुर राज्य के ठिकाने खेवड़ी के राजा को दे दिया। इसी के फलस्वरूप अंग्रेजों ने इस प्रान्त को अनेक भागों में विभाजित करके इस वीरप्रान्त की संगठन शक्ति को चूर-चूर कर दिया। मेरठ आगरा सहारनपुर आदि इसके भाग उत्तर प्रदेश में मिला दिये। भरतपुर अलवर आदि राजस्थान में मिला दिये। कुछ भाग को दिल्ली प्रान्त का नाम देकर के पृथक् कर दिया। नारनौल को पटियाला राज्य, वावल को नाभा और दादरी नरवाना को जींद स्टेट जो फुलकिया राज्य कहलाते हैं, उन में मिला दिया, जो झज्जर प्रान्त के भाग थे। शेष गुड़गावां, रोहतक, हिसार, करनाल आदि को पञ्जाब में मिला दिया। इस प्रकार इस हरियाणे की वीर भूमि को खण्डशः करके नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

हरियाणे के एक-एक ग्राम में बड़ी वीरता से अंग्रेजों के साथ युद्ध किया है, आज उन सबका इतिहास नहीं मिलता। आज तक सन् ५७ के क्रातिन्युद्ध में भाग लेने वाले अनेक ग्रामों के वीर भूमिहीन कृषक के रूप में अपने कष्टपूर्ण दिन काट रहे हैं। जैसे लिबासपुर, कुण्डली, भालगढ़, खामपुर, अलीपुर, हमीदपुर, सराय इत्यादि जी० टी० रोड जो दिल्ली से लाहौर की ओर जाता है उस पर बसते हैं। कुछ ग्रामों के विषय में संक्षेप से लिखता हूँ।

लिबासपुर का बलिदान

जी० टी० रोड में से एक टुकड़ा सड़क का सोनीपत को जाता है, उसी स्थान पर यह गांव बसा हुआ है। उस समय से अब तक इस में जाटकुल क्षत्रिय वसते हैं। क्रान्तियुद्ध के समय उदमीराम नाम का एक वीर युवक इसी ग्राम का निवासी था जो अंग्रेज सैनिक दिल्ली से भागकर इधर से जाते थे यह उनके साथ युद्ध करता था। इसने अपने २२ वीर योद्धाओं का एक संगठन बना रखा था, जो अत्यन्त वीर स्वस्थ, सुन्दर, सुदृढ़ शरीर वाले युवक थे। अतः उस सड़क पर से गुजरने वाले अंग्रेज सैनिकों को चुन-चुन कर मारते थे और सब को समाप्त कर देते थे। एक दिन एक अंग्रेज अपनी धर्मपत्नी सहित ऊंटकराची में जी० टी० रोड पर देहली से पानीपत को जा रहा था। जब वह लिबासपुर के निकट आया तो इन वीरों ने उसे पकड़ लिया। और अंग्रेज को तो उसी समय मार दिया, किन्तु भारतीयसभ्यता के अनुसार उस अंग्रेज औरत को नहीं मारा। ग्राम के कुछ दुष्ट प्रकृति के लोगों ने उस अंग्रेज स्त्री को गांव के चारों

ओर मई की धूप में चक्कर लगवाया और खलियान (पैर) में बैलों का गाहटा भी हँकवाया। कुछ इस प्रकार की घटनाओं को इतिहास लेखक झूठी और अंग्रेजों की घड़ी हुई बतलाते हैं। हरियाणे के ही नहीं किन्तु सभी भारतीयों ने अंग्रेजी देवियों और बच्चों पर कहीं अत्याचार नहीं किये। सायंकाल भालगढ़ में रहने वाली बाई जी (ब्राह्मणी) को उस अंग्रेज स्त्री को देख भाल के लिये सौंप दिया। उसे समुचित भोजन वस्त्रादि देकर सेवा की। इस घटना के समाचार आस पास के सभी ग्रामों में फैल गये। कितने ही बाहर के ग्रामों के लोग समाचार जानने के लिये लिबासपुर आये। इनमें राठधना निवासी सीताराम भी था। उसने ग्राम में आकर सब वृत्त को जानने का विशेष यत्न किया और भालगढ़ ग्राम में बाई जी के पास, जहां वह अंग्रेज स्त्री ठहरी थी, उसके पास भी पहुंच गया। उस अंग्रेज स्त्री को इन्होंने बता दिया कि लिबासपुर के उदमीराम, गुलाब, जसराम, रामजस, रतिया आदि ने बहुत से अंग्रेजों को मृत्यु के घाट उतारा है और तुझे भी मारने का षड्यन्त्र कर रहे हैं। सीताराम और बाई जी ने उस अंग्रेज महिला के साथ गुप्त मन्त्रणा की। उस अंग्रेज देवी ने इन्हें अनेक प्रकार के वचन दिये और प्रलोभन दिया कि यदि आप मुझे रातों रात पानीपत के सुरक्षित स्थान पर जहां अंग्रेजों का कैम्प है पहुँचा दो तो बहुत सारी सम्पत्ति मैं आप दोनों को दिलवाऊंगी। उन दोनों ने सवारी का प्रबन्ध करके उसे पानीपत में अंग्रेजों के कैम्प में पहुंचा दिया। युद्ध शान्त होने पर क्रान्तियुद्ध के समय की कई रिपोर्टों के आधार पर अंग्रेजों ने लोगों को दण्ड और पारितोषिक देना आरम्भ किया और अपने निश्चित कार्यक्रम के अनुसार एक दिन अंग्रेज सेना ने प्रातः काल चार बजे लिबासपुर ग्राम को चारों ओर से घेर लिया। उदमी, जसराम, रामजस, सहजराम, रतिया आदि वीर योद्धाओं ने अपने साधारण शस्त्र जेली, तलवार, गण्डासे, लाठियां और बल्लम सम्भाले, किन्तु ये गिने चुने वीर साधारण शस्त्रों से एक बहुत बड़ी अंग्रेज सेना के साथ जो आधुनिक शस्त्रों से सुसज्जित थी, कब तक युद्ध कर सकते थे। बहुत से मारे गये, और शेष सब गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तार हुये व्यक्तियों की पहचान के लिये देश-द्रोही बाई जी और सीताराम को बुलाया गया उन्होंने जिन-जिन व्यक्तियों को बताया कि इन्होंने अंग्रेज मारे हैं। गिरफ्तार कर लिये गये। सारे ग्राम को बहुत बुरी प्रकार से लूटा गया। तीस पैंतीस बैलगाड़ियां गांव के तमाम धनधान्य मूल्यवान सामान से भर कर देहली भेज दी गईं। ग्राम की सब स्त्रियों से आभूषण बलपूर्वक छीन लिये गये। किसी व्यक्ति के पास कुछ भी न रहने दिया। शेष गांव के निवासी मृत्यु के भय से गाँव को छोड़ कर भाग गये और जीन्द राज्य के रामकली ग्राम, झज्जर तहसील के खेड़का ग्राम में और सोनीपत तहसील के कल्याणा और रत्नगढ़ ग्राम में जाकर बस गये। ये लोग इन ग्रामों में तीन वर्ष तक बसे रहे। जब तीन वर्ष के पश्चात् पूर्व शान्ति हो गई, लौट कर अपने ग्राम में आये। ग्राम तीन वर्ष तक सर्वथा उजड़ा हुवा (निर्जन) पड़ा रहा। शान्ति होने पर सीताराम ने अपने सम्बन्धियों को मुरथल से तथा अन्य स्थानों से लाकर उस में बसा दिया और लिबासपुर का निवासी लिखवा दिया। उसने इस प्रकार की धूर्तता की। सीताराम ने इस ग्राम के कागजात में अपने नाम लिखवा दिया और लिबासपुर ग्राम को अपना खरीदा हुवा बताया और कागजी कार्यवाही पूरी कर दी। तभी से लिबासपुर ग्राम सीताराम के बेटे पोतों की अध्यक्षता में है और कागजात में भी इसी प्रकार लिखा हुवा है।

ग्राम के यथार्थ निवासी भूमिहीन (मजोर) के रूप में चले आ रहे हैं। गांव के कोई भी व्यक्ति एक बीघे जमीन का भी (बिश्वेदार) स्वामी नहीं है। ग्राम वासियों ने जो कष्ट सहन किये उनका लिखना सामर्थ्य से बाहर है। इन कष्टों को तो वे ही जानते हैं जिन्होंने उन्हें सहर्ष सहन किया है। जिन व्यक्तियों को

गिरफ्तार किया था उन्हें राई के सरकारी पड़ाव में ले जा कर सड़क पर लिटा कर भारी पत्थर के कोल्हुओं के नीचे डाल कर पीस दिया गया। उन कोल्हुओं में से एक कोल्हू का पत्थर अब भी २३वे मील के दूसरे फर्लाङ्ग पर पड़ा हुवा है।

वीर योद्धा उदमीराम को पड़ाव के पीपल के वृक्ष पर बान्ध कर हाथों में लोहे की कीलें गाढ़ दी गईं, नको भूखा प्यासा रखा गया। पीने को जल मांगा तो जबरदस्ती उसके मुख में पेशाब डाला गया। अंग्रेजों का सख्त पहरा लगा दिया गया, भारत मां का यह सच्चा सपूत ३५ दिन तक इसी प्रकार बंधा हुवा तड़पता रहा। इस वीर ने अपने प्राणों की आहुति देकर सदा के लिये हरियाणा प्रान्त और अपने गांव का नाम अमर कर दिया। उसके शव को भी कहीं छिपा दिया।

लिबासपुर के शहीदों की वंशावली

जो व्यक्ति अंग्रेजों के अत्याचार के कारण हुतात्मा (शहीद) हुए उनके सम्बन्धियों की पीढ़ी (कुल) निम्न प्रकार से है—

उदमीराम (चाचा) का गुलाबसिंह (भतीजा)

- उदमीराम
  - बुद्धू (गोद लिया)
    - शादीराम
      - शिवनाथ
        - जागे
      - नन्दा
    - केवलराम
      - अनन्तराम
        - अमरसिंह
        - रामचन्द्र
      - गोरखा
- गुलाबसिंह
  - मुहरा
    - हंसराम (गोद लिया)
      - मनफूल
      - लक्ष्मण
      - परमा
  - मलुका
    - गोरखा (गोद लिया)

इन परिवारों में से—

जागे, अमरसिंह, रामचन्द्र, मनफूल, लक्ष्मण और परमा ये सब जीवित हैं।

- रामजस
  - रामकलां
  - मीलु
  - जसवन्त
    - रतन
    - रामचन्द्र
      - रामधारी
      - रामनारायण
      - हरिराम
      - जगदीश
      - धर्मसिंह
      - रघुवीर

इस परिवार में रामचन्द्र के सुपुत्र रामधारी आदि ६ व्यक्ति जीवित हैं।

सहजराम

मुखराम — नोनक

हरलाल — जगराम — हरफूल — देवकराम

मोलड़

भगवानसिंह आदि सात भाई हैं। भगवानसिंह ने ही लिवासपुर का लेख लिखने में मुझे पर्याप्त सहायता दी। यह एक आर्य सज्जन हैं।

जसराम

इन्दराज — डूंगर — भांगा — धोकल

हरनाम

जवाहर — भोला — अर्जुन — अमृत

दीपचन्द

अन्तराम — ज्ञानी — भरत

रतन — जीता — फत्ते

हरकेराम — ताराचन्द — करणसिंह

हरकेराम आदि तीनों भाई इस समय जीवित हैं

रतिया

रायराम — मेदा — भगता

बालकू — धर्नसिंह — चन्दगी

दीवानसिंह — चन्दगीराम

श्रीचन्द — नत्थु — रूपचन्द

सुरता — भरता — सुलतान — हजारी — चन्दू

इस परिवार में से सुरता आदि पाँचों भाई जीवित हैं।

यह लेख लिखने में श्री बलवीरप्रसाद चतुर्वेदी मुख्याध्यापक "संस्कृत हाई स्कूल लिबासपुर" बहालगढ़ से मुझे पूरी सहायता मिली। यह सारी सामग्री एक प्रकार से आपने ही इकट्ठी करके दी है। इसके लिये मैं आपका आभारी हूं। जब मैं आपके पास पहुँचा तो आपने तुरन्त स्कूल के सब कार्य छोड़कर मुझे यह लेख लिखने के लिए सामग्री लाकर दी और श्री भगवानसिंह आर्य भी लिबासपुर बुलाने से तुरन्त उसी समय आ गये। यह स्कूल पं० मन्साराम जी आर्य जारवौली निवासी ने खोला हुआ है जहाँ बैठकर मैंने यह सामग्री एकत्रित की। आपका सारा जीवन आर्यसमाज के प्रचार में बीता है।

मुरथल बलिदान

मुरथल ग्राम निवासियों ने भी इसी प्रकार अत्याचारी अंग्रेजों के मारने में वीरता दिखाई थी। अंग्रेज शान्ति होने पर मुरथल ग्राम को भी इसी प्रकार का दण्ड देना चाहते थे। किन्तु नवलसिंह नम्बरदार मुरथल निवासी अंग्रेज सेना को मार्ग में मिल गया। अंग्रेज सेना ने उससे पूछा कि मुरथल ग्राम कहां है ? तो नम्बरदार ने बताया कि आप उस गांव को तो बहुत पीछे छोड़ आये हैं। उस समय अंग्रेज सेना ने पीछे लौटना उचित न समझा और यह बात नम्बरदार की चतुराई से सदा के लिए टल गई। देशद्रोही सीताराम को इनाम के रूप में लिबासपुर ग्राम सदा के लिए दे दिया और उस बाई जी (ब्राह्मणी) को बहालगढ़ गाँव दे दिया। आज भी इन दोनों ग्रामों के निवासी भूमिहीन (मजारे) कृषक के रूप में अपने दिन कष्ट से बिता रहे हैं। देश को स्वतन्त्र हुए ११ वर्ष हो गये किन्तु इनको कोई भी सुविधा हमारी सरकार ने नहीं दी। इनके पितरों (बुजुर्गों) ने देश की स्वतन्त्रता के लिए अपने सर्वस्व का बलिदान दिया। किन्तु किसी प्रकार का पारितोषिक तो इनको देना दूर रहा इनकी भूमि भी आज तक इनको नहीं लौटाई गई। गतवर्ष सन् ५७ में स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध की शताब्दी मनाई गई, किन्तु देशभक्त ग्रामों को पारितोषिक व प्रोत्साहन तो देना दूर रहा किसी राज्य के बड़े अधिकारी ने धैर्य व सान्त्वना भी नहीं दी। मेरे जैसे भिक्षु के पास देने को क्या रक्खा है, यह दो चार पंक्तियां इन देश भक्तों के लिये श्रद्धाञ्जलि के रूप में इस बलिदानाङ्क में लिख दी हैं। इस प्रकार के सभी देश-भक्त ग्रामों के लिए यही श्रद्धा के पुष्प भेंट हैं।

कुण्डली का बलिदान

सूबा देहली में नरेला तथा नरेला के आस-पास लवौरस गोत्र के जाटकुल क्षत्रियों के दस बारह ग्राम बसे हुए हैं। उनमें से ही यह कुण्डली ग्राम सोनीपत तहसील जिला रोहतक में जी० टी० रोड पर है। इस ग्राम के निवासियों ने भी सन् ५७ के स्वतन्त्रता युद्ध में खूब बढ़ चढ़ कर भाग लिया था। यहां के वीर योद्धाओं ने भी इसी प्रकार अत्याचारी भागने वाले अंग्रेज सैनिकों का वध किया था।

एक घटना जिसका पता चल गया और जिसके कारण इस ग्राम को दण्ड दिया गया वह निम्न प्रकार से है—

एक अंग्रेज परिवार ऊँट कराची में बैठा हुआ इस गाँव के पास से सड़क पर जा रहा था। वे चार व्यक्ति थे एक स्वयं, दो उसके पुत्र, और एक उसकी धर्मपत्नी। जब वे चारों इस ग्राम के पास आये तो गांव के लोगों ने उस ऊँटकराची को पकड़ लिया। ऊँट को भगा दिया और करांची को एक दर्जी के बगड़ में बिटोड़े में रखकर जलाकर भस्मसात् कर दिया। उस अंग्रेज और उसके दोनों लड़कों को मार दिया। उस देवी को भारतीय सभ्यता के अनुसार कुछ नहीं कहा। उसे समुचित भोजनादि की व्यवस्था

करके गांव में सुरक्षित रख लिया। जब युद्ध की समाप्ति पर शान्ति हुई तो एक अंग्रेज नरेला के पास पलाश-बन में जो कुण्डली से मिला हुआ है शिकार खेलने के लिए आया। उसकी बन्दूक के शब्द को सुनकर वह अंग्रेज-स्त्री आंख बचा कर उसके पास पहुंच गई और उसका अपने परिवार के नष्ट होने की सारी कष्ट-कहानी उसको सुना दी। वह उसे अपने साथ लेकर तुरन्त देहली पहुंच गया। एक किंवदन्ती यह भी है कि उस करांची में ८० हजार का नकद माल था जो उस ग्राम वालों ने लूट लिया। अंग्रेज आदि उस समय कोई कत्ल नहीं किया। वह माल लूट कर इस भय से कभी तलाशी न हो, नरेला भेज दिया गया। कुफली ग्राम के कुछ निवासी इस घटना को असत्य भी बताते हैं। कुछ भी हो इस ग्राम को दण्ड देने के लिए एक दिन प्रातः चार बजे अंग्रेजी सेना ने आकर घेर लिया।

ग्राम के वस्त्र, आभूषण, पशु इत्यादि सब अंग्रेजी सेना ने लूट लिया। और सारे पशु इत्यादि को अलीपुर ले जाकर नीलाम कर दिया गया। स्त्रियों के आभूषण वलपूर्वक उतारे गये, यहाँ तक कि भूमि खोद-खोद कर गड़ा हुआ धन भी निकाल लिया गया। बहुत से व्यक्ति तो जो भागने में समर्थ थे ग्राम को छोड़ कर भाग गये। ग्राम के कुछ मुख्य-मुख्य आदमी जो भागे नहीं थे गिरफ्तार कर लिए गये। कुछ व्यक्ति ग्राम के सर्वनाश का एक कारण और भी बताते हैं। जब अत्याचारी मिटकाफ जो काणे साहव के नाम से प्रसिद्ध था और हरयाणे के वीर ग्रामों को दण्ड देता और आग लगाता हुवा फिर रहा था, वह नांगल की ओर से आया तो कुछ व्यक्ति उसके स्वागत के लिए दूध इत्यादि लेकर नांगल की ओर चले गये। वे मार्ग में ही इसका स्वागत करके अपने गांव को बचाना चाहते थे। किन्तु उस दिन मिटकाफ ने दूसरे किसी ग्राम का प्रोगाम नांगल जखौली इत्यादि का बना लिया। कुण्डली वाले विवश हो लौट आये, जिस समय यह लौट रहे थे तो अंग्रेजी सरकार की चौकी पर एक मालिम नाम का व्यक्ति रहता था। उसने ग्रामवासियों से दूध मांगा कि यह दूध मुझे दे जाओ, किन्तु चौधरी सुरताराम जो कठोर प्रकृति के थे उसे यह कह—कर धमका दिया कि तेरे जैसे तीन सौ फिरते हैं, तेरे लिये यह दूध नहीं है। उस व्यक्ति ने कहा अच्छा मुझे भी उन तीन सौ में से एक गिन लेना, समय पड़ने पर मैं भी आप लोगों को देखूँगा। उसी व्यक्ति ने मिटकाफ साहब को सूचना दी कि अंग्रेजों को कुण्डली ग्राम वालों ने मारा है और अंग्रेज अपनी सेना लेकर ग्राम पर चढ़ आये। निम्नलिखित व्यक्तियों को गिरफ्तार किया—

१—श्री सूरताराम जी २— उनका पुत्र जवाहरा ३—बाजा नम्बरदार ४—पृथीराम ५—मुखराम ६ – राधे ७—जयमल। कुछ व्यक्ति जो और भी गिरफ्तार हुए थे उनके नाम किसी को याद नहीं। यह लोकश्रुति है कि १४ व्यक्ति गिरफ्तार किये गये थे। ११ को दण्ड दिया गया और तीन को छोड़ दिया गया। इनमें से ८ को एक-एक वर्ष का कारागृह का दण्ड मिला। ३ को अर्थात् नम्बरदार, सूरताराम उनके पुत्र जवाहरा, और बाजा नम्वरदार को आजन्म काले पानी का दण्ड दिया गया। इनको अण्डमन द्वीप (कालेपानी में) भेज दिया गया। वहां पर चक्की, कोल्हू बेड़ी, इत्यादि भयङ्कर दण्ड देकर खूब अत्याचार ढाये गए। अतः ये तीनों वीर अपनी देश की स्वतन्त्रना के लिए बलि वेदी पर चढ़ गए, इनमें से कोई लौटकर नहीं आया। इसके विषय में लोगों ने बताया जब इनको गिरफ्तार करके ले जाने लगे तो बाजा नम्बरदार ने सुरता नम्वरदार को कहा यह ग्राम सुख से बसे। हम तो अब लौट कर आते नहीं। सुरता ने कहा—बाजिया तू तो यों ही घबराता है मेरे माथे में मणि है (अर्थात् मैं भाग्यवान् हूँ) हम अलीपुर व देहली से ही छूटकर अवश्य घर लौट आयेंगे हमारा दोष ही क्या है। बात यथार्थ में यह है

कि अंग्रेजों ने खूब यत्न किया। इस ग्राम के द्वारा अंग्रेजों के कतल के अभियोग को सिद्ध नहीं किया जा सका, सुरता की बात सुन कर बाजा ने कहा जिनके ढोर पशु धनादि ही नहीं रहा वह लौट कर कैसे आयेंगे। हुवा भी ऐसा ही। ये तीनों वहीं पर समाप्त हो गए। जो इस ग्राम के वीर, स्वतन्त्रता की बलिदेवी पर चढ़े, उनकी पीढ़ियाँ निम्न प्रकार से हैं।

कुण्डली के शहीदों की वंशावली

सुरताराम [यह काले पानी भेजे गये]

जवाहरा [यह भी काले पानी भेजे गये]

तिरखा भागमल रामजीलाल नवल

मंगतु किशनचन्द रूपचन्द बेगराज शीशराम रामनाथ शिवचन्द

हरस्वरूप

आसेराम, अमनसिंह, रत्नराव, बिहारीलाल, छोटुराम, जयलाल

सुलतान, रामपत, चन्दगी, गिरधारी

जवाहरा के पुत्र रामजीलाल की पीढ़ी इस प्रकार है—

रामजीलाल

श्रीराम जागेराम रामचन्द्र परशे दुलीचन्द

इस समय इस परिवार में से आसेराम, रत्नदेव आदि छः भाई, रामपत आदि चार भाई, श्रीराम आदि चार भाई और हरस्वरूप तथा इनके बाल बच्चे कुण्डली में निवास करते हैं।

बाजा की पीढ़ी निम्न प्रकार से है—

झब्बू छेलू उदमी इन्द्रराज हसराम

किशनचन्द फूलु अमृत हुकमचन्द मेहरचन्द

सरदारा जगराम नवरङ्ग

जीतराम

आज कल कुण्डली ग्राम के स्वामी सोनीपत निवासी ऋषिप्रकाश आदि हैं यह ग्राम उनको किस प्रकार मिला इसके विषय में यह किंबदन्ती है कि सोनीपत निवासी मामूलसिंह नाम का ब्राह्मण (मोहर्रिर) लेखक था। सड़क पर एक आदमी की लाश पड़ी थी। कोई यह कहता है वह किसी अनाथ का ही शव था। उसके ऊपर वस्त्र, डाल कर उसके पास बैठकर।मामूलसिंह रोने लगा जब उसके पास से कुछ अंग्रेज गुजरे तो कहने लगा--यह मेरा आदमी आप लोगों की सेवा में मर गया। इसी के फलस्वरूप अंग्रेजों ने प्रसन्न होकर उसे पहले तो खामपुर ग्राम, पारितोषिक के रूप में दिया था। किन्तु पीछे कुण्डली ग्राम का स्वामी उसे बना दिया। जिस समय नोटिस (विज्ञापन) लगाया गया था कि यह गांव तीन वर्ष के लिये जब्त किया जा रहा है और मामूलसिंह को दिया जा रहा है। ग्राम वालों का कहना है कि उस समय उसने अपनी चालाकी, दबाव अथवा लोभ से दबा और सिखाकर सदा के लिये अपने नाम लिखा लिया। ग्राम के लोगों ने अनेक बार मुकद्दमा भी लड़ा और कलकत्ते तक भाग दौड़ भी की, किन्तु नकल ही नहीं मिली। मुकद्दमे में यह झूठ बोल दिया गया कि यह ग्राम मेरे बाप दादा का है हमारी यह पैतृक सम्पत्ति है। इसी लिये आज तक भी मामूल सिंह के परिवार के व्यक्ति इस ग्राम के स्वामी हैं और गांव के देशभक्त कृषक जो ग्राम के निवासी और स्वामी हैं वे भूमिहीन (मजारे) के रूप में अनेक प्रकार से कष्ट सहकर अपने दिन काट रहे हैं। मामूलसिंह के बेटे-पोतों ने इस ग्राम को खूब तङ्ग किया। अनेक प्रकार के पूछी आदि टैक्स लगाये, चौपाल तक नहीं बनाने दी। ग्रामवासियों ने भी खूब संघर्ष किया। अनेक बार जेल में गये। अन्त में चौपाल तो बनाकर ही छोड़ी। श्री रत्नदेव जी आर्य जो सुरता और जवाहरा के परिवार में से हैं इन्होंने ग्राम पर होने वाले अत्याचारों को दूर करने के लिये संघर्षों में नेतृत्व किया और खूब सेवा की। इस ग्राम के निवासी प्रायः सभी उत्साही हैं। अंग्रेजी राज्य को रहते रहते इस ग्राम के पढ़े लिखे को किसी भी सरकारी नौकरी में नहीं लिया गया। सभी प्रकार के कष्ट यह लोग सहते रहे और यह आशा लगाये बैठे थे कि जब देश स्वतन्त्र होगा तब समारे कष्ट दूर हो जायेंगे। जब सन् ४७ में १५ अगस्त को देश को स्वतन्त्रता मिली और लाल किले पर तिरङ्गा झण्डा फहराया गया उस समय यह गांव बड़े हर्ष में मग्न था। समझ रहा था कि अब हमारे भी सुदिन आ गये हैं। किन्तु आज देश को स्वतन्त्र हुए ११ वर्ष हो चुके हैं। यहां के ग्रामवासी पहले से भी अधिक दुःखी हैं। हमारे राष्ट्र के कर्णधारों व राज्याधिकारियों का इनके कष्टों की ओर कोई ध्यान नहीं। भगवान् ही इनके कष्टों को दूर करेगा। कुण्डली ग्राम के निवासी वृद्ध जीतराम जी, जिनकी आयु ८५ वर्ष है तथा सुरताराम और जवाहरा के परिवार के श्री महाशय रत्नदेव जी और उनके बड़े भाई आशाराम जी ने इस ग्राम के इतिहास की सामग्री इकट्ठी करने में मुझे पूरा सहयोग दिया है, इन सबका में आभारी हूं।

खामपुर, अलीपुर, हमीदपुर, सराय आदि अनेक ग्राम हैं जिन्होंने सन् ५७ के युद्ध में बड़ी वीरता से अपने कर्तव्य का पालन किया था। जब कभी मुझे समय मिला, मेरी इच्छा है मैं हरयाणे का एक बहुत बड़ा इतिहास लिखूं, तब इनके विषय में विस्तार से लिखूंगा। खामपुर आदि ग्राम भी जब्त कर लिये गये थे। ग्राम खामपुर, दिल्ली निवासी एक ब्राह्मण लछमन सिंह के बाप दादा को दिया गया था। आज भी वह परिवार उस ग्राम का स्वामी है। खामपुर ग्राम के जाट आदि जो निवासी थे वे भाग गये थे, वह खेड़े आदि अन्य ग्रामों में बसते हैं। इस ग्राम में तो अन्य मजदूरी करने वाले लोग बसते हैं। अलीपुर ग्राम के आदमियों को भी लिबासपुर के निवासियों के समान सड़क पर डालकर कोल्हू से पीस दिया गया था और अलीपुर ग्राम को बुरी तरह लूटकर जलाकर राख कर दिया गया था। अलीपुर ग्राम को जब्त

करके दिल्ली के कुछ देशद्रोही मुसलमानों को दे दिया गया था। उन मुसलमानों के परिवार में जो इस ग्राम के स्वामी थे, चरित्र सम्बन्धी गड़बड़ कुण्डली ग्राम में आकर की। कुण्डली ग्राम के दलितों ने इन पापियों के ऊपर अभियोग चलाया और उसी अभियोग में विवश होकर वह अलीपुर ग्राम मुसलमानों को जाटों के हाथ बेचना पड़ा। हमीदपुर ग्राम भी जब्त करके मुसलमानों को दिया गया था। इसी प्रकार ही ऐसे देशभक्त ग्रामों को जब्त करके देशद्रोहियों को दे दिया गया था। इसके विषय में विस्तार से कभी समय मिलने पर लिखूंगा।

अलीपुर ग्राम की घटना जो माननीय वयोवृद्ध पं० बस्तीराम जी आर्योपदेशक के मुखारविन्द से सुनी। निम्न प्रकार से है—

अलीपुर की घटना

मानेलुक नाम का एक अंग्रेज घोड़े पर सवार अलीपुर ग्राम के पास से जा रहा था। वह प्यास से अत्यन्त व्याकुल था। उसने एक किसान से जो सड़क के पास ही अपने खलियान (पैर) में गोंहटा चला रहा था, संकेत से जल पीने को मांगा। किसान को दया आई और वह घड़े में से जल लेने के लिये गांहटा छोड़ कर चल दिया किन्तु उस समय घड़े में जल न मिला। विवश होकर किसान अपने घड़े को उठाकर कुयें पर जल भरने को चला गया। किसान के इस सहानुभूति पूर्ण व्यवहार को देखकर अंग्रेज विचारने लगा कि इस व्यक्ति ने मेरे लिये अपना काम भी छोड़ दिया। वह अंग्रेज उसके पैर में आ गया और घोड़े से उतर कर यह समझकर कि किसान के कार्य में हानि न हो पैर में घुस गया, और बैलों को हांकना प्रारम्भ कर दिया और अपना घोड़ा पास के किसी वृक्ष से बान्ध दिया। उसी समय एक दूसरा अंग्रेज घुड़-सवार उसी सड़क से जा, रहा था जिसका नाम किलब्रूट था। उसने यह समझा कि मानेलुक से बलपूर्वक गोहटा हकवाया जा रहा है और वह शीघ्रता से वहां से भाग कर चला गया और अपनी डायरी में अलीपुर ग्राम के विषय में अंग्रेजों पर अत्याचार करने के लिये एक नोट लिख लिया। अर्थात् अलीपुरग्राम पर अत्याचार का आरोप लगाया, वह किलब्रट नाम का अंग्रेज जो वहाँ से भय के मारे शीघ्रता से भाग गया। भय के कारण सत्यता का अन्वेषण भी नहीं किया। इधर जब किसान जल का घड़ा भरकर लाया तो अंग्रेज गांहटे में खड़ा था और बैल उस से बिधक कर (डरकर) भाग गये थे। किसान ने अंग्रेज को सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में कहा—आपने ऐसा कष्ट क्यों किया ? उस किसान ने अंगेज के कपड़े झाड़े, धूल साफ की, जल पिलाया, और रोटी भी खिलाई। इस प्रकार उसकी अच्छी सेवा की,और उस अंग्रेज ने अलीपुर के विषय में बहुत अच्छा लिखा और वह चला गया। शान्ति होने के पश्चात् किलब्रूट की डायरी जो अलीपुर के विषय में बुरी लिखी थी उसी के अनुसार अलीपुर ग्राम को बुरी तरह लूटा गया। और मनुष्य, पशु आदि प्राणियों सहित अग्नि में जलाकर भस्मसात् कर दिया गया। कुछ दिन के पीछे मानेलुक की सच्ची रिपोर्ट भी अंग्रेजों के आगे पेश हुई। तब अंग्रेजों को ज्ञात हुवा कि जिस अलीपुर ग्राम को पारितोषिक मिलना चाहिए था उसको तो भीषण अग्नि काण्ड दिया गया। यह अंग्रेजों की मूर्खता का एक उदाहरण है। और सारे हरयाणे के ग्रामों पर यही दोष लगाया जाता है कि यहां के किसानों ने सब अंगेज स्त्रियों से गांहटा चलवाया था। यह सब बात इस अलीपुर की गोंहटे की घटना के समान मिथ्या और भ्रम फैलाने वाली हैं। भारतीयों ने अंग्रेजमहिलाओं और बच्चों पर कभी अत्याचार नहीं किये।

१८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में—

अलीपुर ग्राम का भाग

(आचार्य भगवान्‌देव)

अलीपुर ग्राम कई शताब्दियों से बड़ी सड़क जी० टी० रोड पर बसा हुआ है। इसी सड़क से अंग्रेजों की सेनाएँ गुजरती थीं। यहां के वीर लोगों ने भी सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में खूब बढ़ चढ़ कर भाग लिया, और इस सड़क पर गुजरने वाले अनेक अत्याचारी अंग्रेजों को काल के गाल में पहुंचाया गया। यही नहीं, इस स्वतन्त्रता समर में बलिदान देने वाले वीरों की संख्या इस ग्राम में सबसे बढ़ कर है। अलीपुर ग्राम में, १८५७ में सड़क के निकट ही सरकारी तहसील विद्यमान थी और उसके पास ही बाहर बाजार था। क्रान्ति के समय ग्राम के लोगों ने तहसील में घुस कर सब सरकारी कागजों को फूंक दिया। और बाजार को भी लूट लिया। ऐसा अनुमान है कि बाजार में जो दुकान थी या तो वे सरकार की थी या सरकारी पिट्ठुओं की थी। इसलिए उन्हें लूटा गया। तहसील पर जिस समय जनता के लोगों ने आक्रमण किया तो तहसील के सरकारी नौकरों ने अवश्य कुछ न कुछ विरोध किया होगा। उसके फलस्वरूप युद्ध हुआ और ग्रामीण वीरों ने गोलियाँ चलाईं। जिन गोलियों के निशान आज भी लकड़ी के किवाड़ों पर विद्यमान हैं। उन्हीं दिनों अनेक अंग्रेज, ग्रामीण योद्धाओं के द्वारा मारे गये।

अलीपुर ग्राम को दण्ड देने के लिए मिटकाफ (काना साहब) सेना लेकर अलीपुर पहुंच गया। उसने अपनी सेना का शिविर दो कदम्ब (कैम) के वृक्षों के नीचे लगाया, जो आज भी विद्यमान हैं। ये ऐतिहासिक वृक्ष अंग्रेजों के अत्याचार के मुँह बोलते चित्र हैं। गांव के चारों ओर सेना ने घेरा डाल दिया। तोपखाना भी लगा दिया। किसी व्यक्ति को भी गाँव से बाहर नहीं निकलने दिया गया। सेना के बड़े-बड़े अधिकारी गाँव में घुस गये। और गांव के ७०-७५ चुने हुए व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया गया। हँसराम नाम का एक व्यक्ति उस समय हलुम्बी गाम की ओर शौच गया हुआ था, उसे पकड़ने के लिए कुछ अंग्रेज जंगल में ही पहुंच गए और उसे गिरफ्तार कर लिया, वह खेड़े के निकट कुण्डों के पास पकड़ा गया। वह अत्यन्त स्वस्थ, सुन्दर आकृति का युवक था। पकड़ने वाले अंग्रेज अधिकारी के मन में दया आ गई तथा उसकी सुन्दर आकृति व स्वास्थ्य से प्रभावित होकर उसे छोड़ दिया। किन्तु उस युवक ने कहा कि मैं तो अपने साथियों के साथ रहना चाहता हूं, जहां वे जायेंगे मैं भी वहीं पर जाऊँगा। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अपने साथियों के साथ जीऊँ और साथियों के साथ ही मरूँ।

अंग्रेज सिपाहियों ने उसे बहुत छोड़ना चाहा, और उसे भागने के लिए बार-बार प्रेरणा की किन्तु उसने भागने से इन्कार कर दिया और गिरफ्तार हुए साथियों के साथ मिल गया, अंग्रेज सत्तर-पचहत्तर व्यक्तियों को गिरफ्तार करके लाल किले में ले गए और उन सबको फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

यह घटना १८५७ के मई मास के अन्तिम सप्ताह की है।

लाल किले में हँसराम को घसियारे के रूप में अंग्रेजों ने निकालना चाहा। वह अंग्रेज उसके सुन्दर शरीर तथा स्वास्थ्य को देखकर उसे छोड़ना चाहता था, किन्तु उसने फिर इन्कार कर दिया, फिर तो उसे भी फांसी पर चढ़ा दिया।

मुहम्मदु नाम का एक मुसलमान किसी प्रकार बच कर भाग आया। वह फिर सकतापुर भोपाल राज्य में जाकर बस गया।

दूसरा एक हिन्दू भुरड़ बौंक के जाटों में से बचकर भाग आया।

कुछ व्यक्तियों का ऐसा भी मत है कि इन व्यक्तियों कोफांसी नहीं दी गई थी किन्तु इन सब को पत्थर के कोल्हू के नीचे सड़क पर डाल कर पीस कर मार डाला गया था। वे पत्थर के कोल्हू अभी तक इस सड़क पर पड़े हुए हैं।

जिन व्यक्तियों को फांसी दी गई—

उनमें से तुलसीराम और हँसराम के अतिरिक्त और किसी के भी नाम का पता यत्न करने पर भी नहीं चल सका। अलीपुर ग्राम का भाट सोनीपत का निवासी है जो आजकल जाखोली गांव में रहता है, उसकी पोथी में पैंतीस व्यक्तियों के नाम मिलते हैं। उस विश्वम्भरदयाल भाट के पास जाखोली इन्हीं नामों के जानने के लिए गया, किन्तु जिस पोथी में ये नाम हैं, उस पोथी को उस भाट का पुत्र लेकर किसी गाँव में अपने यजमानों के पास चला गया था, दुर्भाग्य से वे नाम नहीं मिल सके।

अलीपुर ग्राम में भी मैं इसी कार्य के लिए तीन बार गया। जिन घरों में इन नामों के मिलने की आशा थी, खोज करवाने पर भी वे नाम नहीं मिल सके। यह हमारा दुर्भाग्य ही रहा कि जिन हुतात्मा वीरों ने हँसते-हँसते देश की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया। आज उनके नाम भी हमें उपलब्ध न हो सके।

जिस किसी ने भी १८५७ के स्वातन्त्र्य समर के विषय में लिखा है हरयाणा प्रान्त की वीरता के विषय में दो चार शब्द लिखने का भी कष्ट नहीं किया। यथार्थ में यह युद्ध हरयाणा प्रान्त के वीर सैनिकों ने ही लड़ा था। सभी रिसाले और पलटनों में मेरठ आदि सभी छावनियों में हरयाणा के वीर सैनिक ही अधिक संख्या में थे। उस समय तक हरयाणा प्रान्त के सभी ग्रामों में पञ्चायती सैनिक थे। सभी गांवों में अखाड़े चलते थे, जहां पञ्चायती सैनिक तैयार किए जाते थे। किसी प्रकार की आपत्ति पड़ने पर जो धर्मयुद्ध में भाग लेते थे। अलीपुर गांव के जो नवयुवक इस क्रान्ति में हँसते-हँसते बलिवेदी पर चढ़ गए वे भी इसी प्रकार के पञ्चायती सैनिक थे। इन सबको फांसी देने के लिए जिस समय गिरफ्तार किया गया, तोपों के द्वारा गांव पर गोले बरसाये गए। जिस समय तोपें चलीं उस समय तोपें चलवाने वाला कोई अंग्रेज अफसर दयालु स्वभाव का था। उसने इस ढंग से तोपें चलवाईं कि तोप के गोले गांव के ऊपर से गुजर कर जंगल में गिरते रहे। ग्राम नष्ट होने से बच गया। कुछ का ऐसा भी मत है कि ग्राम को लूटा भी गया और जलाया भी गया। जितने व्यक्ति इस ग्राम के मारे गये, उनमें भंगी से लेकर ब्राह्मण तक सभी सम्मिलित थे। जाट उनमें कुछ अधिक संख्या में थे।

एक पटवारी और एक नम्बरदार ने जब उनको बहुत तंग किया तब इन सब लोगों के नाम लिखवाए थे, जिनको फांसी दी गई थी। फांसी आने के पश्चात् जो देवियां विधवा हो गई थीं, उन्होंने उस नम्बरदार के घर के आगे आकर अपनी चूड़ियां फोड़ कर डाल दीं। इस प्रकार उनकी सहानुभूति

में ग्राम की अन्य देवियों ने भी अपनी चूड़ियां फोड़ फोड़ कर ढेर लगा दिया। यहां यह लोकश्रुति है कि उस समय उस नम्बरदार के घर के सामने सवा मन फ़टी चूड़ियों का ढेर लग गया।

जिस समय ग्राम पर यह आपत्ति आई ग्राम में सब बाल बच्चे, स्त्री और बूढ़े भाग कर हलूम्बी ग्राम में चले गए। नवयुवक सब ग्राम में ही विद्यमान थे। जिन में से गिरफ्तार करके पिचहत्तर को फांसी दी गई। ग्राम पर यही दोष लगाया गया था कि इन्होंने तहसील को जलाया और कुछ अंग्रेजों का वध किया था। एक दो व्यक्तियों ने ऐसा भी बताया कि दोनों प्रकार के प्रमाण पत्र गांव में मिले। ग्राम में कुछ अंग्रेजों को मारा भी और कुछ को बचाया भी। इसलिए एक अंग्रेज स्त्री के निषेध करने पर इस गांव को जलाया नहीं गया और न ही जब्त ही किया गया। बारह वर्ष पूर्व ही यह गांव कुछ नम्बरदारों के सरकारी लगान स्वयं खा जाने पर एक मुसलमान के पास चार हजार रुपये में गिरवी रख दिया गया था। क्रान्ति युद्ध के पीछे यहां के निवासियों ने रुपये देकर इसे खरीद लिया। जो अंग्रेज अलीपुर में मारे गए थे, उनकी कब्रें अलीपुर के पास ही बना दी गईं थीं। जो, कुछ वर्ष पहले विद्यमान थीं।

अंग्रेज अफसरों की आज्ञा से सिक्ख सेना ने बादली ग्राम के आस-पास के बारह ग्रामों के अहीर आदि सभी कृषकों के सब पशु हांक लिए थे। उस समय तोता नाम के एक चतुर व्यक्ति ने अपने अलीपुर ग्राम के सब निवासियों को उत्साहित किया और युद्ध करके सिक्खों से सब अपना पशु धन छुड़वा लिया। और उन ग्रामों के जिन के ये पशु थे। उनको ही सौंप दिया, किन्तु वह चतुर वीर तोताराम इस युद्ध में मारा गया। अब तक बादली समयपुर आदि ग्रामों के निवासी उस उपकरण के कारण अलीपुर के निवासियों का बड़ा आदर सत्कार करते हैं।

पीपलथला सराय आदि ग्रामों को भी इसी प्रकार लूटा और जलाया गया। इसी सराय ग्राम (भड़ोला) के पास आज भी एक अंग्रेज अफसर का स्मारक बना हुआ है जो उस समय ग्राम वासियों द्वारा मारा गया था। इस सराय ग्राम में कभी एक छोटी सी गढ़ी (दुर्ग) थी जो आज खण्डहर के रूप में पड़ी हुई है केवल उसके दो द्वार खड़े हुए हैं। अनुमान यही है कि इस क्रान्ति युद्ध में ये अंग्रेजों द्वारा ही नष्ट किए गए।

हरयाणा के सैंकड़ों ग्रामों ने सन् ५७ के युद्ध में इसी प्रकार भाग लिया और पीछे अंग्रेजों द्वारा दण्डित हुए।

इनके विषय में समय मिलने पर कभी विस्तार पूर्वक लिखूंगा।

हरयाणे का वीर अमरसिंह

अमरसिंह सुनारियां ग्राम का निवासी था। वह डी० सी० मोर साहब के यहां चपरासी का कार्य करता था। यह डी० सी० चरित्रहीन था। अमरसिंह को यह बुरा लगा और उसने त्यागपत्र देकर अपना वेतन मांगा। डी० सी० ने उसे वेतन नहीं दिया। इस पर अनबन बढ़ गई।

अमरसिंह ग्राम में जाकर बल्लू लुहार से कसोला लेकर आया। और डी० सी० की कोठी में जाकर रात को उसे जगा कर कत्ल कर दिया। कसोला वहीं डाल दिया। उसकी मैम को नहीं मारा, उसे स्त्री समझ कर छोड़ दिया। इसके बाद नीम पर चढ़कर जब वह बाहर निकला तो मैम ने शिकारी कुत्ते छोड़ दिये, वह उन कुत्तों ने फाड़ लिया। वह ग्राम में चला गया।

अंग्रेजों ने वहां जाकर सारे गाँव को तोपों से उड़ाना चाहा किन्तु अमरसिंह स्वयं उपस्थित हो गया। अंग्रेज उसे घोड़े के पीछे बान्ध कर ले गये। और उसके ऊपर दही छिड़क कर शिकारी कुत्तों से फड़वाया गया। यह वृतान्त कचहरी में लिखा हुआ है।

१८५७ में हांसी का शहीद हुकमचन्द
जिसको घर के सामने ही फांसी पर लटका दिया गया

[बलदेवसिंह बी० ए०]

१८५७ की महान् क्रान्ति ने भारत के कोने-कोने में उथल-पुथल मचा दी थी। अनेक देशभक्त वीर हंसते-हंसते आजादी की बलिवेदी पर अपना जीवन न्यौछावर कर गये। इतिहास प्रसिद्ध हांसी नगर पृथ्वीराज चौहान के समय से अपनी विशेषता रखता है। सन् १८५७ में भी हाँसी नगर किसी से पीछे नहीं रहा। दिवंगत दुनीचन्द के सुपुत्र श्री हुकमचन्द जी (जो हाँसी, हिसार और करनाम के कानूनगो थे) को मुगल बादशाह ने १८४१ में विशिष्ट पदों पर नियुक्त करके इन प्रान्तों का प्रबन्धक बना दिया।

जब भारतवासी अंग्रेजों की परतन्त्रता से स्वतन्त्र होने के लिये संघर्ष कर रहे थे तब श्री हुकमचन्द जी ने फारसी भाषा में मुगल बादशाह जफर को निमन्त्रण-पत्र भेजा कि वह अपनी सेना लेकर यहां के अंग्रेजों पर चढ़ाई कर दें।

सितम्बर १८५७ के अन्तिम सप्ताह में जब शाह जफर को अंग्रेजों ने बन्दी बना लिया तब उनकी विशेष फाइल में वह निमन्त्रण-पत्र मिला, जो कि हुकमचन्द ने बादशाह को भेजा था। हिसार की सरकारी फाइल में वह पत्र आज तक भी विद्यमान है।

देहली के अंग्रेज कमिश्नर ने वह पत्र हिसार डिवीजन के कमिश्नर को उस पर तत्काल कार्यवाही करने के हेतु भेज दिया। किन्तु सरकार का विरोध करने के अपराध में १९ जनवरी १८५८ को श्री हुकमचन्द को उनके घर के ही सामने फांसी पर लटका दिया गया। उनके सम्बन्धियों को उनका शव तक

भी नहीं दिया गया। लाला हुकमचन्द के शव को जलाने के स्थान पर भूमि में दफना कर हमारी धार्मिक भावनाओं पर भी कुठाराघात किया और उनकी चल और अचल सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई। उस समय अपने देश से प्रेम करने वालों को गद्दार बता कर बिना अपराध असंख्य लोगों को फाँसी पर चढ़ाकर अपनी पिपासा को शान्त किया।

ला० हुकमचन्द जी के दो भाई और थे किन्तु केवल उन्हीं के भाग की ८८४५ एकड़ भूमि जब्त कर ली गई। जो अंग्रेजों के चाटुकारों ने आपस में बांट लीं। शेष दोनों भाइयों की पितृ-सम्पत्ति अब तक चली आ रही है।

५० वर्ष की आयु में हुकमचन्द जी को फांसी पर लटकाया गया था। उनके दो सुपुत्र एक ८ वर्ष का और दूसरा केवल १९ दिन का ही था। ४०० तोला सोना, ४ हजार तोले चांदी, अनेक गाय, भैंस, ऊँट आदि पशु और अन्न तथा घर का सामान अल्पतम मूल्य पर नीलाम कर दिया गया।

श्री हुकमचन्द जी के दश कुटुम्ब अब भी फल-फूल रहे हैं। हरयाणा प्रान्त का इतिहास ऐसे ही वीरों के बलिदानों से भरपूर है।

हरयाणे में सन् ५७ का स्वातन्त्र्य युद्ध

(पं० बस्तीराम जी आर्योपदेशक)

[यह लेख वयोवृद्ध पूजनीय पण्डित बस्तीराम जी का ही है जिसे मैंने भालोट ग्राम में उनके पास दो दिन बैठकर लिखा है। कुछ लोगों का कहना है पण्डित जी की सन् ५७ के युद्ध के समय १७ वा १८ वर्ष की आयु थी। इन्होंने युद्ध के हालात स्वयं अपनी आँखों देखे हैं तथा कानों से सुने हैं। कुछ लोग कहते हैं कि पण्डित जी की आयु १०० वर्ष से भी कम है। मेरा अनुमान यह है पण्डित जी की आयु १०० वर्ष के लगभग है। अधिक भी हो सकती है कुछ न्यून भी हो सकती है। पण्डित जी अपनी आयु पूछने पर बताते नहीं, अतः विवशता है। किन्तु, पण्डित जी ने युद्ध की घटनायें मुझे बहुत प्रसन्नचित्त होकर सुनाईं। वे सुनाने में और मैं सुनने में बड़ा रस लेते थे। इस बड़ी आयु में भी पण्डित जी की स्मरणशक्ति बहुत ही अच्छी है। जो कुछ आपकी कृपा से मुझे सुनने को मिला वह पाठकों की सेवा में समर्पित करता हूं।]

—भगवान्देव

सम्वत् ११ में यह प्रसिद्ध हो गया था कि सेना में हिन्दू सैनिकों से गाय की चरबी लगे हुए तथा मुसलमानों से सूअर की चर्बी लगे हुए कारतूस मुख से तुड़वाये जायेंगे। कलकत्ते में एक भंगी जामुन और आम के वृक्षों के नीचे सूखे हुए पत्तों को जलाने के लिये मोल ले लेते थे। उसी समय सेना के कुछ घुड़सवार सैनिक उधर भ्रमण करते हुए पहुँचे। सायंकाल का समय था, वह जल की पिपासा से व्याकुल थे। उन्होंने जल पीने की इच्छा प्रकट की, पास ही एक कुंवा था, भंगी उन को उस कुएँ पर ले गया और स्वयं अपने हाथ से खेंचकर पिलाने के लिए तैयार हो गया। किन्तु वह घुड़सवार अपने आपको ऊँची जात के हिन्दू समझकर भंगी को यह कहने लगे आप अछूत हैं, आपके हाथ का जल हम कैसे पीयेंगे। हम जल स्वयं खींचकर पी लेंगे। फिर भंगी ने कहा अब ऊँच नीच कहां रह गया। जब आप लोग गौ की चरबी से बने हुए कारतूसों को मुख से तोड़ेंगे। मेरे हाथ से जल पीने में आप का क्या बिगड़ेगा। वे सैनिक यह

बात सुनकर बार-बार आग्रह पूर्वक पूछने लगे क्या यह बात यथार्थ में सच्ची है ? उस भंगी ने उन सैनिकों को दृढ़ता पूर्वक निश्चय कराया कि यह बात मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखी है, कि कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी लगाई जाती है। फिर क्या था कारतूस वाले समाचार सभी भारत के रिसालों और पल्टनों में फैल गये। उस समय सर्वत्र यह समाचार फैलायेगए हैं। उन्हीं दिनों अंग्रेजों ने मेरठ में सभी सैनिकों का एक दरबार किया और फौज के अंग्रेज अफसरों ने सभी सैनिकों को यह आज्ञा दी कि चर्बी लगे हुए कारतूस सभी सैनिकों को अपने मुख से तोड़ने पड़ेंगे। उस समय तो सैनिकों ने कारतूसों को मुख से तोड़ना न तो स्वीकार ही किया और न इसका निषेध ही किया। उन्होंने कहा यह हमारे धर्म का विषय है अतः हमें विचारने के लिए समय चाहिये। अंग्रेज अफसर हठ कर रहे थे और वे उसी समय चर्बी वाले कारतूस बलपूर्वक सब सैनिकों से उनके मुखसे तुड़वाना चाहते थे। सैनिकों की इच्छा थी कि न्यून से न्यून हमें १० मई तक विचारने का समय मिलना चाहिये। किन्तु उन्हें समय नहीं दिया गया। इस विषय में मैंने मेरठ के समाचार लिखते हुए पृथक् लिखा है। सब सैनिकों ने अपने समाचार बहादुरशाह के पास देहली भेज दिये। ऐसा सुना जाता है कि बहादुरशाह ने आज्ञा दे दी कि जो अंग्रेज दीन में खलल डाले उन्हें देश से निकाल दो। सैनिकों को विवश हो शीघ्रता करनी पड़ी और रविवार का दिन निश्चित करके आधे सैनिकों ने तो अंग्रेजों के बंगलों पर हमला कर दिया और आधे सैनिकों ने शस्त्रागार (मैगजीन) पर अधिकार करने के लिए चढ़ाई कर दी। निश्चय तो यह किया गया था कि केवल अंग्रेजों को पकड़ना है, मारना नहीं। किन्तु यह न हो सका। लोग अंग्रेजों के अत्याचारों के कारण बहुत दुःखी थे अतः प्रतिहिंसा व प्रतीकार की भावना जाग उठी और अंग्रेज मारे गये। इस क्रान्ति की आग बहुत शीघ्र ही सारे भारतवर्ष में फैल गई। उस समय हरयाणा प्रान्त के अनेक भागों में, गुड़गांवा, रेवाड़ी, रोहतक आदि में अनेक घटनायें घटीं। उनमें से कुछ एक पर जैसा पंडित बस्तीराम जी ने बताया आपकी सेवा में उपस्थित करता हूँ।

झज्जर का नवाब

हरियाणे में उस समय अनेक नवाब राजा राज्य करते थे। झज्जर के इलाके में अब्दुलरहमान खां नवाब की नवाबी थी। झज्जर का प्रान्त—१. झज्जर, २. बादली, ३. दादरी, ४. नारनौल, ५. बावल, ६. कोटपुतली आदि परगनों में विभाजित था। झज्जर का नवाब जवान किन्तु भीरु प्रकृति का था। सदैव नाच-गान, रंग-राग व भोगविलास में ही फंसा रहता था इसके दुराचार से प्रजा उस समय प्रसन्न नहीं थी, फिर भी उसका राज्य अंग्रेजों की अपेक्षा अच्छा था। ठाकुर स्यालुसिंह कुतानी निवासी नवाब के बख्शी थे। दीवान रामरिछपाल झज्जर निवासी नवाब के कोषाध्यक्ष (खंजाञ्ची) थे। नवाब प्रकट रूप से तो दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह की सहायता कर रहा था क्योंकि हरियाणे की सारी जनता इस स्वतन्त्रता युद्ध में बड़े उत्साह से भाग ले रही थी। अतः नवाब भी विवश था, किन्तु भीरु होने के कारण उसे यह भय था कि कभी अंग्रेज जीत गये तो मेरी नवाबी का क्या बनेगा। इसलिये गुप्त रूप से धन से अंग्रेजों की सहायता करना चाहता था। अपने दीवान मुन्शी रामरिछपाल द्वारा २२ लाख रुपये इसने अंग्रेजों की सहायता के लिए गुप्तरूप से भेजने का प्रबन्ध किया। मुन्शी रामरिछपाल ने ठाकुर स्यालुसिंह कुतानी निवासी को जो एक प्रकार से झज्जर राज्य के कर्त्ता धर्त्ता थे यह भेद बता दिया। ठाकुर स्यालुसिंह ने रामरिछपाल को समझाया कि नवाब तो भीरु और मूर्ख है। अंग्रेजों को किसी रूप में भी नहीं

देना चाहिये। हम दोनों बाँट लेते हैं। उन दोनों ने ग्यारह-ग्यारह लाख रुपया आपस में बाँट लिया। रुपया अंग्रेजों के पास नहीं भेजा।

ठाकुर स्यालुसिंह ने उस समय यह कहा—यदि अंग्रेज जीत गए तो नवाब मारा जायेगा, हमारा क्या बिगाड़ते हैं, यदि अंग्रेज हार ही गये तो हमारा बिगाड़ ही क्या सकते हैं। नवाब के भीरु और चरित्र-हीन होने का कारण लोग यों भी बताते हैं कि नवाब अब्दुल रहमान खां किसी बेगम के पेट से उत्पन्न नहीं हुआ किन्तु वह किसी रखैल स्त्री (वेश्या) का पुत्र था। उनके विषय में एक घटना भी बताई जाती है, इसके चाचा का नाम समदखां था। नवाब ने अपने इसी चाचा की लड़की के साथ विवाह किया था। इसका चाचा समदखां इससे अप्रसन्न रहता था, वह इससे बोलता भी नहीं था। समद खां वैसे बहादुर और अभिमानी था। एक दिन नवाब ने अपनी बेगम को जो समद खां की लड़की थी, चिढ़ाने की दृष्टि से यह कहा कि समद खां की औलाद की नाक बड़ी लम्बी होती है। उसी समय बेगम ने जवाब दिया—जब मेरा विवाह (वेश्यापुत्र) आपके साथ हो गया तो क्या अब भी समद खां की औलाद की नाक लम्बी रह गई? नवाब ने इसी बात से रुष्ट होकर बेगम को तलाक दे दिया। समद खां नवाब से पहले ही नाराज था इस बात से वह और भी नाराज हो गया। वह नवाब से सदैव रुष्ट रहता था और कभी बोलता नहीं था। उन्हीं दिनों अंग्रेज फौजी अफसर मिटकाफ साहब जो आँख से काना था किन्तु शरीर से सुदृढ़ था, छुछकवास आपके साथ पाँच सौ सशस्त्र सैनिक लेकर पहुँच गया और झज्जर नवाब की कोठी में ठहर गया। वहाँ नवाब झज्जर को मिलने के लिए उसने सन्देश भेजा। झज्जर का नवाब मिटकाफ साहब से मिलने के लिये हथिनी पर सवार होकर जाना चाहता था। उसकी 'लाडो' नाम की हथिनी थी, उसने सवारी के लिये उसे उठाना चाहा किन्तु हथिनी हटकर के बैठ गई, उठी ही नहीं। नवाब के चाचा समदखां ने कहा, हैवान हठ करता है? खैर नहीं है, आप वहाँ मत जाओ? नवाब ने उत्तर दिया--आप नवाब होकर भी शकुन अपशकुन मानते हैं? समद खां ने कहा हमने तेरे से बोलकर मूर्खता की। नवाब हथिनी पर बैठकर छुछकवास चला गया। मेटकाफ साहब ने वहाँ नवाब का आदर नहीं किया। नवाब हथिनी से उतर कर कुर्सी पर बैठना चाहता था किन्तु मिटकाफ ने नवाब को आज्ञा दी कि आपका स्थान आज कुर्सी नहीं, अपितु काठ का पिंजरा है, वहां बैठो। नवाब को काठ के पिंजरे में बन्द करके दिल्ली पहुँचा दिया गया। वहाँ झज्जर के नवाब को और बल्लमगढ़ के राजा नाहरसिंह को तथा लच्छुसिंह कोतवाल को जो दिल्ली का निवासी था, फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया।

बहादुरशाह के विषय में उन दिनों एक होली गाई जाती थी। यह होली ठाकुरों, नवाबों राजे-महाराजों के यहां नाचने गाने वाली स्त्रियां गाया करती थीं।

टेक— मचो री हिन्द में कैसो फाग मचो री।
बारा जोरी रे हिन्द में कैसो फाग मचो री॥

कली— गोलन के तो बनें कुङ्कुमें,
तोपन की पिचकारी।
सीने पर रखा लियो मुख ऊपर,
तिन की असल भई होरी॥
शोर दुनियां में मचो री हिन्द में कैसो फाग मचो री॥

कली— बहादुरशाह दीन के दीवाने,
दीन को मान रखो री।
मरते मारते उस गाजी ने,
दीन ही दीन कहो री॥
दीन वाको रब न रखो री हिन्द में कैसो फाग मचो री॥

नवाब झज्झर के पकड़े जाने पर उसका चाचा समदखां और बख्शी ठाकुर स्यालुसिंह कई सहस्त्र सेना लेकर काणोद के दुर्ग (गढ़) को हथियाने के लिये आगे बढ़े। रीवाड़ी की तरफ से राव तुलाराम, राव श्री गोपाल और गोपालकृष्ण सहित जो रामपुरा के आसपास के राजा थे बड़ी सेना सहित काणोद के गढ़ की ओर बढ़े। काणोद वही स्थान है जिसे आजकल महेन्द्रगढ़ कहते हैं। अंग्रेज भी अपनी सेना सहित उधर बढ़ रहे थे। जयपुर आदि के नरेशों ने अपनी सात हजार सैनिकों की सेना जो नागे और वैरागियों की थी अंग्रेजों की सहायतार्थ भेजी। नवाब झज्झर और राव तुलाराम की सेना दोनों ओर से बीच में घिर गई। नारनौल के पास लड़ाई हुई, हरयाणे के सभी योद्धा बड़ी वीरता से लड़े। रावकृष्ण-गोपाल और श्री गोपाल वहीं लड़ते शहीद हो गये। रावतुलाराम बचकर काबुल आदि के मुस्लिम प्रदेशों में चले गये। सहस्त्रों वीर इस आजादी की लड़ाई में नसीपुर की रणभूमि में खेत रहे।

युद्ध के पश्चात् शान्ति हो जाने पर अंग्रेजों ने भीषण अत्याचार किये। अंग्रेज सैनिक लोगों को पकड़-पकड़ कर सारे दिन तक इकट्ठा करते थे और सायंकाल ३ बजे के पश्चात् सब मनुष्यों को तोपों के मुख पर बान्ध कर गोलियों से उड़ा दिया जाता था। ठाकुर स्यालुसिंह भी परिवार सहित गिरफ्तार कर के गोली से उड़ाने के लिए पंक्ति में खड़ा कर दिया। उस समय एक अंग्रेज जो जीन्द के महाराज का नौकर था, जो पहले झज्जर भी नवाब के पास नौकरी कर चुका था वह ठाकुर स्यालुसिंह का मित्र था। वह झज्जर आया हुआ था। उसने ठाकुर स्यालुसिंह को अपने परिवार सहित पंक्ति में खड़े देखा। उसने ठाकुर साहब से पूछा क्या बात है ठाकुर साहब? ठाकुर स्यालुसिंह ने उत्तर दिया मेरे साथ अन्याय हो रहा है। नवाब ने तो मुझे अंग्रेजों का वफादार समझकर मेरी गढ़ी को कुतानी में तोपों से उड़ा दिया और आज में नवाब का साथी समझ कर परिवार सहित मारा जा रहा हूँ। यदि मैं अंग्रेज का शत्रु था तो मेरी गढ़ी नवाब द्वारा तोपों से क्यों उड़ाई गई और मैं नवाब का शत्रु हूं तो मुझे क्यों परिवार सहित गोली का निशाना बनाया जा रहा है। यह सब सुनकर उस अंग्रेज की शिफारिस पर स्यालुसिंह को छोड़ दिया और उसे निर्दोष सिद्ध करने का प्रमाण देने के लिये वचन दिया गया। यह घोड़े पर सवार हो नंगे शरीर ही दिल्ली, चौधरी गुलाबसिंह बादली निवासी के पास पहुँचा। वह उस समय अंग्रेजों की नौकरी करता था। पहले ठाकुर स्यालुसिंह ने बादली से चौ० गुलाबसिंह को निकाल दिया था। फिर भी ठाकुर स्यालुसिंह के बार-बार प्रार्थना करने पर चौ० गुलाबसिंह ने सहायता करने का वचन दे दिया। और उस ने ठा० स्यालुसिंह की गवाही देकर अपकार के बदले में उपकार किया। ठा० स्यालुसिंह का एक भाई ठा० शिवजीसिंह सेना में दानापुर में अंग्रेजों की सेना में सूबेदार था, उसने भी ठा० स्यालुसिंह की सहायता की। इस प्रकार ठाकुर स्यालुसिंह का परिवार बच गया। ठाकुर साहब के परिवार के लोग आज भी कुतानी व धर्मपुरा आदि में बसते हैं। उन्हीं में से ठा० स्वर्णसिंह जी आर्यसमाजी सज्जन हैं जो धर्मपुरा में भदानी के निकट बसते हैं।

झज्जर के नवाब की नवाबी को तोड़ दिया गया और भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बांट दिया गया। जैसे कि पहले लिखा जा चुका है। अंग्रेज कोटपुतली को जयपुर महाराज को देना चाहते थे किन्तु उनके निषेध कर देने पर खेतड़ी नरेश को दे दिया गया।

बहादुरगढ़ में भी उस समय नवाब का राज्य था। सिखों की सेना जो १२ हज़ार की संख्या में थी बहादुरगढ़ डेरा डाले पड़ी थी। हरियाणा के वीरों ने इसे आगे बढ़ने नहीं दिया। सिखों की सेना ग्रामों से भोजन सामग्री लूट कर अंगेजों की सहायता करती थी उस समय कुछ नीच प्रकृति के मुसलमान भी चोरी से जनाजा (अर्थी) निकालकर माँस अन्न रोटी छिपा कर अंग्रेज सेना को बेच देते थे। उस समय एक-एकरोटी एक एक रुपये में बिकती थी जल भी बिकता था। कोतवाल लच्छुसिंह ने इस बात को भांप लिया। उस ने उन नीच मुसलमानों को जो काले पहाड़ पर घिरी हुई अंग्रेजी सेना की अन्न मांस बेच कर सहायता करते थे, पकड़वा कर मरवा दिया। अंग्रेजों ने इसी कोतवाल लच्छुसिंह, नरेश नाहर सिंह तथा नवाब झज्जर को इन्दारे कूए के पीपल के वृक्ष पर बान्ध कर फांसी दी थी।

कुतानी की गढ़ी

ठा० स्यालुसिंह अपने छः भाइयों सहित निवास करते थे। यह नवाब झज्जर के बख्शी थे, अर्थात् वही सर्वेसर्वा थे। नवाब क्या? यही ठा० स्यालुसिंह राज्य करते थे। इसने नवाब की फौज में हरयाणे के वीरों को भरती नहीं किया, आगे चलकर इस भूल का फल भी उसे भोगना पड़ा। उसने सब पूर्वियों को ही फौज में भरती किया, वह यह समझता था कि यह अनुशासन में रहेंगे। एक पूर्वीय सैनिक को ठा० स्यालुसिंह ने लाठी से मार दिया था अतः सब पूर्वीय सैनिक उस से द्वेष करने लगे थे। एक दिन काणोद के दुर्ग में नाच गाना हो रहा था। एक पूर्वीय सैनिक ने ठा० स्यालुसिंह पर अवसर पाकर तलवार से वार किया। तलवार का वार पगड़ी पर लगा और ठा० साहब बच गये किन्तु इस पूर्वीय को ठा० साहब ने वहीं मार दिया। पूर्वीयों ने दुर्ग का द्वार बन्द कर दिया और द्वार पर तोप लगा दी और टके भर कर तोपें चलानी शुरू कर दीं। उस समय ठा० स्यालुसिंह के साथ ११ अन्य साथी थे। ठाकुर हरनामसिंह रतनथल निवासी ने तोपची को मार। दिया इस प्रकार बच कर यह लोग अपने घर चले गये। ठा० स्यालु-सिंह अपनी ससुराल पाल्हावास में जो भिवानी के पास है, जहां इसके बाल-बच्चे उस समय रहते थे, चला गया। किन्तु पीछे से सब पूर्वीयों ने कुतानी की गढ़ी पर चढ़ाई कर दी। नबाव ने पूर्वीय सैनिकों को ऐसा करने से बहुत रोका, उसने यह भी कहा कि तुम ठाकुर के विरुद्ध मेरे पास मुकद्दमा करो, मैं न्याय करूंगा, किन्तु वे किसी प्रकार भी नहीं माने। नबाव ने कुतानी के ठाकुरों के पास भी अपना सन्देश रामबख्श धाणक खेड़ी सुलतान के द्वारा भेजा कि गढ़ी को खाली कर दें। इसी प्रकार यह सन्देश तीन बार भेजा किन्तु गढ़ी में ठा० स्यालुसिंह का भाई सूबेदार मेजर शिवजीसिंह था वह यही कहता रहा स्यालुसिंह के रहते हुए हमारी गढ़ी का कोई भी कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। किन्तु रात्रि को पूर्वीय सैनिकों ने सारी गढ़ी को घेर कर तोपों से आक्रमण कर दिया। ठा० शिवजीसिंह ने अपनी मानरक्षा के लिये छः ठकुरानियों को तलवार से कत्ल कर दिया। दो लड़कों का भी वध कर दिया। किन्तु वह अपनी मां का वध नहीं कर सका। उसकी मा ने स्वयं अपना सिर काट लिया। और यह कहा कि मैं यदि पकड़ी गई तो कलकत्ते तक सब ठाकुर बदनाम हो जायेंगे। कुतानी की गढ़ी के सब लोग गांव छोड़ कर भाग गये। कुतानी के ठाकुरों की हवेली आज भी टूटी फूटी पड़ी है। तोप के गोलों के चिह्न अब तक दीवारों पर विद्यमान हैं। गढ़ी उजड़ अवस्था में पड़ी है।

फरुखनगर

फरुखनगर के नवाब ने भी इस स्वतन्त्रता युद्ध में भाग लिया था। नवाब का नाम फौजदार खां था। फरुखनगर का बड़ा अच्छा 'दुर्ग' था। नगर के चारों ओर भी परकोटा बना हुआ था, जो आजकल भी विद्यमान है। इस नवाब को भी गिरफ्तार करके फाँसी पर लटका दिया। नवाब हिन्दू प्रजा को भी अपने पुत्र के समान समझता था। एक बार हिन्दुओं ने मिलकर नवाब से प्रार्थना की कि पशुओं का वध नगर में न किया जाये क्योंकि इससे हमारा दिल दुखता है। नवाब ने उनकी प्रार्थना मानली और पशु वध बन्द कर दिया। इसी कारण चारण भाट डूम इत्यादि उसके विषय में गाया करते थे—

जुग जुग जीओ नवाब फौजदार खां।
पाँच पुत्र पांचों श्रीश पाचों गुणनागर।
नख तुल्लेखां मुखराज करें जो वंश उजागर।।

नवाब फौजदार खां ईश्वर का बड़ा भक्त था। वह सत्संग करने के लिए एक बार भरतपुर गया। रूपराम ब्राह्मण, महाराज भरतपुर का मन्त्री तथा महाराज भरतपुर की महारानी गङ्गा भी ईश्वरभक्त थी। और भी वहां अनेक ईश्वरभक्त रहते थे। नवाब हाथी पर चढ़कर सत्संग करने के लिए ही रानी और मन्त्री के पास गया था। उसने महाराज भरतपुर को अपने आने की कोई सूचना पहले नहीं भे ी थी। अतः वह पकड़कर जेल में डाल दिया गया। उन्हीं दिनों महारानी गङ्गा के यहां पुत्र उत्पन्न हुआ। अतः नवाव को प्रातः काल हाथी पर चढ़ कर भ्रमण करने की आज्ञा मिली हुई थी। एक दिन वह भ्रमण के लिये जा रहा था तो उसने महारानी के महल को देख कर पूछा कि यह महल किसका है। किसी ने उत्तर दिया यह महारानी गङ्गा का महल है। नवाब कवि था उसने उसी समय कहा—

गङ्गा गङ्गा सब कहें यह गङ्गा वह नाय।
वह गङ्गा जगतारणी यह डोबे धारा माँह।।

महारानी गङ्गा उस समय महल पर थी, उसने उसे सुनाने के लिए ही यह कहा था। उसने भी यह सुन लिया। रूपराम मन्त्री का भी महल मार्ग में आया। नबाव के पूछने पर किसीने बताया कि यह मन्त्री रूपराम का महल है नवाब ने उसी समय कविता में कहा—

रूपराम तब तें सुना जबते पड़ो न काम।
काम पड़े पायो नहीं ता में रूप न राम।।

पुत्रोत्सव की प्रसन्नता म राजा ने दो सौ कैदियों के छोड़ने की आज्ञा दी। रूपराम ने दो सौ कैदियों में सर्वप्रथम नवाब को छोड़ दिया। भरतपुर के महाराज ने पीछे सूचना भेजी कि नवाब को न छोड़े किन्तु वह पहले ही रूपराम के द्वारा छोड़ा जा चुका था। मन्त्री रूपराम ने राजा के पास सूचना भेजी की नवाब तो सत्संग करने के लिये आया था विना आज्ञा के नहीं आया। राजा की आज्ञा से वह एक मास तक भरतपुर में रहकर सत्संग करता रहा। राज्य की ओर से अतिथि के रूप में उसकी सेवा की गई। वह सत्संग करके सहर्ष फरुखनगर लौट आया।

बराणी के ठाकुर

ठाकुर नोरङ्गसिंह छोटी बोन्द के निवासी थे। उनको ऊपग्राम के पास फौजी अंग्रेज मिटकाफ-साहब जो काणा था मिल गया। नोरंगसिंह ने उसको हलवा इत्यादि खिलाकर खूब सेवा की, और

फिर उसे सुरक्षित ऊंट पर बिठा कर भिवानी और हिसार पहुँचा दिया। इस सेवा के बदले उस अंग्रेज ने एक पत्र लिख कर ठाकुर साहब को दे दिया। उसी पत्र को देखकर जोन्ती के पास ठाकुरों को भूमि देना चाहा किन्तु ठाकुर के निषेध करने पर नवाब की भूमि में से १० हजार बीघे जमीन छुछकवास के बीड में से देनी चाही, ठाकुर साहब ने कहा कि यह जमीन बहुत अधिक है। बड़ी कठिनता से ४ हजार बीघे जमीन स्वीकार की। जहाँ आजकल वराणी ग्राम बसा हुआ है! कुछ जमीन ४०० बीघे इनके सम्बन्धियों को खेतावास में दी गई। इसी प्रकार की सेवा से छुछकवास के पठानों को ६ हजार बीघे भूमि का बीड़ दिया। मौड़ी वाले जाटों को भी इसी प्रकार की सेवा के बदले भूमि दी गई।

रोहट गांव

छोटे थाने वाले भागे हुए अंग्रेजों को ढूंढ़-ढूंढ़ कर मारते थे एक दिन नहरों की पटरी पर एक अंग्रेज अपने एक बच्चे और स्त्री सहित घोड़ा गाड़ी में आ रहा था यह नहर का मोहतमीम था। इनके तांगे से एक अशर्फियों की थैली नीचे गिर गई। स्त्री स्वभाव के कारण वह अंग्रेज स्त्री उसे उठाने के लिये उतर कर पीछे चली गई। थाने ग्राम के निवासी पहले ही पीछे लगे हुए थे। उन्होंने वह थैली छीन ली और उस अंग्रेज स्त्री को न जाने मार दिया या कहीं लुप्त कर दिया। आगे चलकर रोहट ग्राम का रामलाल नाम का ठेकेदार उसे मिला जो इसे जानता था। उसने उस मोहतमीम को बचाने के लिये बच्चे सहित घास के ढेर में छिपा दिया। छिपा कर अपने घर ले गया। थाने ग्राम के लोगों को यह कह दिया कि तांगा आगे चला गया उसी में अंग्रेज है। वह ग्राम में कई दिन रहा। फिर उसको ग्राम के बाहर उसकी इच्छा के अनुसार आमों के बाग में रखा। वहां वह आम के वृक्ष पर बन्दूक लिये बैठा रहता था। ५० पचास ग्राम वाले भी उसकी रक्षा करते थे। शान्ति होने पर उसे सुरक्षित स्थान पर भेज दिया गया। रोहट ग्राम की १४ वर्ष तक के लिये नहरी और क्लक्ट्री उघाई माफ कर दी गई। बोहर और थाने ग्राम के लोगों ने अंग्रेजों को मारा था अतः अंग्रेज इन दोनों ग्रामों को दण्डस्वरूप जलाना चाहते थे किन्तु रामलाल ने कहा था कि पहले मुझे गोली मारो फिर इन ग्रामों को दण्ड देना। रामलाल के कहने पर यह दोनों ग्राम छोड़ दिये गये। रामलाल को एक तलवार प्रमाणपत्र और मलका का एक चित्र पुरस्कार में दिया गया। उस रामलाल ठेकेदार के लिये यह लिख कर दिया कि इसके परिवार में से कोई मैट्रिक पास भी हो तो उसे अच्छा ओफीसर बनाया जाये। वह अंग्रेज ग्राम वालों की सहायता से शान्ति होने पर करनाल पहुंच गया। मार्ग में कलाये ग्राम में उसका लड़का मर गया। गाढ़ने के लिये ग्राम वालों ने भूमि नहीं दी। एक किसान ने भूमि दी जिसमें उसकी कबर बना दी गई। चिह्नस्वरूप उसका स्मारक बना दिया गया। रोहट ग्राम में सर्वप्रथम छैलू को जेलदारी मिली। सुजान छैलू ठेकेदार और रामलाल ठेकेदार को प्रमाणपत्र दे दिया गया।

हरयाणे की वीराङ्गना देवी समाकोर

(पं० वस्तीराम जी आर्योपदेशक)

डबरपुर में गठवाले गोत्र के जाट रहते हैं वहाँ पर चौधरी बिछाराम नाम के एक सज्जन रहते थे। उनकी पुत्री का नाम समाकोर था। वह डीघल ग्राम में ब्याही थी। उस समय कलानौर में ठाकुरों के यहां कौला पुजता था। कौला पूजने का यह अर्थ था कि जो लड़की ब्याही जाती उसे कुछ भेंट पूजा लेकर पहले ठाकुरों के घर जाना पड़ता था। एक रात्रि वहां ठहर कर अपने घर लौट आती थी। इस प्रकार खुला व्यभिचार और अत्याचार होता था। जब समाकोर को इनके घर वालों ने कलानौर जाने के लिए कहा तो उसने यह कह कर "मैं जाटों के ब्याही हूँ रांघड़ों के नहीं।" कलानौर जाने से निषेध कर दिया। डीघल वालों ने डर कर कहा वहां तो अवश्य जाना पड़ेगा। समाकोर ने सर्वथा निषेध कर दिया और नाइन को साथ लेकर अपने घर डबरपुर आ गई। जब वह डबरपुर पहुंची तो उसे ग्राम में आते देख कर उसके भाई धनसिंह ने उसे तलवार से कतल करना चाहा किन्तु बहिन ने प्रार्थना की कि पहले मेरी बात तो सुन लो फिर जो इच्छा हो सो कर लेना। समाकोर ने कहा "मैं जाटों के घर पर ब्याही हूँ राँगड़ों के नहीं" तुम्हें लज्जा नहीं आती कि तुम क्षत्रिय होते हुए ऐसा कार्य करवाते हो। यह सुन कर समाकोर के पिता और भाई को जोश आ गया। पिता घोड़े पर चढ़ कर सब जगह घूम गया और अपनी सहायता के लिए जाटों की सब खापों से प्रार्थना की। सब ने इकट्ठे होकर कलानौर पर आक्रमण कर दिया। १६ ठाकुरों को समाप्त करके ही दम लिया। कलानौर के सभी मकान भूमिसात् कर दिये गए। इस भयङ्कर युद्ध में जाटों के भी अनेक वीर जैसे बड़ोते मुई का बारा बटाने का बारा आदि सर्वथा समाप्त हो गई। इसमें प्रायः हरयाणे की सभी खापों ने भाग लिया था। जब कलानौर पर चढ़ाई की गई तब जाटों की सब सेनायें मोखरे के पास गढ़ में टिकी थी। अतः उस स्थान का नाम "टेकना" पड़ गया। समाकोर देवी की वीरता ने कलानौर के कलंक को ही समाप्त नहीं किया किन्तु अपने साथ ही बिछाराम और गठवाले खाप को भी अमर कर दिया। भगवान् ऐसी देवियों को देश में जन्म देता रहे।

१८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम के वीर सेनानी

बल्लभगढ़ नरेश नाहरसिंह

(श्री रामनारायण अग्रवाल)

१८५७ में भारतीय स्वतन्त्रता-प्राप्ति के हेतु प्रज्वलित प्रचंड समराग्नि में, परवाना बनकर जलने वाले अगणित ज्ञात एवं अज्ञात नौनिहाल शहीदों में, बल्लभगढ़-नरेश राजा नाहरसिंह का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दिल्ली की जड़ में, अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा लगाने का श्रेय इसी महावीर को मिला। रण क्षेत्र में उसे पराजित करना असम्भव ही था, क्योंकि अंग्रेज बल्लभगढ़ को दिल्ली का 'पूर्वी लोह द्वार' मान कर उससे भय-त्रस्त थे और बल्लभगढ़-नरेश से युद्ध करने का साहस तक उनमें न था। राजा नाहरसिंह के जीते जी, उनकी किसी पेन्शन या उत्तराधिकार की भी ऐसी कोई उलझन न थी, जिसके

कारण महारानी लक्ष्मीबाई या नाना साहब की भांति, उनके व्यक्तिगत स्वार्थों को अंग्रेजों ने कोई धक्का पहुंचाया हो। फिर भी रोटी और लाल फ़ूल का संकेत पाते ही, राजा नाहरसिंह देश की स्वतन्त्रता की रक्षार्थ, स्वेच्छा से समराग्नि में कूद पड़े और दिल्ली के पराभव के उपरान्त भी अंग्रेजों से नाक चना बिनवाते रहे।

यह थी उनकी निस्पृह देश-भक्ति की प्रबल भावना, जिससे अंग्रेज चकरा गए और अन्त में छल से सफेद झंडा दिखा कर वे उन्हें धोखे से दिल्ली लाए और वहां एक रात सोते हुए इस 'नाहर' को फिरङ्गियों ने कायरतापूर्वक जेल के सींखचों में बन्द कर दिया।

गिरफ्तारी के बाद भी अंग्रेज बराबर यह चेष्टा करते रहे कि नाहरसिंह उनकी मित्रता स्वीकार कर लें. किन्तु वह महावीर तो उस फौलाद का बना था जो टूट सकती है किन्तु झुकना नहीं जानती। परिणामतः अंग्रेजों की मैत्री को अस्वीकार करने के 'अपराध' में राजा नाहरसिंह ने दिल्ली के ऐतिहासिक फव्वारे पर, सहर्ष फांसी के तख्ते पर झूल कर जर्जर भारत माता का अपने रक्त से अभिषेक किया और एक महान् उद्देश्य की प्राप्ति के मार्ग में वह मर कर भी अमर हो गए।

महत्वपूर्ण क्यों नहीं ?

यह दूसरी बात है कि विदेशी दासत्व के युग में लिखे गए भारतीय इतिहास ग्रन्थों में, भारत के इस अमर नौनिहाल को वह महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया है, जिसका वह वास्तविक अधिकारी है। पर क्या अब स्वतन्त्र भारत में भी हम इस पिछली भूल हो दोहराते रहें ?

कदाचित् राजा नाहरसिंह के इस अमर बलिदान को दो कारणों से अधिक महत्व नहीं मिला। प्रथम तो यह कि बल्लभगढ़ उन रजवाड़ों में सब से छोटा था, जिन्होंने उन् ५७ के स्वातन्त्र्य-समर में खुल कर भाग लिया और उस में अपना अस्तित्व ही लीन कर दिया। उगते सूर्य को नमस्कार करने वाली हमारी मनोवृत्ति, इस डूबते सूर्य की ओर आकृष्ट नहीं हुई। या फिर दूसरा कारण यह था कि राजा नाहरसिंह को फांसी देने से पूर्व कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों ने उन्हें जबरन, छलपूर्वक 'नाहर खां' प्रचारित करके जनता में एक भ्रम फैला दिया था। हिन्दू धर्मानुसार राजा अवध्य होता है, किन्तु अंग्रेजों के हित में इस राजा का मारा जाना उस समय अनिवार्य था। अस्तु।

अंग्रेजों ने एक विरोधी शक्ति के रूप में, राजनीतिक उद्देश्य से राजा नाहरसिंह के विरुद्ध जो कुछ भी किया, हम यहां उस पर विचार करना नहीं चाहते, क्योंकि स्वयं ब्रिटिश-इतिहासकारों ने महाराज नाहरसिंह का जिस रूप में उल्लेख किया है वही उनके व्यक्तित्व एवं वीरत्व की परख की उत्तम कसौटी है। यदि महाराज और उनके पूर्वज अद्वितीय वीर, सुयोग्य सैन्य-संचालक, चतुर राजनीतिज्ञ तथा प्रजा-वत्सल शासक न होते तो मुगल-साम्राज्य की नाक के तले ही यह स्वतन्त्र जाट-राज्य बल्लभगढ़ शान से मस्तक उठाए यों खड़ा न रहता।

मुगलों से सन्धि

बल्लभगढ़ का यह छोटा-सा राज्य दिल्ली से केवल २० मील दूर ही तो था। मुगल-सिंहासन की जड़ में ही, एक शक्तिशाली हिन्दू राज्य, स्वयं मुगलों को ही कब सहन होता ? इतिहास साक्षी है कि बार-बार शाही सेना ने बल्लभगढ़ पर आक्रमण किए। पर बल्लभगढ़ के सुदृढ़ दुर्ग की अजेयता को स्वीकार

करके दिल्ली-दरबार बल्लभगढ़ नरेशों के साथ मित्रता के स्थायी सम्बन्ध में बंध गया। नवयुवक राजा नाहरसिंह की यह दूरदर्शिता ही कही जायगी कि उन्होंने दिन-दूने बढ़ने वाले अंग्रेजी खतरे का सामना करने की दृष्टि से, मुगल बादशाह से मित्रता कर ली।

मित्रता के साथ ही, लड़खड़ाते मुगल-साम्राज्य का बहुत सा उत्तरदायित्व भी राजा नाहरसिंह ने अपने कन्धों पर सम्हाला। परिणामतः दिल्ली नगर की सुरक्षा एवं सुव्यवस्था की बागडोर बादशाह ने राजा को दे दी। शाही दरबार में राजा नाहरसिंह को विशेष सम्मान के रूप में 'सोने की कुर्सी' मिलती थी और वह भी बादशाह के बिल्कुल समीप।

इस प्रकार टूटते हुए मुगल-साम्राज्य की ढाल के रूप में सम्राट् बहादुरशाह के यदि कोई विश्वस्त सहायक थे, तो वह राजा नाहरसिंह ही थे। हर संकट में, वह दिल्ली की गद्दी की रक्षार्थ तत्पर रहते थे।

परन्तु समय की गति तो किसी के रोके नहीं रुकती। धीरे-धीरे दिल्ली का तख्त अंग्रेजों के चंगुल में आता गया। यह दशा देख कर राजा नाहरसिंह सशंक हो उठे। उन्होंने रात-दिन दौड़-धूप करके सैन्य-संगठन किया और इस योजना की सफलता के लिए यूरोपीय कप्तानों को अपनी सेना में सम्मानपूर्ण पद दिए। श्री पीयरसन को दिल्ली में बल्लभगढ़ राज्य का रेजीडेन्ट नियत किया तथा बल्लभगढ़ की सेना को यथासम्भव आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित किया।

१६ मई, १८५७ को जब कि दिल्ली फिर से आजाद हुई राजा नाहरसिंह की सेना दिल्ली की पूर्वी सीमा पर तैनात हुई। शाही सहायता के लिए १५००० रुहेलों की फौज सजा कर, मुहम्मद बख्त खां दिल्ली में आ चुका था, किन्तु उसने भी पूर्वी मोर्चे की कमान राजा नाहरसिंह पर ही रहने दी। सम्राट् बहादुरशाह भी अपनी दाहिनी भुजा नाहरसिंह को ही मानते थे।

मजबूत मोर्चा बन्दी

अंग्रेजी आधिपत्य से मुक्त, राजधानी दिल्ली के १३४ दिन के स्वतन्त्र जीवन में, राजा नाहरसिंह ने दिन-रात परिश्रम करके यहां सुव्यवस्था बनाए रखने तथा मजबूत मोर्चाबन्दी करने का प्रयत्न किया। उन्होंने दिल्ली से बल्लभगढ़ तक फौजी चौकियाँ तथा गुप्तचरों के दल नियुक्त कर दिए। उन की इस तैयारी से त्रस्त होकर ही, सर जान लारेन्स ने पूर्व की ओर से दिल्ली पर आक्रमण करना स्थगित कर दिया। लार्ड केनिंग को लिखे गए एक पत्र में सर जान लारेन्स ने लिखा था—" · पूर्व और दक्षिण की ओर बल्लभगढ़ के नाहरसिंह की मजबूत मोर्चाबन्दी है और उस सैनिक दीवार को तोड़ना असम्भव ही दीख पड़ता है, जब तक कि चीन अथवा इंग्लैंड से हमारी कुमक नहीं आ जाती।"

यही हुआ भी। १३ सितम्बर को जब अंग्रेजी पलटनों ने दिल्ली पर आक्रमण किया तब वह कश्मीरी दरवाजे की ओर से ही किया गया। एक बार जब गोरे शहर में घुस पड़े, तब अधिकांश भारतीय सैनिक तितर-बितर होने लगे। बादशाह को भी किला छोड़ कर हुमायूँ के मकबरे में शरण लेनी पड़ी। इस बिगड़ी परिस्थिति में राजा ने बादशाह से बल्लभगढ़ चलने का आग्रह किया किन्तु इलाहीबख्श नामक एक अंग्रेज एजेंट के बहकाने से बादशाह ने हुमायूँ के मकबरे से आगे बढ़ना अस्वीकार कर दिया।

राजा नाहरसिंह की बात न मानने का प्रतिफल यह हुआ कि ११ सितम्बर को कप्तान हाकसन ने चुपचाप बहादुरशाह को गिरफ्तार कर लिया। फिर भी राजा ने बहादुरी दिखाई और अंग्रेजी फौज

को ही घेरे में डाल लिया। खतरे को पहचान कर कप्तान हाक्सन ने शाहजादों को गोली मार दी और सम्राट् को भी मार डालने की धमकी दी। अतः राजा ने, सम्राट् की प्राणरक्षा की दृष्टि से, घेराबन्दी उठा ली। दिल्ली के तख्त का यह अन्तिम अध्याय था।

रणबांकुरे नाहरसिंह ने तब भी हिम्मत नहीं हारी। उसने रातों-रात पीछे हट कर, बल्लभगढ़ के किले में घुस कर नए सिरे से मोर्चा लगाया और आगरे की ओर से दिल्ली को बढ़ने वाली गोरी पल्टनों की धज्जियां उड़ाई जाने लगीं। हजारों गोरे बन्दी बना लिये गये और अगणित बल्लभगढ़ के मैदान में धराशायी हुए। कहा जाता है कि बल्लभगढ़ में रक्त की नाली बहने लगी थी जिससे राजकीय तालाब का रंग रक्तिम हो गया था। सम्राट् के शाहजादों के रक्त का बदला बल्लभगढ़ में लिया गया।

धोखा

परन्तु चालाक अंग्रेजों ने धोखेबाजी से काम लिया और रणक्षेत्र में सन्धिसूचक सफेद झण्डा दिखा दिया। चार घुड़सवार अफसर दिल्ली से बल्लभगढ़ पहुंचे और राजा से निवेदन करने लगे कि 'सम्राट् बहादुरशाह से सन्धि होने वाली है, उसमें आपका उपस्थित होना आवश्यक है। अंग्रेज आप से मित्रता ही रखना अभीष्ट समझते हैं।

भोला जाट नरेश अंग्रेजी जाल में फँस गया। उसने अंग्रेजों का विश्वास कर और ५०० चुने हुए जवानों के साथ दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया।

इस प्रकार अंग्रेजी कूटनीति बल्लभगढ़ की स्वतन्त्रता का अभिशाप बन कर, राजा नाहरसिंह के सम्मुख उपस्थित हुई। दिल्ली में प्रवेश करते ही, छिपी हुई गोरी पलटन ने, अचानक राजा नाहरसिंह को बन्दी बना लिया। उनके बहादुर साथियों को मार-काट दिया गया।

दूसरे ही दिन पूरी शक्ति से अंग्रेजों ने बल्लभगढ़ पर आक्रमण कर दिया। वह सुदृढ़ दुर्ग, जिसे अंग्रेज लौह द्वार कहते थे, तीन दिन तक तोप के गोलों से गले मिलता रहा। राजा ने अपने दुर्ग को गोला-बारूद का केन्द्र बना रखा था। वर्षों तक लड़ने की क्षमता थी उस छोटे से किले में। किन्तु बिना सेनापति के आखिर कब तक लड़ा जा सकता था?

उधर स्वाभिमानी राजा ने अंग्रेजों का मित्र बनने से साफ इन्कार कर दिया। उसने कहा—"शत्रुओं को सिर झुकाना, मैंने सीखा नहीं है।" ३६ वर्षीय राजा की सुन्दर लुभावनी मुखाकृति को देख कर हडसन ने बड़ा दयाभाव दर्शाते हुए समझाया "नाहरसिंह ! मैं तुम्हें अब भी फाँसी से बचा सकता हूँ। थोड़ा-सा झुक जाओ।" राजा ने हडसन की ओर पीठ करते हुए उत्तर दिया—"कह दिया। फिर सुन लो। गोरे मेरे शत्रु हैं, मेरे देश के शत्रु हैं, उनसे क्षमा मैं कदापि नहीं माँग सकता। ·· लाख नाहरसिंह कल पैदा हो जायेंगे।"

नाहर के उपर्युक्त उत्तर से अंग्रेज बौखला गए। उन्होंने राजा को फाँसी देने का निश्चय किया और चाँदनी चौक में आधुनिक फव्वारे के निकट, जहाँ राजा नाहरसिंह का दिल्ली-स्थित आवास था, उनको खुले आम फाँसी देने की व्यवस्था की गई। दिल्ली की वह जनता जो किसी दिन राजा को शक्ति का देवता मान कर उसे अपनी सुरक्षा और सुव्यवस्था का अधिष्ठाता समझती थी, उदास भाव से गर्दन झुकाए, बड़ी संख्या में अन्तिम दर्शन को उपस्थित थी। उस दिन राजा की ३६ वीं वर्षगांठ थी जिसे मनाने के लिए वह वीर इस प्रकार फाँसी के तख्ते के निकट आया मानों अपनी वर्षगांठ के उपलक्ष्य में

तुलादान की तराजू के निकट ग्राकर खड़ा हुग्रा हो। राजा के साथ उसके तीन ग्रन्य विश्वस्त साथी ग्रौर थे—खुशालसिंह गुलाबसिंह ग्रौर भूरासिंह। बल्लभगढ़ के ये चार नौनिहाल देशभक्ति के ग्रपराध में साथ-साथ फाँसी के तख्ते पर खड़े हुए।

दिल्ली की जनता नैराश्यभाव, से साश्रु, इस हृदयविदारक दृश्य को देख रही थी। परन्तु राजा नाहरसिंह के मुख-मंडल पर मलिनता का कोई चिन्ह न था, वरन् एक दिव्य तेज शत्रुग्रों को ग्राशंकित करता हुग्रा उनके मुखमंडल पर छाया हुग्रा था।

चिनगारी बुझने न देना

ग्रन्त में फांसी की घड़ी ग्राई ग्रौर हडसन ने सिर झुका कर राजा से उनकी ग्रन्तिम इच्छा पूछी। राजा ने सतेज स्वर में उत्तर दिया—"तुम से मुझे कुछ नहीं मांगना। परन्तु इन भयत्रस्त दर्शकों को मेरा सन्देह यह दो कि जो चिनगारी मैं ग्राप लोगों में छोड़े जा रहा हूं उसे बुझने न देना। देश की इज्जत ग्रब तुम्हारे हाथ है।"

हडसन समझ नहीं सका। उसने दुभाषिए की ग्रोर इशारा किया। किन्तु दुभाषिए ने जब उसे राजा की यह इच्छा सुनाई तब वह सन्न रह गया ग्रौर राजा की इस ग्रन्तिम इच्छा को उपस्थित दर्शकों से कहने में, उसने ग्रपनी ग्रसमर्थता प्रकट की।

इस प्रकार राजा नाहरसिंह निस्वार्थ भाव से देश की बलिवेदी पर चढ़ कर ग्रमर हो गए। उनका पार्थिव शरीर तक उनके परिवार को नहीं दिया गया। ग्रतः उनके राजपुरोहित ने राजा का पुतला बना कर, गंगा किनारे ग्रन्तिम संस्कार की रस्म पूरी की।

—:०:—

झज्जर के नवाब

(कपिलदेव शास्त्री)

पूर्व इतिहास

रोहतक के दक्षिण में २२ मील व दिल्ली के पश्चिम-दक्षिण कोण में ३६ मील झज्जर नाम का प्रसिद्ध कस्बा है। यह कस्बा १ हजार साल पहले झज्झू नाम के जाट ने बसाया था, ग्रौर उसी के नाम से झज्जर प्रसिद्ध हुग्रा। मुगलकाल में यह शहर ग्रपने व्यापार के लिए ग्रत्यन्त प्रसिद्ध था। झज्जर, रिवाड़ी भिवानी एक त्रिकोण बनाते हैं। जो ग्राज की तरह पूर्व काल में भी व्यापारिक केन्द्र थे। ग्रकेले झज्जर शहर में ३०० ग्रत्तारों ग्रौर गन्धियों की दुकानें थीं। झज्जर से दिल्ली जाने वाली सड़क पर शहर से बाहर बादशाह शाहजहां के जमाने की ग्रनेक पुरानी इमारतें व मकबरे हैं। जिनके द्वारों पर फारसी लिपि में ग्रनेक वाक्य खुदे हुए हैं। उन भवनों व मकबरों के बीच में सदियों पुराना एक बहुत बड़ा पक्का तालाब है। जहाँ म्युनिसिपैलिटी की ग्रोर से पशुग्रों का मेला भरता (लगता) है।

हरियाना का प्रदेश सन् १७१८ में बादशाह फरुखसियर ने ग्रपने वजीर ग्रलीदीन को जागीर में दिया। १७३२ में फरुखनगर के नवाब को दे दिया। १७६० में महाराजा सूरजमल (भरतपुर) ने फरुख-नगर के नवाब मुसा खां को हरा कर यह प्रदेश उससे छीन लिया। इस समय दिल्ली नगर की चार दीवारी

तक उनका राज्य था। बादली नाम का प्रसिद्ध गांव उनकी एक तहसील था। १७५४ में बिलोच सरदार बहादुर खां को बहादुरगढ़ बादशाहों से जागीर में मिला। झज्जर बेगम समरू के पति वेनरेल साहब के कब्जे में आ गया। गोहाना, महम, रोहतक, खरखौदा आदि दिल्ली के वजीर नब्जखां के कब्जे में थे। १७९० में बेगम समरू की मुलाजमत में रहने वाले अंग्रेज इसकिन्दर ने उत्तर हिन्दुस्तान में जाटों, मराठों, सिक्खों की खींचातानी देखकर हांसी, महम, बेरी, रोहतक, झज्जर पर कब्जा कर लिया और जहाजगढ़ में किला बनाकर अपना सिक्का भी चलाया। १८०३ में अंग्रेजों ने मराठों को हराया। दिल्ली के साथ हरियाना पर भी कब्जा जमा लिया। झज्जर, बल्लभगढ़, दुजाना आदि रियासतें कायम कीं। फर्रुखनगर, जीन्द, बहादुरगढ़ आदि रियासतें रहने दीं। हरियाना का बाकी हिस्सा १८३६ तक गवर्नर बंगाल की मातहती में बंगाल के साथ रहा। इसके बाद आगरे के नये सूबे में शामिल कर दिया गया।

सन् ५७ के युद्ध के बाद बहादुरगढ़, बल्लभगढ़, फरुखनगर, झज्जर आदि की रियासतें समाप्त कर दीं। लोहारू, पटौदी, दुजाना की रियासतें रहने दीं। १८५८ में हरियाना को आगरा से निकाल कर सजा के तौर पर पंजाब के साथ जोड़ दिया गया। दिल्ली को कमिश्नरी का हैडक्वार्टर बना दिया। सरसा और पानीपत के जिले तोड़कर उन्हें तहसील बना दिया गया।

झज्जर के नवाबों का सम्बन्ध बहराइच के पठानों से था। नवाबों के पूर्वज पहले पिशिन व कन्धार के आस-पास निवास करते थे। धीरे-धीरे सरकते हुए वे लोग युसुफजई प्रदेश (कबीले) में आ पहुँचे। धन सम्पदा के लोभ में नवाबों का पहला दादा मुस्तफा खां, भारतवर्ष में दिल्ली के बादशाह मोहम्मदशाह रंगीला के काल में आया। दिल्ली से चलकर वह बंगाल के गवर्नर अलीवर्दी खां के यहाँ नौकर हो गया। अलीवर्दी खां के पास रहते हुए मुस्तफा खां ने अनेक युद्धों में वीरत्व प्रदर्शित कर नवाब की उपाधि प्राप्त की। उसने बिहार का गवर्नर बनने के अनेक प्रयत्न किये। असफल हो अपने पुराने स्वामी अलीवर्दी खां को छोड़ उत्तर हिन्दुस्तान में चला आया। अजीमाबाद के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। मुस्तफा खां की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र मुर्तजा खां ने पिता की फौज की कमान संभाली। अजीमाबाद से चलकर वह अवध के सूबेदार सफदरजंग के पास पहुंचा और उसकी सेवा स्वीकार कर ली। सफदर जंग के बाद वह शुजाउद्दौला के पास रहा। उन्हें छोड़कर वह दिल्ली की बादशाही फौज के सिपहसालार नजफ खां से आ मिला। नज्फ खां ने उसे महाराज जयपुर के विरुद्ध युद्ध के लिये भेजा, जहां वह मैदान में काम आया। मुर्तजाखां का स्थान उसके बेटे निजाबतअली खां ने संभाला। अनेक लड़ाइयों में वह दिल्ली के बादशाहों की ओर से लड़ा। तत्कालीन बादशाह शाहआलम ने प्रसन्न होकर उसके दादा की तरह उसे नवाब की उपाधि प्रदान की। निजाबतअली खां ठंडे दिमाग का शानदार योद्धा था। वह समय के उतार-चढ़ाव का पारखी था। जब १८०३ में अंग्रेजों और मराठों का भारतवर्ष की सत्ता अधिग्रहण के लिये निर्णायक युद्ध हुआ तो निजाबतअली ने बढ़ती शक्ति अंग्रेज का साथ दिया। जीत के उपरान्त अंग्रेजों ने प्रसन्न हो झज्जर की नवाबी निजाबतअली को सौंप दी। निजाबतअली दिल्ली में रहता हुआ ही झज्जर के काम-काज को संभालता था। १८१३ में इसने अपने योग्य पुत्र फैज मोहम्मद खां को झज्जर की रियासत संभलवा दी। निजाबतअली खां ३० साल तक लगातार दिल्ली ही रहा। १८२४ में वह गुजरा। उसके पुत्र फैज मुहम्मद ने अपने पिता निजाबतअली खां को महरौली में कुतुबुद्दीन औलिया के पवित्र मकबरे की छाया में दफनाया। झज्जर के नवाबों (बहराइच-पठानों) व उनके वंशज

की तमाम कबरें वहीं हैं। फैजमुहम्मद खां योग्य शासक था। झज्जर के मकानात शाहीमहल इसी ने वनवाये थे। जिन में आज झज्जर तहसील की कचहरियां लगती हैं। इसकी निर्माण कार्यों में बेहद दिलचस्पी थी। झज्जर के अनेक छोटे-बड़े तालाब, शहर की पुख्ता गलियां इसी के जमाने की बनी हुई हैं। इसने नमक बनाने की स्कीम जारी की और लोगों को नमक बनाने के लिये उत्साहित किया। फैज मोहम्मद खां ने अपने मातहत प्रदेश को खुशहाल बनाने में कोई कसर उठा न रक्खी। अनेक उजड़े हुए गांवों को फिर बसाया। बादली का प्रसिद्ध बांध बंधवाया; जिसकी लम्बाई चार मील है। जिसमें बरसात का पानी इकट्ठा होता था, और सिंचाई के काम आता था। इसके दरबार में बड़े विद्वान् और कवि इकट्ठे होते थे; जिनका यह यथाशक्ति आदर-सत्कार करता था। जनश्रुति के आधार पर यह बड़ा योग्य शासक था। अपने पिता के जीते जी ही इसने उसकी जायदाद को संभाल लिया। इस तरह १८१३ से १८३५ तक २२ साल इसने योग्यतापूर्वक शासन किया। १८३५ में इसका शरीर पूरा हुआ और अपने पिता के बराबर महरौली में दफनाया गया।

फैज मोहम्मद का पुत्र फैजअली खां अपने पिता के बाद गद्दी नशीन हुआ। अपने पिता से उल्टा यह अत्यन्त व्यसनी, दुर्गुणी और संकुचित हृदय था। जमीन का लगान अत्यन्त सख्ती से बसूल करता था। इसके बारे में झज्जर के देहात में अनेक किस्से मशहूर हैं। कहा जाता है कि जब नवाब के खर्चे अत्यधिक बढ़ गये तो इसने एक-एक गाँव से साल में कई-कई बार लगान लेना शुरू किया। इलाके के बड़े-बड़े गांवों ने संगठित रूप में नवाब की इस नाजायज हरकत का मुकाबला शुरू किया। अपनी रियासत के प्रसिद्ध गांव "छारा" में नवाब जब लगान लेने गया तो उन्होंने कर देने से इन्कार कर दिया। वापिस लौटता हुआ नवाब बौखला कर एक छोटे गांव "गुढ़ा" में पहुंचा। और गांव का पिण्ड तब छोड़ा जब उससे छारा गांव का कर ले लिया। इसी तरह "डावले" नामक गांव का लगान "रय्या" नामक गाँव से वसूल किया। यही नहीं, फैजअली अपनी कामुकता के लिए भी प्रसिद्ध है। झज्जर की देहात के बड़े, बूढ़े बताते हैं कि नवाब ने घर-घर पिंजरे टँगवाकर रक्खे थे। उनमें चिड़ियाँ रुक जाती थीं। नवाब के नौकर आते और पिंजरों में बन्द चिड़ियों को ले जाते, नवाब उनका मांस अनेक प्रकार भूनकर-पकाकर खाते। कहा तो यहां तक भी जाता है कि नवाब चिड़ियों की जीभ का शाक खाता था, कामुकता की वृद्धि के लिए। नवाब की अय्याशी का यहीं अन्त नहीं था। वह जब शिकार के लिये निकलता तो बहेलियों, बाजों व कुत्तों का झुण्ड उसके साथ निकलता था। जो कुछ सामने पड़ता वही मार गिराया जाता। शाम को जब नवाब फैजअली सैर को निकलता तो उसकी विशेष प्रकार की बग्गी में काले हिरण जुते रहते थे। कभी-कभी वह झज्जर से छुछकवास तक ९-१० मील उन हिरणों की बग्गी को दौड़ाता था। यहीं तक बस नहीं; नवाब को नंगा नहाने का इतना अधिक शौक था कि उसने झज्जर से पाँच मील उत्तर भदाणी गांव के रास्ते पर बीच जंगल में पक्की जोहड़ी (छोटा तालाब) बनवाई; (जो आज भी मौजूद है)। जहाँ वह शिकार के बाद नंगा स्नान करता था। बिलासप्रिय नवाब फैजअली ने अपने बागों के बीच में फिसलने वाली जोहड़ी (पक्का छोटा तालाब) बनवाई; जहां वह चांदनी रातों में बेगमों के साथ नंग-धडंग नहाता। तालाब के बीच में अनेक दीपों को रखने की आलियां (भीत में जगह-जगह खुदे गढ़े) युक्त स्तम्भ हैं। उत्तर की ओर दस फुट ऊँचा विशाल चबूतरा है। तालाब से चबूतरे पर चढ़ने के लिए सीढ़ियां हैं! प्रसिद्ध है—कि दासियां चबूतरे से तालाब तक चली गई तिरछी फिसलन पर बेगमों को सावधानी से फिसला देती थी और नवाब फिसली बेगमों के नीचे खुद आ अड़ता। आज यह फिसलनी

जोहड़ी अच्छी अवस्था में ज्यों-की-त्यों झज्जर शहर से आध मील पर "तालाब" गांव के रास्ते पर विद्यमान है। हाँ उसके चारों ओर की परदा-दीवारें गिर चुकी हैं। कुँए से तालाब तक आने वाली पक्की नालियां धीरे-धीरे नष्ट हो रही हैं। चारदिवारी से बाहर की खाई बालू रेत से अँट गई हैं; बाग काटा जा चुका है। इसका शासन काल केवल १० साल रहा और युवावस्था में ही यह विलासी नवाब काल कवलित हुआ।

अन्तिम नवाब अब्दुर्रहमान खाँ

१८४५ में नवाब अब्दुर्रहमान खां गद्दी पर बैठे। क्रूर और विलासी पिता द्वारा पीड़ित प्रजा उन्हें विरासत में मिली। गद्दी पर बैठते ही नवाब का अपने रिश्तेदारों से झगड़ा शुरू हो गया; जिन्होंने उसकी गद्दी के विरुद्ध (असली हक के खिलाफ) दावा किया। इस का असर नवाब के दिल पर इतना बुरा पड़ा कि वह फिर कभी उभर न सका।

नवाब अब्दुर्रहमान को अपने पिता की अपेक्षा अपने दादा फैज मुहम्मद के गुण उत्तराधिकार में मिले थे। उसमें शासन प्रबन्ध व निर्माण की योग्यता थी। उसने जहांआरा बाग में एक शानदार महल बनवाया (जिसमें आजकल एस० डी० ओ० की कचहरी लगती है और जो ग्रामीण जनता में बाग-जवाहरा नाम से मशहूर है)। झज्जर से १० मील दूर दादरी को जाने वाली सड़क के किनारे नवाब ने एक महल और काफी बड़ा पक्का तालाब बनवाया। जिसका निर्माण दो साल (तालाब पर लगे पत्थर के अनुसार १८५२ में शुरू व १८५४ में पूर्ण) में हुआ। एक तरफ घाट है; तीन तरफ सीधी खड़ी दीवारें। पर आजकल तालाब की दीवारें गिरनी शुरू हो गई हैं। उनकी सार, संभाल करने वाला अब कोई नहीं रहा। नवाब के पिता के समय के अभ्यस्त कारिन्दों ने लगान बेरहमी और सख्ती से वसूल करना शुरू किया। जनता त्राहि-त्राहि कर उठी। दुःखी नवाब स्वयं गांवों में गया; जनता को आश्वस्त किया। भागती जनता को रोका और उजड़े गांवों को पुनः बसाया। इससे जो लोग फैजअली के समय रियासत से चले गये थे वे फिर वापिस आकर बस गये। उसने पुराने लोगों को हटाकर नये लोगों को वजीर बनाया। नवाब के तीन वजीर थे। झज्जर के पं० रिछपालसिंह (जिनके वंशधर आज भी दीवान खान-दान के कहलाते हैं) और जिनमें अन्तिम थे दिलावरसिंह। जो पंजाब के प्रसिद्ध विधान सभाई पं श्रीराम शर्मा के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे। वे अपने साथ ही अपने वंश की इतिश्री कर गये।

दूसरे वजीर थे "कुतानी" के ठाकुर स्यालुसिंह है। जिन की अपने तीसरे साथी से कभी न बनती थी। और दोनों के झगड़ों के सम्बन्ध में अनेक किस्से मशहूर हैं। उनके वंशधरों के पास भी कुतानी की काफी जमीन है।

तीसरे थे "बादली" के चौधरी गुलाबसिंह। गांव बादली में गुलाब की हवेली में आज भी कैदियों को रोकने की सात ताले बन्द कोठरियां हैं। उनके वैभवशाली परिवार में हुए चौधरी स्वरूपसिंह जिन्होंने सन् २२ में पंजाब कौन्सिल के चुनाव में चौ० छोटूराम को हराया था। स्वरूपसिंह के हुए रणधीरसिंह और रणधीरसिंह के हैं सम्पूर्णसिंह।

बहादुरगढ़ के नवाब मोहम्मद इस्माईलखां अपने अढ़ाई वर्ष के लड़के को छोड़ कर मर गये। बहराइच-पठानों की शाखा होने से रियासत का कार्यभार झज्जर के नवाब ने संभाला। बालिग होकर बहादुरगढ़ के नवाब बहादुरजंग ने अपना हक मांगा। नवाब झज्झर ने दादरी का प्रदेश अपने अधिकार में रख कर बाकी बहादुरगढ़ की रियासत लौटा दी। युवक बहादुर जंग ने अँग्रेज रेजीडेण्ट देहली की

सेवा में फरियाद की। उसने १६ गांव नवाब झज्झर को दिला कर बाकी इलाका बहादुरगढ़ के नवाब को वापिस करा दिया। १८४८ में नवाब बहादुरजंग की हालत इतनी पतली हो गई कि रियासत दादरी के कुर्क होने का खतरा पैदा हो गया। नवाब झज्झर ने सारा कर्ज चुका कर दादरी रियासत का शेष भाग भी अपने अधिकार में ले लिया। अंग्रेज नवाब बहादुरजंग से बहादुरगढ़ का शस्य-श्यामल प्रदेश भी छीनना चाहते थे। इतने में १८५७ आ पहुँचा। नवाब बहादुरजंग ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया। युद्ध समाप्त होने पर नवाब बहादुरजंग को फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया और बहादुरगढ़ का प्रदेश दिल्ली में मिला लिया गया।

१८५५ में झज्जर के नवाब अपनी रियासत के नियमित प्रबन्ध में जुटे हुए थे। बादली के इलाके को भी ये अपने प्रदेश में मिला चुके थे। इस समय उनकी रियासत में ३६० गाँव थे। १४ लाख की सालाना आमदनी थी। रियासत धन-धान्य पूर्ण थी। नवाब ने धीरे-धीरे अपनी फौज बढ़ानी शुरू की। शहर से बाहर छावनी डाली। इस स्थान पर शहर और तहसील के बीच में रास्ते से कुछ हट कर दक्षिण की ओर एक बस्ती बसी हुई है जो आज भी छावनी कहलाती है।) नवाब की फौज में पूर्वीये(जिनके नाम पर आज भी झज्जर की एक जोहड़ी (छोटा तालाब) पूर्वीयों की जोहड़ी कहलाती है जो शहर से पश्चिमोत्तर कोण में है।) तैलंगे और जाट थे। झज्जर के किले पर तोपें चढ़वा दीं। (कुछ तोपें और उनके गोले आज भी झज्जर की कचहरियों में नवाब के महलों के सामने चबूतरे पर रखे हैं।) "सिलानी" गांव की बनी (जंगल) में भी नवाब ने छावनी डलवाई। वहीं फौजों को परेड करवाई जाती थी। छुछकवास के बीड़ (जंगल) में भी सिपाहियों को गोलावारी का अभ्यास कराया जाता था। नवाब को घोड़ों का भी शौक था। यह शौक उन्हें राव तुलाराम की दोस्ती के कारण हुआ था। गर्ज यह कि गदर से पहले नवाब पूरी तैयारी कर रहे थे। शाहंशाह बहादुरशाह ने जब अपना विचार अंग्रेज को भारत से निकालने का किया तो सब से पहली प्रतिक्रिया झज्जर की नवाबी पर हुई। इस का प्रमाण अवध की बेगम सुलताना जहां बेगम "कैसर" का लिखा वह कैसरनामा है जो अमीर महल काकोरी के पुस्तकालय में अभी तक सुरक्षित है। उस में लिखा है कि "नवाब झज्जर ने पक्का इरादा कर लिया है कि आजादी की लड़ाई में वह पूरी मुस्तैदी से बादशाह का साथ देंगे। उनकी पलटन में पूर्वीये ऊंचे दर्जे के लड़ाके हैं।" पाँच, सात दिन पीछे एक मई के रोजनामचे में बेगम ने फिर लिखा है कि "नवाब झज्जर और राजा बल्लभगढ़ विद्रोह में शामिल हो गये हैं, राव तुलाराम से खतोकिताबत जारी है। इस से ज्ञात होता है कि नवाब अब्दुर्रहमान ने अपना मन अंग्रेज के विरुद्ध पूरी तरह बना लिया था। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी जो अचानक घट गई।

१० मई १८५७ को मेरठ में क्रान्ति की जो चिन्गारी सुलगी वह मई के अन्त तक सारे भारत में फैल गई। मेरठ छावनी में जाट और राजपूत भारी संख्या में सिपाही थे। रिवाड़ी के राजा तुलाराम के भाई राव कृष्ण गोपाल इन दिनों मेरठ में शहर कोतवाल थे, बागी फौजें मेरठ को विजय करके उनके नेतृत्व में दिल्ली की ओर बढ़ीं। और दिल्ली से हरियाणे की वीरप्रसु भूमि में क्रान्ति फूट पड़ी।

१२ मई को अंग्रेजों ने नवाब झज्जर से ५०० सिपाही और कुछ तोपें सहायता के लिये मांगी। परन्तु उस समय दिल्ली में भारी गड़बड़ी थी। अंग्रेज मारे जा रहे थे, बचे-खुचे करनाल की तरफ भाग रहे थे। इस लिए नवाब (जो मन से अंग्रेजों के विरुद्ध था) ने कोई सहायता न भेजी। हां एक चिट्ठी आगरा के लेफ्टीनैन्ट गवर्नर को अवश्य लिखी और उस से पूछा कि उसे क्या करना चाहिये ?

१२ मई को ही रोहतक में विद्रोह शुरू हो गया था—अंग्रेजों ने नवाब को उसे दबाने की आज्ञा दी। नवाब ने अधूरे मन से १८ मई को दो छोटी तोपें और चन्द घुड़सवार भेजे। तोपें किसी काम की न थीं। सिपाही रास्ते भर लोगों को अंग्रेज के विरुद्ध भड़काते आये। उन दिनों रोहतक में बंगाल सिविल-सर्विस का कलक्टर जान राब्य लोक १० महीने के लिये इंचार्ज बनकर आया था।

जब दिल्ली के कमिश्नर एस् प्रेसर काट दिये गये और ज्वाईन्ट मैजिस्ट्रेट जान मैटकाफ पर आक्रमण किया तो वे जान बचा कर भागे तथा कुछ अन्य अंग्रेजों के साथ लुक-छिप कर झज्जर पहुँचे। नवाब उनसे मिला नहीं, हाँ अपने पहरेदारों की देख-रेख में छुछकवास की अपनी कोठी में भेज दिया। कुछ दिन बाद दिल्ली से कुछ ब्रिटिश स्त्रियाँ और आश्रय के लिये आईं। इन में दिल्ली के आफिसर किचनर की पत्नी, साली और बच्चे भी थे। दूसरी ओर गुड़गांव के अंग्रेज अधिकारी भी मय बाल-बच्चों के नवाब के आश्रित हुए। नवाब ने इन सब अंग्रेज स्त्री-पुरुषों की रक्षा की और दिल्ली जीत लेने के बाद उनके संरक्षकों के पास अपने दारोगा मिर्जा हुसैन द्वारा रथों में बैठा कर पहुँचा दिया। हां मेटकाफ को उन्होंने लम्बा आश्रय देने से इन्कार कर दिया और यह शीघ्र ही रियासत से चला गया था।

दूसरी तरफ नवाब विद्रोहियों को भी पूरा-पूरा साथ दे रहे थे। क्रान्तिकारियों के सहायता मांगने पर उन्होंने अपने ससुर अब्दुस्समद खां और अपने दादा इब्राहीम के नेतृत्व में ३०० सिपाही दिल्ली भेजे। जिन्होंने दिल्ली की पहाड़ी की लड़ाई और बादली की सराय के युद्ध में अंग्रेज से डट कर लोहा लिया। इन सिपाहियों का वेतन नवाब देते थे।

२४ मई को नवाब की शह पर शाही फौजें रोहतक के खजाने से दो लाख रुपया लूट ले गईं। रोहतक के रांघड़ों (मुसलमान राजपूतों) और कसाईयों ने रोहतक कोट पर झण्डा फहरा दिया।

उधर नवाब अब्दुर्रहमान खाँ, राव तुलाराम से सलाह-मशविरा करते रहते थे—तथा उनके साथ रामपुर (रिवाड़ी) व तावड़ू के युद्धों में भी सम्मिलित हुए। इधर बादशाह बहादुरशाह के साथ जो पत्र-व्यवहार जारी था उसका ज्ञान अंग्रेजों को हो गया और जनरल एनसन झज्जर के दीवान रिछपाल-सिंह को फोड़ने में कामयाब हो गये। यही नहीं नवाब का पत्र-व्यवहार राजा तुलाराम, राजा नाहरसिंह (बल्लभगढ़) नवाब मोहम्मदअली (फरुखनगर) नबाब बहादुर जंग (बहादुरगढ़) से भी चल रहा था, परन्तु वे हैरान थे कि समाचार क्यों नहीं मिल पाते। अंग्रेज की साजिश बुरे तौर से चल रही थी। सारा पत्र-व्यवहार बीच में ही गुम कर निया जाता था।

दिल्ली के चूड़ी वालों के मोहल्ले से भारी तादाद में अस्त्र-शस्त्र और गोला-बारूद झज्जर पहुँचने वाला था। वह विश्वासघातियों ने बीच ही में रोक लिया। १४ सितम्बर को दिल्ली का पतन हुआ। १५ दिन अंग्रेजों को दिल्ली की व्यवस्था में लगे। अक्टूबर के प्रारम्भ में अंग्रेजों ने आस-पास की रियासतों को अपने काबू में लाने का फैसला किया। ४ अक्टूबर को ब्रिगेडियर शार्वज ने दिल्ली से झज्जर को कूच किया। उनके साथ कप्तान हडसन भी थे। १७ अक्टूबर को वे झज्जर पहुंचे। दूसरी ओर से कर्नल लारेंस भी दादरी से छुछकवास पहुंचे। उस समय नवाब की सेना रण साज-सज्जा से पूरी तरह तैयार थी और सेना चाहती थी ब्रिटिश सैन्य से लोहा लेना। नवाब की फौज अंग्रेजी फौज को हरा सकती थी। पर विश्वासघाती दीवान रिछपालसिंह ने उन्हें आत्म समर्पण की सलाह दी। नवाब ने छुछकवास पहुँच कर कर्नल लारेंस के सामने आत्म समर्पण कर दिया। १८ अक्टूबर को झज्जर के किले पर और

१९ अक्टूबर को नारनौल के गढ़ पर ब्रिटिश झण्डा फहरा दिया गया। धन-धान्य पूर्ण झज्जर शहर को लूट लिया गया। नवाब की लाखों रुपये की सम्पत्ति, गाय, घोड़े, भैंस सब लूट लिये गये। झज्जरके चारों ओर की प्रसिद्ध सड़कों पर निरीह प्रजा को उल्टा लटका-लटका कर वृक्षों को लाशों से भर दिया गया। सारा इलाका विद्रोही करार दे दिया गया। और यह लिखित घोषणा कर दी गई कि भविष्य में भी जब तक अंग्रेजी राज्य रहे इस प्रदेश को पिछड़ा ही रहने दिया जावे। चौ० छोटूराम तक इस प्रदेश की किसी ने सुध नहीं ली। वे ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस प्रदेश के पिछड़ेपन की तरफ पहले-पहल ध्यान दिया।

फौज को भी हथियार डालने के लिए आज्ञा दी पर उसने आत्म समर्पण से इन्कार कर दिया। और अंग्रेजी फौज से लड़ते-भिड़ते क्रान्तिकारी सिपाही जोधपुर के दक्षिण में क्रान्तिकारी सेनाओं से जा मिले और अन्तिम समय तक लड़ते-भिड़ते रहे।

नवाब को ब्रिटिश फौज के पहरे में देहली, ले जाया गया और उन पर राज विद्रोह के सम्बन्ध में मुकद्दमा चलाने का निर्णय किया गया। मुकद्दमे का फैसला होने तक झज्जर रियासत कर्नल लारेंस के शासन में सौंप दी गई। पटियाला रियासत के छः सौ पैदल और २०० घुड़सवार सिक्ख सैनिक झज्जर में अंग्रेज सैन्य की सहायता के लिये रखे गये। नवम्बर के प्रारम्भ तक रोहतक के हालात बिलकुल ठीक हो चुके थे। नवाब फरुखनगर, नवाब बहादुरगढ़ भी पकड़े जा चुके थे। राव तुलाराम रिवाड़ी छोड़ कर जा चुके थे। राजा बल्लभगढ़ भी काबू आ चुके थे। नवाब फरुखनगर ३१ अक्टूबर को पकड़े गये थे तथा राजा नाहरसिंह(वल्लभगढ,नवम्बर के प्रारम्भ में। दोनों राजवंशों की सम्पत्ति लूट ली गई। यहां तक कि रानियों व बेगमों के जेवर, गहने, वस्त्र उतार कर उन्हें नग्न करके रियाया के सामने बेइज्जती की गई और लाखों की जायदाद को उजाड़ दिया गया। नवाब मोहम्मदअली को उनके ११ साथियों के साथ गोली से उड़ा दिया गया। राजा नाहरसिंह को २१ अप्रैल सन् १९५८ को उनके लेफ्टीनेंट गुलाबसिंह, ठाकुर भूरेसिंह, कुँवर खुशहालसिंह सहित चांदनी चौक में फांसी पर लटका दिया। नवाब दुजाना रुपये-पैसे काबू में किये बैठे रहे। उन्हें रहने दिया गया। नवाब दुजाना और लोहारु सन् ४७ में पाकिस्तान भाग गये। इस तरह सन् ४८ में सब बराबर हो गये।

जब सारे हारयाणे में शान्ति हो गई और अंग्रेज निश्चिन्त हो गये तब देहली के रायल (शाही) हाल में मिलिटरी कमीशन के सामने (जिसके अध्यक्ष जनरल एन० चैम्बरलैन थे) नवाब अब्दुर्रहमान का मुकद्दमा शुरू हुआ। पहली पेशी १४ दिसम्बर सन् ५७ की थी और अन्तिम १७ दिसम्बर। इस तरह तीन दिन में ही यह नाटकीय मुकद्दमा समाप्त कर दिया गया। नवाब के विरुद्ध १८५७ के गदर के १६ वें एक्ट के अनुसार निम्न लिखित अभियोग लगाये गये।

१—नवाब अब्दुर्रहमान खाँ ने अंग्रेज गवर्नमेन्ट के विरुद्ध विद्रोहियों की सहायता की। और जहां मार्शलला जारी कर रक्खा था-वहां विद्रोह करने और कराने का प्रयत्न किया।

२—नवाब ने विद्रोहियों को-फौज, रुपये और पनाह देकर सहायता की।

३—उसने (नवाब ने) गवर्नमैन्ट को धोखा देने के लिये विद्रोहियों के साथ पत्र व्यवहार किया।

जिस समय झज्झर की जायदाद निजाबतअली खां को दी गई, उससे उस समय एक सनद पर यह शर्त लिखा ली गई थी कि-"नवाब सदा अंग्रेज-सरकार का दोस्त और कल्याण चाहने वाला (शुभेच्छु) रहेगा। जरूरत तथा कष्ट के समय चार सौ या इससे भी अधिक घुड़सवार हाजिर करेगा।" लेकिन नवाब ने इसका उल्लंघन किया। अंग्रेज अफसरों की शरण में आने पर रक्षा नहीं की इसके उल्ट निश्चय ही नवाब ने अंग्रेज स्त्री-बच्चों को सुरक्षित दिल्ली पहुँचाया। प्रारम्भ में नवाब दोगली चालें चलता रहा और

अन्त में उसके विश्वस्त अधिकारियों ने धोखा दिया) अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ा। उसने (नवाब ने) विद्रोहियों की रुपयों से सहायता की। झज्झर के व्यापारियों से जबरदस्ती यह कह कर कि "देहली से शाहजादा आया है उसकी मेहमान निवाजी होनी है" चन्दा देने के लिये मजबूर किया और चन्दे तथा मालगुजारी के रूप में पाँच लाख रुपये तथा अपनी फौज, अपने ससुर अब्दुस्समद खां की अध्यक्षता में दिल्ली भेजी। जिस समय रियासत के झज्झर और नारनौल किलों पर अधिकार किया गया उस समय वे पूरी फौजी तैयारियों में थे। किलों की देख-रेख का प्रबन्ध रिछपालसिंह की अध्यक्षता में हो रहा था। जिसने नवाब को लड़ने से मना किया और आत्मसमर्पण की सलाह दी, इनाम के तौर पर बाद में अंग्रेजों ने इसे झज्झर का आनरेरी मजिस्ट्रेट बना दिया। और इस के दूसरे साथी स्यालुसिंह को कुतानी गांव इनाम में दिया। इन्हीं दोनों ने झज्झर से दिल्ली जाता लाखों का खजाना खुर्द-बुर्द कर दिया था। फौज के सिपाही नवाब के काबू में नहीं थे। उन्होंने अपनी इच्छानुसार काम किया। मुसलमान सिपाहियों ने झज्झर के हिन्दू अफसरों के खिलाफ बगावत की। उनके घरों और गांवों पर हमला किया गया। स्त्री और बच्चों को मारा गया। नवाब का अपना कोई ध्येय नहीं था। महलों की रानियों ने उसे देहली बादशाह के पास जाने के लिये मजबूर किया। इन बातों को ध्यान में रखते हुए कमीशन ने उसे(नवाब को) अपनी ड्यूटियों का अच्छी तरह पालन न करने के कारण बड़ा भारी मुजरिम ठहराया। तथा अपराधी के रूप में उसे फांसी की सजा दी। कमीशन के सामने नवाब के विरुद्ध गवाही देने के लिए सर० टी० मैटकाफ, मि० फोर्ड, मि० लौक आदि अंग्रेज तथा दीवान रिछपालसिंह, ठाकुरसिंह, स्यालूसिंह (नवाब के एक वजीर) आदि उपस्थित हुए।

२३ दिसम्बर १८५७ को देहली के लाल किले के सामने नवाब अब्दुर्हमान को फांसी दे दी गई। उनकी रियासत के अनेक टुकड़े करके विभिन्न भागों में बाँट दिया गया। नारनौल, बावल तथा दादरी के प्रदेश अंग्रेजों ने अपनी सहायता करने वाले सिक्ख राजाओं, पटियाला, नाभा व जीन्द को दे दिये। नाहड़ का इलाका दुजाना के नवाब को भेंट कर दिया गया। १८२४ में रोहतक जिला वजूद में आया था, उससे पहले गोहाना, महम पानीपत में थे, और महम से ऊपर का प्रदेश सरसा में। पर विद्रोह के बाद पानीपत और सरसा के किले तोड़ दिये गये। झज्जर को चार साल बाद १८६२ में देहली से काट कर रोहतक के साथ मिला दिया गया और साथ ही बहादुरगढ़ को भी। नवाब झज्जर की सारी सम्पत्ति जब्त करके दिल्ली ले जाई गई तथा उनके कुटुम्बियों को थोड़ी थोड़ी पेन्शन दे दी गई। (और जब झज्जर को रोहतक जिले में मिलाया गया तथा रोहतक को आगरा से अलग करके सजा के तौर पर पंजाब में) तथा उन्हें लुधियाना व लाहौर भेज दिया गया जिससे कि वे दुबारा लोगों को अपने साथ न लगा लेवें। छुछकवास एक अंग्रेज पक्षपाती गोहाने के पठान को दे दिया गया। झज्जर की प्रसिद्ध नवाबी का इस तरह अन्त हुआ और नवाब की लाश को गड्ढे में फेंक दिया गया। जहाँ उसकी लाश को गिद्ध और चील खा गई। समय बड़ा बलवान् है। वह जो न करदे वही थोड़ा है। ठीक ९० साल बाद वे राजा और नवाब भी जन साधारण में आ मिले। जिन्होंने अपने भाइयों के विरुद्ध अंग्रेज का साथ दिया था। आज राव रंक सब बराबर हैं। सिर्फ उन लोगों के नाम में फर्क है, जहां वीर क्रान्तिकारियों की कहानियाँ इतिहास की अमर गाथाएँ बन गईं। वहां अंग्रेज शासकों का साथ देने वालों को अच्छे रूप में याद नहीं किया जायेगा।

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर वर्ष मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा॥

जलियां वाला बाग

(ब्र० महादेव सि० शास्त्री)

१३ अप्रैल सन् १९१९ के अनुसार वैसाखी के पवित्र दिन २० हजार भारत के वीरपुत्रों ने अमृतसर के जलियां वाले बाग में स्वाधीनता का यज्ञ रचा था। वहाँ आबाल वृद्ध सभी उपस्थित थे, सबने एक स्वर से स्वाधीनता की मांग की। इस पर अंग्रेजों को यह सहन न हुआ। अपने बल का प्रदर्शन करने बाग की ओर गये। वहाँ जाकर लगातार १५ मिनिट तक गोली वर्षा की। इस बाग के चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारें विद्यमान थीं। प्रवेश के लिए एक छोटा-सा द्वार था उसी द्वार पर उस बीच डायर ने मशीन लगवा दी। जब तक गोली थी तब तक चलवाता रहा। वहां रक्त की धारा बह चली। सरकारी समाचार के अनुसार ४०० व्यक्ति मृत तथा २००० के लगभग घायल थे।

कर्णपरम्परा से सुना जाता है कि नीच डायर ने यह कुकृत्य हिन्दुओं के द्वारा करवाया था। हिन्दू फौज आगे और इनके पीछे गोरखा फौज थी। इस गोलीकाण्ड में नीच कर्म यह किया गया कि मृत व घायलों को बाग में ही रातभर तड़फने दिया गया। इनकी मरहमपट्टी तो दूर की बात है किसी को पीने के लिए जल तक न दिया। वहाँ पास में कुँआ था उसमें अनेक व्यक्ति अपनी जान बचाने के लिए कूद पड़े। गोलीकाण्ड समाप्त हुआ तो उस कुँए में से लगभग सवासौ शव निकाले गये! इस प्रकार इस कुँए की मृतकूप संज्ञा पड़ गई।

हत्यारे डायर ने हण्टर कमीशन के सामने स्वयं बड़े गर्व से कहा था कि मैंने बड़ी भीड़ पर १५ मिनिट तक बड़ी धूवांधार गोलियां चलाईं। मैंने भीड़ हटाने का प्रयास नहीं किया, मैं बिना गोलियां चलाये भीड़ को हटा सकता था पर इसमें लोग मेरी हंसी करते। कुल गोलियां १६५० चलाई थीं। गोली बरसाना तब तक किया जब तक कि वह समाप्त न हो गई। और साथ ही यह भी स्वीकार किया कि मृतकों को उठाने व उनकी मदद करने का कोई प्रबन्ध नहीं किया। इसका कारण बताते हुए कहा—उस समय उन घायलों की मदद करना मेरा कर्तव्य नहीं था। डायर की इस क्रूरता को पंजाब के शासक सर माईकेल ओडायर ने न केवल उचित ही ठहराया अपितु तार द्वारा प्रशंसा की सूचना दी कि आपका कार्य ठीक था। लैफ्टिनैन्ट गवर्नर उसकी सहायता करते हैं।

सन् १८५७ के बाद गोरखा सरकार का सबसे बड़ा अत्याचार यह गोलीकांड था। इस दुःखद घटना के बाद भारतीयों को बर्बरतापूर्ण तथा अमानुषिक सजायें दी गईं। अमृतसर का पानी बन्द कर दिया बिजली के तार काटे गये। खुले सड़कों पर कोड़ों से भारतीयों को मारा गया। यहां तक कि रेल का तीसरी श्रेणी का टिकट बन्द कर भारतीय यात्रियों का आना-जाना बन्द कर दिया।

इसी बाग में सबके साथ उधमसिंह का पिता भी शहीद हो गया था। इसका बदला लेने के लिए वह इंग्लैंड गया। वहाँ एक सभा में एक दिन वह नीच डायर भाषण दे रहा था। भाषण में वह कह रहा था कि मैंने भारतवर्ष में इस प्रकार के अत्याचार ढाये हैं। इतने में वीर उधमसिंह ने अपनी पिस्तौल का निशाना बनाकर उसका काम तमाम कर दिया। इस प्रकार इस वीर ने अपने पिता व भारत पर किये गये अत्याचारों का बदला ले लिया। अन्त में अदालत में वीर उधमसिंह को इस अपराध में फांसी पर लटका कर अमर शहीद की पंक्ति में भरती कर दिया गया।

जलियां वाले में प्रवाहित शहीदों का रक्त वृथा नहीं गया। शहीदों के रक्त द्वारा सींचा हुआ यह स्वाधीनता का कल्पवृक्ष फूलता हुआ १५ अगस्त सन् १९४८ को पल्लवित हुआ।

सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम के अमर सेनानी

हरयाणा प्रान्त के महान् योद्धा राव राजा तुलाराम

(श्री रवीन्द्रनाथ शास्त्री)

इस असार संसार में कितने ही मनुष्य जन्म लेते हैं और अपना सांसारिक जीवन समाप्त कर मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। किन्तु संस्कृति के एक कवि का वचन है:—

"परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥"

अर्थात् इस संसार में वह मनुष्य ही पैदा हुआ है, जिसके पैदा होने से वंश वा जाति उन्नति को प्राप्त होती है। वैसे तो इस संसार में कितने ही नर पैदा होते हैं और मरते हैं। इस वचन के अनुसार रेवाड़ी के राव राजा तुलाराम अपनी उदात्त कार्यावली से अपने प्रान्त एवं जाति को प्रकाशित कर गये।

आज से १०१ वर्ष पूर्व, जब कि ऋषियों एवं महान् योद्धाओं की पवित्र भूमि भारत विदेशी अंग्रेज जाति द्वारा पददलित की जा रही थी और अंग्रेज जाति इस राष्ट्र की फूट की बीमारी का पूर्ण लाभ उठाकर अपनी कूटनीति द्वारा इस राष्ट्र के विशाल मैदानों की स्वामिनी बन बैठी थी। इस विदेशी जाति ने मुसलमान बादशाहों एवं हिन्दू राजाओं को अपनी कूटनीति से बुरी तरह कुचला और इतना कुचला कि वे अपनी वास्तविकता को भूल से गये। किन्तु किसी जाति के अत्याचार ही दूसरी जाति को आत्म-सम्मान एवं आत्म-गौरव के रक्षार्थ प्रेरित करते हैं।

ठीक, इसी समय जब कि अंग्रेज जाति भारतीय जनता पर लोम-हर्षण अत्याचार कर रही थी और भारतीय जनता इसका बदला लेने की अन्दर ही अन्दर तैयारी कर रही थी। रविवार १० मई १८५७ को चरबी वाले कारतूस के धार्मिक जोश की आड़ में मेरठ में भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा बुलन्द कर ही तो दिया। प्रसुप्त भावनायें जाग उठीं, देश ने विलुप्त हुई स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करने के लिये करवट बदली, राजवंशों ने तलवार तान स्वतन्त्रता देवी का स्वागत किया, समस्त राष्ट्र ने फिरङ्गी को दूर करने की मन में ठान ली।

भला, इस शुभ अवसर को उपस्थित देख स्वाधीन भावनाओं के आराधक राव राजा तुलाराम कैसे शान्त बैठते? उन्होंने भी उचित अवसर देख स्वतन्त्रता के लिये शंख ध्वनि की। वीर राजा तुलाराम की ललकार को सुन हरयाणा के समस्त रण बांकुरे स्वतन्त्रता के झण्डे के नीचे एकत्रित हो, अपने यशस्वी नेताओं के नेतृत्व में चल दिये, शत्रु से दो हाथ करने के लिये दिल्ली की ओर।

जब राव तुलाराम अपनी सेना के साथ दिल्ली की ओर कूच कर रहे थे, तो मार्ग में सोहना और तावड़ू के बीच अंग्रेजी सेना से मुठभेड़ हो गई, क्योंकि फिरंगियों को राव तुलाराम के प्रयत्नों का पता चल गया था। दोनों सेनाओं का घमासान युद्ध हुआ। आजादी के दीवाने दिल खोलकर लड़े और मैदान जीत लिया। मि० फोर्ड को मुँह की खानी पड़ी और उसकी सारी फौज नष्ट हो गई और वह स्वयं दिल्ली भाग गया।

उधर मेरठ में स्वाधीनता यज्ञ को आरम्भ करने वाले राव राजा तुलाराम के चचेरे भाई राव कृष्ण गोपाल जो नांगल पठानी (रेवाड़ी) के राव जीवाराम जी के द्वितीय पुत्र थे और मेरठ में कोतवाल पद पर थे, उन्होंने समस्त कैदखानों के दरवाजों को खोल दिया तथा नवयुवकों को स्वतन्त्रता के लिये ललकारा और समस्त वीरों को स्वाधीनता के झण्डे के नीचे एकत्रित किया। अपने साथियों सहित जहाँ अंग्रेज विद्रोह का दमन करने के लिये परामर्श कर रहे थे, उस स्थान पर आक्रमण किया तथा समस्त अंग्रेज अधिकारियों का सफाया कर दिया, और फिर मार-धाड़ मचाते अपने साथियों सहित दिल्ली की तरफ बढ़े।

दिल्ली आये। भारत के अन्तिम मुगल सम्राट् श्री बहादुरशाह के समीप पहुँचे। अकबर, जहांगीर आदि के चित्रों को देख-देख ठण्डी आहें भर कर, अपने पूर्वजों के वैभव को इस प्रकार लुटता देख बहादुरशाह चित्त ही चित्त में अपने भाग्य को कोसा करता था। आज उसने सुना, कि कुछ भारतीय सैनिक मेरठ में स्वाधीनता का दीपक जलाकर तेरे पास आये हैं। उसका सोया हुआ मुगल-शौर्य जाग उठा। तुरन्त वीर सेनापति कृष्णगोपाल ने आगे बढ़कर कहा—"जहांपनाह! उठो, अपनी तलवार सम्भालो, अपना शुभाशीर्वाद दो, जिस से हम अपनी तलवार द्वारा भारत भूमि को फिरंगियों से खाली कर दें।" बादशाह ने डबडबाई सी आंखें खोल कर कहा—"मेरे वीर सिपाही! क्या करूँ? आज मेरे पास एक सोने की ईंट भी नहीं, जो तुम्हें पुरस्कार रूप में दे सकूं।"

वीर कृष्णगोपाल साथियों सहित गर्ज उठे—"महाराज हमें धन की आवश्यकता नहीं है हम इस प्रशस्त मार्ग में आपका शुभाशीर्वाद चाहते हैं, हम संसार के धन-दौलत को अपनी तलवार से जीत कर आपके चरणों पर ला डालेंगे।"

वीर की सिंह गर्जना सुनकर वृद्ध बादशाह की आंखें अश्रुपूर्ण हो गई और कह ही तो दिया कि—

"गाजियों में बू रहेगी तब तलक ईमान की।
तख्ते लन्दन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की॥"

राव कृष्णगोपाल को जब यह समाचार मिला, कि रेवाड़ी में राजा तुलाराम स्वतन्त्रता के लिए महान् प्रयत्न कर रहे हैं, तो वे स्वयं अपने साथियों सहित रेवाड़ी पहुँच गये। उन्हीं दिनों मि० फोर्ड से युद्ध के ठीक उपरान्त राजा तुलाराम ने अपने प्रान्त की एक सभा बुलाई। इस सभा में महाराज अलवर राजा बल्लभगढ़, राजा निमराणा, नवाब झज्जर, नवाब फरुखनगर, नवाब पाटौदी, नवाब फिरोजपुर झिरका शामिल हुये। राजा तुलाराम ने अपने विशेष मित्र महाराज जोधपुर को विशेष रूप से निमन्त्रित किया। परन्तु उन्होंने राव तुलाराम को लिख कर भेज दिया, कि अंग्रेज बहादुर से लोहा लेना कोई सरल कार्य नहीं है। नवाब फरुखनगर, नवाब झज्जर, एवं नवाब फिरोजपुर झिरका ने भी नकारात्मक उत्तर दे दिया। इस पर उनको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने सभा में ही घोषणा कर दी कि "चाहे कोई सहायता दे या न दे, वह राष्ट्र के लिए कृत-प्रतिज्ञ है।" अपने अन्य वीर साथियों की तरफ देखकर उनका वीर हृदय गर्ज उठा—"हे भारत माता! मैं सब कुछ तन, मन, धन तुम्हारी विपत्तियों को नष्ट करने में समर्पित कर दूंगा। यही मेरी धारणा है। भगवान् सूर्य! मुझे प्रकाश दो, भूमि जननी! गम्भीरता दो, वायु शान्ति दो, और दो बाहुओं में अपार बल, जो सच्चे चरित्र के नाम पर मर मिटे तथा मार भगाये कायरता को हृदय मन्दिरों से।" आओ वीरो! अब सच्चे क्षत्रियत्व के नाते इस महान् स्वाधीनता युद्ध

(यज्ञ) को पूरा करें।" उनकी इस गर्जना से प्रभावित होकर उपरोक्त राजा, नवाबों के भी पर्याप्त मनचले नवयुवक योद्धा राजा तुलाराम की स्वाधीनता सेना में सम्मिलित हो गये। जिन में नवाब झज्जर के दामाद समदखाँ पठान भी थे।

राजा तुलाराम ने अंग्रेजों के विरुद्ध और नई सेना भी भरती की और स्वातन्त्र्य-संग्राम को अधिक तेज कर दिया। उन्होंने अपने चचेरे भाई गोपालदेव को सेनापति नियत किया। जब अंग्रेजों को यह ज्ञात हुआ कि राव तुलाराम हम से लोहा लेने की पुरजोर तैयारी कर रहे हैं और आस-पास के राजाओं एवं नवाबों को हमारे विरुद्ध उभार रहे हैं; तो मि० फोर्ड के नेतृत्व में पुनः एक विशाल सेना राव तुलाराम के दमन के लिये भेजी। जब राव साहब को यह पता चला कि इस बार मि० फोर्ड बड़े दलबल के साथ चढ़ा आ रहा है, तो उन्होंने रेवाड़ी में युद्ध न करने की सोच महेन्द्रगढ़ के किले में मोर्चा लेने के लिए महेन्द्रगढ़ की ओर प्रस्थान किया। अंग्रेजों ने आते ही गोकुलगढ़ के किले तथा राव तुलाराम के निवास-घर, जो रामपुरा (रेवाड़ी) में स्थित है, को सुरंगें लगा कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और तुलाराम की सेना के पीछे महेन्द्रगढ़ की तरफ कूच किया।

राव तुलाराम ने पर्याप्त प्रयत्न किया कि किसी प्रकार महेन्द्रगढ़ किले के फाटक खुल जावें, किन्तु दुर्ग के अध्यक्ष ठाकुर स्यालुसिंह कुतानी निवासी ने हजार विनती करने पर भी किले के द्वार आजादी के दीवानों के लिये नहीं खोले। (बाद में अंग्रेजों ने दुर्ग न खोलने के उपलक्ष्य में स्यालुसिंह को समस्त कुतानी ग्राम की भूमि प्रदान कर दी।)

वीर सेनापति तुलाराम दृढ़ हृदय कर, असफलताओं को न गिनते हुये नारनौल के समीप एक पहाड़ी स्थान नसीपुर के मैदान में साथियों समेत वक्षस्थल खोल कर रणस्थल में डट गये। अंग्रेजों के आते ही युद्ध ठन गया। भीषण युद्ध डटकर हुआ। रण-भेरियां बज उठीं। वीरों के खून में उबाल था। गगनभेदी जयकारों से तुमुल निनाद गुंजार करने लगा। साधन न होने पर भी सेना ने संग्राम में अत्यन्त रणकौशल दिखाया। रक्त-धारा बह निकली। नरमुण्डों से मेदिनी मण्डित हो गई। शत्रु सेना में त्राहि-त्राहि की पुकार गूंज उठी।

तीन दिन तक भीषण युद्ध हुआ। तीसरे दिन तो इतना भीषण संग्राम हुआ, कि हिन्दू कुल गौरव महाराणा प्रतापसिंह के घोड़े की भांति राव तुलाराम का घोड़ा भी शत्रु सेना को चीरते हुए अंग्रेज अफसर (जो काना साहब के नाम से विख्यात थे) के हाथी के समीप पहुँचा। पहुँचते ही सिंहनाद कर वीरवर तुलाराम ने हाथी का मस्तक अपनी तलवार के भरपूर वार से पृथक् कर दिया। दूसरे प्रहार से काना साहब को यमपुर पहुंचाया।

काना साहब के धराशायी होते ही शत्रु सेना में भगदड़ मच गई। शत्रु सेना तीन मील तक भागी। मि० फोर्ड भी मैदान छोड़ भागे और दादरी के समीप मोड़ी नामक ग्राम में एक जाट चौधरी के यहां शरण ली। (बाद में मि० फोर्ड ने अपनी शरण देने वाले चौधरी को जहाजगढ़ (रोहतक) के समीप बराणी ग्राम में एक लम्बी चौड़ी जागीर दी और उस गांव का नाम फोर्डपुरा रखा, वहां पर आजकल उस चौधरी के वंशज निवास करते हैं) परन्तु इस दौरान में पटियाला, नाभा, जीन्द एवं जयपुर की देशद्रोही नागा फौज के अंग्रेजों की सहायता के लिये आ जाने से पुनः भीषण युद्ध छिड़ गया। वीरों ने अन्तिम समय सन्निकट देखकर घनघोर युद्ध किया। परन्तु अपार सेना के समक्ष अल्प सेना का चारा ही क्या चलता? इसी नसीपुर के मैदान में राजा तुलाराम के महान् प्रतापी योद्धा, मेरठ में स्वाधीनता-यज्ञ को आरम्भ

करने वाले, अहीरवाल के एक-एक गांव में आजादी का अलख जगाने वाले, राव तुलाराम के चचेरे भाई वीर शिरोमणि राव कृष्ण गोपाल, एवं कृष्ण गोपाल के छोटे भाई वीरवर राव रामलाल जी और राव-किशनसिंह, सरदार मणिसिंह, मुफ्ती निजामुद्दीन, शादीराम, रामधनसिंह, समद खां पठान आदि आदि महावीर क्षत्रिय जनोचित कर्त्तव्य पालन करते हुए भारत की स्वातन्त्र्य बलिवेदी पर बलिदान हो गये। उन महान् योद्धाओं के पवित्र-रक्त से रञ्जित होकर नसीपुर के मैदान की वीरभूमि हरयाणा का तीर्थ-स्थान बन गई। दुःख है, कि आज उस युद्ध को समाप्त हुए एक शताब्दि हो गई किन्तु हरयाणा निवासियों ने आज तक उस पवित्र भूमि पर उन वीरों का कोई स्मारक बनाने का प्रयत्न ही नहीं, किया साहस भी न किया। यदि भारत के अन्य किसी प्रान्त में इतना बलिदान किसी मैदान में होता, तो उस प्रान्त के निवासी उस स्थान को इतना महत्व देते कि वह स्थान वीरों के लिये आराध्य-भूमि बन जाता। तथा प्रति-वर्ष नवयुवक इस महान् बलिदान-भूमि से प्रेरणा प्राप्त कर अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए उत्साहित होता।

आज मराठों की जीवित शक्ति ने सन् ५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध की अमर सेनानी लक्ष्मी बाई एवं तांत्या टोपे नाना साहब के महान् बलिदान को अंग्रेजों के प्रबल दमन चक्र के विपरीत भी समाप्त नहीं होने दिया। अंग्रेजों के शासन काल में भी उपर्युक्त वीरों का नाम भारत के स्वातन्त्र्य-गगन में प्रकाशित होता रहा। बिहार के बूढ़े सेनापति ठा० कुंवर सिंह के बलिदान को बिहार निवासियों ने जीवित रखा। जहां कहीं भी कोई बलिदान हुआ, किसी भी समय हुआ, वहां की जनता ने अपने प्राचीन गौरव के प्रेरणा प्रद बलिदानों को जीवित रखा। आज मेवाड़ प्रताप का ही नहीं, अपितु उसके यशस्वी घोड़े का "चेतक चबूतरा" बनाकर प्रतिष्ठित करता है। चूड़ावत सरदार के बलिदान को "जूझार जी" का स्मारक बना-कर जीवित रखे हुए हैं। परन्तु अपने को भारत का सबसे अधिक बलशाली कहने वाला हरयाणा प्रान्त अपने १०० वर्ष पूर्व के बलिदान को भूलाये बैठा है। यदि यह लज्जा का विषय नहीं है तो क्या है? जर्मनी के महान् विद्वान् प्रोफेसर मैक्समूलर लिखते हैं,— "A nation that forgets the glory of its past, loses the mainstay of its national character. "अर्थात् जो राष्ट्र अपने प्राचीन गौरव को भुला बैठता है, वह राष्ट्र अपनी राष्ट्रीयता के आधार स्तम्भ को खो बैठता है।" यही उक्ति हरयाणा के निवासियों पर पूर्णतया चरितार्थ होती है।

नसीपुर के मैदान में राव तुलाराम हार गये और अपने बचे हुये सैनिकों सहित रिवाड़ी की तरफ आ गये। सेना की भरती आरम्भ की। परन्तु अब दिन प्रतिदिन अंग्रेजों को पंजाब से ताजा दम सेना की कुमुक मिल रही थी।

निकलसन ने नजफगढ़ के स्थान में बरेली एवं नीमच वाली भारतीय सेनाओं के आपसी झगड़े से लाभ उठाकर दोनों सेनाओं को परास्त कर दिया। साराश यह है कि अक्तूबर १८५७ के अन्त तक अंग्रेजों के पांव दिल्ली और उत्तरी भारत में जम गये। अतः तुलाराम अपने नये प्रयत्न को सफल न होते देख बीकानेर, जैसलमेर पहुंचे। वहां से कालपी के लिए चल दिये। इन दिनों कालपी स्वतन्त्रता का केन्द्र बना हुआ था। यहां पर पेशवा नाना साहब के भाई राव साहब, तांत्या टोपे एवं रानी झांसी भी उपस्थित थी। उन्होंने राव तुलाराम का महान् स्वागत किया तथा उनसे सम्मति लेते रहे। इस समय अंग्रेजों को

बाहर से सहायता मिल रही थी। कालपी स्थित राजाओं ने परस्पर विचार विमर्श कर राव राजा तुलाराम को अफगानिस्तान सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से भेज दिया। राव तुलाराम वेष बदल कर अहमदाबाद और बम्बई होते हुए बसरा पहुंचे। इस समय इसके साथ श्री नाहरसिंह, श्री रामसुख एव सैय्यद नजातअली थे। परन्तु खाड़ी फारस के किनारे बुशहर के अंग्रेज शासक को इन्की उपस्थिति का पता चला गया, भारतीय सैनिकों की टुकड़ी जो यहां थी, उसने राव तुलाराम को सूचित कर दिया और वे वहाँ से बच कर सिराज की ओर निकल गये। सिराज के शासक ने उनका भव्य स्वागत किया और उन्हें शाही सेना की सुरक्षा में ईरान के बादशाह के पास तेहरान भेज दिया। तेहरान स्थित अंग्रेज राजदूत ने शाह ईरान पर उनको बन्दी करवाने का जोर दिया, शाह ने निषेध कर दिया। तेहरान में रूसी राजदूत से राव तुलाराम की भेंट हुई और उन्होंने सहायता मांगी और राजदूत ने आश्वासन भी दिया परन्तु पर्याप्त प्रतीक्षा के पश्चात् राव तुलाराम ने अफगानिस्तान में ही भाग्य परखने की सोची। उनको यह भी ज्ञात हुआ कि भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम में भाग लेने वाले बहुत से सैनिक भागकर अफगानिस्तान आ गये हैं। राजा तुलाराम डेढ़ वर्ष पीछे तेहरान से अमीर काबुल के पास आ गये, जो उन दिनों कंधार में थे। वहां रहकर बहुत प्रयत्न किया परन्तु सहायता प्राप्त न हो सकी। राव तुलाराम को बड़ा दुःख हुआ और छः वर्ष तक अपनी मातृभूमि से दूर रहकर अपनी मातृभूमि की पराधीनता की जंजीरों को काटने के प्रयत्न में एक दिन काबुल में पेचिस द्वारा इस संसार से प्रयाण कर गये। उन्होंने वसीयत की कि उनकी भस्म रेवाड़ी और गंगा जी में अवश्यमेव भेजी जावे। ब्रिटिश शासन की ओर से १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम में भाग लेने वालों के लिए सार्वजनिक क्षमा-दान की सूचना पाकर उनके दो साथी राव नाहरसिंह व राव रामसुख वापस भारत लौट आये।

लेख को समाप्त करते हुए अन्तरात्मा रो उठती है, कि आज भारतीय जनता उस वीर शिरोमणि राव तुलाराम के नाम से परिचित तक नहीं। मैं डंके की चोट कहता हूं, कि यदि झांसी की लक्ष्मीबाई ने स्वातन्त्र्य-संग्राम में सर्वस्व की बलि दे दी, यदि तांत्या टोपे एवं ठा० कुँवरसिंह अपने को स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर उत्सर्ग कर गये। यदि यह सब सत्य है तो यह भी सुनिर्धारित सत्य है, कि सन् १८५७ के स्वातान्त्र्य-महारथियों में राव तुलाराम का बलिदान भी सर्वोपरि है। किन्तु हमारी दलित भावनाओं के कारण राजा तुलाराम का बलिदान इतिहास के पृष्ठों से ओझल रहा। आज भी अहीरवाल में जोगी एवं भाटों के सितारे पर राजा तुलाराम की अमर गाथा सुनी जा सकती है। किं बहुना, एक दिन उस वीर सेनापति राव तुलाराम के स्वतन्त्रता शंख फूंकने पर अहीरवाल की अन्धकारावृत झोंपड़ियों में पड़े बुभुक्षित नर कंकालों से लेकर रामपुरा (रेवाड़ी) के गगनचुम्बी राजप्रासादों की उत्तुंग अट्टालिकाओं में विश्राम करने वाले राजवंशियों तक ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध किये जा रहे स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में अपनी तलवार के भीषण वार दिखाकर क्रियात्मक भाग लिया था। आज भी रामपुरा एवं गोकुलगढ़ के गगन-चुम्बी पुरातन खंडहराविशेष तथा नसीपुर के मैदान की रक्त रंजित वीर भूमि इस बात की साक्षी दे रहे हैं, कि वे अपने कर्त्तव्य पालन में किसी से पीछे नहीं रहे।

इस प्रान्त को स्वातन्त्र्य-युद्ध में भाग लेने का मजा तुरन्त ब्रिटिश सरकार ने चखा दिया। राव तुलाराम के राज्य की कोट कासिम की तहसील जयपुर को, तिजारा व बहरोड़ तहसील अलवर को

नारनौल व महेन्द्रगढ़ पटियाला को, दादरी जीन्द को, बावल तहसील नाभा को. कोसली के आस-पास का इलाका जिला रोहतक में और नाहड़ तहसील के चौबीस गांव नवाब दुजाना को पुरस्कार रूप में प्रदान कर दिया। यह था अहीरवाल का स्वातन्त्र्य-संग्राम में भाग लेने का परिणाम, जो हमारे संगठन को अस्त-व्यस्त करने का कारण बना। और यह एक मानी हुई सच्चाई है कि आज अहीर जाति का न तो पंजाब में कोई राजनैतिक महत्त्व है, और न राजस्थान में। सन् १८५७ से पूर्व इस जाति का यह महान् संगठन रूपी दुर्ग खड़ा था, तब था भारत की राजनीति में इस प्रान्त का अपना महत्त्व।

अन्त में मै भारतवर्ष के स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास लेखकों से यह आशा करता हूं कि वे भारत के नवीन इतिहास में इस वीर प्रान्त की आहुति को उपयुक्त स्थान देना न भूलेंगे।

सर्वखाप पञ्चायत की—

बलिदान-गाथा

(श्री जगदेवसिंह शास्त्री सिद्धान्ती)

वर्तमान सृष्टि के आरम्भ काल में ही आर्य्यावर्त्त में मानव जाति ने वास कर लिया था। समयानुसार आर्य्यावर्त्त भारत नाम से विख्यात हुआ। इस प्रकार भारतीय राष्ट्र का इतिहास अति प्राचीन है। गत करोड़ वर्षों के समय में न जाने कितने उलट-फेर हमारे देश में हुए हैं। अनेक बार राज्य क्रांतियां हुईं। इतने पुराने राष्ट्र का सम्पूर्ण और क्रमबद्ध इतिहास मिलना सम्भव नहीं। अत्यन्त प्रसिद्ध गाथाओं का वर्णन ही मिल सकता है जो कि रामायण, महाभारत ब्राह्मण ग्रन्थों और गणपाठ आदि में खोजा जा सकता है। काल क्रम से विदेशी आक्रान्ता भारत में आये। अरब और अंग्रेज आदि भी आये। भारतियों का इन विदेशियों से घोर संघर्ष रहता रहा। इस संघर्ष में अनेक वीरों और वीराङ्गनाओं ने राष्ट्र और धर्म रक्षा के लिये अपने प्राणों की बलि चढाई है। वीरों की बलिदान-गाथओं से इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। मुसलमानी शासन काल में धर्म रक्षार्थ आर्य जाति के महायोद्धा वीरों ने अद्भुत बलिदान दिये हैं। अंग्रेजी शासन काल में राष्ट्र की पराधीनता की बेड़ियों को काटने और स्वतन्त्रा प्राप्ति के निमित्त सहस्रों वीरों ने प्राणों की आहुति देकर भारतीय राष्ट्र का गौरव बढाया है। इन बलिदान गाथाओं का कुछ इतिहास लिखित और प्रकाशित रूप में उपलब्ध होता है, जिसके कारण भारतीय राष्ट्र का माथा संसार में ऊँचा है। परन्तु कुछ बलिदान-गाथाओं का इतिहास प्रकाशित रूप में हमारे सामने नहीं, वह हस्तलिखित रूप में अप्रकाशित पड़ा है। इसी अप्रकाशित इतिहास से दो एक बलिदान-गाथाओं का वर्णन सुधारक के इस "बलिदान विशेषाङ्क" में दिया जाता है।

भारतीय राष्ट्र में गणतन्त्र शासन प्रणाली सदा प्रचलित रही है। और भारत में तो गणों का शासन सदा से ही चलता आया है। गण का ही एक पर्यायवाची शब्द "खाप" है। हरयाणा में खाप शब्द का प्रचलन बहुत समय से चला आ रहा है। देहली के चारों ओर का कई सहस्र वर्ग मील का क्षेत्र हरयाणा कहलाता आया है। यहाँ सदा गणतन्त्री शासन रहा है। अनेक गणों के संघ को ही

"सर्वखाप" कहा जाता है। इस क्षेत्र में गणतन्त्र शासन का मूल पंचायत प्रणाली रही है। पंचायतें सामाजिक और आर्थिक आधार पर शासन पद्धति को चलाती रही हैं। इसी गण-संघ के शासन तन्त्र को सर्वखाप पंचायत प्रणाली नाम से पुकारा जाता है। इस प्रणाली में राजाओं का नहीं किन्तु जनता का मान मुख्य होता है। वर्तमान समय में हर्षवर्धन के काल सेलेकर विक्रम के सं० १९१४ का जनतन्त्री इतिहास सर्वखाप पंचायत के हस्तलिखित वर्णनों में अप्रकाशित पड़ा है। इस हस्तलिखित का बहुमूल्य भाग बिखरे पृष्ठों में ग्राम शोरों जि० (मुजफ्फरनगर) निवासी एक किसान स्वनामधन्य चौ० कबूलसिंह जी के घर में सुरक्षित है। चौ० कबूलसिंह के पूर्वजों ने शिर कटवाकर भी इस इतिहास की रक्षा की है। हमने इन ऐतिहासिक मोतियों को स्वयं देखा और पढ़ा है। देहली से ६ वर्ष तक प्रकाशित होते रहे साप्ताहिक "सम्राट्" में उक्त चौधरी साहिब कुछ अमर गाथाओं को प्रकाशित करवाते रहे हैं। उन्हीं गाथाओं में से कुछ अंश वर्तमान लेख में दिया जाता है।

१—विक्रमी सम्वत् १३०९ की घटना है देहली के फिरोजशाह बादशाह ने जब साम्प्रदायिक आधार पर जनता के धार्मिक कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाया और प्रतिबन्ध को मनवाने के लिए अत्याचार किये, तब सर्वखाप पंचायत ने इन शाही अत्याचारों को दूर करवाने के लिये एक बलिदान-दल बनाया और हरयाणा के स्वयं सेवक योद्धा वीरों की सेना में से २१० वीरों को छांटकर बादशाह के दरबार में देहली भेजा। सर्वखाप पंचायत में सम्प्रदाय और जाति विरादरी के भेद-भाव बिना सब लोग सम्मलित थे। इन २१० वीरों में वर्तमान जाति भेद के आधार पर निम्नलिखित रूप में बलिदान दल में एकत्र हुए थे—६२ जाट, २५ ब्राह्मण, १५ अहीर १५ गूजर, १५ राजपूत, १० वैश्य, ९ (वर्तमान) हरिजन, ८ बढ़ी, ६ लुहार, ५ सैनी, ५ जुलाहे, ५ तेली, ४ कुम्हार, ४ खटीक, ४ रोड़, ३ रवे, ३ धोबी, २ नाई, २ जोगी, २ गोसाईं और २ कलाल। इन वीरों ने सर्वखाप पंचायत के नेताओं से आशीर्वाद लिया और घर से चल पड़े। तात्कालिक साम्प्रदायिक विश्वास के अनुसार कार्तिक पूर्णिमा को गढ़मुक्तेश्वर में गङ्गा-स्नान करके देहली को प्रस्थान किया। इनके साथ १५० अन्य व्यक्ति भी चले जो कि देहली के समाचार को पंचायत के नेताओं तक पहुंचाने पर नियुक्त किये गये थे। मार्ग में इस बलिदाता वीर-दल को देखकर जनता में जोश और रोष बढ़ता जाता था। यह जत्था सं० १३०९ वि० मार्ग शीर्ष कृष्णाष्टमी को "जन्म भूमि" की जय बोलता हुआ देहली के शाही दरबार में पहुंच गया। वहां इन वीरों ने सब से पूर्व बलि देने के लिये ५ अमर योद्धाओं को छांटा। इन महाबलिदाताओं के पवित्र नाम यह हैं—सदाराम ब्राह्मण, हरभजन जाट, रूड़ामल वैश्य, अन्तराम गूजर और बाबरा भंगी। यह पांचों वीर दरबार में के भीतर घुस गये। और २०५ बाहर जन्मभूमि के जयकारे लगाने लगे। बादशाह ने इनके जय-नाद को सुना और पांचों वीरों को देखकर कहा—"क्यों शोर करते हो।" वीर हरभजन ने आगे बढ़-कर कहा—

"जजिया हटाया जावे, मन्दिर और तीर्थों पर कर न लगाया जावे तथा धार्मिक कार्यों में बलात्कार न किया जावे।"

बादशाह के काज़ी मुईउद्दीन ने कहा—"तुम इस्लाम कबूल करो।"

हरभजन ने उत्तर दिया—"धर्म का सम्बन्ध आत्मा से है इसमें दबाव नहीं दिया जा सकता।"

काज़ी ने कहा—"क्या तुम धर्म पर प्राणों को कुर्बान कर दोगे ?"

सब वीरों ने एक साथ उच्च स्वर से उत्तर दिया—"हां हमारे लिए धर्म प्राणों से प्यारा है।"

तुरन्त अग्नि जलवा दी गई और काज़ी ने कहा—"सबूत दो।"

पाँचों वीरों ने धर्म का जय घोष किया और एक के पीछे दूसरा अग्नि में कूद कर अपने-अपने प्राणों की बलि धर्म रक्षार्थ चढ़ा गया। काज़ी ने शेष वीरों को बलात्कार अग्नि मे झोंक दिया।

उसी समय एक मुसलमान फकीर ने काज़ी की खुले शब्दों में निन्दा की और कहा कि बादशाह का हुक्म देश पर चलता है धर्म पर नहीं। धर्म का सम्बन्ध खुदा से है। यह अन्याय है। बादशाहत नष्ट हो जायगी। इस पर मुल्लाओं ने शोर मचाया और फकीर को काफिर कहकर २१० वीरों के साथ ही जला दिया। इस फकीर का नाम बूलाशाह था, जोनपुर में रहने वाला यूसुफजई नामक फिरके का एक बहादुर पठान मन्नूखा इस ज़ुल्म को बरदाश्त न कर सका और उसने काजी का शिर काट कर फेंक दिया और स्वयं भी पेट में छुरा भोंक कर बलिदान दे गया। इसी प्रकार सैयद, लोधी और मुगलों के समय में अनेक वीरों ने प्राणों का बलिदान दिया।

२—सं० १४७४ विक्रमी की वैशाखी अमावस्या के दिन कोताना (जि० मेरठ के पास सूर्य्योदय के समय २६२ आर्य देवियां यमुना में स्नान कर रही थीं। खिलजी वंश का एक सरदार कोताना का अधिकारी था। उसने कुछ सैनिकों को साथ लेकर उन वीराङ्गनाओं को जा घेरा। वे देवियां जाट, राजपूत और ब्राह्मण घरानों की थीं। वह जाफिर अली सरदार एक जाट लड़की को चाहता था। सब देवियों ने उन्हें आता देखकर शस्त्र सम्भाल लिये। उन देवियों में से एक लड़की ने सरदार से कहा—कि तुम एक बार हमारी बहिन की बात सुन लो। वह विषयी कीड़ा सरदार घोड़े से उतर कर उनके पास पहुँचा और उस लड़की को बीवी बनने के लिए कहा। वीरागना के कान में यह शब्द पड़े भी न थे कि क्षत्राणी वीरांगना ने पिशाच जाफिर अली का शिर काट कर फेंक दिया। सरदार के मरते ही वीर देवियों और पिशाचों में तलवारें चलने लगीं। देखते-देखते २६२ आर्य देविर्यां धर्म की बलि वेदी पर प्राणों की आहुति दे गईं। किसी नर पिशाच का हाथ अपने पवित्र शरीर पर नहीं लगने दिया।

बादशाह को जब यह सूचना पहुंची तो बचे हुए सैनिकों को कठोर दण्ड दिया और सर्वखाप पंचायत से माफी माँगी।

३—सं० १७२७ वि० में औरंगजेब ने अपने भाइयों भतीजों और पिता को ठिकाने लगाकर इस्लाम के नाम पर तलवार उठाई, कुरान के नाम पर नारा लगाया। कट्टर मुल्ला मौलवी और काजी उसके साथ हो गये। जिन्होंने रामगढ़ के युद्ध में शाहजहाँ और दारा का साथ दिया था, उनको नष्ट करने पर तुल गया। जसबन्तसिंह को अफगानिस्तान भेज दिया। चम्पतराय बुन्देला (जो पहले औरंगजेब का साथी था) से दी गई जागीर छीन ली गई। ओरछा के राजा पहाड़सिंह और सिख गुरुहरराय के पुत्रों को मृत्यु तक कारागार में रखा। शाहु के साथ यही अत्याचार किया गया। इन सब अत्याचारों को करके सर्वखाप पंचायत पर झपटा। सर्वखाप पंचायत ने भी दारा का साथ दिया था। सामगढ़ के युद्ध में सर्वखाप पंचायत के सैनिक औरंगजेब के विरुद्ध लड़े थे, औरंगजेब ने धोखा देकर सर्वखाप पंचायत के कुछ नेताओ को देहली बुलाया। जब वे नेता देहली पहुंचे तो कपट जाल से उनको पकड़वा लिया गया। पंचायत के नेताओं की शुभ नामावली यह है—

राव हरिराय, धूमसिंह, फूलसिंह, सीसराम, हरदेवसिंह, रामलाल, बलीराम, लालचन्द, हरिपाल, नवलसिंह, गंगाराम, चन्दूराम, हरसहाय, नेतराम, हरवंश, मनसुख, मूलचन्द, हरदेवा, रामनारायण

भोला और हरिद्वारी। इनमें १ ब्राह्मण, १ वैश्य, १ त्यागी, १ गूजर, १ सैनी, १ रवा, १ रोड़, ३ राजपूत और ११ जाट थे। ये सब बड़े वीर योद्धा, और शिक्षित नेता थे। क्योंकि इनको शुभ निमन्त्रण के नाम पर बुलवाया था, अतः इनकी देवियां तथा कुछ व्यक्ति भी साथ देहली पहुंचे थे। उस समय राव हरिराय (जो कि इन नेताओं का मुखिया था) और औरंगजेब की निम्न लिखित बातें हुईं।

औरंगजेब—तुम बागी हो, तुमने द्रोह किया है ?

राव हरिराय—आपकी बात मिथ्या है। निमन्त्रण देकर समझौते के लिए बुलाया और धोखा देकर पकड़वा लिया अब हमें बागी कहते हो ?

औरंग—तुमने दारा का साथ दिया था।

राव—हमने देश के बादशाह शाहजहां का साथ दिया था। दारा उसके साथ था।

औरंग—इस्लाम कबूल करो या मौत ?

राव—इस्लाम में क्या खूबी हैं ?

औरंग—इस्लाम खुदा का दीन है।

राव—क्या खुदा भी गलती करता है कि जो अपने दीन में सबको पैदा नहीं करता ? और खुदा के दीन के खिलाफ लोगों के घर में सन्तान क्यों होती है ? होती है तो हम निर्दोश हैं।

औरंग—खुदा कभी गलती नहीं करता।

राव—खुदा सच्चा है यह सही है तो तुम झूठे हो दोनों में एक झूठा जरूर है। यह दीन खुदा का दीन नहीं है। यह तेरा दीन है।

औरंग—मैं खुदा और पैगम्बर के हुक्म को मानता हूँ। दूसरे को नहीं। कुरान शरीफ खुदा की किताब है वह सच्चा है और सब झूठे हैं।

राव—मैंने कुरान को पढ़ा है और कई बार मुतायला किया है उसमें यह कहीं नहीं कहा गया कि—बाप को कैद करो। भाई-भतीजों को मारोमराओ। झूठ बोल कर तुमने दारा के साथ लड़ाई में अपने भाइयों से कहा था कि मुझे राज्य नहीं चाहिये मैं तो मुराद और शुजा का तरफदार हूँ। परन्तु तूने उन दोनों को भी मारा। फकीरी की जगह बादशाहत ली। बाप की आजादी छीनी। तेरे बाप शाहजहां ने पानी के दुःख में मुझे कहा कि "औरंगजेब ! तुझ से तो हिन्दू काफिर अच्छे, जो अपने विश्वास के कारण मरों को भी पानी देते हैं और तू "जिन्दा बाप को भी पानी नहीं देता।" क्या खुदा और रसूल का ऐसा हुक्म है ? हम इसको घोर अत्याचार समझते हैं। तूने अपने वंश का वध और मिट्टी खराब की। गाज़ी का खिताब लिया। जनता की दृष्टि में तू जालिम है।

औरंग—तुम काफिर और मगरूर हो मैं इस्लाम का खादिम हूँ।

राव—तू झूठा है। इस्लाम के नाम पर अत्याचार करता है। हम निहत्थे और निर्दोष हैं। तुम्हारे बुलाये हुए महमान हैं। हम आ गये। यदि कुछ साहस है तो तलवार पकड़। दीवान खास से बाहर हो जा। दो-दो हाथ कर। सारा पता चल जावेगा। हमारे साथ मेहमान की तरह बर्ताव न करने से तू जालिम और नामर्द है। तू भी अपने २१ जवांमर्दों को बुला ले और उन्हीं में तू शामिल हो जा। कुछ ही

समय में नतीजा मालूम पड़ जावेगा।

औरंग—तुम मेरे पिंजड़े में बन्द हो। निकल नहीं सकते निकलने। के दो ही रास्ते हैं इस्लाम या मौत। एक को मानना ही पड़ेगा।

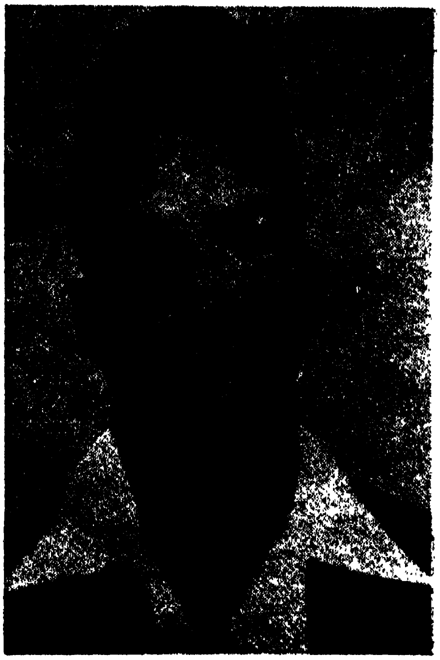
राव—आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है। नित्य है। यह शरीर हटा, दूसरा तैयार है। हम बार-बार ललकारते हैं। मर्दों की तरह मैदान में आकर वीरों की भांति युद्ध कर, तब ही बहादुर कहला सकते हो, नहीं तो कुत्तों के समान नीच हो, जो कि घर आये को फाड़ते हो। तुझे जो कुछ करना है कर। तेरे जीवन में ही तेरा बेड़ा गरक हो जावेगा।

उसी समय औरंगजेब के आदेश पर २१ वीरों को चान्दनी चौक में ले जाया गया और वे वीर सं० १७२७ वि० कार्तिक कृष्णा दशमी को मातृभूमि के लिए अपने प्राणों का बलिदान दे गये।

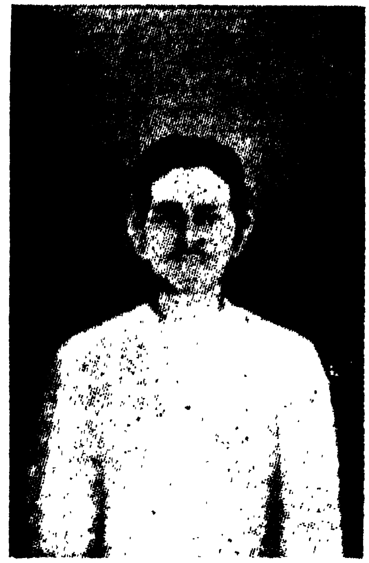
यह कुकृत्य दिन के १० बजे किया गया। राजा जयसिंह के बहुत कहने-सुनने पर मृतक शरीर पंचायत के लोगों को दे दिये गये। १ बजे इन वीरों की वीरांगनाओं ने भी अपने-अपने पति की जलत चिता में परिक्रमा पूर्वक अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी और सती हो गईं। देहली का राजघाट आज भी उन धधकती चिताओं की साक्षी दे रहा है।

इतने पर भी बस नहीं हुआ। राव हरिराय का बालकपन का साथी पीर नजफ अली सूफी ३३ वर्षीय ब्रह्मचारी था। वह पंचायत का बड़ा पक्षपाती था। उसने औरंगजेब को बहुत कठोर शब्द कहे और जालिम ठहराया। औरंगजेब ने इस फकीर को भी १०० कोड़े लगवाये और मैदान में फिकवा दिया। फकीर जब होश में आया तब पूछा—"मेरा प्यारा मित्र हरिराय कहां है?' पता चला कि २१ वीरों की उनकी पत्नियों सहित चितायें धू-धू करके औरंगजेबी कुकृत्य को दूर-दूर तक पहुंचा रही हैं। फकीर नजफ अली ने हरिराय की चिता को ७ बार परिक्रमा की और जलती चिता में साथी का साथ देकर न्याय की रक्षा के लिए अन्याय की भेंट चढ़ा गया।

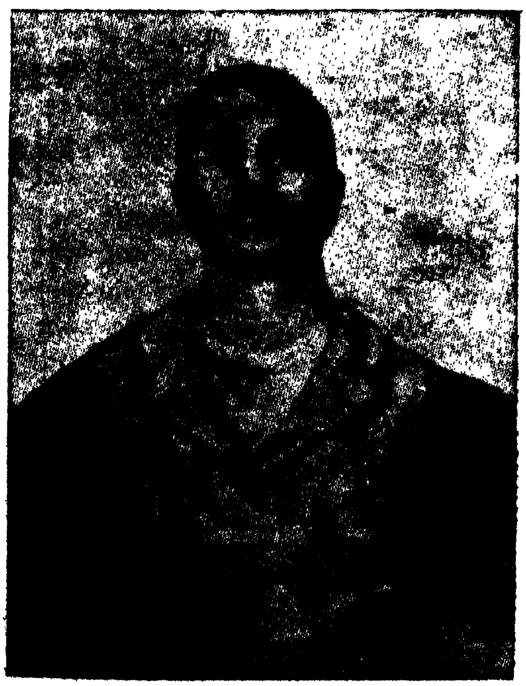
इस प्रकार भारत का इतिहास बलिदान गाथाओं से अँटा पड़ा है। चितौड़ गढ़ का साका वीर बन्दा वैरागी का बलिदान औरंगजेबी राज्य के बलिदानों की कथायें इतिहास में लिखी हुई हैं। हमने अनेक घटनाओं में से केवल ३ घटनायें हस्त लिखित अप्रकाशित सर्वव्याप्त पंचायत के इतिहास से दी हैं। इसमें मेरा कुछ नहीं। इसका सब श्रेय चौ० कबूलसिंह जी शोरों (मुजफ्फर नगर) इतिहास रक्षक को ही हैं।



शिवराम राजगुरु



श्री सत्येन्द्र कुमार वसु



श्री खुशीराम



पं० जवाहरलाल नेहरू



१८५७ में अंग्रेजों का निर्दय अत्याचार

लोहपुरुष—



आजादी का परवाना-



वीर विनायक सावरकर

महाराष्ट्र के वीरों का बलिदान

(आचार्य भगवान्देव)

महाराष्ट्र के चितपावन ब्राह्मणों के वंश ने अपनी प्रिय भारत माता की स्वतन्त्रतार्थ विदेशियों से संग्राम करते हुए अपने प्राणों की बलि हँसते-हँसते देकर इस वंश को भी भारत के इतिहास में अमर कर दिया। इस वंश के वीरों ने यवनों से वीरतापूर्ण विकट संग्राम करके आर्य भूमि को स्वतन्त्र किया और एक बार स्वतन्त्रता की पताका फहराई थी। इसी वंश के सेनापतियों ने अपने सुदृढ़ बाहुबल से शत्रुओं को परास्त कर सिन्धु नदी के पार अटक के दुर्गम दुर्ग पर आर्य जाति की धर्म ज्वाला का उत्तोलन किया था। इसी वंश के देशभक्तों ने १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम की रचना रचकर नीच फिरङ्गियों के अत्याचारों से पवित्र ऋषिभूमि भारत को विमुक्त करने के लिए आश्चर्यजनक वीरता दिखलाई थी। इसी वंश के युवक अपने क्रान्तिकारी वीरतापूर्ण बलिदान के कारण अंग्रेज अधिकारियों की आंखों में कांटे की भांति चुभते रहे। इसी वंश को प्रथम पेशवा "बालाजी पेशवा" ने सुशोभित किया। इसी वंश के सेनानी पेशवा बाजीराव भारत के प्रसिद्ध सेनापतियों की प्रथम श्रेणी में अपनी वीरता के कारण प्रतिष्ठित हुए। पानीपत के तृतीय संग्राम में विकट युद्ध मरने वाले सेनापति सदाशिवराव भाऊ ने भी इसी वंश में जन्म लिया था। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी वीर वासुदेव बलवन्तफड़के इसी वंश की कीर्ति को देश देशान्तर में फैलाने वाला था। अत्याचारी अंग्रेज अधिकारी को मृत्यु के विकराल गाल में पहुंचाने वाले चाफेकर बन्धु महाराष्ट्र में क्रान्ति के जन्म दाता इस वंश के वीर योद्धा थे। जस्टिस् रानाडे, गोखले और महात्मा तिलक समान सच्चे देशभक्तों को जन्म देने का गौरव भी इसी वंश के भाग्य में था। इसी वंश की शोभा को चार चांद लगाने वाले वीर विनायकराव सावरकर जी हैं जिन्हें क्रान्तिकारियों के राजकुमार और हुतात्मा का पद इनके विदेशी शत्रुओं ने दिया। अतः यह वंश अपने वीरों के बलिदान के कारण भारत के इतिहास में सदैव अमर रहेगा। मैं इस वंश के वीरों के बलिदान की सच्ची कहानी अपने पाठकों की सेवा में रखने का दुस्साहस करता हूँ।

सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम के पश्चात् अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति का अध्याय लगभग ४० वर्ष तक सुषुप्ति निद्रा के पङ्क में लेटा रहा। क्या हुवा कभी-कभी कूका बलिदान के समान कुछ क्रान्ति की घटनायें इस घोर निद्रा को तोड़ने का यत्किञ्चित् यत्न करती रहीं। किन्तु १८७२ से १८९७ तक २० वर्ष भारत देश मृत समान दिखाई देता था। सन् १८९३ से १८९५ तक प्रायः सारे भारत वर्ष में खूब हिन्दू-मुस्लिम झगड़े हुए अतः महाराष्ट्र के बम्बई पूना येवला आदि अनेक स्थानों में भी मुसलमानों ने पाशविक अत्याचार किये, अतः इन अत्याचारों ने महाराष्ट्र में उत्तेजना और जागृति उत्पन्न कर दी। हिन्दुत्व की भावना के ठाठ मारने लगे। सारे महाराष्ट्र ने १८९४ ई० में गणेशचतुर्थी के उत्सव को बड़े उत्साह से मनाना प्रारम्भ किया। दस दिन तक खूब चहल-पहल रही। इसी प्रकार १८९५ में शिवाजी जयन्ती महोत्सव जून मास में बड़े सामारोह पूर्वक मनाया गया। फिर इन उत्सवों को राष्ट्रीय रूप देकर महाराष्ट्र के लोग प्रति वर्ष उत्साह पूर्वक मनाने लगे। इन उत्सवों में अनेक प्रकार के वीरतापूर्ण खेल, लाठी, गदका, तलवारादि के होते थे। जुलूस में इस प्रकार वीरता पूर्ण खेल का प्रदर्शन करते हुए बड़े-बड़े अखाड़े निकलते थे।

लोकमान्य महात्मा तिलक

(आचार्य भगवान्देव)

रत्नागिरि जिले के दापोली तालुके में चिबल नामक ग्राम में बाल गंगाधर तिलक ने जन्म लिया। इनके पिता का नाम गंगाधर पन्त था। वे बहुत निर्धन ब्राह्मण थे। वे अध्यापक होने से गंगाधर शास्त्री नाम ने पुकारे जाते थे। इनके ५ रुपये से प्रारम्भ होकर १५ रुपये तक वेतन पहुंचा था। तिलक की कई बड़ी बहनें थीं अतः परिवार के लोग इन्हें छोटा होने से बाल नाम से बुलाते थे। पाठशाला में भी यही नाम प्रचलित हो गया था। इनके पिता जी ने बाल्यावस्था में ही अपने पुत्र तिलक को बहुत से श्लोक याद करवा दिये थे। गणित और संस्कृत की इतनी योग्यता घर पर ही प्राप्त कर ली थी कि पाठशाला में बालक-तिलक को अध्यापकों से कुछ भी सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ी। आपकी बड़ी कुशाग्रबुद्धि थी, आप स्वभाव से हठी थे और अन्याय का विरोध करने का आपका स्वभाव बाल्यकाल से ही बन गया था अनेक बार इसके लिये आपको बाल्यकाल में ही दंड भी सहन करना पड़ा।

हाईस्कूल से मैट्रिक परीक्षा पास करके आप डेक्कन कालिज में प्रविष्ट हुए। आपका १४ वर्ष की आयु में ही विवाह कर दिया गया। अपने माता-पिता के आगे संसार के आगे न झुकने वाला तिलक भी झुक गया। यदि इनका बाल्यकाल में विवाह न हुआ होता तो यह महापुरुष न जाने अपने जीवन में क्या कुछ कर दिखाता। आपका शरीर बहुत कृश और दुर्बल था और आपकी नवविवाहिता पत्नी सत्यभामा-बाई आपकी अपेक्षा अधिक बलवती और सुदृढ़ शरीर की थी। इसलिये कालेज के शरारती सहपाठी विद्यार्थी तिलक को निर्बल शरीर होने के कारण चिढ़ाते और अपमान करते रहते थे। इस अपमान के कारण तिलक ने मन में दृढ़ निश्चय किया कि "शरीर को सुदृढ़ और बलवान् बनाना है।" इस निश्चय के अनुसार एक वर्ष में ही नियमित व्यायामादि से आप का शरीर सुन्दर और बलवान् हो गया। छाती चौड़ी हो गई चेहरा भर गया और शरीर की मांसपेशियां सुदृढ़ हो गईं। नियमित रूप से व्यायाम और पौष्टिक भोजन से आपके शरीर का प्रत्येक अंग तेजस्वी हो गया। दुर्बलता दूर भाग गई। फिर आप पढ़ने में जुट गये।

सन् १८७६ में डेक्कन कालेज पूना से आप बी० ए० परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए और बम्बई जाकर सन् १८७९ में 'वकालात' की परीक्षा पास की। इनके साथी आगरकर थे। इन दोनों ने देश सेवा का व्रत लिया। इन्हीं दिनों श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर सरकारी नौकरी छोड़कर पूना आये। उन्होंने पूना में अंग्रेजी स्कूल खोला, उसमें ही तिलक और आगरकर जुट गये। इनके सहयोग से वह 'न्यू इंगलिश स्कूल' अच्छी उन्नति कर गया।

इस स्कूल में श्री तिलक तथा उनके साथी अध्यापक महाराष्ट्र के तरुण विद्यार्थियों को स्वावलम्बन देशभक्ति और त्याग की शिक्षा देते थे। लोकमान्य तिलक का जीवन-व्यवसाय शिक्षक होना नहीं था। वे वैज्ञानिक शिक्षक होने के विरोधी थे। वे तो केवल राष्ट्रीयता का सन्देश देने का उपाय सोचने लगे।

'केसरी' पत्र का प्रारम्भ

साधारण जनता में देशभक्ति का प्रचार करने के लिए "मराठा" और "केसरी" दो साप्ताहिक-पत्र चालू किये। इस कार्य में आपने बड़ी तपस्या की। केसरी थोड़े ही समय में सारे महाराष्ट्र में छा गया। केसरी सदैव अन्याय के विरुद्ध युद्ध करता रहा। इसी कारण अंग्रेजी सरकार से बार-बार केसरी को टक्कर लेनी पड़ी। केसरी ने कोल्हापुर राज्य में ब्रिटिश एजेन्ट द्वारा किये अत्याचारों के समाचार छापे। केसरी पर मानहानि का मुकद्दमा चला। अदालत ने दोनों तरुण सम्पादकों को ४ मास के कारावास का दंड दे दिया। जनता की दृष्टि में दोनों निर्दोष थे। लोकमान्य तिलक और आगरकर जेल में भेज दिये गये। दोनों को खूब कष्ट दिये गये। यह पहली जेलयात्रा थी। जेल से लौटकर 'न्यू इंगलिश स्कूल' के संचालकों से मतभेद होने से लोकमान्य तिलक ने अपनी मण्डली सहित त्यागपत्र दे दिया। आपने 'केसरी' और 'मराठा' पत्रों के संचालन में पूर्ण शक्ति लगाई। किन्तु इन पत्रों से लाभ नहीं था। अतः ७ सहस्र रुपये का ऋण हो गया। केसरी को कभी भी आपने अपनी आजीविका का साधन नहीं बनाया यह उनके विचारों के प्रचार का साधन था।

"सुधारक" पत्र का प्रारम्भ

लोकमान्य तिलक ने ४ जनवरी १८८१ ई० से दो साप्ताहिक पत्र निकालने प्रारम्भ किये; एक 'केसरी' मराठी भाषा में और दूसरा 'मराठा' नामक साप्ताहिक पत्र अंग्रेजी में। लोकमान्य तिलक की लेखनी ने ब्रिटिश सरकार की इतनी तीव्र आलोचना की, कि जिसके कारण सरकार ने इनको तथा इनके एक साथी आगरकर को १७-८-१८८२ ई० में चार मास का कारावास दण्ड दिया।

इनके पश्चात् तिलक महाराज ने सन् १८८८ ई० में "सुधारक" नाम से एक और पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया। इस पत्र को पढ़कर जनता ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। "सुधारक" की श्रेष्ठता और मौलिकता को देखकर हरिभाऊ आप्टे ने कहा था कि 'यह काम लोकमान्य तिलक जी की शोभा के अनुरूप ही है।"

"सुधारक" निकालने का उद्देश्य महात्मा तिलक के साथी श्री आगरकर ने एक अग्रलेख (सम्पादकीय लेख) में इस प्रकार लिखा था—

"हिन्दुस्तान आधिभौतिक सम्पत्ति में किसी देश से कम नहीं है परन्तु अंग्रेजी राज्य की विद्यमानता में हमारा व्यक्तित्व और राष्ट्रीय जीवन सांचे में ढाले हुए फौलाद अथवा निबिड शृंखलाबद्ध बन्दी की तरह है। यह हमारी अवस्था प्राचीन-शिक्षा मिलने के कारण बदलने लगी है। प्राचीन शिक्षा में मनुष्यों को बदलने के अनेक तत्त्व हैं। समाज में सुखी रहकर उसकी उन्नति करने में जितने बन्धन आवश्यक हैं उनको स्थिर रखकर शेष सब बातों में सभी स्त्री-पुरुष स्वतन्त्रतापूर्वक उपभोग करें यह प्राचीन और अर्वाचीन सुधार का मुख्य तत्त्व है। किन्तु जिसके अन्तःकरण में अंग्रेजी सभ्यता ने घर कर लिया है उसको हमारी समाज व्यवस्था में अनेक दोष दीखते हैं। इन दोषों का निराकरण करना और दूर करने के उपाय बतलाना तथा यूरोपीय सभ्यता का अनुकरण करने से क्या-क्या हानियाँ हैं यह बार-बार प्रकट करना इस "सुधारक" पत्र के चलाने का मुख्य उद्देश्य है।"

इससे ज्ञात होता है कि तिलक महाराज यूरोप की नई रोशनी के पीछे अन्धाधुन्ध चलने वाले भारतीयों को इससे बचाना चाहते थे और भारतीय संस्कृति को अपनाने पर जोर देते थे। क्योंकि वे समझते थे कि यूरोपीय सभ्यता के अनुकरण से भारतीयों की महती विनष्टि है। इसके सुधार की भावना से प्रेरित होकर ही आपने "सुधारक" पत्र निकालना प्रारम्भ किया था।

हिन्दू संगठन कार्य

देश में सर्वत्र हिन्दू मुस्लिम उपद्रव हुए। यह सब अंग्रेजी सरकार के संकेत पर हो रहा था। मुसलमान हिन्दुओं के त्योहारों, उत्सवों में बाधा डालते थे। हिन्दू रक्तपात से डरते थे। इससे लाभ उठाकर मुसलमान और उत्साहित हो रहे थे। पूना में भी अज्ञानी मुसलमानों ने उपद्रव प्रारम्भ किया। लोकमान्य तिलक ने निरपराध व्यक्तियों को न्यायालय से छुड़ाने में यशस्वी कार्य किया। अतः इन सेवाओं से उनकी लोकप्रियता बढ़ गई। उस समय हिन्दुओं को सबल और संगठित होने के लिये महात्मा तिलक के उपदेशों ने बड़ा कार्य किया। हिन्दुओं के जाति-पाति के भेद को मिटाकर सम्मिलित गणपति-उत्सव कराये। पहले उस उत्सव को पृथक्-पृथक् मनाते थे। लोकमान्य के प्रयत्नों से सब वर्ण मिलकर बड़ी उमंग और उत्साह से इस उत्सव को मनाने लगे। तभी से इस उत्सव ने सार्वजनिक मेले का रूप धारण कर लिया। यह समारोह १० दिन तक रहता है। सब स्थानों पर महाराष्ट्र में कथा, कीर्तन, व्याख्यान और भजन होते हैं। महात्मा तिलक की सूझ-बूझ ने ही इसे राष्ट्रयोत्सव का रूप दे दिया।

मृतप्राय राष्ट्र में राष्ट्रीय महोत्सवों द्वारा ही नये जीवन का संचार होता है, यह लोकमान्य जी ने सिद्ध करके दिखाया। वे केवल विद्वान् ही नहीं थे किन्तु प्रभावशाली नेता भी थे। गणपति उत्सव की सफलता के पश्चात् आपने शिवाजी उत्सव की योजना बनाई। शिवाजी की जन्मभूमि रायगढ़ में शिवाजी की जन्मतिथि पर उत्सव किया गया। उस स्थान का जीर्णोद्धार करने के लिये धन एकत्रित किया। फिर गवर्नर से आज्ञा लेने के लिये अथक परिश्रम लोकमान्य जी ने किया। इस उत्सव से शिवाजी का नाम सम्पूर्ण महाराष्ट्र में गूँज गया। शिवाजी जी को ही जागृति अन्याय का प्रतीकार, स्वराज्य वा स्वतन्त्रता का प्रतीक मान लिया गया। सारे महाराष्ट्र में शिवाजी के उत्सव से राष्ट्रीय जागृति हो गई।

लोकमान्य तिलक अकाल प्लेगादि महामारी एवं जनता के प्रत्येक कष्ट को अपना कष्ट समझ कर सार्वजनिक सेवा का कार्य पूरी लगन से करते थे। १८९७ में प्लेग और दुर्भिक्ष दोनों से ही जनता पीड़ित थी। जनता के कष्टों की उपेक्षा करके ब्रिटिश सरकार विक्टोरिया महारानी के हीरक जयन्ती महोत्सव की तैय्यारी में लगी हुई थी। उधर जनता में कष्टों के कारण हाहाकार मचा हुआ था। पूना में प्लेग के दिनों में प्लेग अफसर रैंड जनता पर अनेक प्रकार के अत्याचार कर रहा था। लोकमान्य ने सरकार के विरुद्ध अपनी लेखनी उठाई और अन्धाधुन्ध अत्याचार का विरोध 'केसरी' में किया। इन्हीं दिनों एक युवक दामोदर चाफेकर ने मि० रैंड पर पिस्तौल से आक्रमण कर दिया। अतः १५ जून १८९७ के केसरी के एक लेख पर सरकार ने लोकमान्य तिलक को गिरफ्तार कर लिया। ५० हजार की जमानत पर लोकमान्य को छुड़ाया गया। जनता ने मुकद्दमे में धन से खूब सहायता की। किन्तु सरकार तो अन्याय पर तुली हुई थी। अतः आपको डेढ़ वर्ष की कड़ी कैद का दण्ड दिया गया। इससे आप सारे भारत में प्रसिद्ध हो गये।

लोकमान्य को जेल में इतना कष्ट दिया गया कि उनके जीवित रहने में भी शंका होने लगी। महात्मा तिलक की गिरफ्तारी से योरुप के विद्वानों में बड़ी हलचल मच गई। कारण उनके 'वेदकाल निर्णय' सम्बन्धी विद्वत्तापूर्ण लेखों से उनकी विद्वत्ता का यश योरुप में भी फैल गया था। ऐसे विद्वान् को जेल की कोठड़ी में सड़ाकर मारना सब को बुरा लगा। ब्रिटिश सरकार के लिए यह एक कलंक था। प्रो० मैक्समूलर आदि योरुप के विद्वानों के आग्रह पर लोकमान्य से कुछ नम्रता का व्यवहार होने लगा। सरकार तिलक को इस शर्त पर "कि वह भविष्य में राजद्रोही कार्य में भाग नहीं लेंगे" छोड़ना चाहती थी। तिलक ऐसी शर्त मानने से छूटने की अपेक्षा जेल में मरना अच्छा समझते थे। एक वर्ष की सजा काटने के पश्चात् तिलक को छोड़ दिया गया। उनके छूटने पर जनता ने बड़ा हर्ष मनाया न था उत्साह से उनका स्वागत किया। वह स्वास्थ्य सुधार के लिये कुछ समय के लिये पूना से सिंहलगढ़ चले गये। स्वास्थ्य ठीक होने पर आप मद्रास के कांग्रेस अधिवेशन पर गये। आपका जनता ने बड़ा स्वागत किया। वहां से रामेश्वरम् और लङ्का की यात्रा भी की। अगले वर्ष आप कांग्रेस के लखनऊ के अधिवेशन पर भी गये और वहाँ से ब्रह्मदेश की यात्रा भी की।

पूना में मि० रैंड को मारने वाला गिरफ्तार नहीं हुआ। सरकार ने २० हजार रुपये का पुरस्कार बधक को गिरफ्तार करवाने के लिए घोषित किया। पुरस्कार के प्रलोभन से बधक के एक साथी ने अपने मित्र चाफेकर का नाम बता दिया। किन्तु नाम बतलाने वाला भी गोली से उड़ा दिया गया। इस गोलीकाण्ड का सम्बन्ध लोकमान्य से कुछ भी नहीं था, किन्तु बम्बई के 'टाइम्स' तथा इंगलैण्ड के 'ग्लोब पत्रों ने इनका दोष लो० तिलक पर मढ़ने का यत्न किया। ग्लोब ने तो यहां तक लिखा कि तिलक की देख-रेख में बम्बई में राजद्रोही मण्डली कार्य करती है और तिलक का लक्ष्य भारत में पुनः मराठा-राज्य की स्थापना करना है।

मानहानि का मुकद्दमा

लोकमान्य ने इन पत्रों के सम्पादकों को मानहानि का मुकद्दमा करने की चेतावनी दी। बम्बई के टाइम्स ने तो सूचना मिलते ही क्षमा याचना कर ली। किन्तु ग्लोब अपने हठ पर तुला रहा। अन्त में वह भी झुका और अदालत के व्यय के रूप में ५० पौण्ड हरजाना भी दिया। इस पराजय के पश्चात् भारतीयों के हृदय पर विदेशी पत्रों का जो आतंक छाया हुआ था वह दूर होगया। भारतीय भी अपने को सम्मानित मानने लगे, आपकी सहायता से वीर सावरकर जी को श्याम जी कृष्ण वर्मा ने छात्रवृत्ति दी। क्योंकि श्याम जी और तिलक जी पूर्व से ही दोनों मित्र थे। अतः सावरकर इंगलैण्ड जाकर श्याम जी के पास " भारतीय भवन" में रहकर शिक्षा पाने लगे और उन्होंने देश के लिये जो बलिदाम किया वह अन्यत्र पाठकों को पढ़ने को मिलेगा।

स्वस्थ होकर फिर लोकमान्य ने 'केसरी' को सम्भाला। और राष्ट्रीयता का प्रचार प्रारम्भ किया। कांग्रेश के विषय में आप ने केसरी में लिखा था कि यह "संस्था शीघ्र ही पार्लियामैन्ट का रूप ग्रहण कर लेगी और देश की राजसत्ता पर पूरा स्वत्व पा लेगी" तिलक की यह भविष्यवाणी तो सच्ची हुई किन्तु कांग्रेस का स्वरूप ही बिगड़ गया। लोकमान्य का उन दिनों कांग्रेस के नेताओं से मतभेद रहता था। क्योंकि तिलक को कांग्रेस के नरम दली नेताओं की भिक्षा वृत्ति राष्ट्रीय सम्मान के लिए विघातक प्रतीत होती थी तत्कालीन नेता सभी नरम दल के ही थे। इसलिए लोकमान्य तिलक कांग्रेस के अध्यक्ष नहीं बन

सके क्योंकि उस समय के भीरु नेता सभी तिलक जी का विरोध करते थे। अतः कलकत्ते के १६०६ क अधिवेशन के अध्यक्ष दादा भाई थे, सबसे पहले कांग्रेस के अधिवेशन में दादा भाई ने ही कहा था कि "हमारा लक्ष्य स्वराज्य की प्राप्ति है भारत के सब रोगों का एकमात्र उपाय स्वराज्य ही है"। लोकमान्य ने दादा भाई द्वारा प्रयुक्त शब्द 'स्वराज्य' को देश के कोने-कोने में पहुंचा दिया। इसके पश्चात् नागपुर तथा सूरत में कांग्रेस के अधिवेशन हुए। दोनों दलों में खूब गड़बड़ रही। सूरत में तो हाथापाई भी हो गई। दोनों पक्षों के पृथक्-पृथक अधिवेशन हुए। इसके पश्चात् नरम दल वाले नेता डूबते ही चले गये और गरमदल के हाथ में कांग्रेस आ गई।

माण्डले जेल में

बंग भंग के पश्चात् बङ्गाल में सशस्त्र क्रान्ति का जोर बढ़ गया और खुदीराम बोस ने एक बम फका जिस से दो अंग्रेज महिलायें समाप्त हो गईं। सरकार असली अपराधी को नहीं पकड़ सकी तो उस ने कांग्रेस के नेताओं की धरपकड़ प्रारम्भ की। मद्रास के चिदम्बरम् पिल्ले को १० वर्ष कठोर कारावास का दण्ड दिया। तिलक ने सरकार की इस नीति के विरुद्ध ११ मई के केसरी में लिखा "देश में बम गोले विद्यमान हैं यह देश का दुर्भाग्य है किन्तु बम चलाने के अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न कर देने का दायित्व सरकार का ही है। सरकार की दमननीति ही इसके मूल में है।" सरकार से इसी प्रकार के लेखों पर तिलक ार राजद्रोह फैलाने का मुकद्दमा चला दिया। लोकमान्य ने इस मुकद्दमे की खुद पैरवी की। लगभग २१ घण्टा १० मिनट तक वे अदालत में बोलते रहे। एक सप्ताह में अभियोग पूरा हुआ न्यायाधीश दावट ने अपना निर्णय देते हुए लिखा था "कानून की दृष्टि से मुझे चाहिये कि मैं तुम्हें आजन्म कालेपानी का दण्ड दूं किन्तु तुम्हारी आयु व अन्य कारणों को भी दृष्टि में रखते हुए मैं वह दण्ड घटा कर केवल ६ वर्ष के कालेपानी का दण्ड देता हूँ।

उस समय तिलक की आयु ५२ वर्ष की थी। जीवन भर की तपस्या क कारण शरीर बहुत निर्बल था। मधुमेह के रोग ने शरीर को खा ही लिया था, ऐसी अवस्था में ६ वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड मृत्युदण्ड से भी अधिक क्रूर और भयङ्कर था। इससे सारे देश में शोक की घटनायें छा गईं। आपको पहले अहमदाबाद के पास साबरमती की जेल में रखा। वहाँ बड़ा कष्ट था, दस दिन में ही पौंड भार घट गया। फिर आपको माण्डले की जेल में ले जा कर काल कोठरी में बन्द कर दिया गया। लोकमान्य तिलक ने अंग्रेज सरकार के हाथों जितने कष्ट उठाये उतने कष्ट शायद ही किसी राजनीतिक नेता ने भोगे होंगे। कष्ट सहने की क्षमता उन में असाधारण थी, वह शत्रु से दया की भीख मांगना अपनी मृत्यु समझते थे। उनकी आत्मा इतनी बलवान् थीं कि वे शारीरिक कष्टों की चिन्ता से कभी खिन्न नहीं होते थे।

माण्डले की जेल की छोटी सी कोठरी में उन्हें बन्द रखा गया। उसके साथ एक छोटी सी रसोई और ४-५ फुट का एक छोटा सा आंगन था। कोठरी में लोहे का एक पलङ्ग और टेबल कुर्सी लगी थी एक कोने में पुस्तकों से भरी एक अलमारी रखी थी। इस भयंकर एकान्तवास में पुस्तकों का सहारा ही तिलक का सब से बड़ा आश्वासन था। दिन का अधिक समय आप पुस्तक पढ़ने और लिखने में ही व्यय करते थे। यहीं पर आपने 'गीता रहस्य' के एक सहस्र पृष्ठों का लेखन कार्य किया। वेद विषयक कुछ

पुस्तकें भी लिखीं तथा जर्मन व पाली भाषा का भी अभ्यास किया। मन को एकाग्र करने के लिये आप योगाभ्यास करते थे। सन् १६१२ में आपकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। इससे आप को बड़ा कष्ट हुआ शरीर पहले ही रोगी था, इस दुःख से और भी वज्रपात हुआ। आप का शरीर रोगों ने घेर लिया। भोजन नहीं पचता था। माण्डले का जलवायु आप के अनुकूल नहीं था। थोड़ा सा सत्तू लेते थे। अन्य कोई अन्न नहीं लेते थे। दूध पर ही जीवन चल रहा था। सरकार तो मारने पर तुली हुई थी। पूरे छः वर्ष के अखण्ड एकान्तवास के पश्चात् १६ जून १६१४ के दिन माण्डले से आप को पूना पहुँचा दिया।

वहां पर आपने एक सार्वजनिक सभा में बोलते हुए कहा "मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं छः वर्ष की निद्रा के पश्चात् आज फिर जाग उठा हूँ। छः वर्ष पूर्व मेरे जीवन का जो कार्यक्रम था वही अब भी रहेगा। मेरे मार्ग में परिवर्तन नहीं हुआ है। छ वर्ष की यातनाओं ने मेरी भी आत्मशुद्धि कर दी है। इस शुद्धिकार्य के लिये मैं सरकार का उपकार मानता हूँ।"

खुफिया पुलिस की निगरानी भी चलती रही। कांग्रेस में सदैव दोनों दलों में झगड़े रहते थे। इस से बचने के लिए आपने 'होमरूल लीग' की स्थापना की।

होमरूल लीग की स्थापना

होमरूल का हिन्दी में अर्थ है 'स्वराज्य'। स्वराज्य की प्राप्ति इस लंस्था का उद्देश्य था। इसके सदस्य बनाने के लिये लोकमान्य तिलक ने अनेक प्रान्तों का भ्रमण करके अथक परिश्रम से ५०-६० हजार रुपये का संग्रह किया। स्वराज्य यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित हो उठी और लोकमान्य का सूर्य फिर भारत के आकाश में जगमगा उठा।

अंग्रेज सरकार फिर घबराई और लोकमान्य को नोटिस दिया कि भविष्य में आप राज द्रोही भाषण नहीं करेंगे। यह वचन दे, और जमानत के रूप में ४० हजार रुपये जमा कराये। यह केस हाईकोर्ट तक गया। हाईकोर्ट के न्यायप्रिय न्यायाधीश न्यायमूर्ति लल्लूभाई आशाराम तथा मि० बैचलर ने दोनों पक्षों की युक्तियां सुनकर लोकमान्य तिलक को दोषमुक्त कर दिया और निर्णय में लिखा "होमरूल मांगना राजद्रोह नहीं है।" इस हाईकोर्ट के निर्णय से 'होमरूल' की हलचल को बहुत प्रगति मिली। होमरूल का महत्त्व कांग्रेस से भी अधिक बढ़ा हुआ दिखाई देने लगा। होमरूल की ओर से लोकमान्य और ऐनी-बेसेण्ट के सम्मिलित डेपुटेशन ने इंग्लैण्ट की यात्रा की। लोकमान्य ने जनता में चेतना उत्पन्न की, और "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।" इसके लिये जनता को निर्भयतापूर्वक संघर्ष करना भी सिखा दिया।

एक लाख रुपयों की भेंट

आप की आयु ६० वर्ष की हो चुकी थी। देशवासियों ने आपकी साठवीं जन्मतिथि पर उत्सव मनाया। विशाल सभा में मानपत्र दिया और आपकी सेवा में एक लाख रुपयों की थैली भेंट की गई। लोकमान्य ने मानपत्र स्वीकार करने के साथ यह घोषणा की कि "मुझे पैसे की आवश्यकता नहीं है, यह धन राष्ट्रीय कार्यों में व्यय किया जायेगा।" तब तक किसी भी एक राष्ट्रीय नेता को इतने धन की भेंट नहीं दी गई थी।

कांग्रेस के दोनों दलों का संगठन

आपने निरन्तर कई वर्ष तक यह यत्न किया कि कांग्रेस के दोनों नरम और गरम दल का समझौता किया जाये। आपकी लखनऊ में जाकर सफलता हो गई। सब भेद भुलाकर सारे देश ने स्वराज्य की मांग

की। गोखले की भी मृत्यु हो चुकी थी। इस समय सारे देश के एकमात्र सूत्रधार लोकमान्य ही थे। लखनऊ के पश्चात् कांग्रेस का अधिवेशन दिल्ली में हुआ। दिल्ली के अधिवेशन के लिये आपको प्रधान बनाने का सब देशवासियों का भारी आग्रह था। किन्तु दैव को यह अभीष्ट न था क्योंकि उन्हीं दिनों आपने ब्रिटिश पत्रकार चिरोल पर मानहानि का मुकद्दमा चलाया हुआ था। उसने लिखा था, भारत की हिंसात्मक क्रान्ति के अग्रदूत स्वयं लोकमान्य हैं। लोकमान्य ने यह अभियोग चार वर्ष तक चलाया। इस में तीन लाख रुपये खर्च हुए। रुपये का सब प्रबन्ध इनके मित्र श्री एन० सी० केलकर व तात्यां साहब ने किया था। चिरोल केस का निर्णय आपके विरुद्ध हुआ। लोकमान्य में अन्याय के विरुद्ध लड़ने की असाधारण क्षमता थी। संघर्ष में उन्हें आनन्द आता था। उन्हें जय पराजय की कोई चिन्ता न थी। चिरोल केस के पश्चात् फिर कांग्रेस के कार्य में जुट गये।

कांग्रेस ने आपकी देख-रेख में ब्रिटिश कमेटी बनादी। जिसका कार्य ब्रिटेन में होमरूल का आन्दोलन करना था। आपने यह आन्दोलन अति वेग से किया और "माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार" के सम्बन्ध में ब्रिटेन की पार्लियामेन्टरी कमेटी के सामने आपने बड़ी योग्यतापूर्वक साक्षी दी थी। आपने सैकड़ों सभायें ब्रिटेन में भारत की राष्ट्रीय भावनाओं के प्रचारार्थ की। विज्ञापन भी सैकड़ों की संख्या में निकाले। कांग्रेस ने तो प्रचारार्थ थोड़ा ही धन दिया था, शेषधन होमलीग की ओर से व्यय किया। इसी कार्य के लिए आपने लाला लाजपतराय को सत्तरह हजार रुपये भेजे थे जिससे लाला जी ने खूब कार्य किया।

महात्मा तिलक ने अपने पुरुषार्थ और कौशल से अमरीका के अध्यक्ष के पास भी भारत की स्वनिर्णय सम्बन्धी मांग पहुँचा दी। फिर आप भारत लौट आये। उस समय भारत में सरकार का भयङ्कर दमनचक्र चल रहा था। भारत की भाषण प्रकाशन, लेखनादि की स्वतन्त्रता पर अङ्कुश रखने के लिए सरकार ने रौलट ऐक्ट बना दिया था। इसके विरोध करने के लिए महात्मा गान्धी ने आन्दोलन की प्रबल तैय्यारी की थी। सरकार ने आन्दोलन को दबाने के लिये भीषण अत्याचार किये। गोली लाठी और बर्छों से निहत्थी प्रजा पर हमले किये गये। जलियां वाले बाग में गोरे सैनिकों ने हजारों मनुष्य भून डाले। स्त्रियों और बच्चों पर भी बलात्कार और अत्याचार किये गये। लोकमान्य का भारत में आने पर बम्बई में भारी स्वागत किया गया। गान्धी जी के साथ उस समय लोकमान्य का मतभेद था। वे उस समय सत्याग्रह के पक्ष में नहीं थे। अमृतसर के अधिवेशन में सत्याग्रह का प्रस्ताव पास हो गया और महात्मा गान्धी ने सूत्रधार बनकर सत्याग्रह चलाया। मतभेद होते हुए भी दोनों नेता एक दूसरे का मान करते तथा परस्पर सहयोग भी करते थे।

देहत्याग

लोकमान्य का शरीर बहुत थक चुका था। केवल मनोबल से ही वे कार्य चला रहे थे। उनको ५–६ दिन तक ज्वर रहा और उनकी जीवन यात्रा पूर्ण हो गई। ३१ जुलाई को भारत माता का यह कर्म योगी पुत्र विधाता ने छीन लिया। दो तीन लाख आदमी शवयात्रा के साथ गये। हजारों देवियां भी जलूस में थीं। लाखों व्यक्तियों ने उनके शव का अन्तिम दर्शन किया। महात्मा गान्धी जी उस समय वहीं उपस्थित थे। बम्बई में 'बंकवे' के समुद्र तट पर अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। उस समय महात्मा गान्धी ने लोकमान्य की स्तुति में भाषण भी दिया।

कांग्रेस में 'तिलक फण्ड' नाम से एक निधि इकट्ठी हुई। लोकमान्य के साथी नरसिंह चिन्तामणि

केलकर ने १५०० पृष्ठों का विस्तृत जीवन चरित लिखा। लोकमान्य के लेखों का संग्रह ४, ५ खण्डों में प्रकाशित हो चुका है। भारत के इतिहास में तिलक नाम सदैव अगाध श्रद्धा से स्मरण किया जायेगा।

महात्मा तिलक की विशेषतायें

महात्मा तिलक की वेषभूषा सदा भारतीय ढंग की और सरल-साधारण रहती थी। वस्त्रों की सजावट आदि से उन्हें घृणा थी। भोजन अल्प मात्रा में शरीर की आवश्यकतानुसार लेते थे। भोजन में बड़े संयमी थे। घर में सजावट की कोई सामग्री नहीं थी। एक मेज कुर्सी और एक शय्या थी। प्राचीन ऋषियों के समान आप के जीवन में तपस्या की मात्रा अधिक थी। गृहस्थी होते हुए भी आप कठोर तपस्वियों की भांति तपस्वी जीवन व्यतीत करते थे।

आप व्रत के धनी थे एक बार देश सेवा का व्रत लेकर कभी उसको छोड़ा नहीं। व्रत के निभाने में दरिद्रता भी आई तो उसे सहर्ष स्वीकार किया। प्रियजनों से अपमान का व्यवहार मिला, उसे भी सहन किया। जेल जाना पड़ा तो हँसते-हँसते अनेक बार जेल गये। ६ वर्ष का काले पानी का अखण्ड भयङ्कर एकान्तवास भी प्रसन्नतापूर्वक काटा। इस प्रकार ४० वर्ष तक देश सेवा का व्रत निभाया। आपने इस व्रत को निष्काम भाव से पूर्ण किया। आप सदैव निस्वार्थ बुद्धि से सेवा करते थे। सेवा के पुरस्कार की इच्छा भी करना पाप समझते थे। देश की सेवा का वृत उन्होंने देश की दुर्दशा देखकर लिया था। वे राजनीतिक कार्य की अपेक्षा विद्याभ्यास को अच्छा समझते थे, किन्तु देश के दु:ख से दुखी होकर उन्हें आग में कूदना पड़ा। उन्होंने एक बार कहा था "मेरी इच्छा तो थी कि मैं अन्वेषक रहता और ग्रन्थ लिखता किन्तु घटनाओं ने मुझे राजनीति के क्षेत्र में ला पटका। उन्होंने अपनी सब इच्छाओं का 'बलिदान' अपने कर्तव्य के पालनार्थ कर दिया। इतना होते हुए भी आपने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। आपका वेदकाल निर्णय सम्बन्धी ग्रन्थ 'ओरायन' नाम से अंग्रेजी में था। जिसका सारांश ओरिएटल कांग्रेस में भेजा गया तो सब विद्वानों ने उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। १६०३ में आपने आर्कटिक होम इन दि वेदान्त' पुस्तक लिखी। इस पुस्तक ने पाश्चात्य विचारकों में हलचल मचा दी। इन पुस्तकों में वेदों का प्राचीनत्व सिद्ध किया गया था।

लोकमान्य ने गीता का अनेक बार पारायण किया और आपने गीता-रहस्य नाम की १००० पृष्ट की पुस्तक लिखी जिसमें ज्ञान कर्म और भक्ति तीनों का सुन्दर समन्वय सिद्ध करके दिखाया। यह पुस्तक मराठी भाषा में ही ५० हजार ले अधिक बिक चुकी है। भारत की अन्य सब भाषाओं में भी इसका अनुवाद प्रकाशित हो चुका है।

नवयुवकों के विचारार्थ

भारत के निर्भीक कर्म योगी के कुछ विचार युवकों के कल्याणार्थ लिखते हैं।

(१) यह जगत् हमारी कृति नहीं है। अतः सब कार्य परमेश्वरार्पण कर के और उसके प्रति उत्कट श्रद्धा रखकर ही हम संसार के व्यवहारों को चला सकते हैं। यही गीता का उपदेश है और यही मनुष्यों का कर्तव्य है।"

(२) सत्य की नीति सर्वोच्च है। अन्य मार्गों से राष्ट्र का हित नहीं हो सकता। सत्य की परीक्षा

अग्नि में होती है। स्वर्ण के सत्य स्वरूप को सिद्ध करने के लिये हम उसे अग्नि में जलाते हैं। सत्य की परीक्षा केवल इसी प्रकार हो सकती है।

(३) "पिछली शताब्दी में हमने अपनी विशिष्टता स्थिर रखने के लिए जाति धर्म, जातिबन्धन आदि की कल्पना की थी। इन शब्दों को अब अपने कोष से निकाल देना चाहिये। इन बन्धनों के परिणाम से देश को बहुत क्षति पहुंच रही है, शीघ्र ही इनका अन्त होना आवश्यक है।"

(४) कोई भी आन्दोलन मनुष्य विशेष के आधार पर नहीं चलता। धन के आधार पर भी नहीं चलता। उसमें कार्य-सिद्धि तभी होगी जब कार्य करने वाले उसके लिये बलिदान करेंगे।

(५) "स्वदेशी के शत्रु और स्वदेश के शत्रु में कोई भेद नहीं है, जो स्वदेशी का व्यापार (व व्यवहार) नहीं करते उनका पूर्ण बहिष्कार कर देना चाहिये।"

नवयुवकों को इन वाक्यों पर गम्भीरता से विचार कर आचरण कर अपना जीवन सफल बनाना चाहिये।

क्रान्तिकारियों के राजकुमार हुतात्मा—

स्वातन्त्र्य वीर विनायक सावरकर

(आचार्य भगवान् देव)

महाराष्ट्र में नासिक जिले के भगूर ग्राम में एक चितयावन ब्राह्मण गृहस्थ दामोदर पन्थ सावरकर रहते थे। उनके चार सन्तान थीं। प्रथम गणेशदत्त वा बाला सावरकर, द्वितीय विनायक सावरकर, तृतीय कन्या मैनाबाई, और चतुर्थ नारायण राव सावरकर थे। गणेशपन्त विनायक से चार वर्ष बड़े और डाक्टर नारायण उनसे पांच वर्ष छोटे थे। विनायक का जन्म १८८३ ई० में हुआ था। यही वह दिव्य बालक था, जो आगे चलकर "क्रान्तिकारियों का राजकुमार बना जिसे विदेशी लोगों ने भी हुतात्मा की पदवी दी और जिसे योरुपीय राजनीतिज्ञों ने मेजनी गेरी वाल्डी क्रोपाट किनु बुल्फटोन और एमेट कहकर उसकी खूब प्रशंसा की। और जिसे हिन्दुओं ने हिन्दू-राष्ट्रपति छत्रपति शिवा के रूप में मान्यता दी। आगे चलकर ये तीन भाई सावरकर बन्धु नाम से विख्यात हुए। और महाराष्ट्र और इंगलैंड में क्रान्तिकारियों के बड़े नेता श्री विनायक सावरकर के होने के कारण वह काल सावरकर युग ही कहलाया। बिनायक के पिता दामोदर पन्त सावरकर अच्छे विद्वान् ही नहीं, किन्तु साथ ही बहुत अच्छे कवि भी थे। वे अपनी सन्तान में उच्च भावनाएँ भरने के लिए रामायण, महाभारत की शिक्षाप्रद कथायें, शिवाजी, महाराणा प्रताप, भाऊ वाजीराव प्रथम आदि देशभक्त वीरों के जीवन तथा गीत सुनाया करते थे। वे अपनी सन्तान में काव्यरस से प्रेम उत्पन्न करने के लिये महाराष्ट्र के प्रसिद्ध कवि वामन मोरो पन्त, और सन्त तुकाराम की कवितायें सुनाया करते थे। इसी कारण विनायक की बुद्धि का विकास बाल्यकाल में ही हो गया था, वे आठ वर्ष की आयु में ही कविता करने लगे थे।

जब इनकी आयु दश वर्ष की थी, तभी इनकी बनाई हुई कवितायें मराठी के प्रसिद्ध पत्र जगद्धितेच्छु आदि में बड़ी उत्सुकता से छापी जाती थी। किन्तु सम्पादक महोदयों को यह ज्ञात नहीं था कि इन कविताओं का रचयिता दश-बारह वर्ष की आयु का बालक है। विनायक को छत्रपति शिवाजी के चरित्र से अतीव प्रेम था। यह केसरी आदि पत्रिकायें महाभारत तथा अन्य मराठा वीरों की विजय यात्राओं को बड़ी श्रद्धा से पढ़ते थे और अपने सथियों कों भी पढ़ने की प्रेरणा करते थे। उनके आमोद प्रमोद ने भी महाराष्ट्र और राजस्थान के वीरों की कथाओं का रूप धारण कर लिया था। वह अल्पायु में ही अपने मित्रों में विद्वान् देशभक्त और ओजस्वी वक्ता के रूप में पूज्य भाव में देखे जाते थे। सन् १८९३ से लेकर १८९५ तक सारे भारतवर्ष में धर्मान्धता के कारण हिन्दू मुस्लिम झगड़े हुए। महाराष्ट्र भी इनसे कैसे बच सकता था। पूना आदि नगरों में भी यह अग्नि भड़की। उस समय मुसलमानों के अत्याचार का बदला लेने के लिए इस वीर बालक विनायक ने अपने ग्राम भगूर में अपनी बाल टोली को लेकर ग्राम से बाहर एक मस्जिद पर चढ़ाई कर दी। शत्रु कोई सम्मुख न आया, थोड़ी सी देर में ही इन १२ मराठा बालकों ने जिनकी आयु १४ वर्ष से अधिक न थी। मस्जिद के मीनार भित्तिया तोड़-फोड़ कर उसे भूमिसात् कर दिया और अपना कार्य करके अपने इस नेता की आज्ञा से बालक चलते बने। स्कूल में मुसलमान लड़कों से इनकी टोली का कई बार झगड़ा हुआ। इनकी टोली वीरता से लड़ती थी और विजय इनके पक्ष की होती थी। एक मुसलमान अरब लड़के ने विनायक के मुख में मछली का मांस डालकर इन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाने की धमकी दी। किन्तु वीर विनायक इन थोथी धमकियों से कहां डरने वाले थे। इन्होंने अपने सैनिकों को सैनिक-शिक्षा देने के लिए सैनिक-शाला खोली और इनमें भावना भरने लगे। अनुशासन और सैनिक शिक्षणार्थ परस्पर नकली युद्धों की रचना रचकर अभ्यास कराते थे। इसी प्रकार उन्हें महाराष्ट्र के ऐतिहासिक दुर्गों में ले जाकर अपने प्राचीन वीर पुरुषों की वीर भावनायें भरते थे। कभी अपने साथियों को सिंहगढ़ के दुर्ग में ले जाकर वहां विजयी सेनापति ताना जी मालसुरे की वीरता की कथा सुनाकर वे ईश्वर से प्रार्थना करते थे कि हम में भी ऐसी शक्ति का सञ्चार हो कि जिससे हम अपनी जाति और देश को स्वतन्त्र करने के लिए अपना कर्त्तव्य पालन कर सकें। इसी प्रकार वे साथियों को राष्ट्र-सेवार्थ तैयार करते थे। अपने पिता जी के साथ वे पूजा वन्दना में भी पर्याप्त समय देते थे। वे घण्टों देव पूजा में लगा देते थे और सदैव देश, जाति को दु:खों से छुड़ाने की प्रार्थना करते थे। जब ये दश वर्ष के ही थे इनकी माता का देहान्त हो गया, फिर पालन-पोषण का भार पिताजी पर ही पड़ गया। इनके पिता जी ने माता के समान ही अपनी सन्तान का पालन-पोषण किया। इनके पिता जी इनकी शिक्षा का भी ध्यान रखते थे।

शिक्षा

विनायक सावरकर ने राजनीतिक कार्य करते हुए भी अपने अध्ययन की कभी उपेक्षा नहीं की और न अपने साथियों को करने दी। वे कभी भी किसी परीक्षा में अनुत्तीर्ण नहीं हुए। १९०१ में उन्होंने अधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण कर नासिक को छोड़ पूना में पहुंच फार्ग्यूसन कालिज में प्रवेश किया। उस से जाते समय इनके मित्रों और प्रनिष्ठित लोगों विनायक को बड़े सामारोह से विदा किया। स्कूल कालिज में पढ़ते समय उन्होंने अपना राजनितिक कार्य भी खूब उत्साह से किया। चारों वर्ष कालेज में देशभक्ति और राष्ट्रीयता के अपने सिद्धान्तों का खूब प्रचार करते रहे। पढ़ते समय में भी इनकी इतिहास में स्वाभाविक रुचि थी संसार की सभी क्रान्तियों का इतिहास इन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में ही पढ़ लिया था। इनको पढ़ने में इतनी रुचि थी कि इनके सहपाठी इन्हें "किताबी कीड़ा

कहा करते थे। ये और इनके साथी अपने कार्य में तत्पर थे। ये सब एक समान वस्त्र धारणकरते थे, सरलता का जीवन बिताते, कठोर परिश्रम अध्ययनार्थ करते, नियम पूर्वक सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते थे। शारीरिक व्यायाम करते थे, विद्यार्थी जीवन में इनकी राजनीतिक हल चलें भी इतिहास की अमर कथायें हैं।

विद्यार्थी जीवन में राजनीतिक संगठन

समाचारपत्रों और राजनैतिक ग्रन्थों के स्वाध्याय से वीर विनायक अपनी राजनीति के ज्ञान और योग्यता का सम्पादन अपने स्कूल के अध्ययन के साथ-साथ कर रहे थे। उस समय विदेशी वस्त्र बहिष्कार की अनेक कवितायें भी समाचार पत्रों में छपती थीं। एक दिन समाचार पत्रों में उन्होंने पढ़ा कि चाफेकर बन्धुओं ने अत्याचारी अंग्रेज रैंएड प्लेग कमिश्नर और उसके एक साथी गोरे को गोली से समाप्त कर दिया। तीनों चाफेकर बन्धुओं और उनके साथियों को फांसी का दण्ड दिया।

लोकमान्य तिलक को जेल भेज दिया, नातुबन्धु निर्वासित हुए। विनायक के बाल हृदय पर इस घटना का बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने आँसू भरी आंखों से फांसी आदि के दुःखद समाचार पढ़े, विनायक आप ही आप बोलने लगे "चाफेकर उठती जवानी में चले गये, उन्होंने अपनी मातृभूमि के लिए सब कुछ न्योछावर कर दिया। तो क्या मुझे खा-पीकर मौज उड़ाना ही शोभा देता है ? उनका कार्य अधूरा पड़ा है, उनकी इच्छायें अपूर्ण खड़ी हैं। क्यों न मैं प्रतिज्ञा करूँ कि उनके कार्य को पूरा करने में अपने प्राण तक दे डालूँ। मैं उसे पूर्ण करूँगा अन्यथा उसके प्रयत्न में जीवन दे डालूँगा।" तत्पश्चात् वे दुर्गा के सम्मुख उपस्थित होकर शिवा की भांति अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रार्थना कर शक्ति मांगने लगे और फिर शांत खड़े होकर उन्होंने प्रतिज्ञा की "मैं भारत माता की शृङ्खलायें तोड़ने के लिए अपना जीवन अर्पण करूँगा, मैं गुप्त संस्थायें खोलूँगा, शस्त्र बनाऊँगा और समय आने पर हाथ में शस्त्र लेकर स्वतन्त्रतार्थ लड़ता-लड़ता मरूँगा। इसी बालक ने युवा बनकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए अपना सारा जीवन कंटका कीर्ण बना लिया। उसी दिन से यह अपने कार्य में जुट गया। उसी दिन अपने साथियों को चाफेकर बन्धुओं की स्तुति में एक गीत बनाकर भाव भरने के लिए सुनाया। गीत बड़ा ही सुन्दर था, सब पर अच्छा प्रभाव पड़ा। इन्ही दिनों आपने 'अभिनव भारत' नाम की संस्था की स्थापना करके अपनी विचारधारा का प्रचार करना आरम्भ किया। किन्तु इन्हीं दिनों प्लेग इतने जोर से फैला कि सैकड़ों व्यक्ति इसकी झपट में आ गये। विनायक के पिता जी का देहान्त भी प्लेग से हो गया। पुलिस वालों ने आकर इनको घर से निकाल दिया। छोटा भाई ९-१० वर्ष का था उस पर भी प्लेग ने आक्रमण किया इनका सारा परिवार जंगल में चला गया, फिर वे एक मित्र की सहायता से नासिक आये। वहां बड़े भाई बाबा सावरकर को भी प्लेग ने दबा लिया। विनायक तथा उनकी भाभी ने दो भाइयों की इस अवस्था में खूब परिचर्या की। ईशकृपा से शीघ्र दोनों भाई स्वस्थ हो गये। इन्होंने वहाँ भी अपने साथी ढूँढ निकाले और "मित्र मेला नाम से एक संस्था बनाई। यह इनका क्रान्तिकारी संगठन था। इसके द्वारा खूब कार्य किया। इस संस्था का उद्देश्य सशस्त्र क्रान्ति द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्तकरना था। यह संस्था अपना कार्य गुप्त तथा प्रकट रूप में दोनों प्रकार से करती थी। इसके अतिरिक्त नासिक की सभी प्रकट संस्थायें विनायक जी की आधीनता में कार्य करती थीं। वह इन दिनों विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आन्दोलन के संचालन का कार्य करते थे। इस १६-१७ वर्ष की आयु में एक दिन में तीन-तीन सभाओं में भाषण देने पड़ते थे १९०१ में इनकी संस्था सारे भारत म फल गई थी। शिवाजी जयन्ती

और गणपति-उत्सव इन्हीं की अध्यक्षता में मनाये जाते थे। प्रति सप्ताह इनकी सभा के अधिवेशन होते थे। उनमें देशभक्तों के जीवन की कथायें तथा राजनीतिक विषयों पर भाषण होते थे। विनायक की यह सभा उनके शब्दों में ही राष्ट्रीय शिक्षणालय ही था। यह इनकी संस्था चौथाई शताब्दी तक चली। इस संस्था ने देश के युवकों को देशभक्ति की शिक्षा देकर भारत माता की मुक्ति के लिए हँसते-हँसते मरना सिखाया था। सन् १६०१ में कालिज में प्रविष्ट हो वहाँ कालिज के विद्यार्थियों को देश सेवा की शिक्षा देनी प्रारम्भ की। भोजन शाला में ये एक हस्तलिखित साप्ताहिक समाचार पत्र भी निकालते थे। इसमें द्वेप लेख पूना के प्रसिद्ध पत्रों में और महाराष्ट्र भर में बड़ी रुचि से पढ़े जाते थे। उन ये उन दिनों खुले रूप में स्वतन्त्रता और कान्ति का प्रचार करते थे। "इटालियन क्रान्ति' और क्रान्ति की सात सीढ़ियां सावरकर के ये दो व्याख्यान जिन्होंने सुने थे वे आज भी श्रद्धा से स्मरण करते हैं। सावरकर का पूना में सार्वजनिक कार्यों में पूर्ण हाथ रहता था। १६०५-६ ई० में स्वदेशी आन्दोलन का जोर दुआ। सावरकर भी पूर्ण शक्ति से जुट गया। इन्होंने पूना नासिक तथा महाराष्ट्र के अन्य स्थानों पर स्वदेशी प्रचार के ओजस्वी भाषण दिये। ग्रीष्मावकाश में ये घूम-घूम कर तीन-तीन और चार-चार भाषण देते हुए घूमने लगे। इनके भाषणों को सुनकर जनता मन्त्रमुग्ध हो जाती थी। वीर सावरकर ने विदेशी वस्त्रों की होली मनाने के लिए पूना की जनता को व्याख्यान देकर तैयार कर लिया। पूना के एक बड़े मैदान में कीमती विदेशी वस्त्रों का ढेर लगाया गया और उसमें आग लगाकर भारत में विदेशी वस्त्रों की सर्वप्रथम होली मनाई गई। इस समय वीर सावरकर ने भाषण में कहा—"विदेशी वस्त्रों को जलादो। और बड़े प्रेम के साथ जलादो। और उसी प्रेम के साथ जलादो, जो प्रेम आप इनके साथ सुन्दर-तादि के कारण रखते हो। इन्हें जला दो और अधिकार के साथ जलादो। इसी पवित्र अग्नि को साक्षी देकर आप और अभी स्वदेशी का व्रत धारण करो इस अग्नि के द्वारा उत्पन्न स्वदेश भावना को आने भाइयों में नहीं गिना जा सकता। यह विदेशी वस्त्र नहीं किन्तु विदेशी को ही हम जला रहे हैं और उसके साथ ही साथ विदेशियों से मिलकर उत्पन्न हुई राष्ट्रद्रोही भावना को भी आज हम सदा के लिए अन्त्येष्टि कर रहे हैं। उसी दिन तिलक और परांजय ने भों जोशीले भाषण दिये। इस होली ने भारतीय पत्रों में हल-चल मचा दी। एक मास तक समाचार पत्रों में इस होली पर टीका-टिप्पणियां होती रहीं। इसको पढ़कर कालिज के अधिकारी भयभीत हो गये और उन्होंने आन्दोलन के उग्र नेता वीर सावर कर को दश रुपये का दण्ड देकर चौबीस घण्टे में कालिज आश्रम छोड़ने की आज्ञा दी। स्वदेशी आन्दोलन में भाग लेने के कारण सरकारी सहायता प्राप्त भारतीय-संस्था से निकाले गये विद्यार्थियों में हमारे वीर विनायक सर्वप्रथम विद्यार्थी थे। महाराष्ट्र के सभी राष्ट्रीय-पत्रों में कालेज के इन नपुंसक नीच अधि-कारियों की घोर निन्दा की। तिलक जी का केसरी पत्र इस फार्ग्यूसन कालेज के अधिकारियों के विरुद्ध कई सप्ताह तक आग उगलता रहा। अनेक शहरों में इसी प्रकार विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। अनेक नगरों और कस्बों में सभायें हुईं। जिनमें सावरकर की प्रसंशा के प्रस्ताव पास हुए। अर्थ दण्ड पूरा करने के लिए चन्दा किया गया। वह धन राशि बहुत अधिक थी अत. सार्वजनिक व्यवसायिक निधि को दान कर दी गई। बम्बई विश्वविद्यालय ने इस घटना की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। अतः वीर सावरकर को परीक्षा में बैठने को आज्ञा दे दी और वीर सावरकर कुछ ही सप्ताहों की तैयारी से परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। इस सफलता पर महाराष्ट्र के राष्ट्रीय नेताओं ने इन्हें बधाई दी। १६०५ई० में सावरकर ने बी० ए० पास किया। परीक्षा पास कर संस्थाओं के संगठन में लग गये। अपने संघ का

नाम बदलकर "अभिनव भारत कर दिया। ये एक गायक मण्डली साथ लेकर महाराष्ट्र के अनेक नगरों में प्रचारार्थ गये। । भाषण और गीतों का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ता था । इससे चिढ़कर सरकार ने गीतो की सब प्रतियां जप्त कर लीं। प्रचार यात्रा से लौटकर सावरकर जी वकालत पढ़ने बम्बई चले गये। उन्हीं दिनों जगत गुरु महर्षि दयानन्द के प्रिय शिष्य श्याम जी कृष्ण वर्मा ने घोषणा की कि वह भारतीय विद्यार्थियों को विदेश के स्वतन्त्र वातावरण में राजनीति का अध्ययन करने के लिए छः छात्रवृत्तियाँ एक सहस्र रुपया प्रति छात्रवृति के लिए मासिक देंगे। वीर सावरकर ने छात्रवृतियां प्राप्त करने के लिए प्रार्थना पत्र भेजा लोकमान्य तिलक और श्रीयुत परांजय के प्रशंसा पत्रों से यह कार्य सहज में हो पूर्ण हो गया। क्योंकि इनके साथ श्याम जी का पूर्व से ही सम्बन्ध था। विदेश जाने से पूर्व ही इनका विवाह जाहर राज्य के काश्मीरी (दीवान) श्री चिपलूणकर की बड़ी लड़की से हो गया। इससे इन्हें आर्थिक कठिनाई से भी कुछ छुटकारा मिला। इस समय पुलिस की इन पर क्रूर दृष्टि थी। इनकी गिरफ्तारी की सम्भावना थी किन्तु सरकार ने विदेश जाने के कारण इनको गिरफ्तार नहीं किया। ये भी श्याम जी की "शिवाजी छात्रवृत्ति' मिल जाने से विदेश जाने की तैयारी करने लगे। देश छोड़ने से पूर्व इन्होंने अपनी गुप्त सभा में स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि "अब तक मैं पूना में फार्ग्यूसन कालिज में महाराष्ट्र के चुने हुए युवकों में अपने विचार फैलाता रहा हूं, परन्तु अब मैं विदेश जाकर भारत भर के धनी और योग्य विद्यार्थियों में प्रचार करूँगा। वे लोग जब वैरिस्टर आदि बनकर भारत लोटेगें तो देश भर में क्रान्ति मचा देंगे। मैं शत्रु के गढ़ में जाकर भारतीय शक्ति का लोहा दिखाऊँगा। मैं रूसी आतंगवादियों से बम्ब और पिस्तोल बनाना सीखूँगा। इस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता शीघ्र ही हस्तगत हो जायेगी। इन्होंने विदेश जाने से पूर्व बम्बई में भी ,'अभिनव भारत संस्था की शाखा खोली। अनेक कालेजों के विद्यार्थी इसमें सम्मिलित हुए। बिहारी नाम का मराठी भाषा का एक पत्र भी निकाला गया, इसका विकास भी सहस्रों की संख्या में होने लगा।

विदेश-यात्रा

१९०६ मई में २२ वर्ष की आयु में सावरकर ने लन्दन की ओर प्रस्थान किया। नासिक की जनता ने इन्हें सार्वजनिक विदाई दी। नासिक के निवासियों ने दुःखित होकर कहा—"हम चाहते हैं कि आप शीघ्र ही लौट कर हमारे पास आकर रहें। यह किसको पता था कि अन्डमान की काल कोठरी इस प्यारे वीर को बड़ी देर तक दर्शन न करने देगी। नासिक निवासियों से विदाई लेकर जहाज पर सवार हो गये। जहाज में जाते समय भी यह भारतीय विद्यार्थियों में अपने विचारों का प्रचार करते रहे। एक उत्तर भारत का विद्यार्थी समुद्रीय रोग के कारण घबरा गया। वह मार्ग से लौट जाना चाहता था उसे प्रेम से समझाकर धैर्य दिया वह उत्तर का प्रसिद्ध वैरिस्टर बना उसमें देशभक्ति के भाव भरते रहे। इसी प्रकार अपने विचारों का प्रचार करते हुए लन्दन पहुंचे।

ब्रिटिश राज्य की राजधानी लन्दन

इंलैण्ड पहुँचने पर श्याम जी कृष्ण वर्मा ने वीर सावरकर का स्वागत किया। पंडित श्याम जी उन दिनों होम रूल आन्दोलन चला रहे थे। जिसको चलाने से राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के मुख्य नेता भी उस समय डरते थे। परन्तु सावरकर ने लन्दन पहुँचकर एक ही वर्ष में इस तेजी का वातावरण बदला कि होमरूल आन्दोलन भी एक नरम आन्दोलन प्रतीत होने लगा। वहां पर "फ्री इण्डिया नाम की

संस्था खोली गई। प्रति सप्ताह इसकी सभाएँ होती थीं" उसमें सावरकर का इटली, फ्रांस, अमेरिका आदि देशों की क्रान्ति पर ओजस्वी भाषण होता था। ये सभायें खुले रूप में होती थीं। इनमें प्रत्येक भारतीय सम्मिलित हो सकता था। जो युवक कुछ क्रियात्मक रूप से क्रान्ति में भाग लेने को उद्यत होते थे। उनकी परीक्षा करके "अभिनव भारत संस्था में उन्हें ले लिया जाता था। इस प्रकार केम्ब्रिज आक्सफोर्ड, ऐडिम्बरा, मानचिस्टर आदि शिक्षणालयों के भारतीय विद्यार्थी बड़ी शीघ्रता से क्रान्तिकाकारी सिद्धान्तों के भक्त बना लिए गये। पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा ने अपने पत्र "इण्डियन साईकॉलोजिस्ट बोंम्ब और रूस की गुप्त संस्थाओं पर एक लेख लिखकर बड़ी वीरता से खुले रूप में क्रान्तिकारी संस्था में सम्मिलित होने की घोषणा की। यह वीर महर्षि दयानन्द का सच्चा शिष्य था। इस वीर का वह दृढ़ विश्वास था कि हमारा राष्ट्र तब तक पूर्ण स्वतन्त्र नहीं हो सकता जब तक कि भारतीयों के पास ब्रिटिश सरकार से अथक लड़ाई के लिए प्रचुर मात्रा में शस्त्र नहीं आ जाते। यह वीर श्याम जी भारतीय नेताओं में से उस प्रथम श्रेणी के नेता थे जिन्होंने भारत का राजनीतिक उद्देश्य पूर्ण स्वतन्त्रता से घोषित किया था। इस घोषणा के पश्चात् श्याम जी ने होम आन्दोलन को बन्द कर दिया और श्याम जी लन्दन का इण्डिया हाउस अपने प्रिय शिष्य सावरकर को सोंपकर पेरिस चले गये। श्याम जी सावरकर से अपने पुत्र के समान प्रेम करते थे। वीर सावरकर भी उनका पितृ तुल्य अथवा गुरु के समान आदर करते थे। इण्डिया हाउस सावरकर के हाथ में आने के पश्चात् "अभिनव भारत इस संस्था ने वे आश्चर्य जनक कार्य किये जिनका सम्पूर्ण इतिहास आज तक जनता के सम्मुख किसी ने प्रकट नहीं किया। उस समय की भारत की राजनीतिक परिस्थिति में वर्णन करना कठिन था। पीछे खोज का प्रयास जितना होना चाहिए था उतना नहीं किया गया। उस समय इंगलड में शिक्षा पाने वाले अनुपम प्रगतिशील भारतीय विद्यार्थी अपना राजनीतिक जीवन इसी संस्था द्वारा चलाते थे। लाला हरदयाल जी आई. सी. एस. परीक्षा पास करने इंगलेंड गये थे। इसी इण्डिया हाउस के सम्पर्क से सरकारी विश्वविद्यालय से मिलने वाली छात्रवृत्ति का परित्याग किया और भारतीय स्वतन्त्रता के लिए जीवन अर्पण करने की प्रतिज्ञा की। जब तक वे जीवित रहे अपने देशानुराग के अपराध में अपनी प्रिय मातृभूमि से निर्वासित रहे। अन्तिम समय तक अपने सम्बन्धियों का मुख तक न देख सके और नहीं मातृभूमि के दर्शन कर सके। स्वातन्त्र्य प्रेम को अपने दिल के पहलू में दबाये दूर अमरिका में प्राणविर्जन किये। अपने जीवन काल में उन्होंने कभी गदर पार्टी द्वारा, कभी अमेरिका में भारतीय विद्यार्थियों में प्रचार कर तथा कभी जर्मनी और टर्की के उच्च अधिकारियों से मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीयों को शस्त्र देने की प्रेरणा कर भारत की मुक्ति के लिए अथक परिश्रम किया। ये हरदयाल भी इसी संस्था के सदस्य थे अथवा यों कहिए कि ये भी श्याम जी के भारतीय भवन में ही ढाले गये थे। इनके अतिरिक्त सरोजनी नायडू के भाई मि० चट्टोपाध्याय जी जो अपनी इस बहन से संसार में कम विख्यात हैं। परन्तु जिनका देश प्रेम, कष्ट सहन और त्याग अपनी बहन नायडू से कहीं बहुत बढ़कर है और जो अपनी गाढ़ देशभक्ति के कारण निर्वासित होकर रूस में अपने दिन काटते रहे। ये सावरकर के ही साथी थे इसी प्रकार वी०वी० एस० आयंगर जिनका नाम देश के लिए महान् कष्ट उठाने के कारण मद्रास के घर-घर में श्रद्धा से लिया जाता है। ये भी वीर विनायक के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करते रहे। इनके प्रयत्नों से "अभिनव भारत भारतीय राजनीति में ऐसी शक्ति शाली संस्था बन गई कि अंग्रेजी सरकार वर्षों तक इसे कुचलने में व्यस्त रही। एक दिन भारतीय भवन में एक सभा हो रही थी

नवयुवक कुछ करने के लिए उतावले हो रहे थे। धन इकट्ठा किया गया। एक मराठा युवक, एक बंगाली और एक मद्रासी ये तीनों बम्ब बनाना सीखने के लिए सावरकर की प्रेरणा पर पेरिस गये। इससे पूर्व भी भारतीय क्रान्तिकारियों ने बम्ब बनाने सीखने का यत्न किया, किन्तु अब तक शारीरिक तथा आर्थिक हानि ही उठाई सफलता नहीं मिली थी। रूसी प्रोफेसरों ने इस बार भी धोखा देकर बहुत सा धन ठग लिया। किन्तु अन्त में एक सच्चा व्यक्ति रूसी क्रान्तिकारी जो निर्वासित था, जिसकी खोज में रूसी सरकार परेशान थी मिल गया। इसने बम्ब बनाने व प्रयोग का सहज उपाय इस भारतीय क्रान्तिकारियों को सिखाया। उसने पचास पृष्ठ की एक पुस्तक दी जिसमें सब प्रकार के बम्ब बनाने की विधियाँ लिखी थी और इस सब के बदले उसने कुछ भी न लिया। यही पुस्तक सावरकर और उसके साथियों ने "इण्डिया हाउस में साईक्लो टाइप पर छापकर गुप्तरूप से वितीर्ण की। आगे चलकर इसकी कापियाँ कलकत्ता इलाहाबाद लाहौर और नासिक तक में खोज कर निकाली गईं। इस पुस्तक के छापने के साथ-साथ अभिनव भारत में बम्ब बनाने की विधि भी सिखाई जाती थी। स्वयं वीर सावरकर यह शिक्षा दिया करते थे। वीर विनायक भारतीय विद्यार्थियों को फ्रीइण्डिया सोसायटी के भवन में इतिहास, राजनीति और अर्थ शास्त्र पर सार्वजनिक व्याख्यान भी देते थे। क्रान्तिकारी अपने प्रथम बम्ब का प्रयोग इंगलेंड में ही करना चाहते थे, ऐसा करने से सावरकर ने उन्हें रोक दिया। क्योंकि भारत तक यह कला पहुँचने से पूर्व ही सब कार्य बिगड़ जाता। कुछ शिक्षक इस बम्ब बनाने की कला को सिखाने के लिए भारत भेजे गये। इन्हीं बम्बों का फिर भारत में अनेक स्थानों पर प्रयोग किया गया। इस प्रकार इस समय "भारतीय भवन आश्चर्य जनक कार्यों का केन्द्र बना हुआ था। प्रतिदिन सहस्रों पोस्टर और पैम्पलेट छापे जाते थे उन्हें भारत के विविध भागों में बांटने के लिए भेजा जाता था इन सब कार्यों में सावरकर का हाथ सबसे अधिक रहता था। यह सब कार्य करते हुए वे समय निकाल कर लिखते भी थे। अतः उन्होंने जोजफ मोजिनी की आत्म कथा का मराठी अनुवाद किया : यह कार्य ता चार मास में ही करके भारत में भेज दिया। नासिका मे यह पुस्तक छपी। जनता ने उस बहुत अपनाया इसके विषय ने अपना रिकार्ड स्थापित कर दिया। धर्म ग्रन्थों के समान इसका आदर हुआ। पालकी में रखकर इसकी कई स्थानों पर शोभायात्रा निकाली गई। विद्यार्थियों ने इसे बड़े चाव से पढ़ा। समाचार पत्रों ने इस पर अग्र लेख लिखे। इसी कारण सरकार को यह खटकी और पुस्तक जप्त कर ली गई। दूसरा ग्रन्थ १८५७ का स्वातन्त्र्य समर था यह ग्रन्थ पुराने सरकारी कागजों के आधार पर लिखा जा रहा था। इसकी भारतीय भवन में सावरकर जी कथा भी करते थे। अभी यह लिखकर पूर्ण भी नहीं हुआ था कि सरकार की क्रूर दृष्टि इस पर पड़ी। और यह पूर्ण होने और छपने से पूर्व जब्त कर ली गई। यह संसारका प्रथम ग्रन्थ था जो पूर्ण होने और छपने से पूर्व ही जब्त कर लिया गय। कई अंग्रेजी पत्रों में इस घृणित कार्य की निन्दा की गई। यह ग्रन्थ क्रान्किारी ढंग से ही गुप्त रूप से छापा गया और बड़े उपायों से इसकी सैकड़ों प्रतियां भारत में पहुँचाई गईं घरों और होस्टलों में इस पुस्तक को दूसरी पुस्तकों में भारतीय लोग छिपाकर रखते थे। इसकी एक पुस्तक सिकन्दर हूँयातखां जो अभिनव भारत के सदस्य थे उनको भेजी गई। यह पुस्तक इतनी बढ़िया थी कि क्रान्तिकारियों के कट्टर विरोधी वैलन्टाईन शिरोल तक ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। ऐतिहासिक खोज की दृष्टि से पुस्तक का बड़ा महत्व है। वीर सावरकर ने इस ग्रन्थ में यह सिद्ध किया था कि ५७ का युद्ध सिपाही विद्रोह नहीं किन्तु हमारा प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम था। इस पुस्तक की खोज में अनेकों उत्साही युवक

रहते थे। यहां तक कि इसकी एक प्रति दक्षिण अमेरिका में १३० रुपये में बिकती हुई एक सिख ने देखी थी। पुस्तक से प्राप्त धन सब सार्वजनिक कार्यों में व्यय किया जाता था। इस पुस्तक का छपने का इतिहास निम्न प्रकार से है।

जिस समय यह ग्रन्थ वीर सावरकर ने लिखा उनकी आयु केवल २३ वर्ष की थी। यह ग्रन्थ सावरकर जी ने इंगलैंड में श्याम जी के भारतीय भवन में ही लिखा था। मूल ग्रन्थ मराठी भाषा में लिखा गया। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक जी ने "इतिहास छात्रवृत्ति के लिए सावरकर के विषय में क्रान्तिकारियों के भीष्म स्व० पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा को अनुरोध कर भारतीय राष्ट्र का सदा के लिये उपकार किया। इसमे हर कोई सहमत होगा जो इस ग्रन्थ को पढ़ेगा। क्योंकि यदि श्याम जी द्वारा दी हुई छात्र वृत्ति वीर सावरकर को न मिलती तो वे न तो इंगलैंड जाकर "भारतीय भवन में निवास करते, न उनका पं० श्याम जी से सम्बन्ध होता और फिर न ही यह ग्रन्थ लिखा जाता।

ग्रन्थ की छपाई में कठिनाई

यह ग्रत्थ मराठी भाषा में ही पूर्ण किया गया था। सावरकर जी इसका अनुवाद अंग्रेजी में करके "फ्री इण्डिया सोसायटी की साप्ताहिक बैठकों में अपने भाषणों में सुनाया करते थे। खुफिया पुलिस ने इस ग्रन्थ के विषय में अपना मत सरकार को बताया कि यह ग्रन्थ राज द्रोही अत्यन्त विद्रोह जनक क्रान्तिकारी साहित्य है। थोड़े दिनों में मूल मराठी ग्रन्थ के दो अध्याय लुप्त हुए प्रतीत होने लगे। पीछे पता लगा कि खुफिया पुलिस ने अपने हस्तकों द्वारा उन्हें चुराकर स्काटलेंडयार्ड में पहुँचादिये थे। फिर क्रान्तिकारियों के इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि बहुत ही चतुराई से सबकी दृष्टि बचाकर प्रकाशनार्थ भारत में सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दी। किन्तु सरकार के भय के कारण महाराष्ट्र की बड़ी से बड़ी मुद्रण संस्थाओं ने इसे छापने का साहस नहीं किया। निदान "अभिनव भारत के एक सदस्य ने अपने ही मुद्रणालय में छापने का बीड़ा उठाया किन्तु भारत की खुफिया पुलिस को ज्ञात होने से उसने महाराष्ट्र की सभी मुद्रण संस्थाओं पर एक ही समय में अकस्मात् छापा मारकर तलाशियाँ लीं गईं किन्तु यह सूचना सौभाग्य से एक पुलिस अफसर द्वारा ही इस साहसी सदस्य को मिल गई और पुलिस के वहां पहुंचने से पूर्व ही पाण्डुलिपि पेरिस भेज दी गई, वहाँ से लेखक के पास लन्दन पहुंच गई। फिर जर्मनी में इसे छपवाने का यत्न किया गया, क्योंकि वहां संस्कृत साहित्य छपता था। वहाँ का देवनागरी टाइप सर्वथा रद्दी था और जर्मनी कम्पोजीटरों का मराठी भाषा से सर्वअनभिज्ञ होने से और धन व समय पर्याप्त व्यय होने के कारण यह विचार छोड़ दिया गया। फिर आई० सी० एस० में और बेरिस्ट्री पढ़ने वाले विद्यार्थियों ने इसका अनुवाद अंग्रेजी में किया। ये विद्यार्थी अभिनव भारत के सदस्य थे। वहां की सी० आई० डी० के चौकन्ने होने से यह पुस्तक इङ्गलैंड में नहीं छप सकी। फिर पेरिस भेजी गई। फ्रांसीसी सरकार उस समय अंग्रेजों की भीगी बिल्ली थी, अतः वहां भी यह नहीं छप सकी। यह फिर हालेंड में अंग्रेजों को स्वराज मिलने से पहले ही छप गई और फ्रांस भेज दी गई। सरकार ने इसे छपने से पूर्व जब्त कर लिया था। वीर सावरकर ने इस विषय में समाचारपत्रों में अंग्रेजी सरकार की आलोचना की। अन्य पत्रकारों ने भी अंग्रेजी सरकार की खूब निन्दा की। क्रांतिकारियों ने इसकी सैंकड़ों पुस्तकें छिपाकर भारतवर्ष में सुरक्षित पहुँचा दीं। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की सब प्रतियाँ "अभिनव भारत ने बिना मूल्य ही वितरित कीं। भेजने का व्यय भी स्वयं किया। १९०६ में फ्रांस में प्रकट रूप से प्रकाशित

की गई। योरुप फ्रांस, ग्रायरलैंड, रूस जर्मनी, मिश्र, ग्रौर ग्रमेरिका ग्रादि देशों के क्रान्तिकारियों ने इस पुस्तक का ग्रच्छा स्वागत किया। इस ग्रन्थ का दूसरा संस्करण श्री हरदयाल, श्रीमती कामा, चट्टोपाध्याय ग्रादि ग्रभिनव भारत के सदस्यों ने निकालने का निश्चय किया। उस समय वीर सावरकरादि ग्रपने सैंकड़ों साथियों के साथ गिरफतार हो चुके थे। ला० हरदयाल ने ग्रमेरिका में ग्रपने "गदर" पत्र द्वारा इसका ग्रनुवाद उर्दू पञ्जाबी तथा हिन्दी में क्रमशः प्रकाशित किया, जिससे सैनिकों ग्रौर सिखों में जो केलेफोर्नियों में थे, बड़ा ग्रच्छा प्रभाव पड़ा। १९१४ में ई० में भारतीय सेना में जो विद्रोह करने की तैयारी की जा रही थी उसमें इस ग्रंथ ने प्रचार का बड़ा ग्रच्छा कार्य किया। इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि मराठी भाषा की देवी कामा के पास पेरिस भेज दी गई। वीर सावरकर गिरफ्तार हो चुके थे। देवी कामा ने यह पाण्डुलिपि "जेबरबैंक ग्राफ पेरिस' में सुरक्षित रख दी। किन्तु जर्मनी के ग्राक्रमण से, तथा श्रीमती कामा की मृत्यु से न पेरिस बैंक ही रहा, न जेवर की ग्राहक देवी कामा। बहुत खोज करने पर भी कुछ पता न चला। ग्रौर वह मराठी साहित्य ग्रंथ नष्ट ही हो गया। सम्भव है इसके कहीं ग्रौर भी संस्करण निकले हों, पता नहीं २९२९ में हुतात्मा वीर भगतसिंह ने यह ग्रंथ गुप्त रूप से प्रकासित कराया, जिस पर सावरकर का नाम भी दिया था। भारत में कहीं-कहीं भगतसिंह द्वारा प्रकाशित कापियां मिलीं हैं। १९४२ में पूज्य वीर नेता सुभाषचन्द्र जी ने ज्वालामुखी नाम से इस का प्रथम भाग प्रकाशित किया। नेता जी ने ग्रन्थ का पूर्ण लाभ उठाया ग्रौर "चलो दिल्ली का ग्रमर नारा इसी ग्रंथ से लिया गया। १९४६ में प्रातीय शासन सूत्र काँग्रेसियों ने सम्भाला तो बम्बई के नवयुबको ने गुप्तरूप से इस ग्रंथ का ग्रंग्रेजी संस्करण पुनः मुद्रण किया ग्रौर मंत्री मण्डल को चेतावनी दी कि हम जेल में जाने का जोखम उठाकर भी इस ग्रंथ का विक्रय करेंगे। उसी समय बम्बई मंत्री मण्डल ने सावरकर साहित्य की जब्ती रद्द करने की घोषणा की ग्रौर इस प्रकार ३८ वर्षों का ग्रन्याय दूर हो गया। सारा भारत बम्बई मंत्रिमण्डल को धन्यवाद देता रहेगा। यह ग्रंथ इतना उत्तम है जिस समय भारतीय स्वाधीनतार्थ "ग्रभिनव भारत से सहस्त्र क्रांति का प्रारम्भ किया था, तव से नेता सुभाषचन्द्र बोस की ग्राजाद हिंद सेना की चढ़ाई तक सबको प्रेरणा देने वाला यह ग्रनमोल ग्रंथ क्रान्तिकारियों का 'ग्रंथ साहब बन गया। ग्रौर ग्रागामी क्रांतिकारियों का प्रकाश स्तम्भ बना रहेगा। मेजिनी के चरित्र द्वारा सावरकर भारतियों को योरुपीय युद्ध का पाठ पढ़ाना चाहते थे ग्रौर सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-समर के इतिहास द्वारा विषम परिस्थितियों में क्रांति करना सिखाना चाहते थे। वह कार्य इन दोनों ग्रंथों ने कर दिखाया। भारत के सभी क्रांतिकारियों ने वीर सावरकर के इन दोनों ग्रंथों से भारत को स्वतन्त्र करने तक का पूर्ण लाभ उठाया। १९०७ में ग्रंग्रेज लोग सन् १८५७ की क्रान्ति को जीतने की प्रसन्नता में ग्रर्द्ध शताब्दी उत्सव मना रहे थे। इसका बिरोध करने के लिए वीर सावरकर ने "इण्डिया हाउस' में स्वतन्त्रता दिवस बड़ी धूम-धाम से मनाया, प्रतिज्ञायें की, उपहास रखे गये। ब्रिटिश राज्य की राज्य की राजधानी में ब्रिटिशसत्ता के विरोधी नाना साहब, तात्यां टोपे, लक्ष्मीबाई, ग्रौर कुँवरसिंह को "हुतात्मा के रूप में पूजना वीर सावरकर का ग्रसाधारण साहस था। शहीदों की स्मृति में हजारों पर्चे भारत ग्रौर इङ्गलैंड में वितीर्ण किये गये। उस दिन भारतीय विद्यार्थी ग्राक्सफोर्ड ग्रौर कैम्ब्रिज के कालिजों में ग्रपनी छातियों में "१८५७ के वीरों की जय के बिल्ले लगाकर गये। ग्रंग्रेज प्रोफेसर ग्रापे से बाहर होकर बिल्लों पर टुट पड़े ग्रौर बोले "वे हुतात्मा न थे, हत्यारे थे। भारतीय विद्यार्थियों को क्षमा मांगने के लिये कहा। क्षमा न मांगने पर वे सब एक साथ कालिजों से बाहर हो गये। कुछ

की छात्रवृत्तियाँ छीन ली गईं और कुछ ने अपनी इच्छा से त्याग दीं। कुछ एक के पिताओं ने वापिस बुला लिया। इस घटना से इङ्गलिश व भारत सरकारें दोनों ही चिन्तित हो गईं इंगलैंड के पत्रों ने भारतीय विद्यार्थियों के विरुद्ध नियमित आन्दोलन आरम्भ कर दिया। सभी इङ्गलिश पत्र ने इण्डिया हाउस अभिनव भारत, की गुप्त सभायें, स्वतन्त्रता दिवस, क्राँतिकारी साहित्य और आतंकवादी का पर लम्बे लम्बे लेख लिखकर सावरकर पर खुले रूप में आक्रमण किया। इन पत्रों की घृणात्मक चाल से बचने के लिए सावरकर ने आयरलैंड, सिनफिन और दूसरे क्रांतिकारियों से सम्बन्ध स्थापित किया। अमेरिका के गैरिकअमेरिकन'' आदि क्रांतिकारी पत्रों में लेख लिखे। ये लेख बम्बई के "बिहारी और कलकत्ते "युगान्तर पत्र में भी छपते थे। संसार के ब्रिटिश विरोधी समग्र राष्ट्रों को एक शृंखला में पिरोने के लिये, मिश्र, चीन, टर्की और आयरलड की क्रांतिकारी संस्थाओं से अपनी संस्था का सम्बंध जोड़ा। ब्रिटेन द्वारा भारत के विरुद्ध किये जा रहे मिथ्या प्रचार का खंडन करने के लिए सावरकर ने जर्मन, फ्रांच, आयरिश, चीनी और रूसी पत्रों में लेख छपवाये। वीर सावरकर की अभिनव भारत ने १९०६ से १९१० तक अल्पकाल में योरुप में जो आश्चर्य जनक कार्य किये उसी के कारण योरुपीय लोगों का ध्यान भारतीय राजनीति की ओर सर्व प्रथम हुआ। पं० श्याम जी, ला० हरदयाल आदि अनेक देशभक्त फ्राँस, जर्मनी, अमेरिका आदि देशों में पूर्ण उत्साह के साथ कार्य कर रहे थे। इन देशभक्तों के घोर परिश्रम का ही यह फल था कि १९१४ के महायुद्ध में भारतीय स्वाधीनता इतना प्रमुख विषय बना कि जर्मनी के राजा कैसर ने प्रैजिडैंटी विल्सन की मांगों के उत्तर में जो प्रसिद्ध पत्र लिखा उसमें विश्वशांति के लिए भारत को स्वतंत्र करना आवश्यक शर्त रखी गई थी। अभिनव भारत के कार्यों से घबराकर ब्रिटिश सरकार ने इसे कुचलने का निश्चय किया। इङ्गलैंड में "स्काट लैंड यार्ड भरतीय विद्यार्थियों का पीछा करने लगा और भारत में साधारण सी० आई० डी० से लेकर गवर्नर तक दमन करने में जुट गये। इसके होते हुए भी मैडम कामा की अध्यक्षता में "बन्दे मातरम्" पत्र "अभिनव भारत" द्वारा निकलता रहा और इस द्वारा स्कूल, कालिजों, क्लबों यहाँ तक कि फौजी छावनियों में भी प्रचार होता रहा। पञ्जाबीयों विशेषतया सिक्खों में राष्ट्रीय भाव भरने के लिये पञ्जाब की छावनियों में गुरुमुखी में लिखे सहस्रों पर्चे बांटे गये। लन्दन में गुरुगोबिंदसिंह का जन्म बड़े समारोह से मनाया गया। उसमें सावरकर, ला० लाजपतराय, विपिन चन्द्रपाल आदि हिंदू नेताओं ने भाषण दिए। उस दिन "खालसा" नाम से एक पर्चा बांटा गया यह जब्त कर लिया गया। यह भारत के स्कूल, कालिजों और विशेष रूप से पञ्जाब में भेजा गया। इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। वीर सावरकर ने मराठी भाषा में "सिक्खों का इतिहास (महाराष्ट्र में सिक्ख इतिहास के प्राचारार्थ लिखा। यह भारत भेजा जा रहा था। सरकार ने मार्ग म ही निकाल लिया। सावरकर ने जो भी ग्रंथ लिखा उसी का गला सरकार ने जब्त कर घोट दिया। १९१४ में पञ्जाब में जो क्रांति उत्पन्न की उसमें "अभिनव भारत द्वारा किये गये आन्दोलन का पर्याप्त भाग था। वैसे विशेष पुरुषार्थ ला० हरदयाल जी तथा रासबिहारी और करतारसिंह का था। "अभिनवभारत को समाप्त करने के लिए सरकार की दमन नीति की चक्की जोर से चलने लगी। ग्वालियर में "अभिनव भारत के दर्जनों सदस्य पकड़े गए, उनके पास शस्त्र पाए गये उन्हें लम्बी-लम्बी सजायें दी गईं। लोकमान्य तिलक और परांजय भी पकड़े गये। इससे आन्दोलन दबने की अपेक्षा भड़क उठा। बम्बई और नासिक में भयंकर लूट-मार हुई। इसके अपराध में बड़े भाई गणेश सावरकर को दंगइयों

का नेता कहकर छः मास का कठोर कारावास दिया गया ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन ने और भी जोर पकड़ा।

वीर गणेश सावरकर

सावरकर के बड़े भाई गणेश जी भारत के ही क्रान्तिकारियों के दल का संगठन कराते थे। १६०८ में गणेश सावरकर ने "लघु अभिनव भारत मेला" नाम के कुछ देश भक्तिपूर्ण भड़काने वाली कवितायें प्रकाशित की थीं। इन कविताओं के कारण गणेश सावरकर को १२१ धारा के अनुसार अर्थात् सरकार के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के अपराध में आजीवन काला पानी का दण्ड दिया गया कविताओं के लिये काला पानी यही ब्रिटिश सरकार का न्याय था। बम्बई हाईकोर्ट के मराठा भाषी जज ने कहा कि "लेखक का प्रधान उद्देश्य हिन्दुओं के कुछ देवताओं तथा वीरों का जसे शिवाजी आदि का नाम लेकर वर्तमान सरकार के विरुद्ध युद्ध घोषणा करना है। ये नाम तो सिर्फ बहाने हैं। लेखक का कहना है केवल इतना है की शस्त्र उठाकर इस सरकार का विध्वंस करो, क्योंकि यह विदेशी तथा अत्याचारी है,। गणेश सावरकर को ६ जून १६०६ के दिन आजीवन कारावासे की सजा सुनादी गई और तार द्वारा इसकी सूचना लन्दन भेज दी गई। कहा लाता है इसके पश्चात् विनायक सावरकर ने लन्दन में भारतीय भवन की बैठक में बहुत तेजी से बोलते हुए कहा कि इसका बदला लिया जायेगा। पहली जुलाई को ही ठीक इसके पश्चात् सारवरकर की प्रेरणा पर मदनलाल धींगड़ा ने कर्ज्जन वाई ली को गोली से उड़ा दिया। रोटल साहब ने भी सन्देह प्रकट किया है। गणेश सावरकर पर मुकद्दमा करने वाले एक अंग्रेज मिस्टर जैकसन थे। जव गणेश सावरकर को सेशन सुपुर्द किया तो दल ने निश्चय किया कि मि० जैकसन की हत्या की जाय। तदनुसार औरंगाबाद के एक सदस्य ने २१ दिसम्बर १६०६ को मि० जैकसन को गोली मार दी। महाराष्ट्र में यह दूसरे अंग्रेज की हत्या थी। यह हत्या उन्हीं पिस्तौलों में से एक पिस्तौल से की गई थी जो लन्दन से आई थी। १६०६ फरवरी मास में विनायक सावरकर को २० ब्राउनिंग पिस्तौलें मय कारतूस मिलीं थी। ये पेरिस से आई थीं। चतुर्भुज अमीन नाम का भातीय भवन में एक रसोईया था। वह जब भारत लौट कर आ रहा था तो इसके सन्दूक में एक झूठा पेंदा लगाकर ये सब पिस्तौलें भारत भेजी गई थीं। जब गणेश सावरकर गिरफ्तार हुए तो गिरफ्तार होने से पूर्व ही वे अपने एक मित्र को बता गये थे कि इस प्रकार जहाज में २० पिस्तौलें आ रहीं हैं। गणेश के पकड़ जाने के पश्चात् उस मित्र ने यह सब सामान ले लिया था। इस प्रकार गणेश सावरकर का बदला लिया गया। उस समय आधे दर्जन भारतीयों के "काले पानी"के कारावास का दण्ड दिया गया। उनमें से गणेश सावरकर एक था। यह सख्त दण्ड सावरकर दल को भयभीत करके समाप्त करने के लिए किया गया था। किन्तु ये लोग पहले की अपेक्षा भी और अधिक उत्साह से कार्य करने लगे।

इन्हीं दिनों सावरकर ने बैरिस्परी की अंतिम परीक्षा उत्तीर्ण कर जब प्रमाणपन देने का समय आया तो लार्ड मारले और कुछ इण्डियन्स ने सावरकर पर राजद्रोह का अभियोग चलाया। भारत सरकार ने भी सहायता की। सावरकर ने इन सब आक्षेपों का उत्तर दिया। न्यायालयों ने निर्णय दिया कि प्रमाण पत्र तो दे देया जाये किन्तु आगे को राजद्रोह न करने की प्रतिज्ञा इनसे कराली जाये। सावरकर ने उत्तर दिया "यह भी नहीं हो सकता क्योंकि यदि मैं कभी राजद्रोह करू तो सरकार मुझ पर अभियोग चला कर दण्ड दे सकती है, फिर आश्वासन देने की आवश्यकता ही क्या है,। इन्हें उस समय प्रमाणपत्र

दिया गया। इनका प्रमाणपत्र जब्त कर लिया गया। बैरिस्टरी समान पद पर इस प्रकार लात मारने वाले पहले बैरिस्टर वीर सावरकर ही हैं।

मदनलाल धगींड़ा ने जब कर्जन वायली को गोली से मार दिया तो इसकी सार्वजनिक रूप से निन्दा करने के लिये लन्दन में एक बड़ी सभा की गई, जब निन्दा का प्रस्नाव पास किया जाने लगा तो सम्मति लेने के समय साहस पूर्वक वीर सावरकर ने इसका विरोध किया इस पर एक यूरेशियन ने उनकी नाक पर घूँसा मारा, तब उसी समय एक भारतीय युवक ने उस यूरेशियन के सिरपर लाठी मारी, जिससे उसका सिर फट गया और वह गिर पड़ा। सभा में भगदड़ मच गई, उस समय सावरकर जी पकड़ लिए गये किन्तु उनको कुछ घन्टे के पश्चात् छोड़ दिया गया। सावरकर ने उस यूरेशियन पर भी अभियोग चलाने से इन्कार कर दिया। दूसरे दिन इसका स्पष्टीकरण करते हुए "लन्दनटाईम्स,, में कहा "अदालत के निर्णय से पूर्व किसी को हत्याकारी कहना अदालत का अपमान करना है,। अब लन्दन में पुलिस भारतीयों विद्यार्थियों के पीछे छाया के समान रहने लगी। सावरकर की आज्ञा से लन्दन के स्काटलैंडयार्ड के खुफिया पुलिस को भारतीय युवकों ने खूब तंग किया। सावरकर की प्रेरणा से कुछ युवक लन्दन की खुफिया पुलिस को उतने ही समाचार देते थे जितने सावरकर जी देने को कहते थे। कभी-कभी तो पुलिस को धोखे में डालने योग्य समाचार भी दिये जाते थे। ये युवक अपना मासिक वेतन अभिनव भारत संस्था में जमा करा देते थे। ऐसे ही एक युवक मद्रासी सज्जन थे। कुछ समय पश्चात् उनके इस रहस्य का पता सरकार को चल गया। वारन्ट निकले, किन्तु उन्हें पता चलते ही वे लन्दन छोड़ पेरिस चले गये। इधर पुलिस की सरगर्मियों के कारण इंगलैण्ड के भारतीय विद्यार्थियों की दशा बहुत बुरी हो रही थी। उन्हें रहने के लिए कोई स्थान नहीं देता था होटल, और रैस्टोरेंट में उन्हें घुसने नहीं दिया जाता था और बातचीत करते हुए भी लोग इनसे डरते थे। खुफिया पुलिस का जाल इस प्रकार बिछा दिया गया कि अब "भारतीय भवन" में गुप्त सभायें करना असम्भव हो गया। अन्ततः इण्डिया हाऊस बन्द कर दिया प्रत्येक भारतीय युवक का घर ही "इण्डिया हाऊस" बन गया। सब लोग प्रतिदिन रात को एक स्थान पर इकट्ठे होते और अपनी राजनीतिक प्रतिज्ञाओं को दोहराते थे। वे जोर-जोर से कहते थे "भारत स्वतन्त्र होकर रहेगा" भारत अवश्य एक स्वतन्त्र राष्ट्र बनेगा। भारत में एक भाषा और एक लिपि होगी। लिपि देवनागरी और भाषा हिन्दी होगी। राजा वा राष्ट्रपति जनता द्वारा निर्वाचित होगा। इससे स्पष्ट है कि क्रान्तिकारी केवल ध्वंसात्मक कार्य ही नहीं करते थे किन्तु वे भारत के भावी शासन विधान की रूप रेखा भी बना रहे थे।

जब लन्दन में भारतीय विद्यार्थियों को कष्ट दिया जा रहा था उस समय भारत सरकार सावरकर के सम्बन्धियों और मित्रों पर भयंकर अत्याचार कर रही थी। उनके स्वसुर जो जाहर राज्य के दीवान थे अपने पद से हटा दिये गये। उनके अनेक मित्रों की नौकरियाँ छीन ली गई सम्पत्ति जब्त करली गई। कितनों के धन्धे डूब गये। सावरकर से बातचीत करते हुए भी लोग डरते थे। इन्हें रहने को मकान नहीं मिलता था। होटल वाले भी अपने यहाँ इन्हें नहीं ठहरने देते थे। इन सब कष्टों के होते हुए भी सावरकर ने 'तलवार, नामक एक पत्र निकाला। इस पत्र द्वारा सशस्त्र क्रान्ति का प्रचार करते थे, फिर यह पत्र वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय को सोंप दिया। सावरकर जी रोग के कारण वेल्स के एक आरोग्य भवन में ठहरे हुए थे मित्रों ने खूब सेवा शुश्रुषा की। एक सम्पादक ने उन्हें तार दिखलाया कि गणेश सावरकर की सजा अपील में भी कायम रही।

और अनन्त कान्हेरे नाम के एक युवक ने नासिर के कलेक्टर मि० जैक्सन को गोली से मार डाला। इसके दूसरे दिन ही इंगलैंड के समाचार पत्रों ने प्रचार आरम्भ कर दिया कि इन सब अत्याचारों में सावरकर का हाथ है। अब सब मित्रों ने सावरकर से इंगलैंड छोड़कर पेरिस चले जाने का आग्रह किया। वीर सावरकर पेरिस पहुंचकर देवीकामा के पास रहने लगे। श्रीमती कामा ने इनकी सेवा सुश्रूता करके इनको शीघ्र ही रोग मुक्त कर दिया। श्रीमती कामादेवी जी "बन्दे मातरम्" नाम का एक पत्र निकालती थी। यहां सावरकर जी तथा ला० हरदयाल दोनों मिलकर योजना बनाया करते थे। ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर पेरिस में भी सावरकर पर कड़ी दृष्टि रखते थे। मि० जैक्सन की हत्या का मुकद्दमा समाप्त हो गया। पुलिस इस सम्बन्ध में सावरकर जी पर अभियोग चलाना चाहती थी किन्तु वह इस बात को गुप्त रखे हुए थी। भारतीय पुलिस इन्हें गिरफ्तार करने के लिए चुपचाप लन्दन पहुँच गई। इस बात का सावरकर को पता नहीं चला। इधर सावरकर अनन्त कान्हेरे के मुकद्दमे में इस बात को सतर्कता से देख रहे थे कि मुकद्दमे में कहीं उनका नाम आता है या नहीं। मुकद्दमे की समाप्ति पर जब इन्हें यह विश्वास हो गया कि मुकद्दमे में उनका नाम नहीं आया तो उन्होंने लन्दन में जाकर अधिक कार्य करने का निश्चय किया। पंडित श्याम जी ने इनको समझाया कि 'आप इस समय क्रान्तिकारियों के सेनापति हो, बचकर कार्य का संचालन करो। व्यर्थ जेल में पड़कर सड़ने वा फांसी पर चढ़ने से सब कार्य समाप्त हो जायेगा।" किन्तु वीर विनायक यह सोचते रहते थे "क्या यह मनुष्यता है कि मेरे साथी जो मेरे ही कारण इस मार्ग में आये उन्हें आज आग में धकेल कर स्वयं इस फ्रांस की सुन्दर राजधानी में मौज करूँ। मैं कैसा सेनापति, ? जब सारे साथी कष्टों में पड़े हुए हैं, मेरी कराई प्रतिज्ञाओं के कारण बेड़ियाँ हथकड़ियाँ पहने भूखे प्यासे कारावास की अन्धेरी कोठड़ी में पड़े सड़ रहे हैं। और मैं नदी तट पर आनन्द से घूम रहा हूं। यदि मैं भारत नहीं जा सकता तो मैं इंगलेंड अवश्य जाऊँगा। मुझे वे सब कष्ट सहने होंगे जो मेरे साथी सह रहे हैं। मुझे संसार को बताना होगा कि मैं केवल त्याग ही नहीं कर सकता किन्तु विपत्तियाँ भी सहन कर सकता हूं। यदि मैं पकड़ा गया और मेरे प्राण चले गये तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी। इस पुण्य भूमि के लिए मृत्यु आने तक कार्य करते रहने की मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जायेगी। इन विचारों के वशीभूत हो वे पेरिस से साथियों के रोकने पर लन्दन को चल दिये। पेरिस के सभी साथी इन्हें पहुँचाने आये। विदा होते समय सावरकर जी बोले—"अब तक मैंने शक्तिभर कार्य किया है। किन्तु अब मैं शक्तिभर कष्ट सहने जा रहा हूं। देश की वर्तमान परिस्थितियों में कष्ट सहना केवल कार्य करने से अधिक श्रेयस्कर है।" पेरिस से इंगलैण्ड जाने वाले जहाज पर सवार हो गये। जहाज इंगलैंड पहुंचा, सावरकर लन्दन जाने वाली रेलगाड़ी पर सवार हो गये।

लन्दन में गिरफ्तारी

जिस डिब्बे में सावरकर सवार हुए उसमें सशस्त्र गुप्त पुलिस का पहरा था। लन्दन के विक्टोरिया स्टेशन पर गाड़ी के पहुंचते ही सावरकर के डिब्बे को सशस्त्र पुलिस ने घेर लिया और गिरफ्तार कर लिया। उनको इंगलेंड की ब्रिस्टल जेल में रखा गया। इस जेल में वे एक बार मदनलाल धींगड़ा से भी मिलने आये थे। १३ मार्च १९१० को यह गिरफ्तार किये गये थे। अगले दिन संसार के समस्त समाचार पत्रों में इनकी गिरफ्तारी का समाचार प्रकाशित हुआ। मुकद्दमा वहाँ की अदालत में पेश हुआ। न्यायालय पहले से ही दर्शकों की भीड़ से भरा हुआ था। ज्यों ही सावरकर कठघरे में घुसे सैंकड़ों लोगों ने करतलध्वनि से इनका स्वागत किया। भारतीय दंड विधान की १२१ धारा का अभियोग इन पर लगाया।

गया। फिर ये जेल भेज दिये गये। इनके मित्रों ने इन्हें छुड़ाने के षड्यन्त्र भी किये किन्तु वे सब असफल रहे। अभियोग का निर्णय न्यायालय ने यह दिया कि इन्हें भारत भेजा जाये। प्रीवीकोंन्सिल में अपील की किन्तु वहाँ से भी भारत भेजने का निर्णय हुआ। भारत भेजने का अर्थ था कालापानी या फांसी। इस प्रकार अपनी मृत्यु निकट समझकर सम्बन्धियों से मिलने की भी आशा न होने पर अपनी भावज के नाम मृत्यु पत्र लिखा जिसका सारांश यह था—"हमने भारत माता को दासता से मुक्त करने का व्रत लिया था। आज हमारा सारा परिवार उसी के लिये अपने सर्वस्व की आहुति दे रहा है। आज हमारी प्रतिज्ञायें पूर्ण हुईं। अपनी माँ को बन्धन मुक्त कराने के लिए प्रज्वलित अग्निकुण्ड में अपना स्वार्थ जलाकर आज हम कृतार्थ हो गये हैं। मेरी मातृभूमि ! तेरे चरणों पर मैं अपना यौवन, देह, भोग, गृह, धन; कान्ता, ज्येष्ठ भ्राता सभी को चढ़ा चुका हूं। अब मैं अपना देह भी चढ़ाने के लिए प्रस्तुत हूं। यही क्या, यदि हम सात भाई भी होते तो भी तेरी बलिवेदी पर मैं उन्हें चढ़ा देता। जो मातृभक्ति में लगे हुए हैं वे धन्य हैं। हमारा कुल भी उन्हीं में से एक है। प्यारी भावज ! इस प्रकार विचार कर अपने व्रत का पालन कीजिये और अपने कुल की दिव्यता का वर्धन कीजिए। प्यारी भावज ! तुम्हारा सारा व्यवहार वीरांगना की भांति होना चाहिये। देवि ! यहाँ से मेरा तुम्हारे लिये यही सन्देश है। मैं तेरा बालक तेरे वत्सल चरणों को यहीं से प्रणाम करता हूँ। मेरा प्रेम पूर्वक प्रणाम स्वीकार करो।" किस प्रकार सरकार सावरकर दल को कुचल रही थी इसका थोड़ा-सा वृत्त लिखता हूं।

नासिक तथा ग्वालियर का षड्यन्त्र

सावरकर बन्धु गणेश सावरकर के नेतृत्व में महाराष्ट्र का क्रान्तिकारी आन्दोलन चल रहा था। उनको आजीवन कारावास दंड मिलने पर मि० जैक्सन की हत्या हुई। इस हत्या के अपराध में सात व्यक्तियों पर अभियोग चलाया गया। जिनमें तीन को फाँसी दे दी गई। ये सब चितपावन ब्राह्मण थे। नासिक में एक षड्यन्त्र चला, जिसमें ३८ व्यक्तियों पर केस चलाया। उसमें २७ आदमी दोषी ठहराये गये, उनको सजायें मिलीं। पहले जिस संस्था का नाम मित्र मेला था वही "अभिनव भारत" संस्था बन गए। नासिक षड्यन्त्र के सब अभियुक्त सारे महाराष्ट्र में दूर दूर से लाये गये थे, ये सब ही चितपावन ब्राह्मण थे। यह षड्यन्त्र सुदूर देश तक फैला हुआ था। ग्वालियर में भी दो षड्यन्त्र चले, एक में २२ व्यक्ति तथा दूसरे में १६ व्यक्ति फंस गये थे।

वायसराय पर बम

१६०६ में लार्ड मिन्टो और लेडीमिन्टो जब अहमदाबाद में आईं थीं तो इनकी गाड़ी पर भीड़ में से किसी ने बम फेंका था, वह बम फूटा नहीं। जब वहां खोज की गई कि क्या गिरा, तब एक व्यक्ति ने उसे उठाया तो उसका हाथ उड़ गया। यही लार्ड मिन्टो थोड़े दिनों के पश्चात् अंडमान का निरीक्षण करते हुए एक पठान कैदी की छुरी से मारा गया था।

सतारा षड्यन्त्र

सन् १६१० में सतारा में एक षड्यन्त्र का पता चला। यहाँ तीन ब्राह्मण युवकों को जो "अभिनव भारत" समिति के सदस्य थे, बादशाह के विरुद्ध षड्यन्त्र का दोष लगाकर दंड दिया गया। इस प्रकार क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रारम्भिक युग में दो षड्यन्त्र दल थे। १. चापेकर बन्धु का दल। २. सावरकर बन्धु का दल। दोनों दलों में धार्मिक भावनाओं का बहुत ही महत्त्व पूर्ण संगठन किया गया। धर्म के

नाम पर इन दलों ने सच्चा बलिदान किया। ये दल देश-सेवा को धर्म समझते थे। चाफेकर बन्धु ने तो प्रारम्भ से अपनी संस्था का नाम "हिन्दू धर्म बाधा निवारणी" रक्खा था। धर्म और राजनीति यथार्थ में पृथक् नहीं हैं। राजनीति धर्म का एक अंग है। धर्म के बिना राजनीति अंधी होती है।

समुद्र तरण

श्री सावरकर १९१० ई० में २६ वर्ष की आयु में बैरिस्टर के स्थान पर कैदी का वेश धारण कर मातृभूमि के अन्तिम दर्शनार्थ चल पड़े। भारतीय पुलिस और स्काटलैंडपाई के चुने हुए अधिकारियों का बड़ा सख्त पहरा था। उन्हें सावरकर को कैदी बनाने का बड़ा हर्ष था। उन दिनों भारत जाने के लिये इंगलिश खाड़ी को पार कर फ्रांस उतर कर रेल द्वारा इटली और फिर वहाँ से जहाज पर सवार हो, भारत जाते थे। किन्तु अंग्रेज सरकार इन्हें फ्रांस वाले मार्ग से न ले जाना चाहती थी, क्योंकि उन्हें ज्ञात हो गया था कि सावरकर के फ्रांस की भूमि में घुसते ही पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा, अंग्रेजी पुलिस पर सावरकर को बलपूर्वक कैद करने का दावा फ्रेंच न्यायालय में चलायेंगे। अतः इस मार्ग को छोड़कर विस्के की खाड़ी से ले जाने का निश्चय था। अंग्रेजी पुलिस सावरकर को पकड़ने की चतुराई के कारण बड़े अभिमान में थी। सावरकर भी मन में स्वतन्त्र होकर भागने का विचार कर रहे थे। जहाज को दूसरे मार्ग से जाना था किन्तु न जाने वह कैसे मार्सेल्ज (फ्रांस) होकर ही जाने लगा। सावरकर इस प्रतीक्षा में थे कि सम्भव है कि कुछ भारतीय वीर मेरी मुक्ति के लिये यहाँ आये हों। जहाज ने मार्सेल्स में लंगर डाला, दूर तक वहां कोई सहायक दिखाई न दिया। अब स्वयं ही कुछ करने की सोच रहे थे, किन्तु पुलिस का पहरा पहले से भी सख्त था, शौच, स्नान के समय भी वह अड़कर खड़ी हो जाती थी। सामने लगे हुए दर्पण पर इनका प्रतिबिम्ब देख इनकी प्रत्येक चेष्टा पर ध्यान रखती थी। सावरकर की सारी रात इसी उधेड़ बुन में बीती, प्रातः काल हुआ और जहाज के चलने का समय हुवा। सावरकर ने निश्चय किया अभी कुछ हो सकता है। "अभी, वा कभी नहीं" वे अपनी कोठड़ी में घुसे। कोठड़ी के ऊपर एक छोटी-सी खिड़की (पोर्ट होल) कुछ खुली हुई थी। शीघ्रता से अपना गाऊन उतार कर दरवाजे पर डाल दिया। सिपाही जो पहरे पर था उसको अन्दर का दृश्य दीखना बन्द हो गया। अभी सिपाही संभल भी न पाया था कि वे कूद कर खिड़की तक जा पहुंचे, सिपाही बोला "क्या करता है? क्या करता है?" द्वार बन्द था उसने शोर मचाया, द्वार तो क्रोध में सिपाही ने तोड़ दिया किन्तु इस समय में वीर सावरकर शीघ्र ही खिड़की में घुस कर सिपाही के अन्दर आने से पूर्व बाहर निकल कर धड़ाम से समुद्र में कूद पड़ा। निशाना साध कर गोलियाँ चलाईं गईं किन्तु वे डुबकी लगा कर निशाना बचाते हुए लहरों पर उछलते हुए आगे ही आगे बढ़ते गये। सिपाही और, खिड़की के पास आये पर किसी व्यक्ति का समुद्र में कूद कर पकड़ने का साहस नहीं हुवा। वे दौड़े और जहाज के कप्तान के पास गये। डाबिज पुल फेंका गया, सिपाही और अधिकारी उस पर दौड़ने लगे। इसी बीच में सावरकर किनारे लग गये, तट पर दीवार बड़ी ऊँची थी। "अभिनव भारत" में ऊँची दीवार पर चढ़ने का अभ्यास किया था वह काम आया। दीवार पर चढ़ कर ये फ्रांस की भूमि में पहुँचे। वहां की स्वतन्त्र भूमि में लम्बे-लम्बे श्वास लिये किन्तु इन्हें पकड़ने के लिये पीछे "चोर हैं" "पकड़ो" कहता हुवा अधिकारियों और सिपाहियों का बड़ा झुंड आ रहा था। ये भी उन्हें देखकर बचने के लिये भागे, उस समय ये थके हुए थे। एक मील तक दौड़ लगाई, पुलिस भी पीछे भाग रही थी। इन्हें भागते हुए कोई अपना सहायक नजर नहीं आया,

पास से ट्राम गाड़ियां बड़ी तेजी से भाग रही थीं। पास में एक पैसा भी न था। यदि इस समय इनके पास तीन चार पैसे होते तो गाड़ी में बैठकर बच निकलते, किन्तु कैदी के पास पैसे कहां से आते। ये भागते भागते एक फ्रेंच सिपाही के पास पहुंच गये और आत्मसमर्पण कर दिया। टूटी-फूटी फ्रेंच भाषा में उसे समझाया कि मैं भारत की स्वतन्त्रतार्थ लड़ने वाला अंग्रेज सरकार द्वारा पकड़ा हुवा कैदी और फ्रांस का एक निर्दोष अभ्यागत हूँ। अब मैं कैद से छूट कर फ्रांस की भूमि पर आ गया हूं। आप मुझे फ्रेंच मजिस्ट्रेट के पास ले चलें। अंग्रेज पुलिस को मुझे इस देश में पकड़ने का कोई अधिकार नहीं है। परन्तु वह मूर्ख सिपाही इन ऊँची बातों को क्या समझता। उधर जरी के फीते लगाये हुये बड़े डील डौल वाले अंग्रेज सिपाहियों ने सोने की गिन्नियां उसे रिश्वत में भेंट कीं तो फ्रेंच सिपाही ने प्रसन्नता पूर्वक सावरकर को अंग्रेजी सिपाही को सौंप दिया। वह एक गीला बनियान और पाजामा पहने हुये छोटे कद के धूलि धूसरित सावरकर की कब सुनता था। उसको सावरकर ने कहा "आह! मुझे न्यायालय में पेश किये बिना किसी दूसरे को नहीं सोंप सकते" कानून रिश्वत के आगे चुप हो गया। सावरकर को पकड़ कर अंग्रेज पुलिस ले जाना चाहती थी। वे जाना न चाहते थे। इस समय एक गोरे ने उनके सिर हर एक घूँसा मारा, फिर क्या था सावरकर भी उस गोरे पर जोर से टूट पड़े और बोले "इससे पूर्व कि तुम मुझे मारो मैं तुम में से कम से कम एक को अवश्य समाप्त कर दूँगा।' धमकी से डर कर मारपीट बन्द हुई और सावरकर पकड़ कर फिर जहाज की उसी कोठड़ी में बन्द कर दिये गये। अंग्रेज सिपाही इन पर अत्याचार करने वाले ही थे कि सावरकर ने उनको प्राणों पर खेल जाने की धमकी दी। फिर वे विवश हो उन्हें कुछ न कह कर मन मार कर चुप बैठे रहे। जहाज बम्बई पहुँचा। इन्होंने नंगी क़िरचों के पहरे में मातृभूमि में पैर रखा और जंजीरों से जकड़े हुए हाथों से वीर सावरकर ने पुण्य भूमि को नमस्कार किया।

भारत भूमि में बन्दी के रूप में

वहां से एक बन्द मोटर में बैठा कर स्टेशन पर ले जाया गया। वहां से वह स्वतन्त्र वीर कैदी के रूप में नासिक ले जाकर पुलिस चौकी में रखा गया। चुने हुए पुलिस पहरेदार रक्खे गये फिर भी इन के मित्र हवालात में सब समाचार दे जाते थे। एक दिन एक अंग्रेजी पत्र में इन्होंने पढ़ा कि फ्रेंच सरकार ने इंगलिश सरकार से उन्हें वापिस मांगा है। इन्हें सन्तोष हुवा कि मेरा प्रयत्न वृथा न गया। अंग्रेज अफसर बड़े चकित थे कि वीर सावरकर की मार्सेल्ज की घटना पत्रों में किस प्रकार छप गई। यह समाचार पहले-पहले पेरिस से कार्लमार्क्स के पौत्र की आधीनता में निकलने वाले "लाह्य मैनिटी' नामक साम्यवादी पत्र में छपा था। उसे सावरकर से बहुत सहानुभूति थी। उसने फ्रांस में खूब हल चल मचाई। इसके पश्चात् दूसरे पत्रों ने भी तीव्र आन्दोलन किया। चीन से लेकर मिश्र तक सभी पत्रों में फ्रेंच माँग का जोरदार समर्थन किया। किन्तु संसार ने अच्छी प्रकार से देखा कि असहाय और पीड़ितों की रक्षा का नगाड़ा पीटने वाली ब्रिटिश सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून को तोड़कर अपने विद्रोही सावरकर को फ्राँस भेजने से इन्कार कर दिया। फ्रेंच प्रतिष्ठा की अपील करते हुए एक हृदय स्पर्शी लेख सावरकर ने नासिक की हवालात में लिखा और वह वहां से निकल कर पेरिस के भारतीय क्रान्तिकारियों पं० श्याम जी आदि के पास पहुँचा। उन्होंने उसे छाप कर समस्त देशों में विस्तीर्ण किया। उधर योरुप में यह आन्दोलन हो रहा था। फ्रांस की सरकार की इस विषय में टक्कर हो रही थी। इस झगड़े को शान्त करने के लिये यह विषय हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को सौंप दिया गया। इधर भारत और इंगलिश दोनों सरकारें

इस पच्चीस वर्ष के भारतीय वीर युवक सावरकर के प्राण लेने के लिए लाखों रुपये व्यय करके हेग न्यायालय के लिये अपने केस तैयार कर रही थी। इधर भारत के क्रान्तिकारियों को दण्ड देने के लिये "स्पैशल ट्रिब्यूनल ऐक्ट" पास करके विशेष रूप से एक ट्रिब्यूनल बनाया गया था। इसके निर्णय की अपील नहीं हो सकती थी। इसी ट्रिब्यूनल के सन्मुख बम्बई हाई कोर्ट में सावरकर और उनके साथियों पर अभियोग चलाया गया।

ट्रिब्यूनल का निर्णय

सशस्त्र सैनिकों द्वारा घिरी हुई बन्द मोटर में सावरकर को बम्बई के हाई कोर्ट में हथकड़ी पहना कर ले गये। इनके न्यायालय में घुसते ही इन के साथी तीस चालीस नवयुवक अभियुक्तों ने जंजीरों से जकड़े हुए हाथों से अपने वीर नेता का तालियों की गड़गड़ाहट से स्वागत किया यह जंजीरों की झंकारों का अपूर्व स्वागत था। ये प्राय: सभी अभियुक्त सावरकर से सम्बन्ध रखने वाले थे। इन्हीं में इनका छोटा भाई नारायण सावरकर भी था। इन सभी युवकों ने घोर कष्ट सहे किन्तु विश्वासघात नहीं किया। अभियोग प्रारम्भ हुवा। सरकार ने अपने पक्ष का जोरदार समर्थन किया। भारतीय दण्ड विधान की १२१ धारा लगाई थी जिसका दंड फांसी या काला पानी ही मिलता था। मुख्याभियुक्त विनायक सावरकर थे किन्तु वे सर्वथा निरपेक्ष बैठे रहे। पूछने पर इन्होंने उत्तर दिया "मैं अभियोग में सर्वथा भाग नहीं लूँगा। मुझ पर ब्रिटिश न्यायालय का नियम नहीं चल सकता, क्योंकि मुझे अन्तर्राष्ट्रीय कानून तोड़कर बल पूर्वक फ्रैंच भूमि में पकड़ा गया है। डेढ़ मास के पश्चात् लम्बा निर्णय पढ़ कर वीर सावरकर को सुनाया। जज ने कहा "आप दोषी प्रमाणित हुये हैं, आप को प्राण दंड दिया जाना चाहिये था परन्तु हम आप को आजन्म काले पानी का दंड देते हैं। आप की सब सम्पत्ति जब्त की जाती है।" सिर झुका कर 'बन्दे मातरम्' बोलकर ये पीछे हट गये। इसके पश्चात् सब अभियुक्तों को चौदह वर्ष से लेकर तीन-तीन वर्ष तक के कठोर कारावास का दंड दिया गया। अन्य अपराधों के अतिरिक्त इन पर 'स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की जय हो' के नारा बोलने का भी अपराध था। निर्णय सुनते ही सब अभियुक्तों ने मिल कर जोर से 'स्वतन्त्र्य लक्ष्मी की जय हो' का नारा लगाया। जज चौंक उठा, अधिकारी घूमकर कहने लगे "पकड़ो, मारो, अब ये बन्दी हैं।" सिपाहियों ने तुरन्त विनायक सावरकर को हथकड़ी पहना कर सबसे पृथक् कर दिया। सब साथियों से अन्तिम बिदाई ली। अब इन्हें इन अपने स्वजनों, छोटे भाई और प्यारे देश से इस जीवन में फिर कभी मिलने की आशा नहीं थी। किन्तु सरकार एक जन्म के काले पानी के दंड से सन्तुष्ट न थी। नासिक के क्लैक्टर की हत्या करने में सहायता करने के अपराध में अभियोग चलाया। ये प्राणदण्ड की आशा से न्यायालय में गये, किन्तु अब की बार भी काले पानी की ही आज्ञा हुई। अपने मित्रों के हृदयस्पर्शी शब्दों में सफाई देने की प्रार्थना करने पर भी आपने पूर्ववत् मुकदमे में भाग नहीं लिया। इस प्रकार मृत्यु को खुली चुनौती देकर ब्रिटिश न्यायालय में सच्चा असहयोग करने वाला प्रथम असहयोगी वीर सावरकर ही है। दण्ड सुनकर वीर विनायक सावरकर बोले "मैं प्रसन्न हूं कि मुझे दो जन्म की काले पानी की सजा देकर सरकार ने हिन्दू धर्म का पुनर्जन्म का सिद्धान्त तो मान लिया। मेरा विश्वास है कि केवल कष्ट सहन और बलिदान से ही हमारी मातृभूमि यदि शीघ्र नहीं तो निश्चित ही विजय प्राप्त करेगी। इसलिये मैं आपके विधान द्वारा दिये गये कड़े से कड़े दण्ड को सहन करने के लिये प्रस्तुत हूँ।'

डोंगरी जेल

पचास वर्ष का कठोर कारावास देकर सावरकर बम्बई के डोंगरी जेल में भेज दिये गये। अब हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा की जाने लगी। इसी बीच उन्हें जेल का भोजन और वस्त्र नहीं दिये गये। फिर भी ये जान बूझकर कुछ भी अच्छे पदार्थ नहीं खाते थे। एक दिन एक जेल अधिकारी ने पूछा—'आप भोजन अच्छा बढ़िया क्यों नहीं खाते हैं ? इन्होंने हँसकर कहा "भोजन अच्छा ही खाता हूं। पर हां वही वस्तुएँ खा रहा हूँ जो सामान्यतः बन्दियों को मिला करती हैं। इनका अभ्यास कर रहा हूं जिससे आगे किसी प्रकार का कष्ट न उठाना पड़े।' हेग न्यायालय का निर्णय यह आया कि "अपराधी फ्रांस की भूमि पर होता तो इंग्लेंड वाले उसको किसी प्रकार भी नहीं पकड़ सकते थे किन्तु जब वह फ्रांस के एक सिपाही की अज्ञानता से अंग्रेजी सरकार के अधिकार में चला गया है तो उसको किसी भी प्रकार से लौटाने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।"

सावरकर की सब सम्पत्ति जब्त होने से इनका सब सामान यहां तक कि गीता और उपनेत्र (चश्मा) भी छीन लिये गये। अगले दिन गीता और उपनेत्र लौटा दिये। जेल में नारियल की जटायें कूट कर रस्सी बटने का कार्य सौंपा गया। पहले कुछ संकोच हुवा किन्तु इस होनहार बैरिस्टर ने यह विचार कर कि "जीवन स्वयं इसी प्रकार की उधेड़ बुन है पंच महाभूतों की जटायें मिलाकर यह जीवन रस्सी तैयार की जाती है। और अन्त में मृत्युरूपी दण्ड से छूट कर अपने प्रधानरूप प्रकृति में मिला दी जाती है। वनस्पति खाकर हम जीते हैं और मरने पर हमारे शरीर को वनस्पति खा जाती है। यही उधेड़ बुन चालू है। जीवन व्यर्थ नहीं जाता यह उधेड़ बुन उसी बड़ी उधेड़ बुन का आवश्यक भाग है।" यह सोचकर रस्सी बांटनी प्रारम्भ कर दी। इसी जेल में इनका साला इनकी धर्मपत्नी को लेकर इनसे मिलने आया। ये दुःखी हृदय से उनसे मिले और उनसे बिदाई ली। इस बिदाई का यही आशय था कि इस जन्म में फिर कभी दोनों की भेंट न होगी। एक दिन समाचार मिला कि "लन्दन में एक सभा में भारतीयों ने एक बड़ा चित्र वीर सावरकर का सभा मंडप की दीवार पर लगाया। उस दिन सर हेनरी काटन ने सभा में बोलते हुए चित्र की ओर संकेत करके इनके त्याग, साहस और देशभक्ति की प्रशंसा की। इसमे अंग्रेजों में बड़ी सनसनी फैल गई। किसी ने कहा सर हेनरी की पेन्शन बन्द करनी चाहिये, किसी ने कहा इनकी उपाधि छीन लेनी चाहिये। सरकार से डरकर उस समय के कांग्रेस के प्रधान वेडरवर्न और नेता सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने कलकत्ते की सार्वजनिक सभा में घोषणा की, कि हमारी सावरकर और इनके साथियों से तनिक भी सहानुभूति नहीं है। यह थी उस समय की ही जड़ी कांग्रेस। इस जेल में एक मास रहने के पश्चात् इनको मायरवाला की कड़ी और एकान्त जेल में भेज दिया गया।

मायरवाला का बन्दीगृह

जेल में वीर सावरकर जी कविता बना कर कण्ठस्थ करते रहते थे इस समय तक इनका गुरुगोविन्द सिंह का काव्य पूर्ण हो चुका था। सप्तर्षि कविता भी समाप्त हो गई थी। इन्हें बहुत आग्रह करने पर केवल सन्ध्या समय पढ़ने के लिये बाईबिल मिल जाती थी। इनकी पुस्तकें पहले ही सब छीनी जा चुकी थीं। विदेश में घूमे हुये इस बैरिस्टर को मन लगाने के लिये कोई साधन तो चाहिये था अतः अब ईसा मसीह का चरित्र मराठी में कविता बद्ध करने का सङ्कल्प किया। यहां रहते हुये इनके भाई नारायण ने जो इसी जेल में थे एक पत्र भेजा, इसमें लिखा था "दिव्यव्रत की पूर्ति के लिये यदि इससे भी अधिक कष्ट

उठाना पड़े तो कोई चिन्ता की बात नहीं ?" ऐसे धैर्यप्रद सन्देश को पढ़कर इन्होंने उत्तर दिया "जिस प्रकार भगवती सीता के दोनों पुत्रों ने गुरु आज्ञा से चारों ओर रामायण को प्रसिद्ध किया था, उसी प्रकार मैं भी अपने कुमारों के मुख से उस महाकाव्य को देश भर में प्रचलित करा दूँगा जिसे कि मैं इसी समय रच रहा हूँ।" एक दो दिन के पीछे नारायण को और किसी जेल में भेज दिया। दोनों भाई एक जेल में होते हुए भी परस्पर मिल न सके। इस जेल में कई मास रहे। यहां एक पहरेदार इनको सदैव चिढ़ाता रहता था। यहां रहते हुये इन्होंने मानसिक कष्ट सहने का अभ्यास किया फिर अण्डमान जाने का समय आ गया। अन्य बन्दियों के साथ बेड़ियां खनखनाते हुए हाथ में बर्तन लेकर बगल में बिस्तरा दबाये वीर सावरकर भी जेल द्वार से बाहर निकले।

अण्डमान को

बन्दी लोगों की यह सेना पंक्तिवद्ध बेड़ियों को ताल पर बजाती हुई मिलने वालों को नमस्ते, राम राम कहकर "चले भइया काले पानी को" जेल के आंगन से बाहर हो गई और सशस्त्र सैनिकों की देख-रेख में दिल्ली पहुँच गई। किन्तु वीर सावरकर को गोरों के पहरे में स्टेशन पर पहुंचाया गया। बन्दी लोगों में सावरकर का सन्मान सरकार के यत्न करने पर भी घटने की अपेक्षा अधिक-अधिक बढ़ता ही गया। सावरकर को गाड़ी के एक पृथक् डिब्बे में बन्द किया गया। हाथों में हथकड़ी और गोरों का सख्त पहरा साथ था। खिड़कियाँ बन्द थीं। केवल एक स्टेशन पर सावरकर के दर्शनों के लिये आये हुये गोरों के लिये खिड़कियाँ खोली गईं। फिर गाड़ी चलकर मद्रास पहुंची। वहां एक छोटी नाव में बिठाकर इन्हें "महाराजा" नाम के जहाज में बिठा दिया गया। सैकड़ों दर्शक—टकटकी लगाकर इन्हें जहाज पर चढ़ते हुये देख रहे थे। लोहे के गसों के पिंजड़े में इन्हें बन्द कर दिया गया। पहरेदार 'नमस्ते' कहकर चले गये। जहाज में सावरकर के बिस्तरे के पास ही टट्टी का कनस्तर रखा था वह गिर गया। बिस्तरे के पास मलमूत्र बह निकला, दुर्गन्ध से सब कुछ सड़ गया किन्तु वीर सावरकर मस्त होकर लेटे रहे। इस प्रकार इनकी मस्ती को देखकर बन्दी लोग आश्चर्य करने लगे। कई दिन के पीछे जहाज अण्डमान पहुँच गया। सिपाहियों के पहरे में सभी वन्दी और सावरकर गोरों के पहरे में जेल द्वार पर ले जाये गये। द्वार खुला। द्वार में घुसते ही पहरेदारों ने इन्हें खड़े रहने की आज्ञा दी। द्वार बन्द हो गया और वह फिर १४ वर्ष के पश्चात् वीर सावरकर के लिये खुला। जेल का जेलर बारी साहब आया वह अपने अत्याचारी स्वभाव के कारण प्रसिद्ध था, उसका नाम लेकर पहरेदार सावरकर की परीक्षा लेना चाहते थे किन्तु वीर सावरकर किससे डरते थे ? ये स्थिर चित्त होकर खड़े रहे। एक गोरा मुषण्डा हाथ में मोटी सी लकड़ी लिये खड़ा था यही बारी साहब जेलर था। वह अभिमान से बोला "छोड़ दो इसे यह कोई शेर नहीं है" पर मोटी लकड़ी सावरकर की ओर करके बोला "मार्सेल्ज से भागने वाले क्या तुम ही हो ?" सावरकर जी बोले "हाँ" फिर यह सुन बारी साहब कुछ ढीला पड़ गया और जिज्ञासा से पूछने लगा, आपने ऐसा क्यों किया ? इन्होंने उत्तर दिया—इसके अनेक कारण थे, उनमें यह भी एक था कि "सब झंझटों से छुटकारा मिल जाये।" इस पर बारी साहब बोले "इससे तो आप और भी झंझटों में फँस गये" वीर सावरकर जी ने कहा "आपका कहना ठीक है परन्तु विशेषावस्थाओं के कारण इस झंझटों में फँसना मुझे अपना कर्तव्य जान पड़ा।" बारी साहब खुलकर बोले—"देखिये मैं अंग्रेज नहीं आयरिश हूं। मैंने भी अंग्रेज के हाथ से आयरलैंड को मुक्त करने के लिए युद्ध किया, किन्तु अब मेरा मत पलट गया है, मैं आपसे आयु में बड़ा हूं। आप युवक हैं, आप बैरिस्टर हैं और मैं अशिक्षित जेलर, मेरे कहे को कुछ न

समझें—हत्या और रक्तपात से कभी स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती।" सावरकर जी बोले—आप के वृद्ध होने से विचार बदल गये हैं। बुद्धि तो नहीं बढ़ी, पर उत्साह कम हो गया है। आप पहले यह बात आयर्लैंड के सिनफिन वालों को क्यों नहीं सिखाते ? फिर आपको यह किसने कहा कि मैं हत्या का पक्ष-पाती हूँ। फिर बारी साहब यह कह कर चले गये "कि आप यहां से भागना नहीं, बन्दी घर के नियमों का पालन करना। आपके मैं बड़ा काम आऊँगा। आप मेरी आज्ञा मानें।" जमादार को आज्ञा दे गया कि इन्हें ७ क्रमांक के ऊपर के भाग में बन्द कर दें। ये कोठड़ी में बन्द कर दिये गये। आस पास की कोठड़ी सब खाली करवा दी थीं जिससे यह किसी से बात न कर सकें। तीन कठोर स्वभाव के बलूची पठान पहरे पर रक्खे गये। राज बन्दी सब हिन्दू थे। अतः उन्हें कष्ट देने के लिये जान बूझ कर सरकार ने मुसलमान पहरेदार रक्खे थे। मुसलमान वार्डरों ने बचपन से यह सीखा था कि हिन्दू को कष्ट देने से पाप छूट जाता है। अधिकारियों की सहायता मिलने से ये कुकर्मी मुसलमान हिन्दू बन्दियों को खूब सताते थे। सावरकर इन दुष्ट वार्डरों के हाथों से अपने हिन्दू बन्दियों को बचाने का सदा प्रयत्न करते थे। मुसलमान वार्डर ने इन्हें मारने की धमकी दी; किन्तु वीर सावरकर ने इसकी कुछ चिन्ता न करके अपना प्रयत्न जारी रक्खा। वीर सावरकर ने अंडमान में क्या कष्ट सहे यह लिखने से पूर्व अपने पाठकों को थोड़ा वृत्तान्त अंडमान द्वीप का बता देना उचित समझता हूं।

अण्डमान द्वीप

कलकत्ते से छः सौ मील दूर बंग समुद्र में एक द्वीप-पुञ्ज है जिसे अण्डमान कहते हैं। इस द्वीप समूह की आकृति अंड के समान होने से उसको अण्डमान कहने लगे। पहले यहां घने जंगल थे इससे निरन्तर वर्षा होती रहती थी। यहाँ तक कि ग्रीष्म ऋतु में भी रिमझिम-रिमझिम पानी बरसता था, परन्तु अब वहाँ जंगल काट कर खेती होने लगी है। वहाँ का तापमान भारत के ऊष्ण प्रदेश के समान हो गया है। जल और दलदलों की भरमार होने से पेड़ों और बेलों के पत्ते गिरगिर कर सड़ने से जोर का मलेरिया फैला है और लोग बहुत कष्ट पाते हैं। मक्खियाँ वहाँ इतनी और इतने प्रकार की हैं कि उनका वर्णन करना कठिन है। जोंक भी बहुत हैं। मनुष्यों की गन्ध आते ही ये आनन्द से मस्त हो जाती हैं। चलते समय मनुष्य के पैर के तलुवों के नीचे चिपक जाती हैं खून चूसचूस कर मोटी हो जाती हैं। बड़े-बड़े बदमाश चोर और डाकू जो जेल की कठोर से कठोर यातना को भी कुछ नहीं समझते। जब वे जंगल में लकड़ी काटने भेजे जाते हैं तब वे जोंकों के डरके कारण थरथर कांपने लगते हैं। यहाँ के जंगलों में कान खजूरे भी बहुत हैं। ये एक हाथ लम्बे और एक इंच से अधिक चौड़े होते हैं। उनके काटते ही मनुष्य को लकवा हो जाता है। कई सौ वर्ष तक इन जंगलों में मनुष्य का प्रवेश नहीं हुआ। इससे इन जन्तुओं की संख्या भयानक प्रमाण से बढ़ती ही गई। भारतीय पशु-पक्षी पहले तो यहां सर्वथा नहीं थे किन्तु कुछ वर्षों से ब्रिटिश सरकार ने मैना तोते, बाज गिलहरियां और हिरण, कुत्ते, गीदड़ आदि बहुत से भारतीय पशु पक्षी यहां लाकर छोड़े हैं। कौवों ने अपना डेरा यहां जमा रक्खा है अब अंडमान कुछ-कुछ भारत के समान लगने लगा है। यहां जो जंगली लोग रहते हैं उनमें जावरा नाम की जाति है। इनका कद चार से साढ़े चार फुट तक ऊँचा होता है। ये रंग में सर्वथा काले होते हैं। इनके सिर के बाल कड़े, छोटे और घुंघराले होते हैं। दाढ़ी, मूँछ इनके होती ही नहीं। ये नंगे रहते हैं। ये साधुओं के समान लाल मिट्टी पोत लेते हैं। यहां की स्त्रियां भी पुरुषों के समान नंगी रहती हैं। कोई-कोई स्त्री कमर पर पेड़ के पत्ते लटका लेती है। नई

सभ्यता अभी यहां नहीं पहुंची है। ये सरलता की पराकाष्ठा को पार कर गये हैं। धनुष वाण इनका रात दिन का साथी है। कभी-कभी ये छिपकर सरकारी बस्तियों पर आक्रमण करते हैं और छापा मार कर भाग जाते हैं। ये लोग नर मांस खाते हैं। जंगलों में रहते हुए ये सुरापान करते हैं। अंडमान का आधुनिक इतिहास १७७६ से प्रारम्भ होता है। इससे पूर्व काले पानी का दंड पाने वाले सिंगापुर, पेनांग मलाक्का टेनेसरीम आदि द्वीपों में निर्वासित होते थे। १६७६ में इन्जीनियर कोलबुक और कप्तान ब्लेयर ने यहां उपनिवेश बसाने का प्रयास किया। इन्हीं ब्लेयर साहब के नाम पर अंडमान का बन्दर आज भी "पोर्ट ब्लेयर" नाम से प्रसिद्ध है। यही मुख्य बन्दर इस द्वीप समूह का है। इसके पश्चात् १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध में जो भारतीय सैनिक निर्वासित किये गये थे वे इसी द्वीप में लाकर छोड़े गये थे। वासुदेव बलवन्त फड़के ने जो राज्य-क्रान्ति की थी उनके साथी भी यहां अंडमान में भेजे गये थे। बम्बई के हिन्दू-मुस्लिम दंगे के कैदी जो हिन्दू थे, मणिपुर की राज्य-क्रान्ति करने वाले अलीपुर और माणीक-तल्ला बोम्ब केस के अभियुक्त तथा विनायक के बड़े भाई गणेश पन्त सावरकर भी यहीं भेजे गये थे। इस प्रकार राजनीतिक तथा सार्वजनिक आन्दोलन में भाग लेने वाले सैकड़ों व्यक्तियों ने सावरकर से पूर्व ही इस भारतीय बैस्टाईल की यम-यातनाओं को सहा था तथा अब भी सह रहे थे। यहीं पर अपनी अस्थियों से अपनी समाधि चिनने के लिए अब सावरकर इसी अण्डमान की जेल में पड़े थे। बारी साहब जेलर एक दिन सावरकर से आकर कहने लगे "मैं तो आपका मित्र हूँ लोग मुझे जेलर समझते हैं। मैं आप से खुलकर बात करना चाहता हूं। मैंने सुना है कि आपने सन् ५७ का नीचतापूर्ण इतिहास भी लिखा है। आपको दुष्टों की कथा लिखते हुए घृणा नहीं हुई। वे राक्षस थे अधम। नाना साहब ने अंग्रेजी स्त्रियों को महान् कष्ट दिये। नाना साहब और तात्यां टोपे समान नीचों से आपको घृणा क्यों नहीं हुई। बीर सावरकर बोले "यह बन्दी घर है मैं बन्दी हूँ। ऐसी चर्चा करना उचित नहीं, फिर भी आप उचित उत्तर चाहते हैं तो मैं मित्रभावों से उत्तर दे सकता हूं"। वारी साहब बोले—"मैं मित्र भाव से पूछता हूँ"। फिर सावरकर ने उत्तर दिया "मैं अपने राष्ट्रीय इतिहास का अपमान सहना भीरुता समझता हूं। सत्य कहने पर यदि मुझे दंड भी सहन करना पड़े तो मैं उद्यत हूँ। नाना साहब के विषय में अंग्रेजों के नियत सरकारी कमीशन ने खोज करके सिद्ध किया कि अंग्रेज स्त्रियों पर नैतिक अत्याचार करने की कथायें असत्य और अतिरंजित हैं। इन पर तो यह झूठा दोष लगाया है किन्तु अंग्रेज सेनापतियों ने नील आदि अनेक स्थानों पर दश-दश बारह-बारह स्त्रियों का बध क्रान्तिकारियों को डराने के लिए किया। ग्राम जला डाले। सार्वजनिक संहार और लूट निर्दोष भारतीय जनता की सैकड़ों स्थानों पर की। उनको आप दोष नहीं देते। उनकी तो इंगलैंड और भारत में मूर्तियां स्थापित कर प्रतिष्ठा बढ़ाई गई, उनका आप मान करते हैं फिर अपने देश को स्वतन्त्र करने के लिए नाना साहब और तांत्या ने अपूर्व बलिदान किया उनकी आप निन्दा करना कैसे उचित समझते हैं। सन् ५७ का विप्लव भारतीय जनता का स्वातन्त्र्य समर था आप ऐसा क्यों नहीं मानते"। इस पर बारी साहब इनका स्वास्थ्य पूछ कर चले गये।

यहां पर बन्दियों को बहुत कष्ट दिया जाता था। राजबन्दी सब पृथक्-पृथक् कोठड़ियों में बन्द कर रखे थे। आपस में एक अक्षर बोलने पर हथकड़ी, बेड़ी आदि कठोर दंड दिया जाता था। आपस में संकेत से कुशल पूछने पर हाथ में हथकड़ियां डालकर सात दिन तक खड़े रहने का भीषण दंड दिया जाता था। नारियल का छिलका कूटने का कार्य छुड़वा दिया गया था, उसके स्थान पर सबसे कठिन कार्य कोल्हू चलाने का लिया जाता था। बिचारे सुकुमार और सुशिक्षित युवक बन्दी जिनकी अवस्था २० वर्ष के लगभग थी

उनको यह भयंकर कार्य करना पड़ता था। कोल्हू चलाते-चलाते इनका दम फ़ूल जाता था। सभी को चक्कर ग्राने के कारण बैठ जाना पड़ता था उसी समय जमादार चिल्लाता 'काम करो, बैठो मत। स्याम तक तैल पूरा करना होगा, नहीं तो पीटे जाग्रोगे सजा ग्रलग होगी" । जो बन्दी सायंकाल तक पूरा तेल नहीं निकाल पाता था उसकी लातों घूसों ग्रौर सोटों ने बड़ी दुर्गति की जाती थी। यदि किसी दिन नारियल गीले होते ग्रौर तैल पूरा नहीं निकलता तो बारी साहब बन्दी घर में ग्रा घुसते धमकाकर कहते "जो तीस पौंड तैल पूरा न करेगा उसको भोजन सयाकाल का नहीं मिलेगा। पांच छः बजे बन्दीघर के सब कार्य बन्द हो जाते थे किन्तु तैल पूरा करने के लिए नियम विरुद्ध ६ बजे तक कोल्हू चलाना पड़ता था। प्रातःकाल छः बजे से रात को ६ बजे तक निरन्तर सुकुमार कोल्हू चलाते रहते थे। बीच में एक बार थोड़ा सा ग्रन्न पेट में डालने का थोड़ा सा समय मिलता था। बीमारों से भी कार्य लिया जाता था। १०१ ग्रंश डिग्री का ज्वर होने पर ग्रधिकारी ज्वर समझते थे इससे कम ज्वर को ढोंग समझा जाता था। चोर डाकू तक तो रोगी होने पर हस्पताल भेज दिये जाते थे किन्तु इन देश-भक्तों को रोगी होने पर मरने के लिये कोठड़ियों में बन्द कर दिया जाता था। कितने ऐसे ही होनहार नवयुवक तड़फ-तड़फ कर वहीं मर जाते थे। ऐसे कष्ट-भोगी बन्दियों में गणेश सावरकर विनायक सावरकर के बड़े भाई प्रमुख थे। इन्हें ग्राधे सिर का दर्द घर से ही था। कोल्हू चलाने से इसने भीषण रूप धारण कर लिया था। भयंकर सिर की पीड़ा में भी कोल्हू चलाना पड़ता था किन्तु वहाँ तो दो शब्द सहानुभूति के भी कहने वाला न था। किस की चिकित्सा कहां की ग्रौषध। राजबन्दियों के लिए हस्पताल सर्वथा बन्द था। न उनके लिए कोई ग्रौषध ही मिलती थी। ये तो ग्रण्डमान में सर्वथा ग्रत्याचार करके मारने के लिए ही भेजे जाते थे। सख्त काम ही ग्रन्न-वस्त्र का ग्रभाव, मारपीट का कष्ट, इन देश-भक्त कैदियों को दिया जाता ही था। इसके ग्रतिरिक्त इन्हें मलमूत्र रोकने को भी विवश किया जाता था। बारी साहब के धर्मशास्त्र में प्रातः दोपहर सन्ध्या ये तीन समय छोड़ कर ग्रन्य समय में मलमूत्र त्याग के लिए जाना भयंकर ग्रपराध था। सायंकाल छः बजे से प्रातः ६ बजे तक बन्दी घर का द्वार बन्द रहता था। पेशाब के लिए तो मटका था किन्तु टट्टी का कोई प्रबन्ध नहीं, यदि कोई टट्टी विवश हो वहीं कोठरी में कर देता तो उसकी सोटों से मरम्मत होती थी। एक बार गणेश सावरकर को हथकड़ियां पहना कर सात दिन के लिए लटका दिया गया तो उन्हें खड़े होकर ही मलमूत्र का त्याग करना पड़ता था। पशुग्रों से भी बढ़कर यहां मनुष्यों की दुर्गति की जाती थी। यहां पर कोई ग्रधिकारी भी कष्ट-कहानी सुनने वाला न था। कष्टों को दूर फिर कौन करता। एक बार भारत के गृहमन्त्री गये। उस समय जेल में बारी साहब के विरुद्ध ग्रान्दोलन खड़ा किया गया तब कहीं कुछ कष्ट कम हुए। कोल्हू चलाने से राजबन्दियों ने यह कहकर हड़ताल कर दी कि हम मनुष्य हैं बैल नहीं हैं, हम कोल्हू नहीं चलायेंगे। खूब ग्रत्याचार हुए भोजन के स्थान पर केवल काञ्जी ग्रौर फिनायल मिक्चर तक पिलाया गया। हथकड़ी बेडियां लगीं। ग्रनेक ग्रमानुषिक ग्रत्याचार किये गये। किन्तु ये वीर उठ गये। ग्रन्त में सरकार झुकी ग्रौर कोल्हू से कुछ छुटकारा मिला। ग्रन्य कैदियों के समान कुछ हल्का कार्य लिया जाने लगा। सावरकर से पहले नारियल कूटने का कार्य लिया गया। हाथों पर फफोले पड़कर फूटने लगे। हाथ लहुलुहान हो गये किन्तु कार्य फिर भी चालू रहा। कुछ दिन पीछे कोल्हू में जोत दिया गया सिर चक्कर खाने लगा, जोड़ों में भयंकर पीड़ा हुई, ज्वर होने लगा, फिर कोल्हू चलाना पड़ता था। तैल पूरा न होता था। देश-भक्ति का फल इस होनहार सुकुमार बैरिस्टर के भाग्य में बैल बनकर कोल्हू चलाना था, कुछ दिन इस प्रकार सहने के पश्चात् रस्सी बँटने का कार्य मिला। जेल में रहते हुए एक वर्ष में एक

पत्र डालने को मिलता था। मिलना किसी सम्बन्धी से होता ही न था। भाई गणेश सावरकर से विनायक सावरकर इसी जेल में दोनों के रहते हुए मिल नहीं सकता था।

कुछ काल बीतने पर सायंकाल ४ बजे से ६ बजे तक पढ़ने के लिये पुस्तकें मिलने लगीं किन्तु अपनी पुस्तक दूसरे बन्दी को नहीं दे सकता था। बारी साहब किसी कैदी को पुस्तक पढ़ते देख लेते तो गालियाँ देते और चिढ़कर कोल्हू चलाने का दंड दे देते थे। सावरकर ने वहां शिक्षा का प्रचार खूब किया लोगों को लिखना पढ़ना सिखाने में ये बड़ा परिश्रम करते थे। इनके पुरुषार्थ से ७३ प्रतिशत बन्दी शिक्षित हो गये। इतनी सुविधायें बार-बार कैदियों की हड़तालों से मिली थीं। पहले गुप्तरूप से फिर प्रकट रूप से रविवार को सभायें होने लगीं। साप्ताहिक पत्र दीवारों पर लिखकर निकाला जाता था। प्रत्येक भीत पर एक ग्रन्थ बना हुआ था इन भित्ति-ग्रन्थों से कैदियों के ज्ञान में खूब वृद्धि हुई। वीर सावरकर ने इस विषय में खूब कार्य किया। वीर सावरकर के मन में बड़े भाई से मिलने की बड़ी तीव्र लालसा थी किन्तु कौन यहाँ इनकी प्रार्थना को सुनता था। एक दिन ये अपने कार्य का हिसाब देने गये थे तो इन्हें बड़े भाई के दर्शन हुए। गणेश देखकर क्षणभर के लिए विमूढ़ हो गये, उनके मुख से निकला "तांत्या तू यहाँ किस प्रकार आया।" फिर गणेश ने एक गुप्त पत्र भेजा उसमें लिखा—"प्रत्यक्ष देख कर भी मुझे विश्वास नहीं होता। हाय! हाय! तू यहाँ कैसे आ गया? तू पेरिस होने पर इन लोगों के हाथ कैसे चढ़ गया? अब कार्य क्या होगा। तेरी योग्यता मिट्टी में मिल जायेगी ना? तू बाहर रहकर अपना उद्देश्य पूर्ण कर लेगा इसी कल्पना से मन में ढाढ़स बँध जाता था और मैं कालेपानी जैसे दंड को भी ध्यान में न लाता था।" विनायक ने इसका उत्तर दिया—"कि लक्ष्मीबाई को तलवार के एक साथ ही घाव से देह त्याग करना पड़ता है और किसी वीर को पहली झड़प में गोली खाकर आत्म-बलिदान के पुण्य का भागी होना पड़ता है। इस प्रकार देह त्याग से योग्यता की परीक्षा नहीं हुआ करती। इसकी परीक्षा सेना के अग्रभाग में अचल होकर जूझने से ही होती है। हम लोग इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं इसलिये हम सांसारिक आशाओं को भस्म कर कारागार में आने वाले कष्टों को वीरता से झेले।" अंडमान के कष्टों की कहानी युक्तप्रान्त निवासी कैदी श्री होतीलाल ने एक गुप्त पत्र लिखकर कलकत्ते में श्री सुरेन्द्रनाथ के पास भेजी। इस निर्भीक सम्पादक ने अपनी टिप्पणी सहित बंगालीपत्र में यह कष्ट कहानी का पत्र छाप दिया। इसके पश्चात् अन्य पत्रों में भी इसकी चर्चा हुई। कौंसिल में भी इस विषय में बातचीत चली। सावरकर के कोल्हू में जुतने की चर्चा अमेरिकादि देशों में फैली। "अभिनव भारत" के सदस्यों ने इनके कोल्हू में जुतने का काल्पनिक चित्र देकर विज्ञापन तथा पैम्पलेट (हस्तपत्रक) छाप कर बाँट दिया। इसका भारत सरकार पर भी प्रभाव पड़ा। १९११ में सम्राट् के राज्यरोहण की प्रसन्नता में सावरकर को छोड़कर सब राज-बन्दियों के दंड में छूट दी गई। उस समय सावरकर का छोटा भाई नारायण जेल से छूट चुका था। उसे एक वर्ष में पत्र लिखने का अवसर मिलता था। उसमें भी ये जेल के कष्टों के विषय में लिखते थे। इनके सन्देश, कविता, लेख इत्यादि भारत में छः सौ मील पहुँचकर छपते और जनता में विस्तीर्ण हुए। भाई परमानन्द, रामसरनवास, हृदयराम आदि लाहौर-षड्यन्त्र के कैदी १९१५ में अंडमान पहुंचे। भाई परमानन्द और सावरकर में परस्पर अत्यन्त प्रेम था। अंडमान में केवल एक बार ही इनका परस्पर मिलना हुआ।

सन् १९२० में चौ० बुग्गा, महाशय रत्नचन्द्र, बा० मदनसिंह आदि मार्शल लॉ के बन्दी अंडमान पहुंचे। तब सावरकर ने शिक्षा का कार्य और उत्साह से किया। मुसलमान कैदी हिन्दू कैदियों के धर्म

भ्रष्ट करने का यत्न करते रहते थे। सावरकर ने सैंकड़ों हिन्दुओं को इनके हथकंडों से बचाया। धर्मभ्रष्ट हिन्दुओं को शुद्ध करके फिर हिन्दू बनाया। कई बार मुसलमान गुण्डों से झगड़े हुए, बड़े भाई गणेश को तो एक बार चोट भी लगी, किन्तु सब कष्टों के होते हुए अपना कार्य चालू रक्खा। क्रान्तिकारी आन्दोलन के कारण "मांटेग्यू चैम्सफोर्ड सुधार" करने की घोषणा की और सावरकर से दवाव देकर उनके विचार पूछे गये। १९१७ में अपने विचार लिखकर भेजे। (१) तुरन्त ही सब क्रान्तिकारियों को बिना शर्त छोड़ देना चाहिये। (२) केन्द्र का उत्तरदायित्व पूर्ण शासन अर्थात् जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों का केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में बहुमत रहे। ये दो बातें हम लोगों को सन्तुष्ट कर सकती हैं तथा हम अपने उद्देश्य को वैधानिक मार्ग से प्राप्त करने का उद्योग करेंगे। ऐसा कौन व्यक्ति है जो जान-बूझकर आग से खेले और अपने हाथ पैर जलाये ? यद्यपि सावरकर देश से ६०० मील दूर अंडमान की कोठड़ी में बन्द थे किन्तु भारतीयों ने अपने वीर नेता को एक दिन के लिये भी नहीं भुलाया। देशभर में सावरकर सप्ताह मनाया गया, उनके छुटकारे के लिये सत्तर हजार हस्ताक्षरों से युक्त सरकार को जनता ने प्रार्थना पत्र भेजा। साधारण व्यक्ति से लेकर नेताओं तक ने हस्ताक्षर किये किन्तु गांधी जी ने हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। १९२० में भाई परमानन्द जी बिना शर्त के अंडमान से छोड़ दिये गये। भाई जी लाहौर पहुंचे। उन दिनों ब्रिटिश पार्लियामेंट के प्रमुख सदस्य वैजवुड महोदय ला० लाजपतराय के यहां ठहरे थे। लाला जी ने भाई जी का परिचय करा दिया। भाई जी ने बातचीत करते हुए अंडमान की चर्चा की और सावरकर के स्वास्थ्य का वर्णन कर उन्हें तुरन्त छोड़ने का आग्रह किया।

वैजवुड ने एतदर्थ शक्तिभर यत्न करने का विश्वास दिलाया, उनके यत्न से सन् १९२४ में सावरकर बन्धु अण्डमान से कलकत्ते लाये गये। चार दिन दोनों भाई साथ रहे फिर गणेश जी अलीपुर जेल में तथा विनायक जी रत्नगिरि जेल भेज दिये गये। रत्नगिरि जाते हुए इनको एक दो स्थान पर उतरने की आज्ञा मिली। नासिक में शोभायात्रा निकली। नासिक के पंचवटी के मन्दिर में डा० मुञ्जे के सभापतित्व में इनका सम्मान बड़े समारोह के साथ किया गया। शंकराचार्य कुर्त कोटी ने स्वागतपत्र तथा एक दुशाला भेजा। श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने जनता की ओर से एक अभिनन्दन पत्र तथा बारह हजार रुपये की थैली भेंट की। नेताओं को भाषण के पश्चात् सावरकर जी ने खड़े होकर स्वागत का उत्तर दिया कि "अंडमान की काल कोठड़ी में भी मैं सन्तुष्ट था, इस सम्मान की बात कभी भी मेरे मन में नहीं आई। यहाँ बहुत से युवक बैठे हैं, इस सम्मान को देखकर वे यह न समझें कि समाजसेवा सम्मान के लिये करनी चाहिये। आप निश्चय करें कि हमारा मार्ग कांटों से भरा हुआ है। मैं आपका कृतज्ञ हूं, आपने मेरा इतना सम्मान किया ? मुझसे हजार गुणा तेजस्वी और वीर्यशाली वीर आज भी देश में हैं और आगे भी उत्पन्न होंगे।" इसके पश्चात् वे रत्नागिरि की जेल में पांच वर्ष तक बन्द रहे। इसके पश्चात् ये जेल से हटाकर सारे रत्नगिरि जिले में बन्द कर दिये गये। जिले भर में घूमने फिरने की स्वतन्त्रता इन्हें दे दी गई। इसका लाभ उठाकर उन्होंने हिन्दू संगठन का कार्य प्रारम्भ कर दिया। यह कार्य इतनी लगन से किया कि नजरबन्दी के तेरह वर्षों का इतिहास हिन्दू संगठन का इतिहास है। रत्नागिरि की हिन्दू महासभा संगठन की दृष्टि से इनके पुरुषार्थ से सर्व प्रमुख हिन्दू सभा बन गई। अछूतोद्धार का आन्दोलन जोर से चलाया गया। सहभोज किये। पारस्परिक मिलाप से दलितों की अपने को हीन समझने की भावना जाती रही। रत्नागिरि में "श्री पतितपावन अखिल हिन्दू मन्दिर" का निर्माण किया गया। सावरकर जी की प्रेरणा पर श्रीमन्त भागों जी ने इसके निर्माणार्थ २॥ लाख रुपया व्यय किया। इस मंदिर में प्रत्येक हिन्दू

किसी भी जाति का हो, जा सकता है। इस पर सावरकर जी स्वदेशी-असहयोग आदि विविध विषयों में गांधी जी से आगे हैं। इसी प्रकार अछूतोद्धार में भी ये अग्रगामी हैं। यहाँ शुद्धि का भी कार्य किया। ३५० पथभ्रष्ट हिन्दू जो मुसलमान हो गये थे उनको शुद्ध करके पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित किया। मुसलमानों ने चिढ़कर सावरकर जी पर आक्रमण करके इन्हें घायल कर दिया। फिर सावरकर के साथियों ने न्हें कानून और लाठियों से ठीक कर निया। सब मुसलमान सीधे हो गये और इसाई पादरी तो रत्नागिरि जिले को छोड़कर ही भाग गये। इसी प्रकार और भी अनेक सुधार कार्य उन्होंने इन्हीं दिनों में किये। इन्हीं दिनों अपनी जन्मकथा लिखी, उसे सरकार ने जब्त कर लिया। इनके रचे हुए सप्तर्षि, गोमन्तक, कमलादि मराठी काव्य, साहित्य की शोभा हैं। इनके सन्यस्त खड्ग और कालेपानी की विशद-गाथा "काला पानी" दो ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

१९३७ में बम्बई में कांग्रेस मंत्रिमंडल बना और उसमें जमनादास मेहता, एक मंत्री, इस शर्त पर मन्त्रिमंडल में सम्मिलित हुए कि "मंत्रीमण्डल बनते ही वीर सावरकर को नजरबन्दी से मुक्त किया जाये।" इस शर्त के कारण वीर सावरकर १० मई १९३७ को मुक्त कर दिए गए। यह वही पवित्र दिन था जिस दिन मेरठ में सन् ५७ का स्वातन्त्र्य समय प्रारम्भ हुआ था। दो जन्म के काले पानी के दंड पाए हुए वीर सावरकर स्वतन्त्र हो गये। इसका सम्पूर्ण श्रेय जमनादास मेहता को ही है सावरकर की युक्ति से सारे देश में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। सभी पार्टियों ने उनका स्वागत किया। सावरकर के आगे यह समस्या थी कि वह किस राजनीतिक पार्टी में सम्मिलित हो। उन्होंने कांग्रेस के मान से मुख मोड़कर हिन्दू महासभा के मान में ही स्वाभिमान समझा। श्रीकृष्ण के समान दुर्योधन के स्वादु-भोजन को त्याग कर महात्मा विदुर का ही ग्रहण किया। जिस प्रकार नैपोलियन ने रोम के पोप से राज्याभिषेक न कराकर राजमुकुट अपने शिर पर जनता की सहानुभूति से रखा था उसी प्रकार सावरकर ने भी कांग्रेस के पोप गाँधी जी द्वारा राष्ट्रीयता वा देशभक्ति का प्रमाण पत्र न लेकर अपने ही उद्योग से भारत का हृदय सम्राट् बनने के लिये घोषित किया "मैं हिन्दू राष्ट्र का नव-निर्माण कर सच्ची राष्ट्रीयता का प्रचार करूँगा।" १९३७ में दिसम्बर मास में हिन्दू महा सभा के अहमदाबाद के महाधिवेशन का प्रधान वीर सावरकर को बनाया गया। हिन्दू राष्ट्रपति के पद से वीर सावरकर ने अहमदाबाद में घोषणा की "शताब्दियों की पराधीनता और कांग्रेस के मिथ्यावाद के कारण हिन्दू अपने ही देश में अपने को हीन समझने लगे हैं। हिन्दू राजनीतिक संघर्ष में योग्यतम प्रमाणित सिद्ध हुए हैं। हम कायरों की नहीं बलवान वीरों की सन्तान हैं कई सौ वर्ष तक ग्रीक, शक, यूची, हूण आदि ने भारत पर भयंकर आक्रमण किये। हमने वीर पुरुषों की सेनायें काट डालीं, उनका भारत से चिह्न ही मिटा डाला। ये जातियां कहां हैं। मुसलमानों ने हमारे ऊपर आपस की फूट के कारण ६०० वर्ष तक हमें मिटाने के लिये हृदय हिला देने वाले लोमहर्षक भीषण अत्याचार किये किन्तु समय आया कि यहां वीरों ने मुगल साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर सारे भारत पर दूर अटक दुर्ग पर आर्यों की धर्म ध्वजा फहराई। महाराष्ट्र के वीरों ने दिल्ली जीत मुगल तख्त के टुकड़े कर डाले। आपस की फूट और चालाकी से हमारे राज्य को फिर अंग्रेजों ने हथिया लिया। १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में हमारे वीरों ने अपूर्व वीरता दिखाई। दुर्भाग्य से कुछ देशद्रोहियों के द्रोह से हम सफल नहीं हुए किन्तु एक दिन इसी पद से मैं अथवा मेरे से आगे की सन्तति अंग्रेजों को हटा कर फिर स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना करेगी।" इसके पश्चात् जो हिन्दू सभा एक धार्मिक संस्था समझी जाती थी उसने अब उग्रराजनीतिक संस्था का रूप

धारण कर लिया। मृत हिन्दूसभा में वीर सावरकर ने जीवन फूंक दिया। इस हिन्दू राष्ट्र के नवीन सन्देश को लेकर भारत के प्रायः सभी प्रमुख नगरों में वीर सावरकर ने भ्रमण किया। सर्वत्र हिन्दू राजनीति का प्रचार किया। सब स्थानों पर हृदय से जनता ने भव्य स्वागत किया। दिल्ली में इनका बड़ा भारी सम्मान किया गया। ५० सहस्र व्यक्ति इनका भाषण सुनने आये। १९३८ में आपको पुनः हिन्दूराष्ट्रपति चुना गया। नागपुर में इनकी ६ मील लम्बी शोभा यात्रा निकली। हजारों हिन्दू युवकों ने सैनिक वेष में आपका स्वागत किया। रजतछत्र वाले रथ में वीर सावरकर बैठे हुए थे, ऊपर से विमानपुष्प-वृष्टि कर रहा था। नागपुर के अधिवेशन में आपने अध्यक्ष पद से हिन्दुओं का एक राष्ट्र होने की घोषणा की। आपने कहा "हमें सम्प्रदाय कहना मूर्खता है हम हिन्दू स्वतः एक राष्ट्र हैं। जिस प्रकार जर्मनी में जर्मन लोग राष्ट्र हैं और यहूदी सम्प्रदाय है। कांग्रेस हिन्दू सभा को सम्प्रदाय कहती है वास्तव में मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सम्प्रदायों की खिचड़ी होने से कांग्रेस स्वयं सम्प्रदाय है।" सावरकर ने मुस्लिम लीग की अरर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए चेतावनी दी "कि यदि मुसलमान देश के विरुद्ध आचरण करेंगे तो हिन्दुओं में कोई हिटलर हो, इन्हें देश से यहूदियों के समान भारत से बाहर करेगा।" इसी अधिवेशन में निजाम राज्य के विरुद्ध सत्याग्रह करने की हिन्दू महासभा ने भी घोषणा की। वर्षों से निजाम राज्य में आर्यों (हिन्दुओं) पर भयंकर अत्याचार हो रहे थे। वहां पर हिन्दुओं की मातृ-भाषा नष्ट करके बलपूर्वक इन पर उर्दू थोंपी गई थी। धार्मिक उत्सव करने और नगर कीर्तन निकालने पर प्रतिबन्ध था। भग्न मन्दिरों का निर्माण भी नहीं हो सकता था। फिर नये मन्दिर बनाने की बात तो दूर की थी। विद्यार्थी अपने आश्रम में "बन्दे मातरम्" गान नहीं गा सकते थे। धर्म प्रचार विशेष रूप से वैदिक-धर्म-प्रचार में भीषण बाधायें थीं, बाहर से राज्य में आर्यसमाज के प्रचारक नहीं आ सकते थे। हवनकुंड तक नहीं बना सकते थे। कहीं-कहीं तो हवन करने और मृतक-संस्कार करने पर भी दण्ड दिया जाता था। सैकड़ों आर्य समाजियों को झूठे दोष लगाकर निजाम ने जेल में डाल रखा था। हजारों की संख्या में अरब से हिन्दुओं पर अत्याचार करने के लिए बुला रखे थे, हिन्दुओं पर मुस्लिम आततायी खुले रूप में भीषण अत्याचार करते थे किन्तु उनके विरुद्ध राज्य कोई कार्यवाही न करके उलटा उनको प्रोत्साहन देता था। हिन्दू बन्दियों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाता था। राज्य की ओर से ९५ प्रतिशत दान मुस्लिम संस्थाओं को दिया जाता था। निजाम राज्य लाखों रुपया हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए खर्च करता था। आर्य समाज का संगठन हैदराबाद में बड़ा शक्तिशाली था जो हिन्दुओं की सर्व प्रकार की रक्षा करने में अपनी शक्ति लगा रहा था। वह इस अत्याचार के प्रतिकार के लिये खूब यत्न कर रहा था। आर्य समाज के अनेक होनहार युवक मुसलमानों द्वारा कत्ल किये जा चुके थे। कितने ही विद्वान् प्रचारक और होनहार युवक जेल में सड़ रहे थे। आर्यसमाज ने जनता की ओर से प्रार्थना पत्र भेजे। रेजीडेन्ट वायसराय तक से प्रतिनिधि मंडल मिले। सब वैधानिक उपाय विफल होने पर दिसम्बर १९३८ में आर्य समाज ने अखिल भारतीय आर्य-महासम्मेलन करके "धर्मयुद्ध" अर्थात् सत्याग्रह की घोषणा कर दी। वीर सावरकर ने हिन्दू सभा की ओर से सर्वाधिकारी बनकर सत्याग्रह चलाया।

हैदराबाद का सत्याग्रह

यह आन्दोलन यथार्थ में धर्मयुद्ध था। यह धार्मिक युद्ध बड़ी वीरतापूर्वक आर्य समाज ने लड़ा। हिन्दू महा सभा ने भी वीर सावरकर की प्रेरणा और अध्यक्षता में अपनी आहुति डाली। सोलह सहस्र

वीर योद्धा धर्म के दीवाने बनकर दक्षिण की ओर बढ़े। लोग विस्मित थे। शत्रु का हृदय कांप गया। १२ हजार आर्यसमाजी धर्मध्वज लेकर निजाम राज्य के बन्दीगृह में अतिथि बने। ४ हजार हिन्दुओं ने निजाम-राज्य की जेलों के कष्ट सहे। सब हिन्दुओं की सहानुभूति इस धर्मयुद्ध के साथ थी। यह युद्ध हिन्दुओं को एक संगठन में बांधने वाला बना। सब भेदभाव भुलाकर हिन्दुओं ने इसमें सहयोग दिया। हजारों आर्यवीर और हिन्दू अपने प्रियजनों और सम्बन्धियों को छोड़ कर अपने प्राणों की बाजी लगा कर घर बार छोड़ कर स्पेशल ट्रेन भर कर हैदराबाद के पीड़ित हिन्दुओं की सहायतार्थ चल पड़े; जिन्हें उन्होंने कभी देखा तक न था। सभी प्रान्तों से धनी व निर्धन और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के लोग भी ओ३म् की पताका लेकर निकल पड़े। निजाम की सब जेलें भर गईं। कैम्पों में जेलों की रचना करनी पड़ी। सत्याग्रहियों ने अकथनीय कष्ट सहे। किरचों और लाठियों की मार, भूख प्यास और मृत्यु तक का सामना करना पड़ता था। दरजनों वीर शहीद हुए, सब कुछ सहा किन्तु पीछे पग नहीं हटाया। इस धर्मयुद्ध करने वालों को न तो कोई वेतन मिलता था न उसके परिवार को कोई पेन्शन मिलती थी। सब अपने काम धन्धे नौकरियां छोड़ कर इस धर्मयुद्ध में सम्मिलित हुये। ये सोलह सहस्र वीर योद्धा संसार के किसी भी युद्ध को लड़ने की अपेक्षा अधिक वीर और श्रेष्ठ सैनिक थे। इनका त्याग और वीरता सराहनीय है। हिन्दुओं के मन में ऐसी हीन भावनाओं ने जड़ जमा रक्खी थी कि कोई भी आन्दोलन चाहे वह देशहित की दृष्टि से कितना ही पवित्र क्यों न हो जब तक कांग्रेस उसे राष्ट्रिय होने का प्रमाण-पत्र न दे दे तब तक वह सफल नहीं हो सकता था। कांग्रेस के नेताओं ने इस का विरोध और निन्दा की। किन्तु जब यह सफल होता दिखाई देने लगा तो दबी जबान से इसकी सराहना की। यहां तक कि प्रारम्भ में महात्मा गाँधी ने भी इसकी निन्दा ही की थी किन्तु पीछे विवश हो, अपनी सहानुभूति दिखाई कांग्रेस का मिथ्याभिमान और हिन्दुओं की हीन भावना इस आन्दोलन से दूर हुई। कांग्रेस ने इस आन्दोलन को साम्प्रदायिक असामयिक, गोलमाल गड़बड़घुटाला आदि शब्दों से सम्बोधित किया था। जैसे कि आजकल हिन्दी रक्षा आन्दोलन को बतला रही है। लोगों को इसमें भाग लेने से भी रोका था। पीछे इस पाप के लिये इन्हें प्रायश्चित करना पड़ा। कांग्रेस हैदराबाद में उसी समय सत्याग्रह करके निजाम राज्य में बुरी तरह से हारी थी। इन्हें आर्य समाज की विजय अच्छी न लगी। उसी समय छोटे से राज्य राजकोट से हार खाकर कांग्रेस का वीर नेता खाली हाथ लौटा था। उसी समय ब्रिटिश सरकार कांग्रेस व कांग्रेस सरकार के भयंकर विरोध और प्रतिबन्ध के होते हुए भी भारत की सबसे बड़ी और सबसे अधिक निरंकुश राज्य हैदराबाद ने आर्य समाज के आगे घुटने टेक दिये। वीर सावरकर के कारण इसका श्रेय हिन्दूसभा को भी मिला। छः मास की लम्बी लड़ाई के पश्चात् १९ जुलाई को नवीन सुधारों की घोषणा कर आर्य समाज की मांगों को स्वीकार किया। सब सत्याग्रहियों को हलवा खिला कर और मार्ग व्यय तथा घर तक का रेल का किराया देकर बिदा किया। वीर सावरकर और हिन्दू महासभा की भी इससे दक्षिण भारत में विशेष तथा सामान्यरूप से सर्वत्र प्रसिद्धि हुई। सत्याग्रह समाप्त ही हुआ था कि अंग्रेजों का जर्मन से महायुद्ध प्रारम्भ हो गया।

भारत में सम्राट् के प्रतिनिधि वायसराय लार्ड लिनलिथगो साहब ने भारत की ओर से जर्मनी के युद्ध की घोषणा कर दी। ब्रिटेन को आपत्ति में फँसा देखकर भारत की विविध संस्थाओं ने सहयोग देने के लिये अपनी शर्तें ब्रिटिश सरकार के आगे रखीं। उसी समय हिन्दू सभा की ओर से वीर सावरकर ने घोषणा की कि "पराधीन होने से भारत की रक्षा का विषय अंग्रेज और हिन्दू दोनों के लिए समान है।

अंग्रेज हिन्दुओं से सहायता प्राप्त करना चाहते हैं वे वचन दें कि साम्प्रदायिक निर्णय में संशोधन किया जायेगा। सेना में युद्ध प्रिय और अयुद्धप्रिय का भेद हटाकर राष्ट्रिय दृष्टि से भर्ती की जायेगी। भारत का भावी विधान हिन्दू सभा की स्वीकृति के बिना नहीं बनाया जायेगा। केन्द्र में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना की जायेगी तथा युद्ध की समाप्ति पर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जायेगा।" जनता से सहयोग लेने के लिए विविध संस्थाओं से भेंट की। ६ अक्टूबर १६३६ को वायसराय ने हिन्दू सभा के प्रधान सावरकर से एक घण्टे तक वार्तालाप किया। समय का चक्र है जिस व्यक्ति को अंग्रेजी सरकार ने दो जन्म का कारावास दिया था, जिसे जीवित देखना वह पाप समझती थी आज उसी व्यक्ति से उसी सरकार का प्रतिनिधि, हाथ पसार कर सहायता रूपी जीवन की भिक्षा मांग रहा है। पेशवा युग के पश्चात् यह प्रथम अवसर था जब अखिल हिन्दू राष्ट्र ने एक व्यक्ति के रूप में अपनी मांगें विदेशी सरकार के सन्मुख रक्खी थीं। इस भेंट से सावरकर का मान सारे भारतवर्ष में राजनीतिक दृष्टि से और भी बढ़ गया। १६३६ में वीर सावरकर तीसरी बार हिन्दू सभा के सभापति चुने गये। कलकत्ते में यह अधिवेशन बड़ी ठाठ-बाट के साथ हुआ। भारत भर तथा बाहर बर्मी, चीनी आदि के एक लाख व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया। कलकत्ते में हिन्दू राष्ट्र की शासन प्रणाली की रूपरेखा रक्खी। इस भाषण का व्यापक प्रभाव पड़ा, सैकड़ों व्यक्ति जो कांग्रेस के मिथ्या राष्ट्रवाद में फँसे हुये थे उसे त्याग कर हिन्दू सभा में सम्मिलित हो गये। भारत भर के पत्रों ने इस भाषण पर अग्र लेख लिखे। विरोधियों ने भी वीर सावरकर की उग्र देशभक्ति की प्रशंसा की। वायसराय और नैपाल नरेश उस समय कलकत्ते में ही थे। इस अधिवेशन का प्रभाव उन पर भी पड़ा। बंगाल के प्रधान मन्त्री मौ० भजलुलहक भी प्रभावित हुए। बिना न रह सके और बंगाल प्रान्त के हिन्दू सभा के अधिकारियों से मिलकर समझौता करने को व्याकुल हो गये। वीर सावरकर जी के कारण हिन्दू महासभा का प्रभाव खूब बढ़ा। हिन्दुत्व के आन्दोलन के आधार पर वीर सावरकर के व्यक्तित्व त्याग, तप, धैर्य, देशभक्ति और इनकी अनुपम वक्तृत्वशक्ति ने विशेष प्रभाव डाला। ईश कृपा से वीर सावरकर शतवर्ष से भी अधिक आयु को प्राप्त हों और भारतवर्ष के उत्थानार्थ अपनी विद्या-योग्यता और अनुभव से नवयुवकों को नया जीवन प्रदान करें यही प्रभु से प्रार्थना है।

——:०:——

सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम के पश्चात्

जनक्रान्ति के नेता

श्री वासुदेव बलवन्त फड़के

(ब्र० धर्मपाल)

आपका जन्म १८४१ ई० के लगभग शिर ढापे (महाराष्ट्र) में हुआ था, आप बाल्यकाल में युद्ध की कहानियां बड़े चाव से सुनते थे। वस्तुतः इन वीर-रस-पूर्ण कथाओं का प्रभाव हमारे चरित्रनायक पर पूर्ण रूपेण पड़ा। जब सन् १७७६ में पूना में भयंकर अकाल पड़ा तब जनता को बहुत दुःखी देखकर आप के मन में विद्रोह की भावना जागृत हुई। कुछ दिनों के पश्चात् न्यायमूर्ति रानाडे का स्वदेश पर व्याख्यान हुआ। उस व्याख्यान को सुनकर आप का मन और भी प्रभावित हुआ और आपने प्रतिज्ञा की कि—"मैं इन अंग्रेजों को भगाकर जनता के राज्य की स्थापना करूँगा"। इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए आपने पूना में शस्त्रचलाने का तथा मल्लविद्यादि का अभ्यास किया, एवं अपने घर को ताला लगाकर निज धर्मपत्नी (गोपिका बाई) को त्यागकर नासिक खान देश के रामोशी एवं नाईक तथा भीलों की सहायता से ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध बीड़ा उठाया। इस प्रकार विद्रोह करते हुए वासुदेव बलवन्त फड़के को जब सरकार ने देखा तो बलवन्त फड़के को पकड़ने वाले के लिए ४०००) रुपया पारितोषिक घोषित किया, और एक १ सैन्य दल थानेदार सहित उनका पीछा करने के लिए लगा दिया। बहुत दिनों तक फड़के उनके हाथ न आये परन्तु कोई आदमी कहां तक दौड़ सकता है, आखिर जब वे बहुत थक गये, तब एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। दुर्भाग्यवश कुछ देर के बाद निद्रादेवी ने उनके ऊपर आक्रमण किया, इतने में ही पुलिस आगई, और थानेदार साहब आपकी छाती पर बैठ गये आपकी एक तलवार एवं बन्दूक छीन ली और आपको गिरफ्तार कर लिया गया। आपके ऊपर अभियोग चलाया, वकील आपको बहुत चतुर मिला हुआ था, परन्तु आपकी अभिलाषा वकील की चालों से बन्धन मुक्त होने की नहीं थी अतः आपने स्पष्ट घोषणा की कि—अंग्रेजों को देश से बाहर निकालकर हिन्दू जनतन्त्र की स्थापना करना ही मेरा उद्देश्य है। अन्त में न्यायाधीश ने आपको राजद्रोह का दोषी ठहराया और ७ नवम्बर १८७९ को आजीवन काले पानी का दण्ड घोषित कर एडन की जेल में रक्खा गया, और वहीं आपका देहान्त हुआ।

महात्मा श्री गोपालकृष्ण गोखले

लोकमान्य तिलक की भाँति गोखले का जन्म भी महाराष्ट्र की उसी प्रख्यात चित्यावन ब्राह्मण जाति में ही हुआ था। इनका जन्म स्थान रत्नागिरि जिले के चिपलूणतालुके का काटलुक नामक एक छोटा सा गांव था और जन्मतिथि थी ९ मई, सन् १८६६ ई०। विद्यार्थी काल में गोखले की आर्थिक दशा इतनी अधिक खराब थी कि दीपक जलाने तक को पैसा न रहने के कारण वे प्रायः सड़क के लैम्पों के नीचे बैठकर ही पढ़ा करते थे। वे बहुत ही बुद्धिमान एवं चतुर थे। यही कारण था कि आपने अल्पायु में ही बी० ए० परीक्षा पास कर ली थी, उस समय आपकी उम्र १८ वर्ष की थी। आप महादेव गोविन्द रानाडे को गुरु मानते थे और इन्हीं की प्रेरणा से आपने जब १८९५ में पूना में कांग्रेस अधिवेशन हुआ तब स्वागत-समिति के मन्त्री पद का भार उठाया था। १९०५ में काशी में जो कांग्रेस का अधिवेशन हुआ उसके आप

सभापति बने थे। १६०५ में ही आपने राष्ट्र सेवा संस्था "भारत सेवा समिति" का शिला न्याय किया, और आपने भारत को स्वतन्त्र करने के लिये जो दूसरी बार विलायत की यात्रा की उस यात्रा में आपने ४५ व्याख्यान दिये। अनगिनत लेख लिखे। पच्चीसों राजनीतिज्ञों तथा पत्रकारों से भेंट की थी। उनके व्यक्तित्व का इंग्लैंड वालों पर कितना जबरदस्त प्रभाव पड़ा था इसका कुछ अनुमान "नेशनल पत्र" के महान् सम्पादक के शब्दों से कर सकते हैं। जिसमें उन्होंने कहा था कि "गोखले की टक्कर का कोई राजनीतिज्ञ आज के दिन इंग्लैंड में नहीं है"। यही कारण था कि महात्मा गांधी गोखले को अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। तीसरी बार फिर गोखले विलायत गये, उस समय आप ब्रिटिश सरकार से मिले और भारत में जो दमनचक्र चल रहा था। उसकी तीव्र निन्दा करते हुए, जांच की मांग की थी। आपने दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रह-संग्राम की सहायता के लिये लाखों रुपया एकत्रित करवाया था, अतः अनुमान किया जाता है कि यदि वह अधिक दिनों जीवित रहते तो महात्मा जी के भावी संग्राम के प्रति उनका क्या रुख होता! परन्तु विधाता को स्वीकार न था कि वह महान् जनसेवक बहुत काल तक हमारे बीच में रहता। आप १६ फरवरी १६१५ ई० के दिन स्वतंत्र होकर ४७ वर्ष की आयु में इस संसार से सदा के लिए विदा हो गये। आपकी मृत्यु के बाद आपके प्रबल आलोचक महात्मा तिलक ने कहा था,' 'वह थे सचमुच ही भारत के हीरे' "महाराष्ट्र के रत्न' और देश-भक्तों में शिरोमणि और यदि कुछ नहीं तो उनके द्वारा प्रस्थापित आजन्म देश-सेवा और त्याग का वृत लेने वाले चुने हुए लोकसेवियों की वह टोली "भारत सेवक समिति" ही उनके नाम को अमर रखने के लिए पर्याप्त होगी।

श्री बलवन्त शंकर लिमये

आपका जन्म सन् १८८१ में हुआ था। आप बीजापुर जिले में भतकुमगी नामक देहात के रहने वाले थे। भतकुमगी में आप जागीरदार थे। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके आप पूना पहुँचे। बी० ए० पास होकर लोकमान्य तिलक की सहमति से अन्य कार्यकर्ताओं के अनुसार आप भी सार्वजनिक कार्य में जुट गये। राष्ट्रीय विचार से सैन्य में भी भरती होने का आपने विचार किया परन्तु आप सफल न हो सके। हुतात्मा चाफेकर बन्धु के सहयोगी न्याय मूर्ति रानाडे आपके सहपाठी थे उनके ही सहवास से लिमये के मन में क्रान्तिकारी विचार उत्पन्न हुये। १६०७ में शोलापुर में आपने 'स्वराज्य, नामक राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र चालू किया। क्रान्तिकारियों के राजकुमार वीर सावरकर के 'अभिनव भारत' के मेले की कुछ प्रश्नावली इसी मुद्रणालय में छपवाई थी। बंगाल के क्रान्तिकारी श्री होतीलाल वर्मा तिलक से मिले और आपकी ही सूचना अनुसार वर्मा जी शोलापुर गये थे। पाण्डुचेरी में बम का कारखाना चालू करने के लिये कुछ क्रान्तिकारी युवकों की सहायता करने का उत्तरदायित्व श्री लिमये ने ही लिया था। वीर सावरकर जी का विश्वविख्यात "स्वातन्त्र्य समर" ग्रंथ शासन के डर से छापने की हिम्मत किसी में नहीं थी। श्री लिमये जी उसके लिये आगे बढ़े। ग्रंथ के १६-१७ फार्म छप भी चुके थे। परन्तु उसी समय 'स्वराज्य' साप्ताहिक में निकले किसी राजद्रोही लेख के अभियोग में श्री लिमये तथा मुद्रणालय के प्रबन्धक "श्री सायण्णानरम्" गानला ? गिरफ्तार कर लिये गये, छापाखाने की तलासी ली गयी। उसमें स्वातन्त्र्य समर के फार्म मिल गये। राजद्रोही लेख के अभियोग में लिमये जी को साढ़े तीन वर्ष का सश्रम कारावास का दंड दिया गया। श्री गानला जी को १ वर्ष की सजा हुई। लिमये जी के विषय में शासकों को बड़ी चिढ़ थी इसी से जेल में भी 'अभिनव भारत संगठन' की जानकारी प्राप्त करने के लिये

लिमये जी को बहुत सताया गया किन्तु आपने उनको किञ्चिन्मात्र भी परिचय नहीं दिया। आप स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये निरन्तर संघर्ष करते रहे।

अमर शहीद विष्णु गणेश पिङ्गले

विष्णु गणेश पिङ्गले का जन्म पूना के एक पहाड़ी प्रान्त में हुआ था। इनके पिता का नाम गणेश पिङ्गले था। दक्षिण भारत में यह एक प्रथा है कि पहले तो अपना नाम लिखा जाता है तदनन्तर पिता का नाम और गोत्र का, इसी प्रकार विष्णु इनका नाम था एवं गणेश इनके पिता का नाम और पिंगले गोत्र था।

विष्णु गणेश पिंगले बड़े साहसी एवं चतुर थे। ये बाल्यकाल से बड़ी तेज प्रकृति के और तीक्ष्ण बुद्धि के थे। इनके पिता धार्मिक प्रकृति के एवं आर्यसमाजी विचार के थे। अतः इन्होंने इनको संस्कृत एवं मराठी भाषा का अभ्यास करवाया। इनके पिता धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय किया करते थे। उनकी देखा देखी धार्मिक पुस्तक पढ़ने की इनकी भी रुचि इस ओर बढ़ी। जब गणेश पिंगले बालक ही थे तब इन्होंने समस्त गीता कंठाग्र कर ली थी। गीता के अध्ययन से विष्णु गणेश पिंगले को वैराग्य हो गया और साधु बनकर घर से निकल गये। घर से निकलने के पश्चात् कुछ समय तक विष्णु गणेश पिंगले भारत के प्रसिद्ध तीर्थों एवं स्थानों में घूमते रहे। पिंगले बाल्यकाल से ही बुद्धिमान थे, अतः भ्रमण से ज्ञान में परिपक्वता आ गई और भ्रमण करते-करते अपने घर चले गये। इस प्रकार घूमते-घूमते इनको जीवन में एक प्रकार की घृणा हुई। इस घृणा से इन्होंने अंग्रेजी अध्ययन का अभ्यास किया। कुछ ही दिनों में इन्हें अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान हो गया।

मित्रों के कहने से इन्जिनियरिंग पढ़ने के लिए इन्होंने अमेरिका जाने की घर वालों से इच्छा प्रकट की। घर वालों ने इनको जाने की आज्ञा प्रदान की। पिंगले घर वालों से विदाई लेकर अमेरिका चले गये और शिक्षा प्राप्त करने लगे।

अमेरिका में भी भारतीयों के हृदय में विप्लव की आग भड़क रही थी। वहां पर विप्लववादियों का एक अच्छा दल बना हुआ था। जो प्रतिदिन अनेक स्थानों में जाकर संगठन एवं प्रचार करता था पिंगले में भी क्रान्ति की लहरें हिंडोरें लेने लगीं। उसी समय इन्होंने क्रान्ति के तत्कालीन साहित्य का अध्ययन किया एवं साथ ही देश की परिस्थिति का भी अध्ययन किया। जब इन्होंने अध्ययन करके भारत की अन्य स्वातंत्र्य देशों से तुलना की तो इनका मन बहुत क्षुब्ध होगया। तभी से इनको भारत की परतन्त्रता अखरने लगी। भारत को परतंत्रता के बन्धन से मुक्त करना चाहिए। इस प्रकार के भाव आपके मनमें आ गये और आप तत्काल भारत आकर घर जाने की चिंता न करके सीधे बंगाल गये, वहां पर विप्लव दल का पता लगाया, एवं पंजाब की क्रान्तिकारी परिस्थिति का भी ज्ञान किया। उस समय बंगाल एवं पंजाब के दलों का सम्बन्ध हो गया था। विष्णु गणेश पिङ्गले बंगाल में रासबिहारी बोस से मिले। उस समय रास बिहारी बोस के हाथ में उत्तर-भारत के विप्लव दल का कार्य-भार था। गणेश पिङ्गले को पंजाब विप्लव दल के लिए बमों की आवश्यकता थी। अतः उसने बंगाल के दलों के साथ मेल किया। पंजाब में सचीन्डनाथ सान्याल पंजाब की स्थिति जानने के लिये एवं वहां की दशा का पूर्ण रूपेण अध्ययन करने के लिये भ्रमण कर रहे थे। उस समय सान्याल का पिंगले के साथ साक्षात्कार हुआ। पिंगले ने पंजाब की सहायता के लिये सान्याल को कहा। 'श्री सान्याल वचन देकर फिर बंगाल चला गया। पंजाब से निश्चित समय पर बंगाल न जाने से सहायता न मिल सकी। पिंगले के कारण पंजाब विप्लव

दल में फिर से नया जीवन आ गया। पिंगले के काम को देख कर रासबिहारी बोस एवं सान्याल को पूर्ण विश्वास हो गया था कि अब आन्दोलन अवश्य सफल हो जायेगा,

विष्णु गणेश पिंगले बंगाल से लौटकर बनारस चले गये। वहां पर यह निर्णय हुआ कि बम तो आप लोगों को पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सकते हैं परन्तु उनके बनाने में रुपये अधिक लगते हैं अतः रुपयों की आवश्यकता है। पिंगले फिर पंजाब आये और कर्तारसिंह, पृथ्वीसिंह आदि कार्यकर्ताओं से मिले। सप्ताह में पंजाब का सब समाचार जानकर बनारस वापिस चले गये। जाते समय पंजाब के क्रान्तिकारियों ने पिंगले से कहा कि—पंजाब में रासबिहारी बोस को एक बार अवश्य भेजे। परन्तु रासबिहारी पंजाब में न आ सके उनके स्थान में शचीन्द्रनाथ सान्याल एवं पिंगले ने पंजाब की यात्रा की, सान्याल पंजाबी नहीं जानते थे। किन्तु पिंगले जानते थे क्योंकि पिंगले के साथ अमेरिका में पंजाबियों का मेल था। यहां पर पिंगले ने संगठन दृढ़ किया।

पिंगले दक्षिणी थे किन्तु अपनी कार्य कुशलता के कारण पंजाब में नेतृत्व कर रहे थे। उस समय पंजाब विप्लव-दल के प्राण-स्वरूप कार्यकर्ता श्री कर्तारसिंह एवं श्री विष्णुगणेश पिंगले ही माने जाते थे। शचीन्द्रनाथ सान्याल पंजाब की यात्रा करके बनारस चले गये और वहां पर पंजाब की व्यवस्था समझाने पर रासबिहारी बोस स्वयं पंजाब आये। पंजाब में विप्लव करने की तिथि २१ फरवरी थी। दिन धीरे-धीरे समीप आता गया। मनुष्यों में अपूर्व उत्साह था। क्रान्तिकारी २१ फरवरी की प्रतीक्षा में थे। क्रान्तिकारियों का समस्त प्रबन्ध हो चुका था। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक जोरों से क्रांति की आयोजना हो चुकी थी। परन्तु कौन अरिष्ट को जानता है? और कौन जानता है कि कल क्या होने वाला है? देश-द्रोहियों के कुकृत्यों से क्रांतिकारियों का सारा प्रयत्न विफल हो गया। पुलिस के एक भेदिये ने भण्डा फोड़ कर दिया। सब की आशाओं पर पानी फिर गया। क्रान्तिकारियों की धड़ाधड़ गिरफ्तारी होने लगी।

कर्तारसिंह सीमा लांघकर चला गया, एवं रासबिहारी और पिङ्गले बनारस को चल दिये। मार्ग में पिंगले के हृदय में विविध भावनाएँ उठने लगीं। आशावादी पिङ्गले पीछे हटना अपना अपमान समझता था। पिंगले जीवन को धधकती आग में झोंक देना खेल समझता था। पिंगले रासबिहारी के रोकने पर भी मेरठ में उतर गया। वहाँ उतर कर छावनी में घुस गया और विद्रोह की आग भड़काने लगा।

विश्वासी मनुष्य भी कभी न कभी विश्वास घात कर जाता है। यही बात पिंगले के साथ बनी। पिंगले का एक विश्वास-पात्र मुसलमान हवलदार था। पिंगले उसकी प्रत्येक बात पर विश्वास करता था। उस हवलदार ने पिंगले को इस कार्य में सहायता देने की बहुत आशा दिलाई एवं विप्लव के कार्यों के लिये खूब उत्साह दिलाता रहा। परन्तु उस नर पिशाच कृतघ्नी ने एक दिन वीर प्रवर विष्णु गणेश पिंगले को पकड़वा दिया। जिस समय पिंगले गिरफ्तार हुआ उस समय उसके पास १० भयंकर बम थे। गिरफ्तारी के पश्चात् पिंगले पर अभियोग चलाया गया अदालत में फांसी का दण्ड मिला। १६ नवम्बर १९१५ ई० फांसी का दिन निश्चित हुवा। गणेश पिंगले से पूछा गया "तुम्हारी क्या अभिलाषा है" पिंगले ने उत्तर दिया—दो मिनट प्रार्थना करना चाहता हूँ। उसकी हथकड़ी खोल दी गयी। हथकड़ी खोल देने के पश्चात् पिंगले हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा। "भगवान् आज हम जिस लिए जीवन की बलि दे रहे हैं उसकी रक्षा का भार तुम पर है। एक यही इच्छा है कि भारत स्वतन्त्र हो" इतना कहकर उछलकर फांसी के फन्दे को स्वयं गले में डालकर इस लोक से परलोक पहुंच गया।

रौलट रिपोर्ट में लिखा था कि "विष्णु गरोश पिंगले के पास जो बम थे वे इतने भयंकर थे कि एक बम आधी छावनी को समाप्त कर सकता था" ।

इसकी वीरता के विषय में रासविहारी बोस ने अपनी डायरी में लिखा था कि—"यदि मैं यह जान पाता कि पिंगले मुझे फिर न मिलेगा तो मैं उसको लाख कहने पर भी मेरठ न उतरने देता। वह बड़ा बहादुर एवं सदैव आज्ञाकारी सिपाही की भांति कार्य करने वाला था" हम सबको इसके जीवन से विशेष शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जिससे हम भी जब भारत माता पर संकट आये तो प्राणों की आहुति दे सकें।

जैक्शन हत्याकाण्ड के शहीद श्री अनन्त लक्ष्मण कान्हेरे

श्री कान्हेरे जी रत्नागिरि जिले में खेड़ तहसील के अयनी नामक ग्राम के निवासी थे। घर की गरीबी के कारण आप अपने मामा के परिवार में रहा करते थे। आगे चलकर आप औरङ्गाबाद के आर्टस् स्कूल में प्रविष्ट हुए। उसी 'अभिनव भारत' नामक गुप्त संगठन के आप सदस्य हुये।

कान्तिवीर बाबाराव सावरकर स्वातन्त्र्य वीर सावरकर के बड़े भाई को, आजीवन कारावास की सजा सुना दी गयी। इस सजा का बदला लेने के हेतु नासिक के जिलाधिकारी मि० जैक्शन पर गोली चलाई। २१ दिसम्बर १६०६ को नासिक के नाट्यगृह में किर्लोकिर संगीत नाटक कम्पनी का 'शारदा' नाटक रंगमंच पर चल रहा या। नाटक देखने के लिये जिलाधिकारी जैक्शन भी पधारे थे। अनन्त कान्हेरे ने लगातार सात गोलियां मारकर जैक्शन साहब को वहीं समाप्त कर दिया। अनन्त कान्हेरे को वहीं गिरफ्तार कर लिया गया। अभियोग में अनन्त कान्हेरे ने अपने वक्तव्य में स्पष्ट रूप से कह दिया कि बाबा सावरकर को दी गयी आजीवन कारावास की सजा का बदला लेने के लिये ही मैंने जैंक्शन की हत्या की है। जैक्शन हत्याकाण्ड के मामले में सात व्यक्तियों पर मुकद्दमा दायर किया गया। ७ मार्च सन् १६१० को बम्बई हाईकोर्ट ने अपना निर्णय सुनाया। उसके अनुसार अनन्त कान्हेरे, गोपालकर्वे, और देशपाण्डे को फांसी की सजा दी गयी। श० रा० सोमण वामणराव जोशी, और गणु वैद्य को आजीवन कारावास और ऊड्डुशंकर जोशी को २ वर्ष की सजा दी गयी १६ अप्रेल १६१० को ढाके की जेल में, कान्हेरे गोपालकर्वे, और देशमाण्डे को फांसी पर लटका दिया गया।

श्री वामन नारायण जोशी

श्री वामन जी नासिक को अभिनव

श्री वामनजी नाशिक की "अभिनवभारत" संस्था के सदस्य थे। जिलाधिकारी जैक्शन की हत्या के बारे में सहायता करने के अभियोग में श्री जोशी जी को आजीवन कारावास की सजा दी गई। अभियोग की पूँछ ताछ के समय श्री जोशी जी को भीषण कष्ट सहने पड़े। इतना होने पर भी जोशी के मुँह से संगठन के बारे में एक शब्द भी न निकला। जोशी जी को अंडमान भेजा गया था। अंडमान में जाने वाले आप ही सबसे पहले क्रान्तिकारी वीर हैं, काले पानी की सजा पूरी कर आप भारत लौटे। आजकल आप नासिक जिले में सिन्नर नामक ग्राम में रहते हैं। अभी कुछ दिन पूर्व प्रधान मन्त्री नेहरू जी ने आपकी सहायता के लिये ५००) रुपये का चैक भेजा था।

श्री कृष्णजी गोपाल कर्वे ।।

श्री कर्वे जी 'अभिनव भारत' के प्रमुख सदस्य थे। 'अभिनव भारत' की नासिक शाखा में फूट के कारण मतभेद होने पर आपने अलग होकर कार्य किया। उस समय आपकी आयु केवल २२ व तेईस वर्ष की थी। आप कानून की पढ़ाई कर रहे थे। साथ-साथ क्रान्ति का कार्य भी चल रहा था। बाबाराव सावरकर की सजा से आपको बहुत दुःख हुआ। जँक्शन की हत्या का निर्धारण आपने मनोनय किया। अभिनव भारत के एक सदस्य गोपालराव पाटयकर और डा० वि० क० भट्ट की ओर से आपने रिवालवर प्राप्त किया। १६ दिसम्बर १६०६ के दिन नासिक के नाटक गृह में आप अनन्त कान्हेरे के सहयोगी के नाते शस्त्र सहित उपस्थित थे। १६ अप्रेल को ढाके की जेल में आप फांसी के तख्ते पर चढ गये।

श्री विनायक नारायण देशपाण्डे ।।

श्री विनायक जी नासिक के अभिनव भारत के सदस्य थे और नासिक की प्रारम्भिक पाठशाला में अध्यापक थे। जक्शन की हत्या के लिए श्री आनन्त कान्हेरे को तैयार करने में आपका बड़ा ही हाथ था। अनन्त ने जँक्शन की हत्या का निश्चय किया। श्री देश पाण्डे भी अनन्त कान्हेरे के सहयोगी के नाते हाथ में पिस्तौल लिये नाटक गृह में उपस्थित थे। बम्बई हाईकोर्ट ने फांसी की सजा दी। १६ अप्रैल को ढाँके की जेल में आप को फाँसी दे दी गई।

श्री शंकर रामचन्द्र सोमरण ।।

शंकरजी "अभिनव भारत" के सदस्य थे, क्रान्तिवीर बाबाराव सावरकर की सजा से आप बहुत दुःखी हुये थे। अनन्त कान्हेरे को तैयार करने में आपका बहुत हाथ था। हत्या की जांच पड़ताल में शंकर राव सोमरण को बड़ी यातनाएँ सहनी पड़ीं। परन्तु आपने किसी भी सहयोगी का काम नहीं बताया। हत्या के मामले में आप को आजीवन कारावास की सजा दी गयी। पेखड़ा जेल में आप सजा भुगत रहे थे। उसी समय वीर सावरकर जी को दी गयी आजीवन सजा से तथा गिरफ्तार हुये अपने साथियों के कारण तथा उन्हें जो यन्त्रणा सहनी पड़ी उससे सोमरण जी के दिल को गहरी चोट पहुंची। उसी से अन्त में दि० २१ दिसम्बर १६११ में पेखड़ा जेल में ही आपका देसावसान हो गया।

श्री शिवराम राजगुरु

पूना के पास 'चाकन' नामक एक छोटा-सा गांव है। जिस समय महाराष्ट्र केसरी छत्रपति श्री शिवाजी महाराज ने अपना हिन्दू राज्य स्थापित किया था, उस समय तक 'चाकन' उस प्रान्त की राजधानी था। शिवाजी के प्रपौत्र श्री शाहू जी के राज्य काल में चाकन के एक पण्डित कचेश्वर नामक ब्राह्मण ने सारे देश में अपना पाण्डित्य जमाया था। एक बार राज्य सम्बन्धी किसी कार्य के लिये शाहू जी को चाकन आना पड़ा। वहां आपकी उपर्युक्त पंडित जी से भेंट हुई। आप उनकी विद्वत्ता पर इतने मुग्ध हुये कि उन्हें अपना गुरु मान लिया और 'राजगुरु' की उपाधि से विभूषित किया। उसी समय से राजगुरु इस वंश की पदवी हो गयी। श्री शिवराम हरि राजगुरु इसी प्रतिष्ठित वंश के एक वंशधर थे।

पंडित जी के दो पुत्र थे, जिनमें छोटा तो वहीं सतारा में ही बस गया और बड़ा पूना के पास खेड़ा नामक ग्राम में आकर रहने लगा। यही खेड़ा शिवराम का जन्म स्थान है। आपके पिता श्री हरिनारायण

राजगुरु के दो स्त्रियां थीं। हरिनारायण की दूसरी स्त्री से दो लड़के हुये, जिनमें बड़े दिनकर हरि-नारायण हैं, और छोटे शिवराम राजगुरु थे।

श्री शिवराम का जन्म १६०६ में हुआ था। आप बचपन में बड़े दृढ़ और जिद्दी थे। ६ वर्ष की आयु में आपके पिताजी का देहान्त हो गया। आपके बड़े भाई दिनकर जी उन दिनों पूना में नौकरी करते थे। इसलिये पिता जी की मृत्यु के बाद आप सपरिवार पूना में ही रहने लगे। श्री शिवराम प्रारम्भिक शिक्षा के लिये मराठी पाठशाला में भेजे गये। किन्तु उनका मन वहां पढ़ने लिखने में नहीं लगता था अपितु खेलने में अधिक रुचि थी। खेलने की प्रवृत्ति को देखकर बड़े भाई ने आपको धमका दिया कि—खेल कूद छोड़ कर पढ़ने में मन लगाओ। इससे भयभीत होकर आपने पाठ्य पुस्तकों में से एक उपन्यास को लेकर पढ़ना आरम्भ कर दिया। इस पर भाई जी और बिगड़े और कहा कि यदि तुम्हें पढ़ना न हो तो घर से निकल जाओ।

यही हुआ श्री राजगुरु घर से निकल पड़े। उस समय जेब में केवल नौ पैसे थे। रात उन्होंने पूना स्टेशन के मुसाफिरखाने में काटी। प्रातः काल उठे और बिना सोचे विचारे अपने जन्म-स्थान खेड़ा में पहुंचे। परन्तु गांव में इसलिये न घुसे कि लोग मुझे पहचान लेंगे। सारी रात बिना खाये पिये एक मन्दिर में पड़े रहे। दूसरे दिन नारायण नाम के एक दूसरे गांव में पहुंचे। और वहाँ भी गाँव के बाहर एक कुएँ पर रात बिताई। घर से जो ६ पैसे लेकर चले थे, उनके आम खरीदकर खा लिये थे। तीसरे दिन भूख के मारे अन्तड़ियां कुलकुला रहीं थीं। कुएँ के नीचे एक पक्षी का आधा खाया हुआ आम पड़ा था, आपने उठाया और गुठली समेत निगल गये। इस गांव के स्कूल के मास्टरों को बड़ी दया आई। उसने इनको अपने पास रख लिया, परन्तु इन्हें कहीं रहना हो तो घर छोड़ने की क्या आवश्यकता थी? दूसरे दिन बिना कहे सुने उठे और एक तरफ चल दिये। भूख लगने पर पेड़ों की पत्तियां चाब लेते, और रात को किसी चट्टान या मैदान में सो जाते। एक दिन एक गांव के बाहर मन्दिर के पास एक खेत में सो रहे थे, कि कुछ आदमियों ने दूर से देखा और प्रेत समझकर ईंटें मारने लगे। जब उठे और पूछा कि मुझे क्यों मार रहे हो? तब उन लोगों का भ्रम निवारण हुआ। अन्त में इन्होंने कहा कि मुझे भूख लगी है, कुछ खाने को दो। उन लोगों ने कुछ खाने को दिया। खा पीकर आप आगे बढ़े, और कई दिनों में इसी तरह १३० मील की यात्रा करके नासिक पहुँचे। वहाँ एक साधु की कृपा से, एक क्षेत्र में एक वक्त भोजन करने का प्रबन्ध हो गया। रात को साधु स्वयं कुछ दे दिया करते थे।

इसी तरह चार दिन व्यतीत हो गये। एक दिन पुलिस का सिपाही आया, और पकड़ कर थाने में ले गया। वहां पूछताछ होने पर आपने बताया कि मैं विद्यार्थी हूँ और संस्कृत पढ़ने की इच्छा से यहां आया हूँ।

इस तरह जब वहां से छुटकारा मिला तो आपने नासिक भी छोड़ दिया और घूमते-घूमते झांसी पहुँचे। तुरन्त वहां भी मन नहीं लगा। बिना टिकट के ही रेलगाड़ी में सवार होकर कानपुर चले आये। कानपुर के स्टेशन पर एक महाराष्ट्रीय सज्जन ने आपको भोजन कराया और अपने साथ लखनऊ ले गया। वहां से लखीमपुर खीरी होते हुये आप पन्द्रहवें दिन काशी पहुंचे। काशी आकर आप अहल्याघाट पर रहने लगे। कई दिन पश्चात् एक क्षेत्र में भोजन का भी प्रबन्ध हो गया। एक पंडित जी के पास संस्कृत पढ़ने लगे और भाई को भी सूचना दे दी कि मैं काशी आ गया हूं और संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया है। भाई ने पांच रुपये मासिक पढ़ाई के लिये भेजना आरम्भ कर दिया।

क्षेत्र में भोजन करना आपको पसन्द नहीं था इसलिये भोजन का प्रबन्ध सहपाठियों के साथ कर लिया। परन्तु यह सिलसिला भी बहुत दिन तक नहीं चल सका। क्योंकि गुरु जी से अनबन हो जाने के कारण पाठशाला छोड़ देनी पड़ी। पाठशाला छोड़ने पर अखबार पढ़ने और कुश्ती लड़ने का शौक हुआ। परन्तु भोजन की बड़ी बाधा हुई, और यहां तक नौबत आ पहुंची कि फिर घास एवं पत्तियों का आश्रय लेना पड़ा। अन्त में काशी से मन उबटा तो नागपुर पहुँचे। उद्देश्य था लाठी एवं गदा के खेल सीखना। सन् १९२८ में फिर कानपुर चले आये यहाँ आने के थोड़े ही दिन पीछे आपके विचारों में परिवर्तन हो गया और आप किर घूमते-घूमते पंजाब चले गये। वहाँ पर सरदार भगतसिंह श्री सुखदेव आजाद की पार्टी में सम्मिलित हो गये। और आप पंजाब में ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने के लिये भगतसिंह का साथ देने लगे। इसी अवसर की दो तीन घटनाएँ मैं आपके सम्मुख उपस्थित करता हूँ। जिनसे पता चलेगा कि श्री राजगुरु में ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने के लिये कितनी श्रद्धा थी।

जब भगतसिंह ने लाला लाजपतराय के वध का बदला लेने का प्रस्ताव रक्खा और उसमें निश्चित हुआ कि लाला जी के वध के जिम्मेदार लाहौर के पुलिस सुपरिन्टेन्डेण्ट स्कोट को गोली से ा र दिया जाये। तब राजगुरु ने जिद पकड़ी कि "मारूँगा मैं" भगतसिंह ने कहा—मगर मगर पकड़े जाने पर केश चलने पर एक ऐसा बयान दिया जाये, जिसको सुनकर जनता में जागृति हो। इस कारण राजगुरु अकेला अयोग्य समझा गया और अन्त में निश्चय यह हुआ कि स्कोट को मारने के लिये राजगुरु, भगतसिंह, एवं आजाद जायें और जयगोपाल को मौका देखने और स्कोट साहब को पहचानने तथा उनकी गति विधि का ज्ञान रखने आदि के लिये नियुक्त किया गया। यही जयगोपाल का दुर्भाग्य है कि बाद में लाहौर केश में माफीखोर सरकारी साक्षी बना।

चार दिन बाद यह टुकड़ी अपने काम पर जाती रही थी। परन्तु स्कोट साहब निदिष्ट स्थान माल-रोड पर पुलिस कार्यालय से निकला ही नहीं। निडर होकर राजगुरु ने आजाद से कहा—"अन्दर जाकर ही ठीक किये आता हूँ" अर्थात् पुलिस दफ्तर में काम करते हुये स्कोट को गोली से मार आता हूँ। आजाद ने इनकी बात न मानी; क्योंकि आजाद ने भी प्रोग्राम बनाकर ठीक काम किया हुआ था।

इतने में ही पुलिस अफसर कार्यालय से निकला, उसका मुन्शी, मोटर साईकिल लिये उसके साथ था। जयगोपाल ने संकेत किया—देखो शायद वह आया। भगतसिंह ने संकेत किया—अरे यह वह मालूम नहीं होता। राजगुरु ने समझा कि—अभी मत मारो जरा इधर आने दो। अर्थात् वह भगतसिंह के रेंज में जाये तो भगतसिंह गोली चलायें। भला राजगुरु को यह कब स्वीकार हो सकता था। अफसर मोटर साईकिल पर पैर रखने ही वाला था कि राजगुरु के रिवाल्वर से निकली हुई गोली उसके सिर के पार हो गई वह वहीं ढेर हो गया। फिर भगतसिंह ने आगे बढ़कर पिस्तौल की आठ गोलियों से पुलिस अफसर की लाश को माल रोड पर झुलसा दिया। घर अर्थात् निवास स्थान पर आने पर राजगुरु ने कहा भगत सिंह ने आठ कारतूस बेकार खराब किये। (घर आने का समाचार भगतसिंहादि के जीवन चरित्र में देख लेना) इसी गोली काण्ड के बाद ही फर्न्स नामक व्यक्ति राजगुरु को पकड़ने के लिये लपका। जिसे देखकर राजगुरु ने अपना रिवाल्वर सीधा किया, और बटन दबाया। परन्तु गोली किसी कारणवश न चली। राजगुरु ने रिवाल्वर कोट की जेब में डाला, और आगे बढ़कर फर्न्स से भिड़ गया और उसे मालरोड की कठोर भूमि पर ऐसा पछाड़ा कि वह वहां से उठ न सका। स्मरण रहे कि यह जो ऊपर पुलिस अफसर

मारा गया वह सान्डर्स था, जो कि लाला लाजपतराय के वध का उतना ही जिम्मेदार था, जितना की स्कोट।

एक दिन यों ही इस बात की चर्चा हो रही थी कि क्रान्तिकारियों पर पुलिस क्या-क्या अत्याचार करती है, कैसी शारीरिक यातनाएँ उन्हें देती है। उस दिन जब "गुलामचोर" में हारने के बाद जुर्माने के रूप में राजगुरु सब साथियों के लिये खाना पकाने बैठे तो आपने संडासी अंगीठी में गरम होने के लिये रख दी। एक अन्य साथी से आप बड़े मजे में बातें करने जाते थे और अंगीठी में संडासी गरम हो रही थी। वह खूब लाल हो गयी तो आपने वैसे ही हंसते-हँसते उठायी, उसे एक बार बड़ी अच्छी प्रकार देखा मानो उसके नेत्र मन ही मन लाल रंग की प्रशंसा कर रहे हों। जिससे आप बात चीत कर रहे थे वह साथी इनकी इस चेष्टा को इनका बालकपन समझकर यों ही इन्हें देखता रहा। जब आपने सहसा उस लाल जलती हुई संडासी को छम् छम् छम् तीन जगह अपनी छाती पर लगा लिया, तो उसने झट उनके हाथ से वह संडासी छुड़ाई और बोला यह क्या करता है ? आप बोले ! कुछ नहीं यार ! देख रहा था कि टार्चर से मैं विचलित तो नहीं हूँगा। आप किसी प्रकार की पीड़ा अनुभव न करते हुए उसी प्रकार स्वस्थता से काम करने में प्रवृत्त हो गये। साथियों में इनके घाव की मरहम पट्टी करवाई। उस दिन से सब साथियों को ऐसा महसूस होने लगा कि राजगुरु किसी धातु का बना हुआ है।

तीसरा उदाहरण जब भगतसिंह ने दिल्ली की असेम्बली में बम फेंकने का प्रस्ताव रक्खा तब निश्चय यह हुआ कि असेम्बली में बम फेंका जाये, वहां अपने कार्य का स्पष्टीकरण करते हुये पर्चे भी फेंके जायें। वहां से भागा न जाये और अदालत में केस चलने पर एक बढ़िया सा बयान दिया जाये तथा अभियोग का प्रचार एवं स्पष्टीकरण का साधन बनाया जाये। भगतसिंह ने ही यह प्रस्ताव रक्खा और हठ भी की कि उसे वे ही पूरा करेंगे। राजगुरु इस काम के लिये स्पष्ट ही उपयुक्त न थे। अपने साथ चलने के लिए भगतसिंह ने बटुकेश्वरदत्त को चुना।

र जगुरु को जब यह ज्ञान हुआ तो मानो उनके शरीर में आग लग गई। उन दिनों आजाद झांसी चले आये थे। भगतसिंह बटुकेश्वरदत्त आदि दो चार साथी ही दिल्ली में रह गये थे। राजगुरु आजाद के पास आये और सभी भाँति उन्होंने आजाद को यह समझाने का प्रयत्न कि किया वे भगतसिंह के साथ जाने के लिए सर्वथा उपयुक्त है उनकी सबसे बड़ी युक्ति यह थी। रही वक्तव्य देने की बात इसके लिए यह क्या जरूरी है कि वह अंग्रेजी में ही दिया जाये, वह हिन्दी में भी दिया जा सकता है। यदि अंग्रेजी में ही देना हो तो मैं उसे जैसा कहो वैसा रट लूँगा। पंडित जी ! एक भी गल्ती नहीं करूँगा। अरे लघु सिद्धान्त कौमुदी पूरी "अइउण" से लेकर "यूनष्ति" तक रटकर फक दी है, तो क्या अंग्रेजी के दो चार पन्नों का एक छोटा-सा बयान न रट सकूँगा।" अपना पिंड छुड़ाने के लिए आजाद ने उसे एक चिट भगत-सिंह के लिए लिख कर दे दी कि—यदि भगतसिंह ठीक समझे, और कोई विशेष हानि न हो तो बटु के बजाय राजगुरु को ही अपने साथ ले जाये। राजगुरु बड़ी सावधानी से चिट लेकर दिल्ली पहुंचे। परन्तु भगतसिंह ने इन्हें उल्टे पैर वापिस भगा दिया। राजगुरु फिर आजाद के पास भगतसिंह की शिकायत लेकर झांसी आये, परन्तु आजाद ने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। तब राजगुरु बिगड़कर साथियों को यह कहकर कि देखता हूँ अकेले में भी कुछ कर सकता हूं कि नहीं चला गया।

फिर आप पूना में पकड़े गये और भगतसिंह और सुखदेव के साथ क्रान्तिकारी देशभक्ति का सर्वोच्च पुरष्कार—फांसी मिला। अन्त में २३ मार्च १६३१ फांसी का दिन निश्चित कर दिया गया। साधारणतः फांसी प्रातःकाल दी जाती है, पर सूरज की साक्षी से यह दुष्कृत्य करने का साहस अंग्रेज सरकार में भी नहीं था। सरकार ने रात में ही खत्म करने का निश्चय किया। जेल के सभी द्वार बन्द कर दिए गए, सात बजकर बत्तीस मिनट पर तीनों क्रांतिकारीवीरों को कोठरी से निकाला गया। आंखों पर टोपी चढ़ाकर फांसी के तख्ते पर खड़ा कर दिया गया। ठीक इसी समय "डावुन-डावुनविथ यूनियन जैक" के नारे लगाये गए। आवाजें एकाएक बन्द हुईं और उसके बाद तीन लाशें स्ट्रेचर पर रक्खी हुई दिवार के एक छेद से बाहर कर दी गईं। जेल से लाशें ले जाकर सतलुज के किनारे जहाँ कि लाला जी की मृत्यु हुई थी, वहाँ लाशों पर मिट्टी का तेल डालकर भस्म कर दी गईं। यह काम सरकार की ओर से बड़ी गुप्त रूप से झटपट पूरा किया गया, और भस्म सतलुज नदी में बहा दी गई।



लोहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल

(ब्र० धर्मपाल)

आपके पिता का नाम झेबर भाई पटेल था। आप ग्राम में खेती का काम किया करते थे और राजनैतिक कार्यों में भी भाग लिया करते थे, सन् ५७ के युद्ध में आप अंग्रेजों के विरुद्ध लक्ष्मीबाई की सेना में सम्मिलित होकर लड़े। इस वीर पिता का प्रभाव सरदार पटेल पर भी पड़ा।

सरदार पटेल का जन्म ३१ अक्टूबर १८७५ में हुआ था। आपके बड़े भाई का नाम विट्ठलभाई पटेल था। भाई जी बहुत दिनों तक असेम्बली के प्रधान रहे।

आपका बाल्यकाल पिता जी की देख-रेख में नदियान ग्राम में व्यतीत हुआ और पिता जी ने बालक का अक्षराभ्यास भी करवाया। इसके पश्चात् आप बड़ौदा स्कूल में प्रविष्ट हुए। किन्तु वहाँ के शिक्षक का अनुचित व्यवहार होने के कारण स्कूल छोड़कर नदियान ग्राम में ही किसी प्रकार मैट्रिक परीक्षा पास कर ली।

अपूर्व साहस

एक बार आपकी काँख में फोड़ा निकल आया, कुछ लोगों ने यह अनुमति दी कि इसके ऊपर गरम शलाका रखकर फोड़ देना चाहिये। पिता जी को यह भयंकर कर्म लगा, इसलिए उन्होंने निषेध किया फिर क्या था इन्होंने स्वयं शलाका गरम करके फोड़े पर लगाई। इसका नाम है साहस एवं निर्भीकता।

मैट्रिक के बाद आपने मुख्त्यारी की परीक्षा पास की। इसके बाद आप अपना कार्य विस्तृत करने लगे, इसी लिए एक पत्र भी कम्पनी से मंगा लिया था, परन्तु बड़े भाई ने कहा कि पहले मुझे विलायत जाने दो फिर आप चले जाना। आपने यह बात स्वीकार कर ली। इसके बाद आप शनैः शनैः गृह एवं सामाजिक कामों में भी भाग लेने लग गये।

राजनीति की ओर

गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने एक रचनात्मक कार्यकारिणी बनाई। सरदार पटेल उसके मन्त्री थे। आपने इस समिति को बड़े ही साहस के साथ चलाया। उस समय गुजरात प्रान्त में निम्न श्रेणी के कर्मचारियों से बेगार ली जाती थी। आपने उस विभाग के मन्त्री को लिखा कि वह बेगार प्रथा को रोक दें। कमिश्नर साहब छोटी-छोटी बातों से कब डरने वाले थे, सरदार पटेल ने पुनः दुबारा लिखा "यदि आपने सात दिन के अन्दर गुजरात बेगार प्रथा को बन्द न किया तो मुझको विवश होकर सत्याग्रह का शस्त्र उठाना पड़ेगा।" कमिश्नर साहब को सरदार के आगे झुकना पड़ा।

महात्मा गाँधी के साथ आपका सम्बन्ध दृढ़ होता गया, किन्तु आपको दब्बू राजनीति में सर्वथा विश्वास नहीं था, आप सदा मारधाड़ पर विश्वास करने वाले थे। आपको स्वप्न में भी इस बात का विश्वास नहीं था कि हम अहिंसा एवं रक्तहीन क्रान्ति के द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे, किन्तु जब आपने अहमदाबाद सत्याग्रहियों की सत्याग्रह के द्वारा सारी माँगें मनवा दीं, तब आपको विश्वास हो गया। और महात्मा गांधी के साथ काम करने लगे। आपने विद्यार्थियों के लिए गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। विद्यापीठ के लिये धनसंग्रह भी किया।

इसी बीच ग्राम खेड़ा एवं बारदौली क्षेत्र में लगान के विरुद्ध सत्याग्रह किया और विजयी हुए।

असहयोग आन्दोलन के नेता आप ही थे, इस कारण आपके भाषणों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, परन्तु आप न माने, जिस पर सरकार ने आपको तीन मास का कड़ा दंड एवं ५००) रु० जुर्माना किया।

न तो आपने जुर्माना दिया, और न किसी को देने दिया। इसलिये ४ मास की सजा काटने के पश्चात् जेल से मुक्त हो गये। लोकमान्य तिलक की मृत्यु के पश्चात् आपने उनकी बरसी मनाई। लाखों मनुष्यों की संख्या में जलूस निकला। दूसरी ओर पुलिस, जलूस भंग करना चाहती थी, परन्तु सरदार जी अडिग रहे। भीड़ पर पुलिस ने लाठी-प्रहार, रियरगैसादि का प्रयोग किया, परन्तु कुछ परिणाम न निकला। सायंकाल सरदार पटेल को सरकारी घोषणा के अनुसार पुलिस ने गिरफ्तार किया, परन्तु कुछ दिनों के बाद मुक्त हो गये। इसके पश्चात् कराची में जब कांग्रेस सम्मेलन हुआ तब आप उस सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। सरदार भगतसिंह को फांसी का दंड देने के कारण कराची में जलूस निकालने की स्वीकृति सरदार ने नहीं दी।

जब सन् ४२ में गांधी जी ने "अंग्रेजो भारत छोड़ो" और "करो या मरो" का नारा लगाया तो गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया। इसी समय मुस्लिम लीग ने घोषणा की कि "यदि हमारी धारणा के विपरीत भारत को स्वतन्त्रता मिल जायेगी, तो हम खून की नदियाँ बहा देंगे" इन धमकियों से सरदार पटेल कब डरने वाले थे। सरदार पटेल ने घोषणा की कि "जो व्यक्ति तलवार की धमकी देते हैं, वे भारत के पथ में रोड़े हैं, हम यह शुभ अवसर नहीं जाने देंगे। सरदार पटेल का मुस्लिम लीग पर प्रभाव पड़ा, सन् ४६ में अन्तरिम काँग्रेस एवं मुस्लिम लीग सरकार की घोषणा की गयी और एक दिन वह आया कि कांग्रेस, आर्यसमाज, हिन्दूसभा आदि के सत् प्रयत्नों से १५ अगस्त १९४७ के दिन २ बजकर ९ मिनट पर भारत स्वतन्त्र हो गया और आप स्वाधीन भारत के उपप्रधान मन्त्री एवं गृहमन्त्री नियुक्त हुए।

देशी राज्यों का एकीकरण

अंग्रेजों के राज्यकाल में हमारे यहाँ लगभग ६०० रियासतें थीं, जो अंग्रेजों के आधीन भी थीं; और कुछ स्वाधीन भी थीं। अंग्रेज सरकार ने घोषणा की कि वे राज्य दो राज्यों में से किसी भी संघ में सम्मिलित हो सकते हैं। सरदार ने अपने प्रेम एवं सद्व्यवहार से समस्त रियासतों को एक सूत्र में पिरो दिया। केवल तीन रियासतें शेष बचीं। १ .काश्मीर २. हैदराबाद, ३. जूनागढ़।

पहले तो सरदार ने इनको भी प्रेम से अपनाने का प्रयास किया, परन्तु जब ये लोग किसी भी प्रकार न माने तब अन्त में सरदार को पुलिस कार्रवाही करनी पड़ी, थोड़े ही कष्ट से पुलिस ने हैदराबाद और जूनागढ़ दोनों राज्यों को भारत में मिला दिया। केवल काश्मीर बचा। यदि कुछ दिन और जीवित रहे होते तो काश्मीर को भी भारत में मिला लेते। इस प्रकार इनका सारा जीवन संघर्ष में बीता, और कार्याधिक्य के कारण आपको हृद्रोग हो गया। आप १५ अक्तूबर सन् १९५० में परलोक सिधार गये।

यदि आप सन् १९५७ में जीवित होते तो फिरोजपुरकांड, बहु अकबरपुरकांड, जालन्धरकाँड जैसे सैकड़ों नृशंसकांड आज पंजाब में न होते, और पंजाब के हिन्दुओं को बलात् गुरुमुखी भाषा न पढ़ाई जाती। क्योंकि आप अन्याय के आगे शिर नहीं झुकाते थे। इसके उदाहरण आपने इस लेख में पर्याप्त देख लिये होंगे। एक और उदाहरण मैं आपके सम्मुख प्रस्तुत करता हूं। जब यवनों ने पाकिस्तान लिया

तो अकाली नेता मास्टर तारासिंह ने भी खालिस्तान की मांग की और बड़ा झगड़ा खड़ा कर दिया। तब गृहमन्त्री सरदार पटेल ने मास्टर जी को बुलाया, और कहा कि हम आपको खालिस्तान दे देते हैं, परन्तु एक शर्त है। यदि पाकिस्तान आपके ऊपर हमला करेगा तो हम आपकी सहायता नहीं करेंगे, मास्टर जी के पैर धरती से खिसक गये। ऐसे थे सरदार पटेल। फिर अब जब पटेल की मृत्यु हुई तब मौका पाकर मास्टर जी ने दुबारा वही माँगें दुहराई, और नेहरू जी को गंगु ब्राह्मण कहकर और तलवार की धमकी देकर नेहरू को वश में कर लिया। नेहरू जी ने एक बन्द कमरे में मास्टर जी से समझौता करके पंजाब के शत प्रतिशत हिन्दी भाषी क्षेत्र में भी गुरुमुखी अनिवार्य रूप से लादकर पंजाब के हिन्दुओं के साथ घोर अन्याय किया है और अपनी कायरता का परिचय दिया है। यदि लोहपुरुष सरदार आज जीवित होते तो आज भारत का और ही रूप होता।

सेनापति फूलसिंह

(आचार्य भगवान्देव)

फ़ूलसिंह बाल्यकाल से ही महाराजा रणजीतसिंह के पास रहता था। वह अपने गुणों के कारण ही मुख्य सेनापति के उच्च पद पर पहुंच गया था। उसकी वीरता की धाक सारे पंजाब पर थी। अंग्रेज भी उसके नाम से डरते थे। अंग्रेजों ने उसकी बढ़ती हुई शक्ति को कुचलने के लिए अनेक षड्यन्त्र किये। अफगानों और रणजीतसिंह के बीच शत्रुता का बीज बो दिया। और अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहा किन्तु इसमें अंग्रेजों को रणजीतसिंह के मुकाबले में कई बार मुख की खानी पड़ी। अंग्रेजों ने रणजीतसिंह से मैत्री करके उसे अफगानों पर अधिकार जमाने के लिए उकसाया। सरदार फ़ूलसिंह ने वीरतापूर्वक युद्ध करके मुलतान, पेशावर और काश्मीरादि स्थानों को अपने अधिकार में कर लिया। इससे अंग्रेज और भी डर गये। क्योंकि वे तो फ़ूलसिंह को मरवाना चाहते थे किन्तु उल्टी उसकी शक्ति बढ़ गई। अंग्रेजों ने फिर गुप्त रूप से राजा रणजीतसिंह से लाहौर में सन्धि कर ली। इसका जब फ़ूलसिंह को पता चला वह बहुत बिगड़ा और नंगी तलवार लेकर दरबार में जा कर सिंहनाद करके कहने लगा—"विदेशी अंग्रेज हमारी प्रजा को बड़ा कष्ट दे रहे हैं, आप महाराज मेरी सहायता करें, मैं इनको राज्य से बाहर निकाल दूंगा, नहीं तो आप को वजीर अमीरों सहित जो विदेशी शत्रु से मिल गये हैं मार डालूंगा।" महाराज ने उसे शान्त करने का यत्न किया और कहा—"अब तो मैं वचन दे चुका हूं वचन भंग करना अच्छा नहीं, वे भी वचनबद्ध हैं अंग्रेज हमारे राज्य में नहीं आयेंगे। आप काबुल के पठानों से युद्ध करो, वे तुम्हारा राज्य छीनना चाहते हैं। मैं भी सहायता करूंगा।" अंग्रेजों की कूटनीति चल गई। फ़ूलसिंह अंग्रेजों को मित्र समझ और पठानों को अपना शत्रु जानकर प्रसन्न हो राजा रणजीतसिंह की आज्ञा से पठानों पर सेना लेकर चढ़ गया।

फ़ूलसिंह ने कई स्थानों को जीत लिया। नौसेरा के युद्ध में काबुल के मन्त्री अजीमखां की विजय पर स्वयं भी काम आया। अंग्रेज उस वीर का मरना सुन कर हँसे। और पंजाब पर चढ़ आये और कुछ काल पीछे सारे पञ्जाब पर अपना अधिकार कर लिया। किन्तु वह फूलसिंह वीर सदैव के लिये विस्मृति के पथ का पथिक बन गया। किसी को आज उसका स्मरण तक नहीं।

नामधारियों का बलिदान

(ले० ब्र० सोमदेव तथा ब्र० सत्यदेव)

जिस पञ्जाब के कारण भारतीय स्वतन्त्रता का प्रथम प्रयास व्यर्थ गया, अब उसी पञ्जाब ने इस विद्रोह मंत्र की दीक्षा लेकर सन् १८५७ को अपने कृत्य का प्रायश्चित करने का निश्चय किया। पञ्जाब के इस विद्रोह को इतिहास में 'कूका-विद्रोह' कहा जाता है।

इस आन्दोलन के जन्मदाता गुरु रामसिंह थे। गुरुरामसिंह का जन्म सन् १८२४ ई० में भैणी नगर जिला लुधियाना में हुआ था। आप युवावस्था में ही महाराज रणजीतसिंह की सेना में सम्मिलित हो गये थे। परन्तु अधिकतर ईश्वरोपासना के कारण आप अपना काम ठीक न कर सके। और वहां से लौट आये। गाँव में आकर ईश्वरोपासना करने लगे। भक्तिभाव के कारण आप बहुत प्रसिद्ध हो गये। आपके दर्शनों के लिए बहुत दूर-दूर से मनुष्य आने लगे। आपने आर्यसमाज का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। आपने शीघ्र ही यह भी अनुभव किया कि वास्तव में देश की उन्नति तभी हो सकती है जब राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाये। अतःएव आप धार्मिक व्याख्यानों में राजनीतिक स्वतन्त्रता का भी प्रचार करने लगे। कहा जाता है कि रामदास साधु ने आपको राजनीतिक कार्य के लिए उत्साहित किया था। अब आपका एक धार्मिक समूह पृथक् बन गया जिस को नामधारी समूह कहा जता था, इस समूह के गुरु रामसिंह जी थे।

उस समय आपने देश में असहयोग के साथ धार्मिक प्रचार किया और शिक्षा, अदालत आदि सब बदल डालीं, सरकार ऐसा देखकर क्रोधित हो उठी और आपके ऊपर विशेष प्रतिबन्ध लगाये गये।

गुरु रामसिंह ने कार्य क्षेत्र को और अधिक विस्तृत कर दिया। पञ्जाब को २२ भागों में बाँटा और २२ ही अध्यक्ष नियुक्त किये, जो कि अपने सङ्गठन को बढ़ाते जाते थे। कुछ ही दिनों में यह धार्मिक राजनीति समूह जोर पकड़ गया और गुप्त रूप में उत्साह पूर्वक कार्य करने लगा बाह्य काम कम होने के कारण सरकार ने प्रतिबन्ध हटा दिये और अंग्रेजों ने यह भी अनुभव किया कि गोहत्या योजना गुरु की नगरी श्री अमृतसर में सफल हो गई तो सर्वत्र सफल हो जायगी। अतः अंग्रेजों ने एक कसाई खाना अमृतसर के लाहौरी दर्वाजे के बाहर और दूसरा श्री हरिमन्दिर (स्वर्ण मन्दिर) के पास घंटाघर के मैदान में खोलने की आज्ञा दे दी।

प्रथम बलिदान फाँसी, कालापानी

श्री सतगुरु रामसिंह जी के नामधारी सिक्ख देश विदेश में घूम कर अंग्रेजो की कुटिल नीति को समझ गये थे। दश व्यक्तियों का एक जत्था घूमता-घूमता पञ्जाब की स्थिति की जांच करता हुआ अमृतसर में पहुँचा और वहाँ बूचड़खाने को देखकर तिलमिला उठा। १३ जून सन् १८७१ की रात को उस नामधारी जत्थे ने अपना जीवन गोरक्षार्थ बलि देने का निश्चय कर लिया था। हवन करने के बाद अपने

सद्गुरु रामसिंह जी से प्रेरणा लेने के लिए प्रार्थना की और शक्ति की याचना की १४ और १५ जून की मध्यरात्रि में दोनों बूचड़खानों और बूचड़ों का सफाया कर दिया, शहर में हा-हा कार मच गया।

प्रसिद्ध हिन्दू नेता, निहंग, महन्त और पुजारी गिरफ्तार कर लिए गये। इन लोगों ने पुलिस दमन से घबराकर निरपराध होते हुए भी अपराध स्वीकार कर लिया। उनको फांसी का हुक्म सुना दिया गया। इधर ये नामधारी श्री भैणी साहब गुरु स्थान पर पहुंचे। गुरु जी ने अमृतसर में बूचड़-बध काण्ड का वृत्तान्त पूछा। इन्होंने बतलाया कि हमारे इस काम के रहस्य को कोई नहीं जान सका, वहां तो कुछ और ही लोगों को फांसी का हुक्म सुना दिया गया है। तब सद्गुरु जी ने उन को सच्चे शूर वीर बनने का मार्ग बतलाया और आदेश दिया कि वहाँ वापिस जाकर अपने अपराध को स्वीकार कर लो। उन वीरों ने अमृतसर में जाकर अपने अपराध को स्वीकार कर लिया और मेजर डेविड सैशन जज अमृतसर ने ३१ अगस्त १८७१ को फैसला सुना दिया कि चार को फांसी तीन को कालापानी और तीनों को देश द्रोही घोषित कर दिया गया।

१५ सितम्बर १८७१ को फांसी का दिन था। ये शूरवीर अमृतसर के पवित्र तीर्थ में स्नान करके ईश्वर भजन गाते हुए बाजारों से गुजर रहे थे। दर्शकों ने कहा ये नामधारी आज फांसी चढेगें। ये तो ऐसे अचिन्त हैं मानों इनको मृत्युकी सुध ही नहीं। बहुत से दर्शक इनके साथ हो लिए और बहुत से लोग पहले ही रामबाग गेट के बाहर (जहां आजकल तिबिया कालिज है) पहुँच चुके थे। वहां एक वट वृक्ष के साथ लटकी फांसी के फन्दे को स्वयं अपने गले में डालकर वे वीर गति पा गए जिन्हें फांसी दी गई उनके नाम हैं—लहसनासिंह, फतेहसिंह, हाकिमसिंह, बीहलसिंह। जो कालेपानी भेजे गए—लहियासिंह, लहणा-सिंह, सिपाही लालसिंह। शहीद हाकिमसिंह की माता ने फांसी के बाद चारों महापुरुषों के शरीरों का अन्त्येष्टि संस्कार किया। जब लोगों ने इकलोते बेटे के लिए चिन्ता प्रकट की तो माता ने प्रसन्नचित्त होकर कहा—"मैं भाग्यशालिनी हूँ, मेरे पुत्र ने गोरक्षा, गरीब लोगों तथा देश के लिए अपने धर्म का पालन करते हुए शरीर दिया है।

रायकोट जिला लुधियाना में एक ऐतिहासिक स्थान है। सत्गुरु जी के नामधारी वीर यहां भी आ पहुंचे गुरुद्वारे के महन्त ने बड़े दुःख के साथ गुरुद्वारे के निकट गोवध की बात इन्हें बतलाई। सच्चे ईश्वर भक्त होने के कारण गो-वध की बात सुनकर कूका वीरों के मन रोष से भर गए, कहा अच्छा भग-वान् भली करेंगे। इस काम के लिए तीन व्यक्ति संत गुरुमुखसिंह, संतम ङ्गलसिंह और संत मस्तानसिंह ने बूचड़खाना हटवाने का कार्य अपने ऊपर ले लिया १५ जुलाई १८७१ की रात को ११ बजे बूचड़ों से मुकाबला हो गया, जिसमें कई बूचड़ मारे गए और वध होने वाली गायों को रस्से काटकर मुक्त कर दिया गया। सरकार की ओर से इन बूचड़ों के मारने वालों को पकड़ने के लिए एक हजार रुपया इनाम रखा गया। लालच में आकर छीनी वाले के दल्लू आदि तीन व्यक्तियों ने पांच मनुष्यों को पकड़वा दिया जिन में सूबा ज्ञानसिंह और रतनसिंह नाई वालिया बिल्कुल निर्दोष थे। पहले तीन व्यक्तियों ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और साफ-साफ कह दिया कि ज्ञानसिंह और रत्नसिंह हमारे इस काम में साथी नहीं हैं। परन्तु पुलिस वालों ने झूठे गवाह बनाकर पाँचों को फांसी का दण्ड दे दिया। जो पुलिस ने झूठे साक्षी बनाये थे, वे छोड़ दिये। मुखसिंह, मङ्गलसिंह, मस्तानसिंह ५ अगस्त १८७१ को बसिया वाली कोठी के निकट एक वृक्ष के साथ फाँसी पर लटकाये गये। ज्ञानसिंह और रत्नसिंह को २६ नवम्बर को लुधि-याना जिले की जेल में फांसी दी गई।

मालेर कोटला की घटना

यह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। इससे भयभीत होकर हिन्दुस्तान की ब्रिटिश सरकार को अपने दमन चक्र को और तेज करना पड़ा। रायकोट के ज्ञानसिंह और रत्नसिंह निरपराध फांसी पर लटकाये जाने एवं गुरुमुखसिंह नम्बरदार, जो गांव फरवाही रियासत मालेर कोटले का था, उसके सामने बैल पर अधिक भार लादने के कारण, सरकारी अधिकारी का कुंजड़े का पक्ष लेना, तथा श्री गुरुमुखसिंह के सामने ही बैल का वध करवा देना, इत्यादि घटनाओं से दुःखित होकर गुरुमुख-सिंह सीधा भैणी साहब के पास पहुँचा। वहां ११-१२ जनवरी १८७२ को माघी का एक बड़ा मेला था, अमृतसर रायकोट आदि घटनाओं की पञ्जाब में बहुत चर्चा थी। विशेष कर रायकोट में दो निरपराध नामधारी वीरों को फांसी पर लटकाये जाने का नामधारी सिखों को बहुत दुःख था। सरदार हीरासिंह और सरदार लहनासिंह के नेतृत्व में अकाल बुंगा और श्री भैणीसाहब में गुप्त विचार हुआ। सरदार हीरासिंह ने एक रेखा भूमि पर खींच कर आह्वान किया कि जो लोग गोरक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति देना चाहते हैं वे इस रेखा से इधर आ जायें। तत्काल १४० व्यक्ति जिन में कुछ स्त्री और बच्चे भी थे रेखा को पार कर आ गये। १३ जनवरी १८७२ को यह जत्था मालेर कोटला रवाना हो गया। रास्ते में मपौद नाम गांव में शस्त्र प्राप्त करने का प्रयत्न किया १५ जनवरी १८७२ को प्रातः काल सात बजे मालेर कोटला के बूचड़खाने पर आक्रमण कर दिया। वहां भी पुलिस और फौज ने बूचड़ों की रक्षा के लिए इन का मुकाबला किया, परन्तु विजय तो नामधारियों की ही हुई। नामधारी वीर बड़े धैर्य से वापिस चले आये। इस युद्ध में हीरासिंह का एक बाहु कट गया, परन्तु उसने एक बाखू से ही कई शत्रुओं को मौत के घाट उतार दिया। मार्ग में रठनामी गाँव में जहां कि यह जत्था विश्राम कर रहा था उत्तमसिंह थानेदार ने इस जत्थे को धोखे से गिरफ्तार करके शेरपुर की जेल में बन्द कर दिया। १७ जनवरी को नाभा, पटियाला, जींद आदि सिख रियासतों से तोपें मंगवाकर मालेर कोटले के मैदान में रख दी गईं।

निर्भय नामधारी वीरों को मालेर कोटला के मैदान में लाया गया, जिस का नाम आज उस समय से ही 'कूकियां दा रक्कड़' चला आ रहा है। यह ईश्वर भक्त धर्मवीर गोरक्षा की आजादी के गीत गाते तथा भारतमाता की जय के नारे लगाते मैदान में आ पहुँचे। लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर मिस्टर कावन ने कमिश्नर अम्बाला की आज्ञा की उपेक्षा करके, विना अभियोग चलाये, बिना आज्ञा के ४९ नाम-धारी वीरों को तोपों से उड़ा दिया। ये वीर बड़े उत्साह से बढ़-बढ़ कर एक-एक करके तोपों के मुँह से बंधते और तोप के एक ही धमाके से आकाश में उड़ते दिखाई देते थे और न जाने कहां गये, यह दृश्य आँखों से नहीं देखा जा सकता। इस जत्थे में माता खेमकौर का १२ वर्षीय इकलौता पुत्र बिशनसिंह भी था। कावन की मेम ने उसको बचाने का प्रयत्न किया, मिस्टर कावन ने गाली देते हुए और भाँति-भांति के अपशब्द गुरुरामसिंह को कहते हुए बालक से पूछा कि अगर तू यह कह दे कि मैं गुरुरामसिंह का शिष्य नहीं हूं तो तुझे छोड़ दिया जायेगा। परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। वह गुरु का निरादर न सहते हुए इतना क्रोध में भर गया कि तिलमिला कर काजियों के हाथों से निकल गया और मिस्टर कावन की दाढ़ी को पकड़कर ऐसा हिलाया कि तलवार से हाथ काट देने पर और शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देने पर ही दाढ़ी छोड़ी। सरदार हीरासिंह ने शहीद होते समय कहा—"ओ बिलिया ! याद रख

हम शीघ्र ही फिर जन्म लेकर आ रहे हैं। हम भारतवर्ष से आपको निकाल कर ही दम लेगें और भारत से गोघातकों का नाश करके धर्म का झण्डा फहरायेंगे। नामधारी वीरों के बलिदानों ने ब्रिटिश साम्राज्य और उसके दलाल भारतीय राजा महाराजाओं जागीरदारों, महन्तों तथा पुजारियों को बहुत भयभीत कर दिया।

श्री सद् गुरु रामसिंह को देश निकाला तथा नामधारियों पर विपत्ति का पहाड़ः—

नामधारियों के वध से भी अंग्रेजों को संतोष नहीं हुआ मालेर कोटले में नामधारियों के खून से होली खेल कर उसी दिन १७ जनवरी को ईश्वर विश्वासी, देश में स्वतन्त्रता तथा गोरक्षा की भावना उत्पन्न करने वाले श्री सद्गुरु रामसिंह जी को ११ सिखों के साथ देश निकाला दे दिया। कुछ दिन इलाहाबाद के किले में रखा। उसके बाद रंगून भेज दिया। भैणी साहब के गुरुद्वारे का सामान अधिकार में करके पुलिस चौकी बैठा दी। जहां-जहां नामधारी थे; उनके साथ अपराधियों जैसा व्यवहार किया। कितने ही निरपराधियों को पकड़कर नजरबन्द किया। पटियाला के राजा ने इस कार्य में अंग्रेजों की पूरी सहायता की और देशद्रोही का प्रमाण दिया। राष्ट्र स्वतन्त्रता तथा गोरक्षार्थ श्री सद्गुरु राम-सिंह जी तथा उनके शिष्य नामधारियों ने जो बलिदान किये वे भारत के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेंगे। १८ जनवरी को फिर १६ नामधारी मिस्टर कावन की आज्ञा से तोपों से उड़ा दिये गए। इन में सन्त विरयामसिंह जी जो महाराजा पटियाला के घनिष्ट कौटुम्बिक सदस्यों में से थे, उनका कद छोटा था, मि० कावन ने सिफारिशी पत्र के कारण छोटे कद का बहाना करके उन्हें छोड़ना चाहा। तोपची ने कहा यह छोटा है इसकी छाती तोप के मुख के सामने ठीक नहीं आती। सन्त विरयामसिंह ने यह सुनते ही निकट पड़ी हुई ईंटों को पैरों के नीचे रखकर और उन पर खड़े होकर छाती ठोककर कहा अब मेरी छाती तोप के मुँह के सामने ठीक बैठती है, फायर क्यों नहीं करते। कावन ने आवेश में भर कर वध करने की आज्ञा दी। और वह धमाके के साथ वीर गति पा गया। मालेर कोटले की इस घटना में ६ नामधारी गो भक्त शहीद हुए।

उधर गुरुरामसिंह जी १८७८ के रेगुलेशन के अनुसार गिरफ्तार कर लिए गये। और बर्मा में भेज दिये गये। वहीं पर १८८५ ई० में पञ्जाब के केसरी गुरुरामसिंह इस संसार से चल बसे।

गदरपार्टी की योजना

(आचार्य भगवान्देव)

पंजाब और दिल्ली के क्रांतिकारियों के बलिदान

लाला हरदयाल पर श्याम जी कृष्णवर्मा तथा वीर सावरकर की संगति का प्रभाव यह पड़ा कि वे अपनी पढ़ाई परीक्षा से पूर्व ही छोड़कर भारत चले गये वहां विद्यार्थियों में, विशेषतया लाहौर में राजनीति की शिक्षा देते थे; किन्तु वहां से राजनैतिक कार्य में सफलता न देख निराश हो अलजीरिया (अफ्रीका) में जाकर एक तपस्वी का जीवन व्यतीत करने लगे । भाई परमानन्द जी अमेरिका आये हुए थे। ये लाला हरदयाल से मिलने मार्टनीक द्वीप गये यहां एक मास ठहरकर वादविवाद करते रहे और उन्हें कर्म क्षेत्र में कार्य करने के लिए तैयार किया। भाई जी के यत्न से लाला हरदयाल चेम्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में संस्कृत तथा हिन्दू दर्शनशस्त्र के प्रोफेसर बन गये। कुछ काल पश्चात् वे सानफ्रांसिस्को चले आये। अमेरिका में कैनेडा में सिखों तथा भारतीय विद्यार्थियों से आपका बहुत घनिष्ट सम्बन्ध हो गया।

भाई जी तथा लाला जी कभी-कभी मिलते रहते थे। भाई जी तो फिर इङ्गलड चले गये किन्तु ला० हरदयाल १० मई १९१३ को कैलिफोर्निया के यूलो नामक नगर में एक भारतीयों की सभा की और इसी सभा में भारत में गदर कराने की दृष्टि से "गदर पार्टी" की स्थापना की। इसमें पं० जगतराम, कर्तारसिंह, दक्कीरुढ़सिंह, विजय, तारकदास, तारकनाथदास बा० गोविन्द बिहारीलाल आदि अनेक सज्जन थे। पार्टी का मुख्य पत्र गदर निकलाने का भी निश्चय हुआ। इसके छापेखाने का नाम "युगान्तरआश्रम" रखा गया। मुख्य कार्यालय सान फ्राँसिस्को बनाया गया। यह गदर का प्रथमांक १ नवम्बर १९१३ में हिन्दी, उर्दू, गुजराती और गुरुमुखी आदि भाषाओं में निकला। इसके प्रधान सम्पादक बाबू गोविन्द बिहारीलाल थे। पत्र की भाषा अत्यन्त ओजपूर्ण और उत्साहवर्धक होती थी। इस में यह प्रेरणा होती थी कि योरुप में महायुद्ध होने वाला है। उस अवसर पर अंग्रेजों के युद्ध में फंस जाने पर भारत में विप्लव करा के अंग्रेजों को भारत से निकाल कर अपने देश को स्वतन्त्र करना चाहिए। इस पत्र की प्रतियां भारत, ब्रह्मा, चीन, लन्दन आदि सभी स्थानों पर जहां भी प्रवासी भारतवासियों का विदेशों में निवास था सर्वत्र भेजी जाती थीं। गुजराती संस्करण का सम्पादन श्री खेमचन्द जी करते थे। गदर पार्टी के साथ मिश्र, टर्की और जर्मनी आदि अनेक देश सहानुभूति रखते थे। ला० हरदाल जी अपने साथियों रामचन्द्र और बरकतुल्ला आदि के साथ लेख तथा व्याख्यानों द्वारा खूब प्रचार करते थे; लाला जी २६ मार्च १९२४ को गिरफ्तार कर लिए गए। किन्तु लाला जी जमानत पर छुड़ा लिए गए। वे अपने कार्य रामचन्द्र को सोंप स्विट्जरलेंड चले गये, वहीं से फिर अनना कार्य जर्मनादि देशों में रहकर करते रहे। जिसका विवरण पृथक् दिया गया है।

सन् १९१३ में कनेड़ा में लग-भग चार सहस्र भारतीय थे, इनमें अधिक सिख थे। भारत से ब्रह्मा हांगकांग, और शंघाई में अधिक आते थे। वहां से ही कनेडा अमेरिका के भिन्न स्थानों को चले जाते थे। कनेडा में भारतीयों के साथ नित्य नये अत्याचार, अन्याय और घृणित व्यवहार होते थे। गदर पार्टी का

संगठन गोरों के अन्याय के विरुद्ध लड़ रहा था। इस अन्याय को दूर करने के लिए भागसिंह, सुन्दरसिंह हरनामसिंह, बलवन्तसिंह और अर्जुनसिंह आदि ने खूब कार्य किया। इन्होंने स्थान-स्थान पर गुरुद्वारे स्थापित कर भारतीयों को संगठित किया। श्मशान न होने के कारण हिन्दुओं को विवश हो अपने मुर्दे गाढ़ने पड़ते थे। इन्होंने भूमि मोल लेकर श्मशान बनवाया, इस श्मशान में भाई अर्जुनसिंह का पहला अंत्येष्टि संस्कार हुआ। इसी प्रकार अन्याय के विरुद्ध सङ्घर्ष चालू रहा।

कलकत्ते से कोई सीधा जहाज अमेरिका नहीं आता था। कनेड़ा वालों ने यह कानून बनाया कि कनेडा में उतरने के लिए अपने देश से सीधे एक ही जहाज में वहां आना चाहिए। अमेरिका गोरे भारतीयों को हण्डरस द्वीप में जिसका जलवायु अत्यन्त दूषित था भेजने का यत्न कर रहे थे। अब कोई नया भारतीय उपयुक्त कानून के अनुसार कनेडा में नहीं उतर सकता था। नागरसिंह तथा उसके एक साथी ने हैण्डरस की द ा जाकर देखी उन्होंने आकर वहां के दूषित जलवायु के कारण उस द्वीप को नरक से भी गया बीता बताया।

गदर, पत्र द्वारा भी प्रकट किया, तथा कुछ भारतीय भारत में कनेडा से अपने परिवार ले आये। इस पर भी बड़ा झगड़ा हुआ, दिन-प्रति-दिन गोरों का द्वेष भारतीयों से बढ़ रहा था। सैंकड़ों भारतीयों को कनेड़ा से नये कानून के अनुसार लौटा दिया गया। वे सब हांगकांग में इकट्ठे हुए, उन्होंने एक योजना बनाई।

कोमांगातामारू जहाज की दुर्घटना

बाबा गुरुदत्तसिंह ने कनेड़ा तथा प्रवासी भारतीयों के कष्ट को जब सुना तो उन्होंने इसे दूर करने के लिए एक योजना बनाई। बाबा गुरुदत्तसिंह अमृतसर जिले के निवासी सिख थे। बहुत समय तक सिंघापुर और मलाया में ठेकेदारी का कार्य कर चुके थे। ये भारत में १९०९ में लौटकर आये थे। सन् १९१० में गुरुनानक स्टमीनेबीग्रेशन कम्पनी की स्थापना की। इन्होंने कम्पनी की ओर से एक समूचा जहाज हांगकांग से एक जर्मन एजेन्ट द्वारा किराये पर लिया। इस जहाज का नाम "कोमागातामारू" था। यह जापानी जहाज था। कलकत्ते में कोई जहाज यत्न करने पर भी नहीं मिलता था। धड़ल्ले से कनेडा के टिकट बेचने आरम्भ किये और उन्होंने मार्ग के बन्दरगाह शंघाई, मौज और योकोहामा तक के यात्रियों को अपने जहाज में ले लिया। इन सबको लेकर पहले कलकत्तो आये और कलकत्ते से फिर हांगकांग गए। कोमागाता ४ अप्रैल १९१४ को हाँगकांग से चला। मार्ग में इसके यात्रियों को गदर पत्र भी जहाज में पढ़ने को मिलता रहता था।

२३ मई सन् १९१४ को यह जहाज कनेडा के मुख्य बन्दरगाह वेंकोवर जा पहुँचा। इस जहाज में ३ ५ सिख तथा २१ पंजाबी मुसलमान यात्री थे। इमीग्रेशन वालों ने न तो जहाज को कहीं भी ठहरने की आज्ञा दी, नहीं यात्रियों को कनेडा में उतरने दिया। भागसिंह के विशेष प्रयत्न से एक नया घाट खरीदा गया। वहां पर 'कोमागातामारू' जहाज ठहरा। अंग्रेजों ने जहाज के मालिक को बहकाया। वह जहाज का किराया किस्तों पर न लेकर एक साथ सारा मांगने लगा। यात्रियों के पास धन नहीं था। भागसिंह ने अपने मित्रों से मिलकर ३२ हजार डालर देकर जहाज का चार्टर अपने नाम लिखवा लिया। कनेडा की सरकार ने जहाजबन्दरगाह से खदेड़ने के लिए एक पुलिस का दल भेजा। किन्तु यात्रियों ने अस्त्र-शस्त्र से पुलिस

को मार भगाया । फिर कनेड़ा की सरकार ने अपना जंगी जहाज युद्ध करने को भेजा तो "कोमागातामारू" जाने को तैयार हुआ। यात्रियों के पास धन तथा खाने के लिये भोजन भी नहीं था। वलवन्तसिंह तथा भागसिंह आदि ने यत्न करके कनेड़ा सरकार से सब प्रबन्ध करवाया। जहाज २३ जुलाई को वापिस चल पड़ा। इस समय योरुप में महायुद्ध छिड़ चुका था। यात्रियों में भी बहुत जोश था। बाबा गुरुदत्त को योकोहामा में सूचना दी गई कि उनके जहाज को हाँगकाँग में नहीं ठहरने दिया जायगा। कोबे की कौन्सिल ने कुछ सुविधायें जहाज को दीं। विवश होकर जहाज को कलकत्ता जाना पड़ा। यात्री भारत नहीं जाना चहते थे, किन्तु इन्हें हाँगकांग वा सिंघापुर कहीं भी उतरने नहीं दिया, यात्रियों को बड़ा कष्ट हुआ। कोमागातामारू दुगली नदी के संगम पर पहुंचा इसने २६ सितम्बर को ११ बजे प्रातः वजबज में लंगर डाला। खुफिया पुलिस ने इस जहाज के यात्रियों के विरुद्ध भयानक रिपोर्ट दे रखी थी। अतः इनको मार्ग में कहीं नहीं उतरने दिया और भारत में सब यात्रियों को उतार कर पकड़ कर नजरबन्द किया जाये यह सरकार का निश्चय था।

बजबज का गोलीकाण्ड

जिस समय "कोमागाता मारू" जहाज कलकत्ते से बजबज पर आया तो सरकार की ओर से यात्रियों को निश्शुल्क पंजाब ले जाने के लिए स्पेशल ट्रेन तैयार खड़ी थी, इन सबको सरकार अपने आर्डीनैन्स के द्वारा नजरबन्द बनाना चाहती थी। किन्तु इस जहाज के यात्रियों ने गाड़ी में चढ़ने से स्पष्ट निषेध कर दिया। वे कलकत्ता नगर में पंक्ति बनाकर जाने लगे। सरकार ने सेना द्वारा बलात् यात्रियों को वापिस खदेड़ दिया। इससे दंगा हो गया। सिखों के पास भी रिवालवर थे। गोलियां चलीं, दोनों ओर के व्यक्ति मरे। अन्त में ६० यात्रियों को जिनमें १७ मुसलमान थे सायंकाल गाड़ी में विवश कर बैठाया गया। इस दंगे में १८ सिख मारे गये। जिनका बहुत समय तक पता न चला। गिरफतारी लोगों में से अधिकाश लोगों को जनवरी सन् १६१५ में अपने घर जाने की आज्ञा दे दी इन में से ३१ को जेलों में नजरबन्द कर दिया गया। बाबा गुरुदत्तसिंह इस झगड़े में गोली से घायल हुए। उनके साथी उनको कन्धों पर उठाकर गोलियों की वर्षा से निकाल कर बाहर कहीं ले गये। पुलिस उन्हें पकड़ने की चिन्ता में थी, बाबा जी की गिरफ्तारी के लिये दश हजार रुपये का पुरस्कार की घोषणा सरकार ने की। किन्तु सब कुछ करने पर सरकार उनको कभी नहीं पकड़ सकी। इस घटना का समाचार अमेरिका पहुँचने पर भारतीय प्रवासियों में उत्साह व जोश की सीमा न रही। उस समय यह खबर सब स्थानों पर रही थी, कि जर्मनी, फ्राँस को लेकर इंगलैंड पर आक्रमण करेगा। भारतीयों की गदरपर्टी ने इस समय यही निश्चय किया था कि भारतवर्ष में जाकर भारतवर्ष की देशी सेना तथा जनता में प्रचार करके गदर कराया जाये। भारत की सेना को अंग्रेजों की सहायता करने से रोका जाये। भारत में भी पहले से देशभक्त पञ्जाब तथा बंगाल आदि प्रदेशों में गदर की तैयारी कर रहे थे। इस समय अमेरिका से वृद्ध और युवक सभी भारतीय अपने कार्य और सम्पत्ति को छोड़कर भारत की ओर इसी योजना को पूर्ण करने के लिए चल पड़े।

कनेडा के अतिरिक्त संयुक्त राज्य, हांगकांग, चीन आदि सभी स्थानों से भारतीयों के दल के दल भारत को चल दिए। इधर कनेडा में भागसिंह वचनसिंह और बेलासिंह आदि के बलिदान ने आग पर घृत का कार्य किया। लाला हरदयाल का इस गदर की योजना में पूरा हाथ था। अतः इनके विषय में पाठकों को अच्छी प्रकार ज्ञान कराना अत्यन्तावश्यक है।

देशभक्त लाला हरदयाल

(आचार्य भगवान्देव)

ये दिल्ली के निवासी थे और बहुत प्रतिभाशाली थे। इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से एम० ए० पास किया था और सरकारी छात्र-वृत्ति लेकर विलायत पढ़ने के लिए गये। ला० हरदयाल जी १६०५ में इंग्लैंड में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में राजकीय छात्रवृत्ति से पढ़ते थे इसी समय श्याम जी कृष्णवर्मा (इण्डिया हाउस) भारतीय भवन की स्थापना कर और अपना एक मासिक पत्र निकाल कर भारत की स्वतन्त्रता का प्रचार कर रहे थे। इन्हीं दिनों लाला जी का श्याम जी कृष्णवर्मा के साथ प्रेम हो गया था। श्याम जी के विचारों से प्रभावित हो वे भी उनके विचारों का प्रचार करने लगे और इसी समय भाई परमानन्द जी आर्यसमाज का प्रचार करने लन्दन में आये थे। वे भी इण्डिया हाउस में ठहरते थे उनके साथ भी ला० हरदयाल जी का बड़ा स्नेह हो गया। लाला हरदयाल जी को क्रांति की ओर प्रवृत्त करने वाले यही दो व्यक्ति थे। विशेषतया श्याम जी कृष्णवर्मा की संगति का आप पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। श्याम जी को लाला हरदयाल जी के राजनीतिक गुरु कहें तो उचित ही है। इन्हीं दिनो श्याम जी कृष्ण की छात्रवृत्ति लेकर वीर सावरकर भी इंग्लैंड पहुँच कर 'भारतीय भवन' में रहने लगे। ला० हरदयाल इनके साथ मिल कर सभी कार्यों को उत्साह से करते थे। १६०७ में श्याम जी कृष्ण वर्मा फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहुंच गये। इसके थोड़े दिन पश्चात् लाला हरदयाल जी भी पेरिस पहुँच कर स्वतन्त्रता-पूर्वक राजनीतिक कार्यों में उन्हें सहयोग देते रहे। लाला हरदयाल अपना अध्ययन छोड़ कर १६०८ में इंग्लैंड से भारतवर्ष आ गये थे। उन्होंने "अंग्रेजी शिक्षा का तरीका बुरा है" अचानक यह कह कर आक्सफोर्ड का पढ़ना तथा सरकारी छात्रवृत्ति दोनों ही छोड़ दी। भारत लौट कर लाला जी दिल्ली और लाहौर में विशेष रूप से राजनीतिक शिक्षा का प्रचार करते रहे।

उनके अनेक शिष्य अमीरचन्द, अवधबिहारी, जे०, एन०, चटर्जी और दीनानाथ आदि थे। किन्तु सरकार की सी० आई० डी० इंग्लैंड से ही सन्देह के कारण आपके पीछे लगी हुई थी। अब भारत में भी उनकी गिरफ्तारी की सम्भावना अधिक दिखाई देने लगी। ऐसी अवस्था में वे भारत में अधिक समय तक न ठहर सके। दिल्ली में मा० अमीरचन्द जी उनके पीछे कार्य चलाते रहे। दिल्ली में इनके दल के लाला हनुमन्तलाल विदेशी माल के बड़े व्यापारी थे। उन्हें लाला हरदयाल जी के संसर्ग से यह ज्ञात हो गया था कि विदेशी शिक्षा का उद्देश्य हमारी दासता को सुदृढ़ करना तथा दास मनोवृत्ति को उत्पन्न करना है। उन्होंने १६०६ में अपने मकान चेलपुरी में राष्ट्रिय विद्यालय खोला। इसमें मा० अमीरचन्द तथा अन्य अध्यापक भी पढ़ाया करते थे। लाला हनुमन्तसिंह विदेशी माल के बहुत बड़े व्यापारी थे किन्तु लाला हरदयाल जी की संगति से स्वदेशी का प्रण करने के पश्चात् उन्होंने अपने बड़े भारी लाभजनक व्यापार को लात मार दी। इस के पश्चात् दिल्ली का कार्य छोड़ कर लाला हरदयाल अमरीका चले गये।

ये वहां जाकर सैन फ्रांसिस्को में रहने लगे। लाला हरदयाल के योरुप से आ जाने के कारण और वीर सावरकर के गिरफ्तार होने के कारण योरुप में भारतीय विप्लववाद का जोर कम हो गया था।

१९०८ में सदैव के लिए भारत को छोड़ पहले लन्दन गये। किन्तु वहां के राजनीतिक कार्य में निराशा देख पैरिस कुछ दिन रह कर ये अलजीरिया (अफ्रीका) में जा कर रहे। इस स्थान पर वे निर्धनों के समान जीवन व्यतीत करते थे। यहाँ वे तपस्या कर रहे थे। किन्तु वहां उन्हें मुसलमानों की सोसाइटी वहुत भयंकर प्रतीत हुई। अतः वहां से ये पुनः पैरिस लौट आये। वे इसके पश्चात् अपने लक्ष्य को सन्मुख रख मध्य अमरीका में पश्चिम द्वीप समूह के फ्रेंच टापू मार्टीनिक में जाकर रहे। यहां वे एक वहुत छोटे से कमरे में रहते थे। यहां पर लाला हरदयाल जी रहते हुए प्रायः पास वाली पहाड़ी पर तप करने जाया करते थे। भूमि पर बिना कुछ बिछाये ही सोते थे, कोई अन्न वा आलू उबाल कर खाते, दिन में थोड़ा सा पढ़ते थे। शेष सारा समय ध्यान करने में व्यतीत करते थे। १९११ में जब भाई परमानन्द जी योरुप होकर अमेरिका आये तो वहां से लाला हरदयाल से मिलने मार्टीनीक द्वीप पहुंचे, यहां वे लगभग एक मास तक लाला जी के पास ठहरे। भाई जी को उन्होंने बतांया कि मैं बुद्ध के समान एक नया धर्म चलाना चाहता हूँ। इसी के लिये तप करके अपने आप को तैयार कर रहा हूँ। विवश हो भाई जी भी उनके साथ इसी प्रकार रहने लगे।

इन दोनों देशभक्तों में अत्यन्त घनिष्ट मित्रता तथा सच्चा प्रेम था। इनका परस्पर वादविवाद भी हुआ करता था। भाई परमानन्द जी उनके इस तप के कार्य को व्यर्थ समझते थे। वे उनको आर्य मिश्नरी के समान कर्मक्षेत्र में देखना चाहते थे। अन्त में बहुत दिनों के वादविवाद के पश्चात् ला० हरदयाल इस बात पर सहमत हो गये कि वह हार्वर्ड विश्वविद्यालय में जाकर वहां प्रोफेसर के रूप में सेवा करते हुए एक नया केन्द्र कार्यार्थ बना दें। अतः भाई जी के पुरुषार्थ के फलस्वरूप ला० हरदयाल जी अपनी तपस्या छोड़ कर हार्वर्ड जा पहुंचे, किन्तु वहां का जलवायु लाला जी को अनुकूल नहीं पड़ा। वहां से पुनः वे होनोलूलू द्वीप में जाकर तप करने लगे तथा भाई जी को ब्रिटिश गायना में भेज दिया। भाई जी वहां धर्म का प्रचार कर रहे थे। फिर भाई जी सान फ्रांसिस्को (अमरीका) आकर पढ़ने लगे, फिर कुछ समय पश्चात् ला० हरदयाल भाई जी के पास ही सान् फ्रांसिस्को आ गये। भाई जी ने एक अपने मित्र डाक्टर द्वारा एक हाल किराये पर लेकर ला० हरदयाल जी के व्याख्यान हिन्दू दर्शन पर कराये। फिर वर्कले युनिवर्सिटी में भारतीय विद्यार्थियों ने हिन्दू दर्शन पर ही लाला जी के व्याख्यान कराये। ला० हरदयाल जी की भाषा, वक्तृत्व शक्ति तथा योग्यता आश्चर्यजनक थी। अतः उनका यश इतना फैल गया कि वकर्ले यूनिवर्सिटी का संस्कृत का प्रोफेसर उनका भक्त बन गया। उसके उद्योग से ला० हरदयाल चैम्सफोर्ड विश्वविद्यालय के संस्कृत तथा हिन्दू दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर बन गये। लाला जी वेतन नहीं लिया करते थे। लाला जी का अत्यधिक सम्मान यहां पर हुआ। समाचारपत्रों में इन को हिन्दू ऋषि लिखा जाता था। अब उनके विचार समाजवाद और साम्यवाद की ओर झुक रहे थे। लाला हरदयाल जी मध्यमावस्था में नहीं रहते थे।

यूनिवर्सिर्टी तथा बाहर वे पूंजीवाद तथा सरकार के विरुद्ध खुला प्रचार करने लगे। यूनिवर्सिटी के अधिकारियों के साथ उनके विचार का मतभेद होने से वे यूनिवर्सिटी छोड़ कर सान् फ्रांसिस्को चले गये। भाई जी के साथ भी अनेक विषय में मतभेद रहता था। ला० हरदयाल जी ने वहां अमरीका में भारतीय विद्यार्थियों तथा सिखों से मेल-जोल बढ़ा कर गदर पार्टी की स्थापना की। भाई जी तो कुछ समय पश्चात् अपनी पढ़ाई समाप्त कर इंग्लेंड चले गये। ला० हरदयाल सब भारतीय सहयोगियों को इकट्ठा कर भारत

के राष्ट्रिय आन्दोलन को बढ़ाना चाहते थे। इस में भाई परमानन्द जी को भी बुलाया था।

ला० हरदयाल जी का विचार एक छापाखाना खोल कर अखबार निकाल कर राजनीतिक विचारों का प्रचार कर राष्ट्रिय भावना पैदा करने का था। इनकी इच्छा गदर पार्टी की स्थापना करने के पश्चात् पूर्ण हुई। इस योजना को पूर्ण करने के लिये रौलट कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार एक मीटिंग ऐस्टोरिया नगर में ला० हरदयाल जी की अध्यक्षता में अमरीका के अन्तर्गत ओरगॉन राज्य में हुई। इसमें निश्चय किया गया कि प्रशान्त महासागर तट का एकहिन्दू ऐसोसियेशन बनाया जावे। इसकी शाखायें स्थान-स्थान पर हों, गदर नाम का पत्र भी निकालने का निश्चय किया गया। इसके लिये धनसंग्रह करने का भी निश्चय हुआ। प्रेस का नाम "युगान्तर आश्रम" रखा गया। इस विषय में अन्यत्र लिखा जा चुका है। इस समय ला० हरदयाल तथा उनके साथी स्थान-स्थान पर सभा करके व्याख्यान देते फिरते थे। लाला जी के प्रधान साथियों में रामचन्द्र भूतपूर्व भारतीय सम्पादक तथा वरकतुल्ला थे। इस समय अंग्रेजी खुफिया पुलिस भी लाला जी का छाया के समान पीछा कर रही थी।

प्रवासी अमरीकनों के कथनानुसार ब्रिटिश सरकार को एक बड़ी रिश्वत ला० हरदयाल को गिरफ्तार करने के लिये दी। लाला हरदयाल को २५ मार्च १६२४ को गिरफ्तार कर लिया गया। उस समय के अमेरिकन पत्रों को देखने से पता चलता है कि उस समय अदालत में जमानत देने वालों की बड़ी भारी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। अमरीकन धनिक तक थैलियां लिये हुए अदालत में खड़े थे। वह ला० हरदयाल जी के बदले में बराबर का सोना तक तोल कर देने को तैयार थे। अन्त में लाला जी जमानत पर छुड़ाये गये। वे गदर पत्र और युगान्तर आश्रम छापेखाने का सब प्रबन्ध-भार रामचन्द्र पर छोड़ कर स्वीट्जरलैण्ड चले गये। उस समय योरुप में युद्ध जोरों पर था। लाला जी ने जर्मनी से बातचीत की। कैसर ने उन्हें अपनी युद्ध समिति में ले लिया। कहा जाता है इसके पश्चात् लाला जी ने भारतीय समुद्र में कई युद्धों का संचालन किया। किन्तु पीछे उन्हें पता चल गया कि जर्मनी की नियत भी अंग्रजों के समान ही है और जर्मनी पर अपने वचन पर स्थिर रहने की आशा नहीं की जा सकती। अतः वे वहां से गुप्त-रूप से आकर हालैण्ड में रहने लगे।

इंगलैंड के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री रामसे मैकडोल्ड लाला जी के मित्र थे। अतः जब वह फिर प्रधान-मन्त्री बने उन्होंने लाला जी को विश्वास दिलाया कि इंगलैंड में आकर स्वतन्त्रतापूर्वक रह सकते हैं। उन पर इंगलैण्ड में भारत के सम्बन्ध में कोई मुकद्दमा नहीं चलाया जायेगा। अतः लाला जी तब से लेकर सन् १६३८ तक इंगलैंड में रहे। इंगलैंड आकर उन्होंने कालिज में नाम लिखवाकर पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर ली। किन्तु भारत सरकार उनकी पूर्व की भांति विरोधी रही। उसने भारतीय व्यवस्थापिका सभा में सन् १६३७ में यह स्पष्ट कहा था 'लाला जी के भारत आने पर कोई पाबन्दी नहीं है" किन्तु उनके भारत आने पर मुकद्दमा चलाया जायेगा।

किन्तु १६३८ के अन्त में उनको किसी सरकार के विरुद्ध कार्य में सम्मिलित न होने का वचन लेकर भारत आने की अनुमति दे दी गई। लाला हरदयाल की योजनानुसार सन् १६१४ में अमेरिका चीन आदि अनेक देशों से प्रवासी भारतवासी भारत आये। पं० जगतराम, कर्त्तारसिंह, बाबा सोहनसिंह, निधानसिंह, बाबा रूढ़सिंह और केसरसिंह आदि अनेक व्यक्ति इस समय बाहर से भारत आये थे। भाई परमानन्द जी स्विट्जरलैंड में सरदार अजीतसिंह के दर्शन करके दिसम्बर १६१३ के अन्त तक बम्बई आ गए थे। उनके

पीछे २४ घण्टे छाया के समान खुफिया पुलिस लगी रहती थी। लाला जी की योजनानुसार सहस्रों भारतीय जहाजों पर सवार होकर चल दिए। मार्ग में हांगकांग, सिंगापुर और रंगून आदि जहां कहीं जहाज ठहरते थे वे जहाज से उतर कर सेनाओं में जाकर सैनिकों को सरकार के विरुद्ध भड़काते थे। जिसके कारण सिंगापुर में भी विप्लव हुआ। इधर गदर नाम का पत्र पंजाब सरकार भी मंगवाती थी। इससे उसको प्रवासी भारतीयों की हलचलों और कार्यों का पता लगता रहता था। सरकार के गुप्तचर भी समाचार भेजते रहते थे। अतः सरकार ने निश्चय किया जो भी अमरीका आदि देशों से आवे उसे पकड़ कर नजरबन्द कर दिया जावे। अतः बाहर से आने वालों की बड़ी भारी संख्या जेल में डाल दी गई। कितने ही लोग बहाना करके कलकत्ते से बचकर निकल गए। कुछ लंका आदि की ओर से बे रोक-टोक आ गए। अनेक व्यक्ति नाम और वेष बदलकर गिरफ्तारी से बच गए वा गिरफ्तार होकर भी छूट गए। इन्होंने पंजाब में घूमकर प्रचार करना तथा उपद्रव करने भी आरम्भ कर दिए। कुछ पकड़े जाने पर सरकारी गवाह बन गए। इनमें से सबसे पहला वादामाफ गवाह नवाब नामक मुसलमान था। अमेरीका से इनके साथ केवल यह एक ही आया था उसका सारा व्यय भी अन्य यात्रियों ने अपनी जेब से दिया था।

भाई परमानन्द ने इसके विषय में लिखा है कि यह अमेरीका में मुखबिरी का कार्य कर चुका था। इसने मार्ग की सब बातें विस्तृत रूप से सरकार को बता दीं। यह नीच मुसलमान होने से क्रान्तिकारियों में एक लीडर के समान रहता था। उधर सरकार से मिला रहता था। इन लोगों ने पंजाब में आकर डाँके आदि डाले तथा अन्य जो कार्य किए वे कर्त्तारसिंह आदि के कार्यों के साथ लिखे गये हैं। २९ अक्तूबर को तोसामार जहाज कलकत्तेमें १७३ भारतीय यात्रियों को लाया। इसमें प्रायः सभी सिख थे। इनमें से १०० व्यक्ति जेलों में नजरबन्द कर दिए गए। जो नजरबन्द नहीं किये जा सके थे उनमें से छः को लाहौर षड्यन्त्र में फांसी दे दी गई। छः को अन्य षड्यन्त्रों में दण्ड दे दिया गया। छः को नजरबन्द कर दिया गया। कुछ वादामाफ गवाह बन गए। इस जहाज के यात्रियों को सरकार सबसे भयंकर समझती थी। किन्तु ये सब नजरबन्द होने से कुछ भी न कर सके।

२१ फरवरी सन् १९१४ की अखिल भारतीय योजना के विफल होने से ला० हरदयाल की गदरपार्टी का एक विशाल षड्यंत्र और सारा पुरुषार्थ व्यर्थ चला गया। जो अन्यत्र पाठकों को पढ़ने को मिलेगा। रास बिहारी बोस शचीन्द्रनाथ सान्याल और कर्त्तारसिंह ने मिलकर इन आने वाले प्रवासी सिख भाइयों को व्यवस्था में रखकर अथक परिश्रम इस गदर योजना को सफल बनाने के लिए किया। किन्तु अनेक कारण ऐसे उपस्थित हुए जिससे सारी योजना मिट्टी में मिल गई। और सैकड़ों नवयुवक फांसी के तख्ते पर झूल गये। सहस्रों को जेल में सड़ना पड़ा।

यह देश का दुर्भाग्य था कि १८५७ के पीछे यह ही देश को स्वतन्त्र करने की बहुत बड़ी योजना थी वह भी विफल हो गई। इसके विफल होने का मुख्य कारण तो प्रवासी सिखों को गुप्त षड्यंत्र किस प्रकार किया जाता है इसका अनुभव न होना था। इसे ही बड़ी भारी भूल कहा जाता है।

प्रवासी सिक्खों की भूलें

इस समय अमरीका कैनेडा आदि देशों से जो भी यात्री भारत में विद्रोह करने के लिए आ रहे थे, उनमें प्रायः सिक्ख थे। ये सब यह नहीं जानते थे कि गुप्त षड्यन्त्र किस प्रकार किये जाते हैं। जहाज पर ये लोग खूब स्पष्ट खुलकर अपनी योजना के विषय में बातें करते रहते थे। गुप्त रूप से विचार करना और योजना बनाना उन्हें आता ही न था। खुल्लमखुल्ला मार्ग में उतरकर सेनादि में विप्लव का प्रचार करना, अपनी वीरता की बिना कुछ किये परस्पर डींगें मारना आदि इनकी योजना को विफल करने के लिए पर्याप्त कारण थे। इन्हीं में ये छुपे हुए गुप्तचर थे, कुछ विश्वासघाती भी निकल आये। इनके खुल्लखुल्ला प्रचार के कारण योजना गुप्त न रह सकी। इनके भारत में आने से पूर्व ही सरकार के पास सब सूचनायें पहुंच चुकी थीं। तथा सरकार चौकन्नी हो गई थी। उस समय भिन्न-भिन्न दलों में लगभग छः हजार सिक्ख देश में लौट कर आये। उनमें से उपर्युक्त कारणों से अधिकतर नजरबन्दी कानूनानुसार जेलों में ठोक दिए गए। जो शेष बचकर रह गये उनके विचार बदल गये, आधे से अधिक अपने घर-गृहस्थ के कार्यों में फँस गए। शेष लोग विप्लव में लग गये; जिनके विषय में पृथक् पृथक् लिखा गया है।



वीर प्रवर श्री भगतसिंह अग्नि परीक्षा करते हुए

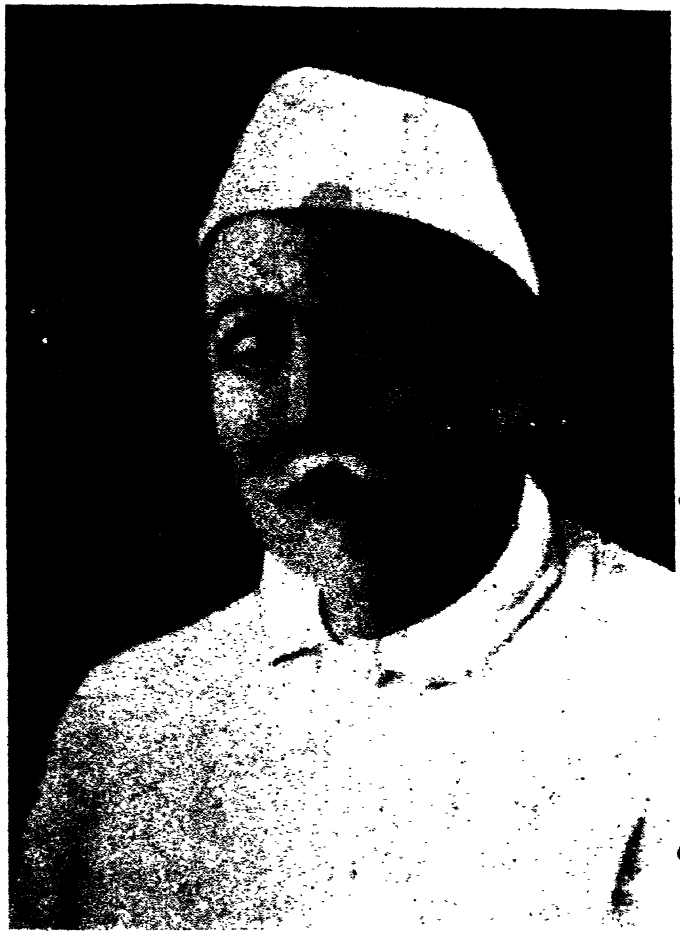


देवता स्वरूप भाई परमानन्द



देवता स्वरूप भाई परमानन्द
बन्दी के रूप में

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय—



लाहोर में लाठियों द्वारा बलिदान।

वीर शिरोमणि सरदार भगतसिंह—



अपने साण्डर्स को मारकर लाला जी की मृत्यु का बदला लिया।

पञ्जाब केसरी लाला लाजपतराय

(ले० आचार्य भगवान्‌देव)

लाला लाजपतराय के पिता का नाम राधाकृष्ण था। वे फिरोजपुर जिले के ढोडी ग्राम के निवासी थे। वहीं पर २८ जनवरी १८६५ ई० को लाला लाजपतराय का जन्म हुआ। इनके पिताजी भी पञ्जाब के एक छोटी सी तहसील के स्कूल में अध्यापक थे। छः वर्ष ग्राम के स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर लाजपतराय जी ने लुधियाना के मिशन स्कूल में शिक्षा प्राप्त की। फिर अपने पिता जी के साथ अम्बाला पहुंच गये। यहां पर सन् १८८० में आपने पञ्जाब विश्वविद्यालय से मैट्रिक परीक्षा अच्छे अङ्कों से उत्तीर्ण की जिस से आपको छात्रवृत्ति मिलने लगी। इससे आप के पिताजी को भी उत्साह मिला और उन्होंने आप को लाहौर गवर्नमेंट कालिज में पढ़ने के लिए भेज दिया। यहां से एफ० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर मुख्त्यारी की परीक्षा भी आपने पास कर ली। उन दिनों महर्षि दयानन्द के पवित्र क्रान्तिकारी सुधारक विचारों से सारा देश विशेषतया पञ्जाब प्रभावित हो रहा था। लाहौर में १८७७ में आर्य समाज की स्थापना हो चुकी थी। लोक सेवा अथवा देश-सेवा के पथिक के लिए आर्य समाज का क्षेत्र ही सबसे श्रेष्ठ था। अतः पञ्जाब के सब विचारक और होनहार युवक, लेखराम, महात्मा मुन्शीराम, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी लाला लाजपतराय आदि आर्य समाज के प्रमुख व्यक्ति माने जाते हैं। ये सब स्वामी दयानन्द के सन्देश को पञ्जाब के युवकों तक बड़ी उत्सुकता से पहुंचाने में संलग्न थे। आपने आर्य समाज के सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते हुए वकालत भी पास करली और हिंसार में आर्य समाज की स्थापनार्थ अपनी आय की सारी बचत १५००) दान में दे दी, उस समय तो यह बहुत बड़ा दान था। हिंसार में आपने एक संस्कृत विद्यालय की भी स्थापना की। आप हिंसार के म्युनिसिपल बोर्ड के अवैतनिक मन्त्री रह कर तीन वर्ष तक सेवा करते रहे। आपने लाहौर के मित्रों के आग्रह के कारण और पञ्जाब की सभी प्रगतियों का केन्द्र स्थान लाहौर को समझकर हिसार को छोड़ वहीं अपना डेरा जमाया। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, लाला हंसराज को श्री दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज की स्थापना में पूर्ण सहयोग दिया। उस समय यह कालिज स्वामी दयानन्द के आदर्शों को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से स्वामी जी के स्मारक रूप में बनाया गया था। किन्तु पीछे आकर यह केवल अंग्रेजी शिक्षा का केन्द्र ही रह गया, जिससे प० गुरुदत्त विद्यार्थी तो निराश होकर इसे छोड़ गये। पं० गुरुदत्त जी लाला हंसराज, तथा लाला लाजपतराय ने इसके लिए घोर परिश्रम किया और सरकार की बिना किसी आर्थिक सहायता के इसे चलाया था। लाला जी इस कालिज की कमेटी के छः वर्ष तक मन्त्री रहे। आप कालिज की सेवा का कार्य अवैतनिक रूप से करते रहे। पं० गुरुदत्त जी ने २५ वर्ष की अल्पायु में ही संसार यात्रापूर्ण कर दी। रतपश्चात् लाला जी पर कार्य भार और बढ़ गया। आप आर्य-समाज की राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना में तन मन और धन से सहयोग देते थे। आप जालन्धर के ऐंग्लो संस्कृत कालिज के भी मन्त्री रहे। इन सेवाओं के कारण आपकी गणना भारत के शिक्षा विशेषज्ञों में होने लगी। इसी कारण जब लार्ड कर्जन ने १६०२ में शिक्षा सम्बन्धी जाँच कमेटी का निर्माण किया तो आप को भी कमेटी के सन्मुख साक्षी देने का सन्मान पूर्ण निमन्त्रण दिया गया। आपकी रुचि शिक्षा प्रचार में पराकाष्ठा को लांघ गई थी। आप स्वयं सदा

तपस्या का जीवन व्यतीत करते थे और अपनी आय से संचित धन को दान में देते थे। यही आप का स्वभाव बन गया था। आपअपने लिए बचाकर रखना पाप समझते थे, इसी कारण त्यागमय जीवन से प्रभावित हो जनता आपकी आज्ञा पर सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहती थी। जनता आपके पीछे पागल थी। आपने अपनी खून-पसीने की कमाई में से ५० सहस्र रुपये शिक्षण संस्थाओं को अर्पण किये। उनकी बलिदान की भावना और सिंह गर्जना के कारण पञ्जाब की जनता ने आपको पञ्जाब केसरी के पद से सुशोभित किया। रोगी शरीर होते हुए तथा डाक्टरों के बार-बार विश्राम करने का परामर्श देने पर भी आपने जीवन के अन्तिम क्षण तक कभी विश्राम नहीं किया। रोग शय्या पर भी कार्य करते रहते थे।

समाज सेवा

शिक्षा क्षेत्र के अतिरिक्त लालाजी ने समाज-सेवा तथा देश-सेवा के कार्य में भी बढ़चढ़ कर भाग लिया। आप का हृदय तो जनता के प्रत्येक कष्ट से दुखी होता ही था। देश की पराधीनता आप को कांटे के समान खटकती थी। इसलिए आप ऐसी अवस्था में विश्रामपूर्ण जीवन कैसे व्यतीत कर सकते थे। देश का दुख इनके लिये अपना निज का दुख था।। सन् १८९६ में उत्तर भारत में भयंकर अकाल पड़ा और वह दुष्काल कुछ समय के लिए बढ़ता ही चला गया। १८९९ में यह बंगाल, मध्यभारत, और राजपूतानों में भी फैल गया, खेतियां सूख गई तालाबों में भी पीने को पानी नहीं रहा। हजारों नर-नारी भूख के मारे तड़प-तड़प कर प्राण देने लगे, ग्राम के ग्राम खाली हो गये। हजारों अनाथ बालक नगरों की गलियों में भटकने लगे। अंग्रेजी सरकार ने आँसू पोंछने के लिए नाम मात्र की सहायता की। इन विदेशी शासकों के मनमें दया के स्थान पर निष्ठुरता कूट-कूट कर भरी हुई थी। इन्होंने एक धूर्तता और की जो ईसाई पादरी अकाल ग्रस्त माता पिताओं के अनाथ बच्चों को अपनी शरण में ले रहे थे उन पादरियों की इस कार्य में अंग्रेज सरकार ने सहायता की, इस प्रकार सहस्रों हिन्दू निःसहाय अनाथ बालक ईसाई पादरियों के हाथ में आगये। अकेले राजपूताने में ही इसी प्रकार से ७० हजार हिन्दू अनाथ बालक ईसाई पादरियों के चंगुल में जा चुके थे। लाला लाजपतराय ने इस दुख से दुःखी होकर झोली बान्धी श्री मानों के द्वार-द्वार पर घूम-घूम कर अन्न धन इकट्ठा करने लगे और दुर्भिक्ष पीड़ितों को अन्न और वस्त्र से सहायता देनी प्रारम्भ की। अनाथ हिन्दू बालकों की रक्षार्थ आर्य समाज की सहायता से कई नगरों में अनाथालय खोले। इन अनाथालयों में सहस्रों बालकों को रक्षा का स्थाई-आश्रय मिल गया। फिरोजपुर में सबसे बड़ा अनाथालय खोला गया। लालाजी ने इस के संचालन का भार अपने ऊपर लिया। लालाजी का यह उपकार कार्य हिन्दू जाति के इतिहास में चिर स्मरणीय रहेगा। लाला जी ने १९०१ में सरकार द्वारा नियुक्त दुर्भिक्ष कमीशन के सामने साक्षी देते हुए आग्रह किया कि हिन्दू अनाथ बालकों को ईसाई पादरियों को न दिया जाये किन्तु उनके सह धर्मियों को वा हिन्दू संस्थाओं को सौंपा जाये। इस प्रकार हिन्दू जाति की रक्षार्थ वे सदैव तत्पर रहते थे। दुष्काल के पश्चात् पञ्जाब (काङ्गड़ा) में भूकम्प से जन धन की बहुत बड़ी हानि हुई। वहां भी आपने घटना स्थल पर पहुंच कर खूब सेवा की। इसी प्रकार उड़ीसा और मध्यभारत में १९०७, १९०८ में दुष्काल के समय आपने खूब सेवा की।

अछूतोद्धार

सन् १९१२ में एक अच्छूतोद्धार सम्मेलन गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर आप के सभापतित्व में हुआ। उस समय तक महात्मा गांधी को हरिजनों के उद्धार का विचार भी नहीं आया था उन दिनों

आर्य समाज हिन्दूसमाज के उपेक्षित वर्ग दलित भाइयों के उद्धारार्थ ठोस क्रियात्मक सेवा-कार्य कर रहा था। आप आर्यसमाज के सेवक थे ही अतः अछूत भाइयों की सेवा का कार्य आपने खूब बढ़चढ़ कर किया दलित वर्ग की शिक्षा के लिए लाला जी ने विशेष उद्योग किया। इस कार्य के लिए आपने चालीस हजार रुपये की रकम अपने पास से दान किये। इस रुपये से अछूतों के लिये अनेक शिक्षण संस्थायें खोलीं। आप अछूतों के घरों में जाकर उनके हाथ से भोजन करते थे और आपने सैकड़ों वर्ष की इस पुरानी रीति को इस प्रकार साहस से भंग किया। लाला लाजपतराय अथवा आर्यसमाज द्वारा अछूतोद्धार का कार्य महात्मागांधी के कार्य-क्षेत्र में उतरने से पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था। यह सब सेवा कार्य अपने पूज्य गुरु महर्षि दयानन्द की कृपा से ही लाला लाजपतराय ने सीखा था।

कांग्रेस में प्रवेश

सन् १८८५ ई० में लार्ड डफरिन की सम्मति से जो उस समय वायसराय थे, मि० ह्यूम ने इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना की थी। इसका पहला अधिवेशन बम्बई में दूसरा अधिवेशन १८८६ में कलकत्ता में दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में हुआ। इन में ला० लाजपतराय सम्मलित नहीं हुये। चौथा अधिवेशन १८८८ में प्रयाग में हुआ, इस में सर्वप्रथम लालाजी काँग्रेस में सम्मलित हुए थे। उस समय आप की २३ वर्ष की आयु थी। आपने इस अल्पायु में कौंसिल सुधार का बिल उपस्थित किया और आप बोले भी। १८९२ में फिर प्रयाग में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इन दिनों सरसैय्यद अहमद सरकार से मिलकर कांग्रेस का विरोध कर रहे थे। लाला जी ने इस अधिवेशन में एक पत्रिका प्रकाशित करके बंटवाई जिसमें सर सैय्यद अहमद के कांग्रेस विरोधी विचारों का मुंह तोड़ उत्तर दिया था।

कांग्रेस का अगला अधिवेशन लाहौर में हुआ। पञ्जाब के मुस्लिम वर्ग ने सहयोग देना तो दूर रहा, डट कर विरोध किया। कांग्रेस के नेता घबराये हुए थे, क्योंकि कांग्रेस का प्रचार पञ्जाब में सर्वथा नहीं हुआ था। पञ्जाब में आर्यसमाज एक शक्तिशाली देश-भक्त संस्था थी। यदि उस समय आर्यसमाज के नेता सहयोग न देते तो काँग्रेस का अधिवेशन लाहौर में नहीं हो सकता था। किन्तु आर्यसमाजियों ने कांग्रेस अधिवेशन का सब कार्यभार अपने ऊपर लिया। लालाजी ने रातदिन एक कर दिया। सभी आर्यसमाजी तन मन और धन से जुट गये। लाला जी ने पंजाब के सभी नगरों से धन इकट्ठा किया और लाहौर के अधिवेशन को पूर्णतया सफल बनाया। आज के कांग्रेसी उस पुराने इतिहास को भूल गये कि आर्यसमाज ने उस समय काँग्रेस को सहयोग दिया था जब कांग्रेस का नाम-लेवा और पानी-देवा कोई भी नहीं था। इस काँग्रेस अधिवेशन के पश्चात् पंजाब सरकार की दृष्टि लाला लाजपतराय के प्रति क्रूर हो गई और लाला जी सरकार विरोधी पक्ष के नेता बन गये। लाला लाजपतराय ने १८९७ में विक्टोरिया महारानी के राज्य की हीरक जयन्ती मनाने तथा रानी की मूर्ति स्थापित करने का डट कर विरोध किया। इस समय महाराष्ट्र में महात्मा तिलक को रानी विक्टोरिया के हीरक जयन्ती का विरोध करने के कारण सरकार ने डेढ़ वर्ष कड़ी कैद का दण्ड दिया। कैद से छूटने के पश्चात् महात्मा तिलक की विचारधारा और भी उग्र हो गई। ला० लाजपतराय भी उग्र विचारों के समर्थक थे। समान स्वभाव होने से दोनों ने मिलकर कांग्रेस की नीति को उग्र बनाने का निश्चय कर लिया। उन दिनों काँग्रेस नरम दल के नेता गोखले वा दादा भाई थे। कई वर्ष दोनों दलों में खूब संघर्ष चला। लालाजी स्वभाव से गर्मदली थे। वे विदेशी सरकार से लड़कर अपना अधिकार प्राप्त करने की नीति के पक्ष में थे। स्वराज्य की भिक्षा मांगने के सर्वथा विरोधी थे। लाला जी सरकार की नीति का विरोध करते रहते थे।

गिरफ्तारी

सरकार लाला जी को गिरफ्तार करने का बहाना ढूँढ़ रही थी। १९०५ में बंग भंग से सारे भारतवर्ष में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन हो रहा था। सरकार की दमन की चक्की भी चल रही थी। हजारों देशवासी जेल में बन्द कर दिये गए थे। पंजाब की सरकार भी कब पीछे रहने वाली थी। अतः १८१८ के बंगाल रेग्युलेशन का सहारा लेकर लाला लाजपतराय को पकड़ कर देश निर्वासन का दण्ड दे माण्डले की जेल में बन्द कर दिया। आपको जेल में भी अनेक कष्ट दिए गए। यहां तक कि आपके छोटे भाई ला० धनपतराय को जो आप से मिलने मांडले पहुंचे थे मिलने नहीं दिया। १६ मई १९०७ को आपको मांडले में बन्दी किया था। उन दिनों अंग्रेजी सरकार के गुप्तचरों ने इस प्रकार की रिपोर्ट दी थी "कि पंजाब में आर्यसमाजियों की एक लाख सेना लाला लाजपतराय की सहायता से विद्रोह करने के लिए तैयार है और आर्यसमाज विद्रोह का केन्द्र है।" इन सबके परिणाम स्वरूप ही लाला जी और श्री अजितसिंह को गिरफ्तार करके देश निर्वासन का दंड मिला था। लाला जी के निर्वासन से देश में असंतोष की आँधी चल पड़ी। वायसराय की कमेटी में गोखले ने भी इस पर दुःख प्रकट किया। इसका प्रभाव लंदन में भी बहुत अधिक पड़ा। वहां एक बड़ी सार्वजनिक सभा की गई जिसमें श्री हाइंडमैन ने तो एक लम्बी चौड़ी वक्तृता दी। इस सभा में उपस्थिति इतनी अधिक हुई कि सभा-भवन में स्थान न मिलने के कारण एक मंडप में सभा की गई जिसमें लाला जी का जीवनचरित्र सुनाया गया। ब्रिटिश पार्लियामेंट में भी प्रश्न हुए। स्वयं लाला जी ने भारतमंत्री को निर्वासन-आज्ञा के विरुद्ध पत्र लिखा। संसार के सामने कली खुल गई कि लाला जी को देश निर्वासन का दंड देना भारत सरकार की धींगामस्ती थी। ब्रिटिश सरकार के मंत्री ने भारत सरकार से इस निर्वासन का कारण पूछा। भारत सरकार कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सकी। तब प्रधानमंत्री ने लाला जी की मुक्ति का आज्ञापत्र निकाल दिया। लाला जी और श्री अजितसिंह को मांडले की जेल में ही रखा गया था। किन्तु आपस में मिलने की आज्ञा नहीं थी। अन्त में ११ नवम्बर १९०७ के दिन दोनों को छोड़ देने की आज्ञा हुई। किन्तु इनके छोड़ने की सूचना किसी को नहीं दी गई। अकस्मात् लाहौर में आपको अपने बीच पाकर जनता के हर्ष का ठिकाना न रहा। इस छः मास के निर्वासन से लाला जी सारे भारतवर्ष के नेता बन गए, यह कार्य अंग्रेजी सरकार ने कर दिया कि लाला जी पंजाब के ही नहीं सारे भारतवर्ष के लोकप्रिय नेता बन गये। और पंजाब के शिरोमणि नेता हो गए।

लाला जी ने माण्डले से लौटकर सारे उत्तर भारत के नगरों का दौरा किया। वकालत के पेशे को लात मारकर अपना सारा शेष जीवन देशसेवा में समर्पित कर दिया। वकालत का व्यवसाय छोड़ देश सेवा को ही जीवन का व्यवसाय बना लिया। साथ-साथ आप आर्यसमाज का भी कार्य करते रहे। लाहौर के अनारकली बाजार से वेश्याओं को निकालने के आन्दोलन में आपने पूर्ण शक्ति लगाई।

विदेश यात्रा

श्री गोखले, महात्मा तिलक तथा ब्रिटेन मजदूर नेता रेम्जे मेकडानल्ड आदि का यह विचार था कि यदि भारत के कुछ उत्तरदायी नेता ब्रिटेन में आकर पार्लियामेंट के सदस्यों को अपने अनुकूल बना सके तो भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य मिल सकता है। इन सबकी सम्मति से लाला लाजपतराय जी इंगलेंड गए थे। वहां पहुंचकर लाला जी ने वहां के प्रमुख राजनीतिज्ञों से भेंट की तथा वहां पर भारतीय

भावनाओं को स्पष्ट करने के लिए वहाँ की जनता के सम्मुख अनेक भाषण दिये। तथा इसी विषय का साहित्य तैयार किया। इन दोनों का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। परिणाम स्वरूप ब्रिटिश जनता का बहुत बड़ा भाग भारत को स्व निर्णय का अधिकार देने को तैयार हो गया था। इसी कार्य के लिए लाला जी को कई बार इंगलैंड जाना पड़ा। इंगलैण्ड में आपका सम्बन्ध श्याम जी कृष्णवर्मा के साथ हो गया था। सन् १९१४ ई० में प्रवासी भारतीयों के प्रति विदेशों में जो दुर्व्यवहार हो रहा था उस के निराकरणार्थ आप कांग्रेस की ओर से एक शिष्टमण्डल लेकर इंगलैंड पहुँचे। शिष्टमंडल का कार्य पूर्ण होने पर अन्य सदस्य तो भारत लौट आये किन्तु लाला जी वहीं रह गए। आपकी इच्छा जापान होकर लौटने की थी। जापान की यात्रा पूर्ण करके जब आप भारत लौटने लगे तभी भारत का महायुद्ध छिड़ गया।

पुनः देश निर्वासन

भारत सरकार ने ब्रिटेन स्थित भारतमन्त्री को लिखा कि युद्धकाल में लाला लाजपतराय को भारत जाने की आज्ञा न दी जाये। भारत सरकार को भय था कि लाला लाजपतराय की उपस्थिति से भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध जो भावना भड़क रही थी वह प्रबल हो जायेगी। लाला जी युद्ध की समाप्ति तक भारत से निर्वासित कर दिये गये। जापान से इंगलैंड और फिर वहाँ से नवम्बर सन् १९१४ को अमरीका चले गये। वहां रहकर आपने अमेरीका के जनमत को भारत के अनुकूल बनाने का अथक परिश्रम किया ब्रिटिश पत्र अमेरिका में भारत के विषय में जो भ्रम फैलाते थे उन सब का निराकरण लाला जी ने अपने भाषणों तथा लेखों द्वारा किया। "तरुण भारत" नाम की एक पुस्तक लिखकर भारत की राष्ट्रीय भावनाओं का सुन्दर चित्र खींचकर यह प्रचार किया कि भारतीय नवयुवक ब्रिटिश शासन को नहीं चाहते और भारत को स्वतन्त्र राष्ट्र बनाने के लिए बड़े से बड़ा बलिदान करने को तैयार है। अमेरिका में इस पुस्तक की सहस्रों प्रतियां हाथों हाथ बिक गईं। इस पुस्तक की एक-एक प्रति ब्रिटिश पार्लियामैन्ट के सदस्यों को भी भेंट की थी। उसी समय भारत सरकार ने इस पुस्तक की सब प्रतियां जब्त कर लीं। इस पुस्तक के प्रकाशन से ला० लाजपतराय का सन्मान अमेरिकों की दृष्टि में बहुत बढ़ गया। फिर क्या था चारों ओर से भाषण और लेख लिखने के निमन्त्रण मिलने लगे। लाला जी ने भी अनेक संस्थाओं और विश्व विद्यालयों में खूब दिल खोलकर अपने देश की कथा सुनाई। भारत के विषय में अमेरिकन लोकमत को लेखों और भाषणों से बदल डाला। इससे पूर्व अमेरिकन भारतीयों को असभ्य एवं जंगली मानते थे। उनका विश्वास था कि अंग्रेजों ने भारत को अपने शासन में लेकर भारत पर महान् उपकार किया हुआ है। लाला जी के भाषणों तथा लोह लेखनी ने इस मिथ्या विश्वास को जड़ से हिला दिया। आपने वहां पर पुरुषार्थ के बल पर क्रियात्मक कार्य भी किया। अमेरिकन लोग पंडित जी को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे।

इण्डियन होमरूल लीग की स्थापना

अमेरिका में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए आपने इण्डियन होमरूल लीग की स्थापना की थी इस कार्य में आर्यसमाज के प्रसिद्ध उपदेशक डा० केशबदेव शास्त्री और डा० हार्डिकर ने भी सहायता की।

डाक्टर हार्डिकर लीग के मन्त्री और लाला जी सभापति बने। यह प्रचार का कार्य पहले तो स्वयं ही कर रहे थे फिर महात्मा तिलक ने आप की सहायता की। महात्मा तिलक ने १७ हजार रुपये

ला० लाजपतराय को भेजे थे। यह सहायता पाकर लाला जी ने अपना कार्य दुगुने उत्साह से प्रारम्भ कर दिया। आपने "यंग इण्डिया" नामक एक मासिक पत्र प्रकाशित किया और 'तरुण भारत' 'भारत का इंगलैण्ड पर ऋण' 'भारत के लिये आत्मनिर्णय' आदि अनेक पुस्तकों का फ्रांस, इटली, स्पेन, जर्मनी, रूस आदि में भी प्रचार किया गया। योरुप की सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। यह सब प्रकार का कार्य लाला जी ने अपने निर्वासिन काल में किया। सरकार उनके दोनों निर्वासिनों का कारण नहीं बता सकी; भारत की धारा सभा में जब यह प्रश्न पूछा गया "लाला लाजपतराय को भारत आने की आज्ञा क्यों नहीं दी जाती? तो "इस प्रश्न का उत्तर देना सार्वजनिक हित के अनुकूल नहीं है" यह कहकर टाल दिया गया।

नेताओं ने ब्रिटिश सेना की सहायतार्थ भारतीयों की भरती को प्रोत्साहित किया था। यह सब किन्हीं आशाओं के आधार पर किया गया था। किन्तु भारतीयों को नाममात्र के अधिकार दिये गये। महात्मा गांधी ने इन सुधारों को स्वीकार करने से निषेध कर दिया। सरकार ने "रोलट एक्ट" कौंसिल में पास करने का निश्चय किया। किन्तु सारे भारतवर्ष में इसके विरोध में सभायें हुईं। अमृतसर के जलियान वाले बाग में इसका विरोध करने के लिए सभा हुई। वहाँ अंग्रेज सरकार के अत्याचारी गोरे सिपाहियों ने निहत्थे भारतीयों पर जिस निर्दयता से गोलियों की वर्षा की थी वह अंग्रेजी शासन के इतिहास का सबसे अधिक काला पृष्ठ है।

इस अत्याचार से भारतीय जनता भड़क उठी, किन्तु सरकार ने अपने अत्याचारी अधिकारियों को दंड देने के स्थान पर उनका पक्ष लिया। लाला लाजपतराय इन दिनों अमेरिका में ही थे। पंजाब में हुए इस भीषण अत्याचार के समाचार से व्याकुल हो उठे। अब भी भारत में आने की आपको आज्ञा नहीं थी। आपने फिर ब्रिटिश के राजनीतिज्ञों को बहुत कुछ लिखा पढ़ा। तब कहीं आपको अपने देश में आने की आज्ञा मिली। जिस समय आप भारत आये तो ब्रिटिश शासन की क्रूरता को देखकर उनका विश्वास इन शासन सुधारकों से हट गया और यही निश्चय हो गया कि प्रस्तावित शासन सुधारों का बहिष्कार करना ही उचित है। देश ने आपके लौटने पर आपको राष्ट्र के सबसे ऊँचे आसन पर बिठाया। सन् १९२० में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन कलकत्ते में बुलाया गया। वहाँ महात्मा गांधी के प्रभाव से सहयोग का कार्य-क्रम पास हो गया। लाला जी असहयोग के युद्ध में उतर आये। लाला जी ने पंजाब के नगरों में घूम-घूम कर असहयोग का सन्देश जनता के कानों तक पहुँचाया।

गिरफ्तारी

३ सितम्बर सन् १९२१ के दिन राजद्रोही भाषण देने का अभियोग लगाकर सरकार ने डेढ़ वर्ष का दंड देकर जेल में डाल दिया। जेल की रूखी सूखी रोटी और चनों के कारण लाला जी का दुर्बल शरीर रोगग्रस्त हो गया। क्षयरोग ने आपको घेर लिया। अधिकारियों को बड़ी चिन्ता हुई, कभी लाला जी की मृत्यु जेल में न हो जाये। अतः आपको १६ अगस्त को बिना किसी शर्त के छोड़ दिया। आप सोलन पहाड़ पर गये। वहाँ के अच्छे जलवायु के कारण आप स्वस्थ हो फिर कार्यक्षेत्र में आ गये।

तिलक राजनीति विद्यालय

सभी प्रान्तों में राष्ट्रिय शिक्षा के लिए राष्ट्रिय नेताओं ने राष्ट्रिय विद्यालय खोल दिये थे। पंजाब म इसका अभाव था। इस विद्यालय के लिए आप ने स्वयं ४० हजार रुपये देकर और अपने रहने का

मकान भी जिसका नाम "लाजपतराय भवन" था दान में देकर 'तिलक राजनीति विद्यालय' की स्थापना की। अपना सुन्दर भवन देकर आप स्वयं पुराने मकान में रहने लगे। विद्यालय का संचालन आप की देख रेख में ही होता था। महात्मा तिलक से आपका बड़ा प्रेम था तथा आपके मन में उनके प्रति बड़ा आदर था। अतः उन्हीं के नाम पर वह विद्यालय खोला गया। इस विद्यालय में देवतास्वरूप भाई परमानन्द तथा जयचन्द्र विद्यालङ्कार जैसे योग्य प्रोफेसर पढ़ाते थे। इसी में भगतसिंह, यशपाल, सुखदेव तथा भगवतीचरण आदि पढ़ते थे। इसी विद्यालय में देशभक्ति का पक्का रंग इन युवकों पर चढ़ा था। इस विद्यालय में हरयाने के भी बहुत छात्र पढ़ते थे। भाई जी उनसे बहुत प्रेम करते थे।

लोक सेवासंघ की स्थापना

लाला जी ने निर्वाहमात्र के लिये धन लेकर राष्ट्रिय सेवा में जीवन देने वाले राष्ट्रिय कार्यकर्ता तैयार करने के लिए "लोक सेवासंघ" "पीपल्स सोसाइटी" की स्थापना की। लोक-सेवा-संघ आज भी कार्य कर रहा है। पुरुषोत्तमदास टण्डन, अलगूराय शास्त्री आदि उसी के सदस्य हैं। इसी संस्था ने पंजाब में राष्ट्रिय भावनाओं का प्रचार किया। सत्याग्रह का युद्ध प्रारम्भ होते ही लोक-सेवा-संघ के सब कार्यकर्ता जेल में चले गये।

हिन्दू संगठन का कार्य

गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन में बलिदान करने वाले आर्यसमाजी विशेषतः सामान्य रूप से हिन्दू ही थे। मुसमान नेताओं में से एक दो छोड़कर सभी ने सत्याग्रह में भाग लेने से इंकार कर दिया। अतः अंग्रेज सरकार ने मुसलमानों को सब प्रकार से बढ़ावा दिया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं पर संकट के बादल छा गये। अंग्रेज सरकार ने मुसलमानों से मिल कर हिन्दुओं को कुचलना प्रारम्भ किया। "चौरी चौरी" के हत्याकाण्ड के पश्चात् महातमा गांधी जी ने नेताओं से बिना ही विचार किये सत्याग्रह युद्ध बन्द कर दिया। महात्मा गांधी को छः मास के लिए सरकार ने जेल में बन्द कर दिया। सर्वत्र निराशा छा गई। सरकार के संकेत पर मुसलमान, हिन्दू अधिकारों को पददलित करने लगे। हिन्दुओं को हजारों की संख्या में, मुसलमान बनाया जाने लगा। गाँव के गाँव मुसलमान होते देख ला० लाजपतराय, स्वा० श्रद्धानन्द तथा पं० मदनमोहन मालवीय ने कन्धे से कन्धा मिला कर हिन्दू-संगठन शुद्धि और अछूतोद्धार में पूर्ण शक्ति लगा दी। हिन्दू-समाज को बलशाली बनाना भी राष्ट्रिय कार्य था। समाज-सुधार ही राष्ट्रिय सेवा है। इस महत्वपूर्ण बात को ये नेता भली भांति समझते थे। अतः शुद्धि और संगठन के कार्य में जुट गये, और अंग्रेज सरकार एवं मुस्लिम नेताओं की धूर्त्तता को नहीं चलने दिया। लाला जी पहले से ही आर्यसमाजी होने से झूठी आलोचनाओं की कब परवाह करने वाले थे। अतः वे अन्त तक हिन्दू संगठन और शुद्धि के कार्य में लगे रहे। इससे हिन्दूसमाज में जागृति और जीवन आ गया। इसके लिए हिन्दू जाति ला० लाजपतराय आदि नेताओं की सदैव ऋणी रहेगी।

स्वराज्य दल

महात्मा गांधी की सत्याग्रह को स्थगित करने की भूल के कारण चारों ओर अकर्मण्यता और निराशा छा गई। सारा भारत मृतप्राय दिखाई देने लगा। ऐसे समय पर पं० मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु, चित्तरंजनदास तथा ला० लाजपतराय ने स्वराज्य दल का आयोजन किया। वे सब असेम्बली में जनता के प्रतिनिधि बनकर गये और सरकार से लड़ाई लड़ते रहे। पं० मोतीलाल जी के साथ मतभेद रहने के

कारण स्वराज्य को कुछ समय के पश्चात् छोड़ पं० मदनमोहन मालवीय जी के साथ मिल कर स्वतन्त्र राज्य दल की स्थापना की, और इसकी ओर से चुनाव लड़ा। पं० मोतीलाल नेहरू ने आपके विरोध में कई उम्मेदवार खड़े किये थे। किन्तु लाला जी दो स्थानों से खड़े होकर दोनों स्थानों से जीतकर चुने गये। पं० मोतीलाल जी को नीचा देखना पड़ा। वैसे आप कांग्रेस के साथ मिल कर ही कार्य करते रहे।

साईमन कमीशन

भारत को अधिकार देने चाहिये वा नहीं, यह परीक्षा करने के लिये साईमन कमीशन भारत में भेजा गया। भारत के नेताओं ने यह मांग की थी कि इस कमीशन में भारत की जनता के कुछ प्रतिनिधि सम्मलित करने चाहिये। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस उचित बात को नहीं माना अतः देश के नेताओं ने कमीशन के बहिष्कार का निश्चय किया। कमीशन जहाँ भी जाता था उसका काले झण्डों से स्वागत किया जाता था। "साईमन कमीशन गो बैक" "साईमन कमीशन वापिस जाओ" का नारा जनता लगाती थी। लाहौर में यह कमीशन ३० अक्तूबर १६२७ को आ रहा था। लाहौर में भी जनता हजारों की संख्या में काले झण्डे लेकर स्टेशन पर पहुँच गई। जलूस का नेतृत्व पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी कर रहे थे। पुलिस के अधिकारी सुपरिन्टेण्डेण्ट मि० स्काट साहब ने जलूस को तितर-बितर करने के लिये जत्थे के लोगों पर लाठी चलाने की आज्ञा दी। फिर क्या था लाठियां बरसने लगीं। लोगों के सिर फट गये। सब लहूलुहान हो गये। शायद ही कोई पुलिस की लाठी की मार से बचा होगा। फिर लाला जी कैसे बच सकते थे, वे तो जलूस के आगे-आगे थे। उन पर भी अनेकों लाठियां पड़ीं। उनकी छाती पर घाव आये। छाती पर सूजन आ गई। ऊपर से चोट साधारण दिखाई देती थी किन्तु लाठी की चोटें शरीर में बहुत गहरी गईं थीं। लाला जी का वृद्ध और निर्बल शरीर इन चोटों को कैसे सहन कर सकता था। छाती की पीड़ा बढ़ती ही गई। १६ नवम्बर १६२८ के दिन उनके सारे शरीर में पीड़ा होने लगी। ज्वर भी बढ़ गया। रात बड़े कष्ट से कटी। १७ नवम्बर को प्रातः ६ और ७ बजे के मध्य में आपने प्राण त्याग दिये। चिकित्सकों का यह मत है कि शारीरिक घाव ही उनकी मृत्यु का कारण नहीं। किन्तु सरकार की क्रूर नीति का भी आपके हृदय पर भारी प्रभाव पड़ा था। उनका मानसिक कष्ट शारीरिक कष्ट से अधिक दुखदायी था। लाला जी जो अत्यन्त आत्म-सम्मानप्रिय व्यक्ति थे इस तिरस्कारपूर्ण व्यवहार को चुपचाप कैसे सहन कर सकते थे। इस मानसिक कष्ट ने ही उनके प्राण ले लिये। लाला जी की मृत्यु के समाचार से सारे भारतवर्ष में शोक की घटायें छा गईं। शवयात्रा के साथ लाखों व्यक्ति थे। रावी नदी के तट पर अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। पञ्जाब का सूर्य अस्त हो गया। आज भी लाला जी की याद देशवासियों के लिये दुःखप्रद है।

लाला लाजपतराय पर लाठीचार्ज तथा उनकी मृत्यु

उनकी मृत्यु के विषय में पं० जवाहरलाल जी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं। साईमन कमीशन भ्रमण कर रहा था और जहां जाता था उसका विरोध करने के लिये जनता काले झण्डे लिये "गो बैक" 'उल्टे जाओ' के नारे लगाती हुई उनका पीछा करती थी। लाहौर में बात बढ़ गई। सारा देश क्रोध से कांप उठा। वहां जो साईमन कमीशन के विरोधी थे उनका नेतृत्व जलूस के रूप में लाला लाजपतराय जी कर रहे थे। वह सड़क के किनारे हजारों प्रदर्शन करने वालों के आगे खड़े थे। पुलिस के नवयुवक एक

अंग्रेज अफसर ने झपट कर इनकी छाती पर लाठी मारनी आरम्भ कर दी। लाला जी की तो बात ही क्या है सारी भीड़ में किसी व्यक्ति ने भी किंचित् मात्र हिंसा का कार्य नहीं किया। किन्तु सब सर्वथा शान्त खड़े थे। इस पर भी पुलिस ने इनको और इनके साथियों को बुरी तरह से मारा। यह तो स्पष्ट है कि जो व्यक्ति सड़कों पर प्रदर्शन में सम्मिलित हों वह पुलिस से झगड़ा हो जाने पर सब आपत्तियों को सहन करता है।

लाला जी ने भी जानबूझ कर यह आपत्ति खरीदी थी किन्तु फिर भी जिस ढंग से उन पर लाठियों से आक्रमण किया गया और बिना कारण जिस निर्दयता से व्यवहार किया गया इससे असंख्य भारतीयों को कड़ी चोटें लगीं। इन दिनों हम पुलिस के लाठीचार्ज के अभ्यस्त नहीं थे अतः हमारी अनुभूति इस समय तक निरन्तर पाशविक अत्याचारों से कुण्ठित नहीं हुई थी।

हमारे इतने बड़े नेता और पञ्जाब के सब से उच्च पूजनीय और सर्वप्रिय पितर (बुजुर्ग) के साथ यह व्यवहार अत्यन्त लज्जास्पद प्रतीत हुआ। और दबे हुए क्रोध की एक लहर सारे भारतवर्ष में विशेषतया उत्तरभारत में फैल गई। हमारी विवशता और तिरस्कार का क्या ठौर ठिकाना था। हम अपने चुने हुए नेताओं के सम्मान की भी रक्षा नहीं कर सकते थे।

लाला जी के शरीर को जो हानि पहुंची थी वह कोई न्यून न थी। इस लिये कि इन्हें बहुत समय से हृदय रोग था। और चोटें भी वहीं इनकी छाती पर लगाई गई थीं। निश्चय रूप से तो यह नहीं कहा जा सकता कि इस मार का प्रभाव इनकी मृत्यु पर जो एक-दो सप्ताह के पश्चात् हुई किसी अवस्था तक अवश्य पड़ा। इनके चिकित्सकों की यह सम्मति थी कि इन चोटों के कारण वे इतने शीघ्र मृत्यु के मुख में चले गये। किन्तु मेरे विचार में भी निसन्देह कि शारीरिक चोट के साथ जो मानसिक कष्ट उन्हें हुआ इससे वे अत्यन्त प्रभावित हुए। इनका चित्त क्रोध और चिन्ता से व्याकुल था। अपने व्यक्तिगत अपमान से अधिक उन्हें सारे राष्ट्र के अपमान का दुःख था जो इस आक्रमण के कारण हुआ था।

इस राष्ट्रिय अपमान की दुःख सारे भारत के हृदय और मस्तिष्क को आच्छादित किए हुए था। थोड़े ही दिन पीछे लाला जी का देहान्त हो गया तो जनता ने इसका कारण लाठियों की चोटों का ठहराया। जनता का हृदय उत्तेजना से परिपूरित हो उठा और दुःख के स्थान पर प्रतिहिंसा की भावना भड़क उठी।" भगतसिंह सारे भारत का प्यारा और आंखों का तारा इसीलिये बन गया। क्योंकि उसने अत्याचारी सांडर्स को गोली का निशाना बनाकर ला० लाजपतराय जी और सारे भारत की लाज रख ली। इसीलिये कुछ ही मास में पंजाब का प्रत्येक नगर वा ग्राम यहां तक कि सारा उत्तर भारत ही भगत-के नाम से गूंज उठा। लाला लाजपतराय के खून का बदला लेने के कारण वीर भगतसिंह भी अमर हो गया।

साईमन कमीशन के बहिष्कार चोटें खाने के पश्चात् लाला लाजतराय अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के एक उत्सव पर सम्मलित होने के लिये देहली पधारे थे। उस समय भी उनके शरीर पर चोट के चिन्ह शेष थे। और उनका कष्ट वा पीड़ा अभी तक दूर नहीं हुई थी। लाला जी ने भी उस समय भाषण दिया था। लेखक (भगवानदेव) उस समय देहली के सेंट स्टीफन हाईस्कूल में दशम श्रेणी में पढ़ता था। उस संस्था के प्रिंसिपल स्काट साहब ने जो स्काट्लैण्ड का निवासी और देशभक्त था, सारे स्कूल के विद्यार्थियों को यह कह कर छुट्टी कर दी थी—

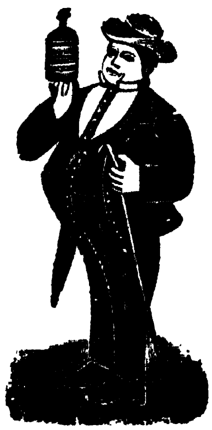
"कि तुम्हारे देश का बहुत बड़ा व्यक्ति लाला लाजपतराय आज देहली में आया है जाओ उसके दर्शन करो और व्याख्यान सुनो।"

लेखक का दुर्भाग्य था कि वह छुट्टी होने पर भी न जाने किस कारण से वहां न जा सका और पूजनीय लाला लाजपतराय जी के दर्शन और उपदेश श्रवण से वंचित रह गया।

लाहौर जाकर उन्होंने अपने साप्ताहिक समाचार पत्र 'पीपल' में लेख-माला लिखनी आरम्भ की थी अभी पहिला ही लेख निकला था। दूसरे लेख के छपने से पूर्व ही लाला लाजपतराय जी इस संसार से विदा हो गये और अपनी अमर कीर्ति देश में छोड़ गये।

जिस दिन लाला लाजपतराय जी की मृत्यु हुई उस दिन भी हमारे स्कूल के उसी प्रिंसिपल स्काट साहब ने फिर स्कूल के छात्रों को एकत्रित किया और सभा की। स्काट साहब ने लाला जी की मृत्यु पर शोक प्रस्ताव करते हुए उनकी आत्मा की सद्गति के लिये ईश प्रार्थना की और यह कह कर संस्था के सभी विद्यार्थियों और शिक्षकों की छुट्टी कर दी कि "मैं तो गिरजाघर में जाकर लाला जी की आत्मा की सद्गत्यर्थ ईश प्रार्थना करूंगा और साथ ही आप सब जो हिन्दू हैं वे मन्दिर में जाकर, जो मुसलमान हैं वे मस्जिद में, ईसाई गिरजा में जाकर उनकी आत्मा के लिये प्रार्थना करें।"

इसी देशभक्त पादरी स्काट साहब की कृपा से दशवीं श्रेणी में पढ़ते हुए ही मुझ पर देशभक्ति का रङ्ग चढ़ा और मैं कांग्रेस की ओर झुकता ही चला गया। वीर भगतसिंह को फांसी देने पर सन् १९३१ में कालेज छोड़कर कांग्रेस एवं देश सेवा के कार्य में जुट गया।



वीरप्रवर मदनलाल धींगड़ा का बलिदान

(आचार्य भगवान्देव)

मदनलाल धींगड़ा का जन्म अमृतसर जिले में एक धनी खत्री घराने में हुआ था। पञ्जाब विश्व विद्यालय से बी० ए० पास करके वह आगे पढ़ने के लिए इङ्गलैंड गया था। यह अच्छा छात्र था। यह विलायत जाते ही श्याम जी कृष्णवर्मा के भारतीय भवन में आने-जाने लगा और वहाँ का सदस्य भी बन गया। खुफिया पुलिस इसके पीछे लग गई। खुफिया पुलिस की रिपोर्ट थी कि मदनलाल घंटों अकेले बैठकर पुष्पों का निरीक्षण करता रहता है। इससे प्रतीत होता है कि वह कवि है वा क्रान्तिकारी है। मदनलाल इण्डिया हाउस में रहकर यथार्थ में क्रान्तिकारी बन गया। एक दिन इसने अपने हृदय की व्यथा वीर सावरकर को वहीं इण्डिया हाउस में कह सुनाई। धींगड़ा कुछ करने के लिए व्याकुल हो रहा था। वीर सावरकर ने ध्यान से इसकी ओर देखा और इसकी परीक्षा लेनी चाही। वीर धींगड़ा ने संकेत पाते ही हाथ भूमि पर रख दिया। सावरकर ने उसके हाथ पर ऊपर से सुवा मार दिया। सुवा हाथ के पार निकल गया। खून की धार बह निकली। गुरु और शिष्य दोनों की आँखों में प्रेम के आंसू थे। मदनलाल की आकृति पर प्रसन्नता और धैर्य था। सावरकर ने सुवा निकालकर फैंक दिया और मदनलाल को छाती से लगा लिया।

इसके पश्चात् मदनलाल को कार्य सौंप दिया गया। वह चला गया और उसने सावरकर जी से मिलना-जुलना कम कर दिया। इतना ही नहीं वे जाकर कर्जन की सभा में सम्मिलित हो गये और भारतीय भवन में आना-जाना एकदम छोड़ दिया। यह देखकर भारतीय भवन के नवयुवक विद्यार्थी अत्यन्त क्रोधित हुए और मदन को देशद्रोही कहने लगे। इस रहस्य को यह विद्यार्थी नहीं जानते थे। श्री वीर सावरकर ने उन्हें कुछ समझाकर शान्त करने का यत्न किया। मदनलाल अपनी अग्नि परीक्षा की तैयारी में लगे हुए थे। मदनलाल का स्वास्थ्य अच्छा था नवयुवक और धनी घर का था। भोगैश्वर्य का द्वार उसके लिए बन्द नहीं था। किन्तु उधर न जाकर उसने मरने का खेल खेलने की धारणा कर ली। १६०६ की बात है, पहली जुलाई का दिन था। इम्पीरियल इनस्टीट्यूट के जहांगीर हाल में एक सभा थी। सर कर्जन वापली भी वहां गये थे। वे दो व्यक्तियों के साथ बातें कर रहे थे कि मदनलाल धींगड़ा ने पिस्तौल निकाल कर उनके मुख की ओर तान दी। कर्जन साहब मारे डर के चीख उठे। किन्तु मदनलाल ने तुरन्त दो गोलियाँ उसकी छाती में दाग दीं जिनसे उसके प्राण पखेरू उड़ गये। थोड़ी देर के पीछे धींगड़ा जी पकड़े गये। यह कर्जन वापली इन दिनों भारत के मन्त्री का एडीकांग था। वह भारतीय विद्यार्थियों के पीछे खुफिया पुलिस लगाकर इस आन्दोलन को कुचलने का यत्न करता था; उसके आचरण की आलोचना अनेक बार इण्डिया हाउस में हो चुकी थी। इसी कारण मदनलाल को यह वीरता पूर्ण कार्य करना पड़ा।

सभा में हाहाकार मच गया। मदनलाल को पकड़कर जेल में बन्द कर दिया गया। मुकद्दमा चला, उस समय मदनलाल प्रसन्न और शान्त चित्त था। आनन्द से अदालतकी कार्यवाही देख रहा था। उसे उस

समय मृत्यु का तनिक भी भय नहीं था। उसने यह बयान दिया—"मैं मानता हूं कि मैंने उस दिन एक अंग्रेज का रक्त लेने की चेष्टा की यह उन निर्दयता भरी हत्याओं का एक अत्यन्त तुच्छ सा बदला है जो भारत में सैकड़ों देशभक्त नवयुवकों को अमानुषिक फाँसी तथा कालेपानी की सजायें दी जा रही हैं। अपनी आत्मा के अतिरिक्त इस कार्य में और किसी की सम्मति नहीं थी। अपने कर्त्तव्य बुद्धि के अतिरिक्त किसी के साथ षड्यन्त्र नहीं किया। एक जाति जिसको विदेशी संगीनों से दबाये रक्खा जा रहा है, समझ लेना चाहिए कि वह बराबर युद्ध ही कर रही है। एक निःशस्त्र जाति के लिये खुला युद्ध तो सम्भव है ही नहीं। मैं एक हिन्दू होने के कारण समझता हूं यदि हमारी मातृभूमि के विरुद्ध कोई अत्याचार करता है तो वह ईश्वर का अपमान करता है। हमारी मातृभूमि का जो हित है वही श्रीराम का हित है। उसकी सेवा श्रीकृष्ण की सेवा है। मेरी भान्ति एक हतभाग्य सन्तान के लिए जो वित्त तथा बुद्धि दोनों से हीन है, इसके अतिरिक्त और क्या है कि मैं अपनी माता की यज्ञवेदी पर अपना रक्त अर्पण करूँ। भारतवासी इस समय केवल इतना ही कर सकते हैं कि वे मरना सीखें। इसके सीखने का एक मात्र उपाय यह है कि वे स्वयं मरें। इसलिए मैं मरूँगा और मुझे इस बलिदान पर गर्व है। ईश्वर से केवल मेरी यही प्रार्थना है कि मैं फिर उसी माता के गर्भ में उत्पन्न होऊँ और फिर उसी पवित्र उद्देश्य के लिए अपने प्राणों को अर्पण कर सकूँ। यह तब तक के लिए चाहता हूं जब तक कि वह विजयी तथा स्वाधीन न हो जाये ताकि मानव जाति का कल्याण हो और ईश्वर की महिमा का विस्तार हो सके "बन्दे मातरम्।"

१६ अगस्त १६०६ को फाँसी के तख्ते पर हँसते-हँसते मदनलाल चढ़ा और अपना बलिदान देकर अमर हो गया। उसकी लाश को जेल के अन्दर ही दफना दिया। जिस दिन इसको फांसी दी गई, उस दिन इंगलेंड के विद्यार्थियों ने उपहास रखा। वे जेल के बाहर इकट्ठे हुए और उसका हिन्दू विधि से संस्कार करने की मांग की। परन्तु यह मांग अस्वीकार कर दी गई।

श्री मा० अमीरचन्द

मा० अमीरचन्द जी उत्तर भारत के एक प्रकार से क्रान्तिकारी कार्य के प्रथम संगठन कर्त्ता थे। दिल्ली के विप्लव दल के भी यही प्रमुख नेता थे। मा० अमीरचन्द जी पञ्जाबी थे, दिल्ली के मिशन स्कूल में अध्यापक थे, बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष थे। स्वामी रामतीर्थ जी से भी आपका परिचय हो गया था। स्वामी जी के उपदेशों का आप पर अच्छा प्रभाव पड़ा। मास्टर जी स्वामी जी के शिष्य हो गये और सर्वप्रथम स्वामी जी के उपदेशों तथा सिद्धान्तों का प्रचार आरम्भ किया था। इनकी धार्मिक कार्यों में विशेष रुचि थी। किन्तु संसार से आप विरक्त नहीं थे, सामाजिक सुधार तथा राजनैतिक कार्यों में बड़े उत्साह से भाग लेते थे। मास्टर जी के जीवन में धर्म और कर्म दोनों समान रूप से विद्यमान थे। मास्टर जी एक चरित्रवान् व्यक्ति थे। इनका हृदय बड़ा कोमल था। ये विद्यार्थियों के साथ बड़ा प्रेम का व्यवहार करते थे। इन गुणों के कारण विद्यार्थियों को भी इनके प्रति बड़ी श्रद्धा और प्रेम था। मास्टर जी अंग्रेजी तथा उर्दू के अच्छे विद्वान् तथा लेखक भी थे। जिस समय १६०८ व ६ में सारे भारतवर्ष में विप्लव की अग्नि सुलग रही थी। मुख्य-मुख्य स्थानों पर विप्लव केन्द्र बनाए जा रहे थे और सारा कार्य सुसंगठित

रूप से हो रहा था। उस समय आप दिल्ली में उत्तर भारत के संगठन-कार्य को अपने साथियों के साथ मिलकर कर रहे थे।

उधर लाहौर में लाला हरदयाल जी के प्रभाव से विप्लव का क्षेत्र बढ़ रहा था। लाला हरदयाल जी के विचारों से मास्टर जी भी प्रभावित थे। उनके साथ धीरे-धीरे सम्पर्क बढ़ता गया। एक प्रकार से लाला जी के आप शिष्य बन गए और उनके विचारों का आप खूब उत्साह से प्रचार करने लगे। वैसे मास्टर जी गम्भीर प्रकृति के थे। थोड़ी सी गरमी से झिलकने वाले न थे। चुपचाप रह कर धैर्य से निरन्तर कार्य करने वाले कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे और ठोस कार्यकर्ताओं को ही पसन्द करते थे। वे एक निर्भीक स्वतन्त्र प्रकृति और प्रसन्नचित रहने वाले व्यक्ति थे। हँसमुख भी बहुत थे, अपने आपको बन्दर ही कहते थे। वे कहा करते थे कि मेरे मकान का कोई पता पूछे तो यह पूछ ले कि "बन्दर मास्टर का कौन सा मकान है" तो मेरा मकान उसे सहज में ही मिल जायेगा। लाला हरदयाल जी विदेश जाते हुए उत्तर भारत के विप्लव-कार्य का नेतृत्व भार मास्टर जी के ऊपर सौंप गये। लाला जी का आप पर पूर्ण विश्वास था। अतः आपको कार्य सोंप वे निश्चिन्त हो विदेश चले गये। इधर देश में कई स्थानों पर बम्ब फेंके गये। चारों ओर क्रान्ति की लहर थी। लाहौर और दिल्ली में भीषण घटनाएँ हो चुकी थीं गिरफ्तारियों की भी धूम थी। मास्टर अमीरचन्द जी के लाला हनुमन्त सहाय रईस अच्छे सहायक थे। पहले ये सब धार्मिक और सामाजिक सुधार के क्षेत्रों में ही कार्य करते थे किन्तु जब स्वदेशी आन्दोलन और विप्लव कार्य के संगठन में मास्टर अमीरचन्द जी जुट गये तब लाला हनुमन्त सहाय भी इस कार्य में जुट गये। आप विदेशी माल के बहुत बड़े व्यापारी थे। उस भारी लाभदायक व्यापार को तिलाञ्जलि दे दी। लाला हरदयाल जी के विचारों से प्रभावित हो आपने १६०६ में अपने मकान में एक राष्ट्रीय विद्यालय खोला। एक राष्ट्रीय पुस्तकों का वाचनालय भी खोला गया। इस विद्यालय में मा० अमीरचन्द जी तथा कई अध्यापक और भी शिक्षा लेने का कार्य करते थे। फिर वे ही आगे चलकर क्रान्तिकारी आन्दोलन में प्रविष्ट हुए। यह विद्यालयादि नये-नये लोगों को क्रान्तिकारी दल की सदस्यता में भर्ती करने का ढंग था, इन सब में अवध बिहारीलाल सबसे अधिक उत्साही था। इस दिल्ली के संगठन का बंगाल के लोगों के साथ भी सम्बन्ध था। अवध बिहारी मा० अमीरचन्द का प्रिय शिष्य था जो आगे चलकर यह इनका अच्छा साथी बन गया। यह दिल्ली का दल आदर्शवादियों का दल था।

श्री अवध विहारी

अवधबिहारी बचपन से मा० अमीरचन्द के साथ रहते थे। पहले वह शिष्य रूप में उनसे पढ़ते रहे। फिर साथी बनकर कार्य करने लगे। जब मित्र का रूप धारण किया तो इन दोनों का एक ही रूप हो गया। मास्टर जी ने इन्हें बनाया था अतः वे इन्हें बहुत प्यार करते थे। वे अन्त तक मास्टर जी की संगति में रहे। यह बड़े होकर बड़े होनहार युवक सिद्ध हुए। इन्होंने बी० ए० पास कर लिया था इनकी आयु २३ वा २४ वर्ष की थी, किन्तु वे कार्य बहुत बड़े-बड़े व्यक्तियों के समान करते थे। थोड़े ही समय में अपनी योग्यता के कारण दिल्ली के विप्लव दल के नेता हो गये। आपने लाहौर के ट्रेनिंग कालिज से जब बी० टी० पास की तब बी० टी० में आपको स्वर्णपदक मिला था। आप के दल ने विप्लव करने की पूरी तैयारी की और बड़े वीरतापूर्ण तथा निर्भयता से कार्य किये।

इस दल में मा० गणेशीलाल खस्ता तथा महात्मा हंसराज के पुत्र बलराज जी भी दल के उत्साही सदस्य थे। इसी दल ने सबसे पहले पर्दे का रिवाज अपने सदस्य लाला हनुमन्त सहाय से तुड़वाया था। उन्हें सुधार कार्यो में जनता का विरोध भी सहना पड़ा। किन्तु ये बड़े वीर और आदर्शवादी थे किसी के व्यर्थ विरोध की कब परवाह करते थे।

कलकत्ते में उनका नाम राजा बाजार के एक मकान की तलाशी में पहले पहल आया। उस समय यह भी पता चला कि अवध बिहारी देहली के मास्टर अमीरचन्द के मकान पर रहता है। उस समय मा० अमीरचन्द जी संस्कृत हाई स्कूल (चरखेवालान) में मुख्य अध्यापक थे। पुलिस ने अकस्मात् आकर आपके मकान की तलाशी ली। तलाशी में एक बम की टोपी० लिवर्टी नामक पर्चे का मास्टर अमीचन्द के हाथ का लिखा हुआ मस्विदा और कुछ पत्र मिले। जिन में अवध बिहारी के नाम शिमले से आया हुआ एक पत्र भी था। इस पत्र में भेजने वाले का नाम "एन० एस०" लिखा हुआ था। उसी समय घर से मा० अमीर चन्द उनके गोद लिये हुए बेटे (भतीजे) सुलतानचन्द, और अवधबिहारी को गिरफ्तार किया गया। इसी समय लाहौर से एक दीनानाथ पकड़ा गया। उस धूर्त ने लाहौर की बम दुर्घटनाओं को इस दल का कार्य बताया। इस दीनानाथ ने डर के मारे क्रान्तिकारियों के सब गुप्त भेद खोल दिये। इससे बड़ी हानि पहुंची। यह दीनानाथ, जे० एन० चटर्जी आदि विद्यार्थी लाला हरदयाल से राजनीति की शिक्षा लिया करते थे। लाला जी भारत जाते समय सब कार्य मास्टर अमीरचन्द को सौप गये। उसी समय दीनानाथ भी देहली आकर मास्टर अमीरचन्द जी से शिक्षा प्राप्त करने लगा। यह अत्यन्त भीरु प्रकृति का था, इसने बलराज, भाई बालमुकन्द चरणदास, रासबिहारी तथा लाला हरदयाल आदि सबका नाम ले लिया। इन सब पर दिल्ली षड्यन्त्र का मुकद्दमा चला।

दिल्ली षड्यन्त्र

यह मुकद्दमा सन् १६१४ मार्च मास में १३ अभियुक्तों, दीनानाथ सुलतानचन्द, मास्टर अमीरचंद अवधबिहारी, भाई बालमुकन्द, वसन्त कुमार, विश्वास, बलराज, लाला हनुमन्तसहाय, चरणदास, मन्नूलाल, रघुवरशर्मा, रामलाल, और खुशीराम पर चलाया गया। एक मुकद्दमे में इस्लामियां कालेज का वी० ए० का फजलेकराम विद्यार्थी था। यह सरकारी गवाह बन गया। लाला हनुमन्तसहाय को इसी मुसलमान विद्यार्थी ने फँसाया। दीनानाथ ने सरकारी गवाह बनकर सारा भेद खोल सर्वनाश कर दिया। पुलिस ने दबाकर सुलतानचंद को भी सेशन की अदालत में सरकारी गवाह बना लिया। इस नीच कृतघ्न गोद लिये हुए बेटे सुलतानचन्द ने सरकारी गवाह बनकर जब अपने चाचा (धर्मपिता) मा. अमीरचंद के विरुद्ध गवाही दी तब मास्टर अरमीचंद की आंखों से जिरह करते हुए आसुओं की झड़ी लग गई। यह सत्य है आत्मीयजन के विश्वासघात के दु:ख को वे सह न सके। और उस समय तक उनका दु:ख दूर न हुआ जब तक वे फांसी की आज्ञा न सुन सके। फांसी की आज्ञा सुनते ही वे हँसने लगे, मुख पर प्रसन्नता छा गई। मानों उन्हें अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति हो गई हो। सेशन जज ने ५ अक्टूबर १६१४ को अपने निर्णय में मास्टर अमीरचन्द अवधबिहारी और भाई बालमुकन्द को फांसी तथा बलराज ला० हनुमन्तसहाय और वसन्तकुमार विश्वास को आजन्म काले पानी का दण्ड दिया। शेष सबको छोड़ दिया अपील करने पर बसन्तकुमार की सजा काले पानी से बढ़कर फांसी कर दी गई। बलराज हनुमन्तसहाय को काले पानी के स्थान पर सात-सात साल सख्त जेल का दण्ड दिया। फांसी की अपील की गई वह भी अस्वीकार हो गई।

लार्ड हार्डिंज पर २३ दिसम्बर १६१२ में जब जलूस निकल रहा था, चांदनीचौक में बम फेंका गया। बम का निशाना ठीक नहीं बैठा। वायसराय कुछ जख्मी होकर मूर्छित हो गया। किन्तु इनके पीछे बैठा हुआ अंगरक्षक उसी समय मर गया। बम बड़ा भयातक था। पुलिस ने उसी समय सारे चांदनी चौक को घेर लिया। किन्तु खूब यत्न करने पर भी बम फेंकने वालों की छाया तक का भी पता न लगा। इसी के पांच मांस पश्चात् मई १६१३ में सब सरकारी आफीसर लारेन्स गार्डन में इकट्ठे हुए थे, इन सबको उड़ाने के लिए एक बम रखा गया था। किन्तु उस बम के फटने से चपरासी को छोड़ कर कोई नहीं मरा, सरकार के लाख प्रयत्न करने पर भी इस दुर्घटना का कुछ पता उस समय न लगा सकी। यही दोनों दोष दिल्ली षड़यन्त्र में मास्टर अमीरचन्द के साथियों पर लगाये गये थे। निल्ली के लार्ड हार्डिंज के बम केस को तो सरकार सिद्ध न कर सकी कोई गवाह भी इस विषय में कुछ भी न बता सका। सारे षड्यन्त्र के गुप्त भेद खोलने वाले दीनानाथ को भी दिल्ली-बमकेश के विषय में कोई ज्ञान न था। अतः वायसराय पर बम फेंकने वाली घटना का किञ्चित भी वर्णन नहीं कर सका। फिर भी चार व्यक्तियों को फांसी पर चढ़ा दिया गया। फांसी के दण्ड से ये चारों वीर प्रसन्न थे। जिस दिन अवधविहारी को फांसी होनी थी। उस दिन एक अंग्रेज ने उनसे पूछा "आपकी अंतिम इच्छा क्या?" अवधबिहारी ने उत्तर दिया यही कि अंग्रेजी साम्राज्य नष्ट हो जाये"। उस अंग्रेज ने कहा "शान्त हो जाइये। आज तो शान्ति पूर्वक प्राण दीजिये। अब इन वातों से क्या लाभ? इस पर अवधबिहारी ने उत्तर दिया "आज शान्ति कैसी? मैं तो यह चाहता हूं कि आग भड़के और चारों ओर भड़के। जिससे तुम भी जलो, हम भी जलें, हमारी दासता भी जले और अन्त में भारत कुन्दन बनकर रह जावे।"

फाँसी के समय इन वीरों ने स्वयं कूद कर गले में फांसी की रस्सी डाल ली और "बन्दे मातरम्" के साथ हंसते-हँसते देश पर प्राण न्योछावर कर गये। गुरु और चेले दोनों ही देश की बलिवेदी पर बलिदान हो गये। भगवान् ऐसे ही देश भक्त गुरु शिष्यों के जोड़ों को भारत में जन्म दे। ये दोनों अत्यन्त धार्मिक थे। एक उर्दू की कविता उन्हें बड़ी प्रिय थी जिससे वे प्राय गाया करते थे। तब उसके अनुरूप उनका आचरण भी था। पाठकों के ज्ञानार्थ नीचे उद्धृत करता हूं। कविता यह है—

"एहसान ना खुदा का उठाये मेरी बला।
किश्ती खुदा पर छोड़ दूँ लंगर को तोड़ दूँ॥"

मा० अमीरचन्द केधर्माचरण की छाप प्रायः देहली के सभी कार्यकर्त्ताओं पर थी।

भाई बालमुकुन्द

इनका जन्म लगभग १८८५ ई० में पंजाब प्रान्त के जि० झेलम में चकवाल के निकट किसी ग्राम में हुआ था। भाई जी ने बाल्यकाल में चकवाल में ही शिक्षा पाई। इसके पश्चात् डी० ए० बी० कालेज लाहौर में आकर पढ़ने लगे। वहीं से बी० ए० पास किया। बालमुकुन्द बड़े होनहार बुद्धिमान और शुद्ध विचारों के व्यक्ति थे। आप का सम्बन्ध भाई खानदान से था, जिसमें भाई मतिराम जी ने जन्म लेकर भाई खानदान को अमर कर दिया था। घटना इस प्रकार है जब औरंगजेब ने हिन्दू धर्म के बड़े नेताओं को इस्लाम न स्वीकार करने के कारण मृत्यु दंड दिया तो उसी समय भाई मतिराम जी की भी बारी आई। तब इनसे पूछा गया "यदि जान प्यारी है तो इस्लाम स्वीकार करो।" भाई मतिराम ने उत्तर दिया— "नहीं, नहीं, जान प्यारी नहीं, धर्म प्यारा है।" इस्लाम स्वीकार न करने पर आज्ञा दी गई, इन्हें खूब कष्ट

दे देकर मारो। बात की बात में आरा चलने लगा और भाई मतिराम जी को खूब कष्ट देकर आरे से चीर कर मृत्यु के विकराल गाल में पहुंचा दिया गया। आपने कष्टों की कोई परवाह न की और धर्म पर हँसते-हँसते प्राणों की बलि चढ़ा दी। जब से देश-धर्म के लिए प्राण दिये, उस समय से उनको भाई शब्द से स्मरण करते हैं। उन्हें और उनके परिवार को उस दिन से सब लोग भाई कहने लगे। भाई वंश ने विप्लव के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, भाई परमानन्द जी भी उन्हीं की सन्तान थी, और भाई बालमुकुन्द भी उन्हीं की संतान थी, अतः उसी धर्मभावना से अनुप्राणित हो, भाई बालमुकुन्द ने बी० ए० पास करके देश सेवा का व्रत धारण किया। उस समय राष्ट्रिय आन्दोलनों के सूत्रधार एवं संचालक पंजाब में लाला लाजपतराय माने जाते थे। भाई बालमुकुन्द लाला जी के तत्कालीन आन्दोलन अछूतोद्धार में कार्य करने लगे।

उस अंधकार के युग में अछूतोद्धार का कार्य अत्यन्त कठिन था। उस समय बालमुकुन्द जी ने बड़ी तत्परता से कार्य किया। वे कठिनाइयों से घबराने वाले नहीं थे। इस गुण के कारण सभी साथी उनका प्रशंसा करने लगे। इन दिनों पंजाब में विप्लव दल का संगठन सरदार अजीतसिंह और सूफी अम्बाप्रसाद कर रहे थे। ला० हरदयाल जी ने लाहौर आकर विप्लव कार्य में एक प्रकार से नये प्राण फूंक दिए। थोड़े हा समय में बहुत युवक संगठन में सम्मलित हो गये। उन्हीं में भाई बालमुकुन्द भी थे। ला० हरदयाल योरुप तथा सूफी जी और अजीतसिंह जी ईरान चले गए। भाई बालमुकुन्द जी दिल्ली आकर मा० अमीरचन्द से राजनीति की शिक्षा ग्रहण करने लगा। कुछ दिन पश्चात् लाहौर के विप्लव-दल का कार्य-भार आपने सम्भाला और खूब दत्तचित्त होकर कार्य करने लगे। सन् १६१३ ई० के मई मास में पंजाब के सभी सिविलियन पदाधिकारी अंग्रेज लाहौर के लारेंस गार्डन में इकट्ठे हुए। उन सबको उड़ा देने के लिए वहां एक बम रक्खा गया। किन्तु उससे केवल एक हिन्दुस्तानी चपरासी मरा। सब बाल-बाल बच गये। बम रखने वाले का पता नहीं चला। इसी प्रकार सन् १६१२ में लार्ड हार्डिंग्ज पर बम फेंका गया। उसी विषय में लाहौर दीनानाथ ने भाई बालमुकुन्द जी का नाम ले लिया। उन दिनों भाई बालमुकुन्द जी कुछ समय से जोधपुर में राजकुमारों के पढ़ाने का कार्य कर रहे थे। फिर जोधपुर से भाई बालमुकुन्द के साथ अनेक व्यक्ति गिरफ्तार करके दिल्ली लाये गए। तलाशी के समय उनके पास दो बम पाये गए। यह दीनानाथ की गवाही में भी कहा गया। भाई जी के गाँव के मकान की सारी भूमि दो-दो गज गहरी खोद डाली गई। घर की सारी छतें उखाड़ कर फैंक दीं। किन्तु वहां कुछ भी न मिला। भाई बालमुकुन्द पर दिल्ली में मुकद्दमा चला। वकील भी उन दिनों क्रांतिकारियों के मुकद्दमे तक नहीं लेते थे। सबको डर लगता था। उस समय भाई परमानन्द जी एम० ए० ने उनके मुकद्दमे की और पैरवी की। उन्होंने प्रयत्न किया किन्तु उसका कोई फल न निकला। मुकद्दमे के निर्णयानुसार आपको भी फांसी का दंड दिया गया। फांसी की आज्ञा सुनकर बालमुकुन्द प्रसन्नता के मारे उछल पड़ा। उसने कहा—"मुझे आज अपार हर्ष हो रहा है कि मैं आज माता के चरणों में अपने आपको वहीं चढ़ा रहा हूं जहाँ हमारे पूज्य पुरखा वीर भाई मतिराम जी ने स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी।" फांसी के दिन बालमुकुन्द हंसते-हंसते फांसी के तख्ते पर जा खड़े हुए और अपनी मानवलीला समाप्त कर दी। भाई परमानन्द जी ने प्रिवी कौंसिल तक अपील की थी परन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ।

सती रामरखी

सती रामरखी के पिता आर्यसमाजी थे और उसके पति भी आर्यसमाजी ही थे। १६ वर्ष की आयु में उसका विवाह हुआ था और १८ वर्ष की आयु में वह शहीद हो गई। भाई बालमुकुन्द का विवाह उन की गिरफ्तारी से एक वर्ष पूर्व देवी रामरखी के साथ हुआ था। यह बहुत ही सौम्य स्वभाव की पतिव्रता देवी थी। साथ ही वह अत्यन्त सुन्दरी भी थी। पति की गिरफ्तारी की सूचना सुनकर रामरखी व्याकुल हो उठी। इसका पाणिग्रहणमात्र ही हुआ था, गौणा नहीं हुआ था। दोनों अभी ब्रह्मचारी ही थे। पति के गिरफ्तार होते ही उसने भी तपस्या आरम्भ कर दी। वह पति से जेल में मिलने के लिए गई। पूछा "भोजन कैसा मिलता है ?" भाई बालमुकुन्द ने रेत मिली जेल की रोटी का एक टुकड़ा उसे दे दिया। देवी ने पूछा कहां सोते हो ? भाई जी ने मच्छरों से भरी अपनी कालकोठड़ी दिखला दी। रामरखी ने उसी दिन से वैसी ही रोटी बनाकर खानी आरम्भ कर दीं। उसने भूमि को हाथ भर खोद कर उसमें पुवाल डाल कर अपने सोने के स्थान को भी वैसा ही मच्छरों वाला तथा वायुरहित बना लिया। रामरखी की इच्छा अपने पति के साथ सती होने की थी। किन्तु लाश न मिलने के कारण उसकी यह योजना पूरी नहीं हुई।

अब उसने एक दम निर्जल उपवास करना आरम्भ कर दिया। अठारहवें दिन उसने अपने हाथ से लाये जल से स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहने। फिर उसने लेट कर कहा "प्यारे ! बहुत दिन तक परीक्षा ले चुके। आज तो दामन नहीं छोड़ूँगी, अब अलग न हो सकूंगी।" रामरखी ने यह कहकर एकदम प्राण छोड़ दिये। लोगों ने यह कहा रामरखी सती हो गई। किन्तु एक कवि ने कहा—"गुल पर बुलबुल निसार हो गई।" वह देवी अपने पति के साथ ही अमर हो गई।

देवतास्वरूप भाई परमानन्द

(ब्र० महादेव)

यवन राज्य के प्रसिद्ध शहीद भाई मतिराम जी के वंश में भाई परमानन्द जी का जन्म हुआ था। आप सारस्वत ब्राह्मण थे। आपकी आरम्भिक शिक्षा "चकवाल नामक ग्राम में हुई, वहीं से आपने मिडिल पास की और लाहौर में डी० ए० बी० विद्यालय में प्रविष्ट हो गये। आपका जन्म आर्य घराने में हुआ, अत एव आपको जन्म से ही आर्यत्व की शिक्षा मिली थी। एफ० ए० उत्तीर्ण करके आपने एक वर्ष तक जालन्धर में रहकर वहां राजपूत स्कूल की स्थापना की, तत्पचात् आपने पुनः लाहौर आकर बी० ए० उत्तीर्ण किया व साथ ही विवाह संस्कार भी हो गया। इसके पश्चात् आप एबटाबाद में ऐंग्लोसंस्कृत विद्यालय के प्राध्यापक हो गये। दो वर्ष के उपरान्त एक वर्ष के लिए आप कलकत्ता में पढ़ने के लिए गये, किन्तु एम० ए० की परीक्षा आपने पंजाब में ही आकर दी। इसके पश्चात् आप दयानन्द कालेज में प्रो० हो गये। तीन वर्ष तक दयानन्द कालेज में प्रोफेसरी का कार्य करते रहे।

कुछ दिनों के बाद आप आर्य-प्रचारक बनकर अफरीका में गये। वहाँ आपने मुम्बासस नैरोबी-खुन-ट्रान्सवाल और केपकालोनी में आर्य-धर्म्म का प्रचार किया। और जौहान्सवर्ग में आपने एक मास तक महात्मा गांधी जी के घर पर रहकर आर्य समाज का प्रचार किया। वहां से आपकी इच्छा इगलैण्ड जाने की हुई। आपने महात्मा गांधी जी द्वारा श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा के तथा अन्य दो अंग्रेजों के नाम पत्र लिखवाये। वहां से आप इंग्लैंड आकर कुछ समय तक श्री पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा के "भारत भवन" से ही रहे। वहां रहकर इतिहास का अध्ययन करते रहे वहां से आप आक्सफोर्ड-कैम्ब्रिज आदि स्थानों में रहकर १।। वर्ष तक भारतीय इतिहास की समुचित सामग्री एकत्रित की।

सन् १९०८ में स्वातन्त्र्य युद्ध को हुए पचास वर्ष हो चुके थे। इधर बंगाल में बङ्ग-भङ्ग से तथा पंजाब में नहरी पानी और जमीन के नये कानून के बन जाने के कारण से प्रजा में भारी अशान्ति फैल रही थी। इससे इंग्लेंड के पत्रकार अत्यधिक चिन्तित थे, और यह संकेत कर रहे थे कि कहीं १८५७ की पुरानी क्रुति "भारत में कहीं न हो जाये। उन्हीं दिनों अर्थात् १९०८ के मई मास से पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी और सरदार अजीतसिंह को पकड़ कर भारत की अंग्रेजी सरकार ने बर्मा में नजर बन्द कर दिया था। इससे भारत में तो खलबली मची ही परन्तु इंग्लैंड में भी कई विरोध सभायें हुईं। जिन में भाई जी ने भी भाषण दिये। कुछ दिन पश्चात् आप पुनः भारत में पधारे और समाज का कार्य करने लगे।

भाई जी जब मद्रास-बम्बई-गुजरात की ओर आर्य समाज का प्रचार करने गये थे। उसी समय आपके किराये के मकान में सरदार अजीतसिंह व श्री किशनसिंह जी रहते थे। वह मकान उसी समय "भारत माता" का कार्यालय माना जाता था। श्री अजीतसिंह जी के पास उनके साथी यहां आते जाते थे, किन्तु थोड़े ही दिनों में सरकार को अजीतसिंह जी का पता चल गया। तब वह अपने मित्र सूफी अम्बाप्रसाद जी के साथ करांची के मार्ग से ईरान चले गये। श्री किशन सिंह जी ने भी उस मकान को छोड़ दिया। परन्तु उसमें अभी सामान था, पुलिस के तलाशी लेने पर सन्दूकों में ऐसे कागज मिले जिससे

आपको (भाई जी को) पुलिस ने पकड़ लिया यह घटना १६१० की है। श्री लाला दुर्गादास जी के भागीरथ प्रयत्न करने पर सरकार के तीन साल तक किसी राजनीतिक कार्य में भाग न लेने की प्रतिज्ञा पर आप छोड़े गये।

तीन वर्ष का समय व्यतीत करने के लिए आप घर अर्थात् अपने गांव चले गये, परन्तु आपने अधिक दिन घर पर न रहकर पुनः अमेरिका को प्रस्थान किया आप अमेरिका जाने से पूर्व पेरिस गये। वहाँ आप को ज्ञात हुआ कि लाला हरदयाल जी राजनीति से विरक्त हो..र मार्टा निक टापू में रहते हैं। आप ने उनसे मिलने का प्रयत्न किया परन्तु आप इसमें कृतकार्य न हो सके। वहाँ से आपने न्यूयार्क को प्रस्थान किया और वहां जाकर औषधि निर्माण का कार्य करने लगे। परन्तु आपका जी इस कार्य में न लगा। अतः आप पुनः मार्टानिक टापू में लाला हरदयालजी के पास गये। वहाँ पर आपने एक मास तक निवास किया, लाला जी उस समय पर्वतों में त प करने लगे थे। आपका विचार था कि महात्मा बुद्ध की भांति एक नया मत चलाया जाये। किन्तु भाई जी ने कहा कि इस से तो यही अच्छा है कि आप अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द के आरम्भ किये हुए काम को सुचारु रूप से बढ़ावें। इसके बाद आप ब्रिटिश गायना में चले गये और भारतीय वस्ती में जाकर कुछ दिन निवास किया। वहां आपने ईसाईयत के विरुद्ध प्रचार किया, क्योंकि भारतीय लोग अधिकांशतः ईसाई हो रहे थे। वहाँ से आप सान फ्रांसिस्को गये, वहां के लोग आप केलेख व व्याख्यानों से बड़े प्रभावित हुए, यहां तक कि आपको संत की उपाधि से विभूषित किया।

सन् १६१३ में भाई जी इग्लैंड चले आये। लन्दन में आपने रसायन शाला के लिए जिसे कि भारत में खोलना चाहते थे सामान खरीदा। आप इग्लैंड से इटली जहाज पर सवार होकर जनेवा होते हुए भारत पहुंचे। बम्बई बन्दरगाह पर आपके सामान की तलाशी ली गई और बम्बई से लाहौर तक बराबर आपके साथ खुफिया पुलिस के अधिकारी गये। आप लाहौर में कुछ दिन ही निरापद रह पाये थे कि एक दिन आपको पञ्जाब और दिल्ली के षड्यन्त्रों की जड़ तथा लार्ड हार्डिञ्ज पर बम और "गदर-पार्टी' के कार्यो से सम्बन्धित बताकर आपको पकड़ लिया गया। न्यायालय में आपको फांसी की सजा सुनाई गई। जब कि आपके आरोपवादियों का पक्ष कमजोर था। यहां तक कि सरकारी वकील पिटमैन ने सरकार को सलाह भी दी कि भाई परमानन्द जी से मुकद्दमा उठा लिया जाय किन्तु डायर ने इसे नहीं माना। २४ आदमियों को फांसी की सजा मिली, जिनमें आप भी थे। शेष को काला पानी। ४-५ छोड़ भी दिये गये।

आपको मुक्त कराने के लिये देश व पञ्जाब के नेताओं ने बहुत प्रत्यन किया। अतः २४ में से १७ आदमियों को काले पानी की सजा हुई, जिसमें आप का भी नम्बर आया। श्री करतारसिंह आदि सात व्यक्तियों को फांसी की सजा हुई। आपको काले पानी भेज दिया। वहां आपने सभी प्रकार की कठिनाइयां सहीं, वहां आपने नारियल की रस्सी बटनी, कोलू में बैल की भांति चलना आदि कार्य किये। २१ वर्ष के बाद आपको छोड़ दिया गया, जब आप पञ्जाब आये तब आपका पंजाब वासियों ने भव्य स्वागत किया। यहां आकर आपने कुछ दिन कांग्रेस में काम किया। पुनः आप हिन्दू सभाई हो गये। किन्तु आप जहां भी रहे वहां आपने त्याग और सचाई से काम किया। आपमें त्याग व तपस्या की पराकाष्टा थी।

तरुणवीर बागी कर्तारसिंह

(आचार्य भगवान्देव)

कर्तारसिंह का जन्म सन् १८९६ में पञ्जाब प्रान्त में जिला लुधियाना के ग्राम में हुआ। उस ग्राम का नाम सरावा है। इनके पिता का नाम सरदार मंगलसिंह था। कर्तारसिंह जब बालक ही था तब ही इनके पिता का देहान्त हो गया। इनके दादा ने इनका पालन पोषण किया। प्राईमरी का शिक्षण ग्राम के स्कूल में ही हुआ। अंग्रेजी, कुछ समय यह खालसा हाई स्कूल लुधियाना में पढ़ते रहे। इनकी रुचि पढ़ने में नहीं थी। खेल कूद लड़ाई-झगड़ा और उत्पात करना इन्हें बड़ा अच्छा लगता था। यह सदैव हँसमुख और प्रसन्न चित्त रहते थे। अतः इनका उत्पात, साथी सहन कर लेते थे। इनके निर्भिकतादि गुणों के कारण इनसे सब प्रेम करते थे। इनको सब साथी प्रेम, से अफलातून कहते थे। बाल्यकाल में ही इनमें नेता के सब गुण दिखाई देते थे। ये मस्ती में आकर पञ्जाब छोड़, उड़ीसा चले गये। वहीं इन्होंने मैट्रिक पास की। वहीं कालिज में प्रविष्ट हो अपनी कालिज की पढ़ाई के साथ अन्य पुस्तकें भी पढ़ने लगे। समाचारपत्र पढ़ने तथा अन्य देश-भक्ति का साहित्य पढ़ने से इनके जीवन में विशेष परिवर्तन हुआ। देशभक्ति और स्वतन्त्रता की लहर चित्त में उठने लगी। क्रान्तिकारी विचारों ने हृदय को हिला दिया। कालिज की पढ़ाई छोड़कर विदेश जाने की इच्छा करने लगे। घर वालों से आज्ञा लेकर अमरीका चले गये। वहां जाकर इनकी आंखें खुल गईं। इस पराधीन देश के दास ने स्वाधीन देश में जाकर उस पवित्र आनन्द की अनुभूति की। जिसे शब्द प्रकट नहीं कर सकते। जब इन्हें कोई कुली या हिन्दू कहकर पुकारता तो इन्हें अत्यन्त असह्य कष्ट होता था। वहाँ जाकर दास और स्वतन्त्र का भेद प्रत्यक्षरूप में उसे अनुभव हुआ। अमरीका में उस समय यह धारणा थी कि भारतवर्ष मजदूर, दास वा कुलियों का देश है। इसी प्रकार के अनेक कारणों से उसके विचारों में एक भयंकर क्रान्ति आई। उन्होंने निश्चय किया कि अपनी मातृभूमि भारत को जैसे भी हो स्वतन्त्र करना चाहिए। सन् १९१२ में कर्तारसिंह ने सान फ्रांसिस्को में ही भारतीयों का अपमान देखकर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए मजदूरों का संगठन प्रारम्भ कर दिया। रात दिन उसे यही चिन्ता रहती थी कि मेरा देश स्वतन्त्र कैसे हो। उसी समय पंजाब से निर्वासित देशभक्त भगवान् सिंह अमरीका पहुंचे। इनके साथ मिलने से कर्तारसिंह का उत्साह बहुत बढ़ गया। ये द्विगुण उत्साह से कार्य करने लगे। कर्तारसिंह और जगतराम जी अमरीका में प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों के समाचारपत्र 'गदर' के सम्पादन विभाग में कार्य करते रहे। जब यह 'गदर' पत्र का कार्य करता था, उस समय वह पत्र को अपने हाथ से हैण्ड प्रेस से छापा करता था। इसके पश्चात् इसने न्यूयार्क में हवाई जहाज की कम्पनी में भरती होकर हवाई जहाज चलाना सीखा। अब इसकी इच्छा भारत आने की हुई। इसने भारत को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाने का निश्चय किया। सन् १९१४ में 'कामा गाता मारू' जहाज भारत लौट रहा था तो कर्तारसिंह बाबा गुरुदत्तसिंह से मिला। वह फिर अपने कई साथियों के साथ हवाई जहाज द्वारा जापान पहुंच गया। उस समय प्रवासी भारतीयों में विप्लव का खूब प्रसार था। जो भी भारतीय प्रवासी विदेश से लौटता था। वही "भारत रक्षा" कानून का सहारा लेकर गिरफ्तार कर लिया जाता था। किन्तु अपनी चतुराई से "निपिन मारू" जहाज द्वारा १५, १६ सितम्बर को कोलम्बो पहुँच कर कर्तार सिंह जी सुरक्षित पञ्जाब पहुंच गये। योरुप से महायुद्ध छिड़ गया था। भारत में क्रान्ति करने का अच्छा

उपयुक्त अवसर था। अतः कर्तारसिंह भारत आते ही कार्य में जुट गया। उसके हृदय में विप्लव की आग धधक रही थी। पंजाब में सैकड़ों देश-भक्त अमरीका से लौटकर आये थे। इनके कारण पञ्जाब में विप्लव की आग धीरे-धीरे अपना उग्ररूप धारण कर रही थी। ऐसे वीरों को सुसंगठित करने के लिए पञ्जाब में उस समय कोई नेता नहीं था नेता की खोजमें वीर कर्तारसिंह भाई परमानन्दजी से भी मिले। उन्होंने इसे बालक समझकर वा अन्य किसी कारण से इस पर विश्वास नहीं किया। उस समय दिल्ली षड्यन्त्र के कारण रासबिहारी बोस का यश सुदूर अमेरिका तक पहुँच गया था। अतः रासबिहारी को अपना उपयुक्त नेता समझ पंजाब से विप्लव की तैयारी का समाचार लेकर अपने विश्वस्त व्यक्ति को कर्तारसिंह ने काशी भेजा। रासबिहारी को सब समाचार उस व्यक्ति ने बता दिये और प्रार्थना की कि इस समय पञ्जाब को आपकी अत्यन्त आवश्यकता है। कई कारणों से रासबिहारी उस समय स्वयं पञ्जाब न आ सके। किन्तु उन्होंने शचीद्रनाथ सान्याल को पञ्जाब की दशा की ठीक जाँच करने के लिये भेज दिया। शचीन्द्र नवम्बर मास के अन्त में लुधियाना गये। वहाँ उनको कर्तारसिंह जी भी मिले। कर्तारसिंह ने बताया कि दो सौ तीन सौ इनके साथी लुधियाने में विद्यमान हैं जो आज्ञानुसार विप्लव में कार्य करने के लिए उद्यत हैं। वे सब गुरुद्वारे में पढ़ने के बहाने से इकट्ठे होते हैं। यहाँ के समाचार जानकर शचीन्द्र, कर्तारसिंह को साथ लेकर जालन्धर पहुंचे। वहां स्टेशन पर उतर कर पास के बगीचे में गये। वहां पर उस दिन कर्तारसिंह के अतिरिक्त पृथ्वीसिंह, रामसरनदास, तलवार अमरसिंह और रामकरवा थे। ये सब रासबिहारी की प्रतीक्षा में उन्हें न देख कर कुछ निराश हुए। इन सब ने शचीन्द्र को पञ्जाब की यथार्थ स्थिति बताई। ये सिख सेनाओं से भी बड़ी आशायें रखते थे। उस समय शचीन्द्र ने उनको संगठन संबन्धी कुछ विशेष बातें बताई और फिर कर्तारसिंह को कुछ रिवाल्वर और गोलियां दीं। शचीन्द्र लाहौर गये, पञ्जाब की तैयारी देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। साथ ही वहां के संगठन की निर्बलता भी भली भांति समझ गये कि पञ्जाब के युवकों में उत्साह और शक्ति भी है किन्तु संयम नहीं है और उतावलापन है। सिख अनुशासन में रहकर कार्य न करेंगे तो सारा बना बनाया कार्य बिगड़ जावेगा। शचीन्द्र ने काशी पहुंच कर पञ्जाब की सब अवस्था रासबिहारी को बता दी। रासबिहारी की सम्मति लेकर शचीन्द्र भी कार्य में लग गया। शस्त्र इकट्ठे किये। फौजी छावनियों में जाकर सिपाहियों को विद्रोह के लिए तैयार किया जाने लगा। धन और शस्त्र की कमी को पूरा करने के लिए डाके डालने का निश्चय किया गया। रासबिहारी ने बंगाल के क्रान्तिकारी नेताओं को पञ्जाब के विप्लव की तैयारी का समाचार सुनाने के लिये शचीन्द्र को बंगाल भेजा। पञ्जाब के समाचार सुनकर उन्हें बड़ा उत्साह हुआ, अब उन्होंने निश्चय किया कि विप्लव की तैयारी खूब वेग से की जावे। इसके लिए बम के गोले अधिक संख्या में बनाये जायें। शचीन्द्र काशी लौट आये। थोड़े ही दिनों में शचीन्द्र का सेना के लोगों से अच्छा परिचय होगया था। शचीन्द्र का एक महाराष्ट्रीय विप्लवी साथी पिंगले जो अमरीका से आया था, बड़ा ही होनहार था। वह पञ्जाबी अच्छी बोलता था। रासबिहारी की आज्ञा से उसे पञ्जाब भेज दिया गया। शचीन्द्र ने पिंगले को कर्तारसिंह और पृथ्वीसिंह का परिचय देकर पञ्जाबियों की निर्बलता को भली-भांति जानने के लिए पञ्जाब भेज दिया। पिंगले पञ्जाब की अवस्था का ठीक निरीक्षण करके एक सप्ताह में ही काशी लौट आया। इसके पश्चात् शचीन्द्र और पिंगले ने पञ्जाब की यात्रा एक साथ की। ये दोनों अमृतसर के एक गुरुद्वारे में पहुंचे। वहां पिंगले ने शचीन्द्र का परिचय मूलासिंह को कराया। यह मूलासिंह पहले पुलिस

में रह चुका था। वहाँ इसने पुलिस वालों की एक हड़ताल भी कराई थी। मूलासिंह ने शचीन्द्र को बताया कि जब विप्लव होगा तो पञ्जाब की सेनायें देशवासियों का साथ देगी। वे हमारे अनुकूल हैं। शचीन्द्र ने इस पर विश्वास किया और इसे केन्द्र बनाकर संभालने की प्रेरणा की। उसने केन्द्र का भार अपने ऊपर ले लिया। किन्तु पीछे पता लगा की इसे केन्द्र का भार सौंपकर बड़ी भारी भूल की। इसके पश्चात् ये दोनों मुक्तसर गये जब लौटकर ये अमृतसर आये तो कर्तारसिंह और अमरसिंह आदि गुरुद्वारे में उपस्थित थे। कर्तारसिंह शचीन्द्र को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले "बोलो रासबिहारी कब आवेंगे"। शचीन्द्र ने कहा बस अब उन्हीं का नम्बर है। उनके ठहरने का उचित प्रबन्ध हो जावे। और आपका कार्य भी नियमित रूप से व्यवस्था में चलने लगे तो उनके आने में देर नहीं। इस समय केन्द्र की आवश्यकता बताते हुए कह दिया कि केन्द्र संभालने का भार मूलासिंह ने ले लिया है। रासबिहारी के लिए अमृतसर और लाहौर में दो दो मकान लेने का निश्चय किया गया। अमरीका से सिक्खों का एक दल इसी समय अमृतसर में आया था। उसने अपनी गाढ़ी कमाई में से ५००) शचीन्द्र को दिये। शचीन्द्र इस बार इन लोगों के साथ एक सप्ताह पञ्जाब रह कर काशी चले गये। कर्तारसिंह इस समय रात दिन भीषण परिश्रम करते थे। वह साईकिल पर बैठकर प्रतिदिन चालीस-चालीस पचास-पचास मील प्रचारार्थ देहात में जा जाकर लोगों को समझाते थे। पलटनों में जा-जाकर सैनिकों को समझाना कभी मोगे, कभी फिरोजपुर छावनी में कभी लाहौर कालिज के विद्यार्थियो में प्रचार करना, कभी शस्त्रों के लिए कलकत्ते जाना। इस प्रकार दिन-रात भगदौड़ में ही बीतते थे। प्रशंसा की बात यह है कि जितना भी वे परिश्रम करते थे उतना ही उत्साह साहस और स्फूर्ति बढ़ती जाती थी। वैसे अनुभव कम होने से कार्यकर्त्ता भूलें भी करते। कार्य का ढंग अच्छा न होने से इन में से बहुतों की गिरफ्तारी के वारण्ट हो गये थे। एक दिन कर्तारसिंह को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस ने एक गाँव का घेरा डाला। करर्तारसिंह गांव से निकट, किन्तु ग्राम से बाहर था। पुलिस के आने की सूचना मिलते ही साईकिल पर सवार हो ग्राम में आ गये। पुलिस उन्हें पहचानती न थी। कर्तारसिंह साहस के कारण ही बच गया। यदि वे ऐसा न कर भागने का यत्न करते तो मार्ग में ही पकड़े जाते। इस समय पञ्जाब के क्रान्तिकारियों का व्यय इतना बढ़ गया कि दान के धन से व्यय नहीं चलता था। इसीलिए कर्तारसिंह ने धन के लिए डाका डालने का प्रस्ताव किया। डाँके का नाम सुनकर कुछ साथी आश्चर्य में पड़ गये। करतार सिंह ने कहा "कोई डर नहीं है। भाई परमानन्द भी डाँके के पक्ष में हैं।" १० दिसम्बर को हिसार में पीपी नाम के गांव में एक ब्राह्मण के घर डाका डाला गया। बाईस हजार रुपये हाथ आये। दिसम्बर में पञ्जाब सरकार ने लिखा कि "पिछले महीनों में पंजाब में डाक गाडियाँ लूटी गईं और रेलगाड़ियों को पटरियों से नीचे उतारने के प्रयत्न किये गये।" पञ्जाब सरकार ऐसा अधिकार करती है कि जिन व्यक्तियों को सरकार चाहे पकड़ सके और बिना मुकद्दमा चलाये अनिश्चित समय के लिये जेलों में डाल सकें। इधर सरकार ऐसा अधिकार चाहती थी। इधर पञ्जाब में बराबर डाके डाले जा रहे थे। २४-२५ दिसम्बर को जिला जालन्धर में करला और करनाम ग्रामों में डाँके डाले गये। २७ दिसम्बर को चौरिआनु जिला गुरुदासपुर, १ जनवरी को होशयारपुर जिले में, ४ जनवरी को जालन्धर जिले में, पुनः डाके डाले गये। इसी प्रकार और भी अनेक स्थानों में उन्हीं दिनों डाके डाले गये। एक डाका २ फरवरी को एक चाबा नाम के गाँव जि० अमृतसर में, ब्राह्मण के घर डाका डाला गया। इस डाके में व्यक्तिगत शत्रुता तथा स्वार्थ था। मूलासिंह इस डाके का मुख्य नेता था। पीछे पता चला कि मूलासिंह नीच आदमी था वह ईमानदारी से कोसों दूर था। उसने विप्लव कारियों

का बहुत पैसाखा लिया। वह जब गिरफ्तार हुआ तो सरकारी गवाह बन गया। ३ फरवरी को लुधियाना के ख्वों गांव में डाका डाला गया। इस दल के अध्यक्ष कर्तारसिंह थे। इस घर में एक अत्यन्त सुन्दर युवती भी थी। उसे देख कर एक पापी ने उसका हाथ पकड़ लिया इस पर लड़की घबराकर चिल्ला उठी। करतार ने उसी समय चीख सुनते ही उस नीच को पकड़ लिया। और अपना रिवालवर तान कर उस दुष्ट के सिर पर धर दिया और बोले "अरे नीच! तूने भीषण अपराध किया है इस अपराध का दण्ड मृत्युदण्ड ही है। तू इस युवती के चरणों में सिर रखकर क्षमा माँग और कह बहन! मुझ से भारी अपराध हुआ है। इसकी माता के चरणों में शिर रखकर कहो—"माँ! मुझे इस नीचता के लिये छमा करो।" यदि ये तुझे छमा दे देंगी तो तेरी प्राण रक्षा होगी नहीं तो तुझे गोली से उड़ा दिया जावेगा। उसने वैसा ही किया। मां बेटियों ने उसे क्षमा कर दिया। और इस पर उन माँ बेटी की आँख भर आईं मन्त्रमुग्ध होकर माँ बड़े आश्चर्य से करतार सिंह से बोली—"बेटा ऐसे प्रतिभा और सुशील युवक होकर इस नीच अवरण कुकर्म में क्यों सम्मिलित हुआ।" करतार ने सच्चे गले से उत्तर दिया—"मां रुपयों के लोभ से नहीं अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध लड़ने के लिये शस्त्रों की आवश्यकता है। धन के बिना शस्त्र कहाँ से मिलें। इससे विवश होकर यह नीच कर्म करना पड़ा।" मां ने कहा—बेटा! इस लड़की का अभी विवाह करना है कुछ तो देते जाओ'। करतार ने सब धन माता के सामने रख दिया और कहा—"माता जितना चाहो ले लो। माता ने थोड़ा सा धन लेकर बड़ी खुशी से सब धन उठाकर करतार की झोली में डाल दिया और आर्शीवाद दिया कि—"जाओ बेटा! तुम्हें सफलता प्राप्त हो। करतारसिंह बहुत उच्च और पवित्र चरित्र का धनी था। उसकी सचरित्रता की यह घटना एक अच्छा प्रमाण है।

विप्लव दल की ओर से ३,६,७,१५,१८ और २१ जनवरी को रेल को पटरी से उतारने का प्रयत्न किया गया। और भी अनेक डकैतियां हुईं। बंगाल के मुख्य क्रान्तिकारी नेता काशी आये। शचीन्द्र तथा रासविहारी से मिल कर पंजाब की स्थिति का ज्ञान करके वे बंगाल चले गये। उनके बंगाल चले जाने पर बंगाल में भी अनेक डकैतियाँ हुईं। इस प्रकार उस समय पंजाब से लेकर आसाम, बंगाल तक सारा देश एक संगठन में बंधा हुआ था और विप्लव के लिए तैयार हो रहा था। शचीन्द्र बाबू ने बंगाल सम्भाला और रासबिहारी बोस पंजाब को चल दिये। उस समय उनकी गिरफ्तारी पर इनाम था, किन्तु वे सुरक्षित अमृतसर पहुंच गये। इधर उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार में विप्लवी छावनियों में जा जाकर सेनाओं को विप्लव के लिए तैयार कर रहे थे।

कुछ दिन पश्चात् करतारसिंह अपने साथियों सहित काशी पहुँचा। उस समय उन्हें उत्तर भारत की सभी छावनियों की अवस्था का ज्ञान था। छावनियों में सैनिक लोग क्रान्तिकारियों का बड़ा आदर करते थे, ये उस समय भली भांति परिचित थे कि देश में गोरी सेना बहुत थोड़ी और नौसिखिया है। प्रत्येक छावनी के अस्त्र-शस्त्रों के परिणाम का भी पता लगा चुके थे। देश की ग्रामीण जनता से भी अच्छा मेलजोल था और उत्तर प्रदेश के ठाकुरों से विशेष रूप से मेल बढ़ाया गया। इस प्रकार विप्लवार्थ अच्छी तैयारी और संगठन किया गया। रासबिहारी भी पंजाब में सैनिकों से मिलते-जुलते रहते थे किन्तु वह इस विषय में बड़ी सावधानी रखते थे। इनकी यह योजना थी कि एक दिन अकस्मात् उत्तर भारत की सब छावनियों में सब अंग्रेज सैनिकों पर ठीक एक समय, एक दम आक्रमण किया जाये। और यह कार्य रात्रि के समय ही किया जावे। उसी समय शहर के तारादि काट दिये जायें। अंग्रेजों को पकड़ कर

कैद कर लें फिर सरकारी खजाना लूट लें। जेल के कैदी मुक्त कर दिये जायें। नगरों का प्रबन्ध वहाँ के किन्हीं भी योग्य पुरुषों को सौंप दिया जाये। सारे विद्रोही दल पंजाब में इकट्ठे हों, जिससे वहां पर ठहर कर दृढ़ता से न्यून से न्यून एक वर्ष तक शत्रु के साथ युद्ध किया जा सके।

रास बिहारी ने करतारसिंह के साथियों के साथ मिल कर सारी व्यवस्था की और यह निश्चय किया कि २१ फरवरी को एक साथ ही सारे भारतवर्ष में विद्रोह किया जावे। इसकी सूचना काशी तथा सब छावनियों और केन्द्रों को भेज दी गई। पंजाब में चार रंग वाली पताका भी बना ली गई। युक्त प्रान्त के कुछ ग्राम भी विप्लव में सहयोग देने को तैयार थे। इस समय धड़ाधड़ बम बनाये जा रहे थे और शस्त्र इकट्ठे किये जा रहे थे। रसद का भी कहीं-कहीं प्रबन्ध हुआ। मोटर लारी आई, स्थानीय सवारियों की सूची भी बनाई गई।

उस समय युद्ध का घोषणापत्र भी तैयार किया गया। रेलवे लाईन और तारों को काटने के लिये औजार भी एकत्रित किये गये। इतना होने पर उत्तर भारत के सभी क्रान्तिकारी बड़े उत्साह से पंजाब की ओर दृष्टि किये एकाएक दिन गिनने लगे। ऐसी आशा थी पंजाब में विप्लव होते ही क्षण भर में सारे देश में क्रान्ति की अग्नि धधक उठेगी।

देशद्रोही कृपालसिंह

अमृतसर के चम्बा ग्राम में मूलासिंह की अध्यक्षता में जो डाका डाला गया था। इस डाके की खोज तथा मूलासिंह को पकड़ने के लिए एक मुसलमान पुलिस डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट ने अपने एक सिख गुप्तचर कृपालसिंह को लगाया। कृपालसिंह का एक रिशते का भाई क्रान्तिकारी दल में था। उसकी सहायता से फरवरी में कृपालसिंह भी इस दल में सम्मिलित हो गया किन्तु क्रान्तिकारियों को इस पर शीघ्र ही सन्देह हो गया। उसका निरीक्षण करने पर यह देख लिया गया कि वह प्रतिदिन नियत समय पर अपने अफसरों से मिलने जाता है। इधर २१ फरवरी में दो चार दिन शेष रहते थे। यदि बंगाल में ऐसी घटना देखी जाती तो भेदिये को तुरन्त गोली मार दी जाती किन्तु पंजाबी क्रान्तिकारी सोचने लगे कि कृपालसिंह के मार डालने से न जाने कैसी गड़बड़ मच जावे। इसी भूल से कृपालसिंह बच गया और २१ फरवरी को विद्रोह की तैयारी की सूचना राज्याधिकारियों के पास पहुँच गई। इसका पता करतारसिंह आदि को भी चल गया। अब कृपालसिंह को नजरबन्द करके विद्रोह की तिथि २१ फरवरी के स्थान पर १९ फरवरी कर दी गई। इस समय भी भारत के दौर्भाग्य से एक और दुर्घटना हो गई। इस नई तारीख की सूचना को छावनी में ले जाने का कार्य जिन को सोंपा था उन्होंने लौट कर रासबिहारी से कहा—"छावनी में १९ फरवरी की सूचना दे आया।" उस समय कृपालसिंह नहीं बैठा था, और उस व्यक्ति को कृपालसिंह का हाल मालूम न था। जब सब लोग भोजन के लिए इधर-उधर चले गये तो कृपालसिंह भी बाहर चला गया। जो चौकीदार उसकी देखभाल के लिये नियुक्त था उसने भी उसे जाने से न रोका। कृपालसिंह के बाहर निकलते ही उसे एक पुलिस का भेदिया जो साईकिल पर चढ़कर इधर आ रहा था मिल गया। उसके द्वारा उसने १९ फरवरी की सूचना पुलिस में भिजवा दी। १९ तारीख को कुछ घण्टे बाद धड़ पकड़ आरम्भ हो गई। जिस मकान में कृपालसिंह था उसमें सात गिरफ्तारियाँ हुईं। अमरसिंह आदि कुछ मुखिया भी पकड़े गये। इस मकान में एक रिवाल्वर, बम बनाने की सामग्री और क्रान्तिकारी झण्डे भी

पकड़े गये। रासबिहारी के असली मकान का किसी को भी पता नहीं था। अतः वह गिरफ्तार न हो सके। इधर मेगजीन पर से देशी सिपाहियों के स्थान पर गोरों का पहरा बैठा दिया गया। नगरों के अंग्रेज फौजी तैयारी से युक्त कर दिये गये। उन सब को कैम्प बना कर रहने की आज्ञा दी गई। हथियार बन्द गोरे सैनिकों की टोलियाँ फौजी ढंग से बस्ती भर में गश्त करने लगीं। लाहौर, देहली और फिरोजपुर आदि सभी स्थानों पर यह प्रबन्ध किया गया। इससे विद्रोह में जो सम्मिलित होने वाले देशी सैनिक थे वे एक दम घबरा गये। देहात वालों को क्रान्ति की तारीख से दो दिन पहले करने का पता नहीं चला, अतः वे निश्चित स्थानों पर इकट्ठे नहीं हुए किन्तु करतारसिंह पूर्व निश्चय के अनुसार ७०-८० साथियों को लेकर फिरोजपुर छावनी में पहुँच गये। बारकों में चौकसी रहने पर वे देशी पलटन के हवलदार से मिले किन्तु उसने इस समय कुछ भी करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। विवश करतारसिंह को खाली बिना कुछ किये लौट आना पड़ा। यह १६ फरवरी का दिन भारतीय इतिहास में बड़े महत्त्व का है। इस दिन विप्लव की जितनी बड़ी तैयारी व्यर्थ हुई उतनी बड़ी तैयारी कूका विद्रोह के अतिरिक्त सन् १८५७ के विप्लव के पश्चात् पंजाब में और कभी नहीं हुई। करतारसिंह लाहौर में रासबिहारी के मकान पर पहुँचे। वे उस समय निराश हो मुर्दे के समान पड़े थे। करतारसिंह भी निराश हो चारपाई पर दूसरी ओर लेट गये। इस समय पंजाब में धड़ाधड़ गिरफ्तारियां होने लगीं। २२ ता० को लाहौर में १३० व्यक्ति गिरफ्तार किये गये, चार मकानों की तलाशी ली गई इनमें १२ बम मिले। इनमें पाँच बम बंगाली नमूने के इतने भयंकर थे कि पूरी रेजमेंट को उड़ाने के लिए एक ही बम पर्याप्त था। अमृतसर में बमों की बड़ी भारी सामग्री पकड़ी गई। लुधियाना जिले में झाबे वाला नामक स्थान पर एक बम फैक्टरी का पता चला। लोहतबादी नामक गाँव में एक बम का कारखाना पकड़ा गया। इस समय जो लोग पकड़े जाते थे वे अन्य पांच-सात आदमियों के नाम बतला देते थे। इस प्रकार मूलासिंह और अमरसिंह के पकड़े जाने पर वे वादामाफ गवाह बन गये। सब से पहले नवाबखाँ ने आप ही पुलिस को सूचना दे दी। वह पार्टी का विशेष (सरगरम) कार्यकर्त्ता था। उधर वह सारी बातें पुलिस को बताता रहता था। इस समय गोरी फौज किसी भी गाँव को घेर कर बहुत से व्यक्तियों को एक साथ गिरफ्तार कर लेती थी। रावलपिंडी में एक देशी पलटन बरखास्त कर दी गई। इस प्रकार विप्लवियों के जितने केन्द्र थे प्रायः पुलिस को सभी का पता चल गया। लाहौर के प्रत्येक मुहल्ले में खानतलाशी होने लगी। खूब धर पकड़ हो रही थी। एक बार तो करतारसिंह के साथ काबुल जाने का निश्चय रासबिहारी ने किया किन्तु उन्होंने यह विचार बदल दिया और वे विनायकराव कापले नाम के मराठे युवक के साथ रात की गाड़ी से काशी को चले गये। करतारसिंह, जगतसिंह और हरनामसिंह टुण्डा, तीनों ब्रिटिश भारत की सीमा से निकल कर एक नदी के तट पर बैठ कर विचारने लगे और वहीं कुछ शान्ति से चणे खाए और जल पीया। इनके वहां विचार बदल गये। इनके हृदय में यह भावना जागरित हुई कि हमारा इस प्रकार भाग कर जान बचाना कदापि उचित नहीं। जब हमारे साथी गिरफ्तार हो रहे हैं, हम छिप कर बचना चाहते हैं। जो कुछ होगा देखा जावेगा। अपने फंसे हुए साथियों को छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। यह विचार कर वे लौट आए। करतारसिंह इस विपत्ति के समय भी मस्ती से गाया करता था। उसकी धारणा थी कि किसी युद्ध में लड़ते-लड़ते प्राण देना अच्छा है। उन्होंने लौट कर सरगोधा के पास फिर अपना वही कार्य प्रारम्भ कर दिया। वहाँ चक नं० ५ में विद्रोह की चर्चा छेड़ने के कारण गिरफ्तार करके जंजीरों से जकड़ दिये गये। वे पकड़ कर लाहौर गये। पकड़े जाने पर भी यह १८ वर्षीय सिंह प्रसन्न था, मुख पर हंसी थी। प्रत्येक

अंग से मस्ती टपक रही थी। उनके मुख मण्डल का तेज सब को अपनी ओर आकृष्ट करता था। लाहौर स्टेशन पर पहुंचते ही पुलिस कप्तान से कहा—"मि० टासकिन कुछ खाने को तो ला दो।" वे जेल में डाल दिया गया। वहां पर क्या करतारसिंह शान्त बैठने वाला था ? ६० व ७० कैदियों ने निश्चय किया कि हम सब निर्दोष हैं अतः जेल को तोड़, निकल कर लाहौर छावनी पर कब्जा कर लें और विद्रोह कर डालें। परन्तु दुर्भाग्य वश भेद खुल गया और विचारा हुआ कार्य न हो सका। उस समय लोहा काटने के पेंच भी जेल के अन्दर आ चुके थे। पर सब व्यर्थ हुआ, तलाशी लेने पर करतारसिंह की सुराही के नीचे पृथ्वी में गड़े हुए सब पेंच मिल गय। सब को बेड़ियाँ पहना दी गईं और कोठरियों में बन्द कर दिया गया।

लाहौर षड्यन्त्र का प्रथम मुकद्दमा

पर्याप्त अभियुक्त गिरफ्तार हो चुके थे। सरकार पर्याप्त खोज कर चुकी थी, अतः उसने करतार-सिंह भाई परमानन्द, झाँसी वाले पंडित परमानन्द, विनायक गणेश पिंगले, जगतसिंह और हरनामसिंह आदि ६१ व्यक्तियों पर मुकद्दमा चलाया। यह लाहौर षड्यन्त्र के प्रथम मुकद्दमे के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस मुकद्दमे में सरकार ने ४०४ साक्षी पेश किये। सफाई की ओर से २२८ साक्षी दिए गये। सरकारी गवाहों में अनेक विप्लवी भी थे। करतारसिंह ने इस मुकद्दमे में सारी बातें स्वीकार कर लीं। इस समय उसकी अवस्था कुल साढ़े अठारह वर्ष की थी। कितने आश्चर्य की बात है कि इस थोड़ी सी आयु में यह नवयुवक इतने भारी षड्यन्त्र का नेता था। जज करतारसिंह का सारा बयान आश्चर्य से सुनता रहा। पहले दिन उसने कुछ भी नहीं लिखा और करतारसिंह से बोला—"देखो खूब विचार कर उत्तर दो। इस प्रकार के बयान से और सब अपराध स्वीकार करने से मुकद्दमा सर्वथा बिगड़ जावेगा पुनः सोच विचार कर बयान दो।" करतारसिंह ने कहा—"फांसी से अधिक आप के पास क्या है ? हम उससे नहीं डरते।" जज ने विवश होकर कहा—"जाओ करतारसिंह आज मैंने तुम्हारी कोई बात नहीं सुनी। कल फिर सोच समझ कर बयान देना।" उस दिन अदालत उठ गई। करतारसिंह के पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन के करण मुख-मंडल पर ब्रह्मचर्य का तेज चमकता था। उससे उसके मुख की पवित्र सुन्दर तेजोमय आकृति किसी भी देखने वाले मित्र वा शत्रु को मोह लेती थी। दूसरे दिन करतारसिंह ने फिर वही बयान दिया और षड्यन्त्र का सब उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। उसकी इस शान्त वीरता पर सभी मुग्ध हो गये। डेढ़ वर्ष तक मुकद्दमा चला। अन्त में फांसी की आज्ञा हुई। इस मुकद्दमे में करतारसिंह, विष्णुगणेश-पिंगले, जगत्सिंह, भाई परमानन्द, पं० परमानन्द, पृथ्वीसिंह, मानसिंह और ऊधमसिंह आदि २४ व्यक्तियों को फांसी तथा अनेकों को काले पानी का दण्ड दिया। यह आज्ञा १३ सितम्बर १९१६ को दी गई। करतारसिंह ने फाँसी की आज्ञा सुनकर "थैंक यू" कह कर जज का धन्यवाद किया। जज की आज्ञा करतार को फांसी न देकर कालेपानी का दण्ड दने का विचार था किन्तु करतारसिंह ने कहा कि "मैं फांसी को अधिक अच्छा समझता हूं ताकि मैं शीघ्र जन्म लेकर फिर भारत की स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग ले सकूं और बार-बार ऐसे ही फाँसी पर लटकाया जाऊं तथा फिर जन्म लूं। जब तक कि भारत स्वतन्त्र न हो मैं इसी प्रकार की मृत्यु चाहता हूं। यदि पुनर्जन्म में मुझे ईश्वर ने पुरुष न बनाया, स्त्री बनाया तो अपनी कोख से विद्रोही पुत्र उत्पन्न करूंगा।" करतार की वीरता और दृढ़ता की सभी प्रशंसा कर रहे थे। उसके मुख पर दिव्य आभा झलक रही थी। फांसी के तख्ते पर चढ़ने से पूर्व जब उसका

भार लिया गया उस समय उसका भार पहले से १० पौंड बढ़ गया था। उसके शरीर में उत्साह, मन में उमंग, मुख पर हास्य और तेज, आँखों में प्रेम, हृदय में साहस भरा हुआ था। यथार्थ में वह मनुष्य रूप में देवता था। वह वीर "भारत माता की जय" बोलकर हंसता हुआ फांसी के तख्ते पर चढ़ गया। फांसी के समय जो लोग उससे मिलने आये, उसने सब से यही कहा—साहसपूर्वक मरने से मुझे बागी का खिताब देना, यदि भविष्य में कभी कोई मेरी याद करे तो "बागी करतारसिंह" कह कर मेरा परिचय दिया करना। करतारसिंह ने मरते समय अपने दादा से कहा—"मैं बिस्तरे पर पड़े रहकर मरना अच्छा नहीं समझता। मुझे तो फाँसी की मृत्यु में ही आनन्द है।" इस तरुण वीर करतारसिंह पर जो २० वर्ष की आयु में भारत माता के चरणों में अपने प्राणों की बलि चढ़ा गया। पंजाब प्रान्त अपने इस होनहार नवयुवक के बलिदान पर बंगाल के समान गौरव और गर्व की अनुभूति करता है। धन्य है ऐसे करतारसिंह समान वीरों को, जिन्होंने भारतमाता की दासता की बेड़ियों को काटने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा दी। स्वतन्त्रता के लिये अपना सारा जीवन कण्टकमय बनाया, संसार के ऐश्वर्य पर लात मार कर कठिन से कठिन विपत्तियों को झेला और हँसते-हँसते फांसी की जयमाला गले में डाल ली। उसका बलिदान प्रत्येक युवक के लिये अनुकरणीय है।

हरनामसिंह [वर्मा]

हरनामसिंह का जन्म साहरी ग्राम जिला होशियारपुर में हुआ था। उनके पिता का नाम लाभसिंह था। आप पढ़ने-लिखने में बड़े चतुर थे, किन्तु हाईस्कूल में पहुंचते ही स्कूल छोड़ सेना में भरती हो गये। वहाँ पर बलवन्तसिंह के सत्संग का आप पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। स्वतन्त्रता-प्रेम ने हृदय में गुदगुदी पैदा कर दी, फिर आप नौकरी कैसे करते। डेढ़ वर्ष के पश्चात् नौकरी छोड़कर घर चले आये। कुछ दिन घर पर रहकर फिर आप ब्रह्मा चले गये। वहां से आप अमेरिका पहुंचकर विक्टोरिया में रहने लगे। आप आते ही कार्य में जुट गए। किन्तु आपने उच्च शिक्षा की न्यूनता का अनुभव कर संयुक्तराष्ट्र के सीएटल नगर में जाकर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। तीन वर्ष तक बड़े प्रयत्न से विद्योपार्जन करते रहे। कनेडा में भारतीयों ने डेढ़ लाख की पूँजी से एक इण्डियन ट्रेनिंग कम्पनी खोली। उसका मैनेजर एक अंग्रेज बनाथा गया। कम्पनी का कार्य भली भांति चलने लगा। गोरे भला भारतीयों की व्यापार में उन्नति को कब सहन कर सकते थे। मैनेजर ने पक्षपात अथवा स्वार्थवश बेईमानी करनी प्रारम्भ कर दी। हरनामसिंह भी हिस्सेदारों में थे। आपने उनकी बेईमानी ताड़ ली। फिर तो झगड़ा प्रारम्भ हो गया। गोरे आप पर कड़ी दृष्टि रखते थे और आपको फांसने की चेष्टा भी करने लगे। आपके एक मित्र इसी भय से हरनामसिंह को संयुक्तराष्ट्र अमेरिका ले गये। कुछ दिन पश्चात् आप कैनेडा फिर आ गये। वहां पहुंचकर "दि हिन्दुस्तान" नामक अखबार आपने निकालना प्रारम्भ किया। आपके बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर वहां की सरकार चिन्तित होने लगी और उन पर बम बनाने और सिखाने तथा विद्रोह प्रचारादि का दोष लगाकर ४८ घंटे के अन्दर कैनेडा छोड़ने की आज्ञा उन्हें दी गई। उन्होंने अपने एक अंग्रेज मित्र रैमिस्वर्ग को जो कि संयुक्त अमेरिका में रहते थे, तुरन्त तार दिया, उन्होंने कैनेडा सरकार को तार दिया कि उन्हें निर्वासित न किया जाये, मैं उन्हें लेने के लिए आ रहा हूं। वह उसी समय कैनेडा को अपनी किश्ती लेकर चल पड़े और उन्हें साथ लेकर अमेरिका आये। हरनामसिंह यहाँ आकर बर्कले यूनिवर्सिटी में फिर पढ़ने

लगे। वहां पर "गदर" नामक पत्र में आप जोशीले लेख लिखने लगे। इधर भाई गुरुदत्तसिंह और दिलीपसिंह एक बम केस में पकड़े गये। उधर 'कामा गातामारू' जहाज बन्दरगाह पर आ पहुंचा। हरनामसिंह अपने अन्य साथियों सहित उपर्युक्त दोनों सज्जनों को छुड़ाने के लिए प्रयत्न करने लगे। इसी झगड़े में आप पकड़े गये। इन्हें फिर वही देश निकाले का दंड मिला, आप विवश हो भारत आने वाले एक जहाज पर सवार हो गये। चीन, जापान, और श्यामादि देशों में गदरपार्टी का कार्य करते हुए बर्मा पहुंचे। यह बात सन् १९१५ की है। उस समय सिंगापुर के विद्रोह का दमन हो चुका था। बर्मा में एक नए विद्रोह की योजना हो रही थी। उसकी तिथि भी निश्चित हो चुकी थी। उसकी पूर्ण शक्ति लगाकर सब तैयारी कर रहे थे। आप एक दिन सहसा माण्डले में गिरफ्तार कर लिए गये। अभियोग चलने पर आपको मृत्युदंड मिला। आप इस बीच में जेल से भाग गये किन्तु शीघ्र ही पकड़े जाने के कारण इन्हें फांसी दे दी गई। हरनामसिंह बड़े स्वतन्त्र व्यक्ति थे भागसिंह और बलवन्तसिंह से इनका बड़ा प्रेम था। इन तीनों का ही देश के लिये बलिदान हो गया।

अमर शहीद श्री सोहनलाल पाठक

सन् १९१४ की बात है कि गदरपार्टी की ओर से सभी देशों में गदर प्रचारार्थ पार्टी के सदस्य भेजे जा रहे थे। अतः सोहनलाल पाठक भी इसी योजनानुसार अपने साथी नारायणसिंह सहित अमेरिका से बर्मा भेजे गये। पहले आप बैंकांक पहुँचे। कुछ दिन वहाँ प्रचार करने के पश्चात् रंगून जा पहुँचे। यहां पर संगठन करके और अपना केन्द्र बनाकर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। उत्तरीय भारत में २१ फरवरी सन् १९१४ का दिन विप्लव के लिये नियत किया। सर्वत्र इसकी बड़े जोर से तैयारियां हो रही थीं। क्रांतिकारियों को पूर्ण आशा थी कि भारत स्वतन्त्र होगा और हमारे सुदिन आवेंगे। किन्तु ईश्वरेच्छा कुछ और थी, धरपकड़ प्रारम्भ हो गई। पाठक जी क्रान्ति की विफलता से तनिक भी हतोत्साह नहीं हुए। वे पूर्ण उत्साह और उमंग से फिर क्रांन्ति की योजना में जुट गये। सिपाहियों में विद्रोह की अग्नि सुलगने लगे। उन्हें सैनिकों से कोई अनिष्ट होने की सम्भावना नहीं थी। किन्तु एक दिन एक जमादार ने उन्हें गिरफ्तार करवा दिया। सन् १९१४ का अगस्त मास था, पाठक जी मेमियों के तोपखाने के अन्दर गदर का प्रचार कर रहे थे। उस देशद्रोही जमादार ने उन्हें पृथक् ले जाकर पकड़ लिया। सोहनलाल जी उस समय खाली नहीं थे। उनकी जेब में तीन पिस्तौलें तथा २७० गोलियां थीं। जमादार भी अकेला ही था। यदि पाठक जी चाहते तो जमादार को एक क्षण में मृत्यु के मुख में पहुंचा देते। किन्तु न जाने पाठक जी ने उस समय अपने शस्त्रों का प्रयोग क्यों नहीं किया। उन्होंने उससे छुटकारा पाने का प्रयत्न भी नहीं किया। वे उसे डाटकर समझाने लगे कि मैं तेरा भाई हूं मुझे पकड़वा देने से तुझे क्या मिलेगा। भाई के साथ विश्वासघात करने में क्या तुम्हें किंचित् भी लज्जा नहीं आती, तू कैसा भाई है कि अपने ही हाथों अपने भाई का गला काट रहा है। इन वाक्यों को सुनकर शायद पत्थर भी पिघल जाता किन्तु उस निष्ठुर के हृदय पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह धूर्त्त कैसे पिघल सकता था उसे स्वार्थ ने अंधा कर रक्खा था। उसने पाठक की एक भी न सुनी और उसे वह पकड़कर ले गया। पाठक अत्यन्त उदार थे। उन्होंने उस विश्वासघाती को भाई समझकर क्षमा कर दिया और उसकी कुछ हानि न करके अपने प्राणों की बाजी लगा दी। इस प्रकार के अनेक उदाहरण भारत के इतिहास में मिलते हैं। पाठक जी जेल में डाल दिये गये, उन पर मुकद्दमा चला। पाठक जी जेल के नियमों की परवाह नहीं करते थे, वे किसी जेल

अधिकारी के आने पर परेट या सलामी नहीं देते थे। वह विचित्र मस्ती में रहते थे। जब जेल नियम पालन के लिये उनसे कोई कहता तो वे उत्तर देते—जब मैं अंग्रेजों के राज्य को अन्यायी और अत्याचारी मानता हूँ तो उनके जेलके नियमों को ही क्यों मानूँ?" सलाम करना तो दूर रहा वे किसी राज्य के या जेल के अधिकारी के आने पर खड़े भी नहीं होते थे। वैसे पाठक जी मृदुभाषी, अत्यन्त विनम्र और सुशील थे। किसी के साथ अशिष्टता का व्यवहार नहीं करते थे। वे साधारण व्यक्ति के साथ भी सभ्यता से खड़े होकर बातचीत करते थे। जेलर उसके सभ्य व्यवहार से परिचित था किन्तु पेट के कारण उसे जेल के नियमों का पालन करना पड़ता था, वह भी विवश था। एक बार वर्मा के लार्ड महोदय जेल देखने आये। पाठक जी से जेलर ने प्रार्थना करी कि लार्ड के आने पर खड़े होकर स्वागत कर लेना। पाठक जी इस अनुरोध को मानने को तैयार नहीं हुए। अन्त में जेलर ने एक चाल चली। पाठक जी की सज्जनता का लाभ उठाया। जिस समय लार्ड महोदय जेल में आये तो जेलर पहले से ही पाठक जी के पास आकर खड़ा हो गया। पाठक जी भी सभ्यता के कारण उससे खड़े होकर बातचीत करने लगे। उसी समय लार्ड साहब उनके पास पहुंचे, वे खड़े थे ही उनसे भी बातचीत हो गई। अपनी दो घंटे की बातचीत में लार्ड महोदय ने आपसे बहुत ही आग्रह किया कि तुम क्षमा याचना करके प्राणदंड से मुक्त हो सकते हो। किन्तु आपने सर्वथा अस्वीकार कर दिया। यदि चाहते तो क्षमायाचना करके प्राणरक्षा कर सकते थे किन्तु उस वीर ने क्षमा मांगना अपने गौरव को धब्बा लगाना समझा। उनकी यह धारणा थी कि जब हमने कोई दोष ही नहीं किया तो क्षमा कैसे मांगें। भारत हमारा है यदि हम भारत में अपना स्वराज्य चाहते हैं तो यह हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है. इसमें हमारा क्या अपराध है? अपनी वस्तु को मांगना, अपने अधिकारों के लिये झगड़ा करना कोई अपराध नहीं है। मैं इसलिये क्षमा मांगने को तैयार नहीं। अन्त में फांसी का दण्ड मिला। वह दिन आ गया, सोहनलाल को फांसी के तख्ते पर खड़ा किया गया। उस समय एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने आकर उन्हें फिर क्षमा मांगने को कहा। केवल एक बार मौखिक क्षमा मांग लें आप छूट जावेंगे। मृत्यु मुख पर सामने खड़ी है। फांसी के तख्ते पर खड़ा है, रस्सी का फन्दा ठीक हो चुका है। पर वाह रे शूरवीर! तूने उस समय भी प्राण बचाने के लिये "क्षमा करें" ये दो शब्द नहीं कह दिये। जेल अधिकारी सोहनलाल के मुख की ओर देख रहे थे। कुछ क्षण शान्त रहने के पश्चात् वह फांसी का पुजारी हँसने हुए कहने लगा—"फिर वही बात, मैं अंग्रेजों से क्षमा माँगू? क्षमा ही मांगनी हो तो अंग्रेज हमसे क्षमा मांगें। हमने कोई अपराध नहीं किया जो क्षमा याचना करें। यथार्थ में अपराधी तो वे हैं।" सोहनलाल ने कहा—"आप फिर क्यों देर करते हो, तुम अपने कर्त्तव्य का पालन करो। मुझे अपना कर्त्तव्य पूरा करने दो।" उस वीर को फांसी दे दी गई। वह भी देशभक्त भारत के लिए हँसते-हँसते फांसी के तख्ते पर झूल गया।

वीर बन्तासिंह

बन्तासिंह का जन्म १८६० ई० में सगवाल नामक गांव जि० जालन्धर मे हुआ था। आपके पिता का नाम श्री बूटासिंह था। आप पढ़ने में चतुर थे, सातवीं और आठवीं श्रेणी एक ही वर्ष में उत्तीर्ण करली। आप जालन्धर आर्य वैदिक हाई स्कूल में पढ़ते थे, उसी समय सन् १६०५ में कांगड़ा में भूचाल आया था। उस समय आपने दु:खियों की सेवा सुश्रूषा तन-मन और धन से की। आपने सेवा के लिए एक दल भी बनाया था उसके द्वारा दीन-दुखियों की सहायता करते थे। उस भूचाल में लोक सेवा का खूब कार्य किया

हाईस्कूल की शिक्षा प्राप्त कर आप चीन गये, फिर वहां से अमेरिका चले गये। वहां आपने पद-पद पर दासता का भयंकर दु:ख अनुभव किया। आपने निश्चय किया कि दासता से मरना अच्छा है और प्रण कर लिया यदि जीवित रहूँगा तो स्वतन्त्र होकर नहीं तो स्वतन्त्रता के लिए प्राणों की बाजी लगा दूंगा। आपने देश लौट कर भारत को स्वतन्त्र करने का संकल्प किया। आप भारत लौट आये, अपने गांव में आपने एक स्कूल खोला और पंचायत बनाई। गांव के लोग आप का बड़ा मान करते थे। पंचायत का कर्त्ता-धर्त्ता आपको ही बनाया। सब लोग पंचायत द्वारा किये गये निर्णय को मानते थे। आप का लोगों पर इतना प्रभाव था कि चीफकोर्ट के फैसले को न मान कर आपके फैसले को मानते थे। इससे राज्य के अधिकारी बड़े चिढ़ते थे। उस समय अमेरिका से लौटे हुए पंजाबी आपके पास घर पर आया जाया करते थे। पुलिस की दृष्टि इन पर पहले से ही कड़ी थी। यह रिपोर्ट मिलने पर पुलिस को अच्छा अवसर मिल गया। पुलिस ने अकस्मात् आपके घर पर छापा मारा। उस समय आप घर पर नहीं थे। आपके बहुत से लिखे हुए कई एक टैक्स थे। उन्हें देखकर आपके वारण्ट हो गये किन्तु आप पकड़े न जा सके। पीछे आप को गिरफ्तार करने वाले के लिए पुरस्कार भी घोषित किया गया। एक दिन आप अपने एक साथी सज्जन सिंह सहित लाहौर में किसी मीटिंग में जा रहे थे। उसी मार्ग में एक पुलिस इन्सपेक्टर मिला। उसे इन पर सन्देह हुआ, वह इनकी तलाशी लेने का आग्रह करने लगा। ये समझा बुझाकर टाल रहे थे किन्तु वह इन का पीछा नहीं छोड़ता था। बन्तासिंह के लाख कहने पर भी वह किसी प्रकार नहीं माना। जब आपने देखा यह किसी भी प्रकार बातों से मानने वाला नहीं तो आपने कहा कि "अच्छा तलासी ले लो" वह तलाशी लेने के लिए आगे बढ़ा तो आप ने धीरे से अपना पिस्तौल निकालते हुए कहा कि—"तलाशी न लेते तो अच्छा था हमारे पास तो यही है सो लो यह कहकर उस पर फायर कर दिया। गोली लगते ही पुलिस इन्सपेक्टर भूमि पर धड़ाम से गिर पड़ा। आप अवसर मिलते ही भागनिकले। अभी भागे ही थे। कि इनका साथी ठोकर लग कर गिर गया। आपने पिस्तौल का भय दिखाकर लोगों की भीड़ और पुलिस को रोक कर अपने साथी को खड़ा किया। किन्तु आप का साथी अधिक चोट लगने से भाग न सका। तब आप विवश हो अकेले ही भागे। यह दोपहर की घटना है। आप बचकर निकल गये और स्टेशन पर पहुँच गये। वहां पर पहले ही पुलिस आपकी प्रतीक्षा में खड़ी थी, किन्तु आप लुक छिपकर गाड़ी में चढ़ ही गये। उसी डिब्बे में बहुत से पुलिस के सिपाही भी चढ़ गये। आपने उन को देखा जब गाड़ी अटनी स्टेशन पर ठहरने लगी थी उस समय आप गाड़ी से कूदकर भाग गये। पुलिस वाले निराश हाथ मलते रह गये। वहां से आप जालन्धर पहुंचे। उस समय "गया पार्टी" के प्रमुख कार्यकर्ता भाई प्यारसिंह को होश्यारपुर के जेलदार चन्दासिंह ने पकड़वा दिया। आपने अपने साथियों से मिलकर निश्चय किया कि इन देश-द्रोहियों को दण्ड देना चाहिए। आपने बूटासिंह और निबन्दसिंह को साथ लेकर चन्दासिंह को उसके घर में घेर कर मार डाला। उसी समय अमृतसर के एक पुल को बम के गोले से उड़ा दिया गया। आप से पुलिस वाले बहुत डरते थे। पुलिस वाले इन्हें देख कर प्राय: भाग जाया करते थे। आपका शरीर बहुत सुदृढ़ था। आपने अमेरिका में दौड़ने का अच्छा अभ्यास किया था। एक बार घुड़ सवार पुलिस ने आपका पीछा किया। आप साठ मील तक आगे-आगे भगते चले गये, कहीं ठहरे ही नहीं। इतना परिश्रम करने के कारण आप रोगी हो गये। फिर आप अपने घर चले गये, बहुत दिनों तक वहीं विश्राम करते रहे। लाहौर षड्-यन्त्र के अभियोग के कारण धर पकड़ चल रही थी। इनके पीछे पुलिस लगी रहती थी। इनका स्वास्थ्य अच्छा न था अतः विवश होकर घर पर ही ठहरना पड़ा और वहाँ रहना पड़ा। इनका एक सम्बन्धी घर

पर मिलने आया और उसने इन्हें अपने घर ले जाने का बहुत प्रेम-पूर्वक आग्रह किया। इन्होंने निषेध भी किया किन्तु वह किसी प्रकार भी नहीं माना और आग्रह-पूर्वक अपने घर ले गया। यह कहने लगा कि मैं आपकी सेवा करूंगा, आपको कोई कष्ट नहीं होने दूंगा। वे उनका आग्रह नहीं टाल सके। उस धूर्त्त ने विश्वास घात किया, अपने घर पर उनको ठहरा कर पुलिस को सूचना दे दी। चारों ओर से सशस्त्र पुलिस ने घर को घेर लिया। ऐसे ही धूर्त्तों के कारण भारत दीर्घकाल तक पराधीन रहा। पुलिस घर के अन्दर घुस आई। आप एक छोटी सी कोठड़ी में थे, द्वार खुलते ही सन्मुख पुलिस को खड़ा देखा तो आप खिलखिलाकर हँस पड़े। और अपने सम्बन्धी से कहने लगे—"भाई पुलिस को ही बुलाना था तो मुझे सर्वथा खाली हाथ क्यों छोड़ दिया, पिस्तौल, रिवालवर नहीं तो एक लाठी या डंडा ही रहने देते। एक वीर सैनिक की भांति लड़ता-लड़ता प्राण तो दे सकता'। इस पर पुलिस अफसर ने कहा—बड़े वीर बने फिरते हो? दूसरे सब लोगों को कायर समझते हो। आपने हँसकर कहा–' इस समय मुझे निःशस्त्र समझ कर एक कोठरी में बन्द देख कर पकड़ने का साहस कर रहे हो। जरा बाहर निकलने दीजिये फिर देखूं कौन माई का लाल मुझे गिरफ्तार करता है। परन्तु इतना साहस उनमें कहां था जो उसे बाहर निकलने देकर उसका रणकौशल देखते। आप को उस कोठड़ी से गिरफ्तार करके होशियारपुर भेज दिया गया। डिप्टी कमिश्नर ने आप से एक घण्टा बात चीत की। वह आपकी योग्यता, वीरता और धैर्य पर मुग्ध था। आप के दर्शनों के लिए कचहरी के बाहर हजारों व्यक्तियों की भीड़ थी। आप ने डिप्टी कमिश्नर की आज्ञा लेकर लोगों को कहा—"प्यारे भाइयो! आज मेरी गिरफ्तारी से आप लोग निराश न हो। हमारी मृत्यु से आप घबरायें नहीं। हमारा बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जायेगा। वह दिन शीघ्र आ रहा कि हमारा देश विदेशियों के चंगुल से छूट कर स्वतन्त्र हो जावेगा।

वहां से आपको लाहौर लाया गया। वहां लाहौर षड्यन्त्र का मुकद्दमा अनेक व्यक्तियों पर चला। उसमें आपको फांसी का दण्ड मिला। मृत्युदण्ड सुनकर आप उछल पड़े और कहने लगे—' हे परमात्मन्! तुझे कोटिशः धन्यवाद है कि तूने देश के लिए प्राणों की आहुति देने का अवसर प्रदान किया। मृत्युदण्ड की सजा सुनने के पश्चात् फांसी लगने के दिन तक आप का ११ पौंड भार बढ़ गया। एक दिन प्रातःकाल आपको फांसी पर लटका दिया गया। यह ऐसा देश-भक्त वीर था कि इसकी वीरता की कहानियां पञ्जाब में लाखों मनुष्यों की जिह्वा पर हैं। वह देश के लिए बलि देकर सदा के लिए अमर हो गये।

डाक्टर मथुरासिंह

डा० मथुरासिंह का जन्म झेलम जिले के ढंढियाल नामक गाँव में सन् १८८३ ई० में हुवा था। आपके पिता का नाम सरदार हरिसिंह था। आप ग्राम में शिक्षा पाकर चकवाल के हाई स्कूल में प्रविष्ट हो गये। आप कुशाग्र बुद्धि के थे, शीघ्र ही मैट्रिक पास करके रावलपिण्डी आकर डाक्टरी का कार्य करने लगे। आप तीन चार वर्ष में ही बड़े चतुर तथा प्रसिद्ध डाक्टर हो गये। आप डाक्टरी की उच्च शिक्षा पाने के लिए सन् १९१३ में अमरीका को चल दिये। धन की कमी होने से आपको शंघाई में ही रुकना पड़ा। वहीं पर डाक्टरी का कार्य करने लगे किन्तु आपको कैनेडा जाना था। अतः पर्याप्त रुपया होने पर कैनेडा चले गये। वहाँ पहुंचने पर आप तथा आपके एक साथी को छोड़कर किसी को जहाज से उतरने की आज्ञा नहीं मिली। पहले तो आपने उतरना उचित नहीं समझा। आप बहुत आग्रह करने

पर उतरे। इस अपमान से आपको बड़ा दु:ख हुवा। इमीग्रेशन वालों में झगड़ा हो गया। केस अदालत में गया। किन्तु जीत गोरों की हुई। अमरीका में रहते हुए आपको अनेक कष्ट अनुभव हुए। पद-पद पर अपमान सहना पड़ता था। इन सब बातों को देखकर आप पंजाब लौट आये। आपके पञ्जाब पहुंचने पर लोगों का संगठन खूब जोर से बढ़ने लगा। आपने बम बनाने का कार्य अपने ऊपर लेकर बम बनाने के कार्य में जुट गये। इसमें आप थे भी सिद्धहस्त। सारे पंजाब में १९१४ की गदर की तैयारी जोरों से हो रही थी। यह योजना विफल होने के कारण सारे देश में धर पकड़ होने लगी, किन्तु मथुरासिंह नहीं पकड़े जा सके। एक बार एक सरकारी गुप्तचर ने आपके पास सन्देश भेजा, "यदि आप सरकारी साक्षी बन जायें तो तुम्हें क्षमा के साथ कुछ पुरस्कार भी दिया जावेगा।" आपने इस पुरस्कार को ठुकरा दिया। एक बार एक गुप्तचर ऑफिसर आपसे मिलने आया। वह आपको अवसर पाकर गिरफ्तार करना चाहता था, किन्तु डाक्टर साहब की निर्भीकता के कारण अकेले यह सहन नहीं कर सका। उसने डाक्टर जी से कहा कि सरकार ने आपको क्षमा प्रदान की है। तथा पुरस्कार देने का वचन दिया है। मैं यही कहने के लिए आया हूं। आप यथार्थ रहस्य को समझ गये और उससे पिण्ड छुड़ाकर काबुल को प्रस्थान कर गये। किन्तु बीच में ही वजीरस्तान के स्टेशन पर उन्हें पकड़ लिया गया। पुलिस वालों को घूंस देकर यहां से भी बच निकले और कोहार को चल पड़े। ट्रेन में पुलिस थी, स्टेशनों पर पुलिस थी। सर्वत्र पुलिस का पहरा था। पुलिस को पहले ही से सब पता था। मार्ग में ट्रेन की तलाशी ली गई, किन्तु आप पकड़े न जा सके। वहां से कुछ दिन पश्चात् वे काबुल पहुँच गये। काबुल में थोड़े से समय में ही आप खूब प्रसिद्ध हो गये। आपकी योग्यता देखकर आपको काबुल का मेडिकल आफीसर नियुक्त कर दिया गया। काबुल में उस समय भारत की अस्थायी सरकार बनी हुई थी, जो जर्मनी में बनी कमेटी से सहयोग करती हुई भारत की स्वतन्त्रता के प्रयत्न में लगी हुई थी। डाक्टर साहब भी इस कार्य में जुट गये। उसके सम्बन्ध में आपको जर्मनी जाना पड़ा। आप कुछ दिनों के पश्चात् फिर काबुल लौट आये। ईराक तक तो आपको कई बार जाना पड़ा। इन देशों के भारतीय क्रान्तिकारियों ने रूस के जार्ज के पास एक पत्र भारत के विप्लव में सहायता देने के लिए भेजने का निश्चय किया। इसी उद्देश्य से कुछ व्यक्तियों के साथ ऊँटों पर आप चल पड़े। इधर एक नीच भारत सरकार को सब समाचार भेजता रहता था। भारत सरकार को जब पता चला तो उसने इनका पीछा किया। ताशकन्द में आप पहुंचते-पहुँचते गिरफ्तार हो गये। फारस लाकर आपसे सबकी पहचान कराई गई। आप पर मुकद्दमा चला। बहुत लोगों ने प्रयत्न किया कि आपको भारत सरकार को न सौंपा जाये। किन्तु अन्त में आप भारत सरकार को सौंप दिये गये। आप भारत लाये गये। अंग्रेजी अदालत में अभियोग, लाहौर षड्यन्त्र द्वितीय चलाकर फांसी का दण्ड दे दिया गया। आप फांसी का हुक्म सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। आपके छोटे भाई मुलाकात करने आये। आपने पूछा—"क्यों भाई! मेरे मरने की आपको चिन्ता व दु:ख तो नहीं?" बालक ने रो दिया। आपने उस से कहा—"यह समय आनन्द मनाने का है, क्या सिख लोग भी देश के लिए मरते समय रोया करते हैं? मुझे तो अत्यन्त आनन्द है। मैं भारतीय विप्लव को सफल बनाने के लिए जो मुझ से हो सका कर चुका हूँ। मैं बड़ी शान्ति से फांसी के तख्ते पर प्राण त्याग करूँगा।" सन् १९१७ ई० की २७ मार्च को

आपको फांसी होनी थी। उस दिन आप विशेष रूप से प्रसन्न थे। आपकी वीरता और उस समय की प्रसन्नता देखकर जेल के अधिकारी आश्चर्य में पड़ गये। आपको निश्चित समय पर फांसी दे दी गई। वह देश का होनहार सपूत अपने कुल को चार चान्द लगाकर देश पर हँसते-हँसते प्राणों की बलि चढ़ा गया।

भाई भागसिंह

भागसिंह का जन्म भिक्खोंविंड नामक ग्राम जिला लाहौर में सरदार नारायणसिंह जी के घर सन् १८७८ में हुवा था। आपकी माता जी का नाम मानकुँवारी था। आप २० वर्ष की आयु तक घर पर ही रहकर खेती-बाड़ी का कार्य करते रहे। इसी समय कुछ गुरुमुखी का ज्ञान भी कर लिया। यही आप की शिक्षा थी। इनका अधिकांश समय खेल-कूद तथा मस्ती में गुजरा। आप २० वर्ष की आयु में घर पर मन न लगने से फौज में भरती हो गये किन्तु आप स्वतन्त्र स्वभाव वाले, सेना के सख्त अनुशासन का कैसे पालन करते ? पांच वर्ष नौकरी में जैसे तैसे बिताये। इसी कारण आप साधारण सैनिक ही रहे। आप नौकरी छोड़कर घर आये और फिर चीन चले गये और वहां पुलिस में भरती हो गये। हांगकांग में ढाई वर्ष रहकर जमादार के साथ बिगड़ जाने के कारण आप शंघाई पहुँच गये। वहां म्युनिसिपैलिटी में भरती हो गये। वहां से भी कुछ दिन पश्चात् मन उकता गया, फिर आप कैनेडा चले गये वहां जाकर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। अमेरिका में गोरों का भारतीयों के साथ बुरा व्यवहार आपको बहुत खटकता था। कैनेडा में भाई बलवन्तसिंह आदि के साथ घनिष्ट प्रेम हो गया। वहां पर भारतीयों की अवस्था सुधारने के लिए उनका संगठन करके एक गुरुद्वारे की स्थापना थी। हिन्दुओं के मुर्दे जलाने के लिए थोड़ी-सी भूमि खरीदी थी। गोरे लोग हिन्दुओं को अपने मुर्दों को जलाने नहीं देते थे। विवश होकर मुर्दे गाढ़ने पड़ते थे। इसका सब हिन्दुओं को दुःख था, यह तो दूर हो गया। गोरों ने निश्चय किया कि भारतीयों की संख्या अमरीका (कैनेडा) में बढ़ने नहीं देनी चाहिए। अतः भारतीयों को हंडूरास नामक द्वीप में भेजने का यत्न करने लगे। एक नया कानून बनाया गया। जिसके अनुसार कोई नया भारतीय कैनेडा में नहीं उतर सकता था। इस कानून के विरुद्ध सबने मिलकर आवाज उठाई। इधर हंडूरास द्वीप को देखने के लिए दो अपने आदमी भेजे, इन्होंने लौटकर सूचना दी कि हंडूरास द्वीप बहुत ही बुरा है। वहाँ का जलवायु स्वास्थ्य के लिए हानिकर है अतः उस द्वीप में भारतीयों का जाना रुक गया। गोरे अपनी चाल न चलने के कारण बहुत बिगड़े। दूसरा कोई उपाय सोचने लगे। भाई भागसिंह आदि ने विचार कर निश्चय किया कि इस कानून के लिये कोई प्रभावशाली कार्य करना चाहिये। अतः आप लोग अपने परिवार वालों को लेने के लिए भारत को चल पड़े। भाई भागसिंह अपने दो मित्रों सहित भारत पहुंच गये। आपकी स्त्री मर चुकी थी अतः आपने पुनः एक पेशावरी स्त्री से विवाह कर लिया और उसे साथ लेकर अमेरिका चल पड़े। हाँगकाँग आकर पता चला कि अमेरिका जाने के लिए टिकट न मिल सकेगा। बहुत प्रयत्न करने पर आपको वहीं पर्याप्त समय ठहरना पड़ा। वहीं पर आपके पुत्र ने जन्म लिया जिसका नाम जोगेन्द्र रखा गया। बहुत यत्न के पश्चात् वङ्कोवर पहुँचने पर बहुत अड़चनों के पश्चात् आपको जहाज से उतरने दिया गया। गोरों के दुर्व्यवहार से आप पर यही प्रभाव पड़ा कि जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं होगा, तब तक हम दास भारतीयों को इसी प्रकार अपमान सहना पड़ेगा। भारतीयों में जागृत पैदा करने के लिए 'गदर' नामक पत्र अमेरिका में निकालना आरम्भ हुवा

इस कार्य में भागसिंह ने इस पत्र की उन्नति के लिए तन, मन, धन से खूब जी खोल कर सहायता की। सब साथियों के सहयोग से कैनेडा में इस पत्र की खूब खपत होने लगी। इमिग्रेशन वालों से पहले ही झगड़ा चल रहा था कि "कामा गाता मारू" जहाज कैनेडा आ पहुंचा। गोरों ने इसे घाट पर न उतरने दिया। भागसिंह ने एक नया घाट खरीद लिया। इस प्रकार वह जहाज इस घाट पर लगा। जब गोरों की यह चाल भी विफल हो गई तो उन्होंने जहाज के स्वामी को भड़काया, कि जहाज का किराया एक साथ सारा ले लें। बिचारे भारतीय बड़ी आपत्तियों में फँसे थे, उनके पास कुछ सामान ही था, रुपया नहीं। इस संकट को दूर करने के लिए रुपये इकट्ठे कर जहाज का चार्टर अपने नाम लिखा लिया। इसके पश्चात् भागसिंह जी अपने साथियों सहित इसी विषय पर विचार करने के लिए ब्रिटिश कोलम्बिया गये, वहां पर आप साथियों सहित गिरफ्तार करके जेल में डाल दिये गये, किन्तु पीछे छोड़ दिये गये। उस समय जहाज वापस जाने को तैयार था। बहुत से लोगों के पास खाने तक के लिये रुपया नहीं। था आपने आते ही उन लोगों की सहायतादि का पूरा प्रबन्ध किया। जहाज की सहायता आदि करने से गोरे आप से चिढ़ने लगे। गोरों ने कई बार आपको गोली से मारने की धमकी दी। किन्तु आप इन बन्दर घुड़कियों से डरने वाले न थे। यों ही हँस कर टाल देते थे और साहस पूर्वक अपना कार्य करते रहे। गोरों ने बेलासिंह नाम के नीच सिख को अपने साथ मिला लिया। उसे प्रलोभन देकर भागसिंह को खतम कर देने के लिए तैयार किया। एक दिन भागसिंह गुरुद्वारे में ग्रन्थ साहब का पाठ कर रहे थे। सब कार्य समाप्त कर वे मत्था टेकने के लिए झुके तो बेलासिंह ने गोली चलाई। गोली पीठ को पार करती हुई फेफड़ों में आ रुकी। घातक को पकड़ने का प्रयत्न करने में भाई वतनसिंह भी मारे गये। भागसिंह अस्पताल में लाये गये वहाँ पर औपरेशन हुवा। आप ऐसी अवस्था में भी होश में रहे, लोगों को उत्साह देते रहे। उस समय भी आप प्रसन्नवदन थे। जब आप का लड़का आपके सम्मुख लाया गया तो आपने कहा—"यह लड़का मेरा नहीं वरन् जाति का है, इसे दरबार में ले जावो मेरे पास क्यों लाये हो।" अन्त समय आपने कहा—"मेरी इच्छा तो यह थी कि स्वतन्त्रता की लड़ाई में आमने-सामने दो चार हाथ करके प्राण देता किन्तु ईश्वर को यह स्वीकार न था। इसमें मेरा क्या दोष है ? खैर ईश्वर की यही इच्छा है।" ४४ वर्ष की आयु में ही वे स्वर्ग सिधार गये। इस प्रकार एक वीरात्मा की देशद्रोही द्वारा मृत्यु हो गई। वह धूर्त सरकार का वफादार नौकर होने के कारण छोड़ दिया गया। भारत राष्ट्र के अपमान को सहकर अपने देशवासियों की सेवा करते हुवे इस बीर ने प्राण न्यौछावर कर दिये।

भाई वतनसिंह

आपने पटियाला राज्य में कुम्बवाल नामक ग्राम में भाई भगेलसिंह के घर जन्म लिया। आपको बचपन से गाय भैंस पालने का बड़ा शौक था। इसी कारण कैनेडा में लोग इन्हें गैया वाला वतनसिंह कहते थे। २२-२३ वर्ष की आयु तक घर पर रहकर फौज में भरती हो गये। आपके जीवन का अधिक समय वर्मा में बीता। फिर आप नौकरी छोड़कर घर आ गये। घर पर एक वर्ष रहे। मन न लगा, फिर हाँगकांग गले गये। यहां पांच वर्ष पुलिस में गार्ड का कार्य करके कैनेडा पहुंच गये किन्तु वहां आप की जान पहचान का कोई व्यक्ति न था। फिर आप वैंकूवर पहुँच कर गुरुद्वारे में पहुंच गये। कुछ दिन ठहरकर एक लकड़ी के कारखाने में अन्य सिक्खों के साथ कार्य करने लगे। भाई भागसिंह भी इसी कारखाने में कार्य करते थे। उनके सत्संग से प्रभावित होकर आप प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक गुरुद्वारे में जाने लगे।

तथा वहां सब सेवा कार्य भी करने लगे। आपको इसी कारण गुरुद्वारा कमेटी का मेम्बर बना लिया गया। गोरे लोगों की भारतीयों से अनबन रहती थी उन्होंने भारतीय नेताओं को समाप्त करने की योजना बनाई और एक नीच सिख बेलासिंह को अपने साथ मिला लिया। एक दिन गुरुद्वारे में जोरों से दीवान हो रहा था। सिख गुरुओं की बलिदान कहानी सुनकर सब में उत्साह और जीवन का संचार हो रहा था। दीवान समाप्त होते ही गोलियां चलनी आरम्भ हुई। जब लोगों ने देखा कि बेलासिंह नीच पिस्तौल ताने खड़ा है। उधर वीर भागसिंह इसकी गोली से घायल हुए पड़े हैं। वह नीच वतनसिंह को खोज कर मारना चाहता था किन्तु वतनसिंह अपने प्राणों की चिन्ता छोड़ हत्यारे को पकड़ने के लिए ललकार कर झपटा। उस नीच ने वतनसिंह पर गोली चलादी। गोली सीने पर लगकर पार हो गई। वीर का जोश शेर के समान चोट खाकर ही जागता है। वतनसिंह उस नीच की ओर लपके, दूसरी गोली लगी किन्तु वतनसिंह बढ़ते ही चले गये। अन्त को सात गोलियां लगने के पीछे अपने घातक की गरदन जा पकड़ी। किन्तु अधिक खून निकलने के कारण शक्ति का ह्रास हो गया था। नीच बेलासिंह छुड़ाकर भाग गया। भाई वतनसिंह सर्वदार्थ गम्भीर निन्द्रा में सो गये। गुरुद्वारे में ही दो वीर शहीद हो गये। भाई वतनसिंह ने अपने एक देशभक्त भाई के लिए प्राण दिये यही इनका गौरव है। संसार में अपने लिये तो कौन नहीं मरता ? किन्तु देश, जाति, धर्म, के लिए जो मरता है वह अमर हो जाता है।

"जिन्दा है जो मर चुका इन्सान के लिए।
मरना भला न उसका जो अपने लिए जिए॥"

इस कवि के कथनानुसार भाई वतनसिंह की मृत्यु उसे अमर कर गई।

बलवन्तसिंह

इस वीर का जन्म गाँव खुदपुर जिला जालन्धर में बुद्धसिंह जी के यहां १८८२ में हुवा। इनका परिवार बड़ा धनाढ्य था। सभी लोग आदर की दृष्टि से देखते थे। बलवन्तसिंह मिडिल पास करने से पहले ही पढ़ाई छोड़कर सेना में भरती हो गये। वहां सन्त कर्मसिंह की संगति से आप पर अच्छा प्रभाव पड़ा। वे बड़े ईशभक्त थे। दस वर्ष नौकरी करके उसे छोड़कर बिदेश जाने का विचार किया। १६०५ में कैनेडा पहुंच गये। वहां भागसिंह के साथ रहते थे, उनके दाहिने हाथ समझे जाते थे। आप सबने मिलकर गुरुद्वारा बनाया। यहाँ विदेश में संगठन का स्थान था। इस प्रकार अनेक स्थानों में गुरुद्वारे बनवाये। गोरों के अत्याचार का प्रतिशोध करने के लिए संगठनार्थ कार्य किया। मुर्दों को जलाने के लिए इन्होंने भूमि खरीदकर व्यवस्था की। आप ईश्वर के बड़े भक्त थे। ईश्वर भक्ति और देशभक्ति दोनों का ही आप प्रचार करते थे। आपको ईश्वर भक्त होने के कारण ग्रन्थी बनाया गया। आप बहुत आग्रह करने पर ग्रन्थी बने। भागसिंह के साथ ही सुन्दरसिंह को लेकर आप अपने परिवार को अमरीका में लाने के लिए भारत आये और परिवार को लेकर फिर कैनेडा को चले गये। बड़ी कठिनाई से वेंक्कोवर पहुंचे। वहां इन्हें तो उतरने की आज्ञा मिल गई किन्तु परिवार वालों को उतरने की आज्ञा नहीं मिली। अन्त में ओटावा से आज्ञा न आने तक जमानत पर परिवार वाले उतरे किन्तु परिवार वालों को कैनेडा में रहने की आज्ञा न मिली। इमिग्रेशन विभाग के कर्मचारी परिवार वालों को लेने के लिये आये। इस पर सिक्ख झगड़ने को तैयार हो गये। अतः गोरों को विवश हो लौट जाना पड़ा। कैनेडा में जो अत्याचार भारतीयों पर होते थे उन्हें सुनाने और अपने अधिकारों की मांग करने के लिये एक डेपुटेशन भेजा गया। उस

डेपुटेशन ने दो वर्ष तक भारत से इंगलैंड तक का चक्कर लगाया किन्तु उस डेपूटेशन की किसी ने न सुनी और सर ओडायर ने तो उसे अमेरिका की गदर पार्टी का समझा। डैपुटेशन का कोई परिणाम नहीं हुवा। सिखों ने अपनी सब कष्ट कहानी सब देशों के सन्मुख रखी। वैङ्कोवर लौटने पर बलवन्तसिंह ने एक बड़ा जोशीला भाषण दिया। वह उनका ऐतिहासिक भाषण था। उसमें उन्होंने बताया कि हमारी इस विवशता का एकमात्र कारण हमारी पराधीनता है। हम स्वतन्त्र होकर ही इस अपमान से मुक्त हो सकते हैं। "कामा गाता मारू" जहाज के पहुँचने पर बलवन्तसिंह भागसिंह के साथ मिलकर अमेरिका सरकार से लड़े। इससे ये गोरों की आंखों में कांटे के समान खटकने लगे। कैनेडा वालों ने जितने दिन जहाज वहां ठहरा था उतने दिन ऐसी नीचता का व्यवहार किया जिसका वर्णन करना कठिन है। गोरों की नीचता के कारण बलवन्तसिंह के दो साथी बेलासिंह द्वारा गोली से मारे गये। बेलासिंह को कोई दण्ड नहीं दिया गया। गोरों का अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुंचा हुवा था। सन् १९१४ में यूरोपीय महा-युद्ध प्रारम्भ हो गया। उस समय बलवन्तसिंह भारत लौटने के लिए चल पड़ा किन्तु संघाई पहुँच कर आप वहीं रुक गये। वहाँ से आप बैङ्काक आये। वहां पर विद्रोह का पूर्ण प्रयत्न हो रहा था। आपने उसमें भाग लिया किन्तु आप उस समय रोगी हो गये। अतः कार्य छोड़कर अस्पताल पहुंचे। वहाँ पर फोड़े का ओपरेशन हुवा। अभी आप अच्छे नहीं हुए थे कि श्याम देश की पुलिस ने आपको गिरफ्तार कर लिया। आप जमानत पर भी नहीं छूट सके, आपको भारत सरकार को सौंप दिया गया। बलवन्तसिंह को सिंगापुर लाया गया। आपको षड्यन्त्र का भेद खोलने के लिए बहुत प्रलोभन दिये गये। लोभ से कार्य चलता न देखकर भय भी दिखाया गया किन्तु आप जैसे वीर कब पिघलने वाले थे। फिर आपको लाहौर षड्यन्त्र (द्वितीय) के मुकद्दमे में सम्मिलित करके मृत्यु दण्ड दे दिया गया। २४ दिन तक मुकदमे का ढोंग किया गया। आपको कालकोठरी में बन्द कर दिया गया। किसी कैदी ने शरारत की थोड़ी-सी अफीम आपकी पगड़ी में बांध दी। जेल अधिकारियों ने आप पर तलाशी में अफीम मिलने पर आत्म-घात करने का अभियोग लगाया। किन्तु फिर भेद खुल गया और अपराधी का पता चल गया। उसे सजा मिली। उस समय बलवन्तसिंह ने जेलर से कहा—"मृत्यु सामने खड़ी है। उसके आलिंगन के लिए मैं तैयार हो चुका हूं। आत्म हत्या कर मैं मृत्यु सुन्दरी को कुरूपा नहीं बनाऊँगा। विद्रोह के अपराध में मृत्युदण्ड पाने में मुझे गर्व है। फाँसी के तख्ते पर भी वीरता पूर्वक प्राण दूँगा।" बलवन्तसिंह फांसी के दिन प्रातः काल उठे, ईश्वर वन्दना की, भारतमाता को अन्तिम नमस्कार किया, स्वतन्त्रता का गान गाया और हँसते-हँसते फांसी के तख्ते पर झूल गये और अमर हो गये। इनको चुपचाप फाँसी दे दी गई। इनकी धर्म पत्नी इनसे मिलने के लिए आई तो जेल अधिकारियों ने बताया कि उनको तो कल प्रातः फाँसी हो गई। उनकी धर्मपत्नी कलेजा थाम कर रह गई। बेचारी पर वज्रपात हो गया। वह अन्तिम दर्शन भी न कर सकी। वीर बलवन्तसिंह देश की स्वतन्त्रता को ही ईश्वर की सच्ची भक्ति समझते थे। इसी के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर अपना कर्त्तव्य पूरा कर गये।

तरुणवीर ब्रह्मचारी दिलीपसिंह

वीर दिलीपसिंह का जन्म घमियां कला जि० होश्यारपुर में हुआ था। इसके पिता का नाम श्री लालसिंह था। कुछ बड़ा होने पर स्कूल में पढ़ने लगा। बालक होनहार था, उसकी कुशलता का ज्ञान थोड़े ही दिनों में हो गया। अपने सद्गुणों के कारण वह शीघ्र ही सर्वप्रिय बन गया। वह सबसे इच्छा-नुसार कार्य करवाने में सिद्ध हस्त था। उसकी कार्य कुशलता का ज्ञान सबको शीघ्र ही हो गया।" होन-

हार बिरवान के होती चीकने पात" लोकोक्ति के अनुसार वह छोटी सी आयु में ही वीर नेताओं के समान प्रतीत होता था।

सन् १९२२ की बात है, बालक दलीपसिंह के बाल्यावस्था के खेल छूटने भी न पाए थे कि उसके कोमल हृदय पर एक गहरी चोट लगी। नानकाना साहब की दुर्घटना तथा सिक्खों पर किए गए अत्याचारों ने उस बालक के हृदय को एक दम दुःखित तथा विचलित कर दिया। १९२३ ई० में लाड़ प्यार से पाले गए उस सुन्दर होनहार बालक दलीप ने घर-बार पर लात मार कर क्रान्तिकारी दल में प्रवेश किया। इसके पश्चात् आपने क्या-क्या किया उसके विषय में अदालत में निर्णय सुनाते समय आपके सम्बन्ध में कहे गए जज के शब्द ही आपकी प्रशंसा के लिए पर्याप्त हैं। आप के अदालत के बयान तथा आपकी सुन्दर तेजोमय आकृति प्रकट करती थी कि आप एक होनहार पवित्र ब्रह्मचारी, उच्च चरित्र के सदाचारी युवक थे। एक दिन संतासिंह कंसानकन्दी नामक स्थान पर कुछ पर्चे बांटने जा रहे थे कि एकाएक पुलिस ने घेरा डाल लिया। १२ अक्टूबर १९२३ई० केदिनतरुण वीर ब्रह्मचारी दलीपसिंह जंजीरों से जकड़ कर मुलतान जेल लाए गए। पुलिस ने इन्हें बालक समझ कर डरा धमका कर कुछ बातें जाननी चाहीं किन्तु जब उनके डराने का यत्न विफल हो गया तो निराश हो क्रोध में आकर अत्याचारों का बाजार गरम हुआ। मार पर मार पड़ने लगी। कभी-कभी बीच-बीच में लोभ भी दिया गया, किन्तु सब शस्त्र इस वीर ने कुंठित कर दिए। मौन धारण करके धैर्य से सब मार-पीट और अत्याचार सहन कर लिए। पुलिस को निराश और हताश होना पड़ा, पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा। दलीपसिंह सुशील तथा सरल प्रकृति के थे। इनकी आकृति सदाचार के कारण अत्यन्त सुन्दर आकर्षक और भव्य थी। मुखमण्डल ब्रह्मचर्य के तेज से चमक रहा था। आपकी भोली सुन्दर और तेजोमय आकृति, बाल्यावस्था, सत्यता, सदाचार और सरलता पर सेशन जज अंग्रेज मि० टैप मन्त्र-मुग्ध था। वह यह नहीं चाहता था कि इस होनहार युवक को मृत्यु दण्ड दिया जावे किन्तु सभी गवाहों की गवाही आपके विरुद्ध सुनकर जज बहुत झुंझलाते थे। सब प्रकार से यही चेष्टा करते थे कि उन्हें दलीपसिंह के विरुद्ध कुछ न लिखना पड़े। कई दिन वे खींचा तानी करते रहे। तब एक दिन दलीपसिंह हाथ जोड़ कर जज महोदय के सामने जाकर खड़े हो गये और प्रार्थना करी कि इस कृपा दृष्टि के लिए मैं बहुत धन्यवाद देता हूं। किन्तु कृपा करके मेरा वक्तव्य पहले लिख लेवें। मैंने यह सभी कार्य किये हैं जो गवाहों ने गवाही दी है और यदि आज छूट जाऊँ तो फिर यही सब कार्य करूँगा। आप मुझे जीवित रखने के लिए क्यों लालायित हो रहे हैं? मैं तो फांसी पर लटक कर अपने प्राण देना चाहता हूं। उसका कारण यह है कि मुझे ईश्वर की कृपा से मानव देह जैसा दुर्लभ पदार्थ मिला है। इसे मैंने अभी तक किसी प्रकार भी अपवित्र नहीं किया है और इच्छा है कि आज इसी भांति इस पवित्र देह को माता के चरणों में भेंट कर दूं। कौन कह सकता है कि कुछ दिन और जीवित रहूँ तो यह पवित्रता स्थिर रह सकेगी वा नहीं? इसके पश्चात् इस बलिदान का सारा महत्त्व और सौन्दर्य ही जाता रहेगा।

जज विस्मित होकर उसके मुख की ओर ताकने लगा। वह मन में विचारने लगा—"यह कैसा विचित्र बालक है? सारा संसार तो मृत्यु से बचने के लिए लाखों प्रयत्न करता है किन्तु यह उस कालाग्नि में निर्भयता से कूदना चाहता है। अभी यह बालक है संसार की गति को नहीं जानता। बहकाने से ऐसे कार्यों में रत हो गया है।" जज ने फिर कहा—"दलीप मैं तुम्हें फिर एक अवसर देता हूँ। अपने

वक्तव्य पर पुनः विचार कर लो। सम्भव है तुमने किसी आवेश में आकर या अज्ञान के कारण ऐसा किया है। व्यर्थ मरना अच्छा नहीं।" किन्तु दलीपसिंह उसी वक्तव्य पर डटा रहा। अपने निश्चय को नहीं बदला। फाँसी का दण्ड सुना दिया गया। जज विवश और दुःखी था। फाँसी के दिन हँसते-हँसते ईश्वर का स्मरण करते हुए वह पवित्र वीर फांसी के तख्ते पर झूलकर अमर हो गया। इस नपुंसक युग में वह तरुण ब्रह्मचारी अपने पवित्र दिव्य जीवन की ज्योति दिखाकर अपने आदर्श साहस, अदम्य उत्साह, उच्च लग्न और अपूर्व कार्य कुशलता की १७ वर्ष की छोटी सी अवस्था में अमिट छाप छोड़कर संसार से चलता बना। भारत माता आप समान वीर सदाचारी सुपुत्रों के पवित्र बलिदान से ही दासता की बेड़ियों से मुक्त हुई है। भारत के होनहार बालक अपने जीवन को आपका अनुकरण कर सफल बनायें। यही इच्छा है।

बन्तासिंह धामियाँ

श्री बन्तासिंह धामियां कला के निवासी थे। आपका जन्म सन् १९१० ई० में हुआ था। ये बाल्य-काल से ही नटखट थे, खेलने-कूदने में सबसे आगे रहते थे इनके उत्पात से मोहल्ले वाले सभी तंग रहते थे। पाँच-चार वर्ष अपने ग्राम में पढ़ने गये किन्तु पढ़ने में रुचि न होने से कुछ ऐसे ही पढ़े। कुछ बड़े होकर सेना में भरती हो गये और तीन वर्ष ५५ नं० पलटन में कार्य करते रहे। नौकरी में भी मन नहीं लगा। इसे छोड़ कर घर पर आकर रहने लगे। व्यायाम करना, अच्छा खाना, मस्त रहना, यही आपका कार्य था। शरीर बहुत बलवान् था। दौड़ने में अत्यन्त दक्ष थे। शरीर मोटा न होने पर भी अपार शक्ति, साहस और वीरता से भरा हुआ था। आप बब्बर अकाली दल में सम्मिलित होकर तत्परता से कार्य करने लगे। आपकी यह धारणा थी कि पुराने पापों का प्रायश्चित केवल निज प्रणोत्सर्ग करने से ही हो सकता है। भारत यदि स्वतन्त्र न हुआ तो जीना व्यर्थ है और ऐसे जीवन पर धिक्कार है। इनका रक्त जोश के कारण खौलता था। शस्त्र के लिए धन चाहिये था। अतः इनके दल ने धन के लिए डाके डाले। बन्तासिंह ने इनमें पूरा भाग लिया १९२३ की ३ मार्च को इनके दल ने जमलेर नामक स्टेशन मास्टर के घर पर डाका डाला। उस समय इनके दल के एक पैशाचिक प्रकृति के व्यक्ति ने एक स्त्री को देख कर उस पर हाथ डालना चाहा। बन्तासिंह की दृष्टि उस पर पड़ी। आपने कहा—"माता अपने गहने आप स्वयं उतार कर दे देवें, हम आप को नहीं छूयेंगे। उस स्त्री ने रोकर उस नीच की नीचता की कथा सुनाई और और ताने के ढ़ंग पर कहा—"ऐसा ढ़ोंग क्यों करते हो।" पहले तो बन्तासिंह समझा नहीं, किन्तु उसने सारे काण्ड की जांच की तो क्रोध से भड़ककर आग बबूला हो गया और गंडासा लेकर उस नीच को समाप्त करने के लिए चला। एक साथी ने आपका हाथ पकड़ लिया, बहुत प्रार्थना करने पर आप शान्त हुए। आपने कहा—"कि ऐसे नीच व्यक्ति ऐसे पवित्र आन्दोलन को बदनाम कर देंगे।" इस घटना के पश्चात् बन्तासिंह और भी तत्परता से कार्य करते रहे। कई एक देश घातकों को मृत्युदण्ड दिया। १२ मार्च को एक पुलिस के पिट्ठू नम्बरदार बूटासिंह को जो राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिये सरकार की विशेष सहायता करता था उसका घर घेरकर यमलोक को पहुँचा दिया। पुलिस आपको गिरफ्तार करने के लिए यत्नशील थी। आपकी गिरफ्तार कराने के लिए भारी पुरुषकार की घोषणा कर रखी थी। किन्तु आपको पकड़ना कोई सरल कार्य नहीं था। उस समय बब्बर अकालियों के नाम से पुलिस वाले बहुत डरते थे। अपने प्राणों को हथेली पर रखे बिना बन्तासिंह को कौन पकड़

सकता था। एक दिन घुड़सवार पुलिस से जंगल में भेंट होने पर आपने अकेले ही उन्हें युद्ध के लिए ललकारा। किन्तु वे डर कर यह कहकर चलते बने कि—"हम न तो आपको गिरफ्तार करना चाहते हैं न मारना ही चाहते हैं, क्योंकि आप लोग न हों तो भला सरकार हमारा इतना आदर क्यों करे।" वे इतने वीर थे कि एक दिन अकेले ही छावनी में घुसकर रिसाले के पहरेदार की राईफल और घोड़ा छीन कर चलते बने। छावनी वाले भी देखते ही रह गये। इसी प्रकार आप पुलिस के फन्दों से बचते रहे और बहुत दिन तक पुलिस के साथ आंख मिचौनी खेलते रहे। अन्त में १२ दिसम्बर सन् १९२३ को आप पुलिस के घेरे में आ गये। एक धूर्त जो इनका साथी बना हुआ था, जगतसिंह नाम का था, वह बन्तासिंह ज्वालासिंह और बर्यामसिंह को अपने श्याम चुरासी गाँव जो जालन्धर शे १० वा ११ मील है टिकाने के ले गया। उन्हें घर पर टिकाकर पुलिस को खबर दे दी। थोड़ी देर में सशस्त्र पुलिस और सेना के सिपाहियों ने गांव घेर लिया। जब इन्हें घिर जाने का पता लगा कि हम बुरी तरह से घिर गये हैं तो वे एक चौबारे पर जा चढ़े। वह लड़ने की दृष्टि से अच्छा स्थान था। वहीं मोर्चा ले लिया। दोनों ओर से खूब गोलियां चलीं और कई घंटों तक खूब गोलियों की वर्षा होती रही। सैनिक पुलिस वालों की गोलियां व्यर्थ जा रहीं थीं। मशीनगन और रायफलें इन वीरों का कुछ न बिगाड़ सकीं। सामने के मकान की छत पर भी मशीनगन लगाकर सैनिकों ने गोलियां चलाई तब भी इनका कुछ नहीं बिगड़ा। अफसरों ने फिर एक नीच उपाय का सहारा लिया जिस मकान में ये तीनों वीर थे उस पर पम्प से तेल छिड़क कर आग दे दी। मकान आग से धकधक जलने लगा। अब तीनों ने जलते हुए मकान से निकल कर भागने का विचार किया। ज्वालासिंह बुरी तरह से घायल होकर गिर पड़ा। उसमें उठने की सर्वथा शक्ति नही थी। बन्तासिंह मकान से निकल कर भागने का प्रयत्न करते हुए गोली लगने से बुरी तरह से जख्मी होकर गिर पड़े और गोली का उत्तर देने में भी असमर्थ हो गये, बन्तासिंह ने बर्यामसिंह से वेदना भरे स्वर में कहा "बर्यामसिंह निकल भागो। बच सको तो बच जावो, यदि बचे रहोगे तो किसीन किस दिन इनसे हमारा बदला लेना। मेरी एक प्रार्थना है कि चलते हुए एक गोली रिवाल्वर से मेरे शिर पर वा छाती पर मार दो। मेरी इच्छा जीते जी शत्रुओं के हाथ में आने की नहीं है।" बर्यामसिंह ने रिवाल्वर भरकर बन्तासिंह के हाथों में देकर रुके हुए स्वर से कहा—"यह लो रिवाल्वर, जब आवश्यक समझो अपने हाथ से गोली मार लेना।" मैं अपने सहोदर से प्यारे साथी पर गोली चलाने में असमर्थ हूं।" बर्यामसिंह ने बन्तासिंह को ऐसे भयङ्कर समय में जब दनादन गोलियां बरस रही थीं अपनी छाती से लगाया और अन्तिम बिदाई लेकर भभकती हुई अग्नि में कूद पड़ा। वह वीर घर से निकल सिपाहियों पर गोली चलाता हुआ बचकर निकल गया। बन्तासिंह, ज्वालासिंह कैसे शहीद हुए यह बात नहीं कही जा सकती। मकान धांय-धांय जल रहा था। गोली भी बरबर चलती रही। उनके प्राण गोली से गये या आग से जलकर, इस बात का पता नहीं चला। इन दोनों ने वीरगति प्राप्त की। वे शत्रु से लड़ते-लड़ते अमर हो गए। इस वीर का लोहा शत्रु भी मानते हैं।

बर्यामसिंह धुग्गा

इस वीर का जन्म धुग्गा नाम के गांव जि० होश्यारपुर में हुआ। आप बड़े सुदृढ़ और शक्तिशाली व्यक्ति थे। शरीर सुगठित और बलवान् था। आपको विशेष शिक्षा नहीं प्राप्त हुई। सैनिक जीवन से आपको प्रेम था। बड़े होकर सेना में भरती हो गये। सेना में भी आपकी वीरता प्रसिद्ध थी। आप बहुत

समय तक सेना में ही कार्य करते रहे। आपसे अफसर बड़ा प्रेम करते थे। आपके घर वालों से एक व्यक्ति की शत्रुता थी। उसने इसके परिवार के व्यक्तियों को नष्ट कर डाला था। उस समय आप बालक थे। बालक होने स ये उस समय बदला न ले सके। किन्तु बदला लेने की इच्छा ने अब प्रबल उमंग का रूप धारण किया और उस व्यग्रता को आप दबा न सके। आप सांयकाल की हाजरी देकर चल दिए। बीस मील दूरी पर पहुँच शत्रु को कत्ल कर अपना नाम घोषित कर प्रातःकाल हाजरी से पहले ही पलटन में पहुँच गये। इस लिये आपके विरुद्ध कार्यवाही न हो सकी। फौज से नाम कटाकर घर पर आकर रहने लगे।

पीछे कुसंगति के कारण आप डाकू बन गये। दोआबे में आप प्रसिद्ध डकैत थे। आपकी धाक चारों ओर फैली हुई थी। पञ्जाब में क्रान्तिकारी दक बनने पर आप इसमें सम्मिलित हो गये। बन्तासिंह के साथ मिलकर सब कार्यों में योग देते रहे। आप में बन्तासिंह की संगति से देशभति के भावों की जागृति हुई। आपकी शिक्षा तो नाम मात्र की थी किन्तु आप भावुक थे और बुद्धि तीव्र थी। इसलिए देश भक्ति का गहरा रंग शीघ्र ही चढ़ गया। बन्तासिंह के कारण आपके जीवन में आमूलचूक परिवर्तन हुआ १२ दिसम्बर १९२३ ई० को बन्तासिंह के साथ मुण्डेर ग्राम में एक साथी के विश्वासघात के कारण घिर गए। उस समय पर बन्तासिंह के विषय में लिखते हुए लिखा जा चुका है। मकान में आग लगने पर आप साहस करके घेरे में से भाग निकले। उस समय जिन सैनिकों ने आपका पीछा किया उन में से कई आपकी गोली से मारे गये। शेष सिपाही डर के मारे उलटे ही लौट कर चले गये। आप बचकर लायलपुर जिले में चले गये। उधर एक सम्बन्धी के घर पर ठहरे हुए थे। उसी सम्बन्धी ने बाल्यकाल से आपका पालन-पोषण किया था। किन्तु लोभ और स्वार्थ मनुष्य की बुद्धि को नष्ट कर देता है। उस सम्बन्धी ने हथियार गांव के खेतों में रखवा दिए। बर्यामसिंह भोजन करने के पश्चात् शस्त्र लेने के लिए जंगल शस्त्रों वाले स्थान की ओर चल दिया। वहां जब पहुँचा तो उस स्थान पर सेना आ चुकी थी। पुलिस सुपरिण्टेण्डेंट मि० डी० गेल आपको जीवित पकड़ना चाहते थे। आपके चारों तरफ सेना का घेरा था। यह देखकर आप सब ताड़ गये। आप एक स्थान पर खड़े विचार ही रहे थे कि क्या करूँ? इतने में मि० डी० गेल ने जोर से कहा—"बर्यामसिंह आत्मसमर्पण कर दो।" बर्यामसिंह ने कहा यदि कुछ साहस है तो एक बार शस्त्र ले लेने दो, फिर दो-दो हाथ ही हो जावें। मि० डी० गेल ने अवसर पाकर पीछे से पकड़ लिया। बर्यामसिंह ने अपने हाथ छुड़ाकर अपनी कृपाण से उसके भुजाओं को बुरी तरह घायल करके उसे भूमि पर गिरा दिया। उसे जीवित पकड़ना चाहते थे किन्तु उसके हाथ में कृपाण देखकर किसी को उसके पास जाने का भी साहस नहीं हुआ। दो-चार सिपाही पकड़ने के लिए आगे बढ़े घायल होकर पीछे हटना पड़ा। जब वह किसी प्रकार वश में आता दिखाई न दिया तो मि० डी० गेल की आज्ञा से चारों ओर से निहत्थे बर्यामसिंह पर गोलियों की वर्षा की गई। इस प्रकार वह वीर छाती पर गोलियां खाकर वीरगति को प्राप्त हुआ। उसका शव लायलपुर ले जाया गया। सहस्रों नर-नार उसके दर्शनार्थ आये। उसकी वीरता की प्रशंसा आबालवृद्ध वनिता मुक्त कंठ से कर रहे थे। ऐसे ही वीरों की वीरता से राष्ट्र जीवित रहते हैं। भारत सन्तान में वीरता का सञ्चार करे तभी देश का उत्थान सम्भव है।

भाई मेवासिंह

श्री मेवासिंह का जन्म लोपो के ग्राम जि० अमृतसर में हुआ था। आप भी कैनेडा (अमरीका) में नौकरी के लिए पहुंच गए। वहाँ पर गदर पार्टी में आने जाने से आप पर भी देशभक्ति का रंग चढ़ गया। भाई भागसिंह बलवन्तसिंह आदि की संगति से गुरुद्वारे में आने जाते लगे। उन दिनों विप्लव यज्ञ की तैयारी हो रही थी। स्थान-स्थान पर भारतीय युवक रायफल और रिवालवर चलाने का अभ्यास किया करते थे। मेवासिंह ने भी १००) की गोलियाँ इस अभ्यास के लिए फूँक डाली थीं। नीच बेलासिंह ने वतनसिंह और भागसिंह को गोलियां मार कर छुटकर भाग गया था। वह तो गोरों से मिला हुआ था। अतः पकड़ा जाने पर भी अदालत से साफ छूट गया, इन्हीं दिनों मुकदमे इमिग्रेशन विभाग के मुख्य अधिकारी मिस्टर हांप किसन भी साक्षी देने आये। अचानक गोली चली और मिस्टर हांप किसन सदा के लिए सो गये। निशाना अचूक बैठा। मेवासिंह के १००) सफल हो गये। ज्ज लोग कुर्सियों के नीचे जा छिपे और वकील लोग गिरते पड़ते बाहर की ओर भाग चले। हाँप किसन को गिरता देखकर आपने अपना रिवाल्वर जज की मेज पर रख कर उच्च स्वर में कहा, "मैं भागना नहीं चाहता। आप लोग शान्त हों। मैं पागल नहीं हूँ। मैं किसी और पर गोली नहीं चलाऊँगा। मेरा कार्य सफल हो गया।" इसके पश्चात् आपने पुलिस को पुकार कर चुपचाप आत्मसमर्पण कर दिया। यदि आप चाहते तो इस उथल-पुथल में भाग सकते थे, किन्तु उस वीर की इच्छा और जीने की नहीं थी। वह तो सात समुद्र पार कैनेडा की भूमि में अपने आत्सबलिदान से यही दिखलाना चाहता था कि पतित. पद दलित पराधीन देश भारत में प्राणों का कोई अंश अब भी शेष है। गिरफ्तारी के पश्चात् आप से मुकदमे में हांप किसन के मारने का कारण पूछा तो आपने पूछा—"क्या हापकिसन सचमुच मर गया ?" उत्तर में "हां" सुन कर आप बड़े जोर से प्रसन्न होकर हंस पड़े। आपने कहा—"आज मुझे सचमुच वास्तविक आनन्द हुआ है। पूछने पर आपने कहा—"हांप किसन को मैंने जान बूझकर मारा है।" यह देश और धर्म के अपमान का बदला लिया है। और दो हमारे अमूल्य रत्न भागसिंह और वतनसिंह की हत्या का बदला है। मैं तो मिस्टर रीड (हांप किसन के दूसरे साथी) को भी मारने के विचार से आया था। परन्तु वह यहाँ न होने के कारण बच गया। हांप किसन की पत्नी ने अपने पति की हत्या के उपर्युक्त समाचार को सुनकर कहा—"जिस व्यक्ति ने मेरे पति को भरी कचहरी में गोली से मार कर धैर्य के साथ आत्मसमर्पण किया है उस वीर के मैं दर्शन करना चाहती हूं।" इस घटना के पश्चात् कैनेडा में भारतीयों को किसी ने घृणित शब्दों से सम्बोधित नहीं किया। फांसी के दिन इस तपस्वी के अन्तिम दर्शन के लिए कैनेडा निवासी भारतीयों की भीड़ का समुद्र टूट पड़ा। वीर के शव का जलूस बड़े ठाठ-बाट से निकाला गया। उसी समय वर्षा भी होने लगी। किन्तु जलूस कम न हुआ। यहां तक कि अंग्रेज महिलाएँ तक भी उसके साथ चलती ही रहीं। भाई मेवासिंह के अन्त्येष्टि संस्कार के पश्चात् एक सप्ताह तक गुरुद्वारे में उत्सव मनाया गया। इस वीर के बलिदान से कैनेडा के भारतीयों में जीवन आ गया।

गन्धासिंह

गन्धासिंह का जन्म पञ्जाब में हुआ था। आप अमरीका की गदर पार्टी के एक प्रमुख नेता थे। जब पार्टी की ओर से निश्चय किया गया कि भारत में विप्लव की तैयारी के लिए प्रचारार्थ अमरीका से पार्टी के सदस्य जायें तो आप बजबज की दुर्घटना से पूर्व ही भारत आ गये थे। जब आपने देखा कि

विदेश से आने वाले प्रवासी भारतीयों को कलकत्ते में पकड़कर नजरबन्द किया जाता है तो आप अपने एक मित्र के साथ हाँगकांग गये। वहाँ आपने कलकत्ते आने वाले भारतीय यात्रियों के टिकट बदलवाकर उनको बम्बई और मद्रास के टिकट दिलवाये। हांगकांग से लौटकर आप फिर भारत में विप्लव का प्रचार करने लगे। इसी समय २७ नवम्बर को घलखुर्द ग्राम जि० फिरोजपुर के पास से जाते हुए पुलिस ने इनके दल को घेर लिया। उसी समय तक पन्द्रह व्यक्तियों के ऐसे ही दल ने फिरोजपुर जिले के मोगा तहसील के खजाने को लूटने की योजना की थी। पुलिस को इसकी सूचना मिल गई थी। अतः वह योजना पूर्ण नहीं हो सकी और घलखुर्द में इसी कारण पुलिस से इनके दल की टक्कर हो गई। पुलिस थानेदार ने आपके एक साथी को गालियां देते हुए एक तमाचा मार दिया, इस पर युवक की आँखों में आँसू आ गए। गन्धासिंह को इस पर इतना क्रोध आया कि उन्होंने उसी क्षण थानेदार को गोली से मार दिया। थानेदार के साथ एक सरकारी तहसील का व्यक्ति भी मारा गया। यह लोग तो पुलिस को छककर चलते बने किन्तु दूसरे दल से टक्कर हुई।

पं० काशीराम और रहमत अलीशाह

यह दल पं० काशीराम का था। ये हरयाणा प्रान्त के अम्बाला जिले के रहने वाले थे। वहीं के रहमत अलीशाह भी थे। पंडित काशीराम जी अमरीका में एक बारूद के कारखाने में २०० रु० मासिक पर कार्य करते थे। पीछे आप ने एक टापू पर सोने की खान का ठेका ले लिया था। आप २५ वा २६ नवम्बर सन् १९१४ में भारत में आये थे। कुछ दिन पीछे आपके दल की ही फिरोजपुर के जंगल में पुलिस के साथ मुड़भेड़ हुई। उस समय आप के दल में सब १३ व्यक्ति थे। आपने पुलिस के साथ डटकर युद्ध किया, जिसमें आपके दो साथी मारे गए। आप और रहमत अलीशाह सहित सात व्यक्ति पकड़े गये। शेष चार भाग गए। आप पर मिश्री गांव के डाके तथा थानेदार के कत्ल का झूठा अपराध लगाकर मुकदमा किया। जज ने सातों को फांसी की सजा दी। पं० काशीराम जी का चालीस हजार रुपया सरकार ने जब्त कर लिया। ये सातों व्यक्ति निर्दोष फांसी पर चढ़ाये गए। गन्धासिंह पहले तो सरकार के हाथ नहीं आये किन्तु कुछ समय पश्चात् खन्ना ग्राम के पास नत्थासिंह नाम के अध्यापक ने विश्वासघात करके इन्हें पकड़वा दिया। फिर आप पर थानेदार के मारने के दोष में अभियोग चलाकर फाँसी का दण्ड दे दिया गया। आपके अभियोग में जज ने लिखा था—"जो सात आदमी पहले फांसी पर चढ़ाये गए थे वे निर्दोष थे। वास्तविक अपराधी नहीं थे। असली अपराधी गन्धासिंह है जिसे आज हम फांसी का दण्ड दे रहे हैं। आप ८ मार्च १९१६ को एक वीर के समान फाँसी के तख्ते पर चढ़ गये और देश के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर गये। गन्धासिंह जी से फाँसी से पूर्व किसी ने पूछा कैसे हो? हंसकर बोले—मित्रो! आनन्द में हूं वर्षों से इस दिन की बाट देखता था।" गेंद खेलते से फांसी पर चढ़ गये। इन्हें जेल में पुलिस वालों ने नंगा करके बहुत पीटा तथा मार से हाथ सूज कर जंघा के समान मोटे हो गए थे। इन्हें काल कोठड़ी में अकेले डालकर बहुत कष्ट दिया गया था। जिस सिंह से डर कर पुलिस वाले गीदड़ के समान भागते थे और मुठभेड़ में छिपकर ईख के खेत में पुलिस ने अपनी जान बचाई थी। इन धूर्तों ने अत्याचार करके गन्धासिंह से जेल में बदला लिया।

वीर वीरसिंह

वीर वीरसिंह का जन्म बहोलाव जि० होश्यारपुर में हुआ था आप १९०६ में कैनेडा चले गये। आप भी अन्य यात्रियों के साथ विप्लवार्थ भारत लौट आये। इधर-उधर घूमकर विप्लव का प्रचार करने लगे। गिरफ्तारियों के पश्चात् आप भाग गये। एक दिन आप ६ जून १९१५ में चिट्टी गांव में एक कुएँ पर स्नान कर रहे थे कि पुलिस ने घेर कर पकड़ लिया। आपको लाहौर षड्यन्त्र के दूसरे मुकद्दमे में मेगजीन पर हमला करने तथा डाका डालने का अभियोग लगाकर फांसी की सजा देकर फांसी की जयमाला पहना दी गई।

लाहौर षड्यन्त्र का द्वितीय अभियोग

इस लाहौर षड्यन्त्र के मुकद्दमे में छः व्यक्तियों को फांसी का दण्ड दिया गया। इन वीरों के नाम वीरसिंह. भाई बलवन्तसिंह, डाक्टर मथुरासिंह, बन्तासिंह, रंगासिंह और ४२ को आजन्म काले पानी का दण्ड दिया गया। इसके अतिरिक्त इन सब अभियुक्तों की सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई।

रंगासिंह

रंगासिंह का जन्म १८८५ में जालन्धर जिले के खुर्दपुर गांव में हुआ था। स्कूल की कुछ शिक्षा के पश्चात् आपने सेना में भरती होकर नौकरी करली। २३ वर्ष की आयु तक रिसाले में नौकरी करने के पीछे १९०८ में आप अमरीका चले गये। वहां छः वर्ष रह कर २१ दिसम्बर १९१४ को फिर भारत लौट आये। यहां गांव-गांव जाकर आप विप्लव का प्रचार करने लगे। जब विप्लव योजना विफल हो गई तो बहुत से नेता पकड़कर जेल में ठूंस दिए गए। तब यह निश्चय किया कि जेल पर आक्रमण करके इन्हें छुड़ाया जाए।

कपूरथला राज्य की मेगजीन को लूटने की योजना बनाई। इन सब लोगों में रंगासिंह नेता थे। किन्तु शक्ति थोड़ी थी, अतः इस विचार को छोड़ कर यह निश्चय हुआ कि बाला के पुल पर पुलिस वालों को मार कर पहले इन की बन्दूकें छीनें और फिर इन्हें लेकर मेगजीन पर आक्रमण किया जाये। इस कार्य में धुदिली के एक अध्यापक ने भी सहायता दी थी। इस कार्य के लिये रंगासिंहादि कुछ व्यक्तियों को चुना गया। किन्तु आपके साथी सिपाहियों को सावधान देखकर आक्रमण करने से हिचकने लगे। इस पर आपने अपने साथियों को बहुत फटकारा और ११ जून १९१५ को बाला के रेलवे पुल पर आक्रमण कर ही दिया। इन्होंने दो सैनिकों को घटना स्थल पर मार दिया और उनकी बन्दूकें छीन लीं। लौटते समय इन्होंने दो आदमी और मार डाले। किन्तु किसी भेदिये के भेद देने पर ३६ जून की रात को आपको एक शरबत वाले की दुकान पर चुपचाप पकड़ लिया गया और लाहौर षड्यन्त्र के द्वितीय मुकद्दमें में आपको फाँसीं दे दी गई।

रामसिंह और रामचन्द्र

रामसिंह का जन्म पिण्ड तुलेता जिला जालन्धर में हुआ था। आप १९०७ वा आठ में कैनेडा चल गये। वहां ये व्यापारादि के द्वारा अच्छे धनाढ्य बन गये। जब सन् १९१४ में सिख गदर कराने के लिए विदेशों से भारत जाने लगे तो आप संयुक्त राज्य अमेरिका आ गये और वहां के लोगों के अनुरोध से

वहीं ठहरकर कार्य करने लगे। ला० हरदयाल जी गदर पार्टी तथा युगान्तराश्रम प्रेस का सब कार्य पं० रामचन्द्र को सौंप कर योरुप चले गये। रामचन्द्र किसी भी नियमादि की चिन्ता न करके अपनी मन मानी चलाता था। सारा कार्य उसके हाथों में था। सारा कार्य उसी की इच्छा पर चलता था। वह किसी अच्छे व्यक्ति को जो कार्य करने वाला हो सहन नहीं करता था, यही यत्न करता था कि अच्छा कार्य करने वाला व्यक्ति अमेरिका में ठहर न सकेगा। रामचन्द्र को रामसिंह का यहां ठहरना खटकने लगा। उसने रामसिंह को निकालने के लिए एक चाल चली। रामचन्द्र ने एक जूते में एक कागज सींकर रामसिंह कोदेकर यह कहा—"इसे भारत में अमुक व्यक्ति के पास ले जाना है यह इतना आवश्यक है कि आपके अतिरिक्त और किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता। रामसिंह उसकी चाल में आ गया। और भारत चल दिया। आते समय मनीला (फीलीपाइन्स) में आपकी पुराने कार्यकर्ताओं से भेंट हो गई। उन्होंने रामचन्द्र का यथार्थ स्वरूप बताकर यह भी कहा कि इस समय भारत में जाना मृत्यु के मुख में जाना है। बूंट खोलने पर उस में साधारण छपे कागज के अतिरिक्त और कुछ न निकला। आप चीन जापान होते हुए फिर अमेरिका वापिस आ गये। इस समय रामचन्द्र तथा अन्य लोगों में पर्याप्त झगड़ा बढ़ गया था। बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी झगड़ा न मिटा। आपने सन् १९१६ में कैलिफोर्निया के सैक्रोमेंट नाम नगर में सभा की और नये अधिकारी चुनकर कार्य आरम्भ कर दिया। रामचन्द्र ने इसे अनियमित बताकर एक और सभा बुलाई किन्तु इस सभा ने रामसिंह वाली सभा को उचित ठहराया। और केवल तीन व्यक्ति बढ़ा दिए। इस सभा ने यह निश्चय किया कि पुराने कार्यकर्त्ता इस नई कमेटी को सात दिन में सारे कार्य को सौंप दें। यदि ऐसा न हो तो कमेटी बलपूर्वक सब पदार्थों पर अधिकार कर ले। किन्तु चार्ज न दिया गया। प्रेस पर अधिकार करते समय रामचन्द्र के साथी पुलिस को बुला लाये। किन्तु पुलिस ने सारी बातें सुनकर स्वयं ताला तोड़ प्रेस नई कमेटी के अधिकार में दे दिया। रामसिंह ने चारों ओर घूमकर संगठन कर डाला। आपको प्रधान बनाना चाहते थे। आपने कोई पद स्वीकार न किया। वैसे ही लगन से कार्य में जुटे रहे। उसी समय अमेरिका भी युद्ध में कूद पड़ा। अब गदर पार्टी के मुख्य-मुख्य कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिए गए। रामसिंह जी भी पकड़े गये। रामसिंह ने रामचन्द्र को अदालत में एक साथ मिलकर कार्य करने को कहा किन्तु वह सहमत नहीं हुआ। जब मुकद्मा चला तो दोनों पार्टी के पृथक् पृथक् बयान होने से समाचार पत्रों ने इनके विरुद्ध खूब ऊटपटाँग लिखा। पार्टी की बदनामी हुई रामसिंह ने फिर पार्टी बाजी दूर करने का यत्न किया किन्तु उसे इस बार भी सफलता न मिली। मुकद्मा जूरी को सौंपा गया। जिस समय जज लोग मध्यान्ह के समय भोजन करने गये तो रामसिंह ने अदालत में ही रिवाल्वर निकालकर रामचन्द्र पर गोली चला दी। रामचन्द्र को गिरता देखकर हाथ नीचे किया तो सामने बैठे कोतवाल ने रामसिंह पर भी गोली चला दी। इस प्रकार अमेरिका की अदालत में यह आपस की फूट के कारण शहीद हो गया। आपस की फूट के कारण ला० हरदयाल का किया हुआ सारा पुरुषार्थ व्यर्थ चला गया।

लाहौर षड्यन्त्र का तृतीय अभियोग

यह मुकद्मा १२ व्यक्तियों पर चलाया गया। इस मुकद्मे में उत्तमसिंह, डा० गरुड़सिंह, केहरसिंह और जीवनसिंह को फांसी का दण्ड दिया गया। यह षड्यन्त्र गदर आन्दोलन का एक भाग था। जिसका सम्बन्ध जर्मन एजेन्टों से भी था। सान फ्रांसिस्को में गदर पार्टी के नेता ने जर्मन लोगों के साथ मिलकर

यह योजना बनाई थी कि स्याम में विप्लव करके ब्रिटिश सरकर को हानि पहुँचाई जाए। युगान्तराश्रम से सान फ्रांसिस्को ने एक पर्चा निकाला था जिस में लिखा था—"जर्मनी के साथ युद्ध मत करो, वह मित्र है।" जर्मन कोंसिल अपने खर्च पर गदर कार्यालय के छपे पर्चों को भारतीयों में सब कहीं बांटने के लिए ले गई और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध प्रचार करने के लिए अपने खर्च पर एजेन्ट भेजे थे। उपर्युक्त व्यक्ति इस योजना में सम्मलित थे। यह इस मुकद्दमे में सिद्ध किया गया और उत्तमसिंह आदि को फांसी पर चढ़ा दिया गया। उत्तमसिंह और डा० अरुड़सिंह के विषय में भी कुछ विशेष लिखा जाता है।

उत्तमसिंह

उत्तमसिंह का जन्म हंस ग्राम जि० लुधियाना में हुआ था। आप अमेरिका में गदर पार्टी के अच्छे कार्यकर्ता थे। आप पार्टी की आज्ञानुसार सन् १९१४ में कुछ साथियों सहित भारत में गदर का प्रचार करने के लिए आये। मार्ग में भी आपने गदर का प्रचार किया। कर्तारसिंह के साथ आपका पुराना परिचय था। भारत आकर आप अर्जुनसिंह, गन्धासिंह, बूंटासिंह और पिंगले आदि के साथ मिलकर जोर से कार्य करने लगे। कर्तारसिंह के साथ फिरोजपुर छावनी पर हमला करने के लिए भी आप गए थे। उस विप्लव योजना के विफल होने से आपका भी वारण्ट निकला। किन्तु आप हाथ न आये। अपने साथियों को जेल से निकालने के लिए नये सिरे से अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे करने आरम्भ कर दिये।

आपका विचार पहले कपूरथला राज्य के मेगजीन को लूटने का था। किन्तु पीछे आपने केवल सात-आठ पिस्तोल धारियों को साथ लेकर १५ सिपाहियों से १५ राईफलें ७५० कारतूस सहित छीन लीं। आप बम्ब बनाना भी जानते थे। पीतल के लोटों से बम्ब बना भी चुके थे। अभी आप जेल पर आक्रमण कर साथियों को छुड़ाने की तैयारी में लगे ही थे कि १९ दिसम्बर सन् १९१५ को जब आप अपने एक साथी के साथ फरीदपुर राज्य के माना-बघवाना नाम गाँव के पास एक साधु की कुटिया में ठहरे थे, गिरफ्तार कर लिए गए और लाहौर षड्यन्त्र के तृतीय केस में आपको फांसी दे दी।

डा० अरुड़सिंह

डा० अरुड़सिंह का जन्म सगवाल ग्राम जि० जालन्धर में हुआ। शहीद बन्तासिंह भी इसी ग्राम के निवासी थे। ये दोनों एक साथ मिलकर कार्य किया करते थे। आप गुप्त भेद निकालने में बड़े चतुर थे। आपका वारण्ट होने पर भी निश्चिन्त होकर घूमते रहे। कभी थाने में जाकर भेद ले आते थे। एक अमरीकन से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उसे आप अपना गुरु मानते थे। एक बार ज्ञात हुआ कि वे लाहौर की सैन्ट्रल जेल में गिरफ्तार करके रखे गये हैं, बस आप जेल में पहुँच गये और सारा भेद लेकर वापिस चले आये। एक दिन आप जेल के फाटक पर खड़े थे पुलिस अफसर के नाम पूछने पर आपने अरुड़सिंह बतलाया।

अफसर को विश्वास नहीं हुआ और वह घूमकर चल दिया। न जाने उस समय आपके मन क्या आया कि आपने उसे फिर बुलाया और अपने आपको गिरफ्तार करवा दिया। अन्त में अदालत से

आपको भी लाहौर के तीसरे षड्यन्त्र में फांसी का दण्ड मिला। आपकी मस्ती पराकाष्ठा पर पहुंची थी मृत्यु को सन्मुख देखकर भी आपकी मस्ती में कोई भी अन्तर न आया। जिस दिन प्रातः का आपको फांसी आनी थी, उस दिन आप देर तक गहरी नींद में सोते रहे। अफसर के जगाने पर और य कहने पर कि—चलो तुम्हें फांसी दी जायेगी।" आपने खड़े होकर ऊँचे स्वर से "वन्दे मातरम्" कह और हँसते हुए फांसी के तख्ते पर चढ़ गये। आपने अत्यन्त वीरता फांसी के समय दिखलाई।

श्री जगतसिंह

आपका जन्मकाल तथा निवास स्थान अज्ञात है। आप भी अमेरिका गये। गदर की बात छिड़ जाने पर स्वाधीनता के युद्ध में भाग लेने के लिए आप भी भारत लौट आये। इनका शरीर बड़ा सुन्दर, सुदृ और बलिष्ठ था। इनके समान शरीर वाला कोई भी इनके साथियों में नहीं था। जब पञ्जाब के विप्लव का प्रयास विफल हो गया और रासबिहारी के सब साथी गिरफ्तार हो गये। पुलिस धर पकड़ के लिए बड़ी भाग दौड़ कर रही थी। उस समय किसी विशेष महत्वपूर्ण कार्य के लिए ये दो साथियों सहित चले। यह लाहौर की घटना है। ज्यों ही ये तीनों तांगे पर सवार होकर जा रहे थे उसी समय पुलिस ने इन्हें आकर घेर लिया और इन्हें थाने में चलने के लिए विबश करने लगे। ये तीनों जानते थे कि थाने गये तो मृत्यु के मुख में फंस जायेंगे। अतः तीनों ने गोली चलानी आरम्भ कर दी। कुछ देर गोली चलने के पश्चात् इनमें से एक तो निकल कर भागा एक पुलिस के हाथ में फंस गया। जगतसिंह जी पुलिस के हाथ से बचकर भाग निकले। आगे चलकर नल पर खड़े हो प्यास से व्याकुल जल पीकर मुख पूछने लगे। उसी समय पीछे से एक बहुत शक्तिशाली मुसलमान ने पकड़ लिया और उसने ऐसा जकड़ लिया कि वे हिल न सके। उन्हें पुलिस गिरफ्तार करके ले गई। अभियोग चला और फाँसी का दण्ड मिला। यह वीर हंसते-हंसते फांसी के तख्ते पर चढ़ गया।

श्री भानसिंह

इनका जन्म सुनेत नाम के गांव जि० लुधियाना में हुआ था। पहले आपने सेना में नौकरी की, फिर इसे छोड़ आप अमेरिका चले गये वहाँ केलीफोनिया में रहते हुए आपने सभी राजनैतिक कार्यों में चढ़ बढ़कर उत्साह से भाग लिया। आप स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के लिए महायुद्ध के छिड़ते ही सर्व प्रथम कोरिया तथा तोशामारू जहाज पर आ गये। मार्ग में आप गदर का प्रचार करते आये थे १९१४ में कलकत्ता पहुँचते ही २९ अक्टूबर को पकड़ लिए गए। कुछ समय मिण्टगुमरी जेल बन्द रहे फिर छोड़ दिये गये। बिप्लव युद्ध विफल होने पर आपको गिरफ्तार किया गया और काले पानी का दण्ड देकर अण्डमान भेज दिया। वहां जेलर और जेल अधिकारी देशभक्त कैदियों पर खूब अत्याचार करते थे। आप अपने साथियों को भूल करने पर ताड़ते रहते थे। इनके साथ हितभावना समझ सहर्ष सहन कर लेते थे। आपको किसी जेल अधिकारी ने गाली दे दी। आप कोठड़ी में बन्द थे अतः चुपचाप सहन करना पड़ा किन्तु आपने कार्य करने से इन्कार कर दिया। इस पर जेलर ने छः मास के लिए डण्डा बेड़ी पहना कर काल कोठरी में बन्द कर दिया। साथ ही आधे भोजन का दण्ड भी दिया। जल भी बहुत थोड़ी मात्रा में दिया जाता था। इस ग्रीष्म जलवायु वाले द्वीप में यह दण्ड अत्यन्त असह्य था। इस दुःख की अवस्था में भी एक दिन यह मस्त देशभक्त झूम-झूम कर गा रहा था "मित्र प्यारे नु हाल मुरीदां दा"

कहना।" जेलर उन्हें चुप रहने के लिए कहने लगा। किन्तु ईश्वर भजन से वञ्चित रखने की उस निर्दयी की आज्ञा को वह देशभक्त वीर कैसे मान सकता था। अतः उन्होंने अपना गाना चालू रखा।

उन्हें दूसरी मंजिल की कोठड़ी से निकाल कर तीसरी मञ्जिल की कोठड़ी में जो एक तङ्ग सन्दूक के समान थी, बन्द कर दिया गया। ढ़ाई वर्ग फिट की तङ्ग कोठड़ी में भी आप मस्त होकर गाते रहे। आपने अपना ईश भजन का गाना बन्द नहीं। किया निर्दयी जेल अधिकारी ने इन्हें बहुत बुरी तरह बार-बार पीटा। इनकी हड्डियां तक तोड़ डाली। किन्तु गाना फिर भी बन्द नहीं हुआ। इस अत्याचार को देखकर अन्य कैदियों ने भी कार्य करना छोड़ दिया।

उन्हें भी वही आधी खुराक, काल कोठड़ी, और डण्डा बेरी का दंड मिला। भानसिंह को बहुत बुरी तरह से पीटा गया था। अतः उन की दशा चिन्ता जनक हो गई। मुख में पानी तक नहीं जाता था। प्राण बचने की कुछ भी आशा नहीं थी। जेल के भीतर उनकी मृत्यु न हो। अतः उन्हें बाहर के अस्पताल में भेज दिया। कुछ दिन के पश्चात् यह वीर देशभक्ति का गान करते हुए आततायियों द्वारा निरन्तर अथकनीय यातनायें सहन करते हुए तिल-तिल करके प्राणों को न्योछावर कर गया।

ऊधमसिंह

ऊधमसिंह का जन्म कैसल नाम के गाँव में अमृतसर जिले में हुआ। आप युवावस्था में व्यवसायार्थ अमेरिका गये। वहाँ पर गदरपार्टी में सम्मिलित हो गये। महायुद्ध के छिड़ते ही आप भी अपने ३५० साथियों के साथ भारत लौटे और गिरफ्तार करके जेलों म डाल दिये गये। आपको लाहौर षड्यन्त्र केस में आजीवन कालेपानी का दण्ड देकर अंडमान भेज दिया गया। फिर १९२१ में आप को मद्रास की बलारी जेल में भेज दिया गया। यह अकेले बन्द कोठड़ी में एकान्त में जीवन के दिन बिता रहे थे। एक दिन जेल के अधिकारियों ने प्रातःकाल इनकी कोठड़ी को आकर देखा तो ऊधमसिंह वहाँ पर नहीं मिले। कोठड़ी का ताला ज्यों का त्यों बन्द था। यह गुप्त रहस्य है कि पुलिस की कड़ी निगरानी से कब, कैसे और किधर से निकल गये।

ऊधमसिंह जेल से निकल कर काबुल पहुँचे। किन्तु देशभक्ति का अनुराग उन्हें फिर भारत उठा लाया और कुछ समय कार्य करके फिर काबुल चले गये। पुलिस आपकी बड़ी खोज में थी। पुनः आप भारत लौट रहे थे कि न्हें सीमा पर गोली मार दी गई और वे मार्ग में ही शहीद हो गये। यह भी ज्ञात नहीं कि गोली किसने मारी, यह आज तक रहस्य ही बना हुआ है।

श्री खुशीराम

आपका जन्म-स्थान पिण्डी सैदपुर जिला झेलम था। आपके पिता का नाम ला० भगवानदास था। इनका जन्म २७ श्रावण १९०५ को हुआ। इनके पिता की मृत्यु के पश्चात् इनका पालन-पोषण लाहौर नवाकोट के अनाथालय में हुआ। आपका शरीर बड़ा सुन्दर, सुदृढ़ और बहुत शक्तिशाली था। आपका जन्म का नाम भीमसेन रखा था, किन्तु पीछे खुशीराम नाम से प्रसिद्ध हो गया। आपने १९ वर्ष की आयु में शास्त्री की परीक्षा डी० ए० बी० कालिज से उत्तीर्ण की। १९१९ में सारे देश में जब हड़ताल हुई तब आपने भी कालेज के विद्यार्थियों का नेतृत्व किया। १२ अप्रैल को लाहौर की बादशाही मस्जिद में विराट सभा हुई। फिर जलूस निकला। झंडा श्री खुशीराम जी के हाथ में था। आगे फौज ने मार्ग रोका।

हीरामंडी के बाजार के पास नवाब मोहम्मदअली बरकतअली सेना का अध्यक्ष था। उसने जनता को बिखरने की आज्ञा दी 'जुलूस नहीं निकलेगा' यह कहा। जुलूस के नेता श्री खुशीराम जी ने कहा—"जुलूस निकलेगा और अवश्य निकलेगा, और जायेगा भी इसी मार्ग से।" नवाब ने आकाश में गोली चलाई, लोग डर के मारे इधर-उधर भागने लगे, तब खुशीराम ने गरज कर कहा—"भाग कर व्यर्थ में क्यों कायर बनते हो? मरना तो एक दिन है ही, फिर वीरों की भांति क्यों न मरो। बड़ी लज्जा की बात है कि गीदड़ों के समान क्यों भाग रहे हो?" लोग रुक गये। नवाब ने फिर कहा—"जुलूस को तोड़ दो" खुशीराम ने फिर गरज कर कहा—"नहीं, यह नहीं होगा, हमारा जुलूस इसी प्रकार चलेगा" वे आगे बढ़े, और उधर से गोली चली। अब की गोली हवा में न गई सीधे खुशीराम की छाती में लगी। श्री खुशीराम जी दो कदम आगे बढ़े, एक और गोली लगी, वे आगे और बढ़े। इस प्रकार एक-एक करके सात गोलियाँ छाती में समा गईं। किन्तु वह वीर उसी प्रकार आगे बढ़ता चला गया। आठवीं गोली माथे से दाईं ओर और नवीं गोली बाईं ओर लगी। वे गिरे और अनन्त निद्रा में सो गये और फिर न उठे। उनके शव का जुलूस निकला। जनता का समुद्र उसके साथ उमड़ पड़ा। जनसंख्या पचास हजार से अधिक थी। खुशीराम इस संसार में नहीं किन्तु, वह उसके कार्य, साहस, और नाम से अमर है।

श्री नन्दसिंह

इनका जन्म १८९५ ई० में घुड़ियाल ग्राम जालन्धर जिले में हुआ। आपके पिता जी का नाम गंगासिंह था। आपके माता-पिता के शीघ्र मर जाने के कारण पालन-पोषण रावलपिण्डी में बड़े भाई ने किया। आपकी पढ़ने की अपेक्षा खेल-कूद में अधिक रुचि थी। अतः आप शीघ्र बढ़ई का काम सीखकर बसरा चले गये। १५ वर्ष की छोटी आयु में ही आपका विवाह हो गया था। अकाली आन्दोलन में भाग लेने के लिए आप भारत आये और गुरु के बाग के सत्याग्रह में छः मास की जेल काटी। जेल में अत्याचारों के कारण आपके विचार बदले और आप जेल से बाहर आते ही किशनसिंह के बब्बर अकाली दल में सम्मिलित हो गये। जब आप जेल में थे तभी बड़े भाई की मृत्यु हो गई। दूसरे भाई ने यह चाहा कि नन्दसिंह माफी माँगकर लड़के की शादी में सम्मिलित हो जाये। आपने कहा--"यदि बड़े भाई के बिना विवाह हो सकता है तो मेरे बिना भी हो सकता है। इन विवाह-समान घरेलू कार्यों के लिए मैं देश का कार्य नहीं रोकना चाहता।"

आपके जेल से आने के पीछे ग्राम का सूबेदार गेंदासिंह आपको बहुत तंग करने लगा। आपकी सब बातों की सूचना पुलिस में दे देता था। अतः एक दिन आपने जाकर उसे मार दिया। पुलिस ११ दिन तक गाँव वालों को तंग करती रही। आपने पुलिस वालों को कहा कि जो कुछ किया है मैंने किया है क्यों व्यर्थ हम लोगों को तंग करते हो? आपको गिरफ्तार कर अभियोग चलाया और फाँसी का दंड दिया गया।

मरने से पूर्व आपने घर वालों को कहा—"तुम लोग कोई चिन्ता न करना। मैं किसी बुरी मौत से नहीं मर रहा हूँ। मुझे इस बात का बड़ा हर्ष है कि मेरे प्राण देश के कार्य के लिए किए जा रहे हैं। मैंने भवन की नींव डाल दी है। अब यह देश का कर्त्तव्य है कि यदि वह स्वतन्त्र होना चाहता है तो उस नींव पर भवन बनाकर खड़ा करे। आपने यह भी कहा कि मरने के पश्चात् मुझे मेरे अन्य साथियों के सहित एक ही चिता पर चलाना और राख को रावी नदी में डाल देना।"

अन्त में २७ फरवरी १६२६ को लाहौर सैन्ट्रल जेल में आपको पाँच साथियों सहित फांसी दे दी गई। उनके सम्बन्धियों ने उनका उनकी इच्छानुसार पाँचों साथियों का एक ही चिता पर संस्कार किया।

श्री सन्तासिंह

आपके पिता का नाम सूबासिंह था। जो लुधियाना जिले में हरयों खुर्द नामक गांव में रहते थे। सन्तासिंह युवा होने पर सेना में ५४ नं० रिसाले में सन् १६२० में भरती हो गये, और दो वर्ष नौकरी के पश्चात् त्यागपत्र देकर खालसा हाईस्कूल लुधियाने में क्लर्क का कार्य करने लगे। आप अकाली दल में सम्मिलित होकर कार्य करने लगे। अपने बुद्धिचातुर्य और सच्ची लगन के कारण आप शीघ्र ही बड़े नेताओं की पंक्ति में आ खड़े हुए। आपने सभी कार्यों में उत्साह से भाग लिया। अपने उद्देश्य में बाधक समझ कर आपने बिशनसिंह, जेलदार को अकेले ही जाकर मार दिया।

इसी प्रकार बूंटासिंह, लाभसिंह, हजारासिंह, राला और दित्तू सूबेदार गेंडासिंह और नांगल समां के नम्बरदार आदि देश-द्रोहियों को उनके अपराध का दंड देने में भी आप सम्मिलित थे। अन्त में सम्बन्धियों के विश्वासघात से आप गिरफ्तार हो गये। आपने सब अपराध स्वीकार कर लिये और कहा कि—"जो कुछ मैंने किया वह अच्छे के लिये ही किया था। अस्तु मैं उनमें से एक बात भी छिपाना नहीं चाहता।" सरकार ने फांसी का दंड दिया और आपको लाहौर सैन्ट्रल जेल में २७ फरवरी १६२६ को पाँच साथियों सहित फांसी दे दी गई।

किशनसिंह गर्गज्ज

आपका जन्म जालन्धर जिले के बाड़िंग नामक गांव में हुआ। आपके पिता जी का नाम श्री फतह-सिंह जी था। थोड़ी शिक्षा के पश्चात् आप सेना में भरती हो गये। कुछ वर्ष नौकरी करके आप त्यागपत्र देकर देशभक्ति के आन्दोलन में भाग लेने लगे। ननकाना साहब की दुर्घटना के पीछे आप अकाली दल में सम्मिलित हो गये और उसके मन्त्री चुने गये।

पुलिस से पिटते रहना आपको अच्छा नहीं लगता था। अतः आपने सशस्त्र गुप्त संगठन की आयोजना की। आप बड़े अच्छे वक्ता भी थे। अतः खूब व्याख्यान देकर ग्राम-ग्राम में प्रचार करते थे। गिरफ्तारी के समय तक आप ३२७ भिन्न-भिन्न स्थानों पर भाषण दे चुके थे। इन्होंने कर्मसिंह आदि की पार्टी के साथ अपने दल को मिला कर कार्य किया। अनेक केन्द्रों की स्थापना की। अस्त्र शस्त्रों का संग्रह किया गया। १८५७ की भांति ये स्वतन्त्रता युद्ध की योजना बना रहे थे कि भेद खुल गया। और गिरफ्तारियां होने लगीं। आपको भी गिरफ्तार करके लाहौर लाया गया।

आपने अभियोग चलने पर सब बातें मान लीं और निम्नलिखित वक्तव्य दिया—"जब में सेना में था तभी सरदार अजीतसिंह की नजरबन्दी, बजबज कांड, रोलट एक्ट और जलियां वाले बाग की दुर्घटना और मार्शल्ला आदि के अत्याचारों के कारण मेरे हृदय में घृणा उत्पन्न हुई और अन्त में दासता के भार को अधिक न सह सकने के कारण मैंने सरकार की नौकरी छोड़कर राष्ट्रिय आन्दोलन में भाग लिया। मैं सरकार का कट्टर शत्रु था और इसी से जिस प्रकार भी हो अंग्रेजों को भारत से निकाल कर बाहर करने की इच्छा से यह सब कुछ किया था।" न्यायालय से आपको फांसी का दण्ड मिला, और एक दिन लाहौर जेल में फांसी पर लटका दिया गया।

कर्मसिंह

कर्मसिंह का जन्म श्री भगवान्दास सुनार के यहां मनको नामक ग्राम में जिला जालन्धर में हुआ। आपकी खेलकूद में ही रुचि थी। आप बहुत चंचल थे और किसी की बात को सहन न करते थे। बड़े होने पर बब्बर अकाली दल में सम्मिलित हो गये। कुछ दिन आप प्रचार कार्य करते रहे। गेंदासिंह सूबेदार के मारने के षड्यन्त्र में आप भी सम्मिलित थे। १२ मई १९२३ को आप गिरफ्तार कर लिये गये। आप पर जेल में बड़े-बड़े अत्याचार किये गये और सब भेद खोल देने के लिये पुलिस ने वाध्य किया। इस वीर ने सब कष्ट हर्ष पूर्वक सहे, किन्तु आपने किसी भी बात का उत्तर नहीं दिया। अदालत में आपने वक्तव्य दिया—"अदालत की सब कार्यवाही एक नाटक के समान है और सब लोग पुलिस के हाथ में खिलौने के समान हैं। सरकार ने आपको फांसी का दण्ड दिया। और २७ फरवरी १९२६ को लाहौर सैन्ट्रल जेल में पांच साथियों सहित फांसी पर लटका दिया गया।

श्री धन्नासिंह

इनका बाल्यकाल पञ्जाब की वीरभूमि के एक छोटे से ग्राम बईबलपुर में व्यतीत हुआ। गुरु के वाग के अत्याचारों से प्रभावित होकर आप अकाली दल में सम्मिलित हो गये। प्रचार कार्य तथा सामरिक कार्य दोनों में ही आपने खूब उत्साह से भाग लिया। आपने १० फरवरी १९२३ को अपने तीन और साथियों को साथ लेकर रानी थाने के जेलदार विशनसिंह पुलिस के भेदियों को मार दिया।

इसी प्रकार बूंटा नम्बरदार के मारने में भी आपका हाथ था। कुछ दिन पीछे १९ मार्च १९२३ को तीन साथियों सहित मिस्त्री लाभसिंह को मार दिया और फिर २७ मार्च १९२३ को बइबलपुर गांव में हजारा नाम के व्यक्ति को जो पुलिस को आपकी सब सूचनायें पहुँचाता था मार डाला।

२५ अक्टूबर १९२३ को आप पुलिस के घेरे में आ गये। इसके सम्बन्धी ज्वालासिंह ने जिसने वीर बालक दिलीपसिंह को भी गिरफ्तार करवाया था धोखा दिया। उसने पुलिस को सूचना दे दी। इस धूर्त ने पुलिस की इच्छानुसार धन्नासिंह को होश्यारपुर के मननहाना नामक गाँव के कर्मसिंह के मकान पर ठहरा दिया। ये उसी मकान में जब सो रहे थे तो पुलिस आई। ज्वालासिंह पुलिस को देखकर भाग गया। धन्नासिंह भी भागने लगा तो पुलिस ने चारों ओर से घेर लिया। पुलिस के ४० व्यक्ति थे। घिर जाने पर आप अपना रिवाल्वर निकालने लगे उसी समय पुलिस इंस्पेक्टर गुलजारासिंह ने आप पर लाठी चला दी। धन्नासिंह अकस्मात् प्रहार होने से संभल न सके और भूमि पर गिर गया। फिर क्या था सब आप पर टूट पड़े। आप बड़ी कठिनाई से गिरफ्तार हुए। हथकड़ी लगा लेने पर भी आपने कई बार हाथ छुड़ाने का यत्न किया। आपको पुलिस वालों ने एक स्थान पर बिठा दिया, दोनों हाथ ऊपर करवा दिये और कई पुलिस वाले हथकड़ी की जंजीरों को पकड़ कर बैठ गये। यह सदैव स्वतन्त्र रहने वाला वीर इस दासता को कैसे सहन कर सकता था। जिस समय आपको पुलिस वाले पकड़े खड़े थे उसी समय आपने अकस्मात् ऐसे वेग से बलपूर्वक झटका दिया कि हाथ नीचे आ गया। और साथ ही कमर के पास छिपे हुए बम में कोहनी की ऐसी चोट दी कि एक दम धड़ाका हो गया। देखते-देखते चारों ओर भगदड़ मच गई और जहां पर धन्नासिंह जी बैठे थे वहां पर खून मांस और हड्डियों के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहा। साथ ही पुलिस के भी पांच व्यक्ति तो जान से मारे गये और तीन बहुत बुरी प्रकार से घायल

हुए, जिनमें से एक सिपाही और मि० हार्टन पीछे अस्पताल में मर गये। इस प्रकार इस वीर ने शत्रुओं को यमालय पहुँचा कर वीरगति को प्राप्त हुआ।

बोमेली युद्ध के चार हुतात्मा

कर्मसिंह जी दौलतपुर के उदयसिंह रामगढ़ झुंगिता के विशनसिंह मंगत के और श्री महेन्द्रसिंह व गङ्गासिंह पिण्डोरी के रहने वाले थे। जिस समय किशनसिंह गर्गज्ज ने बब्बर अकाली आन्दोलन को प्रारम्भ किया तो इन चारों ने इस में भाग लिया। ये चारों ही एक दूसरे से बढ़कर वीर थे। ये कठिन से कठिन कार्य को बड़ी रुचि से करते थे। कुछ समय पश्चात् कर्मसिंह तथा उदयसिंह मुख्य कार्यकर्ताओं में गिने जाने लगे। कर्मसिंह ग्राम-ग्राम में घूम कर प्रचार करने लगे। ये "बब्बर अकाली" नामक पत्र का सम्पादन भी करते थे। दीवानों में इनके खूब व्याख्यान होते थे। आपके वारण्ट निकल गये। पुलिस इन की खोज में बड़ी दुखी थी। इधर ये लोग शत्रु से युद्ध करने के लिए हथियारों के संग्रह करने में लगे हुए थे। आपकी गिरफ्तारी के लिए इनाम की घोषणा की गई। किन्तु गिरफ्तारी न हो सकी।

उदयसिंह जी से आपका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध था। अधिकतर वे दोनों साथ ही रहते थे। फरार भी वे दोनों साथ ही हुए थे और अन्तिम समय भी दोनों ने साथ ही साथ युद्ध करके प्राण दिये। प्रेम और मैत्री का कैसा आदर्श उदाहरण है।

पुलिस को बब्बर अकालियों का भेद देने के अपराध से उदयसिंह ने १४ फरवरी १९२३ को हैयतपुर के दीवान को मार दिया। आप कहा करते थे कि मैं शत्रुओं को क्षमा प्रदान कर सकता हूँ किन्तु घर के भेदिये को नहीं छोड़ सकता। बईबलपुर के हजारासिंह के कतल में भी आपका हाथ था। इसी प्रकार कई एक देशद्रोहियों को उनके अपराध का दण्ड दिया। मृत्यु का ही दण्ड नहीं दिया जाता था किन्तु अपराध न्यून पर नाक कान काट कर भी छोड़ दिया जाता था। एक दिन ये चारों वीर कपूरथला के बोमेली गांव के पास से होकर जा रहे थे तो किसी भेदिये ने पुलिस अफसर मिस्टर स्मिथ को सूचना दे दी। फिर क्या था तत्क्षण सेना के कुछ सैनिक और कुछ घुड़सवार लेकर उन्होंने इनका पीछा किया। एक अन्य पुलिस अधिकारी फतेहखां भी पचास आदमी लेकर दूसरी ओर से भेजा गया। पुलिस अफसर स्मिथ को पीछा करते देख इन चारों ने चौंता साहब के गुरुद्वारे में आश्रय लेने का निश्चय किया। किन्तु पीछे से गोली चल रही थी अतः ये शत्रुओं से युद्ध करते हुए गुरुद्वारे की ओर हटने लगे। अभी तक फतेहखां के सिपाही एक ओर छिपे खड़े थे, किन्तु गोली चलने के शब्द को सुनकर वे सैनिक भी बाहर आ गये। गुरुद्वारे के चारों ओर एक नाला था। ये चारों वीर वीरता पूर्वक युद्ध करते-करते इस नाले के निकट पहुंच गये और जल में घुसे ही थे कि फतेहखां के सैनिकों ने गोली बरसानी आरम्भ कर दी। एक ओर तो केवल चार व्यक्ति और दूसरी ओर अस्त्र-शस्त्र से सजी हुई सेना थी। वे दो सेनाओं से कब तक युद्ध कर सकते थे। उदयसिंह और महेन्द्रसिंह गोली खाकर नाले के जल में गिर गये। कर्मसिंह किसी प्रकार से नाले को पार कर गये और शत्रुओं पर गोली बरसाने लगे। पुलिस ने आत्म समर्पण करने के लिए कहा। उसने फतेहखां पर गोली चलाई वह चूक गई। किन्तु कर्मसिंह के माथे पर आकर गोली लगी वह सदा के लिये वहीं जल में गिरकर सो गया।

विशनसिंह को कुछ अवसर मिल गया और वह झाड़ी में जा छिपा। झाड़ी के हिलने से सन्देह हो गया। दो सैनिक वहां देखने के लिए गये। उनके पास आते ही 'सत श्री अकाल' के नाद के साथ ही

विशनसिंह ने उन पर तलवार से आक्रमण किया। एक सैनिक बुरी प्रकार से घायल हुआ। दूसरा पीछे हटा। किन्तु उसी समय एक गोली विशनसिंह को लगी और वह नाले में गिरकर अपने साथियों के साथ ही वीरगति को प्राप्त हो गया। यह घटना प्रथम सितम्बर सन् १९२३ ई० को घटी।

पं० जगतराम हरियानवी

पं० जगतराम का जन्म हरयाणा जिला होशियारपुर के नगमापरू नाम के कस्बे में हुआ। आप सदैव प्रसन्नवदन और मस्त रहते थे। मैट्रिक पास करके दयानन्द कालेज लाहौर में प्रविष्ट हुए, किन्तु परीक्षा देने से पूर्व आप उच्च शिक्षा प्राप्त करने के विचार से अमरीका पहुँच गये। वहां पहुंचने पर देश-भक्त ला० हरदयाल से आपकी भेंट हो गई। दोनों के हृदय में देशभक्ति की आग पहले ही विद्यमान् थी। दोनों के मिलते ही और ही गुल खिल गया। दोनों में घनिष्ट सम्बन्ध हो गया, और दोनों मिलकर व्याख्यान तथा लेख द्वारा प्रचार करने लगे। अमेरिका में निवास करने वाले भारतीयों में देशभक्ति की आग लगा दी। कुछ दिन पश्चात् पं० जगतराम जी की यह धारणा हो गई कि भारत की सेवा भारत में रहकर अच्छी हो सकती है। इसी विचार से वे अमेरिका से अपने देश-बन्धुओं से विदाई लेकर भारत को चल दिये। भारत में आकर अपने विचार के कुछ युवकों का संगठन बनाया और कार्य आरम्भ कर दिया। सन् १९१४ में पुलिस ने लाहौर षड्यन्त्र का केस पंजाब के अनेक नवयुवकों पर चलाया, इनमें पं० जगतराम भी थे। एक दिन पेशावर जाते हुए रावलपिण्डी में गिरफ्तार कर लिए गये। आप पर हत्या आदि का अभियोग चलाकर अदालत ने पंडित जी को फांसी का दंड दिया। आपने हँसते-हँसते फांसी का दण्ड सुना। इस समय एक बड़ी कारुणिक घटना घटी। इनके पिता और पत्नी दोनों दुःखी होकर अन्तिम भेंट करने जेल में आये। पंडित जी जेल में भी बड़े प्रसन्न रहते थे। अपने पिता जी को देखकर बोले—पिता जी क्या आप मुझ से प्रसन्न हैं? पिता जी की आँखों से अश्रुधारा बह निकलीं और कहने लगे—"पुत्र! कल तुम फांसी के तख्ते पर लटकने जाते हो। मेरी आशाओं पर वज्रप्रहार होने वाला है, मेरा सर्वस्व लुट रहा है और तुम मुझ से ऐसा प्रश्न कर रहे हो?" पं० जगतराम ने उसी प्रकार प्रसन्नतापूर्वक कहा "क्या आपने गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रों की बलिदान की कथा नहीं पढ़ी? ऐसे वीरों के लिए क्या आपके मुख से वाह! वाह! नहीं निकलता? फिर आप आज रो क्यों रहे हैं? यह वही नाटक तो है जो आपके ही घर खेला जा रहा है। इस पर तो आपको प्रसन्न होना चाहिये। मैं अपना यौवन मातृभूमि के चरणों पर अर्पण करने जा रहा हूँ। क्या यह आप के लिये प्रसन्नता की बात नहीं है?" यह बातें सुनकर उनके पिता जी मौनभाव से पुत्र के मुख की ओर देखते रहे। वृद्ध पिता के अत्यन्त आग्रह करने पर पंडित जी ने हाईकोर्ट में अपील की। अपील में फांसी का दण्ड कालेपानी के रूप में बदल दिया। पंडित जी की हजारों रुपये की सम्पत्ति जब्त कर ली गई। परिवार वालों को कहीं खड़े होने को स्थान नहीं था। पंडित जी का स्वास्थ्य सर्वथा नष्ट हो रहा था। आपकी चिकित्सा के लिये डा० अन्सारी, डा० खानचन्द्र-देव और डा० गोपीचन्द आदि को गुजरात के जेलखाने तक जाना पड़ा।

रोग से छुटकारा पाने पर अधिकारियों की कृपादृष्टि आप पर हुई और कई वर्षों तक लगातार जेल की अन्धेरी कोठड़ी में 'डण्डे गारद' में रक्खे गये। यहां तक छः वर्ष तक दीपक का प्रकाश भी देखने को नहीं मिला। सात वर्षों तक पहनने को जूता नहीं मिला, जिससे बिवाई फटने से आपको असह्य पीड़ा सहनी पड़ी। इस प्रकार से नाना कष्ट आपको सहने पड़े। किन्तु इन भयंकर कष्टों का पंडित जी के मन

पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इन कष्टों को अपना तप समझ कर पंडित जी मस्त रहते थे। ज्यों-ज्यों आपको कष्ट दिये गये त्यों-त्यों आपका तपोबल बढ़ता गया। जिस जेलखाने में आप जाते उसी के कैदी पंडित जी की ओर खिंचे चले आते थे। पंडित जी के व्यक्तित्व में महान् आकर्षण था। सभी कैदी आपके शिष्य बन जाते थे। आपके जीवन और उपदेशों का प्रभाव ऐसा पड़ता था कि कैदियों के जीवन में परिवर्तन होकर धार्मिकता आती थी। पंडित जी कैदियों के चरित्र को सुधारने का सदैव यत्न करते थे। जो उनको सदाचार का महत्व समझाया करते थे। जो कैदी रोगी हो जाते थे उसकी आप बड़ी लगन से सेवा किया करते। पीछे तो आपके इस व्यवहार से जेल के अधिकारी भी सदैव आप से प्रसन्न रहते थे।

यह गुण उनमें आर्यसमाज की कृपा से आये थे। यह दयानन्द कालिज के छात्र रह चुके थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपदेशों का आपके मानस पट पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ में भी आप श्रद्धा रखते थे। किन्तु आर्यसमाज की शिक्षा ने आपकी काया पलट दी थी। इसी कारण आपका चरित्र बड़ा उच्च और व्यक्तत्व बड़ा ही प्रभावशाली था। आप में प्रचार और सेवा की लगन थी। आप मनुष्यमात्र से प्रेम करते थे। सबको अपने सगे भाई के समान देखते थे। आपका मानस पवित्र और द्वेष-रहित था। पंडित जी श्रीमद्भगवद्गीता से भी प्रेम रखते थे।

आपने जेल में ही संस्कृत, गुरुमुखी और हिन्दी भाषा का अभ्यास किया था। आप इन भाषाओं में सुन्दर गद्य और पद्य लिख लेते थे। आप अपने उपदेशों में गीता के उद्धरणों का प्रयोग किया करते थे। गुजरात जेल में खान अब्दुल गफ्फार खाँ, डा० अन्सारी साहब, मौ० मुफती किफायत, उल्ला साहब, डा० खानचन्द्रदेव, डा० गोपीचन्द जी और चौधरी कृष्ण गोपाल आदि विद्वान् आपका गीतोपदेश सुनकर मुग्ध हो जाते थे। खान अब्दुल गफ्फार खां साहब तो आपकी गीता की व्याख्या पर इतने मुग्ध थे कि प्रतिदिन एक घण्टे आप से गीता की व्याख्या सुना करते थे।

आज आप जीवित हैं वा नहीं यह भी कोई नहीं जानता। उधर पंजाब में भयंकर हत्याकांड हो जाने से बहुत प्रयत्न करने पर भी उनका पता नहीं चला। पंडित जी की एक कविता जो अधूरी है, दी जाती है। उनका "खाकी" उपनाम तखुलुस था।

गर मैं कहूं तो क्या कहूं कुदरत के खेल की।
हैरत से तकती है मुझे दीवार जेल की॥
हम जिन्दगी से तंग हैं तिस पर भी आशना-
कहते हैं और देखियेगा धार तेल की।
जकड़े गये हैं किस तरह हम गम में क्या कहें,
बल खा के हम पे चढ़ गया, मानिन्द बेल की॥
'खाकी' को रिहाई तू दोनों जहाँ से दे।
आ ऐ अंजल तू फांद के दीवार जेल की॥

श्री हरीकिसनसिंह

(ले० ब्र० सोमदेव)

श्री हरीकिशन का जन्म गल्लाढेर नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम गुरुदासमल था, जो गल्लाढेर के एक अच्छे जमींदार और रईस थे। हरीकिशन तीक्ष्ण-बुद्धि के होनहार युवक थे। आपने मिडिल तक शिक्षा प्राप्त की थी।

हरीकिशन का खानदान विख्यात देश-प्रेमी था। और इसी देश-प्रेम के अपराध में आपके भाई भगत-राम पेशावर जेल में कैद रहे।

कहते हैं कि भाई की कैद ने श्री हरीकिशन को विशेष विक्षुब्ध कर दिया था। और कभी-कभी हीरकिशन अपने पिता से कहते थे कि—"मैं काकोरी के शहीदों की तरह मरना चाहता हूं।" इसके पश्चात् आपने क्रान्तिकारियों की पुस्तक पढ़नी आरम्भ कर दी, विद्या के अतिरिक्त आपको शिकार का भी बहुत शौक था। बन्दूक, पिस्तोल आदि बहुत अच्छी तरह चलाने आते थे। आप अपने गांव के आस-पास बन्दूक चलाने में प्रसिद्ध थे।

हरीकिशन अपने पिता को घर के कामों में भी सहायता देते थे। आपका स्वभाव शान्त था, परन्तु एक दिन अकस्मात् आपने घर छोड़ दिया और ला पता हो गये।

आप २३ दिसम्बर १६३० को पञ्जाब विश्वविद्यालय का पारितोषिक वितरण उत्सव पर गए थे। विद्यालय के चान्सलर और गवर्नर परीक्षोतीर्ण छात्रों को उपाधि देने आये थे। विद्यालय के अन्दर और बाहर पुलिस का पहरा था। बिना टिकट के अन्दर कोई भी नहीं जा सकता था। इस प्रकार सभा की कार्यवाही निर्विघ्न समाप्त हुई। अन्त में सभा विसर्जित करके जब गवर्नर बाहर जा रहे थे तो अचानक नवयुवक ने हाल के अन्दर से फायर किया। गवर्नर की पीठ और भुजा पर दो गोलियां लगीं। इसके अतिरिक्त अन्य मनुष्यों को भी चोटें आईं और एक की मृत्यु भी हो गई। गवर्नर की मरहमपट्टी करने से वे अच्छे हो गए।

गोली चलाने वाला नवयुवक अभी हाल के बरामदे में खड़ा होकर गोलियां चला ही रहा था कि एक इन्स्पेक्टर ने उसे पकड़ लिया। इस नवयुवक का नाम हरीकिशन था।

जब जामा में तलाशी ली तो हरीकिशन के पास एक पिस्तौल, छः गोलियां, एक चाकू और कुछ कागज प्राप्त हुए थे। ३ जनवरी १६३१ को लाहौर जेल में हरिकिशन के पहले मुकद्दमे की पहली पेशी हुई। हरीकिशन ने किसी भी प्रकार का वक्तव्य नहीं दिया और न किसी प्रश्न का उत्तर दिया। शान्त स्वभाव से अदालत में बैठे हुए थे, परन्तु अपना अपराध स्वीकार करते हुए आपने इतना अवश्य कहा था—

"यह नहीं बता सकता कि मैं लाहौर में कब आया, परन्तु मैं यहां गवर्नर को मारने के लिए आया था। मैं यह भी नहीं बताना चाहता कि लाहौर में कहां ठहरा था। मैं २३ दिसम्बर को टिकिट के

साथ यूनिवर्सिटी हाल में गया था। मैंने कुल छः फायर किये वे गवर्नर पर किये और अपने आपको बचाने के लिए। न कि इस विचार से कि इससे कोई मारा जाय। अदालत में जो पिस्तौल और गोलियाँ आदि पेश की गई हैं, वे मेरी हैं। और कुछ नहीं कहना चाहता और न यह बताना चाहता हूँ कि मैंने यह कार्य क्यों किया? मैंने जो कुछ किया है वह अपनी इच्छा से किया है।

अदालत ने उसी दिन इस व्यक्ति को सेशन्स को सोंप दिया। इसके पश्चात् हरीकिशन के पिता भी लाहौर आ गये। उस समय हरीकिशन ने भूख हड़ताल कर रखी थी। परन्तु पिता के अनुरोध करने पर उसने तोड़ दी। इसके पश्चात् पिता के कहने पर मुकद्दमा चलाना आरम्भ कर दिया। २१ जनवरी १९३१ ई० को सेशन्स जज की अदालत में पेशी हुई। इस पेशी पर वकीलों ने धाराएँ ३०२ और ३०७ के अनुसार अपराधी बताया और साथ ही यह भी साक्षी दी कि कच्ची आयु का ध्यान देकर की जाये। परन्तु जज ने दया को अनुचित समझ हरीकिशन को फांसी की आज्ञा सुना दी। हरीकिशन ने दण्ड सुनकर गम्भीरता से उत्तर दिया—"बहुत अच्छा।"

इसके पश्चात् सरकार से फाँसी दण्ड हटाने की अनेक प्रार्थनाएँ की गईं परन्तु सरकार ने कोई भी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। ८ जून १९३१ को हरीकिशन के माता-पिता उनसे अन्तिम बार मिलने के लिए मियां वाली जेल में गए थे। इस समय हरींकिशन के मस्तिष्क पर प्रसन्नता थी, उन्होंने अन्तिम इच्छा यह प्रकट की थी कि मेरी लाश मेरे सम्बन्धियों को दे दी जाये और मेरा अन्तिम संस्कार वहीं हो जहाँ कि सरदार भगतसिंह आदि का हुआ था। और मेरा पूर्वजन्म इसी देश में हो, ताकि मैं मातृभूमि को गुलामी के बन्धन से मुक्त करने में भाग ले सकूँ।

परन्तु दुःख की बात है कि अधिकारियों ने उनकी अन्तिम इच्छा भी पूरी नहीं की। परिजनों के प्रार्थना करने पर भी शव न दिया गया। यहां तक कि उन्हें जेल के पास भी नहीं जाने दिया।

परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि उनके भाई सरकारी कचहरी में नौकरी पर थे उन्हें वहाँ से हटा दिया गया। और अन्तिम साक्षात्कार करने के लिए ८ जून को हथकड़ियाँ लगा कर मियाँ वाली जेल में लाये गये। आपके भाई भगतराम ने अधिकारियों से बहुत प्रार्थनाएँ कीं, परन्तु एक भी न सुनी गई। अन्त में सुपरिण्टेण्डेंट के पास गये। उन्होंने इतना ही बताया कि हिन्दू धर्मानुसार अन्तिम संस्कार किया जायेगा।

आठ तिथि को ११ बजे इन लोगों को मिलने का समय मिला था। वह भी केवल बीस किनट। और मिलने वालों को अन्दर आने की आज्ञा न देकर दो सौ फिट की दूरी पर धूप में मिलने की आज्ञा दी। तब मनुष्यों ने स्पष्ट निषेध कर दिया कि इतनी दूर से और ऐसी चिल्लाती हुई धूप में हम कैसे बात कर सकते हैं। इतना कहने पर जेल के अधिकारियों ने अन्दर जाने की आज्ञा दे दी। तब मिलने वालों को हरीकिशन ने वही इच्छा प्रकट की जो मैं ऊपर लिख चुका हूं।

इसके पश्चात् युवक श्री हरीकिशन को ९ जून सन् १९३१ को मियांवाली जेल में फांसी के तख्ते पर झुला दिया गया। फांसी के पश्चात् हरीकिशन के पिता ने फूल डालने के लिए अधिकारियों को तार किया परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। अन्त में मैजिस्ट्रेट ने कहा कि प्रातःकाल तक फूल आदि प्रवाह नहीं होगा। परन्तु अन्त में मालुम हुआ कि आधी रात को मुसलमानों की कबर में जला दिया गया। और जहाँ अन्त्येष्टि संस्कार किया वहाँ पर पुलिस का पहरा लगा दिया। फांसी के समय हरीकिशन का भार नौ पौंड बढ़ गया था।

———

शहीद शिरोमणि मृत्युञ्जय वीर भगतसिंह

(ब्र० महादेव)

भारतवर्ष के राष्ट्रीय इतिहास में वीरवर भगतसिंह का जीवन और बलिदान युग-युगान्तरों तक तथा कोटि-कोटि पुरुषों को सत्प्रेरणा देता रहेगा।

आप किशोर अवस्था से ही अत्यन्त क्रांतिकारी आन्दोलन के सम्पर्क में थे। इसका कारण आपके परिवार की क्रान्तिकारी परम्परायें थीं। आपके पितामह सरदार अर्जुनसिंह जी जन्म से सिख होते हुए भी आर्यसमाज के सक्रिय कार्यकर्ता और प्रचारक थे। यह उस युग के लिए एक असाधारण बात थी। क्योंकि उस समय आर्यसमाज और सिक्खों में बड़ा विरोध था। अतः ऐसे समय जबकि प्रतिपक्षी के प्रति तीव्र घृणा और द्वेष की लहर बह रही हो, केवल इसलिए प्रतिपक्षी के समाज में राष्ट्रोद्धार की भावनाएँ दिखाई दे रही हैं। अपने ग्राम परिवार और आत्मीयों का विरोध सहन करते हुए भी उसका समर्थक बन जाना कैसे उत्कट साहस का कार्य था। इसका अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है।

श्री अर्जुनसिंह जी कोई भी इस प्रकार का अवसर खाली न जाने देते थे। जब कि सिख जनता पर आर्यसमाज के वैदिक सिद्धान्तों की सच्चाई का प्रभाव न डाला जा सकता हो। इस विषय में आपका उत्साह किस प्रकार का था और आप में कहां तक वैदिक धर्म में श्रद्धा थी, उसका अनुमान निम्न घटना से लगाया जा सकता है।

एक बार विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए आपको अपने ग्राम से लगभग ६० मील दूरी पर जाना पड़ा। संयोगवश जब आप उत्सव में पहुंचे, ठीक उसी समय कोई पुरोहित सिख-आर्यसमाज के सिद्धान्तों की, विशेषतः अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की कटुलोचना कर रहा था। आपने तुरन्त ही उस पुरोहित को चुनोती दी कि वह जो सत्यार्थप्रकाश के उदाहरण उपस्थित कर रहा है, वे सत्यार्थप्रकाश में नहीं हैं और पुरोहित सत्यार्थप्रकाश को बदनाम करने के लिये कल्पित उदाहरण उपस्थित कर रहा है।

उस पंजाबी ग्राम में और जाट सिक्ख के मध्य में इस प्रकार की चुनौती देना साधारण काम नहीं था। पुरोहित ने अपनी पूरी शक्ति के साथ आपके कथन का विरोध किया और यह घोषणा की कि यदि सत्यार्थप्रकाश सामने लाया जाये तो सिद्ध कर दूंगा कि जो मैंने उदाहरण दिये हैं वे सत्यार्थप्रकाश के हैं वा नहीं।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि पुरोहित ने बहुत ही सुरक्षित मार्ग अपनाया था। क्योंकि उस पिछड़े हुए युग में पंजाब के इन ग्रामों में सत्यार्थप्रकाश तो दूर ही रहा, कोई भी पुस्तक नहीं मिलती थी। इस कारण सत्यार्थप्रकाश उपलब्ध नहीं हो सका। और पुरोहित उसी भावना से विवाह कार्य सम्पन्न करता रहा। अकस्मात् कुछ अन्य व्यक्तियों ने अनुभव किया कि अर्जुनसिंह जी दिखाई नहीं दे रहे। परन्तु इस बात पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। क्योंकि यदि कोई व्यक्ति विवाद में हार जाता है तो उसका लोगों की आंखों से छिपना उसके लिए एक स्वाभाविक सी बात है। अतः उन लोगों ने कल्पना की कि यहीं किसी कोठड़ी में विश्राम कर रहे होंगे।

परन्तु दूसरे दिन प्रातः ही पुरोहित जी विपत्ति में पड़ गये। क्योंकि अर्जुनसिंह जी रातों-रात साठ मील जाकर साठ मील वापिस लौटकर अपनी सत्यार्थप्रकाश की प्रति ले आये। साथ ही यह भी स्मरण रहे कि आप पहले दिन साठ मील यात्रा कर चुके थे। इतना होते हुए भी आप यह सहन न कर सके कि कोई व्यक्ति आर्यसमाज के विरुद्ध मिथ्या प्रचार आपके सामने करे और फिर बच निकले। अन्त में पुरोहित ने क्षमा मांगी और अपना पिण्ड छुड़ाना चाहा। आप नित्य हवन किया करते थे। जहां जाते वहाँ पोटली में हवन कुंड और हवन सामग्री बांध ले जाते थे।

आपके तीन पुत्र हुए उनके नाम इस प्रकार हैं श्री किशनसिंह, श्री अजीतसिंह और श्री स्वर्णसिंह। इन तीनों में ही अपने पिता जी की भांति क्रान्ति की भावनाएँ देदीप्यमान थीं। बीसवीं सदी के आरम्भ में इन तीनों भाइयों ने पञ्जाब में गरम राजनीतिक दल का बीज वपन किया था। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पञ्जाब में यह कार्य अत्यन्त ही दुष्कर था। क्योंकि एक तो पञ्जाब भारतीय फौजों में वीर भेजने का मुख्य केन्द्र था। अतः अंग्रेज सरकार यह किञ्चित् मात्र भी नहीं सहन कर सकती थी।

इतना होते हुए भी श्री किशनसिंह जी ने और अपने दोनों भाइयों के साथ इस कठिन कार्य का बीड़ा उठाया और अन्य प्रान्तों की भांति इस प्रान्त में भी स्वराज की ज्वालाएँ उठने लगीं। ये ज्वालाएँ किसान वर्ग तक जा पहुँचीं। सारे पञ्जाब में यह स्थिति पैदा कर दी कि श्री अर्जुनसिंह जी के तीनों वीर पुत्रों को पञ्जाब सरकार ने पकड़ना आवश्यक समझा, इसके पश्चात् इन वीरों का जीवन कभी कारावास में, कभी गुप्तावस्था में व्यतीत होने लगा। इन तीनों भाइयों में से श्री स्वर्णसिंह जी जेल की यातनाओं के पश्चात् पूर्ण युवावस्था में ही इस संसार से चल बसे। उसके पश्चात् श्री अजीतसिंह जी सन् १९०८ में भारत से अचानक विदेश चले गये और वहां लगभग ३८ वर्ष तक घोर कठिनाइयों का सामना कर भारत माता की मुक्ति के कार्य करते रहे। अन्त में १९४६ में जब कि ब्रिटिश सरकार अपना विस्तर गोल कर रही थी उसी समय बड़ी कठिनाइयों से आप भारत आ गये। परन्तु कुछ दिन पश्चात् १४ अगस्त १९४७ में जब कि अगले दिन भारत अपना स्वतन्त्रता दिवस मनाने का उपक्रम कर रहा था। उस समय आप दूसरे लोक में चल दिए। इस प्रकार अन्त श्री किशनसिंह रह ही गये। आपका भी स्वर्गवास अभी कुछ दिन पूर्व ही हुआ है। भारत के क्रान्ति आन्दोलन में आपने यावज्जीवन सहयोग दिया है। आपका साहस अदम्य था। आप में स्वदेश भक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। आप मरते समय तक अपनी मातृभूमि के भविष्य के लिए चिन्तित थे।

वीरवर भगतसिंह जी का जन्म आश्विन शुक्ला त्र्योदशी शनिवार सम्वत् १९६४ में लायलपुर जिले के बांगान नामक ग्राममें हुआ था जो पंजाब राज्यमें स्थित है। आपके जन्म से पूर्व आपके पिता जी तथा चाचा दोनों माण्डले जेल के द्वीपान्तर वास में थे। जिस दिन आपका जन्म हुआ उसी दिन आपके पिता जी तथा चाचा भी बन्धन से मुक्त होकर आये। इसी कारण आपको "भाग्य वाला' कहते थे आगे चल के आपका भगतसिंह नाम पड़ा। आपकी वाल्यावस्था दादी तथा माता जी की देखरेख में व्यतीत हुई। ये दोनों महिलाएँ धार्मिक थीं। अतः आप पर धर्म का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। आपकी मेधा शक्ति बहुत अच्छी थी। आपने तीन वर्ष की अवस्था में गायत्री मन्त्र याद किया था।५ वर्ष की अवस्था में आप स्कूल में पढ़ने चले गये। आपका यज्ञोपवीत संस्कार शास्त्रार्थ महारथी पं० लोकनाथजी नववाचस्पति द्वारा हुआ था, एक बार आपको अपने

घर वालों के साथ लाहौर जाने का अवसर मिला। लाहौर में आपके पिता जी के परम मित्र लाला आनन्द किशोर जी यहां आये थे। लाला जी ने आपको बड़े प्रेम से उठाकर अपने कन्धे पर रखा और थपकियां देते हुए पूछा—"कि क्या करते हो?" आपने अपनी तोतली में उत्तर दिया कि—"मैं खेती करता हूँ।" लाला ने पूछा—"तुम बेचते क्या हो?" आपने उत्तर दिया—"मैं बन्दूक बेचता हूं।" यह बातचीत इतनी प्यारी थी कि इनका स्मरण बड़े होने पर भी हुआ करता था। बचपन में आप बड़े खिलाड़ी थे। बचपन में ही आप क्रान्ति दल बनाकर अपने साथियों के साथ युद्ध करते थे। आपको वीरता पूर्ण खेलों में अधिक रुचि थी, बालक पन से आपको तलवार बन्दूकादि से बड़ा प्रेम था। एक बार अपने पिता के साथ खेत में चले गये। बालक भगतसिंह ने पिता से पूछा कि "पिता जी ये लोग क्या कर रहे हैं?" पिता ने उत्तर दिया कि अन्न बो रहे हैं। इस पर आपने कहा कि अनाज तो बहुत उत्पन्न होता है, परन्तु तलवार बन्दूकादि सब जगह नहीं होतीं। अतः ये तलवार आदि क्यों नहीं बोते हैं?

आगे शिक्षा पाने के लिए आपको पिता जी ने दयानन्द ऐंग्लो वेदिक विद्यालय (डी० ए० बी० स्कूल) में प्रवेश कराया। वैसे तो सिख परिवार के बालक प्रायः खालसा स्कूल में शिक्षा प्राप्त करते है क्योंकि उनका यह शिक्षणालय जातीय था। परन्तु सिख होते हुए भी आपका परिवार आर्य समाज की ओर था। अतः आपने अपने पुत्र को (डी० ए० बी० स्कूल) में ही भरती कराया।

दयानन्द ऐंग्लो वैदिक विद्यालय में आपने नवीं कक्षा पास की। इसी समय १६२१ में महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया। सारे देश में सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों का बहिष्कार आरम्भ हुआ। इसलिए आप भी डी० ए० बी० कालेज छोड़ भारतीय विद्यालय में चले गये। उस समय उसके प्रबन्धकर्ता स्वा० भाई परमान्द जी थे। आपने भगतसिंह की परीक्षा लेकर एफ० ए० में प्रवेश कराया। सन् १६२२ में एफ० ए० की परीक्षा पास की, उसी समय आपका श्री सुखदेव तथा अन्यान्य क्रान्तिकारियों से परिचय हुआ। उधर घर वालों ने आपके विवाह का आडम्बर रचा। जब इसकी सूचना आपको मिली तब आप अपना बिस्तर-बोरिया उठाकर लाहौर से अन्यत्र चले गये। और पर्याप्त दिनके पश्चात् अपने आप पिता को पत्र लिखा जिसमें लिखा था कि "मैं विवाह करना नहीं चाहता, इसी कारण मैंने घर छोड़ दिया है आप मेरी कोई चिन्ता न करें। मैं बहुत अच्छी अवस्था में हूँ।"

लाहौर से श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार से पत्र लेकर आप गणेश शङ्कर विद्यार्थी के पास कानपुर गये। वहाँ प्रताप प्रेस में कार्य करने लगे। वहां अपना नाम बलवान् रखा था। इसी नाम से आप लेखादि लिखा करते थे। उधर आपके घरवालों ने घर में हाहाकार मचा रखा था। आपकी दादी जी को बेहोशी के दौरे आने लगे थे। उधर आपका क्रान्तिकारियों से पर्याप्त परिचय हो गया था। आप पञ्जाबी प्रांत में पैदा होने पर भी हिन्दी से बहुत प्रेम करते थे। आप किशोर अवस्था से ही हिन्दी की पुस्तक पढ़ लिख लेते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे अभ्यास करके साहित्यकार भी बन गये थे।

एक बार हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने किसी एक विषय पर सर्वोत्तम निबन्ध लिखने के लिये ५० रु० पुरुषकार की घोषणा की। उसमें तीन व्यक्तियों का नम्बर पहला आया, क्योंकि तीनों के निबन्ध एक ही कोटि के माने गये। उसमें श्री भगतसिंह और यशः पतन एवं अन्य कोई था। इससे आपको हिन्दी साहत्य पर कितना अधिकार था, यह मालूम होता है।

इसी साल गङ्गा और यमुना में भयङ्कर बाढ़ आई थी। संयुक्त प्रान्त के कई स्थानों में गाँव के गाँव इस भयङ्कर बाढ़ में नष्ट-भ्रष्ट हो गये। श्री बटुकेश्वर दत्त उन दिनों कानपुर में ही रहते थे। बाढ़

पीड़ितों की सहायता के लिए श्री दत्त जी ने एक समिति स्थापित की, जिसके सरदार भगतसिंह भी सदस्य थे। बड़े उत्साह और लगन से उनकी सेवा की। भगतसिंह और दत्त जी के एक साथ अधिक दिन काम करने से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। दोनों के कार्य का कानपुर जिले पर अमिट प्रभाव पड़ा और आपको बड़ी श्रद्धा भक्ति से देखने लगे। भगतसिंह को एक स्कूल का प्राध्यापक नियुक्त किया। इस समय आपका पता आपके पिता जी को मिला। आपके मित्र को एक तार देकर कहा कि श्री भगतसिंह को कह दो कि माता जी अत्यन्त बीमार हैं। माता जी का समाचार सुनते ही आप पञ्जाब की ओर चल दिए और चलते समय तार कर दिया कि मैं आ रहा हूँ।

लायलपुर में आपने एक भाषण दिया। जिसमें एक अंग्रेज को मारने वाले गोपीनाथ की सराहना की। इस पर पुलिस ने आप पर अभियोग चलाया। आपके पिता की भी यही इच्छा थी कि भगतसिंह जेल का कुछ अनुभव करें। वह भी इच्छा पूर्ण न हो सकी। फिर आप लाहौर चले गये और लाहौर से अमृतसर आपने अमृतसर में "अकाली" नामक समाचार पत्र के कार्यालय में कार्य आरम्भ किया। वहाँ पर पर्याप्त समय तक सम्पादक का काम करते रहे। परन्तु किसी कारण वश लाहौर जाना पड़ा। वहां पर पुलिस आपकी ताक में थी ही। अतः वहां आप को पकड़ लिया और छः हजार की जमानत पर छोड़ दिया गया।

सन् १६०७ में आपने अपने पिता की आज्ञा से लाहौर में विशुद्ध दूध पहुंचाने के लिए एक कारखाना खोला। यह कारखाना कुछ दिन तो अच्छा चला परन्तु आपके जीवन का उद्देश्य दूध बेचना न था। अतः आप लापता हो गये। जब आप घर आये तो पिता जी ने दो सोटी मार दी। इस का फल यह हुआ कि वह दूध का कारखाना समाप्त हो गया।

लाहौर-षड्यन्त्र वाले मुकद्दमे में एक दिन सरकारी वकील के किसी कथन पर भगतसिंह को हँसी आ गई। इस सरकारी वकील ने अदालत से शिकायत की कि भगतसिंह हँसकर अदालत की तौहीन कर रहा है। वीरवर ने हँसकर उत्तर दिया—"मुझे तो ईश्वर ने हंसने के लिए ही पैदा किया है। मैं तमाम जिन्दगी हंसता रहूंगा। हँसता रहूंगा। आज अदालत में हँस रहा हूं और कल ईश्वर ने चाहा तो फाँसी के तख्ते पर भी हसूँगा। वकील साहब! इस समय तो मेरे हँसने की शिकायत कर रहे हैं,परन्तु जब मैं फांसी के तख्ते पर हँसूँगा तब किस अदालत से शिकायत करोगे?"

३० अक्टूबर सन् १६५८ को लाहौर में साईमन कमीशन आने वाला था। भारत के अपमान का जीवन प्रतीक साइमन कमीशन आज सरदार कर्तारसिंह की लाश पर पांव रखकर पञ्जाब के निवासियों से यह पूछने आया था कि क्या सचमुच स्वराज्य चाहते हैं? और क्या स्वराज्य के योग्य भी हैं? इस पर लाहौर की जनता ने यह निश्चिय किया था कि जिस प्रकार देश के अन्य भागों ने बहिष्कार किया है। उसी प्रकार यहां किया जायेगा। इस पर अत्याचारी सरकार ने इसको कुचलने के लिए १४४ की धारा की घोषणा कर दी। यह ससाचार प्रत्येक मनुष्य में फैल गया कि यहां भी "जलियां वाला बाग" बन जावेगा। बड़े बच्चों को धमका रहे थे कि आज बाहर न निकलना। परन्तु युवकों का हृदय उछल रहा था कि कब जुलूस निकले और हम उसमें कब सम्मिलित होवें। शहर के चारों ओर पुलिस ही पुलिस दिखाई दे रही थी। कायर देखते हैं तो कहते हैं कि यह पुलिस हमारे शरीर को मार देगी, परन्तु क्या वह हृदय के भावों को भी मार देगी? ठीक समय पर जुलूस निकाला। चारों ओर मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देने लगे। साथ ही पञ्जाब के सबसे अधिक सम्मानीय नेता लाला लाजपतराय जी इस जुलूस का नेतृत्व

कर रहे थे और सबसे अगली पंक्ति में थे। इस वयोवृद्ध मूर्ति को देखकर सभी श्रद्धा से सिर झुका लेते थे। आपको "स्वाधीनता" शब्द पर जेल जाना पड़ा था तभी आपने सरकार से वीरता पूर्वक लोहा लिया था। जुलूस स्टेशन पर पहुंचा। पञ्जाब की राजधानी उनके आगमन को किस दृष्टि से देखती है? "साईमन गो वैक" और "बन्दे मातरम्" की ध्वनि से आकाश गूँज उठा। सामने पुलिस का मोर्चा था, परन्तु पुलिस की कोई परवाह न करते हुये आगे चलते ही रहे। अकस्मात् पुलिस ने आगे बढ़कर लाठी चार्ज कर दिया। उसमें से एक गोरे कौम वाले अधिकारी ने आकर लाला लाजपतराय जी पर दण्डे बरसाने आरम्भ कर दिये। अन्य दर्शक चकित हुए। लाठी पड़ती रही परन्तु पीछे नहीं हटे, छाती तानकर वहीं खड़े रहे। इस पर नव युवकों ने आगे बढ़ कर यह वार अपने ऊपर लिया। कुछ देर पश्चात् यह अधिकारी वहां से चल दिया। चलते समय लाला जी ने पूछा-आपका क्या नाम है? उसने मुँह को पिचकाया और घृणा पैदा कर कुछ न कहा। उसी समय एक नव युवक ने मन ही मन में यह सोचा कि 'मत बता तू नाम अपना? लेकिन एक दिन तेरा नाम गली-गली में मारा-मारा फिरेगा।" उस नव युवक की आंखें अङ्गारे जैसी लाल हो रही थीं। उसका सारा शरीर भाव वेश से कांप रहा था। उसी दिन सायं काल एक विराट् सभा में भाषण देते हुए लाला जी ने कहा था "कि मेरे ऊपर की गई चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन के लिए कील सिद्ध होगी।" वह युवक भी उसी सभा में विद्यमान था और यह विचार रहा था कि क्या सचमुच ही इस देवता का शाप अवश्य ही सफल होगा? इस काण्ड के केवल १० दिन वाद ही १७ नवम्बर १९२८ को लाला जी उन घातक चोटों के कारण चल बसे।

इधर लाला जी की मृत्यु पर शोक सभाएं होने लगीं। एक सभा में चित्तरञ्जनदास जी की धर्मपत्नी माता वासन्ती देवी ने कहा "मैं जब यह सोचती हूं कि किसके हिंसक हाथों ने स्पर्श करने का साहस किया था। एक ऐसे व्यक्ति के शरीर को, जो इतना वृद्ध, इतना आदरणीय. भारत माता के तीस कोटि नर नारियों को इतना प्यारा था। तब मैं आत्मापमान के भावों से उत्तेजित होकर कांपने लगती हूं। क्या देश का यौवन और मनुष्यत्व आज जीवित है? क्या वह यौवन और मनुष्यत्व का भाव इस कुत्सा को उसकी लज्जा और ग्लानि अनुभव नहीं करता है? मैं भारत भूमि की एक अबला हूं। मैं इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर चाहती हूँ। अतः युवक-समाज आगे आकर उत्तर दें।"

भारत युवक-समाज ने सचमुच ही इसका उत्तर दिया। इस भीषण काण्ड के ठीक तीन मास पश्चात् १७ दिसम्बर सन् १९२८ को उक्त अंग्रेज अधिकारी मि० साण्डर्स सन्ध्या के लगभग ४॥ बजे ज्यों ही अपने दफ्तर से मोटर साईकिल लेकर चला त्यों ही सामने से किसी के रिवाल्वर की गोली उसके सीने में आकर लगी। वह नीच घायल होकर गिर पड़ा। पड़ते ही दो गोली और आकर लगीं। काम समाप्त हो गया। ये तीनों वीर मार कर वापिस आ गये। इन तीनों वीरों का नाम यह थे—श्री वीरवर भगतसिंह जी, श्री राजगुरु जी, श्री चन्द्र शेखर आजाद। तीनों साण्डर्स को यम लोक में पहुंचा कर वहां से डी० ए० बी० कालेज के भोजनालय में गये। वहां पर्याप्त समय रह कर वहाँ से चल दिये।

दूसरे दिन लाहौर में सभी प्रमुख स्थानों पर लाल रङ्ग के छपे हुए इस्तिहार लगे हुए थे। जिनमें लिखा हुआ था "साण्डर्स मारा गया। लाला जी की मृत्यु का बदला ले लिया गया।"

राष्ट्रीय अपमान के इस बदले से राष्ट्र के हृदय में एक गौरव उत्पन्न हुआ। साण्डर्स के मारे जाने पर सरकारी अधिकारियों में बड़ी हलचल मच गई। अपराधियों को शीघ्रातिशीघ्र खोज करने का कठिन आदेश दिया। पुलिस ने तत्काल ही लाहौर से बाहर जाने वाली सभी सड़कों पर अपना राज्य जमा

लिया और स्टेशन पर भी विशेष गुप्तचर नियुक्त कर दिये। लाहौर के बड़े स्टेशन पर एक नौजवान सरकारी अधिकारी एक युवती के साथ दीख पड़ा। उसके साथ हाथ में टिफिन कैरियर लिए एक खानसामा भी था। उसकी चपरास पर उक्त अफसर का नाम लिखा हुआ था। थोड़ी देर में ट्रेन आई और वह अफसर कुलियों को इनाम देता हुआ प्रथम श्रेणी के डिब्बे में उस युवती के साथ जा बैठा। खानसामा भी सर्वेंट क्लास में बैठ गया। ट्रेन देहली की ओर चल पड़ी। वहां पचासों खुफिया आदमी विद्यमान थे और अनेक तो ऐसे थे जो भगतसिंह जी के कार्यों पर दृष्टि रखते हुए महीनों आपके साथ थे। फिर भी वे यह न जान सके कि यह अफसर और कोई नहीं वही वीरवर भगतसिंह है जिसकी खोज में हम मारे-मारे फिर रहे हैं। और यह युवती वही क्रान्तिकारिणी समिति की सदस्या थी जिसका शुभ नाम सुशीलादेवी था। और जो खानसामा था वह राजगुरु था। इस प्रकार ये बचकर निकल आये। इधर आकर आपने पर्याप्त क्रान्ति के कार्य किये। कई जगह अपने विचार धारा के केन्द्र बनाये। आपने कलकत्ते के कार्नवालिस स्ट्रीट आर्यसमाज में कुछ समय निवास किया। वहाँ क्रान्ति का कार्य करते थे। जब आप वहां से आये तब आपने तुलसीराम चपड़ासी को अपनी थाली, कटोरी देकर आये। और कहा कि कोई देशभक्त आवे तो उसको इनमें भोजन करा देना। इस प्रकार कार्य चल रहा था। इधर केन्द्रिय विधान सभा में "ट्रेड डिस्ट्रिब्यूट्" का बिल पास हो रहा था। यह जनता के लिए अच्छा न था। इससे जनता अत्यधिक असन्तुष्ट थी। अतः आपने इसका विरोध करने की ठानी, विरोध इस प्रकार का कि जब यह बिल पास हो तब सभा भवन में बम्ब फेंका जाये। इस कार्य के लिए आप और अपने अनन्य मित्र बटुकेश्वरदत्त को चुना। ६ अप्रैल १६२६ को इस बिल पर मत पड़ने वाले थे। उसी दिन ये दोनों वहां जा धमके ठीक ग्यारह बजे अध्यक्ष ने घण्टी बजाकर दो विभागों में बाँटने को कहा यह स्मरण रहे कि यह विल अध्यक्ष महोदय ने पूर्व भी ठुकराया था। परन्तु कौंसिल आफ स्टेट ने इसे फिर विचारार्थ भेजा था। श्रीयुत अध्यक्ष पटेल ने बड़ी मर्म वेदना के साथ यह देखकर कि विरोधियों की संख्या अधिक है अतः आपने सधे हुए कण्ठ से कहा "यह विल पास" इतने में एक बम्ब का धड़ाका हुआ। सभास्थ जनता घबरा उठी। इतने में दूसरा बम्ब भी आ गया, सभा भवन धुएँ से भर गया। इस आवाज के होते ही सदस्य वर्ग में भगदड़ मच गई। अध्यक्ष के पास बैठे हुए सर जान साइमन पल भर में छिप गये। होम मेम्बर सर जेम्स केसर कुर्सियों के नीचे छिपे। केवल दो सदस्य अपने स्थान पर स्थित थे। पं० मोती लाल नेहरू और पं० मदन मोहन मालवीय।

जब धुआँ कुछ साफ हुआ तो लोगों ने देखा कि महिलाओं की गैलरी के पास यूरोपियन वेशभूषा से सुसज्जित दो युवक खड़े मुस्करा रहे थे। जब सभा में कुछ शान्ति हुई तब दोनों ही युवकों ने लाल पर्चे वितरित करने आरम्भ कर दिये। जिसका प्रथम वाक्य था "बहरों को सुनाने के लिए जोर से बोलना पड़ता है।" और इसके नीचे "हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन" के अध्यक्ष के हस्ताक्षर थे। पर्चे वितरण के पश्चात् यदि आप भागना चाहते तो अवश्य भाग सकते थे। परन्तु इन दोनों का कार्य क्रम और ही था। अतः वहीं खड़े रहे। कुछ देर बाद विधान सभा को घेर लिया गया परन्तु इन दो युवकों के पास कौन जावें। देखा कि ये हम से डरते हैं, इन दोनों ने भरे हुये रिवाल्वर अपने पास में से निकाल कर भगा दिये। फिर क्या? पुलिस वाले इन वीर युवकों को वश में कर ले गये? इन युवकों ने चलते समय "इन्कलाब जिन्दाबाद" 'साइमन का नाश हो' इन नारों से आकाश गुञ्जा दिया। इस समय इन युवकों के मुख पर कोई भय न था। वे एक स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ अपने कार्य को सुचारु

रूप से कर सकने पर सन्तोष प्रकट कर रहे थे ।

इसके पश्चात् आप दोनों को देहली पुलिस चौकी में ले जाया गया । वहां आप दोनों को अलग-अलग ही रखा गया । कुछ देर बाद सी० आई० डी० विभाग का एक अधिकारी आया और कहा कि "तुम्हारे जैसे लड़कों को तो मैं मिनटों में ठीक कर देता हूं । अपने आपको तुम क्या समझते हो । तुम्हारे साथियों ने सब कुछ स्वीकार कर लिया । यदि भला चाहते हो तो तुम भी बताओ नहीं तो………" इतना कह कर आप को वश में करना चाहा, परन्तु दाल न गली ।

नौकर-शाही, इन वीरों को अपने मार्ग से विचलित न कर सकी । इन पर मुकद्दमा चलाया गया । ७ मई से मुकद्दमा चला, जो १२ जून सन् १९२९ को सेशन में जाकर समाप्त हो गया । वीरवर भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त ने एक संयुक्त वक्तव्य दिया—"क्रान्तिकारी दल का उद्देश्य देश में मजदूरों तथा किसानों का समाजवादी राज्य स्थापित करना है । क्रान्तिकारी समिति जनता की भलाई के लिए लड़ रही है । वीरवर भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त ने जो वक्तव्य अदालत में दिया, वह बहुत ही विद्वत्तापूर्ण था । इसके पूर्व किसी भी क्रान्तिकारी ने अदालत में खड़े होकर ऐसा वक्तव्य नहीं दिया ।

२३ अक्तूबर सन् १९२८ को जो बम दशहरे के मेले पर फटा था, उससे दस तो यमलोक पहुंच गये और ३० घायल हो गये । नौकरशाही ने इस मामले की छान-बीन करनी शुरू की । जिसके फलस्वरूप पता लगा कि मि० सान्डर्स की हत्या करने में वीरवर भगतसिंह का हाथ भी था । इस सम्बन्ध में १६ व्यक्तियों पर केस चला । बाकी ने अनशन किया । अनशन में यतीन्द्रनाथ शहीद हो गये । इससे मुकद्दमे में काफी समय लग गया । इधर जनता में प्रचार हो गया । और, और भी जागृत हो गई । सरकार ने एक आर्डिनेन्स गजट में प्रकाशित किया । मुकद्दमा मजिस्ट्रेट से हटकर तीन जजों के एक ट्रिब्युनल के सामने आया । इन तीन जजों की अदालत को यह अधिकार दिया गया कि अभियुक्तों की अनुपस्थिति में भी उन पर मुकद्दमा चलाया जाये । ट्रिब्युनल ने इस मुकद्दमे का फैसला ७ अक्तूबर सन् १९३० को इस प्रकार सुनाया—"वीरवर भगतसिंह, शिवराम, राजगुरु और, सुखदेव को फांसी । विजयकुमारसिंह, किशोरीलाल, शिव वर्मा, गयाप्रसाद, जयदेव, और कमलनाथ त्रिवेदी को आजन्म कालेपानी की सजा । कुन्दनलाल को ७ साल और प्रेमदत्त को ३ साल की कैद ।"

वीरवर भगतसिंह की फांसी के समाचारों पर देश के कोने-कोने से रोष प्रकट किया गया । हड़तालें हुई । बम्बई में तो ट्रामें तक रुक गईं । ११ फरवरी सन् १९३१ को प्रीवी कौंसिल में इस मुकद्दमे की अपील की, किन्तु वह रद्द कर दी गई ।

वीरवर भगतसिंह, शिवराज राजगुरु तथा सुखदेव फांसी घर में बन्द थे । नौकर-शाही सरकार के जज महोदयों ने इन लोगों को फांसी की सजा देना ही ठीक समझा, लेकिन सारा देश इस सजा के विपरीत था । यहां तक कि कांग्रेस वाले भी जनता की सद्भावनाओं को साथ लेकर देश के इन पुजारियों को फन्दे से छुड़ाने का प्रयत्न करने लगे । महात्मा गांधी को वायसराय ने कहा कि मैं सरकार को इस सम्बन्ध में लिखूंगा और करांची कांग्रेस अधिवेशन हो लेने तक फांसी रुकवा दूंगा । इस पर महात्मा गांधी ने कहा—"यदि इन नौजवानों को फांसी पर लटकाना ही है तो कांग्रेस अधिवेशन के बाद ऐसा करने की बजाय पहिले ऐसा करना ठीक होगा । इससे लोगों को पता चल जायेगा कि वस्तुतः उनकी स्थिति क्या है और लोगों के दिल में झूठी आशायें न बंधेंगी ।" पं० नेहरू ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है—

"तारीख २३ मार्च सन् १९३१ को सायंकाल इन तीनों को फांसी दे दी गई । यों तो कायदा है

सवेरे फांसी देने का। किन्तु इनके लिए इस नियम को भंग किया गया। उनकी लाशें सम्बन्धियों को नहीं दी गईं, तथा उनको बड़ी बेपरवाही से मिट्टी का तेल डालकर जला दिया गया। उनके फल अनाथों के फ़ूल की भांति सतलुज में डलवा दिये गये। सारा देश आंखों की पंखुड़ियां बिछाकर जिनका स्वागत करने को तैयार था तथा जिनके "जिन्दाबाद" के नारे लगाते-लगाते मुल्क का गला बैठ गया था, उन पुरुष सिंहों की साम्राज्यवाद ने इस प्रकार हत्या कर डाली ? कितनी बड़ी गुस्ताखी और कितना बड़ा अपराध था ? सरकार जनमत की कितनी परवाह करती है ? यह एक इसी बात से कांग्रेस के नेताओं पर जाहिर हो जानी चाहिए थी, किन्तु ....?"

पाठकों को आश्चर्य होगा कि महीनों फाँसी घर में रहने के बाद भी वीरवर भगतसिंह का दिमाग और हृदय कितना स्वच्छ और साफ था। उन्होंने अपने छोटे भाई कुलतार सिंह के नाम अन्तिम पत्र लिखा था—

"अजीज कुलतार ?

आज तुम्हारी आँखों में आँसू देखकर बहुत रंज हुआ। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था। तुम्हारे आँसू तो बर्दास्त नहीं होते।

खबदार, परिश्रम से काम लेना। शिक्षा प्राप्त करना, और सेहत का ध्यान रखना। हौसला रखना। और क्या कहूं :—

उसे फिक्र है हरदम नया तर्जे जफर क्या है
हमें यह शोक देखें तो सितम की इन्तहा क्या है
घर से क्यों खफा रहे खर्च का क्यों गिला करें,
सारा जहाँ अदू साथी आओ मुकाबल करें।
कोई दम का महमाँ हूँ, ऐ अटले महफिल,
चिरागे सेहर हूँ, बुझा चाहता हूँ।
मेरी हवा में रहेगी ख्याल की बिजली,
यह मुश्ते खाक है, फानी रहे या न रहे।

अच्छा आज्ञा ? खुश रहो अहले वतन ? हम तो सफर करते हैं"। हौसला से रहना। नमस्ते।

तुम्हारा भाई।

आपके फाँसी के समय जवाहरलाल नेहरू ने इस प्रकार कहा था—

मैं भगत सिंह तथा उनके साथियों के अन्तिम दिनों में मौन धारण किये रहा, क्योंकि मैं डरता था कि कहीं मेरे किसी शब्द से फांसी की सजा रद्द होने की सम्भावना जाती न रहे। मैं चुप रहा, यद्यपि मेरी इच्छा होती थी कि मैं उबल पड़ूँ। हम सब मिलकर उन्हें बचा न सके। वे हमारे बहुत प्रिय थे, उनका महान् त्याग और साहस भारत के नौजवानों के लिए एक प्रेरणा की चीज थी और है। हमारी इस असहायता पर देश में दुःख प्रकट किया जायेगा। किन्तु साथ ही हमारे देश को स्वर्गीय आत्मा पर गर्व है। और "जब इंग्लैंड हमसे समझौते की बात करे तो हम भगतसिंह की लाश को भूल न जायेंगे।

अन्य कुछ विशेष घटनायें

पंजाब में घी अधिक मात्रा में खाने का प्रचलन है। भगतसिंह को पंजाब निवासी होने के कारण घी, दूध का शौक किसी से कम नहीं था। लाहौर के अनारकली बाजार में काळू दूध, दही वाले के यहाँ किशनसिंह का उधार हिसाब चलता था। इस कारण भगतसिंह जी वहाँ जाकर दूध, घी खाते थे और साथियों को भी खिलाते थे। इसी प्रकार आप भोजन में भी किसी से कम नहीं थे। यदि राजाराम शास्त्री होटल में दिखाई दें तो आप अत्यावश्यक कार्य को छोड़कर भी भूख न होने पर भी उनके कटोरे में से समस्त घी निकाल कर पी जाते थे। शास्त्री जी हाथ फैलाये "देखो रे! देखो रे! क्या कर रहा है, अरे! देखो इस जाट को"। सहायता के लिए दुहाई देते रह जाते।

आपके पिता जी आपका विवाह करना चाहते थे। आपका विचार विवाह न करने के कारण एक दिन आपने कहा कि मुझे पढ़ने लिखने का शौक है। इसलिए लड़की भी पढ़ी लिखी होनी चाहिए। इस पर आपके पिता जी उबल पड़े :—पढ़ी लिखी लड़की में कुछ और बढ़ जाता है क्या? पढ़ी लिखी औरत से पैदा बच्चे को क्या पढ़ाना नहीं पड़ता?

भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त के आत्मसमर्पण कर देने पर सशस्त्र पुलिस ने आपको बड़े साज बाज से पकड़ कर और बहुत सावधानी से उन्हें मोटर में बिठा, नई दिल्ली के थाने की ओर ले गई। आपकी मोटर सड़क पर एक टाँगे के पास गई। इस टाँगे में क्राँतिकारी भगवती चरण, भाभी दुर्गादेवी और सुशीला देवी जी विद्यमान थीं। और सुखदेव जी टाँगे का सहारा लिये साईकल पर चल रहे थे। टाँगे के पास से भरी मोटरें गुजरने पर इन लोगों ने एक दूसरे को पहचाना परन्तु व्यवहार न पहचानने का किया। यह मन का कितना बड़ा संयम था। भगतसिंह को उस समय मृत्यु के हाथों से लौटा लेने के लिये अपने प्राण दे देना अधिक सरल था। संयम और अनुशासन का ऐसा उदाहरण मिलना कठिन है। परन्तु श्रीमती दुर्गादेवी की गोद में बैठा हुआ "सची" भगतसिंह को देखकर उस तरफ हाथ करके जोर से चिल्ला उठा। लम्बे चाचा जी"।

इस पर दुर्गादेवी ने तुरन्त उसका मुंह गोद में दबाकर शान्त कर दिया। इस प्रकार से उन्होंने अपने प्राण बचाये।

अमर शहीद सुखदेव

(ले० ब्र० सोमदेव)

सरदार भगतसिह के साथ फांसी पर लटकाये जाने वाले उनके अन्यतम साथी श्री सुखदेव खास लायलपुर (पंजाब) के रहने वाले थे। आपका जन्म मि० फाल्गुण सुदी ७ सम्वत् १८६२ को दिन के पौने ग्यारह बजे हुआ था। आपके पिता का देहान्त आपके जन्म से तीन मास पहले हो चुका था। इसलिये आपकी सेवा और शिक्षा का प्रबन्ध आपके चाचा अचिन्तराम ने किया था।

जब आपकी पांच वर्ष की आयु थी तो आपको "धनपतमल आर्य-हाई-स्कूल" में प्रविष्ट किया। इस स्कूल में आपने सातवीं श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् "लायलपुर सनातन धर्म हाई-स्कूल" में भेजे गये। और सन् १९२२ में इसी स्कूल से आपने द्वितीय श्रेणी में इण्ट्रेन्स की परीक्षा पास की। आपकी बुद्धि बहुत तीव्र थी। आप किसी भी परीक्षा में अनुत्तीर्ण नहीं हुये। आपका स्वभाव शान्त और कोमल था। आपकी बुद्धि तर्क करने में बहुत चलती थी। आपका जन्म आर्य समाज घराने में होने के कारण आप पर आर्य समाज का विशेष प्रभाव पड़ा। जहां भी आर्य समाज का सत्संग होता था। वहां पर आप अवश्य जाते थे। और आपको हवन, सन्ध्या, योगाभ्यास का भी शौक था।

सन् १९१९ में पंजाब के अनेक शहरों में "मार्शल ला" जारी था। उस समय आपकी आयु बारह वर्ष की थी और सातवीं श्रेणी में पढ़ते थे। आपके चाचा इसी "मार्शल-ला" में गिरफ्तार कर लिये गये। बालक सुखदेव पर इस घटना का विशेष प्रभाव पड़ा। आपके चचा अचिन्तराम का कहना है "कि जब मैं जेल में था तब सुखदेव मुझसे मिलने आता था। तब पूछता था कि चाचा जी क्या इस जेल में आपको कष्ट दिया जाता है? और कहता था कि मैं तो किसी को भी नमस्ते तक नहीं करूंगा।

उसी समय एक दिन सारे शहर की पाठशालाओं के विद्यार्थियों को एकत्र करके "यूनियन जैक" ब्रिटिश झण्डे का अभिवादन कराया गया था। परन्तु सुखदेव इसमें सम्मिलित नहीं हुये और चचा के जेल से आते ही बड़े गर्व से कहा कि मैं झंडे का अभिवादन करने नहीं गया।

सन् १९२१ में महात्मा गान्धी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया तो सारे भारत में जागृति की लहर फैल गई। आप के भी जीवन में एक बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। आपके ऊंचे विचार होते हुये भी आपको कीमती कपड़े बहुत अच्छे लगते थे परन्तु आन्दोलन प्रारम्भ होते ही आपने विलायती ढंग के कपड़ों का सदा के लिये परित्याग कर दिया और खद्दर के कपड़े पहनने लगे। इसके साथ हिन्दी भाषा पढ़ने प्रारम्भ कर दी और अपने साथियों में भी हिन्दी भाषा का प्रचार करते थे। आपका कहना था कि देश के उत्थान के लिये राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता है और उसकी पूर्ति हिन्दी भाषा ही कर सकती है।

इस असहयोग आन्दोलन ने सुखदेव के जीवन को बदल डाला। उधर माता विवाह करना चाहती थी परन्तु चाचा जी विरुद्ध थे। क्योंकि वे आर्य थे अतः आर्य सिद्धान्त के अनुसार विवाह करना चाहते थे। आपकी माता जी जब कहती थी कि सुखदेव मैं तुम्हारी शादी करूंगी तो घोड़ी पर चढ़ोगे? तब सुखदव सदा यही उत्तर देता थी कि घोड़ी पर चढ़ने के बदले फांसी पर चढ़ूंगा।

सन् १९२२ में जब सुखदेव ने एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास कर ली तब आपके चाचा ने जेल से आज्ञा दी कि उच्च शिक्षा पाने के लिये लाहौर के डी० ए० वी० कालेज में प्रविष्ट हो जाना। परन्तु सुखदेव ने

चाचा की आज्ञा का पालन न करके (नेशनल-कालेज) में नाम लिखवा लिया । यहाँ पर ही आपका परिचय सरदार भगतसिंह आदि से हुआ था.। आपकी मण्डली में पांच सदस्य थे । और परस्पर बहुत प्रेम था । विद्यालय के छात्र आप को (पञ्च पाण्डव) नाम से पुकारते थे ।

श्री सुखदेव और सहपाठियों को पर्वत यात्रा का बहुत ही शौक था । सन् १९२० के ग्रीष्म काल के अवकाश में काँगड़ा की पहाड़ियों पर भ्रमण करने गये । इस यात्रा में यशपाल भी सम्मिलित था। वापिस आने के समय इस पार्टी को दिन भर में बयालीस मील की यात्रा करनी पड़ी ।

साइमन कमीशन के आने पर इन पञ्च पाण्डवों ने निश्चय किया कि समारोह पूर्वक प्रदर्शन करना चाहिये । समारोह के लिए झण्डियां बना रहे थे । इस समय केदारनाथ भी थे । परन्तु उन्हें नींद आ गई तो वे सो गये । उधर सुखदेव जी सरदार भगतसिंह के घर सो रहे थे । भगतसिंह ने भी कहा कि मैं भी सोता हूं परन्तु मित्रों ने न सोने दिया । उसी समय भगतसिंह के अन्दर विचार आया कि यदि पुलिस हमारे घर पर घेरा डालेगी तो सुखदेव पकड़ा जायेगा । इसलिए सुखदेव को सावधान करने के लिए एक मित्र को भेजा। उसने थोड़े से समय में आकर कहा कि भगतसिंह के घर पर पुलिस पहुँच गई है ।

पुलिस ने श्री सुखदेव को पकड़ लिया और बहुत प्रश्न किये । परन्तु उन्होंने किसी प्रश्न का भी उत्तर नहीं दिया । आपको बारह घन्टे जेल में रखा गया । इसके पश्चात् कुछ लोगों ने जाकर आपको छुड़वा दिया । इसके पश्चात् कुछ लोगों में पार्टी बनाने का विचार हुआ तो भगतसिंह और सुखदेव ने यह प्रस्ताव रखा कि नवयुवकों को राजनीतिक-शिक्षा देनी चाहिए । सरदार भगतसिंह ने प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया । इनके पश्चात् श्री सुखदेव को सौंपा गया । आप इस प्रचार कार्य को बहुत दिनों तक बड़ी सफलता के साथ करते रहे । आपका सिद्धान्त था कि " मैं केवल कार्य करना चाहता हूं प्रशंसा नहीं ।"

इसके पश्चात् १५ अप्रेल सन् १९१९ को श्री किशोरीलाल और प्रेमनाथ के साथ आपकी भी गिरफ्तारी हो गई । अन्त में सात अक्तूबर सन् १९३० को आपको फाँसी का दंड सुनाया गया । और १३ मार्च सन् १९३१ को चौबीस वर्ष की आयु में आपको फांसी पर लटका दिया गया । और आप अपना नाम अमर शहीदों में लिखवा गये ।



श्रीमती वसुमती शुक्ल



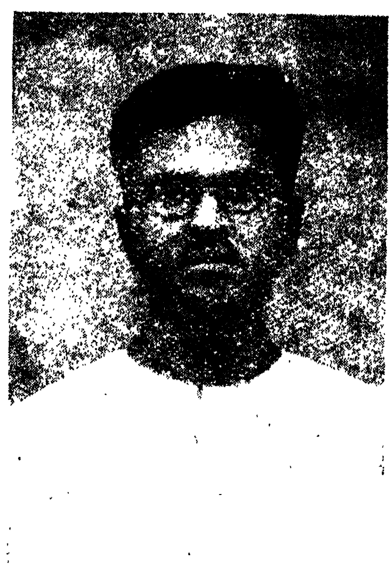
जीवित क्रान्तिकारी श्री यशःपाल



क्रान्तिकारी दम्पति--



श्रीमती दुर्गादेवी बोहरा



श्री भगवती शरण



श्री डा० मथुरासिंह

एक मौन क्रान्तिकारी—



आसामी बाबू

क्रांति वीरों के कर्णधार श्री यशपाल

[लि० ब्र० सोमदेव]

क्रान्तिकारी आन्दोलन में यशपाल जी का नाम कोई विरला ही नहीं जानता होगा। प्रसिद्ध वीर-वर भगतसिंह के सहयोगी, दिल्ली व लाहौर षड्यन्त्र अभियोग के फरार अभियुक्त श्री यशपाल, चन्द्र शेखर आजाद के पश्चात् हिन्दुस्तान रिपब्लिकन दल के संचालक हुए। लाहौर तथा दिल्ली षड्यन्त्र अभियोग में आपका वारण्ट था। पुलिस लगातार आपकी तलाश में थी। हिन्दुस्तान रिपब्लिकन दल के सदस्यों से मिलकर उनसे अपने कार्य के बारे में विचार कर दि० २२ जनवरी १९३३ को श्री यशपाल आगरा से इलाहाबाद जा रहे थे। कानपुर स्टेशन पर खुफिया पुलिस ने यशपाल जी को पहचाना। कानपुर से पुलिस यशपाल के पीछे पड़ी। यशपाल जी भी तुरन्त ताड़ गये कि पुलिस मेरे पीछे लगी हुई है। पुलिस को चकमा देकर श्री यशपाल प्रातः काल ही इलाहाबाद में हवेट रोड पर स्थित कृष्ण प्रेस के दूसरे मंजिल पर श्रीमती सावित्री देवी जाफर भाई के घर दौड़ते ही पहुँचे। परन्तु खुफिया पुलिस को भी पता लग गया। अपने बड़े अफसर को सूचना दी। बड़े अधिकारी मि० पिल्डिच २३ जनवरी १९३३ को लगभग पचास सशस्त्र पुलिसियों को साथ लिये श्रीमती सावित्री देवी के निवास स्थान के सामने आ धमके। निवास स्थान को चारों ओर से घेर लिया और दरवाजा खटखटाया। सावित्री देवी ने दरवाजा खोला। यशपाल जी समझ चुके थे कि दरवाजे पर पुलिस खड़ी हुई है। आत्मरक्षा के लिए आपने पिस्तौल तान ली। दूसरी ओर से मि० पिल्डिच ने गोली चलाई। इसी बीच यशपाल जी के रिवाल्वर ने धोखा दिया। तब यशपाल अन्य कोई उपाय न देख पुलिस के हवाले हो गये। पुलिस ने निवास स्थान की तलाशी ली, तो तीन रिवाल्वर और १७ कारतूस प्राप्त हुये।

यशपाल जैसे आतंकवादियों के नेता के उपलक्ष में मि० पिल्डिच को बादशाह का "पुलिस मेडल" प्राप्त हुआ। यशपाल जी को १४ साल के कालापानी की सजा दी गई। बरेली की जेल में आपको रखा गया। आपकी एक सहयोगी क्रान्तिकारिणी युवती श्रीमती प्रकाशवती ने बरेली के जेलर से प्रार्थना पत्र भेजकर अदालत द्वारा श्री यशपाल जी से विवाह करने की इच्छा प्रदर्शित की। उसके अनुसार २० अगस्त १९३६ को बरेली जेल में विवाह सम्पन्न हुआ। आगे चलकर १९३८ में कांग्रेस के हाथ में शासन आते ही पं० गोविन्द वल्लभ पंत जी ने यशपाल जी को बिना शर्त रिहा कर दिया।

आप अभी जीवित हैं। आपने क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध में एक पुस्तक सिंहावलोकन नाम से लिख कर प्रकाशित की है जो कि तीन भागों में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त आपने अन्य अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। आप जैसे क्रान्तिकारी वीरों के सत्प्रयत्नों से ही भारत स्वतन्त्र हुआ है किन्तु खेद है कि सत्तारूढ़ दल कांग्रेस क्रान्तिकारियों के बलिदानों का इन्हें कोई विशेष फल नहीं दिया। जिन वीरों ने भारत की स्वतन्त्रता के लिए तन मन धन अर्पण कर दिया उनको स्वतन्त्र भारत में उचित स्थान मिलना ही चाहिये।

——:०:——

वीरवर इन्द्रपाल

[ब्र० महादेव]

इनका पहला नाम मंगतराम था। यह कांगड़ा जिले के निवासी थे। यशपालादि के संग में आकर आप भी क्रान्तिकारी बन गये। क्रान्तिकारी होकर आपने अपना नाम इन्द्रपाल रखा। एक दिन आपने अपने कष्ट सहन की परीक्षा करनी चाही, कार्तिक के दिन थे मच्छरों की भरमार थी। सन्ध्या के समय रावी के किनारे जङ्गल में गये वहां जगह-जगह पर पानी सड़ रहा था और कमर तक की ऊंची-ऊँची घास थी। वहां मच्छरों और डांसों की भरमार थी। डांस इस प्रकार के थे कि जिनके काटने से पशु भी तड़प उठते थे। आदमी की तो क्या दशा। परन्तु आप तो कपड़े उतार एक लङ्गोटी बांध पालथी मार कर घास पर बैठ गये। साथ में यह भी विचार किया कि मच्छर या डांस को हाथ से नहीं उड़ाऊंगा। साथ ही सूर्योदय से पूर्व भी नहीं उठना है यह निश्चय किया। यह वीर इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। अर्थात् सारी रात इसी प्रकार बिताई।

वीर शिरोमणि भगतसिंह सुखदेवादि के पकड़े जाने के बाद विशेषकर भगवतीप्रसाद और यशपाल रह गये थे इन दोनों ने वायसराय की रेल के नीचे बम रखने की योजना बनाई। उसमें सहयोग के लिए यशपाल ने आपको पत्र द्वारा बुला भेजा। पत्र मिलते ही आप दिल्ली आ गये। आने पर यशपाल जी ने घर का मोह छोड़ कर सहयोग देने के लिए कुछ समय माँगा। तब आपने कहा कि एक सप्ताह का समय दो। मैं अपने दो भाई, एक आठ का दूसरा बारह वर्ष का है उनकी पढ़ाई का प्रबन्ध कर आता हूं। कुछ सहायता भी मांगी। उस पर यशपाल जी ने आपको ३०) रु० दे दिये। वह पुनः घर लौट आये।

इधर यशपाल और भगवतीप्रसाद ने तेर सखण्ड के पास रेलवे लाइन पर जो एक टूटी फूटी सराय थी उसमें आपको रखने का निश्चय किया। दिसम्बर मास में आपको देहली बुलाया। आने पर उसी सराय में बाबा जी का वेश बनाकर रखा गया। साथ में आवश्यक चिमटा कमण्डलु इत्यादि सभी आवश्यक चीजें दे दी गईं। भोजन के लिए पास के गांव से भिक्षा माँग कर खाने को कहा गया। आप साधु वेश धारण करके बैठ गये। तीन दिन के पश्चात् आपसे मिलने यशपाल गया। उस समय बाबा जी तो कोपीन मात्र में बैठे हुए थे। आस-पास कुछ ग्रामीण व्यक्ति विद्यमान थे। उनके सामने ही बनिया वेषधारी यशपाल ने बाबा जी को सम्बोधित करके आपके चरण छूकर प्रणाम किया। आपने उत्तर में कहा–खुश रहो बेटा ! पूछा–कहो सेठ जी कैसे आये ? यशपाल जमीन पर बैठ कर कहने लगा–कल मथुरा से मुनीम जी आ रहे थे उन्होंने आप का समाचार दिया। अतः आपके दर्शन करने के लिए आज आया हूं। कभी-कभी आप हमारा घर पवित्र किया करें" लाला जी ने प्रार्थना की। इस पर पास में बैठे एक ग्रामीण ने कहा कि "महाराज शहर के भीड़ भड़के में नहीं रहते, योगी तपस्वी हैं। दिल्ली में तो बड़े-बड़े लोग महाराज की चरणधूलि के लिए तरसते हैं। चढ़ती जवानी में संसार की माया से मुंह मोड़ बैठे हैं। साथ ही भगवान् ने ऐसा सामर्थ्य दिया है कि मुंह में से जो निकलता है पूरा हो जाता है।" कुछ देर बाद अन्धकार होने पर ग्रामीण लोग चले गए। तब आप दोनों की एकान्त में बातें होने लगीं। बाबा जी ने कहा कि यहां बड़ी कठिनाइयाँ हैं। जब से यहाँ आया हूं भूखा हूँ। समीप के गांव में भिक्षा के लिए

गया तो अवश्य था, परन्तु संकोच से मांग न सका। केवल एक दरवाजे पर पुकार लगाई थी, किसी ने ध्यान नहीं दिया। पर्याप्त देर ठहरने के पीछे एक महिला एक मुट्ठी आटा लेकर कमण्डल में डाल दिया। वह भी आटा भिक्षा में मिला। वह भी मैंने उसी गांव में चींटियों के बिल पर डाल दिया। दूसरे दिन दूसरे घर पर पुकार लगाई। फिर भी एक ही मुट्ठी आटा भिक्षा में मिला। वह भी मैंने पूर्व की भांति चींटियों को दे दिया। पानी पीकर जीवन यात्रा चला रहा हूं। यह सुनकर यशपाल दुखी होकर उसी समय देहली को चला गया। वहां जाकर खाने का सामान देकर भगवती भाई को उसी समय भेज दिया। भगवती भाई ने बाबा जी के पास जाकर उन्हें भोजन कराया।

आगे दो चार दिन भी बाबा जी एक-एक घर पर भिक्षा मांगते, एकाध मुट्ठी आटा मिलता उसे चींटियों के आगे डाल देते थे। एक दिन कुछ ग्रामीणों ने आपसे पूछा—महाराज एकाध मुट्ठी अन्न आपको मिलता है वह भी आप चींटियों को दे देते हो क्या आप कुछ नहीं खाते? तब बाबा जी ने उदारतापूर्वक उत्तर दिया "यह भी शिवजी की सृष्टि है इनका भी पेट भरना चाहिए। जब थोड़ा भोजन हो तो छोटे जीवों का पेट भरता था है अधिक हो तो बड़े जीवों का।" इसका प्रभाव ग्रामीण जनता पर बहुत पड़ा। वह एक ही घर में भिक्षा मांगने के व्रत पर डटे रहे, किन्तु अब आप जिस द्वार पर पुकार लगाते हैं वहीं यथेष्ट भिक्षा मिल जाती है। यहां तक कि कभी-कभी भक्तजन स्वयं भोजन लेकर आप की कुटिया पर दे आते थे। वहां आप आते जाते लोगों को पानी पिलाने का भी कार्य करते थे। साथ ही आप पास के ग्रामों में जाकर रामायणादि की कथा किया करते थे। एक दिन पास के रेलवे लाईन के फाटक का चौकीदार चेतराम बाबा जी के पास आकर रोने लगा। बाबा जी ने कहा प्याऊ पर बैठ कर राम राम जप और दस प्यासों को पानी पिला। इस प्रकार करने से तेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा।

चेतराम ने आपका आदेश पूरा किया, भाग्य की बात, उसको ईश्वर की कृपा से आठ आने दण्ड लेकर छोड़ दिया गया। यहाँ बाबा जी कुछ रोगियों को दवाई भी देते थे। जिस के कारण आपका प्रभाव आस-पास में फैल गया। इतना कष्ट उठाते हुए भी आपको यह न बताया गया था कि यहां क्यों रक्खा गया है? इसका कारण यह था कि यदि आप इन कठिनाइयों से पहले ही भाग जाते तो आगे का जो प्रोग्राम था वह व्यर्थ न हो जाये इसलिए आपको नहीं बताया था।

एक दिन यशपाल ने आकर आप से कहा कि रात को यहां गाड़ी किस-किस समय चलती हैं। इसकी ठीक-ठीक समय की जानकारी प्राप्त करो। पर्याप्त दिन होने के कारण आपको रात के समय की आने जाने वाली गाड़ियों के समय का ज्ञान हो गया था। रही-सही कसर दो चार दिन में और मिटा दी। एक दिन यशपाल ने आकर कहा कि रात को आपके पास कोई न ठहरे। क्योंकि आज मैं रात को देहली से बम लाऊँगा। वह बम हम दोनों मिलकर पटरी के नीचे रखेंगे। और इसी से वायसराय को मारने का विचार है। यह सुनकर आप फूले न समाये। सदे हुए सब कष्टों को क्षण भर में भूलकर प्रसन्न वदन से कहने लगे यह काम हो जाये तो मेरी तपस्या सफल होगी।

उसी रात को लगभग साढ़े नौ बजे पीतल के बड़े-बड़े लोटों में दो बम और खोदने का सामान ले आया। अभी कार्य के आरम्भ करने में देरी थी। क्योंकि ग्यारह बजे एक रेल आती थी। अत: उस समय को काटने के लिए छत पर चढ़ कर दोनों ही लाहौर काण्ड की बात और अपनी चालाकियों को याद कर-कर खूब जोर से हँसने लगे। रात का समय होने के कारण आवाज दूर-दूर तक जाती थी। हंसते-हंसते नीचे से आवाज आई कि कौन है? खबरदार! हाथ न हिलाना! जिस ओर से आवाज आई थी

उस ओर दखा–वहां दो पुलिसियों ने हम दोनों को गोली का निशाना बनाया हुवा था। उस समय यशपाल ने बड़े भोले शब्दों में कहा आप कौन लोग हो हजूर ? तब सिपाहियों ने कड़क कर कहा तुम कौन हो ? उत्तर में बाबा जी ने कहा हम तो साधु महात्मा हैं। एक मास से यहां हम धूनी रमाये बैठे हैं। तुम लोग किसे ढूँढते हो ? तब सिपाही ने यशपाल की ओर संकेत कर पूछा कि यह कौन है ? बाबा ने उत्तर में कहा यह एक भक्तजन है। इधर यशपाल भी हाथ जोड़ गिड़गिड़ा कर बड़े दीन शब्दों में कहने लगा—हजूर क्या चाहते हो तो मथुरा जी के बनियाँ हैं। बात करते-करते खड़ा भी हो गया और कूदने का अवसर देखने लगा। नीचे देखा तो चारों ओर सराय को दस बारह आदमियों ने घेरा है। उनके हाथ में लाठियां हैं। इतने में बाबा जी ने पुनः सिपाहियों को सम्बोधन करके कहा—"हम साधु महात्मा हैं आप लोग सरकार हो आपको साधु महात्मा सताने नहीं चाहिये बल्कि आपका काम है हमारी रक्षा करें। तब सिपाहियों ने उत्तर दिया बाबा हम आपको कुछ नहीं कहते। तुम राम नाम जपो, धूनी रमाओ, परन्तु आपके पास चोर डाकू नहीं होने चाहिये। तब बाबा जी ने यशपाल की ओर देखते हुए कहा कि क्या तू चोर डाकू है ? इस पर यशपाल हाथ जोड़ गिड़गिड़ाया। नहीं बाबा जी ? हम तो मथुरा के बनिये हैं। सच्ची जानो बाबा जी ! जमना मैय्या की सौगन्ध। जब यह गिड़गिड़ा कर कह रहा था उस समय उसके हाथ रंगे हुये देख एक सिपाही ने कहा आजकल कई बम बनाकर इस प्रकार के अनेक बदमाश फरार हैं तब यशपाल और गिड़गिड़ा कर कहने कहा—हजूर ! भौजाई ने मेहन्दी पिसवाई थी मैंने भी तनिक सी लगा ली जिससे हाथ लाल हो गये हैं। ध्यान रहे आपके हाथ रोहतक में बम बनाने के कारण रङ्ग युक्त थे। इधर बाबा ने फटकार लगाते हुए कहा कि तुझे शर्म नहीं आती पुरुष होते हुए भी यह लगाता है। तब यशपाल ने जवाब दिया—महाराज क्या करूँ, गरीब आदमी हूं, भोजाई का कहना न मानूँ तो भैया पीट कर निकाल दें। यहां तक कि एक बार भाई ने मूसल ही उठा कर मार दिया। यह कह कर अपना सिर दिखाया। इस प्रकार डाँट डपट कर यशपाल से वह दस रुपये लेकर चले गये।

उनके जाने के बाद दोनों ने खोदकर बम ठीक ठिकाने लगा दिये। लगा कर अपनी जगह आ गये। तीन बजे मालगाड़ी बड़ी घड़घड़ाती गई। उसमें कुछ बाधा न पड़ी। तब दोनों अपने कार्य में सफलता मिली है, सोचकर बड़े आराम से सो गये। प्रातः उठ कर यशपाल दिल्ली को रवाना हो गया। वहां जाकर आपने रात को घटी घटना सुना दी।

दूसरे दिन भगवती भाई के साथ तीसरा बम लेकर यशपाल पुनः पहुंचा। समय साढ़े दस का था। और सिपाहियों के चक्कर लगाने का समय भी यही था। अतः ये दोनों पास की टूटी हुई कन्दरा में बैठ गये। भगवती भाई का बम प्रयोग के कारण कण्ठ कुछ खूँ खूँ की आवाज देता था। अतः आपको छुपने में अधिक कठिनता हो गई। जब उन सिपाहियों के आने की आहट सुनाई दी। तब आप सारा सांस रोक कर योगी की तरह बैठ गये। पुलिस वहां आकर बाद जी से मिल कर चली गई। इनके जाने में कम से कम दस पन्द्रह मिनट लग गये थे। उनके जाने के बाद तीसरा बम भी ठीक ठिकाने लगा दिया। और रेलवे के आने जाने के कारण बम यदि दिखाई दे तो ढांपने आदि का कार्य बाबा जी को सोंप कर यशपाल और भगवती भाई दिल्ली की ओर चल दिये।

बम का कार्य २४ ता० को करना था। इधर २१ ता० को भगवतीप्रसाद जी पुनः आजाद से मिलने गये। वहां जाकर आपने अपना सारा समाचार सुनाया। तब आजाद ने इस कार्य को करने के लिए नितान्त निषेध कर दिया। ठीक इसी प्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी ने भी निषेध कर दिया। तब आप

निराश होकर देहली आये। यह समाचार जब यशपाल को सुनाया तब यशपाल की आशाओं पर पानी फिर गया। वह पहले तो न माना किन्तु समझाने पर मान गया। यशपाल ने इन्द्रपाल जी के पास जाकर यह समाचार सुनाया। इस पर इन्द्रपाल जी भी बहुत असन्तुष्ट हो गये। वहां से डेरा उठा कर और बमादि लेकर वापिस देहली आ गये। दिल्ली में कुछ दिन रहकर फिर आप लाहौर चले गये।

दूसरी बार वायसराय की गाड़ी के नीचे पुराने किले के पास विस्फोट हुआ, तब भी आपने इसमें बढ़ चढ़कर भाग लिया। १९३० में पंजाब में आपस में कुछ मतभेद हुआ। अतः आप इस दल से अलग होकर कार्य करने लगे। लाहौर के दूसरे षड्यन्त्र में आप पकड़े गये। जेल में एक दिन आपने यशपाल के छोटे भाई धर्मपाल के साथ बातें करते हुए कहा—इस समय हमारे पांच साथी जो कुछ जानते थे पुलिस को बता चुके हैं। और प्राणभिक्षा के वचन से सरकारी गवाह बनने को तैयार हैं। यह लोग कम से कम सत्रह लोगों को फांसी पर लटकवा देंगे। अब्दुल अजीज (इस अभियोग का इन्चार्ज) मुझे सरकारी गवाह बनने के लिये फुसला रहा है। क्योंकि कोई भी गवाह अलग-अलग घटनाओं को जोड़ नहीं सकता। और न इस अभियोग के फरार आजाद व यशपाल की मारफत पहले मुकद्दमे और दिल्ली मुकद्दमे को जोड़ सकता है। इस तरह पूरा षड्यन्त्र न बन पाता था। मैं सोच रहा हूं कि गवाह बनकर सब जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लूं और सबको बचाने की कोशिश करूं, इसमें आपकी क्या सम्मति है। धर्मपाल ने उत्तर दिया सरकारी गवाह बनने की बात तो किसी भी कीमत पर नहीं मान सकता। यदि आपको अपने पर विश्वास है तो इस पर विचार करें। आपने उत्तर में कहा कि अच्छा। विचार करता हूँ।

तीन-चार दिन के बाद श्री फकीरचन्द ने धर्मपाल को रोटियों के साथ एक परची भी दे दी। उसमें लिखा था–मैं सरकारी गवाह बन गया हूं, यह स्वयं इन्द्रपाल जी ने लिखा था। डेढ़ मास तक आपकी और पुलिस की गहरी छानबीन होती रही। अन्त में अभियोग अदालत में पेश किया गया। इस अभियोग में साठ सत्तर गवाहों ने अपने बयान दे दिये। इसके बाद आपका नम्बर आया, आपने लगातार सात दिन तक बयान न दिया। आपके बयान समाचारपत्रों में निरन्तर छपते थे। बयान अक्षरशः सत्य थे। बाहर के क्रान्तिकारियों को यह पढ़कर अपना सिर पीट कर कहना पड़ता था कि इसे क्या हो गया। इन बयानों में श्री आजाद, भगवतीशरण, यशपालादि के कार्यों को खूब खोल खोलकर बताया। इधर आजाद को इस समाचार से भारी धक्का लगा और आजाद प्रायः मानसिक सन्ताप से कहने लगते कि अब किसी का विश्वास नहीं किया जा सकता। विश्वास उसी का जो पकड़े जाने से पहले अपने सिर में गोली मार ले। इधर आपका अन्तिम दिन का बयान था। आपका बयान जेल में बन्द क्रान्तिकारियों के विषय में था। प्रतिदिन आपको नियमानुसार बयान देने से पूर्व धर्म की शपथ दिखलाई जाती थी कि सच ही बोलना झूठ नहीं।

आठवें दिन आपने अदालत में शपथ खानी मना कर दी। जब इसका कारण पूछा तब आपने बताया कि साहब धर्म की शपथ खाकर झूठ नहीं बोलूंगा ? यह जन्म तो पुलिस ने बिगाड़ ही दिया। अब परलोक नहीं बिगाड़ता, वहाँ तो पुलिस साथ नहीं जायेगी। शपथ खाने के बाद एक ही वाक्य कह सकता हूँ कि पुलिस मुझ से झूठा बयान दिला रही है। शपथ न दिलवाइये तो जो पुलिस ने रटाया पढ़ाया है वह सब सुना सकता हूं। इस पर सरकारी वकील ज्वालाप्रसाद ने आपत्ति की। गवाह बेइमान हो गया है पुलिस पर झूठा आरोप लगा रहा है। अदालत ने आप से इस बात का प्रमाण माँगा कि पुलिस पढ़ा रही है। आपने तत्काल अपने कपड़ों में छुपाये हुए पुलिस वालों के लिखे हुए कागज दिखाये। और साथ

ही यह भी कह दिया कि यदि अदालत व सफाई वकील मेरे साथ चलकर हवालात की कोठरी में रखे हुए कागजात देखें तो मैं दिखा सकता हूं। वहां हवालात में आपकी कोठरी में कई ऐसे कागज मिले और अकाट्य प्रमाण मिले जिनसे सिद्ध हुआ कि पुलिस पढ़ा रही है। आगे आपने अदालत में मांग की कि, मैं सच्चा बयान उसी समय दे सकता हूं जब मुझे इस किले के पुलिस कब्जे से हटाकर जेल की हवालात में भेज विश्वास दिलाया जाय कि मेरे सच्चा बयान देने पर मेरे साथ अनुचित व्यवहार नहीं किया जायेगा। इस पर सरकारी वकीलों ने दोनों बयानों की लिखी हुई कापियां देखकर बहस की। उसे कहीं एक भी बात पर तारीख के बारे में उखाड़ नहीं पाये। केवल एक अवसर पर बहस के उत्तर में आपने कहा था मुझे तारीख याद नहीं। आपके उत्तर पर सरकारी वकील ने बड़े सन्तोष से कहा शुक्र है पंडित जी एक बार तो आपके मुँह से निकला कि मुझे याद नहीं। आपका सहारा पाकर मदनगोपाल भी बदल गया। इस कारण यह मुकद्दमा गिर गया। यह सन् १६३१ जनवरी के प्रथम वा द्वितीय सप्ताह की बातें हैं।

इधर जब यह घटना 'लाहौर' षड्यन्त्र के मामले का सरकारी गवाह इन्द्रपाल गवाह पलट गया, उसने अदालत में कह दिया कि पुलिस उसे परेशान करके झूठे बयान दिलाती रही इत्यादि" जब यह बात समाचारपत्रों में छप गई तो आजाद आदि सब प्रसन्न हो गये। आजाद ने प्रसन्न होकर यहाँ तक कह दिया कि यह साला साधवा(साधु)अवश्य कोई ऐसी हरकत करेगा जो किसी ने न की हो। अब नौकरशाही सरकार ने आप से बदला लेने के लिए आप पर सरकार को धोखा देना और अदालत में झूठ बोलने का अभियोग चलाया। सैशन जज ने फांसी की सजा दी। बाकी सबका अभियोग गिर गया। केवल उन्हीं को छोटी-छोटी सजायें हुईं जिन्होंने मरने के भय से हार मानकर या सरकारी गवाह बन जाने की आशा में अपने अपराध मजिस्ट्रेट के आगे स्वीकार किये थे।

आपको बचाने के लिये हाईकोर्ट में अभियोग चलाया गया। इसमें सफाई की ओर से मुख्य वकील रोहतक निवासी स्व० लाला श्यामलाल जी थे। लाला जी ने असहयोग आन्दोलन में वकालत छोड़ दी थी। इनकी सहायता के लिये आपने वकालत पुनः आरम्भ कर दी थी। आपको अदालय की ओर से फीस रूप में प्रतिदिन ६४) रुपये मिलते थे। परन्तु वह सारा धन अभियुक्तों की आवश्यकताओं के पुरुषार्थ ही व्यय कर दिया जाता था। लाला जी व सरकारी वकील ज्वालाप्रसाद जो आपकी प्रशंसा करते करते नहीं थकते थे। अत्यधिक बल लगाने पर आपकी फांसी की सजा, आजीवन कालापानी की सजा में परिणित हो गई।

अदालत में अधिक बुद्धि के कार्य करने व पुलिस के दुर्व्यवहार से आपको जेल में ही अधरङ्ग (पैरेलसिस) की बीमारी हो गई। कुछ दिन तो जेल वालों ने समझा कि इस आदमी में पाखण्ड व धूर्तता की कोई सीमा नहीं है। यह बीमारी का भी धोखा देता है यह कह कर आपकी परवाह नहीं की। जब रोग अत्यधिक बढ़ा तब इनकी चिकित्सा करने लगे। लाला श्यामलाल जी आपकी निष्ठा और साहस से अतिप्रभावित थे। अतः वे स्वयं गांधी जी से मिले और इन्द्रपाल की प्राणरक्षा के लिये अनुरोध किया। तब गांधी जी ने उस समय के पंजाब के मुख्यमन्त्री के नाम पत्र लिखकर सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। सरकार ने बड़े-बड़े डाक्टर बुलाकर परीक्षायें कीं। परन्तु परिणाम यह हुआ कि सब ने यह कहा कि यह रोग असाध्य है आपके किसी समय भी प्राण निकल सकते हैं। इसी कारण आपकी जेल से मुक्ति हो गई। लाला श्यामलाल जी को बड़ा दुःख हुआ।

लाला श्यामलाल जी

साथ ही लाला जी का परिचय देना भी असंगत न होगा। आप गाँधी जी के परम भक्त थे। आप उन लोगों में से थे जिन्होंने सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन में अपनी खूब पनपती हुई वकालत छोड़ दी थी और दूसरे वकीलों की भांति आय के लोभ से कचहरी से कभी लोभ न लिया। केवल क्रांतिकारियों की सहायतार्थ ही पुनः वकालत आरम्भ की थी। आप क्रान्तिकारियों के संग में आने के कारण क्रान्तिकारियों के प्रति सहानुभूति और अनुराग अनुभव करने लगे। एक मुकद्दमे में एक बार वह विकट परिस्थिति में फँस गये। मामला हाईकोर्ट में पेश था। अभियुक्तों ने कुछ बातों से अपना असन्तोष प्रकट करने के लिए एक नोटिस दे दिया कि इस अदालत पर हमें विश्वास नहीं। यह काम अदालत की मानहानि का समझा गया। जजों ने इस पर खिन्नता प्रकट की। आपको ऐसे नोटिस पेश करने पर क्षमा माँगने के लिए कहा। इस पर आप क्षमा माँगने के लिये तैयार न हुए।

हाईकोर्ट के जजों ने आप पर मानहानि का मुकद्दमा चलाया। इस मामले में सजा की अवधि उस समय तक होती है जब तक अपराधी मानहानि करने के लिए क्षमा न माँगे। इस अभियोग में सारे अदालती संसार में हलचली मच गई। जिस दिन आपका मामला हाईकोर्ट में पेश हुआ लाहोरस्थ सभी कचहरियों के काम स्थगित हो गये। और सभी वकील हाईकोर्ट पहुँच गये। यहाँ तक कि लाला कालेज भी बन्द हुआ। लाहौर के सभी वकीलों ने मिलकर आप से प्रार्थना की कि भूल हो गई कह कर क्षमा मांग लें। परन्तु आप इससे सहमत न हुए। और पेशी पर जब जाने लगे तो अपना बिस्तर भी साथ बांध कर ले गये। क्योंकि सजा होते ही वहीं से जेल चले जायेंगे। हाईकोर्ट में उन्होंने अपने व्यवहार पर दुःख प्रकट करने से साफ निषेध कर दिया और इस बात का आग्रह किया कि उनके मुअक्किल नेकनीयत, सच्चे और आत्माभिमानी व्यक्ति हैं और उनकी भावना अदालत के सन्मुख ईमानदारी से रखना उनका कर्तव्य है। उपस्थित सज्जन परिणाम की आशंका से चिन्तित थे। ऐसी अवस्था में हाईकोर्ट ने ही बड़ी बुद्धिमता से काम लिया और आपकी नेकनीयत और ईमानदारी पर विश्वास कर भविष्य में सावधान रहने की चेतावनी दे दी। और मामला समाप्त कर दिया।

जब इन्द्रपाल जी छूटे थे तब आप न चल सकते थे न बैठ सकते थे। यहां तक कि आप बोल भी न सकते थे। आपने जेल जानेसे चार मास पहले विवाह किया था। आपकी पत्नी का नाम जगदीश्वरी था। इसने अपने पति की सेवा बहुत मन लगाकर की, इस कारण कुछ कुछ लाठी के सहारे से चलने लायक आप हो गये। सन् १९३८ में आपने कुछ अखबार सम्पादनादि का कार्य भी किया। सन् १९४७ में विभाजन के समय आपके मन पर मानसिक आघात बहुत भयंकर लगा। लाहौर से आप देहली आ गये और कुछ समय उपरान्त इस नश्वर शरीर को त्याग कर स्वर्ग सिधार गये।

क्रान्तिकारी दम्पति अमर शहीद भगवती चरण और दुर्गा देवी

(ब्र० सोमदेव)

भगवती चरण के पिता का नाम शिवचरण था। कहते हैं कि आपके पूर्वज गुजरात से आगरा और आगरे से लाहौर में आकर बसे थे। परन्तु भगवती चरण तो अपने आपको पंजाबी ही कहते थे। आप के पिता रेलवे दफ्तर में ऊंचे पद पर काम करते थे। भगवतीचरण ने नेशनल कालिज में शिक्षा प्राप्त की थी। जब कालिज में पढ़ते थे तब आपका शरीर बड़ा सुडौल था। और उसी कालिज में आप भगतसिंह के साथ क्रान्तिकारी बने। इन दिनों पंजाब में गुप्त संगठन करने के लिए भारत-सभा की स्थापना की। उसी सभा के मुख्य सूत्रधार भगतसिंह और भगवतीचरण थे। कुछ दिनों में ही यह सभा भारत के कोने-कोने में फैल गई। इस प्रकार भगतसिंह के साथ भगवतीचरण ने अनेक कार्य किये।

जब वीरवर भगतसिंह मि० सान्डर्स की हत्या कर लाहौर सरकार की आंखों में धूल झोंक कर लाहौर से निकले थे तब यदि हम भूलें नहीं तो वीरवर भगतसिंह की क्रान्ति ज्वाला को जिसने अपने में पूर्ण रूप से प्रज्वलित कर लिया था, उस महान् क्रान्तिकारी की धर्मपत्नी श्री दुर्गा देवी ही उक्त संकट की यात्रा में वीरवर भगतसिंह के साथ थी।

वह महान् क्रान्तिकारी भगवतीचरण था। जिसने धन का लोभ, यौवन का प्यार सब कुछ देश की स्वतंत्रता के लिए न्यौछावर कर दिया।

इस युवक ने अपने आपको देश सेवा के लिए अर्पण करने के साथ-साथ अपनी धर्मपत्नी दुर्गा देवी को भी क्रान्ति का क्रियात्मक पाठ पढ़ाया। तभी वह बड़े हौसले के साथ, बड़ी शान से अव्वल दर्जे की मुसाफिरी करते हुए महान् क्रान्तिकारी वीरवर भगतसिंह को बचा ले गई। लाहौर में सान्डर्स हत्या से सतर्क पुलिस की सर्वव्यापी छाया में से भी बचा ले जाने के नाटक में अपना अभिनय निःशंक और सफलता पूर्वक पूरा कर वीरवर भगतसिंह को निरापद कलकत्ता पहुंचा दिया।

इधर जब क्रान्तिकारियों ने आगरा आदि में बम के कारखाने खोले तो भगवतीचरण ने वीरवर भगतसिंह के साथ मुख्यतया उनका उत्तरदायित्व लिया।

प्रथम लाहौर षड्यन्त्र की गिफ्तारियों के पश्चात् खास कर जब वीरवर भगतसिंह भी गिरफ्तार हो गया तो चिर फरार सेनापति चन्द्रशेखर आजाद के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर भगवतीचरण क्रान्तिकारी दल को विध्वंस होने से बचाने के लिए खड़े हुए। आजाद के बचे हुए साथियों में वे भी एक अत्यन्त सुलझे हुए क्रान्तिकारी थे।

जब भुसावल बमकेस में फणीन्द्रघोष सरकारी गवाह बना तब भगवतीचरण ने इस विश्वासघाती को यमलोक पहुंचाने के लिए जेल में भी दल के सदस्यों के पास अपने कौशल से रिवाल्वर पहुंचा दी।

भगवतीचरण नित्य नये तरीकों से बम का प्रयोग करने में ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करते थे। वे ता० १८ मई सन् १६३० के दिन सांयकाल को ४॥ बजे एक बम लेकर उसका परीक्षण

करने के लिए रावी नदी के तट पर गये। जब बम फकने लगे तभी हाथों में ही बम फट गया और भगवतीचरण बुरी तरह घायल हो गये। उस भयंकर जंगल में उनकी सहायता करने वाला कोई नहीं था। वे ४ घंटे तक जीवित रहे। मरते दम तक उन्हें दल की चिन्ता ही घेरे रही। उनकी मृत्यु से जो क्षति हुई उसकी पूर्ति न हो सकी।

९ अक्तूबर सन् १९३१ की रात को बम्बई शहर के लैमिन्टन रोड थाने में मोटर से उतरते हुए सार्जेण्ट टेलर और उनकी बीबी को घायल करने का श्रेय भी स्व० भगवतीचरण की धर्मपत्नी श्रीमती दुर्गा देवी उर्फ 'भाभी' को ही प्राप्त था। यह भी इस कमाल से कि किसी प्रकार भी पकड़ में नहीं आई। यहां तक कि जब उन्होंने आत्मसमर्पण किया तब भी इस पर कोई केस न चल सका।

जब सान्डर्स के मारे जाने पर लाहौर में हलचल मची तब वीरवर भगतसिंह ने सोचा कि इस समय लाहौर से बाहर जाना ही उचित है। उस समय इस दुर्गावती की ही चाल से लाहौर से भगतसिंह बाहर निकले थे। स्टेशन पर पचासों खुफिया आदमी थे। अनेक तो ऐसे थे जो भगतसिंह के कार्यों पर दृष्टि रखने के लिए महीनों उसके साथ रहे, फिर भी वे यह न समझ सके कि यह अफसर और कोई नहीं, वही भगतसिंह है, जिसकी खोज में मारे-मारे फिर रहे हैं। वह युवति क्रान्तिकारिणी समिति की एक सदस्या श्री दुर्गावती थी, जिसका देहली षड्यन्त्र केस में मुखबिरों द्वारा "दीदी" के नाम से उल्लेख हुआ था। पुलिस ने उनका वारन्ट निकाला था किन्तु गिरफतार न कर सकी। इसके पश्चात् वे एक जलूस का नेतृत्व करके तीन मास का कारावास दण्ड भी भुगत आई। मजिस्ट्रेट को उन्होंने अपना नाम पता बताने से निषेध कर दिया था। उन दिनों सत्याग्रही इस प्रकार किया करते थे अतः दुर्गावती पर भी कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। यह पता तो तब लगा जब कि वे छूट गईं कि यह क्रांतिकारिणी है। अपने चुंगल में आ जाने के पश्चात् भी इस प्रकार छोड़ देने पर देहली में और भी जोर से खोज करने लगे। इधर दीदी को सूझा कि भगतसिंह से लाहौर जेल में मिला जाये। वे लाहौर जाकर मिलीं। इसके पश्चात् दीदी के नाम एक पत्र आया, जिसके पास पत्र था वह असावधानी के कारण कहीं डाल आया। भाग्यवश वह पुलिस के हाथ लग गया। जब अधिकारियों को ज्ञात हुआ कि "दीदी" लाहौर में ही है तो उन्होंने तत्काल ही चारों ओर दौड़ धूप प्रारम्भ कर दी। लाहौर के लगभग डेढ़ दर्जन मकान बात की बात में घेर लिए गये और उनकी तलाशी प्रारम्भ हुई। दीदी को भी उन पत्रवाहक महोदय ने यह चेतावनी दे दी थी कि मुझ से पत्र कहीं गिर गया है। अतः आप पर कुछ आपत्ति आ सकती है। "दीदी" ने यह चेतावनी पाते ही यह सन्देहास्पद स्थान छोड़ दिया और जहां जहां पुलिस तलाशी ले रही थी वहां जा-जाकर तमाशा देखने लगी। जब पुलिस निराश होकर चली गई तो उन्हें यह चिन्ता हुई कि लाहौर से अब किस प्रकार निकला जाये।। इसके लिए उन्होंने एक ग्रामीण वधू का वेष बनाया। हाथों में लाख की मोटी-मोटी भद्दी चूड़ियां, पैरों में महावर और लम्बा-सा घूंघट। इस वेष में देख कर यह किसे शंका हो सकती थी, कि यह कालिज में शिक्षा प्राप्त की हुई एक सुशिक्षित लड़की है। एक देहाती से दीख पड़ने वाले महाशय के साथ वह ट्रेन में बैठ गई और सकुशल लाहौर से निकल गईं।

बाबा ज्वालासिंह

(ब्र० सोमदेव)

पञ्जाब में हिन्दूराज्य समाप्त हो जाने पर अर्थ व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी। अतः बहुत से हिन्दू भारत से बाहर नौकरी करने के लिए जाने लगे। ऐसे ही एक ज्वालासिंह अपने पिता के साथ कैनेडा चले गये थे वहां उन्होंने आलू की खेती से बहुत धन कमाया।

सन् १९१४ में जर्मन युद्ध छिड़ गया। स्वतंत्र देश के वायुमण्डल में रहने के कारण प्रवासी भारतीयों को भी अपने देश को आजाद करने की इच्छा उत्पन्न हुई। वे टोल के टोल हिन्तुस्तान में आने लगे। ज्वालासिंह ने भी अपनी कैनेडा की कुछ सम्पत्ति बेच दी और नकद तीस हजार रुपया और थोड़े से हथियार लेकर हिन्दुस्तान को चल दिये। जब एक कैनेडियन ने पूछा कि यह सम्पत्ति किस लिए बेच रहे हो ? तब ज्वालासिंह ने उत्तर दिया "अपनी एक बड़ी सम्पत्ति को बन्धन-मुक्त करने के लिए"। वहां पर सरकार को पता लग गया था। अतः वे जो भी जहाज आता उसी की तलाशी लेते थे। जब ज्वालासिंह के पास तीस हजार रुपये मिले तो उसके रुपये तो डाकखाने में जमा कर दिये और उसे पकड़ लिया गया। आजन्म काले पानी की सजा देकर अण्डमान की जेल में जीवन भर के लिए भेज दिया गया।

अण्डमान में काले पानी की सजा को उन्होंने भोगा। एक साल नहीं, दो नहीं, पूरे अठारह वर्ष ? आजादी का मतवाला तरुण ज्वालासिंह इन अठारह वर्षों में उम्र से बाबा ही बन गया। और जब वह पञ्जाब में आया तो सब लोग आदर पूर्वक 'बाबा'' के नाम से ही पुकारते थे।

अण्डमान में लोग इसलिए भेजे जाते थे कि वहां उनका शारीरिक स्वास्थ्य खराब हो जाता था। और साथ ही देश भक्ति का साहस भी टूट जाता था। किन्तु ज्वालासिंह अंडमान से लौटते ही किसान संगठन में लग गये।

वे सन् १९३३ में जेल से छूटे थे। सन् १९३४ से ही उन्होंने भारत में किसान-मजदूरों का राज्य स्थापित करने के लिए मानो शपथ ही उठा ली। गांव-गांव जाकर उन्होंने किसानों को संगठित करना आरम्भ कर दिया और इतने परिश्रम से किया कि सन् १९३३ ई० में उन्होंने अमृतसर के पास नौशेरवां गांव में जो सभा बुलाई उसमें दोनों दिन पचास-पचास हजार की संख्या में किसान उपस्थित होते रहे।

कर्मवीर ज्वालासिंह का कर्म करते हुए कर्म-क्षेत्र में एक लारी दुर्घटना में सन् १९३८ में देहान्त हो गया।

राजस्थान में क्रान्ति के सर्वेसर्वा—

वीर सेनानी श्री ठाकुर केशरीसिंह बारहट

(ब्र० धर्मव्रत)

चारण जाति क्षत्रियों के लिये राजनीतिक शिक्षा गुरु, वीरता की प्रोत्साहक, बिपत्ति में सहायप्रद, एवं सब जातियों में पूज्य रही है। चारणों की वीरता से भारत के इतिहास के पृष्ठ खाली नहीं हैं। इसी चारण-जाति के, ५०० वर्ष पूर्व महाराणा हम्मीर का छूटा हुआ प्यारा चित्तौड़ अपने बुद्धि बैभव एवं बाहुबल से फिर प्राप्त कराने वाले, इतिहास प्रसिद्ध वीरवर "सौदा बारहट वारू" की सन्तान वीरता में आज तक अग्रणी रही हैं। उसी वीर-वंश की तेईसवीं पीढ़ी के सरदार केशरीसिंह थे। मेवाड़ के अन्तर्गत शाहपुरा राज्य में सरदार केशरीसिंह के पूर्वजों की जागीर चली आती थी। केशरीसिंह शाहपुरा राज्य के प्रथम श्रेणी के उमराव सरदारों से अधिक सम्मानित थे। इनके पिता का नाम कृष्णसिंह बारहट था। जो स्वासी दयानन्द जी के अनन्य भक्त थे। इस कृष्णसिंह जी ने अपने बुद्धि वैभव से राजपूताना के समस्त नरेशों से सम्मानित पद प्राप्त किया था। ये अपने समय में राजपूताना और मध्यभारत में विशेष राजनीतिज्ञ माने जाते थे।

कृष्णसिंह जी के तीन पुत्र थे—केशरीसिंह, किशोरसिंह, जोरावरसिंह। केशरीसिंह का जन्म वि० सं० १९२९ के मार्गशीर्ष कृष्णा ६, को अपनी जागीर के देवपुरा ग्राम में हुवा था। इनके जन्म के एक मास पश्चात् इनकी माता का देहावसान हो गया। केशरीसिंह ने अपनी तरुण अवस्था में ही बुद्धि वैलक्षण्य से महाराणा फतहसिंह (उदयपुर) के यहां सर्व प्रथम पद प्राप्त किया था। वैशाख सं० १९५६ में कोटा नरेश उम्मेदसिंह की गुणग्राहकता ने केशरीसिंह को खींचा और यहां कोटा में आकर रहने लगे।

केशरीसिंह का मन अपने देश की पतित 'अवस्था की ओर' रहता था अतः उन्होंने अठारह उन्नीस वर्ष की अवस्था में ही जातीय एवं सामाजिक सुधारों में उत्साह पूर्वक भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। इन्होंने सन् १९११ में राजपूत जाति की सेवा में अपील निकाली। जिसके निकलते ही भारत की नौकरशाही चौकन्नी हो उठी। केशरीसिंह जी शिक्षा और संगठन का कार्य करते थे। ये 'स्वतंत्र क्षात्र शिक्षा' और 'क्षात्र शिक्षा-परिषद चलाते थे। जिसका ढाँचा बड़ा मजबूत था। जिसको डिगाया नहीं जा सकता था। क्योंकि स्वजाति हित से प्रेरित होकर राजपूताना और मध्यभारत के नरेश एवं बड़े बड़े सरदार उसमें सम्मिलित थे।

जब सरकार ने देखा—कि भारतीय सेना में जो राजस्थानी राजपूत सिपाही और अफसर हैं वे भी अपने असहाय बालकों के शुभ भविष्य और जाति गौरव के पुनदर्शन की आशा से केशरीसिंह जी की सेवा को अमूल्य समझकर उत्साह पूर्वक सहयोग देने लगे हैं, तब व्यग्र हो गई। न सरकार ने सत्य की जाँच की, न पड़ताल। परन्तु सन् १९१४ की ३१ मार्च को शाहपुरा नरेश को आगे रखकर सहसा केशरीसिंह को गिरफ्तार कर लिया। केशरीसिंह को तीन महीने तक इन्दौर की छावनी में भील पल्टन में बन्द रखा गया। उसी समय 'दिल्ली षड्यन्त्र' 'आरा केश' आदि चल रहे थे। उनमें केशरीसिंह को फंसाने के लिये सरकार ने बहुत चेष्टायें कीं परन्तु निष्फल रही। क्योंकि उस समय वे कानूनी प्रान्त थे। तब

सरकार ने चालाकी चली कि—"सम्राट् का शासन उलट देने की नीयत" के अभियोग में राजस्थान के किसी राजा के हाथ से सजा दिलाई जाये। जिससे प्रत्येक नरेश कांप जाये और क्षात्र शिक्षा का कार्य छिन्न-भिन्न हो जाये। साथ ही राज्यों में सरकारी पुलिस का भी द्वार खुल जाये। राजद्रोह के साथ एक कत्ल की पूंछ लगाना तो अंग्रेज सरकार का सनातन धर्म रहा है। सरकार ने कोटे को ही युक्त समझा और केशरीसिंह का मुकदमा वहां ही चलाया। वहां पर प्रायः भारत के समस्त बड़े बड़े प्रान्तों के अंग्रेज पुलिस आफिसर आये। "पायोनियर" और 'टाइम्स आफ इण्डिया' सरदार केशरीसिंह के विरुद्ध आग उगल रहे थे।

राजपूताना और मध्यभारत के सब नरेशों की आंखें कोटे पर लगी हुई थीं। क्योंकि देशी राज्यों में यह कांड अभूतपूर्व था। राजद्रोह का कोई भी प्रमाण सरकार को न मिला। सरकार को आधीन राज्य को घुड़की से मना लेने की आशा थी। परन्तु केवल घुड़की से हां कह देने पर केशरीसिंह से सम्बन्धित रियासतें व्यर्थ विपत्ति में पड़ जातीं। अतः साहसी कोटा दीवान स्व० चौबे रघुनाथदास जी ने, गला दबाया जाने पर भी इस केस में राजनीतिक अपराध स्वीकार न किया। फिर भी सरकार ने सरदार केशरीसिंह को बीस वर्ष का दंड देकर जेल में ठोंस दिया।

केशरीसिंह को सरकार भयकंर मानती थी। इसी से जगह जगह खुले हुए राजपूत-वोर्डिङ्ग हाउस और संगठन के बिखर जाने पर, केस और विद्रोह भड़कने की आशंका मिट जाने पर, नौकरशाही ने केशरीसिंह को कोटे से सुदूर हजारीबाग (बिहार) जेल भेज दिया।

केशरीसिंह ने जिस दिन गिरफ्तार होकर शाहपुरा राज्य छोड़ा उसी दिन से अन्न न खाने की प्रतिज्ञा की। केवल दूध ही पीते थे। हजारीबाग (बिहार) पहुंचते ही केशरीसिंह जी की कठिन परीक्षा लेनी प्रारम्भ की। सरकार को, वीरों को संकल्प से च्युत करने में अधिक आनन्द आता है। लङ्घन शुरू हुवा। १८ दिन तक निराहार बिताये। दूध भी नहीं पीया। जब अधिकारियों ने देखा कि कष्ट भोगने से पूर्व ही कहीं पक्षी न उड़ जाये। उन्नीसवें दिन थोड़ा सा दूध दिया। प्रतिज्ञा तो अन्न न खाने की थी। दूध तो ले लिया, परन्तु अन्न खाना प्रारम्भ न किया। परन्तु सरकार एक सप्ताह के बाद जबरदस्ती से चावलों के माँड का पानी नासिका के द्वारा देने लगी। इस प्रकार का युद्ध १८ मास तक चलता रहा। इतने लम्बे काल के बीत जाने पर भी वे काल कोठरी से नहीं निकाले। अन्त में सरकार परास्त हुई।

बिहार और उड़ीसा जेलों के अधिकारी (आई० जी०) ने आकर कहा कि केशरीसिंह! राणाप्रताप की हिस्ट्री से हम मेवाड़ के पानी की ताकत को पहले जानते थे। शाबाश बहादुर! तुम जीत गये हम परास्त हो गये। आज से दूध ही मिलता रहेगा। रहस्य दूध में न था अपितु संकल्प की अचलता में था।

सन् १९१९ में सरकार ने स्वयं अपनी तरफ से केशरीसिंह से अपने केस की वायसराय के नाम अपील की। जेल अधिकारियों के अति आग्रह पर ही यह अपील की गई थी और सन् १९१९ में जून के अन्त में केशरीसिंह को छोड़ दिया गया। इसके पश्चात् का इतिहास नहीं मिलता।



श्री लक्ष्मीकान्त



श्री देवशरण



श्री सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय

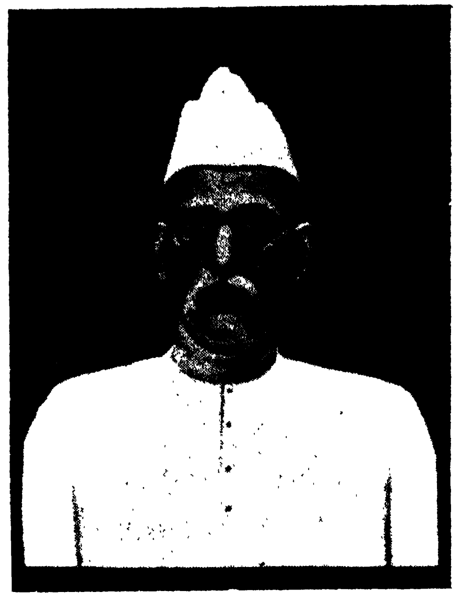


श्री मनमोहन गुप्त

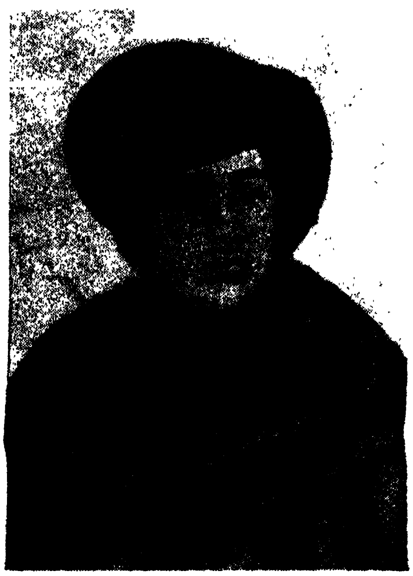
राजस्थान के क्रान्तिकारी—



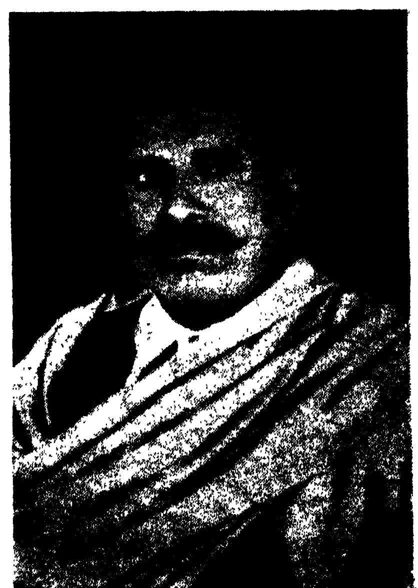
बाबा नरसिंहदास



श्री अर्जुनलाल सेठी



कुंवर प्रतापसिंह बारहट



श्री विजयसिंह पथिक

वीरप्रवर कुंवर प्रतापसिंह बारहट

(ब्र० धर्मव्रत)

राजस्थान ने स्वतन्त्रता के लिए जितना रक्त बहाया है वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। हजारों नहीं लाखों राजपूतों ने अपने प्राण हथेली पर रख कर अपने प्यारे चितौड़ के लिए आहुतियाँ दी हैं। महाराणा प्रताप ने आजीवन कष्टों का सामना किया, किन्तु दुष्ट यवनों की पराधीनता एवं किङ्करता स्वीकार न की। उसी वीर देशभक्त महाराणा प्रताप के रक्त का सञ्चार वीर कुँवर प्रतापसिंह की धमनियों में विद्यमान था। प्रतापसिंह भी प्रताप के प्रताप को देखकर पागल हो जाता था। प्रतापसिंह ने अंग्रेजों की किङ्करता स्वीकार न की, अपितु उनके विरोध में बड़ा भारी विद्रोह किया।

प्रतापसिंह का जन्म उदयपुर (राजस्थान) में वि० सं० १९५० ज्येष्ठ शुक्ला ९ को हुआ था। इनकी माता का नाम श्रीमती माणिकदेवी था। सबसे पहले प्रताप ने कोटा में शिक्षा प्राप्त की थी। तत्पश्चात् "दयानन्द ऐंगलो-वैदिक हाई स्कूल व बोर्डिङ्ग" अजमेर में भेज दिया गया। वहां पर मैट्रिक तक पढ़ा, परन्तु परीक्षा में न बैठा। उसे सार्टिफिकेट (प्रमाण पत्र) की इच्छा नहीं थी। अंग्रेजी पढ़ी ही इसलिए थी कि इसके द्वारा भारत के किसी भी प्रान्त में सेवा कर सके और अपने को खपा सके। सरदा केशरीसिंह यूनिवर्सिटी की शिक्षा को दासत्व का साँचा मानते थे। अतः उन्होंने प्रताप को पन्द्रह वर्ष की आयु में स्वतन्त्र शिक्षण के लिए जयपुर के प्रसिद्ध देशभक्त अर्जुनलाल सेठी के जैन विद्यालय में पढ़ने के लिये भेजा। वह जैन विद्यालय जयपुर से इन्दौर गया तब प्रतापसिंह दिल्ली के देशभक्त अमीरचन्द के यहाँ रहे थे। इनके पिता का नाम सरदार केशरीसिंह था। जो क्रान्तिकारियों के सर्वेसर्वा माने जाते थे। इनका परिवार राजस्थान में गण्य-मान्य धनिक जमींदारों में गिना जाता था। परन्तु देश सेवा के निमित अपनी सारी समृद्धि को नष्ट करना पड़ा, एवं घर-बार को छोड़ कर दर-दर का भिखारी बनना पड़ा।

दिल्ली षड्यन्त्र में प्रतापसिंह और उनके बहनोई पकड़े गये थे। परन्तु इनके विरोध में कोई विशेष प्रमाण न मिला। अतः इनको छोड़ दिया गया। इसके कुछ दिन पश्चात् कोटा में एक राजनीतिक मामले में कुँवर प्रतापसिंह के पिता सरदार केशरीसिंह बारहट को आजन्म काले पानी का दण्ड हुआ। सरदार केशरीसिंह का स्वास्थ्य उन दिनों अच्छा न था, अतः उन्हें अण्डमान न जाना पड़ा परन्तु वे अपनी दश की ही जेलों में रहे। कुँवर प्रतापसिंह के सगे चाचा के नाम भी वारण्ट निकला था। इस कारण सरदार केशरीसिंह एवं उसके भाई की सारी सम्पत्ति जब्त हो गई थी। उनके परिवार के लोगों की भी सम्पत्ति (जायदाद) इसलिए जब्त कर ली थी, कि इनका सम्बन्ध प्रतापसिंह के परिवार के साथ था। इस प्रकार से एक समृद्ध सम्पन्न परिवार को भिक्षुक बनना पड़ा।

समस्त परिवार के भिक्षुक बन जाने पर प्रतापसिंह की माता अकेली अपने घर रह गई थी। उसको भी बहुत कष्ट दिया गया था। यदि आज एक सम्बन्धी के पास रहती तो दूसरे दिन दूसरे के पास रहना

पड़ता। जब इसकी माता ने किसी भी प्रकार से गुजारा न चलता देखा तो पिता के घर जाकर अपने दिन बिताने लगी। प्रताप के मामा के घर की अवस्था अच्छी न थी। परमेश्वर की लीला विचित्र है। जिससे वे कार्य कराना चाहते हैं अथवा जिसको वे उन्नति पथ पर बढ़ाना चाहते हैं, उसकी वह प्रथम परीक्षा कष्टों में लेता है। कुँवर प्रतापसिंह से भी भगवान् देश हित करवाना चाहता था। अतः प्रतासिंह की कष्टों द्वारा ही परीक्षा ली। बड़ी भारी विपति में पड़ करके भी प्रतापसिंह बराबर विप्लव का काम करता रहा। प्रतापसिंह अपना स्वार्थ साधने के लिए क्रान्तिकारी दल में प्रविष्ट न हुए थे. अपितु अपने कर्तव्य को निभाने के लिए प्रविष्ट हुए थे। जो मानव केवल मित्रता के कारण एवं मित्रों के अनुरोध से कार्य करता है, उसमें उत्साह नहीं लेता। परन्तु जो हार्दिक इच्छा से कार्य क्षेत्रमें उतरता है वह ही सफल होता है। एवं उसकी ही आत्मा दृढ़ होती है। प्रतापसिंह सदा हँसमुख रहते थे। जो भी उनके पास ठहरता था उसको भी वह हँसमुख कर लेता था। निराशा तथा भीरूता उसमें तनिक भी नहीं थी। प्रतापसिंह राजस्थान के चारण वंश के थे। राजपूतों में चारण वंश वाले ही पूज्य माने जाते हैं।

प्रतापसिंह के पिता केशरीसिंह बारहट उदयपुर के राणा फतहसिंह के विशेष मित्र थे। जिस समय कर्जन के अत्यधिक आग्रह से महाराणा फतहसिंह दिल्ली दरबार जाने को तैयार हो गये थे, उसमें इनका जाना राजस्थान निवासियों को खटका। स्वामी दयानन्द के शिष्य एवं केशरीसिंह के पिता शाहपुरावासी श्री कृष्णसिंह बारहट ने, जो राजस्थान के क्रान्तिकारी स्वाधीनतावादी दल के एक नेता थे, उन्होंने अपने पुत्र केशरीसिंह से चुभती हुई कविता लिखवा कर महाराणा के पास भिजवाई। जो कविता "चेतनावणीश चूँगट्य" के नाम से प्रसिद्ध है। केशरीसिंह ने लिखा था—

कठिण जमानो कौल बाँधे नर हिम्मत बिणा।
यो वीरां हन्दो बोल, पातक सांगे देखियो॥
मान मोद सीसोद राजनीति दल राखणो।
पण गरमिण्ट री गोद मीठा फल दीढा फतां॥

इसका अर्थ यह है कि—"जमाना कठिन है ऐसा कौल (सिद्धान्त) मनुष्य बिना हिम्मत बांधता है।" वीरों के इस बचन को पातऊ अर्थात् प्रताप और सांगा ने पहचाना था। सीसोदियों के मान का मजा राजनीति में रखने से था। परन्तु हे फतहसिंह! तुझे अब गर्वनमेंट (अंग्रेज सरकार) की गोद में मीठे फल नजर आ रहे हैं।

बताया जाता है कि यह कविता महाराणा फतहसिंह को चित्तौड़ से रेल में बैठकर दिल्ली रवाना हो जाने के बाद रास्ते में सरेटी स्टेशन पर मिली। उसे बड़ा पछताना पड़ा। दिल्ली पहुंचकर भी वह कर्जन की उस प्रदर्शनी में सम्मिलित न हुआ। परन्तु रोगी का बहाना बनाकर उदयपुर वापिस लौट आया था। इससे यह पता चलता है कि इनकी किस प्रकार की मित्रता थी। एक मित्र ने अपने मित्र को दुःख के गर्त में जाने से बचाया। इसी को सच्ची मित्रता कहते हैं।

कुँवर प्रतापसिंह के दादा उदयपुर के महाराणा फतहसिंह के यहां मन्त्री पद पर नियुक्त थे। इनकी जागीर मेवाड़ के अन्तर्गत शाहपुरा राज्य में थी।

कुँवर प्रतापसिंह ने एक दिन अपनी माता से कहा—"माता धोती फट गई, कहीं से तीन रुपये का प्रबन्ध कर दो, तो धोती लाऊँ। आज ही चाहिए।" माता के हाथ तो सर्वथा खाली थे। प्रयत्न करके दो रुपये मिले वे पुत्र के हाथ में दिए।। प्रताप के लिए माता का दिया हुआ यही अन्तिम आशीर्वाद

था। बिना कुछ कहे मन ही मन माता को अन्तिम नमस्कार कर, सायंकाल होते ही वह निकल पड़ा। वहाँ से शहर में अपने पिता के एक मित्र के पास पहुंचा और कहा—"जो कुछ भी तैयार है भोजन यहीं करूँगा।" भोजन करते समय मित्र ने कहा—"कुँवर साहब! अब आपकी क्या इच्छा है?" प्रताप ने कहा—"शादी करनी है।" क्या कहते हो शादी? आज तक तो स्वीकार न की अब इस घोर विपत्ति में शादी? यह क्या सूझी? प्रतापसिंह ने कहा—"हां निश्चय ही शादी, लग्न भी आ गया है। उसी के लिए जाता हूं।" कहां? तुम सब सुन लोगे।" यह कहते हुए जोर से "वन्दे मातरम्!" का नारा लगाया और अदृश्य हो गया। उसके बाद प्रताप को कोटे में किसी ने नहीं देखा। बेचारा मित्र क्या समझे कि प्रताप की शादी क्या है? दूसरे दिन जब प्रताप घर नहीं लौटा, तो वहीं मित्र आया और शादी की बात कही। चतुर माता सब समझ गई और कहा "ठीक है, परन्तु उसने मुझसे नाहक ही छिपाया। मैं उसे तिलक करके और चुम्बन लेकर बिदा करती।" यह थी सच्ची माता। जब देश में इस भावना वाली माताएँ होंगी तभी भारत का कल्याण होगा।

कुँवर प्रतापसिंह का सम्बन्ध क्रान्तिकारियों में धीरे-धीरे बढ़ता गया। प्रतापसिंह ने अपना कार्य क्षेत्र राजस्थान ही बनाया। शचीन्द्रनाथ सान्याल जिस समय उत्तर भारत की गतिविधि को जानने के लिए रासबिहारी वसु के आदेश से भ्रमण कर रहे थे उसी समय कुँवर प्रतापसिंह भी शचीन्द्रनाथ सान्याल के साथ दिल्ली गया था। अवधविहारी के गिरफ्तार हो जाने के बाद दिल्ली विप्लव दल का भार लक्ष्मी-नारायण और गणेशीलाल पर पड़ा। कुछ दिनों तक इन्होंने बड़े उत्साह से कार्य किया परन्तु कुछ ही दिनों में वे शिथिल हो गये। इनके शिथिल हो जाने पर दिल्ली दल का भी कार्य शिथिल हो गया। इस विप्लव दल को सुदृढ़ बनाने के लिए प्रतापसिंह एवं शचीन्द्रनाथ सान्याल दिल्ली आये थे। प्रतापसिंह ने दिल्ली में एक मकान खरीदा एवं वहां पर निवास करने लगे। जब आवश्यकता होती तब राजस्थान चला जाता। वहाँ पर रह कर पुनः दिल्ली चला आता। इस प्रकार का क्रम उसने बहुत दिनों तक चलाया। कुँवर प्रतापसिंह राजस्थान से कुछ युवकों को लाया जिनसे उसने दिल्ली विप्लव-दल का कार्य बड़े जोरों से चलाया।

विष्णु गणेश पिंगले के गिरफ्तार हो जाने पर दल का भार शचीन्द्रनाथ सान्याल पर पड़ा। उसने भारत में क्रान्ति के लिए वातावरण और संगठन बनाये रखने के लिये प्रतापसिंह के साथ राजस्थान जाने का विचार किया। परन्तु शचीन्द्रनाथ सान्याल का स्वास्थ्य दिल्ली में रहने से खराब हो गया था। उसे कुछ दिन तक विश्राम करने की आवश्यकता थी। इसलिये प्रतापसिंह शचीद्र को कलकत्ते छोड़ आया। प्रतापसिंह की उस समय लाहौर, दिल्ली, बनारस आदि के षड्यन्त्रों के मुकद्दमों में मांग थी। परन्तु इसके वारण्ट होने के कारण इसने इनकी माँगें स्वीकार न कीं। वारण्ट होने के कारण प्रतापसिंह को राजस्थान से बाहर सिन्ध हैदराबाद जाना पड़ा। वहां पर प्रताप कम्पाउडर का काम करता था और क्रान्ति का भी प्रचार करता था। पुलिस को उसके हैदराबाद में होने की बात भी मालूम हो गई। बात का पता होने पर वहां सुरक्षित रहना असम्भव था। अतः प्रतापसिंह चौ० रामनारायण को वहां से बीकानेर ले आया। जहां प्रतापसिंह का रिश्तेदार था, एवं जो राज में पर्याप्त ऊँचे पद पर नियुक्त था। वहाँ पर रखा।

अन्त में फिर पंजाब को प्रताप की आवश्कता हुई तब आह्वान पाकर वह उधर लपका। हैदराबाद के कार्य को दूसरों के हाथ में सोंप, गर्मी, भूख और चार-पांच दिन का जागरण सहता हुआ रेल से जोधपुर होकर निकला। जोधपुर से अगले छोटे-से स्टेशन 'आसानाड़ा' पर स्टेशन मास्टर परिचित था। वहाँ

ठहरकर कुछ आराम कर लेने और कुछ नई बात हो तो जान लेने के विचार से प्रताप वहाँ उतर गया। उसे क्या मालूम था कि वह विश्वासघाती के चगुंल में जा रहा है। स्टेशन मास्टर को इस बीच में पुलिस ने फोड़ लिया था। स्टेशन मास्टर ने प्रताप को देखते ही कहा—"पुलिस तुम्हारे लिए चक्कर लगा रही है। कोई देख लेगा, मेरी कोठरी में जा बैठो, कुछ खाओ-पिओ।" वह प्रताप को अपनी कोठरी में ले गया। प्रताप ने कहा—"निद्रा सता रही है सोऊँगा।" विश्वासघाती ने कहा—"निःशङ्क सो जाओ, ताला लगा देता हूं ताकि किसी को भ्रम न हो।" प्रगाढ़ निद्रा होने पर स्टेशन मास्टर ने कोठरी में से प्रताप का शस्त्र और दूसरी सब चीज निकाल ली ताकि मुकाबले के लिए प्रताप के हाथ में कुछ भी न रहे। फिर उसने जोधपुर पुलिस को टेलीफोन कर दिया। बस फिर क्या था पुलिस फौजी रिसाला और दल-बल के साथ जा पहुँची। आसानाडा घेर लिया गया। कोठरी के द्वार और खिड़कियों पर बर्छी और संगीनें अड़ा दी गईं। चुपके से ताला खोल कर सोते हुए प्रतापसिंह पर पुलिस टूट पड़ी और बेचारा गिरफ्तार कर लिया गया।

उस समय प्रताप की उग्र मुख-मुद्रा, जोश भरी लाल आंखें, फड़कते हुए होंठ और उलझते हुए बाहुओं को, जिनकी आंखों ने देखा वे आज भी कहते हैं कि वह सच्चा वीर था, संभल जाता तो अवश्य वीर खेल जाता।

आज भी आंखों में पानी भर कर पुलिस के काले आफिसर मुक्तकण्ठ से कहते हैं—"हमने आज तक प्रताप जैसा वीर और विलक्षण बुद्धि का बालक नहीं देखा। उसे तरह-तरह से सताया जाने में कसर नहीं रखी गई। परन्तु वाह रे धीर! टस-से-मस न हुआ। गजब का सहने वाला था। सर चार्ल्स क्लीवलैण्ड (भारत के डाईरेक्टर आफ सी० आई० डी०) जैसे घाघ का दिमाग भी चकरा गया। हम सब हार बैठे उसी की दृढ़ता अचल रही।

आसानाडा में प्रतापसिंह दिल्ली षड्यन्त्र में गिरफ्तार हुआ था। गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। प्रताप पर क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित होने का दोष लगाया गया था। जिसका इसको कठोर कारावास दण्ड मिला। गिरफ्तार होने के कुछ दिन पश्चात् भी पुलिस अनेक प्रलोभन देकर उन्हें सब गुप्त बातें प्रकट करने के लिए दुःखी करती रही। पुलिस कहती थी, यदि तुम सब गुप्त बातें प्रकट कर दोगे तो तुम्हें और तुम्हारे पिता को छोड़ दिया जायेगा एवं चाचा का मुकद्दमा भी उल्टा ले लिया जायेगा। तुम्हारी समस्त सम्पत्ति भी उल्टी कर दी जायेगी। इससे पृथक् और भी पुरस्कार दिया जायेगा। यह ही नहीं, पुलिस ने भेद खोलने के लिए और भी बहुत दबाव डाले एवं अत्याचार किये। उसकी माता का हृदय द्रावक वर्णन उसको सुनाया गया।

प्रतापसिंह पुलिस की सब बातें सुन लेता था। परन्तु उत्तर एक का भी न देता था। पुलिस ने अपनी सारी शक्ति लगा ली किन्तु प्रतापसिंह से कुछ भी पता न पा सकी। पुलिस समझती थी कि यदि प्रताप को समझा लिया जावे तो बड़ी-बड़ी बातों का रहस्योद्घाटन हो सकता है। वह बीर था, अपनी माता के कष्टों को दूर करने के लिए जान देने को तैयार था, पर बात बताने को तैयार न हुआ। पुलिस ने साम-दान आदि से व्यवहार किया था।

एक दिन प्रतापसिंह के साथ पुलिस की तीन घण्टे तक बात-चीत हुई। प्रताप उन के बहकाने में आ गया था, किन्तु पुलिस से कह दिया था कि एक दिन और सब बातें सोच लेता हूं फिर कहना होगा तो कह

दूँगा। दूसरे दिन पुलिस मिलने आई। तब प्रताप ने उत्तर दिया—"देखिये! बहुत सोचा विचारा. अन्त में यही तय किया कि कोई भी बात न खोलूँगा।" और कहा—"अभी तो मेरी एक माता दुःख भोग रही है। यदि मैं तुम्हें भेद बता दूँ तो न जाने उस जैसी और कितनी माताओं को वैसा ही दुःसह कष्ट भोगना पड़े। एक माता के सुख के लिए मैं सैकड़ों र.ताओं को विपत्ति में डालना नहीं चाहता। । जो चाहो करो, मैं हरगिज तुम्हें कुछ न बताऊँगा।

कुंवर प्रतापसिंह को बरेली जेल में रखा गया गया। जो कि उस समय भारत में सबसे अधिक बदनाम थी। वहां पर उसका सुख में पला २५ वर्ष का सुकुमार गात विदेशी शासकों के नृशंस अत्याचारों को सहने में उसकी अदम्य आत्मा का साथ अधिक दिन न दे सका। अन्त में उसने स्वतन्त्रता की वेदी पर वि० सं० १९७५ (सन् १९१९) की वैशाख पूर्णिमा को अपनी बलि चढ़ा दी। भारत का दुर्भाग्य है कि कुंवर प्रतापसिंह जैसे वीर आज हमारे मध्य में नहीं हैं। क्रान्तिकारियों के इतिहास में इस प्रकार का परिवार वीर सावरकर को छोड़ कर नहीं हुवा, जिसने देश के हित के लिए अपना बलिदान किया हो एवं देश के लिये भिखारी बन गया हो, भिखारी ही नहीं अपने प्राणों को स्वतन्त्रता की वेदी पर बलि चढ़ा दिया हो। ऐसे परिवार का नाम भारतीय क्रान्तिकारी इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा।

——०——

वीरभूमि राजस्थान के क्रान्तिकारी वीर—

ठाकुर जोरावरसिंह बारहट

(ब्र० धर्मव्रत)

भूतल पर बल खाती हुई उस नील नीरभ्र जलधारा के उत्तुंग कगारों पर आच्छादित घनी झाड़ियों के मध्य एक छोटी सी अपरिचित बस्ती राजस्थान के दक्षिण दिशा में है। दिनान्त की धूलि-धूसरित आभा जब उन खपरेलों के घरों पर पड़ने लगी तब जलचरों की दीर्घ प्रति ध्वनि पुनः कर्णरन्ध्रों में निनादित होने लगी, और नेत्रों के प्रकोष्ठ में आत्मानुभूति की तीव्र वेदनामय सृष्टि अदृष्ट सी झलकने लगी, तो वह ग्राम प्रदेश एक अनुपम आल्हाद, गौरव और तीर्थरूप बनकर हृदय में प्रतिबिम्बित हो उठा। इस पावन स्थान का, चाहे अन्य न जानें, इसमें जीवन-व्यापन करने वाले प्राणी-विशेष की महती तपश्चर्या का वैभव तथा आडम्बर में चुंधियाई हुई विश्व की आंखें मूल्याङ्कन न कर सकें, और त्याग, संकल्प एवं कष्ट सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति उस तपस्विनी देवी को आजन्म विपत्ति-विभीषिका से आक्रान्त ही रहना पड़े, लेकिन देश और दलित मानवता की सेवार्थ बीता हुवा एक निमेष, उच्छ्वसित श्वास और त्यक्त अश्रु भी शून्य में निष्फल नहीं जाते। फिर यह तो एक युग से भी अधिक की हुई महान् साधना थी। शरीर की अजस्र तपस्या थी और मन की अमर भक्ति। जिसका प्रारम्भ उनके पतिदेव के फरार हो जाने पर क्रान्तिकारी जोरावरसिंह की स्त्री ने अपने गृह 'खरकटा' नामक ग्राम में की थी। इसीलिये तो वह भूमि खण्ड अपनत्व और स्वाभिमान का साकार रूप लेकर एक विशेष स्पन्दन के साथ मानस के अङ्ग-अङ्ग में समा रहा था। जिसमें जोरावरसिंह की घोर साधना ने सम्बल प्रदान किया।

भारत की ऐसी ही आदर्श उत्तराओं ने अनेक अभिमन्यु तैयार किए और इन्हीं देवियों के महान् त्याग से देशभक्तों का सृजन हुवा। जिस बल पर जोरावरसिंह आजन्म अपनी देश-सेवा के अपराध में दर-दर भटकते रहे। विपक्षियों और खुफिया पुलिस के बिछे हुए दकियानूसी जाल से सदा मुक्त रहे और बेड़ी की लोह-शलाका अपने समर्थ हाथों को न छूने दी। यह उस आदर्श अर्धाङ्गिनी की अद्वितीय और दुर्लभ त्याग भावना ही थी। जोरावरसिंह के समान यह देवी अनोपकुंवरबाई अपने परिवार की ज्वलन्त देशभक्ति की स्फुरणाओं से नहीं डरी, और पतिदेव को भी उस यज्ञ में आहुत होने के लिए अग्रसर कर दिया। निरन्तर छबीस (२६) वर्ष फरार रहने के बाद इस तपस्विनी देवी को एकाँकी छोड़ कर जोरावर सिंह अमरपद में लीन हो गये। और दो साल पश्चात् वह देवी भी अपने सौभाग्य के पद चिह्नों का अनुसरण कर गई।

यह क्रान्तिकारी जोरावरसिंह के ससुराल 'अतरालिया' ठिकाने के पट्टा का एक ग्राम 'खरकड़ा', जिसमें राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेने के कारण पैतृक गृह, गाँव आदि जब्त हो जाने के पश्चात् उनकी गृह लक्ष्मी ने अपने यातनामय जीवन के पिछले क्षण बिताये। राजस्थान में जहां पुरुषों में अपूर्व वीरता की सृष्टि हुई, वहाँ नारी के आदर्श की महत्ता भी अक्षुण्ण रही और जोरावरसिंह तथा अनोपकुंवरबाई इसके अनुपम उदाहरण हैं। जिस समय स्वतन्त्र भारत के सच्चे इतिवृत्त का सृजन होगा और वास्तविक त्याग तथा शौर्य की प्रच्छन्न मणियों का दिग्दर्शन होगा। तब ये दोनों गुप्त रत्न अपनी अतुल प्रभा के साथ भावी संतति के लिए अनुकरणीय आदर्श के रूप में उपस्थित होंगे।

सरस्वती जैसी सरितायें किसी काल में रेगिस्तान के गर्भ में लुप्त हो चुकी हैं और पर्वतमालाओं का भूकम्प में अदृश्य होना संभव है लेकिन देश और समाज की बलिवेदी पर सर्वस्व स्वाहा करने वाले स्व० ठा० जोरावरसिंह जैसे उद्भट क्रान्तिकारी सदा अमर रहेंगे।

राजस्थान के एक सुसंस्कृत, समृद्ध और प्रतिष्ठित घराने में जोरावरसिंह ने जन्म लिया। इनके पिता लब्ध प्रतिष्ठित, इतिहासज्ञ, उद्भट विद्वान्, और सूक्ष्म राजनीतिक "कृष्णसिंह बारहट शाहपुरा थे।" कृष्णसिंह बारहट के तीन पुत्र थे। तीनों भ्राताओं में प्रातः स्मरणीय राजस्थान-केसरी ठा० केशरीसिंह अग्रज थे। इतिहास वेत्ता ठा० किशोरसिंह बार्हस्पत्य मध्यम थे और छोटा जोरावरसिंह था। जोरावरसिंह का बाल्यकाल शाहपुरा, उदयपुर, और जोधपुर में राजसिक ठाठ बाट के साथ अपने पिता के साथ व्यतीत हुवा। जहां पर जीवन के प्रारम्भिक दिनों में अनुशासन, सुव्यवस्था, निर्भीकता, सत्यकथन और वीरता के संस्कार इस भावी वीर पर स्वतः ही पारिवारिक विशेषताओं के साथ अन्तर्मानस में दृढ़ हो गये। यह गौरवर्ण शरीर, ऊर्ध्व ललाट, दीर्घनेत्र और ओजस्वी मुखाकृति वाला बालक वीर जोरावर सिंह अपने परिवार के लिए कितना प्रिय था। वह इस जीवन में सब प्रकार से सुखी, सम्पन्न और निश्चिन्त था। ऐश्वर्य के साथ जब सजीव हृदय और सुसंस्कारों का मेल होता है तब ऐसे आदर्श व्यक्तित्व का सृजन होता है जिसका सानी अलभ्य होता है। और ये ही विशेषताएँ जोरावरसिंह में थी। जिस युवक जोरावरसिंह को युवावस्था के आमोद-प्रमोद से अवकाश ही न था। और जिसे अपने पिता के स्वर्गवास के बाद "जोधपुर महाराजा ने उसी इज्जत व तनख्वाह पर महारानी का कामदार नियुक्त किया था। यही जोरावरसिंह एक दिन वायसराय पर बम फेंकने वाला बागी बन गया और ब्रिटिश सरकार ने इस फरार जोरावरसिंह को प्राण दण्ड दिया।" इस जीवन में ऐसा नाटकीय परिवर्तन किस प्रकार संभव हुवा।

यही जोधपुर राजकुमारों के अध्यापक स्व० शहीद बालमुकुन्द जी के जीवन में हुवा था। बालमुकुन्द पंजाब प्रान्त के निवासी थे। जोरावरसिंह को भौतिक सुखों की लिप्सा क्षण भर के लिए भी रोक नहीं सकी सुवर्ण और रजत के उन अर्थ भरे उपकरणों ने इसे आकर्षित नहीं किया। और उन सत्ताधारी नरेशों की सर्व समर्थ ब्रिटिश सरकार के अपरिमित साधनों की बलशीलता ने इसे तनिक भी भयभीत नहीं किया।

राजाओं के दरबार में आने वाला जोरावरसिंह अदालती मुलजिम करार दिया गया। और वह भी अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से नहीं। विजातीय सरकार और उसके शक्तिहीन महाराजाओं का स्वामिभक्त बन कर जोरावरसिंह अवश्यमेव एक अति प्रतिष्ठित, सम्पत्तिशाली, और गौरवशाली बन सकता था। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि पाशबद्ध भारत माता को मुक्त करने में इसका हाथ कदापि न होता। और स्वाधीन भारत जिन प्रच्छन्न शहीदों की आहुति पर अपने स्वर्णिम युग का निर्माण करने जा रहा था उसमें इस महान् मौन आहुति का अभाव रहता, जिसके चरणों पर अनेकों मस्तक झुकेंगे। "बंगभंग से लेकर सन् १९४२ की अन्तिम क्रान्ति तक जितने भी बलिदान पराधीन भारत में हुए। उनमें यदि अतुलित त्याग, अद्वितीय धैर्य और अपरिमित कष्ट सहिष्णुता की तुला में उन पुरुष पुंगवों को रखा जाय तो ठा० जोरावरसिंह का स्थान सर्वोत्तम शहीदों में होगा।" राजस्थान का तो सौभाग्य है कि उस महान् बारहट परिवार में उसे एक साथ ठा० केशरीसिंह जी, बरेली जेल में शहीद हुए उनके सुपुत्र कुंवर प्रतापसिंह और भाई ठा० जोरावरसिंह जी प्राप्त हुए।

सन् १९१४ में जोरावरसिंह के बड़े भाई ठा० केशरीसिंह जी को कोटा षड्यन्त्र में जहाँ आजन्म काले पानी की सजा हुई, वहाँ जोरावरसिंह को न्यायाध्यक्ष ने सात साल का कठिन कारावास प्रदान किया। लेकिन छोटा भाई जोरावरसिंह देशभक्ति की होड़ में कहां पीछे रहने वाला था। "बिहार प्रान्त के प्रसिद्ध 'आरा षड्यन्त्र' में फरार जोरावरसिंह को प्राण दण्ड की सजा दी गई। किन्तु वह फरार था। जोरावरसिंह को पकड़ने के लिए कोटा सरकार ने ६००) रु० का और बिहार सरकार ने ६००) रु० के इनाम (पारितोषिक) की घोषणा की और ब्रिटिश सरकार ने अपने इस भयंकर शत्रु का जी-जान से पीछा किया।"

जिस दिन गोरी सरकार की पुलिस ने और मिलिट्री ने इनकी पैतृक सम्पत्ति (शाहपुरा) में धर पकड़ शुरू की उसी दिन से जोरावरसिंह फरार हो गये और राजस्थान के अतीत वीरों की भाँति न जाने किन-किन दुर्गम घाटियों में और उत्तुंग पहाड़ों और निरापद स्थानों में भटकते रहे। अपना सम्मिलित प्यारा परिवार जिस दिन से उस वीर ने छोड़ा, उसके पश्चात् आजन्म फिर एकत्रित रूप से कभी न मिल सका। और देशभक्ति के अपराध में यह दर-दर घोर कष्टों का सामना करते हुए सी० आई० डी० की चंगुल से अपने शरीर को बन्दी बनाने से बचाते रहे। इस क्रान्तिकारी ने अपने वेषभूषा और बोलचाल को बदल कर गुप्त वेष धारण कर लिया। और युग पर्यन्त अज्ञातवास की कठिनतम यन्त्रणाओं के सम्मुख क्षण के लिए भी विचलित न हुए। इनकी ओजस्विनी वाणी पर कभी करुण कराह की काली छाया न पड़ सकी। और उन तेजोमय चक्षुओं में पश्चात्ताप का एक भी आंसू प्रकट नहीं हुआ। दुर्बल मानस और घातक अधीरता इन्हें छू न सकी। प्रचण्ड तूफान के बीच अडिग खड़े रहने वाले अस्वस्थ वृक्ष की तरह उन घोर विपत्तियों में भी ये कभी अपने पथ से चलायमान न हुए।

सांसारिक सुखों को लात मार कर इस वीराग्रणी ने सर्वदा संकटमय जीवन का वरण किया। इसके सम्पन्न गृह को शाहपुरा में अंग्रेजों के राजाधिराज ने लूट लिया और उनकी जागीर के गांव को भी खुशामदवश हड़प बैठा। जोरावरसिंह का प्रतिष्ठित परिवार इनकी देशभक्ति के कारण खानाबदोश बन चुका था। लेकिन इसे इस दयनीय अवस्था की भी चिन्ता न थी। क्योंकि ये जानते थे कि राज्यशक्ति का सामना करने पर फाँसी और कारावास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जोरावरसिंह को पकड़ना तो पुलिस ने सबसे सहज समझा था। क्योंकि इनके ललाट पर 'लशन' का चिह्न था। परन्तु इसने तो न जाने किस प्रकार अपनी पगड़ी और साफा बांधना शुरू किया कि धीरे-धीरे वह निशान भी ऊँचा चढ़ा दिया और बाद में तो वह बालों के समीप ही आ गया था।

फरार होने के कई वर्षों बाद जोरावरसिंह अपरिचित वेष में मेहमान के रूप में कभी-कभी राजस्थान केसरी के परिवार में और कभी-कभी 'खरकड़ा' ग्राम में गृहलक्ष्मी अनोपकुंवर से मिलने आते थे। सब मनुष्य जोरावरसिंह को महाराज नाम से पुकारते थे। बालकों को केवल इतना ही बताया जाता था कि ये 'महाराज' तुम्हारे बहुत प्रिय हैं। रात को यहाँ रहते और प्रातःकाल उठकर चले जाते, कहीं पुलिस को पता न लग जाये। एक बार तो दुर्भाग्यवश पुलिस ने 'कोटे' में मकान का घेरा लगा दिया। सब मनुष्य किंकर्तव्य विमूढ हो गये। "परन्तु वह देशभक्त जोरावरसिंह एक मन्जिल से कूद पड़ा, और भयानक शीत में श्मशानों की 'छत्रियों' में जा छिपा।" वहाँ पर पुलिस ने पीछा किया। परन्तु यथा समय यह वहां से निकल गया। कुछ दिनों के बाद मेवाड़ के एक नीच मनुष्य ने जोरावरसिंह के साथ धोखा करके पुलिस के हवाले कर दिया।

जोरावरसिंह २६ वर्ष तक फरारी जीवन व्यतीत करता रहा। यह कहता था कि 'मैं स्वतन्त्र मौत से मरूँगा। ब्रिटिश सरकार की जेलें मुझे बन्दी नहीं बना सकतीं।

भारत में सशस्त्र क्रान्तिकारियों में ठा० जोरावरसिंह का भी नाम है। ये निर्भीक होकर अपने अग्रेज भाई स्वनामधन्य केसरीसिंह राजस्थान केशरी के पद चिन्हों पर चलते रहे। अमरशहीद कुंवर-प्रतापसिंह, जोरावरसिंह का भतीजा था। ठा० केशरीसिंह और जोरावरसिंह, कुंवर प्रतापसिंह ये तीनों अपने पार्थिव जीवन की मातृ-मन्दिर में बलि दे गये। भारत में बहुत ही कम ऐसे परिवार मिलेंगे जिसमें सभी ने अपना वलिदान किया हो।

जोरावरसिंह ने अधिकतर अपने फरारी जीवन के दिवस मालवे की ओर अपने घनिष्ठ मित्रों में बिताये। जब कांग्रेस ने सर्व प्रथम मिनिस्ट्रीज प्रान्तों में बनाई थीं उस समय राजस्थान केसरी ठा० केशरीसिंह ने बा० पुरुषोत्तम दास टण्डन, बिहार के मुख्य सचिव श्री कृष्ण नारायणसिंह और गृह सचिव अनुग्रह नारायणसिंह, से मिल कर जोरावरसिंह का वारण्ट रद्द कराया, जो आरा षड्यन्त्र के सम्बन्ध में तत्कालीन सरकार ने जारी किया था। दोनों सचिवों ने वचन दे दिया था कि जोरावरसिंह स्वतन्त्र हो जायेगा। परन्तु भगवान् को यह स्वीकार न हुआ कि देशभक्त स्वच्छन्द हो जाये, उन्हीं दिनों सन् १६३६ में ये निमोनिया रोग में भारत से सर्वदा के लिए छीन लिए गये।

इनके स्वर्गवास के कुछ वर्ष पश्चात्, जोरावरसिंह बारहट के सम्बन्ध में मरुमालव के श्रेष्ठ पत्रकार तारानाथ 'रावल' ने बताया कि 'लार्ड हार्डिंग पर बम चलाने वाले वास्तव में ठा० जोरावरसिंह और कुंवर प्रतापसिंह ही थे जिन्होंने बुर्का ओढ़ कर बम लार्ड हार्डिज पर फेंका था।

जब ये बम डालने निकले तो कुछ साथी पहले साथ-साथ गंगा से नाव में पार हो रहे थे तो इनसे पूछा गया कि तुम्हारे पास इतना सामान कैसे है ? तब इन्होंने कहा कि 'माहेरा' लेकर जा रहे हैं। इधर इन्हें यह भी शक हो गया था कि कहीं पुलिस सन्देह न कर ले। वहीं से इन्होंने अपने अन्य साथियों को लौटा दिया और प्रताप ने जोगिया कपड़ा पहना। हाथ इनका इतना सधा हुआ था कि ऊपर ओढ़ी हुई चद्दर का पल्ला ऊपर उठा तेजी से हाथ से बम निकाल देते थे। जब सवारी निकलने लगी तब फेंका और भीड़ में उसी क्षण गायब हो गये। आगे जाकर नदी में बाढ़ मिली। प्रताप जंजीर पकड़ कर सात घण्टे तक नदी में लटकता रहा, फिर कुछ तैरा और कुछ बहा। किनारे पर दो सिपाहियों को सन्देह हुआ तो जोरावरसिंह ने उनको तलवार के घाट उतार दिया और प्रताप को कन्धों पर डालकर ले गया। जोरावर-सिंह ने भारत को स्वतन्त्र करने के लिये बहुत कुछ कार्य किए हैं।

यद्यपि आज जोरावरसिंह का कोई चित्र अथवा मूर्ति आंखों के सामने नहीं है। और विस्मृति के धूमिल पट उस महान् त्यागी व देशभक्त की स्मृति पर पड़ चुके हैं और एक क्षीण सी याद थोड़े से मनुष्यों को शेष रह गई है। परन्तु स्वातन्त्र्य यज्ञ में दी हुई यह आहुति असफल नहीं गई। अन्तरिक्ष से टूटने वाले नक्षत्र क्षण भर के लिये दर्शकों की आंखों में चकाचौंध अवश्य कर देते हैं परन्तु दूर क्षितिज पर हल्के प्रकाश से चमकने वाले तारक रात्रि पर्यन्त उसी प्रारम्भिक शोभा के साथ अक्षुण्ण रहते हैं। सर्वस्व की आहुति देने वाले जोरावरसिंह ने अपने नश्वर शरीर से अमर कार्य किया। वैभव को तिलांजलि देकर देश प्रेम में परवाने की तरह अपने जीवन को न्यौछावर कर दिया। राजस्थान का गरिमामय "अरावली पर्वत" ऐसी मौन आहुतियों से ही अपने आप को गौरवान्वित समझ रहा है।

राजस्थानी-वीर विजयसिंह पथिक

(ब्र० धर्मव्रत)

वीर विजयसिंह पथिक उन वीरों में से हैं जिन्होंने अपने प्राण हथेली पर रखकर भारत माता के त्राण के लिये अपने अमूल्य जीवन को न्योछावर कर दिया। इस वीर को पाकर राजस्थान गौरवान्वित है। वैसे तो राजस्थान ने सैकड़ों वीरप्रवर एवं राजा महाराजा पैदा किए हैं। उनमें विजयसिंह पथिक का नाम भी स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है।

विजयसिंह पथिक का पूर्व नाम भोपसिंह था। भोपसिंह के पूर्वज ब्रज के जिला बुलन्दशहर के पास मालागढ़ के रहने वाले थे। इसके दादा मालागढ़ के नवाब एक पठान सरदार के दीवान थे। १८५७ के स्वाधीनता युद्ध में नवाब लखनऊ को अंग्रेजों के घेरे से छुड़ाने के लिये गया। तब मालागढ़ की अंग्रेज आक्रान्ताओं से रक्षा का काम उनके दादा पर छोड़ा गया था। उसकी रक्षा उन्होंने मरते दम तक वीरता से की थी। युद्ध की विफलता के पश्चात् अंग्रेजों ने नवाब को पकड़ कर फांसी पर लटका दिया और उसकी धन सम्पत्ति अपहरण कर उसके कृतघ्न नौकरों में जागीरदारियों के रूप में बांट दी थी। जिनमें से दो गांव एक गुठावली कलां और गुठावली खुर्द—सैय्यद मुश्ताक अली के वंशजों के पास अभी तक विद्यमान हैं। भोपसिंह (विजयसिंह) के पिता और परिवार के दूसरे लोगों को १८५७ के बाद बहुत दिन तक फरार का जीवन बिताना पड़ा था। तथा अन्त में आम क्षमा की घोषणा के बाद जब वे अपने ग्राम में वापिस जाकर रहने लगे तब भी अंग्रेजी पुलिस और उन देशद्रोही जमींदारों के कारण बहुत दिन तक उन्हें त्रास भोगना पड़ा। भोपसिंह के पिता का देहान्त उसकी छोटी अवस्था में इन सब कठिनाइयों की दशा में हुआ था। और भोपसिंह के चाचा आदियों को भी उस त्रास से मुक्ति अंग्रेजों की फौज में नौकरी स्वीकार करने पर ही मिली थी। भोपसिंह क एक चाचा बलदेवसिंह मऊ की छावनी में सूबेदार था। जब इन्दौर का महाराजा शिवाजी होल्कर १८९२ के बाद अंग्रेजों के विरुद्ध सैनिक विप्लव खड़ा करने की चेष्टा कर रहा था. उसमें महाराजा के साथ बलदेवसिंह का मुख्य हाथ था। मऊ की छावनी की फौजों का सम्पर्क महाराजा के साथ इसी कारण से था। बालक भोपसिंह का लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा सब अपने इसी चाचा के पास मऊ और इन्दौर में हुई थी। १९१० एवं १९११ में इन्दौर में पढ़ते समय ही अपने एक साथी द्वारा उसका शचीन्द्रनाथ सान्याल से सम्पर्क हुआ, और भोपसिंह शचीन्द्रनाथ सान्याल के दल में सम्मिलित हो गया। सन् १९११ में भोपसिंह (विजयसिंह) शस्त्रास्त्र संग्रह और राजपूतों से सम्पर्क बनाने के लिए रासबिहारी वसु द्वारा राजस्थान भेजा गया था।

२३ दिसम्बर १९१२ सन् को लार्ड हार्डिंग ने बड़ी सजधज के साथ अपनी नयी राजधानी दिल्ली में प्रवेश किया। पहले इसकी राजधानी कलकत्ता थी। उसको इसने किसी कारण छोड़ दिया था। क्रान्तिकारियों ने रासबिहारी वसु के नेतृत्व में चांदनी चौक के बीच में उसकी सवारी के हाथी पर बम फेंककर अंग्रेजों के उस रोष को गहरा आघात पहुंचाया। और अंग्रेजों को मानो यह सूचना दी कि बंग-भंग रद्द करने से वे शान्त होने वाले नहीं हैं। रासबिहारी वसु और उसके साथी उस काण्ड के बाद दिल्ली से अंग्रेजों की पुलिस और फौज के घेरे से निकल गये और साल भर तक पुलिस लाखों प्रयत्न करके भी

उनका कोई सुराख न पा सकी। इससे उनके संगठन की धाक और भी अधिक बैठ गई।

क्रान्तिकारियों ने इसी समय से देश में सशस्त्र राजक्रान्ति की तैयारियां प्रारम्भ कर दी थीं। हार्डिंग पर बम फेंकने के महत्त्व को समझाने वाले पर्चे देश में सर्वत्र व्यापक रूप से बांटे गये। उन पर्चों ने राजस्थान, महाराष्ट्र आदि के निवासियों को, जो भारत की पूर्ण स्वाधीनता के नारे को पहले पहल उन्नत करके, १९०९ एवं १९१० के बाद ढीले पड़ चुके थे, फिर से चेतन होकर बंगालियों के साथ मिलकर मातृभूमि की बेड़ियाँ काटने को उद्यत किया गया।

विलायत में इसी बीच एक समय में एक कारतूस भर कर चलाने वाली पुरानी तोड़ेदार हैंड्री मार्टिन बन्दूकों की जगह एक ही बार तीन-चार कारतूस भर एक के बाद एक चला सकने वाली नई बन्दूकों की आज्ञा हुई थी। अंग्रेजों ने भारत में अपनी फौज और सशस्त्र पुलिस को भी यही शस्त्र दिया। अपनी पुरानी उतरी हैंड्री मार्टिन बन्दूकें उन्होंने राजस्थान में जहाँ अभी शस्त्र कानून लागू न था, अच्छे दामों पर बाजारों में बेच दीं। किन्तु उसमें चालाकी यह थी कि सौ से अधिक कारतुस एक बन्दूक के साथ किसी को न दिए जायें। बाद में उन कारतूसों का बेचना बिल्कुल बन्द कर दिया। जिससे बेकार होकर वे बन्दूकें यहाँ बहुत सस्ते पर दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह रुपयों में बड़ी भारी संख्या में मिलने लगीं। क्रान्तिकारियों ने उनका संग्रह करने के लिए भोपसिंह (विजयसिंह) को अजमेर भेजा। कारतूसों की कमी को पूरा करने के लिये भोपसिंह पुराने कारतूसों को फिर भरने और नये कारतूस बनाने तथा टूटी बन्दूकों की मरम्मत का काम सीखने को अजमेर के रेलवे कारखाने में भर्ती हो गया। इसकी सहायता से क्रान्तिकारियों ने उन कारतूसों के बनाने, भरने और बन्दूकों की मरम्मत के कई गुप्त कारखाने भी राजस्थान में खोल दिये।

क्रान्तिकारियों को जनता, सेना आदि में प्रचार और देश-विदेशों में शस्त्रास्त्र संग्रह के लिये चल रही इस प्रकार की अपनी अनेक योजनाओं के लिए इस समय धन की बड़ी आवश्यकता थी। राजस्थानी रियासतों के राजाओं से भी उन्हें उसके लिये कुछ सहायता मिलती थी। जोधपुर, ईडर का शासक कर्नल सर प्रताप, बीकानेर का गंगासिंह और बड़ोदे का सयाजीराव आदि कुछ तो इनकी बनाई हुई वीर भारत समिति के सदस्य हो गये थे।

जोधपुर, बीकानेर आदि के राठौड़ आपस में प्रायः चर्चा करते थे कि यदि क्रान्ति सफल हो गई, जिसके सफल होने की उस समय चारों तरफ चल रही गुप्त तैयारियों को देखते हुए बहुत कुछ आशा थी, तो क्रान्तिकारियों में अधिकांश तो उनमें खप चुके होंगे और जो शेष रहेंगे उन्हें वे अपने वश में कर वरिष्ठ शस्त्रास्त्रों और साधनों से सरलता पूर्वक अधिकार हथिया लेने में शीघ्र ही सफल होंगे। क्रान्तिकारी भी उनकी इस मनोवृत्ति को शीघ्र जान गये थे। भोपसिंह अपने को राठौड़ कहता था और उनके संगठनों में खूब हिला-मिला रहता था। इस बात की सूचना भी भोपसिंह ने रासबिहारी वसु आदि क्रान्तिकारियों को दे दी।

राजस्थान के कुछ राजाओं ने अंग्रेजों का विरोध किया था, उन पर अंग्रेजों की नजर पड़ी। इस अवसर का लाभ क्रान्तिकारियों ने "राजा लोग समय पर कोई विपरीत कार्य न कर सकें" इसके लिये उन पर नजर रखने को अपने व्यक्ति रियासतों में रखवा देने से उठाया। विजयसिंह पथिक खर्वा के ठा० राव गोपालसिंह का प्राइवेट सेक्रेटरी नियत हुआ। पंजाब का एक वीर युवा बालमुकुन्द जोधपुर कुमार के शिक्षक रूप में नियुक्त किया गया। इसी प्रकार बीकानेर आदि में बा० मुक्ताप्रसाद आदि अनेक क्रांतिकारी

लगा दिये गए। राजनीतिक विभाग और रियासतों के बीच का गुप्त पत्र व्यवहार इस प्रकार इन क्रान्तिकारियों की दृष्टि में रहता था।

क्रान्ति की सब तैयारियां पूरी हो जाने पर उसका प्रारम्भ स्वयं अपने निरीक्षण में कराने को रासविहारी वसु जनवरी १९१५ में बनारस से लाहौर चला गया। दिल्ली, राजस्थान की ओर इन्तजाम करने के लिये शचीन्द्रनाथ सान्याल को भेजा गया। २१ फरवरी १९१५ को क्रान्ति प्रारम्भ करने की तिथि निश्चित थी। उस दिन करतारसिंह अपने दल के साथ फिरोजपुर के शस्त्रागार पर जो भारत में सबसे बड़ा था आक्रमण करने वाला था। उसकी सूचना मिलते ही और सब दल अपना काम प्रारम्भ करने को थे। राजस्थान में ठा० गोपालसिंह को दामोदरदास राठी से मिलकर व्यावर पर, और विजयसिंह पथिक को अजमेर, नसीराबाद पर कब्जा करने का काम सौंपा गया था। जनवरी के अन्त तक यह सारी व्यवस्था कर शचीन्द्र बनारस लौट गया, जहां क्रान्ति की बागडोर स्वयं उसके हाथ में थी।

इस प्रकार की सब तैयारियां भारत में बड़े गुप्तरूप से की जा रही थी। परन्तु यूरोप आदि से आये हुए भारतीय मन्त्रगोपन में इतनी सावधानी न कर सके। फ्रांस की पुलिस ने युद्ध करने के कुछ मास पश्चात् अंग्रेजों को सूचना दी कि यूरोप के भारतीय प्रान्तों में हिन्दुस्तान में शीघ्र ही व्यक्त होने वाले किसी सैनिक विप्लव की चर्चा हो रही है। इस बात को सुनकर भारत में पुलिस चौकन्नी हो उठी। यथार्थ बात को जानने के लिये पुलिस ने १९१५ में एक भेदिये को क्रान्तिकारियों की बात जानने के लिये भेजा, जिसमें पुलिस सफल हो गई। क्रान्तिकारियों को जब मालूम हुवा तो वे इस पर कड़ी निगाह डालने लगे और उसे समाप्त कर देने की ठानी। परन्तु क्रान्तिकारी इस कार्य के करने में भी असफल रहे।

राजस्थान में विजयसिंह पथिक, ठा० गोपालसिंह, आदि क्रान्तिकारी उस रात खर्वा स्टेशन के निकट जंगल में अपने दो हजार साथी स्वयं सेवकों का दल लिये कार्य करने के लिये सन्नद्ध होकर संकेत पाने की प्रतीक्षा में थे। रात को दस बजे अजमेर से अहमदाबाद जाने वाली रेलगाड़ी वहां से गुजर रही थी। उससे खर्वा स्टेशन के निकट जंगल में एक बम धमाका कार्यारम्भ का संकेत था। परन्तु वह धमाका हुवा नहीं। अगले दिन सन्देश वाहक ने आकर लाहौर में घटी घटनाओं की सूचना विजयसिंह आदि को दी। इनके पास शस्त्रास्त्र जिनमें ३० हजार के लगभग पुरानी हैंड्री मार्टिन बन्दूकें और बहुत सा दूसरा गोला बारूदादि था। इन्होंने वह सब सामान तत्काल यथा स्थान पहुंचा दिया और स्वयं सेवक सैनिक दल बिखर गया। विजयसिंह दिल्ली के रहने वाले अपने एक साथी रलियाराम के साथ बड़ौदा तक जाकर अपने सब साथियों को भी सावधान कर आया। सात आठ दिन बाद ही पुलिस ने खर्वा पर छापा मार कर विजयसिंह एवं उनके साथी ठा० गोपालसिंह आदियों के पकड़ने की तैयारी की। जिसकी खबर क्रान्तिकारी भेदियों द्वारा प्राप्त हो गई थी। विजयसिंह पथिक के कहने पर चुपचाप आत्मसमर्पण कर अंग्रेजों की जेल में अनिश्चित काल तक सड़ने या साधारण चोर, डाकुओं और खूनियों की भांति फांसी पर लटकवाये जाने की अपेक्षा उन सबने लड़कर मरने का निश्चय किया। दूसरे साधारण सदस्यों को विजयसिंह ने खर्वा ग्राम से हटा दिया। इसके बाद विजयसिंह पथिक, ठा० गोपालसिंह, और इसका चाचा मोडसिंह, रलियाराम "जो दिल्ली निवासी थे" सवाईसिंह आदि पाञ्च साथी बहुत सा शस्त्रास्त्र और खाने पीने के लिये ८-१० दिन के लगभग चलने योग्य सामग्री लेकर खर्वा के गढ़ से निकल कर रातों रात पास के जंगल में बनी एक शिकारी बुर्ज में मोर्चा बन्दी पर जा डटे। अगले दिन अजमेर का अंग्रेज कमिश्नर स्वयं ५०० सैनिकों की टुकड़ी लेकर उन्हें खोजता हुवा वहां पहुंचा और उन्हें चारों

ओर से घेर कर आत्म समर्पण करने के लिये बाधित किया। किन्तु क्रान्तिकारियों को मरने मारने के लिये सज्जित हुए देखकर अंग्रेज कमिश्नर को भय हुवा कि कहीं सचमुच हमें दो चार दिन इनसे लड़ना पड़ा तो चारों तरफ की जनता इनकी सहायता करेगी और हमारे विरुद्ध हो जायेगी। कमिश्नर को साथ की हिन्दुस्तानी टुकड़ी की राजभक्ति पर भी विश्वास न था। ऐसी दशा में यदि मुकाबला जम जाता तो सारे राजस्थान में आग भड़क उठना भी असम्भव न था। अतः जहां तक हो सके गोली चलने देने की आपत्ति न आने देने का आदेश उसे ऊपर से भी था। उसने क्रान्तिकारियों को समझाया कि अभी तो तुम पर कोई विशेष अभियोग या दोषारोपण नहीं है किन्तु रक्षा के लिये तुम्हारी गिरफ्तारी की जा रही है। यह भी सम्भव है कि उनमें किसी पर कोई अपराध प्रमाणित ही न हो, इस अवस्था में सरकार से व्यर्थ मुकाबला कर अपराध ओढ़ने में बुद्धिमत्ता भी न होगी। इस प्रकार बहुत वाद-विवाद के पश्चात् यह समझौता हुवा कि उन्हें किसी हवालात या जेल में बन्द न कर किसी ऐसी जगह नजरबन्द किया जायेगा जहां आस पास के जंगल में शिकार की पूरी सुविधा हो। शिकार के लिये बन्दूक, तलवार आदि शस्त्र और सवारी के लिये घोड़े तुम्हें सदा मिले रहेंगे। और तुम्हारे आस पास जहां तक दृष्टि पड़े कोई फौज आदि का पहरा न दिया जायेगा। सरकार को भय था कि यदि फौज आदि का पहरा दिया गया तो ये जान जायेंगे कि हम कैदी हैं। ये छूट भी गये तो फिर हाथ आने वाले नहीं हैं।

उपर्युक्त समझौते के पश्चात् इनको मेवाड़ सीमा पर स्थित टाडगढ़ के किले में नजरबन्द किया गया। जहां आस पास तीन तीन मील तक जंगल में उन्हें शिकार आदि के लिये उनकी खुली छुट्टी हो गई थी। नजरबन्दी के १५ दिन बाद ही सोमदत्त के मुखबिर हो जाने से लाहौर षड्यन्त्र के मामले की जाँच में विजयसिंह पथिक का नाम भी लिखा गया था, जिससे उसे गिरफ्तार कर तत्काल लाहौर भेजने की आज्ञा टाडगढ़ पहुंची। विजयसिंह अपनी गिरफ्तारी की बात को पहले ही जान गया और वहां से भाग निकला। मेवाड़ के राजा फतहसिंह की सहायता से और अनेक सरदारों एवं जनता की सहायता से वह दुबारा नहीं पकड़ा गया। ठा० गोपालसिंह एवं मोडसिंह आदि उसके साथी भी विजयसिंह पथिक के बाहर जाने पर सवारी का सब प्रबन्ध कर देने से दूसरे ही दिन टाडगढ़ से निकल पड़े।

इस प्रकार इनके निकल जाने पर उन दिनों मेवाड़ में बड़ी सनसनी और उत्सुकता का वातावरण था। अंग्रेजों के गुप्तचर और सशस्त्र पुलिस दल स्थान स्थान पर इनकी खोज में घूम रहे थे। मेवाड़ दरबार को भी ऊपरी दबाव से उनकी गिरफ्तारी के लिये जगह जगह पुलिस और फौजी दस्ते नियत करने पड़े थे। वैसे तो यह अंग्रेजों से विरुद्ध था, परन्तु उसने ये काम ऊपर से दिखाने के लिये किए थे।

जिस समय विजयसिंह टाडगढ़ से निकल कर भागा था उस समय वह रात को किसी जंगल में रास्ता भटक जाने से थक कर एक चट्टान पर सो गया था। कुछ समय पश्चात् एक जंगली जानवर ने उसको पैर पकड़ कर घसीटा, जिससे उसके एक घाव हो गया था। उस दिन वह अपने पास पिस्तौल होने के कारण प्राण-रक्षा कर सका। यदि उस दिन उसके पास पिस्तौल न होता तो मृत्यु का मुख देखना पड़ता। उस जंगल के बाहर वह अगले दिन प्रकाश होने पर बड़ी कठिनता से निकल पाया था। खुली सड़क पर आकर उसने देखा कि सड़क के एक ओर एक ग्राम बसा हुवा है तथा दूसरी तरफ एक झोंपड़ी बनी हुई थी। विजयसिंह गांव से बचकर झोंपड़ी की ओर से जा रहा था। उस समय एक ६० वर्ष की बुढ़िया ने उसको देखा। वह बुढ़िया झोंपड़ी के समीप बैठी हुई थी। उसने विजयसिंह को हाथ के इशारे से अपने पास बुलाया और अंग्रेजों का विद्रोही है ऐसा समझकर उस बुढ़िया ने अपनी झोंपड़ी में छिपा

दिया। बाद में उसकी मरहम पट्टी कर अपने लड़के द्वारा ग्राम के धोबी का घोड़ा चरने के स्थान से चुपचाप पकड़वा कर बुढ़िया ने अपने लड़के के साथ उसके गन्तव्य स्थान तक सुरक्षित पहुँचाने का सारा प्रबन्ध किया। इसी प्रकार मेवाड़ के उसी प्रान्त के एक जागीरदार ने अंग्रेजों द्वारा अपने स्थान की तलाशी होने का पूरा भय रहते हुए भी अपने गढ़ में महल के जनाने भाग का एक भाग खाली कराकर एक महीने तक अपने यहां विजयसिंह पथिक को छिपाये रखा था। इसी तरह से उधर ठा० गोपालसिंह, मोडसिंह आदि इसके साथियों को टाडगढ़ से निकलने और फरार जीवन बिताने में भी मेवाड़ के लोगों का गहरा और सहानुभूति पूर्ण सहयोग बराबर मिलता रहा। उदयपुर के महाराणा का भी आभ्यन्तर आदेश अपने गुप्तचरों को उन्हें गिरफ्तार न करने एवं गुप्त रूप से उनकी सब तरह से भरसक सहायता करने का था।

मेवाड़ में भी लोगों ने जगह जगह पर क्रान्तिकारियों के नमूने पर अपने छोटे छोटे समूह और दल बना रखे थे। जिनमें देशभक्ति की चर्चा की जाती थी एवं कुछ ऐसे साहसपूर्ण कार्य करने के लिये अवसर की प्रतीक्षा में थे। ऐसे ही एक दल ने भोपसिंह (विजयसिंह) को काँकरोली में अपने यहां कुछ दिन तक रख पथ-प्रदर्शन करने की प्रार्थना की थी। इनके दल का नेता चुंगी अधिकारी पुरोहित किशनसिंह था और आस पास के युवक राजपूत, जागीरदार इसके सदस्य थे। इनके प्रबन्ध से विजयसिंह वहां राजसमुद्र तालाब के पार भाषण नामक ग्राम में एक धनिक सेठ डालचन्द के मकान पर रह कर वी० एस० पथिक के नाम से बहुत दिनों तक एक पाठशाला चलाता रहा। उन्हीं दिनों विजयसिंह के दूसरे साथी ठा० गोपालसिंह और मोडसिंह आदि सलीमावाद में एक मन्दिर में रहते थे। पुलिस ने उनका पता पाकर उनको घेर लिया। इसकी सूचना कांकरोली पहुंची। तब उस मण्डली ने विजयसिंह पथिक के नेतृत्व में ऊंटों पर जाकर उन्हें सहायता देने का प्रयत्न किया, परन्तु उनके पहुँचने से पूर्व ही गोपालसिंह आदि कुछ प्रतिज्ञाओं पर आत्मसमर्पण कर चुके थे।

इस घटना के कुछ दिनों पश्चात् भाणा ग्राम में भी सरकारी गुप्तचरों का आना जाना हो गया। अतः विजयसिंह को वहाँ से जाना पड़ा। वह वहाँ से चित्तौड़ गया। चित्तौड़ के पास एक ओछड़ी नामक ग्राम विद्यमान है, उसमें यह ठिकानेदार का अतिथि बना। उस समय राजस्थान में बीजोल्यां कृषक-आन्दोलन चल रहा था। इसी ओछड़ो ग्राम में विजयसिंह पथिक का उसके नेताओं के साथ सम्पर्क हुवा था।

१९१५ के अन्त में विजयसिंह अपने मित्र ईश्वरीदास के साथ ओछड़ी से बीजोल्यां में आकर उसके निवास स्थान पर रहने लगा। रियासत की ओर से एक भाटी राजपूत उन दिनों बीजोल्यां में मुन्सिफ था। विजयसिंह ने अपना डेरा उसी के निवास स्थान पर डाला। बिजयसिंह शीघ्र ही बीजोल्यां के सब सरकारी कागजों एवं मुकदमों का कार्य मुन्सिफ के नाम से करने लगा। रियासत की सरकार से लिखा पढ़ी करके इसने शीघ्र ही वहां एक पाठशाला भी खोली। युवकों की एक सेवा-समिति बनाकर इसने इस प्रान्त में नवीन जागृति का सूत्रपात किया। इसके कार्यों से जागीरदार आदि सब घबरा गये। रियासती अमला १९१६ की उन्हालू रवी की फसल की उगाही के साथ उन्हीं दिनों सरकारी युद्ध ऋण का चन्दा भी किसानों से बलात् लिया जा रहा था। विजयसिंह की सलाह से किसानों ने उसे देने से अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार के कार्य से रियासती कर्मचारी भी अड़चन में पड़ गये। कुछ लोगों ने इसकी शिकायत

उदयपुर में अंग्रेजी रेजीडेन्सी में पहुंचाई। एवं दूसरी कार्य प्रवृत्तियों का भी पता रेजीडेन्सी के पास दिया। विजयसिंह को तत्काल पकड़ कर उदयपुर भेजने का आदेश मुन्सिफ के पास आया। पथिक को सात मास के निवास के बाद एकाएक बीजोल्यां ग्राम त्यागना पड़ा। वहां की पाठशाला एवं युवकों, किसानों के संगठन के कार्य के लिये पथिक ने अपने मित्र मणिकलाल वर्मा को नियुक्त किया।

विजयसिंह पथिक के शिष्य, घनश्याम जोशी, जयसिंह धाड़क, आदि ने और युवक कृषक कार्यकर्त्ताओं ने समस्त कार्यों को चलाया।

बीजोल्यां से भाग कर पथिक खेराड़ के रास्ते से बूंदी होते हुए कोटा पहुंचे। जहां पर केशरीसिंह बारहट (जो कुँवर प्रतापसिंह के पिता थे और क्रान्तिकारियों के सरदार माने जाते थे) उनके श्वसुर कविराज दुर्गादास जो कोटड़ी का जागीरदार थे, तथा 'अभिनव-भारत' सभा के आर्थिक संकटों का निवारण करने वाले थे, उनके पास जाकर रहे।

१९१६ में बीजोल्याँ ग्राम में वर्षा न होने से खरीफ की फसल नष्ट हो गई थी। किन्तु लगान की दरें पूर्व से भी अधिक कर दी थीं। एवं लोगों से युद्ध आदि का भी चन्दा लिया जा रहा था। जिससे जनता बहुत असन्तुष्ट थी। जनता को असन्तुष्ट देखकर उनके नेतागण विजयसिंह के पास गये और कहा कि आप नेतृत्व ग्रहण कर लें। विजयसिंह ने उनका कहना मान लिया और उसने सलाह दी कि अब की बार न तो युद्ध चन्दा दिया जाये, न ही खेती का लगान दिया जाये। युद्ध चन्दा और खेती लगान न देने पर महाराणा ने किसानों को खूब डराया एवं धमकाया। ऊपर कहा जा चुका है कि महाराणा वैसे तो जनता का हित चाहते थे। परन्तु अंग्रेजों को ऊपर से दिखाने के लिए ऐसा किया था। परन्तु वे शान्त रहे और अपने पक्ष के न्याय के लिए लड़ते रहे। विजयसिंह का मेवाड़ की सीमा में घुसना खतरे से खाली न था। अतः वह कोटा की तरह से मेवाड़ की पूर्वी सीमा पर गुप्तरूप से बैठा हुवा, सारे आन्दोलन का कार्य संगठित करता रहा।

महात्मा गांधी द्वारा चलाया गया सत्याग्रह एवं अन्य नेताओं के चलाये हुए सत्याग्रह देश में बड़े जोरों से चल रहे थे। बीजोल्यां का भी कृषक-सत्याग्रह उस समय जोरों से चल रहा था। इस सत्याग्रहों में जितने भी अत्याचार अंग्रेज सरकार ने किए थे उन सब पर विचार करने के लिए १९१८ दिसम्बर में कांग्रेस का अधिवेशन दिल्ली में बुलाया गया। दिल्ली प्रान्त के निकट होने से कांग्रेस के उस अधिवेशन पर राजस्थान के विभिन्न रियासतों से बहुत लोग दिल्ली में इकट्ठे हुए। चम्पारन और खेड़ा में चलाये हुये किसानों के संघर्षों में गांधी की सफलता से आकृष्ट बीजोल्यां के किसान नेता विजयसिंह पथिक ने उनसे सम्पर्क कर लिया। विजयसिंह अपने साथियों सहित दिल्ली पहुँचा। वहां पर विजयसिंह पथिक, गणेश शंकर विद्यार्थी, चान्दकरण शारदा (जिनका अन्त में नाम चन्द्रानन्द सरस्वती हुवा ये आर्य समाज के एक स्तम्भ माने जाते थे) इत्यादि के प्रयत्न से दिल्ली कांग्रेस अधिवेशन पर "राजपूताना मध्य-भारत सभा" नामक सार्वजनिक संस्था की स्थापना हुई। जिसके सभापति वर्धा निवासी सेठ रायबहादुर जमनालाल बजाज चुने गये एवं गणेस शंकर विद्यार्थी उपसभापति। गणेश शंकर विद्यार्थी मध्यभारत से 'प्रताप' नामक एक अखबार निकालता था। जो युक्त प्रान्त और राजस्थान के प्रारम्भिक सार्वजनिक एवं राजनीतिक जीवन के निर्माण में बड़ा सहायक हुवा था।

इसी बीच १९१९ में नमक कानून बना। जिसके लिए गांधी जी ने सत्याग्रह चलाया। गांधी जी को ८ अप्रैल को दिल्ली आते समय गिरफ्तार कर लिया एवं बम्बई भेज दिये गये। तब गाँधी जी ने कुछ

कारणों से सत्याग्रह स्थगित कर दिया था। इस सत्याग्रह के बाद पंजाब में हृदयविदारक 'जलियां वाला बाग' का काण्ड हुवा, जिसमें सैकड़ों मनुष्य भूने गये। सारे पंजाब पर फौजी कानून घोषित कर दो महीने तक भीषण आतंक और अत्याचारों का दौर-दौरा था।

इसके पश्चात् १९१९ दिसम्बर में कांग्रेस का साधारण अधिवेशन अमृतसर में किया गया। साथ ही 'राजपूताना मध्यभारत सभा' का भी दूसरा अधिवेशन हुवा। उसमें संगठन को व्यापक रूप देने के लिये समस्त कार्य महात्मा गांधी को सौंपा गया।

अंग्रेज सरकार ने देश के वातावरण को शान्त करने के लिये १९२० फरवरी तक सब राजबन्दी एवं कुछ क्रान्तिकारियों को छोड़ दिया। जिसमें राजस्थान के अर्जुनलाल सेठी, ठा० गोपालसिंह, केशरीसिंह बारहट, आदि भी छूट कर आ गये। विजयसिंह पथिक के वारण्ट भी रद्द कर दिये गये। सबके छूट जाने के पश्चात् विजयसिंह आदि ने १९२० मार्च में 'राजपूताना मध्यभारत सभा' का अधिवेशन सेठ जमनालाल बजाज के सभापतित्व में किया। उस अवसर पर विजयसिंह ने यह घोषणा की थी कि जो सरकार मुझे विजयसिंह के नाम से अब तक ढूंढ़ती रही थी, वह भोपसिंह का नाम का मैं हूं। तब अनेक खुफिया विभाग के अधिकारी भी, जो विजयसिंह पथिक को बराबर देखते रहे थे, हैरान रह गये। उसी समय 'राजपूताना मध्यभारत सभा' का कृषक-आन्दोलन ठीक चलाने के लिए एक पत्र निकालने की योजना बनाई। परन्तु गांधी जी ने किसी कार्य के लिए विजयसिंह आदि को वर्धा बुलाया, जिससे वह योजना सफल न हुई।

वहीं वर्धा में जमनालाल बजाज ने 'राजस्थान केसरी' पत्र निकालने के लिए विजयसिंह पथिक को पांच हजार रुपया प्रेसादि की व्यवस्था के लिए दिया। इस समय बीजोल्यां का कृषक आन्दोलन अच्छी तरह चल रहा था। निजयसिंह ने 'राजस्थान केसरी' पत्र के सम्पादक का कार्य वर्धा में केशरीसिंह बारहट और अर्जुनलाल सेठी को दिया। पुनः राजस्थान लौट आया। इन महानुभावों ने कुछ दिन तक पत्र का कार्य सुचारु रूप से चलाया परन्तु सम्पादकीय अभ्यास न होने से इन्होंने कार्य करना छोड़ दिया। फिर विजयसिंह को इसका कार्य सम्भालना पड़ा।

इसके बाद गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन चलाया। अंग्रेजों ने इसको दबाने के लिए बहुत अत्यात्चार किये। इनके अत्याचारों की स्पष्टीकरण के लिए बीच-बीच में कांग्रेस के अधिवेशन भी होते रहे। १९२० के अन्त में नागपुर में एक कांग्रेस अधिवेशन हुवा। जिसमें भाषावार प्रान्तों का निर्माण विषयक प्रस्ताव पारित करना था। जिसको सभी ने स्वीकार किया। इसी अधिवेशन के साथ-साथ 'राजस्थान मध्यभारत सभा' का चौथा अधिवेशन भी हुवा। जिसमें पंजाब, मध्यभारत, हिमाचल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों के ४ हजार व्यक्ति प्रतिनिधि रूप से सम्मिलित हुए। वहीं पर 'राजपूताना मध्यभारत सभा' वालों ने देशी राज्यों में चल रहे जन आन्दोलन और वहाँ साम्राज्यशाही के कारिन्दों और सामन्ती शासन तन्त्र के कल पुर्जो द्वारा जनता पर किये जाने वाले जुल्मों की एक प्रदर्शिनी संगठित कर राजस्थान के जन जागरण के लिये एक महत्त्वपूर्ण कदम बढ़ाया। उस प्रदर्शिनी के प्रधान विजयसिंह पथिक, जमनालाल सेठ, अर्जुनलाल सेठी, केशरीसिंह बारहट, गणेश शंकर विद्यार्थी चुने गये। एवं मध्य भारत के गोविन्ददास प्रधान चुने गये। चान्दकरण शारदा प्रधान मन्त्री एवं चौ० रामनारायण और नृसिहदास सहकारी मन्त्री चुने गये।

१९२१ में विदेशी कपड़े का वहिष्कार आन्दोलन चलाया गया। जिसको दबाने के लिये अंग्रेजों ने मारपीट से दमन प्रारम्भ किया। उस आन्दोलन की गूँज राजस्थान में सर्वत्र फैली हुई थी। राजस्थान ने जितना इस आन्दोलन में भाग लिया उतना अन्य किसी ने नहीं लिया। इसी समय में राजस्थान एवं मध्यभारत के कार्यकर्त्ता कांग्रेस में मिले थे। विजयसिंह पथिक और चौ० रामनारायण भी 'राजस्थान' पत्र का कार्य छोड़कर १९२० में वर्धा से राजस्थान आ गये थे।

राजस्थान में अपना सारा समय सार्वजनिक सेवा में देने का व्रत लेने वालों के लिये 'राजस्थान सेवासंघ' नामक संगठन विजयसिंह पथिक की अध्यक्षता में स्थापित हुवा। जिसमें चौ० रामनारायण, इनकी पत्नी, माणिकलाल वर्मा, हरिभाई किंकर, नानूराम व्यास, शोभालाल गुप्त, लादूराम जोशी आदि उस संघ में साम्मिलित हुए। इनका कार्य बड़े जोरों से चला। अन्त में १९२३ दिसम्बर में सभी कार्य-कर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये। परन्तु कुछ दिन मुकद्दमा चलाकर, राजस्थान प्रवेश निषेध कानून लगा कर छोड़ दिये गये। विजयसिंह पथिक को राजद्रोह के अपराध में १९२४ में गिरफ्तार किया गया और १९२७ के अन्त में छोड़ा गया। १९२४ से पूर्व ही बीजोल्यां कृषक आन्दोलन सफल हो गया था। छूटने के बाद विजयसिंह पथिक ने अपना सारा जीवन कांग्रेस के कार्यों के लिए लगाया। इस वीर नेता के क्या-क्या कार्य गिनाऊँ? इसने तो अपना सारा जीवन जनता के भावों को प्रबल बनाने और भारत माता को स्वतन्त्र करने के लिए न्यौछावर कर दिया।

१९२८ से १९५३ तक कांग्रेस में काम करते रहे। तत्पश्चात् १९५४ में हरिभाऊ उपाध्याय ने विजयसिंह पथिक को राज्य की ओर से शहीदों का इतिहास लिखने को कहा, परन्तु वे इसको पूरा न कर सके और संसार से चल बसे।



श्री अर्जुनलाल सेठी

(ब्र० धर्मव्रत)

अर्जुनलाल सेठी की जन्मभूमि राजस्थान थी। निवास स्थान का कोई विशेष निर्णय नहीं मिलता। यह भी विजयसिंह पथिक के दल का क्रान्तिकारी था। इसने क्रान्ति की भावना जनता के हृदय में कूट-कूट कर भरने के लिए एक पाठशाला खोली। उसमें अध्यापन का कार्य विष्णुदत्त नामक एक मिर्जापुरी ब्राह्मण युवक करता था। इस पाठशाला का सम्बन्ध बंगाल की अनुशीलन समिति से था। उसी की ओर से अर्जुनलाल सेठी राजस्थान में कार्य करता था। अर्जुनलाल सेठी खर्वा के ठा० गोपालसिंह के पास भी (जो क्रान्तिकारियों और रियासती दलों के बीच उन दिनों मुखिया का काम करता था) आया-जाया करता था। जिससे उसके साथ सम्बन्ध हो गया।

दिल्ली बम काण्ड के तीन महीने बाद ठा० गोपालसिंह ने अर्जुनलाल सेठी की पाठशाला के चार विद्यार्थियों—मोतीचन्द, माणिकचन्द (जो महाराष्ट्र में शोलापुर के रहने वाले जैन युवक थे), जयचन्द काश्मीर का था, जोरावरसिंह केशरीसिंह का छोटा भाई था, इनको साथ लेकर बिहार के आरा जिले में स्थित नीमेज ग्राम के जैन उपासरे पर २० मार्च १९१३ ई० को छापा मारा। वहाँ पर धन पर्याप्त मात्रा में समझा जाता था। इसलिये वहाँ का महन्त इन्होंने मार दिया। परन्तु वहाँ की चाबी न मिली, अतः वे रुपयों से वंचित रह गये। तभी कोटा का दल, जिसमें केशरीसिंह बारहट, हीरालाल जालोरी, गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक महात्मा मुन्शीराम जी की पुत्री के पति रुद्रदत्त और कोटा राज्य का प्रमुख जागीरदार और उच्च पदाधिकारी आबजी, जो बाद में अरसे तक कोटा राज्य का दीवान भी रहा था, इत्यादि लोग सम्मिलित थे, जोधपुर के एक प्रसिद्ध धनी महन्त से समझा बुझाकर क्रान्ति के लिये सहायता पाने का प्रयत्न कर रहा था, वह महन्त अपनी एक पोली लाठी में बहुत से कीमती जवाहरात भरे रखता था। उसके स्वेच्छा से कुछ देने पर क्रान्तिकारियों ने लाठी लेने के लिए उस महन्त को मार दिया। जब उन्होंने लाठी को देखा तो उसमें केवल कोयले मिले। क्योंकि महन्त अपने जवाहरात उससे पहले ही कहीं छुपा चुका था। जिसका पता क्रान्तिकारियों को न लगा। इस समय कोटा के दल को रुपये की आवश्यकता थी पंजाब के क्रान्तिकारी नेता बाबा गुरुदत्तसिंह की "कोमागातामारू" योजना में सहायता देने के लिये थी। कैनेडा में उस समय भारतीय श्रमिकों का आना रोकने के लिये ऐसा कानून बनाया गया था कि वे ही श्रमी वहाँ प्रविष्ट हो सकें जो अपने देश के जहाज में आयें। गुरुदत्तसिंह एक जापानी 'कोमागातामारू' को भाड़े पर लेकर उसमें पंजाबी मजदूरों को ले गया। वह यह देखना और पंजाबी मजदूरों को दिखा देना चाहता था कि बरतानवी साम्राज्य के उपनिवेशों में भारतीयों की क्या अवस्था है।?

अर्जुनलाल सेठी की जैन पाठशाला की ओर जनता का ध्यान उन दिनों में बहुत आकृष्ट हो रहा था। चौ० रामनारायण शेखावाटी के निवासी अपने एक छोटे भाई को पाठशाला में प्रविष्ट कराने आये थे। उन्हीं दिनों अर्जुनलाल सेठी से उनका सम्पर्क हुआ था, एवं धीरे-धीरे क्रान्तिकारियों में सम्मिलित हो गये।

उपर्युक्त काण्डों के बाद पुलिस की निगाहें भी पाठशाला पर पड़ने लगीं। अतः अर्जुनलाल को

जयपुर के सेठ कल्याणमल आदि की आज्ञा से, जो उस समय पाठशाला का सारा खर्च देते थे, शीघ्र ही उठाकर इन्दौर चला जाना पड़ा।

नीमेज और कोटा काण्डों के बाद १७ मई १९१३ को लाहौर के लारेन्स बाग के फाटक पर बम फटा। उसके निरीक्षण के सिलसिले में पुलिस को दिल्ली बम कांड का भी पता १९१४ तक लग गया था। उसमें मा० अमीरचन्द आदि पकड़े गये। अर्जुनलाल सेठी पर भी सन्देह हो गया। इन्दौर में तलाशी के समय शिवनारायण नामक युवक उसकी पाठशाला का एक पुराना छात्र ठहरा था, जिसकी जेब में कुछ सन्देहजनक कागज मिले। उसके व्याख्यानों से नीमेज और कोटा काण्डों के रहस्य भी खुल गये। नीमेज कांड में विष्णुदत्त और मोतीचन्द पकड़े गये। माणिकचन्द और जोरावरसिंह फरार हो गये। कोटा में केशरीसिंह, हीरालाल जालोरी आदि पर महन्त की हत्या का लम्बा मुकद्दमा चला। उनकी समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली। यही नहीं, शहापुरा में केशरीसिंह के भाई आदि की, जिनका कि राजनीति से कोई घुणाक्षर सम्बन्ध भी नहीं था, जागीरें जब्त हो गईं।

दिल्ली का मुकद्दमा १९१४ के अन्त तक समाप्त हो गया था। उसमें १३ अभियुक्तों में ७ को सजा हुई, ५ को अपराध न होने से छोड़ दिया। मा० अमीरचन्द, अवधबिहारी, वसन्तकुमार विश्वास और बालमुकुन्द, इन चारों को फांसी की सजा हुई। तीन को आजन्म कारावास का दण्ड मिला, जिसमें महात्मा हंसराज का पुत्र बलराज भी था। इनकी अपीलें लाहौर हाईकोर्ट में चल रही थीं। उसमें अर्जुनलाल सेठी का नाम दिल्ली और नीमेज के काण्डों के मुकद्दमों में लिया गया। परन्तु उनके विरोध में कोई प्रमाण न मिला, अतः छोड़ा नहीं अपितु जयपुर की जेल में नजरबन्द कर दिया।

क्रान्तिकारियों ने एक योजना बनाई थी। उसमें यह था कि जितने भी क्रान्तिकारी जेलों में हैं उन सब को छुड़ाया जाय। दिल्ली के अभियुक्तों में छोटेलाल जैन भी था, परन्तु वह छूट गया था। उसने अर्जुनलाल सेठी को छुड़ाने का पर्याप्त प्रयत्न किया। वहाँ पर उसने एक मंडली बनाई थी। परन्तु पूरी शक्ति न होने के कारण न छुड़वा सका। १९२० के अन्त में देश के वातावरण को शुद्ध करने के लिये अंग्रेजों ने सब क्रान्तिकारियों को छोड़ दिया। उनमें अर्जुनलाल सेठी भी छूट गये।

अर्जुनलाल सेठी ने विजयसिंह पथिक के साथ रहकर 'राजस्थान-केसरी' पत्र के सम्पादन का भी कार्य किया था।

महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये असहयोग आन्दोलन में अर्जुनलाल सेठी ने भी बड़ा भाग लिया था। अर्जुनलाल सेठी, चान्दकरण शारदा, मौलाना मुइनुद्दीन चिश्ती, इत्यादि के प्रयत्नों से अजमेर ने भी इस आन्दोलन में भाग लिया।

राजस्थान के चिरस्मरणीय नेता—

बाबा नृसिंहदास

(ब्र० धर्मव्रत)

बाबा नृसिंहदास राजस्थान के उन चुने हुये नेताओं में से थे। जिन्होंने अपने जीवन में सदैव त्याग तप और बलिदान के संकटाकीर्ण पथ को चुना। पहले नृसिंहदास मद्रास में अंग्रेजी दवाईयों के व्यापारी थे। परन्तु असहयोग आन्दोलन की आवाज सुन कर मैदान में कूद पड़े। तब से लेकर मृत्यु तक उन्होंने सदैव श्रमिकों, शोषितों और उत्पीड़ितों का साथ दिया। नृसिंहदास कहा करते थे—"मेरे विचार ही मेरे सब से बड़े शत्रु हैं।" यह अक्षरशः सत्य है। उनके विचारों ने उन्हें कभी भी बैठने नहीं दिया। वे सदैव उद्विग्न, उत्तेजित और क्रियाशील रहते थे। कितनी बार उन्होंने मशाल हाथ में ली और उसकी लपट ने उन्हें झुलसाया। यह एक लम्बी कथा है। आज उनके न रहने पर यह कहा जा सकता है कि बलिदानों की जिस परम्परा ने राजस्थान में स्वतन्त्रता मन्त्र के जन्मदाता अर्जुनलाल सेठी को दरगाह में दफनाया, बिजोल्यां के सेनानी वीर विजयसिंह 'पथिक' को अनेक भावों के बीच जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया,उसी ने नृसिंहदास को अन्तिम समय तक अपने घातक प्रभाव से मुक्त न किया। श्री सरस वियोगी जी ने इनके विषय में लिखा है कि—'मैंने इस महामानव को जीवन के अन्तिम नौ वर्षों में निकट से देखा है और मैं कह सकता हूं कि उनके निधन से मानवता ने एक बहुत बड़ी व्यक्ति को खो दिया।" आगे और भी लिखते हैं - "बाबा नृसिंहदास से मेरा परिचय उस समय हुआ था जब 'त्याग भूमि' अजमेर के बन्द हो जाने पर मैंने 'विश्वामित्र दिल्ली' का एक सम्पादन भार ग्रहण किया। उन दिनों मेरी पूर्व पत्नी राजयक्ष्मा रोग से अजमेर में पीड़ित थी और मैं दिल्ली में कार्य कर रहा था। बाबा नृसिंहदास मुझे अखिल भारतीय अग्रगामी दल के सभापति एवं नेताजी के संचालक लाला शंकरलाल जी के निवास-स्थान पर मिले। मैं वहीं श्रद्धेय विजयसिंह 'पथिक' के एक आवश्यक पत्र को लेकर गया था। वह दिन था और अन्तिम दिन—मेरे उनके सम्बन्ध में कभी कोई बल न पड़ा। मृत्यु के दो दिन पूर्व उन्होंने मुझसे मिलना चाहा और सन्देशा भेजा। पर खेद है कि वह सन्देशा उनके न रहने पर मुझे मिला। मैं स्वयं भी उनसे मिलना चाहता था, पर विधि की कठोर इच्छा थी कि अचानक हृदय की गति रुक जाने पर १९५७ जुलाई की २२ तारीख को बाबा जी हमको छोड़ कर चल बसे।" इनके चले जाने से राजस्थान की राजनीति से एक बड़ान क्षत्र उठ गया। आज राजस्थान में अनेक नेता विद्यमान हैं। उन्होंने खूब नाम कमाया है पर अर्जुनलाल सेठी, विजयसिंह पथिक और नृसिंहदास की परम्परा से ऐसा प्रतीत होता है कि बाबा जी के निधन के साथ ही चल बसी।

वे क्रान्ति के अग्रदूत थे। गांधीवादी क्रान्ति की प्रेरणा से वह राजनीति में आए। पर अन्त तक

उस विचार धारा से चिपटे न रहे। उन्होंने समयानुकूल अपने विचारों में परिवर्तन किया और उसके गंभीर परिणाम भोगे। इससे इनका मूल्य समय और इतिहास की आंखों में घटा नहीं, किन्तु बढ़ गया है। नृसिंहदास के लिये जीवन, द्वन्द्वात्मक स्थिति का नाम था। जहां संघर्ष और सृजन नहीं है वहां जीवन का दर्शन तृष्णा मात्र है। नृसिंहदास सदैव इस मृग मरीचिका से ऊपर उठे रहे। यही उनकी एक विशेष महत्ता है। कितने प्रलोभन उनके सामने आये, पर जिस कंचन के मादक प्रभाव से उन्होंने मुक्ति पाली थी, उसे ग्रहण न किया। गांधी आश्रम हटूंडी व सस्ता साहित्य मंडल के शैशव काल ने नृसिंहदास जी की सेवाओं से लाभ उठाया। पर नृसिंहदास ने एक बार जिस गली को छोड़ दिया, उसकी ओर पुनः झांकने का लोभ न हुआ। श्री सरस वियोगी लिखते हैं कि—"जीवन के अन्तिम दिनों में जब परिस्थिति-वश हटूंडी जाकर रहने की बात आई, तब बाबा जी ने मुझ से चर्चा की। उन्होंने कहा कि "शान्ति का स्मारक होने के नाते उन्हें शायद अन्तिम क्षणों में शान्ति न मिले।" शान्ति नृसिंहदास जी की पत्नी का नाम था। इनकी पत्नी मारवाड़ी थी, पुनरपि उसने सोने-चांदी का मोह त्याग कर नृसिंहदास का साथ दिया तथा बलिदान और त्याग के पथ का अनुसरण करते हुए स्वर्ग प्रयाण किया। नृसिंहदास हटूंडी 'गांधी आश्रम' व सस्ता साहित्य मंडल में गये। वहाँ पर 'श्री हरिभाऊ उपाध्याय' जो पहले अजमेर के मुख्य मन्त्री थे, अब भी किसी पद पर आरूढ़ हैं' ,इन्होंने उनकी जितनी हो सकी सेवा की। पर किसी ने कहा भी है—"जोगी किसका मीत।" वहाँ से नृसिंहदास फिर अजमेर चले आये।

यह विधि की कितनी बिडम्बना है कि जो व्यक्ति सामान्य पढ़ा-लिखा भी न हो वह क्रान्तिकारी विचारों का पोषक और जनक हो। नृसिंहदास जी भी ऐसे ही थे। श्री सरस वियोगी जी दिल्ली से विश्वमित्र पत्र का सम्पादन छोड़कर बाबा नृसिंहदास के साथ जयपुर चले गये। बाबा जी उन दिनों 'प्रभात' पत्र का सम्पादन करते थे। सरस वियोगी जी ने जयपुर जाकर 'प्रभात' का सम्पादन कार्य ग्रहण किया। 'प्रभात' पत्र विचार-क्रान्ति का प्रतिपादक था। क्रान्ति विचारों से होती है। वैचारिक क्रान्ति हो जाने पर ही क्रिया में उसका रूप बदलता है। अतः नृसिंहदास अपने सारे जीवन में वैचारिक-क्रान्ति के पोषक रहे। जब-जब क्रिया का समय आया, भावना के आवेग से व्यतिक्रम उपस्थित हुआ, पर जहां तक विचार का सम्बन्ध था, नृसिंहदास ने कभी भी किसी से समझौता न किया। नीच को नीच कहा एवं पापी, अनाचारियों को कभी क्षमा प्रदान न की। नृसिंहदास जी अपनी भावनाओं को ठीक से अभिव्यक्त न कर सकने के कारण लेखकों एवं पत्रकारों से प्रभावित रहे। कोई भी कलम का धनी मिलता वे उसका स्वागत किया करते। वे वाणी का विलास नहीं चाहते थे, वे तो सदा क्रान्ति की लपटें किस प्रकार फैल सकती हैं ? इस धुन के पक्के थे। अतः इन्होंने उन लेखकों और पत्रकारों को अपनाया जिनकी कलम स्याही से नहीं, परन्तु खून से चलती थी।

नृसिंहदास अपना व्यवस्थित जीवन व्यतीत करते थे। वे सदा कागज पत्रों को सुरक्षित रखा करते थे। उनकी भोजन विषयक रुचि सात्विक वृत्ति की थी। ये एक फटा सा पैजामा और उस पर फटा सा कमीज पहनते थे। चश्मा और छाता के वे बड़े शत्रु थे। ये एक थैला लेकर दिल्ली से लेकरे बम्बई तक की यात्रा किया करते थे। जहां रुपयों की आवश्यकता हुई वहीं से व्यवस्था कर लेते थे। किसी ने कहा भी है—'संतन को कहा सीकरी सों काम'। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नृसिंहदास जी का बुरा हाल हुआ। ये शासन-सत्ता के साथ नहीं चल सकते थे। शासन-सत्ता के विरोध में सफल संगठन करने में असफल रहे। फिर भी नृसिंहदास जी बात के धनी और कार्य के यशस्वी थे, अतः वे चुप्पी साधे न बैठे रहे। भले

ही सफलता ने उनका चरण-चुम्बन न किया हो, परन्तु साहित्यकार सुमन के शब्दों में 'आग के जलते हुए और कभी न बुझने वाले एक अंगारे के रूप में, नृसिंहदास की कीर्ति चिरस्मरणीय रहेगी। क्योंकि किसी कवि ने कहा भी है कि—'कीर्तिर्यस्य स जीवति' जिसकी कीर्ति है वह सदा जीवित रहता है मरता नहीं। इनके क्रान्तिकारी विचारों का संग्रह इधर-उधर बिखरा हुआ पड़ा है, उसको एकत्रित करके सम्पादित किया जा सकता है।

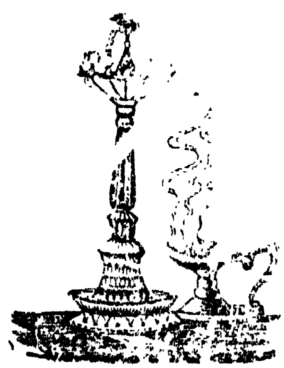
ऊपर कहा जा चुका है कि ये 'प्रकाश' पत्र का सम्पादन करते थे। ये निर्भीक पत्रकार थे। इन्होंने पैसे कमाने के लिये लेखनी नहीं उठाई थी, परन्तु जनता में क्रान्ति की लहरें फैलाने के लिये उठाई थी। इनके सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश 'भारत-तिलक' पत्र के प्रकाशन से एक पत्रकार के रूप में हुआ। 'भारत-तिलक' पत्र मद्रास से निकला था। यह राष्ट्रिय विचारधारा का पोषक था। नृसिंहदास के साथ सहायक क्षेमानन्द राहत थे। क्षेमानन्द राहत ने बम्बई से 'वीर-भूमि' और जयपुर से 'प्रभात' निकाला। 'त्याग-भूमि' के पश्चात् 'वीरभूमि' पत्र का प्रकाशन ठीक ही था। परन्तु काल की कराल वक्र गति के सम्मुख न तो 'त्याग-भूमि' ही रहा और न ही 'वीरभूमि' रहा। किन्तु 'प्रकाश' का प्रकाशन भी बाबा जी के जीवनकाल में ही बन्द हो गया। जीवनभर प्रेस, पत्र और स्वतन्त्र पत्रकार की स्थिति की कल्पना करते रहे। पर यह कल्पना कितनी रमणीय और भयावही है, इसे इनके निकट के सभी मनुष्य ठीक जानते हैं। नृसिंहदास जी का मूल्य समय से ऊपर उठ कर सत्य की इस आराधना से काफी बढ़ गया। यही चिन्ता विजयसिंह पथिक को भी जीवन के अन्तिम क्षणों तक व्यग्र किये रही। बात यह है कि भारतीय प्रेस से धीरे-धीरे स्वतन्त्र विचार परम्परा का लोप होता जा रहा है। उसके निर्वाह के लिए स्व० विजयसिंह 'पथिक' जी व नृसिंहदास जी ने जो कुछ किया, भले ही उसमें उन्हें सफलता न मिली हो; पर वह निःसंदेह वरणीय और अभिनन्दनीय है।

बाबा नृसिंहदास सच्चे मानव थे। सच्चे मानव इसलिये कि उन्होंने कभी भी भौतिक मूल्यों के आगे मानवीय मूल्यों की उपेक्षा नहीं की। वे कितने सहृदय थे यह तो वे ही जानते हैं जो उनके सम्पर्क में रहे। बाबा जी की यह एक महत्ता थी कि वे मानवीय सम्बन्धों की रक्षा के लिये आज के परमाणु युग में भी इतना त्याग दूसरों के लिये कर सकते थे। जब वे स्वयं किसी के यहाँ जाते तो इस तरह रहते कि वातावरण पर उनका भार न पड़े। अपनी कम से कम आवश्यकताएँ दूसरों के सामने रखना, दूसरों की अधिक से अधिक कठिनाइयां अपने सिर पर ओढ़ना तथा समरस और समदृष्टि होकर जीवन में चलना, यह इनकी कुछ विशेषतायें थीं। जिनके कारण उनको 'सच्चे मानव' की संज्ञा मिली।

नृसिंहदास भारत-माता को स्वतन्त्र करने के लिए बहुत बार जेल में गये और छूट कर आये। ये भी विजयसिंह पथिक, केशरीसिंह बारहट, आदि क्रान्तिकारियों के साथी थे। एक बार नृसिंहदास ने अदालत में कहा—"मेरा पेशा इस विदेशी सरकार को नष्ट करना है। इसलिये मुझे दो वर्ष की जगह सरकार को फांसी की सजा देनी चाहिये। अन्यथा छूटकर आते ही फिर मैं वहीं काम करने लगूँगा।" बाबा नृसिंहदास कितने चरित्रशाली थे, उसका इसी से पता लग जाता है।

बाबा नृसिंहदास सूखे तिनके के समान थे जो किसी भी क्रान्ति की ज्वाला की समिधा बनने के लिये सदैव तैयार रहते थे। मजदूरों, किसानों, अछूतों, स्त्रियों, बेरोजगारों और समाज के गिरे पड़े वर्ग को ऊपर उठाने के लिये ये सदैव प्रयत्नशील रहे। स्वयं विशेष पढ़े लिखे न होकर भी मूलतः वे बुद्धिवादी

थे। उन्होंने कभी ऐसी कोई चीज स्वीकार न की जो बुद्धि की कसौटी पर खरी न उतरती हो। राजस्थान के सर्वाङ्गीण विकास में इनका विशेष हाथ था। अपना काम करते हुए न उन्हें खाने, पीने, और न सोने की चिन्ता थी। समय का उन पर कोई प्रभाव न था। उनका कार्य अबाध गति से चलता था। वे साफ और खरी बात के कहने में पीछे न हटते थे। स्वभाव से उग्र और क्रोधी होने के कारण वे कभी-कभी सत्य को बड़े कठोर शब्दों में रखते थे। इन्हें उन नेताओं से घृणा थी जो समाज सेवा का दम्भ भरते थे और मायामोहिनी के कुचक्र में पड़े रहते थे। उनके लिए इनका शिवरूप अभद्र होकर भी देखते बनता था। ऐसे कई उदाहरण हैं जिनमें इन्होंने ऐसे छद्मवेशी नेताओं को करारे शब्दों से फटकारा है। उनका सारा जीवन राजनीति, साहित्य, खादी, भूदान, ग्रामोद्योग, आदि रचनात्मक प्रवृत्तियों की क्रान्तिकारी सेवा में बीता। नृसिंहदास जी सेठ जमनालाल बजाज के प्रिय मित्र थे। नृसिंहदास यद्यपि विशुद्ध गांधीवादी विचारधारा के साथ अन्त तक न चल सके, फिर भी उन्होंने गांधीवादी नेतृत्व का स्नेह व विश्वास पूर्ववत् पाया। इन्होंने अपने अन्तिम दिन अजमेर के कांग्रेसी परिवार श्रीकृष्ण गोपाल गर्ग के यहाँ बिताये। अन्त में १९३७ की २२ जुलाई को इस संसार से विदा हो गये। आज उनको १ वर्ष हो गया है (२२ जुलाई १९५८ को), परन्तु फिर भी उनकी कीर्ति सजीव बनी हुई है।



राजस्थान के—

किसान आन्दोलन के शहीद

(आचार्य भगवान्देव)

सभी रजवाड़ों में राजे महाराजे और बड़े जागीरदारों व जमींदारों की ओर से प्रजा और किसानों पर बड़े अत्याचार होते थे। शासकों के अत्याचार से पीड़ित होकर प्रजा "त्राहि माम्' करती थी। राजस्थान के बहुत से ठिकानों में तो बहुत ही बुरी अवस्था थी। जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रान्त में सीकर और खेतड़ी के पांच सौ-पांच सौ ग्रामों के दो बड़े-बड़े ठिकाने माने जाते हैं। इनके अन्तर्गत भी छोटे-छोटे ठिकाने विद्यमान हैं। जेती करने वाले लोग इन ठिकानों में अधिकतर जाट ही हैं। यहाँ के जाट ठाकुरों के आगे खाट पर नहीं बैठ सकते थे, घोड़े, ऊँट आदि की सवारी नहीं कर सकते थे। स्त्रियां आभूषण नहीं पहन सकती थीं। ठाकुरों का जाटों तथा अहीरों के साथ सारे राजस्थान में ऐसा व्यवहार था जैसा कि अन्य प्रान्तों में जाट अहीरादि अछूत वर्णों के साथ करते थे। मुझे ग्राम कंवरपुरा के निवासी चौ० रामसिंह जी मिले वह अपने नाम के साथ ठाकुर रामसिंह लिखते हैं। यह पुराने आर्यसमाजी सज्जन हैं। मैंने इनसे पूछा आप जाट होकर अपने नाम के साथ ठाकुर क्यों लगाते हैं? उसने बताया इस प्रकार का साहस हमारे अन्दर आर्यसमाज की कृपा से आया है। क्योंकि ठाकुर लोग मुझे रामसिंह के स्थान पर रामूड़ा कहते थे। रामसिंह नाम के साथ सिंह को देखकर जलते थे इसलिए उनको जलाने के लिये मैंने ठाकुर और लगाना आरम्भ कर दिया।

शेखावाटी के इलाके में पहले-पहले आर्यसमाज का प्रचार हुआ था। फिर वह जाट सभा तथा आगे चलकर किसान सभा के रूप में बदल गया। ढ़ाणी जैतपुरा के महाशय जीवनराम जी आर्यसमाज के पुराने भजनोपदेशक हैं जिन्होंने सारा जीवन ही आर्यसमाज के प्रचार में लगाया। जिन्होंने बीकानेर और शेखावाटी में आर्यसमाज का खूब प्रचार किया। इनके सुपुत्र मोहरसिंह जी आज राजस्थान असेम्बली के मेम्बर हैं। यह भी उपदेशक के रूप में बहुत दिनों तक आर्यसमाज का अवैतनिक प्रचार करते रहे हैं। बहुत अच्छे उपदेशक हैं जो आजकल किसान सभा का ही कार्य करते हैं। मानसिंह आर्य वनगोटड़ी निवासी ने भी उधर आर्य समाज का अच्छा प्रचार किया। पन्नासिंह सुपुत्र जालूराम देवरोड के निवासी ने भी पिलानी और शेखावाटी में आर्य समाज का अच्छा प्रचार किया। यह सदैव अपने साथ सत्यार्थ प्रकाश रखते थे। चौ० रामसिह कुंवरपुरा के भाई लैफ्टीनैण्ट पैन्शनर कट्टर आर्यसमाजी हैं कोई नशा नहीं करते। यह फौज में भी सत्यार्थप्रकाश आदि धार्मिक पुस्तकें रखते थे। इनकी पुस्तकें पकड़ी जाने पर इनकी परमोशन (उन्नति) रोक दी गई थी। इन्होंने भी पंजाब में जब हिन्दी सत्याग्रह हुवा तो अपना फार्म भर कर भेजा।

पं० कालूराम जी ने जिन्होंने महर्षि जी के दर्शन भी किये थे, सेठों के रामगढ़ में १९६० में आर्य समाज की स्थापना की थी। १९९२ में आर्यसमाज पिलानी में चौ० छोटूराम जी आये थे। उन्होंने भी

जागीरदारों के अत्याचारों को दूर करने के लिए लाम्बा गोठड़ा सीकर आदि स्थानों में सभा की। ठा० देशराज ने भी सीकर और शेखावाटी में १९८८ के बाद अच्छी जागृति की। ठा० रत्नसिंह ने भी अच्छी सेवायें कीं। मा० रत्नसिंह जी जो पिलानी में रहते थे। उन्होंने भी खूब घूम-घूम कर प्रचार किया। चौ० निहालसिंह तक्षक ने भी इस इलाके में अच्छा कार्य किया। शेखावाटी में १०० से अधिक पाठशालायें इन्हीं के प्रयत्न से खुलीं जिससे शिक्षा का प्रचार हुआ। पिलानी, झूंझनू, भादराँ, आदि में जाट बोर्डिंग हाऊस खोले गये। संगरिया में स्वामी केशवानन्द जी ने बड़ा प्रचार किया। सेठ छाजुराम और जुगल-किशोर बिडला ने भी पाठशालायें खोल कर इस जागृति में भाग लिया। प्रारम्भ में जितने यह कार्य हुए उनके कर्ता धर्ता आर्यसमाजी ही थे। चौ० रामसिंह आर्य ने इन कामों में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। सेठ ज्वालाप्रसाद गोयनका नें भी इन पददलित लोगों को भी उठाने का अच्छा प्रयत्न किया। आरम्भ में जब इस इलाके में आर्यसमाज का प्रचार हुआ। और जाट आदि किसानों ने जनेऊ लिये तो राजपूत ब्राह्मण आदि ने इसका विरोध किया। सेना में एक जाट युवक भागीरथसिंह नाम का था। वह राज-पूताना रायफल में था। उसमें सूबेदार मोहनसिंह और मेयसिंह थे इन्होने बड़ा शोर मचाया और भागीरथसिंह के स्थान पर भागीरथराम नाम रख दिया। यह बटालियन ऑर्डर निकाल कर ऐसा काम किया गया। यह १९३९ की घटना है।

आर्य समाज ने सबको वीर और साहसी बनाया था। बस फिर क्या था इसका अन्याय का प्रतीकार करने के लिए पुष्कर, झूंझनू, बगाड़ आदि में जाटमहासभायें की गईं। उस समय जाट महासभाओं में भी यज्ञ हवन होते थे और सबको जनेऊ दिये जाते थे। जाट बोर्डिंग हाऊस में सब विद्यार्थियों को जनेऊ देकर प्रविष्ट किया जाता था। एक प्रकार से सभी संस्थाओं पर आर्य समाज की छाप थी। मण्डावे में भी सेठ देवीवक्ष ने आर्य समाज की स्थापना की थी। वह भी जाटों में खूब आर्यसमाज का प्रचार करते थे। १९९२ में सीकर में जाट महायज्ञ रचाया गया। जिसमें १०१ मन घृत खर्च हुआ। १० हजार वहाँ के जाट आदि कृषकों ने जनेऊ लिये। पं० जगदेव जी सिद्धान्ती इनके ब्रह्मा थे। सीकर में हाथी पर जलूस निकालने का विचार था किन्तु वहां के ठाकुर लड़ने मरने के लिए तैयार हो गये और किसी जाट को हाथी पर नहीं चढ़ने दिया। फिर एक जन्म के ब्राह्मण आर्यसमाजी पण्डित को हाथी पर बैठा कर जुलूस निकाला गया।

इस प्रकार के दुर्व्यवहार के कारण लोगों में आर्यसमाज के प्रचार के कारण कुछ वीरता के भाव आये और अत्याचारों के प्रतीकार की भावना भी जागरित हो गई। इसीलिये पहले जाट महासभा तथा किसान महासभा के रूप में किसानों का संगठन हुवा। इस प्रकार किसान आन्दोलन ने उग्ररूप धारण कर लिया। राजस्थान में जाटकुल में करनीराम ने भोजासर ग्राम जिला झूंझनू में जन्म लिया। वह शिक्षित होकर झूंझनू में वकालत करने लगे। गरीब किसानों से वकालत की फीस नहीं लेते थे। अपनी सेवाओं के कारण वह उदयपुरवाटी का गांधी कहलाता था। उदयपुरवाटी में इन्होंने चुनाव लड़ा था। जागीरदार देवीसिंह तलवार के बल पर इनसे जीत गया। उदयपुरवाटी के भूमियां किसानों से आधा भाग लेते थे। इस वाटी के किसान माली जाट और गूजर हैं। जब किसान आन्दोलन ने प्रबल रूप धारण कर लिया तो छटा भाग देना निश्चित किया। भूमियां लोगों ने नहीं लिया। किसान छटे से अधिक देना नहीं चाहते थे। करनीराम ने किसानों से मिलकर तिहाई भाग देने को कहा। इस पर दोनों ही तैयार हो गये। किन्तु जाट के पञ्च बनने और निर्णय करने पर राजपूतों को बड़ा दुःख हुवा। चौरा नाम के

स्थान पर किसानों की पञ्चायत हुई। उदयपुर में दादूपन्थी जमायत के पास ही करनीराम ठहरे थे। साधुओं के साथ होने के कारण उनका वे कुछ न बिगाड़ सके। किन्तु ठाकुरों ने करनीराम को कत्ल करने के लिए कुछ गुण्डों को दिखा दिया। ठा० भोपालपुर भूमियां दीयपुरा का इन का अगुवा था। अगले दिन चौरा नाम के स्थान पर पंचायत हुई। किसान आये किन्तु भूमियां ठाकुर नहीं आये। रामफन गूजर की ढाणी में करनीराम तथा उनके साले रामदेवसिंह युवक ठहरे हुए थे। ठाकुरों ने पुलिस थानेदार से मिलकर सब प्रबन्ध पहले ही कर लिया था। तीन घुड़सवार ठाकुर बन्दूक लेकर वहां पहुँच गये। इनमें भूपालसिंह का लड़का और एक सेवक भी था। करनीराम ने उनको आदर पूर्वक बैठने को सिराहना दिया, किन्तु ठाकुर ने उन्हें गधा कह कर पहले रामदेव को गोली मारी और नीचे उतर कर फिर करनीराम को गोली मारी। करनीराम तो एक गोली से ही समाप्त हो गये, रामदेव तीन गोली खाकर मरे। राजस्थान सरकार की पुलिस ने कुछ नहीं किया। उदयपुरवाटी का मामला केन्द्र की पुलिस सी० आर० पी० तक पहुंचाया गया। सरकार ने उदयपुर वाटी को अशान्त घोषित कर दिया। भूमियां ठाकुर सब घर बार छोड़ कर चौरे के पहाड़ पर लड़ाई करने के लिए इकट्ठे हो गये। पुलिस ने मशीन गन आदि उनको उड़ाने के लिये लगा दी। ठाकुर भीमसिंह एम० एल० ए० ने जागीरदार भूमियों को समझा कर समझौते के लिये तैयार किया। अपराधी पीछे पकड़े गये, केस चला, और सजायें हुईं। लगान बन्दोबस्त के अनुसार हो गया। इन दो बलिदानों के पीछे अत्याचार घटे और आर्यसमाज की, की हुई जागृति किसान आन्दोलन के रूप में सफल हुई। रामदेव जी का ग्राम ढाणी गीलावाली वह उदयपुर में है। वे कांग्रेस के कार्यकर्ता थे। करनीराम का पालन-पोषण उनके मामा मोहनाराम ने अजाड़ी ग्राम में किया था। बाल्यकाल में इनके माता-पिता गुजर गये थे। करनीराम के पिता का नाम देवाराम था।

इसी प्रकार एक नौजवान हनुमान ग्राम चनानकाण्ड में जागीरदारों के अत्याचार से ठाकुरों की सभा में गोली से मारे गये। चौधरी टीकाराम हल चलाते हुये जयसिंहपुर के ठिकाणे डूंडलोद में मारे गये। यह संक्षेप में किसान आन्दोलन के शहीदों के विषय में लिखा गया है। विस्तार से लिखने के लिए न समय है और न स्थान।

——o——

गोरक्षा के लिये—

वीर जुझार तेजा का बलिदान

(श्री बंशीधर अग्रवाल, कुचामन सिटी)

(लेख की सत्यता का उत्तरदायित्व लेखक पर ही है। वीर तेजा का बलिदान तो प्रसिद्ध है किन्तु उनके जीवन की घटना वास्तव में कैसी थी, यह नहीं कहा जा सकता) —वेदव्रत

हिन्दुस्तान के इतिहास का एक बहुत बड़ा खजाना बड़े बूढ़ों के हृदय-मंदिर में छिपा हुआ है। ऐसे ही हृदय-मंदिर में छिपे हुए इतिहास के एक पृष्ठ पर वीर जुझार तेजा के जीवन का वृतान्त है। राजस्थान की "दंत-कथा" ने वीर तेजा का नाम अब स्वतन्त्र भारत के नवनिर्मित इतिहास के लिये योग्य आसन पर ला दिया है।

तेजा एक साधारण जाट था। वह नागोर, जिला पर-बतसर तहसील के पास रूपनगर नाम के गांव का रहने वाला था। वह बुद्धिमान, ईमानदार तथा ईश्वरभक्त था। उसके पास गाय और बैल थे। प्रातः और सायंकाल दोनों समय वह गायों को पुचकार कर तथा उनका नाम ले-लेकर सेवा किया करता था।

जुझार तेजा हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान था। सारा गांव उसकी ईमानदारी तथा शक्ति का लोहा मानता था।

तेजस्वी तेजा का विवाह गांव पनेर, राज्य किशनगढ़ में हुआ था। एक दिन अपनी स्त्री को लेने वह पेनर गया। मार्ग में उसे जलता हुआ एक जंगल दिखाई दिया। वह गोचरभूमि थी। गोग्रास अर्थात् गाय का चारा जलते देख उसने लाख प्रयत्न करके आग बुझाई। वीर तेजा ने ज्लती हुई आग में से एक नाग की रक्षा की। नाग ने नागिन के विछोह में उसे काटना चाहा परन्तु उसी समय तेजा ने ईश्वर का ध्यान किया और नागराज से ससुराल जाने की आज्ञा मांगी और कहा कि मैं स्वयं तुम्हारे पास अपने किये का फल पाने को आ जाऊँगा। इस पर नागदेव ने उसे मार्ग दिया। वह ससुराल पहुंचा और भोजन करने बैठा ही था कि उसे हायतोबा सुनाई दिया। जुझार तेजा को पूछने पर पता चला कि गूजरों की गायों को डाकू भगा ले गये हैं। तेजा समझ गया कि गायों को डाकू मुसलमानों के हाथ बेच कर पैसे लेंगे और मुसलमान गायों के मांस से अपनी उदर-पूर्ति का स्वाँग रचेंगे। अतः तेजस्वी तेजा ने गायों का उद्धार करने का दृढ़ निश्चय किया। और भूखे पेट थाली हटा दी तथा गायों की रक्षा हेतु चला गया।

तीरन्दाज तेजा ने तब तक कहीं विश्राम नहीं लिया जब तक गायों को लिये हुए मीने दिखाई न दिये। अन्त में उसे गोधूलि दिखाई दी और फिर गायें भी दीख पड़ीं। गायों की रक्षा-हेतु बिना प्राणों का मोह किये वीर तेजा उन मीनों के झुण्ड पर दीपक पर पतंग की भाँति टूट पड़े। लड़ते-लड़ते उसका सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो गया था। शरीर के खून से उसके कपड़े रंग गये थे। अन्त में उसके तीखे

तीरों की मार को डाकू सहन न कर सके और गायों को छोड़ कर भाग गये। गायों की रक्षा हुई परन्तु जुझार तेजा के शरीर की रक्षा नहीं हुई। वह अपनी ससुराल आया और वहाँ से रूपनगर के लिये रवाना हुआ। उसकी स्त्री, कहते हैं ससुराल से साथ हो गई थी। मार्ग में उसने नागदेव की बांबी का पता लगाया। प्रार्थना करने पर नागदेव बाहर आये और तेजा के चारों ओर चक्कर लगाने लगे। बिना खून से रंगा हुआ शरीर न पाकर नागदेव क्रोधित हो फुफकारने लगे। वीर तेजा यह सब कुछ समझ गया और तब उसने अपनी जीभ बाहर निकाल दी। नागदेव ने तेजा की जीभ का खून पीकर अपना कलेजा ठंडा किया। इधर तेजा ने गौरक्षा के साथ ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी।

वीर तेजा की वीर स्त्री ने चिता बनाई और स्वयं पति को गोद में लेकर चिता में भस्म हो गई। कहते हैं कि नागदेव भी उन्हीं के साथ उसी चिता में जलकर भस्म हो गये थे। इस प्रकार तेजा का परलोक भाद्र शुक्ला १० को हुआ।

वीर तेजा की असाधारण बहादुरी, उसका अप्रतिम साहस, उसका अद्वितीय प्रतिज्ञापालन, उसकी असीम सत्यनिष्ठा, उसका अनुकरणीय आत्म-विसर्जन आज भी राजपूताना के लाखों नर-नारियों को प्रेरणा देता है। समस्त राजपूताना में भाद्रपद शुक्ला १० को तेजा दशमी के नाम से आज भी बड़ा भारी समारोह मनाते हैं परबतसर में इनके नाम का बड़ा भारी गोबंश का मेला लगता है। तेजा जी की चिता पर चबूतरा है।



जब १०० साल पहले दो जाटों ने छः महीने तक महाराजा जीन्द का मुकाबिला किया था

(श्री कपिलदेव शास्त्री)

जिला रोहतक के पश्चिम में (जहां रोहतक की सीमा समाप्त होकर जीन्द की सीमा प्रारम्भ होती है) रोहतक से २५ मील पश्चिम और पटियाला संघ के जीन्द शहर से १५ मील पूर्व में "लजवाना" नाम का प्रसिद्ध गांव है। १०० साल पहले उस गांव में दलाल गोत के जाट बसते थे। गांव काफी बड़ा था। गांव की आबादी पाँच हजार के लगभग थी। हाट, बाजार से युक्त गांव धन-धान्य पूर्ण था। गांव में १३ नम्बरदार थे। नबम्रदारों के मुखिया भूरा और तुलसीराम नाम के दो नम्बरदार थे। तुलसीराम नम्बरदार की स्त्री का स्वर्गवास हो चुका था। तुलसी रिश्ते में भूरा का चाचा लगता था। दोनों अलग अलग कुटुम्बों के चौधरी थे। भूरे की इच्छा के विरुद्ध तुलसी ने भूरे की चाची को लत्ता (करेपा कर लिया) उठा लिया, जैसा कि जाटों में रिवाज है। भूरा के इस सम्बन्ध के विरुद्ध होने से दोनों कुटुम्बों में वैमनस्य रहने लगा।

समय बीतने पर सारे नम्बरदार सरकारी लगान भरने के लिये जीन्द गये। वहां से अगले दिन वापिसी पर रास्ते में बातचीत के समय भोजन की चर्चा चल पड़ी। तुलसी नम्बरदार ने साथी नम्बरदारों से अपनी नई पत्नी की प्रशंसा करते हुए कहा कि—"साग जैसा स्वाद (स्वादिष्ट) म्हार भूरा की चाची बणाव है, वैसा और कोई के बणा सक स"। भूरा नम्बरदार इससे चिड़ गया। उस समय तक रेल नहीं निकली थी, सभी नम्बरदार घर पैदल ही आ रहे थे। भूरा नम्बरदार ने अपने सभी साथी पीछे छोड़ दिये और डग बढ़ा कर गांव में आन पहुँचा। आते ही अपने कुटुम्बी जनों से अपने अपमान की बात कह सुनाई। अपमान से आहत हो, चार नौजवानों ने गाँव से जीन्द का रास्ता जा घेरा। गांव के नजदीक आने पर सारे नम्बरदार फारिग होने के लिये जंगल में चले गये। तुलसी को हाजत न थी, इस लिये वह घर की तरफ बढ़ चला। रास्ता घेरने वाले नवयुवकों ने गंडासों से तुलसी का काम तमाम कर दिया और उस पर चद्दर उढ़ा गांव में जा घुसे। नित्य कर्म से निवृत हो जब बाकी के नम्बरदार गांव की तरफ चले, तो रास्ते में उन्होंने चद्दर उठा कर देखा तो अपने साथी तुलसीराम नम्बरदार को मृतक पाया। गांव में आकर उन्होंने तुलसी के कत्ल की बात उसके छोटे भाई निघांईया को बताई। निघांईया ने जान लिया कि इस हत्या में भूरा का हाथ है। पर बिना विवाद बढ़ाये उसने शान्तिपूर्वक तुलसी का दाह कर्म किया, तथा समय आने पर मन में बदला लेने की ठानी।

कुछ दिनों बाद रात के तीसरे पहर तुलसीराम के कातिल नौजवानों को निघांईया नम्बरदार (भाई की मृत्यु के बाद निघांईया को नम्बरदार बना दिया गया था) के किसी कुटुम्बीजन ने तालाब के किनारे सोता देख लिया और निघांईया को इसकी सूचना दी। चारों नवयुवक पशु चराकर आये थे और थके मांदे थे। वे फिकरी से सोये थे। बदला लेने का सुअवसर जान निघांईयां के कुटुम्बीजनों ने चारों को

सोते हुए ही आ कत्ल किया। प्रातः ही गांव में शोर मच गया और भूरा भी समझ गया यह काम निघाँ-ईया का है। उसने राजा के पास कोई फरियाद नहीं की। क्योंकि जाटों में आज भी यही रिवाज चला आता है कि वे खून का बदला खून से लेते हैं। अदालत में जाना हार समझते हैं। जो पहले राज्य की शरण लेता है, वह हारा माना जाता है, और फिर दोनों ओर से हत्यायें बन्द हो जाती हैं। इस तरह दोनों कुटुम्बों में आपसी हत्याओं का दौरा चल पड़ा।

उन्हीं दिनों महाराजा जीन्द (स्वरूप सिंह जी) की ओर से जमीन की नई वाँट (चक बन्दी) की जा रही थी। उनके तहसीलदारों में एक वैश्य तहसीलदार बड़ा रौबीला था। वह बघरा का रहने वाला था, और उससे जीन्द का सारा इलाका थर्राता था। यह कहावत बिलकुल ठीक है कि—

बणिया हाकिम, ब्राह्मण शाह, जाट मुहासिब, जुल्म खुदा।

अर्थात् जहां पर वैश्य शासक, ब्राह्मण साहूकार (कर्ज पर पैसे देने वाला) और जाट सलाहकार (मन्त्री आदि) हो वहां जुल्म का अन्त नहीं रहता, उस समय तो परमेश्वर ही रक्षक है।

तहसीलदार साहब को जीन्द के आस पास के खतरनाक गाँव समूह "कंडेले और उनके खेड़ों" (जिनके विषय में उस प्रदेश में मशहूर है कि—"आठ कंडेले नौ खेड़े भिरड़ों के छत्ते क्यों छेड़े") की जमीन के बंटवारे का काम सौंपा गया। तहसीलदार ने जाते ही गाँव के मुखिया नम्वरदारों और ठोलेदारों को बुला डांट दी और जो अकड़ा उसे रगड़ा। सहमे हुए गांव के चौधरियों ने तहसीलदार को ताना दिया कि "ऐसे मर्द हो तो जाओ "लजवाना" जहां की धरती कटखानी है" अर्थात् मनुष्य को मार कर दम लेती है। तहसीलदार ने इस ताने (व्यंग) को अपने पौरुष का अपमान समझा और उसने कंडोलों की चकबन्दी रोक, घोड़ी पर सवार हो "लजवाना" की तरफ कूच किया। लजवाना में पहुँच चौपाल में चढ़ सब नम्बरदारों और ठोलेदारों को बुला उन्हें धमकाया। अकड़ने पर सब को सिरों से साफे उतारने का हुक्म दिया। नई विपत्ति को सिर पर देख नम्बरदारों और गांव के मुखिया, भूरा व निघांईया ने एक दूसरे की तरफ देखा। आंखों ही आंखों में इशारा कर चौपाल से नीचे उतर सीधे मौनी बाबा के मन्दिर में जो कि आज भी लजवाना गाँव के पूर्व में एक बड़े तालाब के किनारे वृक्षों के बीच में अच्छी अवस्था में मौजूद है, पहुँचे और हाथ में पानी ले आपसी प्रतिशोध को भुला तहसीलदार के मुका-बले के लिये प्रतिज्ञा की। मन्दिर से दोनों हाथ में हाथ डाले भरे बाजार से चौपाल की तरफ चले। दोनों शत्रुओं को एक हुआ तथा हाथ में हाथ डाले जाते देख गांव वालों के मन आशंका से भर उठे और कहा "आज भूरा निघांईया एक हो गये भलार (भलाई) नहीं है"। उधर तहसीलदार साहब सब चौधरियों के साफे सिरों से उतरवा उन्हें धमका रहे थे और भूरा तथा निघांईया को फौरन हाजिर करने के लिये जोर दे रहे थे। चौकीदार ने रास्ते में ही सब हाल कहा और तहसीलदार साहब का जल्दी चौपाल में पहुँचने का आदेश भी कह सुनाया। चौपाल में चढ़ते ही निघांईया नम्बरदार ने तहसीलदार साहब को ललकार कर कहा "हाकिम साहब साफे मर्दों के वन्धे हैं, पेड़ के खुढंडों (स्तूनों) के नहीं, जब जिसका जी चाहा उतार लिया"। तहसीलदार नौ बाघ की तरह गुर्राया। दोनों ओर से विवाद बढ़ा, आक्र-मण, प्रत्याक्रमण में कई जन काम आये। छूट, छुटा करने के लिये कुछ आदमियों को बीच में आया देख भयभीत तहसीलदार प्राण रक्षा के लिये चौपाल से कूद पड़ोस के एक कच्चे घर में जा घुसा। वह घर बालम कालिया जाट का था। भूरा, निघांईया और उनके साथियों ने घर का द्वार जा घेरा। घर को

घिरा देख तहसीलदार साहब बुखारी में घुसे। बालम कालिया के पुत्र ने तहसीलदार साहेब पर भाले से वार किया, पर उसका वार खाली गया। पुत्र के वार को खाली जाता देख बालम कालिया सांप की तरह फुफकार उठा और पुत्र को लक्ष्य करके कहने लगा—

जो जन्मा इस कालरी, मर्द बड़ा हड़खाया।
तेर त यू कारज न सध, तू बंडव का जाया॥

अर्थात्—जो इस लजवाने की धरती में पैदा होता है वह मर्द बड़ा मर्दाना होता है। उसका वार कभी खाली नहीं जाता। तुझ से तहसीलदार का अन्त न होगा, क्योंकि तेरा जन्म यहां नहीं हुआ। तू बेड़वे में पैदा हुआ था। (बेड़वा, लजवानी गांव से दश मील दक्षिण और कस्बा महम से पांच मील उत्तर में है) अकाल के समय में लजवाना के कुछ किसान भाग कर बेड़वे आ रहे थे, यहीं पर बालम कालिए के उपरोक्त पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। भाई को पिता द्वारा ताना देते देख बालम-कालिए की युवती कन्या ने तहसीलदार साहब को पकड़ कर बाहर खींच कर बल्लम से मार डाला।

मातहतों द्वारा जब तहसीलदार के मारे जाने का समाचार महाराजा जीन्द को मिला तो उन्होंने "लजवाना" गांव को तोड़ने का हुक्म अपनी फौज को दिया। उधर भूरा-निघाँईया को भी महाराजा द्वारा गाँव तोड़े जाने की खबर मिल चुकी थी। उन्होंने राज सैन्य से टक्कर लेने के लिये सब प्रबन्ध कर लिए थे। स्त्री बच्चों को गांव से बाहर रिश्तेदारियों में भेज दिया गया। बूढ़ों की सलाह से गांव में मोर्चे बन्दी कायम की गई। इलाके की पंचायतों को सहायता के लिए चिट्ठी भेज दी गई। बट वृक्षों के साथ लोहे के कढ़ाये बान्ध दिये गए, जिससे उन कढ़ाओं में बैठकर तोपची अपना बचाव कर सकें और राजा की फौज को नजदीक न आने दें। इलाके के सब गोलन्दाज लजवाने में आ इकट्ठे हुए। महाराजा जीन्द की फौज और भूरा निघांईया की सरदारी में देहात निवासियों की यह लड़ाई छः महीने चली। ब्रिटिश इलाके के प्रमुख चौधरी दिन में अपने अपने गांवों में जाते सरकारी काम-काज से निबटते और रात को लजवाने में आ इकट्ठे होते। अगले दिन होने वाली लड़ाई के लिए सोच विचार कर प्रोग्राम तय करते। गठ वालों के चौ० गिरधर रोज झोटे में भरकर गोला बारूद भेजते थे। जो राजा की शिकायत पर अंग्रेजी सरकार ने वह मैंसा पकड़ लिया। जब महाराजा जीन्द (सरदार स्वरूपसिंह) किसी भी तरह विद्रोहियों पर काबू न पा सके तो उन्होंने ब्रिटिश फौज को सहायता के लिये बुलाया। ब्रिटिश प्रभुओं का उस समय देश पर ऐसा आतंक छाया हुआ था कि तोपों के गोलों की मार से लजवाना चन्द दिनों में सर कर लिया गया। भूरा निघांईया भाग कर रोहतक जिले के अपने गोत्र बन्धुओं के गांव "चिड़ी" में आ छिपे। उनके भाईयों ने उन्हें तीन सौ साठ के चौधरी श्री दादा गिरधर के पास आहूलाणा भेजा। (जिला रोहतक की गोहाना तहसील में गोहाना से ३ मील पश्चिम में गठवाला गोत के जाटों का प्रमुख गांव आहूलाणा है। गठवालों के हरियाणा प्रदेश में ३६० गांव हैं। कई पीढ़ियों से इनकी चौधर आहूलाणा में चली आती है। अपने प्रमुख को ये लोग "दादा" की उपाधि से विभूषित करते हैं। इस वंश के प्रमुखों ने कभी कलानौर की नवाबी के विरुद्ध युद्ध जीता था। स्वयं चौधरी गिरधर ने ब्रिटिश इलाके का जैलदार होते हुए भी लजवाने की लड़ाई तथा सन् ५७ के संग्राम में प्रमुख भाग लिया था) जब ब्रिटिश रेजिडेण्ट का दबाव पड़ा तो डिप्टी कमिश्नर रोहतक ने चौ० गिरधर को मजबूर किया कि वे भूरा-निघांईया को महाराजा जीन्द के समक्ष उपस्थित करें। निदान भूरा-निघांईया को साथ ले सारे इलाके के मुखियों के साथ चौ० गिरधर जीन्द राज्य के प्रसिद्ध गांव कालवा (जहां महाराजा जीन्द कैम्प

डाले पड़े थे) पहुंचे, तथा राजा से यह वायदा लेकर कि "भूरा-निघांईया को माफ कर दिया जावेगा" महाराजा जीन्द ने गिरधर से कहा—मर्द दी जबान, गाड़ी दा पहिय्या दुरदा चंगा होव है। दोनों को राजा के रूबरू पेश कर दिया। माफी मांगने व अच्छे आचरण का विश्वास दिलाने के कारण राजा उन्हें छोड़ना चाहता था, पर ब्रिटिश रेजिडेण्ट के दबाव के कारण राजा ने दोनों नम्बरदारों (भूरा व निघांईया) को फांसी पर लटका दिया।

दोनों नम्बरदारों को १८५६ के अन्त में फाँसी पर लटकवा राजा ने ग्राम निवासियों को ग्राम छोड़ने की आज्ञा दी। लोगों ने लजबाना खाली कर दिया और चारों दिशाओं में छोटे छोटे गांव बसा लिए जो आज भी "सात लजवाने" के नाम से प्रसिद्ध हैं। मुख्य लजवाना से १ मील उत्तर पश्चिम में "भूरा" के कुटुम्बियों ने "चुडाली" नामक गांव बसाया। भूरा के बेटे का नाम मेघराज था।

मुख्य लजवाना ग्राम से ठेठ उत्तर में १ मील पर निघांईया नम्बरदार के वंशधरों ने "मेहरड़ा" नामक गांव बसाया। जिस समय कालवे गांव में भूरा निघांईयां महाराजा जीन्द के सामने हाजिर किये गये थे तब महाराजा साहब ने दोनों चौधरियों से पूछा था कि "क्या तुम्हें हमारे खिलाफ लड़ने से किसी ने रोका नहीं था।" निघांईया ने उत्तर दिया मेरे बड़े बेटे ने रोका था। सूरजान उसका नाम था। राजा ने निघांईया की नम्बरदारी उसके बेटे को सौंप दी। अभी दो साल पहले निघांईया के पोते दिवाना नम्बरदार ने नम्बरदारी से स्तीफा दिया है। इसी निघांईया नम्बरदार के छोटे पुत्र की तीसरी पीढ़ी में चौ० हरीराम थे जो रोहतक के दस्युराज दीपा द्वारा मारे गये। इन्हीं हरीराम के पुत्र दस्युराज हेमराज उर्फ हेमा को (जिसके कारण हरियाणे की जनता को पुलिस अत्याचारों का शिकार होना पड़ा था। और जिनकी चर्चा पंजाब विधान सभा, पंजाब विधान परिषद्, भारतीय संसद तक में हुई थीं) विद्रोहात्मक प्रवृत्तियां वंशपरम्परा से मिली थीं और वे उसके जीवन के साथ ही समाप्त हुईं।

लजवाने को उजाड़ महाराजा जीन्द (जीन्द शहर) में रहने लगे। पर पंचायत के सामने जो वायदा उन्होंने किया था उसे वे पूरा न कर सके इसलिए बड़े बेचैन रहने लगे। ज्योतिषियों ने उन्हें बताया कि भूरा-निघांईया के प्रेत श्राप पर छाये रहते हैं। निदान परेशान महाराजा ने जीन्द छोड़ संगरूर में नई राजधानी जा बसाई। सरदार पटेल ने रियासतें समाप्त कर दीं। महाराजा जीन्द के प्रपौत्र जीन्द शहर से चन्द मील दूर भेंस पालते हैं और दूध की डेरी खोले हुए हैं। समय बड़ा बलवान है। १०० साल पहले जो लड़े थे उन सभी के वंश नाम शेष होने जा रहे हैं। समय ने राव, रंक सब बराबर कर दिये हैं। समय जो न कर दे वही थोड़ा है। समय की महिमा निराली है।

जाटवंश के बलिदान

जिनके अमर बलिदानों की गाथा किसी ने लिखी नहीं

(कपिलदेव शास्त्री)

लेखक ने यह लेख जाटवंश के वीरों की कुछ घटनाओं को लेकर ही लिखा है, इसका अर्थ यह नहीं कि अन्य वंशीय लोगों के बलिदानों को भुला दिया। वह स्वयं लिखता है कि "इस लेख में मैं केवल जाटों से सम्बन्धित कुछ बातें लिखूंगा। बाकी लोगों के सम्बन्ध में अन्य लेखों में।" वैसे लेखक ने जाट, अहीर, राजपूत, ब्राह्मण और वैश्य आदि सभी का सामान्यत: इस में उल्लेख किया है। जाति-पाँति के झंझट में फंसना हमारा सिद्धान्त नहीं, किन्तु पृथक्-पृथक् नामों से कुछ समूह प्रसिद्ध हो चुके हैं। उनका उसी नाम से वर्णन करने में कुछ सुविधा रहती है। जाट एक क्षत्रिय वंश है उनके नाम मात्र को सुनकर नाक भौं सिकोड़ कर साम्प्रदायिक कहना वंचित नहीं। लेखक की इतिहास सामग्री से लाभ उठाना ही अभिप्रेप्सित होना चाहिये। —वेदव्रत सम्पादक

पिछले पांच हजार साल से भारत के भाग्य निर्णायक युद्ध हरियाने की वीर भूमि में लड़े जाते रहे हैं। धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में भाई-भाई का जो युद्ध हुआ उससे ऐसी परम्परा पड़ी कि—आज भी इस धरती पर भाई से भाई लड़ता कतराता नहीं। और इसी हरियाने की पवित्र भूमि के ठीक मध्य में दिल्ली है। जो न्यूनाधिक अपनी स्थापना से आज तक इस राष्ट्र की राजधानी चली आई है। इसके चारों ओर भारी संख्या में जाट वंशीय लोग बसते हैं। हजारों साल से वे देश के स्वातन्त्र्य युद्धों में सामूहिक रूप में भाग लेते आये हैं। परन्तु इतिहास में उनके अमर बलिदानों की कहानी का उल्लेख नहीं हुवा है। जाट रणभूमि में अपने जौहर बार-बार दिखला चुका है, फिर भी राजपूत, सिख, मराठों, जैसी युद्ध सम्बन्धी प्राचीन दन्त कथाएँ उसके भाग्य में नहीं हैं। परन्तु अपनी मातृ भूमि के लिए जिस दृढ़ता से जाट लड़ सकता है, उनमें से कोई भी नहीं लड़ सकता। अधिक से अधिक प्रतिकूल परिस्थिति में भी पूर्ण रूप से शान्त बने रहने और घबरा न उठने की प्राकृतिक शक्ति से जाट भरपूर होता है। भय तो जाट को छू भी नहीं सकता। जो भी चोट उस पर पड़ती है, उससे वह और भी कड़ा बन जाता है। उद्योग और साहस में तो जाट अद्वितीय होता है। शारीरिक संगठन, भाषा, चरित्र, भावना, शासन-क्षमता, सामाजिक, परिस्थिति आदि के विचार से जाट ऊंचा स्थान रखता है।

भारतीय इतिहास के निर्माण में जाठ वंश का महत्व पूर्ण भाग रहा है। हिन्दू जाति और हिन्दू धर्म के लिए जाटों ने जो-जो कार्य किये हैं, वे सदैव स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य हैं। परन्तु आज भी आम हिन्दू में जाटों के प्रति जो भावना है। उसे भला नहीं कहा जा सकता है? प्रेस और प्लेट फार्म से दिन-रात राजपूत, मराठा, सिक्ख, गोरखों का यश गान करते रहिये। आपको कोई कुछ न कहेगा पर आपने भूल कर भी जाट के लिये कुछ लिख दिया या कह दिया तो आप फौरन साम्प्रदायिक घोषित कर दिये जावेंगे। जिन जाटों के लिए देश पर बलि देना बांये हाथ का खेल रहा है, जिनके रक्त में पवित्र कर्त्तव्य-पालन और देशभक्ति के भावों के प्रमाण पूरी तरह से मिले हुए हैं, जो आन पर लड़ना और जान पर मरना खूब जानते हैं। आन के लिये घर बिगाड़ना जिस जाट के लिए साधारण बात रही है उसके यशोगान से नफरत करना क्या हिन्दू जाति की ऐसान फरामोशी नहीं है?

विशाल हिन्दू जाति में से प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री कालिका रंजन कानूनगो ही ऐसे हैं, जिन्होंने इस ऋण से उऋण होने का प्रयत्न किया है, जाटों के सम्बन्ध में श्री कानूनगो के जो विचार हैं। उन्हें मैं उधृत करना आवश्यक समझता हूं। वे लिखते हैं—"एक जाट उतना कल्पनाशील और भावुक नहीं होता जितना सुदृढ़ और धर्मशाली। शब्द प्रमाण की अपेक्षा उस पर प्रत्यक्ष उदाहरण का विशेष प्रभाव पड़ता है। स्वातन्त्र्य-प्रियता और परिश्रम शीलता उसके विशेष गुण हैं। उसे अपने व्यक्तित्व का बड़ा ध्यान रहता है। वह स्वजाति सत्ता का समर्थक होने के साथ संगठन कला में भी दक्ष होता है। जाट जिस बात को ठीक समझता है। उसे करने में तुरन्त प्रवृत्त हो जाता है। यद्यपि वह स्वतन्त्र प्रकृति का होने के कारण, अपनी इच्छानुसार ही सब कुछ कर डालता है। तथापि वह उचित बात को सुनने, समझने, और तदनुसार काम करने के लिए सदैव तैयार रहता है।"

भारतीय इतिहास में जाटों की जो उपेक्षा की गई है, उसके दोषी जाट स्वयं किसी से कम नहीं हैं। जाटों ने लेखकों का कभी सम्मान नहीं किया, न ही कभी खुद लिखा। पीढ़ियों से उनके दो ही काम रहे हैं। देश की पुकार पर युद्ध करना और शान्ति के समय हल चलाकर, अन्न पैदा कर देश का पेट भरना। आज जाटों में पढ़े लिखों की कमी नहीं। उनमें अनेक डी० लिट्० पी० एच० डी०, एम० ए०, बी० ए०, आचार्य, शास्त्री, प्रभाकर, मौलवी, फाजिल, ज्ञानी इत्यादि हैं। उनके अपने अनेक कालिज हैं, जिनमें अनेक नवयुवक सुन्दर सुखद भविष्य की कल्पना में लीन हैं। आज जाटों के पास साधनों की भी कमी नहीं है। उनमें अनेक क्तिशाली पुरुष हैं। पर क्या उनमें से कोई माई का लाल है? जो जयचन्द्र विद्यालंकार की तरह अपने जीवन को शोध में लगा दे। क्या जाटों की कोई संस्था है? जो ऐसे जन की रोटी, कपड़े, लत्ते की व्यवस्था कर सके। ईरान से इलाहाबाद तक के विशाल भूखण्ड में जाटों के वीरत्व पूर्ण बलिदानों की कहानियां चप्पा चप्पा भूमि में बिखरी पड़ी हैं। उनका संग्राहक चाहिये। जीवन की बाजी लगाने वाला चाहिए। जो भारतीय इतिहास की अनेक टूटी कड़ियों को मिला सके, अपनी शोध द्वारा।

दो हजार वर्ष पूर्व दुर्दान्त हूणों के आक्रमण से अपने प्रबल पराक्रम द्वारा जाटों ने भारत की रक्षा की। और उन्हें देश से निकाल बाहर किया।

छटी शताब्दी में जाट राजा हर्षवर्धन उत्तर भारत के सर्व शक्तिमान् सम्राट् थे। जिनके राज्य प्रबन्ध की प्रशंसा चीनी यात्रियों ने भी की है। इन्हीं के राज्य में बाण जैसा कवि था। जिसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि—"बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्।" संस्कृत साहित्य का कोई ऐसा शब्द न होगा जिसका बाण ने प्रयोग न किया हो। १६ सौ वर्ष पूर्व उत्तर भारत में जाटों के अनेक उदाहरण थे। जिनमें रोहतक का यौधेय-गण-राज्य सर्वाधिक प्रसिद्ध था। यहां के वीर क्षत्रियों ने अपने रक्त की अन्तिम बूंद तक बहाकर पंचायती राज्य की रक्षा के लिए अकथनीय बलिदान दिये। उनके समृद्धिशाली राज्य की कहानी रोहतक का खोखरा कोट पुकार पुकार कर कह रहा है। थानेसर, कैथल, अगोहा, सिरसा, भादरा, आदि इनके प्रसिद्ध जन पथ थे।

१०२५ में जब अहमूद गजनवी गुजरात के संसार प्रसिद्ध देवालय सोमनाथ को लूटकर रेगिस्तान के रास्ते वापिस गजनी जा रहा था। तब भटिण्डा के जाट राजा विजयराव ने उसे सिन्ध के मरुस्थल में घेरा और उसकी असंख्य धनराशि अपने कब्जे में की। तथा उसे खाली हाथ लौटने के लिए (प्राण बचाकर भागने के लिए) विवश किया। ६ सौ साल पहले बुटाना के जाटों ने अत्याचारी मुगलों को

बातरट (सफीदों के पास) के मुकाम पर हराया। और गढ़ वाले (मलिक) जाटों ने पठानों को कलानौर में शिकस्त दी।

मुगलिया सलतनत के दौरान में हरियाणा के वीर पुत्रों ने सर्वखाप पंचायत के मातहत अनेक लड़ाइयां लड़ीं। और महत्वपूर्ण बलिदान दिये। जो अलग ही एक लेख का विषय है। औरङ्गजेब ने ब्रज के गोकुला जाट को मुसलमान न बनने पर जिन्दा चर्खी पर चढ़ा दिया था। और माडू जाट की जिन्दा जी खाल (चमड़ी) उतरवा ली थी। उसी समय बोदर के महन्तों की वैरागी फौजों में शामिल होकर जाट मुगलों से निरन्तर संघर्ष रत होते रहे।

महाराजा सूरजमल ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए जो किया उसे भुलाना कृतघ्नता होगी। ढीली पड़ती मुगलिया सलतनत की कमजोरी से लाभ उठा उन्होंने विशाल राज्य स्थापित किया। वे शरणांगत वत्सल थे। जिस समय जयपुर पर राजपूताने के राजाओं और मराठों की सम्मिलित शक्ति का आक्रमण हुआ तो महाराजा ईश्वरीसिंह की करुण कथा सुन तथा दूत द्वारा केवल पत्र पुष्प ही ग्रहण कर, २० सहस्र जाट सैनिकों के साथ आमेर जा पहुंचे। राजपूतों तथा मराठों की सम्मिलित शक्ति को पराजित कर ईश्वरीयसिंह को निष्कंटक राजा तो बना ही दिया। अपनी शक्ति की धाक भी सब पर जमा दी। वे उस समय के उत्तर भारत के सर्वाधिक शक्तिशाली राजा थे। जिस समय अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर १७६१ में चतुर्थ आक्रमण किया। और पेशवा के प्रतिनिधि सदाशिवराव भाऊ ने उसके आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए हिन्दू शक्ति का आह्वान किया। उस समय वहां राजपूत राजाओं ने भाऊ का साथ देने से इन्कार किया। वहां महाराज सूर्यमल्ल अपने पचास हजार रणवांकुरों को लेकर मैदान में आ पहुँचे। यही नहीं उन्होंने विशाल मराठा वाहिनी के लिए अपने खचाने से एक महीने का राशन भी दिया।

बादली के युद्ध में घायल दत्ता जी सिंधिया को उठाकर जाट सैनिक-कुम्भेर के दुर्ग में ले गये। अब्दाली के आतंक के कारण दिल्ली के जिस वजीर गाजीउद्दीन को कोई शरण देने के लिए तैयार न था, और जो महाराजा सूरजमल का प्रबल विरोधी था उसे भी उन्होंने शरण दी। यदि सदाशिवराव भाऊ महाराजा सूर्यमल की सलाह मान गुरिल्ला युद्ध ठान लेते। तथा प्रतापी जाट राजा को अपमानित नहीं करते तो भारत वर्ष का इतिहास ही दूसरा होता। महाराजा सूरजमल के जाने के बाद भाऊ जब पानीपत के मैदान में खेल रहे उनका खजाना लुट गया। (आज भी हरियाणे में भाऊ की लूट मुहावरे के रूप में प्रसिद्ध है) मराठा सैनिकों और स्त्रियों को कहीं ठिकाना न रहा, तब महाराजा भरतपुर ने अपने दुर्ग के द्वार शरणागतों के लिए खोल दिये अपने राज्य की प्रजा को आदेश दिया कि वे युद्ध से बचकर भागें। मराठा सैनिकों का यथाशक्ति सम्मान करें। स्वयं भरतपुर दुर्ग में महारानी किशोरी अपनी देख रेख में चालीस-चालीस हजार आहत सैनिकों को दोनों समय भोजन कराती थी। एक पखवाड़े तक यह क्रम जारी रहा। इसके उपरान्त उनको विदा करते समय प्रत्येक बड़े सरदार को एक सहस्र रुपये, प्रत्येक सैनिक को सौ रुपये लत्ते, कपड़े तथा अन्न दिया और अपनी सैन्य की देख,रेख में ग्वालयिर दुर्ग तक भेजा, यदि महाराजा सूर्यमल आड़े न आते तो बहुत थोड़े मराठे नर्मदा पार कर अपने देश को पहुंच पाते। यदि वे बदला लेने पर उतारू होते तो एक भी मराठा सैनिक बचकर ग्वालियर न पहुंच पाता। एक मराठा सरदार लिखता है "महाराजा सूरजमल ने हाथ जोड़ कर हम से कहा "मैं तुम्हारे पास का हूं, मैं

तुम्हारा एक सेवक हूं, यह राज्य, तुम्हारा ही है" सूरजमल जैसे उदार प्रवृति के मनुष्य संसार में बहुत कम हुए हैं।

जब महाराजा सूर्यमल शहादरा के पास धोखे से मारे गये तो महारानी किशोरी (होडल के प्रभावशाली सोलंकी जाट नेता चौ० काशीराम की पुत्री) ने महाराजा जवाहरसिंह को एक ही ताने में यह कह कर कि "तुम पगड़ी बांधे हुए फिरते हो तुम्हारे पिता की पगड़ी शहादरा के झाऊओं में उलटी पड़ी है" युद्ध के लिए तैयार कर दिया। महाराजा जवाहरसिंह ही पहले हिन्दू नरेश थे जिन्होंने आगरे और दिल्ली के लाल किले को जीत कर विजय वैजयन्ती फहराई थी। दिल्ली के लाल किले के युद्ध में जब किसी भी तरह किला फतह न हो पा रहा था तब महाराजा जवाहरसिंह के मामा और महारानी किशोरीबाई के भाई वीरवर बलराम ने किले के फाटकों के लम्बे-लम्बे कीलों पर छाती अड़ा हाथी के मस्तिष्क पर बड़े-बड़े तवे बन्धवा पीलवान से हाथी हूलने को कहा। हाथी की मार से किले के किवाड़ों और तवों के बीच में बलराम का शरीर निर्जीव हो कीलों में उलझ गया पर उनके अमर बलिदान से अजेय दुर्ग के फाटक टूट गये और वह जीत लिया गया। भारतीय इतिहास में ऐसे अपूर्व बलिदान की एक ही कहानी और मिलती है और वह हैं उदयपुर के महाराणा अमरसिंह के समय रणथम्भौर के आक्रमण में चूडावतों व शेखावतों के झगड़े में शेखावत सरदार की आत्माहुती।

जिस दिल्ली को कोई जीत न सका था, उसी दिल्ली का मान मर्दन कर वीर शिरोमणि जवाहर-सिंह ने चित्तौड़ के किले से लाये अष्ट धाती किवाड़ दिल्ली से ले जाकर भरतपुर दुर्ग के दरबाजे पर चढ़वा दिये, जो आज तक विद्यमान हैं। माही पुरातिव, आदि राज्य चिन्हों को अपने तोशे खाने में रखवा दिया। जिनका प्रदर्शन आज तक दशहरे के जुलूस में होता है। आगरे के किले और ताजमहल की अनेक बहुमूल्य वस्तुओं को दीग के भवनों में लाकर स्थापित किया था।

कौन नहीं जानता कि भारतेन्द्र महाराजा जवाहरसिंह ही एक मात्र ऐसे हिन्दू नरेश थे जिन्होंने हिन्दू जाति के मुसलमानों द्वारा नष्ट किये हुए गौरव की रक्षा करके हमारी मान मर्यादा को सुरक्षित किया था। इतिहास वेत्ता और इतिहास प्रेमी पाठकों से यह बात छिपी हुई नहीं है कि महमूद गजनवी चंगेजखाँ, तैमूरलंग, औरंगजेब आदि मुगल आक्रान्ताओं लुटेरों और बादशाहों ने हिन्दुओं के अनेक मन्दिरों को तोड़ा, मूर्तियों को खण्डित किया, मन्दिरों में शंख घड़ियाल व घन्टों का बजाना बन्द करा के उनमें आरती होने तक को बन्द करा दिया था, अनेक हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बना लिया था, यहां तक कि हिन्दुओं की बहिन-बेटियों को छीन कर मुसलमान बना लिया था। यदि इन अत्याचारों का बदला किसी ने लिया तो सच्चे वीर क्षत्रीय महाराजा जवाहरसिंह ने आगरा आदि नगरों में अपने राज्य बल से मुल्लाओं को प्रातः सायं बांग देने से रोक दिया था। आगरा की जाबा मस्जिद में बाजार लगवा दिया था परन्तु उसे तड़वाया नहीं। इससे उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया था। अन्यथा वे चाहते तो क्षण भर में नष्ट भ्रष्ट करा देते और उसका चिन्ह तक मिटा देते। देहली से लौटते हुए उन्होंने सैकड़ों नव मुस्लिमों को जाट बना लिया था जो आज भी हिन्दू जाति का गौरव बढ़ा रहे हैं। वही एक ऐसे प्रातः स्मरणीय हिन्दू नरेश हुए हैं जिन्हों ने सच्चे अर्थों में हिन्दुत्व की रक्षा की तथा अकबर के सिंहासन पर बैठकर आगरे में शासन किया।

१८०५ में भरतपुर के दुर्ग पर जब अंग्रेजों ने आक्रमण किया तो महाराजा रणजीत सिंह ने अंग्रेजों के जिस तरह दांत खट्टे किये। वह तो इतिहास की अद्वितीय गाथा बन गया है, और उसी समय से यह कहावत प्रसिद्ध हो गई है कि—

"आठ फिरङ्गी, नौ गोरे, लड़ें जाट के दो छोहरे।"

कविवर वियोगी हरि ने भी अपनी वीर सतसई में लिखा है—

एही भरतपुर को दुग्ग है, जंह जट्टन के छोहरे।
..............................दिये अंग्रेज सुभट्ट पछारी॥

मातृ भूमि के पैरों में से दासता की बेड़ियाँ उतरवाने के लिये, उसकी स्वातन्त्र्यता प्राप्ति के हित जो अंग्रेजों के विरुद्ध १८५७ का युद्ध लड़ा गया उसमें सबसे बढ़ चढ़ कर भाग अहीरों और जाटों ने लिया। जिसका फल इन्हें अंग्रेजों के राज्य में बहुत बुरी तरह भोगना पड़ा और इन्हें अनेक-राज्यों में विभक्त कर दिया गया।

१०२ वर्ष पूर्व जीन्द राज्य के प्रसिद्ध गाँव लजवाना में भूरा और निघांईया दो जाट चौधरी बसते थे। मजदा और दुर्गा के बहकाने से महाराजा जीन्द ने उन पर आक्रमण किया। यह युद्ध छः महीने तक चला, भूरा और निघांईया की मदद चारों ओर की जटैत करती थी। जो समय के अनुसार घटती, बढ़ती रहती थी। धन, जन की कभी कमी न रहती थी। भूरा और निघांईया अपने मातहत काम करने वालों को आठ रुपये महीना देते थे। तोपची को सोलह रुपये महीना। सात सौ हेड़ी उनकी फौज में तोपची का काम करते थे। गोला, बारूद, रसद उन्हें, रिंठाना, फड़वाल, और खुडाली (किला—जफरगढ़) के ठिकानों से पहुँचती थी। खुडाली में तो पुराने घरों में अब तक शोरा, गन्धक, पुरानी बन्दूक, गंडासे आदि बड़ी तादाद में खुदाई पर निकल आते हैं। इस युद्ध में, पटियाला, नाभा, जीन्द आदि राज्यों की बीस हजार से अधिक फौज काम आई थी। अंग्रेजी फौज ने आकर बड़ी कठिनाई से लजवाना को फतह किया था। आज भी पटियाला के देहात में बहनें यह गीत बड़े दर्द के साथ गाती हैं कि—

"लजवाने-तेरा नाश जाईयो-तंने बड़े पुत्त खपाये।"

हरियाना के स्वाभिमानी पुरुष अंग्रेजी राज्य की स्थापना के कितने विरुद्ध थे, यह उपर्युक्त घटना से अच्छी तरह ज्ञात हो जाता है। अन्त में भूरा और निघांईया पकड़े गये तथा उन्हें कालवा (जीन्द राज्य का प्रसिद्ध गांव) में फाँसी पर लटका दिया गया। फांसी गांव से बाहर वृक्षों पर दी गई तथा सारे इलाके के लोगों को बुलाकर। जिससे अंग्रेज की दशहदत सब पर छा जावे। और कोई भी ब्रिटिश प्रभु के खिलाफ शिर न उठा सकें।

सन् १८०६ में जब कर्नल वारिन पलटन लेकर भिवानी फतह के लिये गये, उस समय उसके चारों ओर बसने वाले-जाटों, राजपूतों, ब्राह्मणों और वैश्यों ने डटकर लोहा लिया था। और तो और जिन वैश्यों को व्यापारी कह कर उपेक्षा की जाती है, उनके अगुआ ला० नन्दराम अपने चार बेटों के साथ युद्ध में काम आये। कोसली के प्रसिद्ध पंडित तुलसीराम जी अपने भाई तोताराम के साथ अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध में जूझे थे। १८०२ में जार्ज थाम्स ने पहले पहल हरियाना की भूमि पर कब्जा किया। उसने, बेरी, भज्झर तथा महम अपने अधीन किये, तथा सारे पंजाब पर कब्जा करने का विचार करने लगा। उसकी सफलता का कारण था तत्कालीन राजाओं व नवाबों का आपसी विग्रह। परन्तु हरियाना

वाले जल्दी ही सँभल गये और उन्होंने बापू जी सिन्धिया तथा भरतपुर के जाट नरेश महाराजा रणजीत सिंह की अध्यक्षता में युद्ध करके जार्ज थाम्स को इस प्रदेश पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शासन सत्ता छा गई। और यहां के निवासी सन् ५७ तक अन्दर ही अन्दर अंग्रेज के विरुद्ध धधकते रहे। १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध में हरियाने के राजाओं, नवाबों, सैनिकों और जन साधारण ने जो महत्वपूर्ण भाग लिया है। वह अलग ही लेख (लेख नहीं पुस्तक) का विषय है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हरियाणा के वीर पुत्रों (सभी जातियों) ने जो भाग आजादी की लड़ाई में लिया, उसका उल्लेख बहुत कम हुआ है। रामपुरा, रिवाड़ी, फर्रु खनगर, बहादुरगढ़, झज्झर, बल्लभगढ़, नसीरपुर (नारनौल) श्यामड़ी, रोहतक, थानेसर, पानीपत, करनाल, पाई, कैथल, सिरसा, हाँसी, नंगली, जमालपुर, हिसार आदि सभी स्थान विद्रोहियों के केन्द्र रहे हैं। उपरोक्त सभी स्थानों पर कुछ न कुछ दिन आजादी के दीवानों की हुकूमत रही है। इस लेख में मैं केवल जाटों से सम्बन्धित कुछ बातें लिखूंगा। बाकी लोगों के सम्बन्ध में अन्य लेखों में।

१० मई को मेरठ से जो चिनगारी छूटी वह ११ को देहली आ पहुँची। मेरठ की फौजों में सबसे अधिक हरियाने के जाट और राजपूत थे। उनके बाद अहीर। उन फौजी सिपाहियों द्वारा यह आग सारे प्रदेश में व्याप्त हो गई। उस समय तक तब रोहतक बंगाल के गवर्नर के मातहत था, तथा कमिश्नरी का हेड क्वार्टर आगरा। यहां के डिप्टी कमिश्नर जोहन एडमलौक थे। २३ मई को बहादुरगढ़ में शाही फौज ने प्रवेश किया और २४ मई को रोहतक पहुँची। डिप्टी कमिश्नर गोहाने के रास्ते करनाल भाग गया। रहे हुए अंग्रेज अधिकारी मारे गये। जेल के दरवाजे खोल दिये गये, कचहरी को आग लगा दी गई। शाही दस्ते ने शहर के हिन्दुओं को लूटना चाहा पर जाटों ने ऐसा न करने दिया। दो दिन ठहर कर विद्रोहियों ने खजाने से दो लाख रुपया निकाल लिया। मांडौठी, मदीना, महम की चौकियां लूट ली गईं। सांपला तहसील को आग लगा दी गई। सभी अंग्रेज स्त्रियों को जाटों ने मुस्लिम राजपूतों (रांघड़ों) के विरोध के बावजूद सही सलामत उनके ठिकानों पर पहुँचा दिया। गोहाना पर गठवाले जाटों ने कब्जा जमा लिया। ३० मई को अंग्रेजी फौज अंबाला से रोहतक चली, पर देशी फौजों के बिगड़ने से श्यामड़ी के जंगल में हार गई। बचे, खुचे अंग्रेज दिल्ली को भागे। लुकते-छिपते ये लोग १० जून को सांपला पहुँचे। डिप्टी कमिश्नर सख्त धूप न सह सकने के कारण अन्धा हो गया। रोहतक के विद्रोही १४ जून को दिल्ली पहाड़ी की लड़ाई में सम्मिलित हुए थे। जब अंग्रेज रोहतक पर किसी तरह भी काबू न पा सके तो मजबूर होकर उन्होंने २६ जुलाई सन् ५७ को एक घोषणा द्वारा रोहतक को जीन्द के महाराजा स्वरूपसिंह को सौंप दिया। दिसम्बर के अन्त तक जहां लोग अंग्रेज से लड़ते रहे, वहां जाटों की खापें आपस में भी एक दूसरे पर आक्रमण करती रहीं और बीच-बीच में राघड़ों और कसाइयों से भी लड़ते रहे।

जब गदर समाप्त हुआ तो प्रायः सभी गांवों के मुखिया लोगों और खास कर नम्बरदारों को फांसी पर चढ़ा दिया गया था। झज्जर के चारों ओर की सड़कें उल्टे लटके मनुष्यों की लाशों से सड़ उठी थीं। मुसलमान राजपूत गांवों के नम्बरदारों को तथा श्यामणी गांव के १० जाट नम्बरदारों व १ ब्राह्मण को रोहतक की कचहरियों व शहर के बीच नीम के वृक्षों पर (वर्तमान चौधरी छोटूराम की कोठी के सामने के वृक्षों पर) फाँसी पर लटका दिया गया था। फांसी देने से पहले दशों जाट नम्बरदारों को

बुलाकर अंग्रेज हाकिमों ने पूछा---बोलो क्या चाहते हो। जाटों ने कहा कि-हमारे ग्याहरवें साथी मुल्का ब्राह्मण को छोड़ दो। मुल्का ब्राह्मण ने अपने साथियों से अलग होने से इन्कार कर दिया। उसे भी उनके साथ ही फाँसी दे दी गई। सारी लाशें गांव में लाकर जलाई गई। फांसी पाने वालों के खोज करने के बाद ६ नाम जान सका। दो नामों का पता न चला। क्रमशः नाम ये हैं (१) मुल्का ब्राह्मण (२) हरदयाल (३) श्योगा (४) हरक्कू (५) बहादुरचन्द (६) जमनासिंह (७) हरिराम (८) शिलका (६) भाईय्या। (सब जाट)

कप्तान हडसन १६ अगस्त सन् ५७ को १२ बजे रोहतक पहुंचा था। उसने कुछ लोगों इकट्ठे देखकर गोली चला दी जिससे १६ आदमी मारे गये। यह घटना चारों ओर के देहात में फैल गई। अगले दिन १७ अगस्त को, सिंधपुरा, सुन्दरपुर, टिटौली आदि के १५ सौ आदमी चढ़ आये, जिनमें से ५० रणभूमि में ही खेल रहे। झज्झर के नवाब अब्दुर रहमान खां को २३ दिसम्बर सन् ५७ को फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया। २१ अप्रेल सन् ५८ को बल्लभगढ़ नरेश नादर सिंह फांसी पर झुला दिये गये। और उन्हीं के साथ नवाब झज्झर के तीन वजीरों में से एक वजीर बादली के गुलाबसिंह जाट भी फांसी पर चढ़ा दिये गये। राव तुलाराम व राव कृष्णगोपाल ने जो अतुल पराक्रम दिखाया वह स्वर्णाक्षरों में अंकित होने योग्य है इसी अर्से में बहादुरगढ़ दादरी, फर्रुखनगर के नवाब समाप्त कर दिये गये। फरुखनगर के नवाब मुहम्मदअली को फांसी दी गई और उनके ११ साथियों को गोली से उड़ा दिया गया। महाराजा नादर सिंह के साथ फांसी पाने वालों में कुंवर खुशालसिंह और ठाकुर भूरेसिंह भी थे।

हिसार में सन् ५७ में हरियानवी फौज की लाइट पलटन तैनात थी। और १४ वां घुड़सवार रिसाला था। पँजाब के तत्कालीन चीफ कमीश्नर सर जान लारेन्स ने एक अनुभवी सेना नायक जनरल वान कोट लैंड को भेजा। हिसार, सरसा, हांसी और उनके देहात में जहां भी, जो भी अंग्रेज फंसा समाप्त कर दिया गया। जहां रोहतक-करनाल के युद्धों में सिक्खों ने अंग्रेजों की सहायता की वहां हिसार के युद्ध में महाराजा बीकानेर के ८०० सिपाही अंग्रेज की ओर से लड़े। हांसी के देहात में जो मार काट मची। वह रोंगटे खड़े करने वाली है जो अमानवीय अत्याचार यहां हुए। वह लिखे नहीं जा सकते। यदि उनका मुकाबला किया जा सकता है तो सन् १९४७ के नरमेध से। जमालपुर मंगली आदि गांव राख के ढेर बना दिये गये। युद्ध की समाप्ति पर देहात से पकड़ कर १५० के लगभग लोगों को फांसी पर सरे आम लटका दिया गया।

कुरुक्षेत्र के ब्राह्मणों के आदेश से हरयानवी फौज ने इलाके के जाटों के साथ मिलकर थानेसर की सरकारी इमारतें जला दीं और तहसील पर कब्जा कर लिया। पाई के जाटों ने कैथल जीत लिया। असन्ध के मुसलमान राजपूत पानीपत तक चढ़ आये। खरखादा (रोहतक) के लोग दिल्ली की बादशाही फौजों से जा मिले। खरखौदा की देहात के २० आदमी गोली से उड़ा दिये गये और १४ फांसी पर लटका दिये गये।

इस तरह हरियाना के अन्दर फैले विद्रोह को दबाने के लिये सिक्ख व राजपूत फौज के साथ अंग्रेजी फौज ने भारी अत्याचार किये तथा सन् ५७ के अन्त तक सम्पूर्ण प्रदेश पर अधिकार कर लिया। लार्ड केनिंग चाहते थे कि हरियाने की शूरवीर जातियों का सम्मान करना चाहिये। पर जनरल नील और मिएट गुमरी सम्मान करना तो दूर रहा, उजाड़ने पर तुले हुए थे।

क्रान्ति १८५७ में हुई थी पर सन् १६०२ तक हरियाना की सड़कें व जंगल उजाड़े जाते रहे। ग्रामों में संस्कृत की पाठशालाएं बन्द की गईं। मन्दिर उजाड़े गये। दो और तीन हजार के बीच पंचायतें तोड़ी गईं। न्यायालयों में हिन्दी के स्थान पर उर्दू जारी की गई। जिन पंजाब वालों से हरियाना का न रहन-सहन मिलता है, न बोल-चाल उन्हीं के साथ हरियाना को आगरा से अलग कर मिला दिया गया। कुछ भाग जीन्द, नाभा, पटियाला की रियासतों के साथ मिला दिये गये। पंजाब के मुकाबले में इस प्रदेश की भारी उपेक्षा की गई। नये नये कर लगाये गये। यहां के पैसे से पञ्जाब में नहरें निकाली गईं। कर्नल रैनक नामक अंग्रेज को डिप्टी कमिश्नर बनाकर, २० वर्ष तक बारी बारी करनाल, रोहतक, हिसार, गुड़गांव जिलों में भेजा जाता रहा जो इस प्रदेश के स्वाभिमानी वीर क्षत्रियों के हृदयों को ठेस लगाता रहा। उसने क्रान्ति में भाग लेने वाले अनेकों वंशों की जागीरें छीनी। अमानुसिक दण्ड दिये। पर कर्नल रैनक के अत्याचार भी इस प्रदेश की वीरता पूर्ण भावना को दबा न सके।

ऋषि दयानन्द की कृपा इस प्रदेश पर हुई, आर्य-समाज का प्रचार धीरे धीरे बढ़ा। सभी जाट आर्य समाजी हो गये। स्वदेशी की भावना पनपी। जहां उन्होंने सन् १४ के विश्व युद्ध में फौज में भरती होकर जर्मन जैसी विश्व शक्ति को युद्ध में पछाड़ा (पहले विश्व-युद्ध में ६ नं० जाट पलटन के जौहर प्रसिद्ध हैं। उनके शौर्य की प्रशंसा शत्रुओं ने भी की है।) वहां उन्हीं दिनों उनके कानों में जाट सरदार अजीतसिंह की यह आवाज भी पड़ी कि पगड़ी संभाल ओ जट्टा, पगड़ी संभाल। उन्होंने गान्धी जी के आन्दोलनों में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। तथा अनेकों लोगों ने घर द्वार छोड़ देश की आजादी के लिये सर्वस्व न्यौछावर किया।

राजा महेन्द्र प्रताप आजादी की चसक में रियासत छोड़ कर ३३ साल तक संसार के अनेक देशों की खाक छानते फिरे। परन्तु उनके बलिदान की कीमत किसने की। आज अनेकों नाकारा राजनीतिज्ञ राज्यपाल बने बैठे हैं पर राजा जी लोक सभा में आये तो कांग्रेस के विरोध में।

द्वितीय विश्व युद्ध में जब जनरल मोहन सिंह ने आजाद हिन्द फौज बनाई और नेता जी सुभाष-चन्द्र बोस ने उसका नेतृत्व संभाला तब उसमें सबसे बड़ी संख्या जाटों की थी। यह बात दूसरी है कि उन्हें वह यश नहीं मिला, जो दूसरे लोगों को। कर्नल दिल सुखमान इतने सीनियर आफीसर थे कि वे आज स्थल सेनाध्यक्ष होते। पर आज वे आजाद हिन्द फौज के कारण घर बैठे हैं। उन्हें कोई पूछने वाला नहीं। मांडौठी के कप्तान कंवलसिंह ने नेता जी सुभाषचन्द्र के साथ बर्लिन से टोकियो तक पनडुब्बी में यात्रा की और रंगून से जापान के लिये उड़ने से पहले तक उनके साथ रहे, इस बात को कौन जानता है? काश्मीर युद्ध में रिहौली, बबूलपुर के जमादार हरिद्वारीलाल ने १० हजार फुट की ऊंचाई पर टैंक चढ़ा कर संसार में अद्भुत आश्चर्य उत्पन्न किया था। आज तक कोई भी इतनी ऊँचाई तक टैंक नहीं चढ़ा सका है। समाल गांव के हुशियार सिंह अभी पिछले दिनों नागा पहाड़ियों में नागाओं से लड़ते हुए काम आये। भगतसिंह क्रांति की ज्वाला जलाते जलाते फांसी पर झूल गये। ऊधमसिंह सात समुद्र पार-जनरल ओडायर को मार कर बलि हो गये। ऊधमसिंह-ताराचन्द अभी पिछले दिनों जोधपुर में डाकू कल्याणसिंह के मुकाबले में कुर्बान हो गये। और उनकी कुर्बानी का ही यह परिणाम है कि आज राज-स्थान, पाकिस्तान की सीमा डाकू-विहीन हो गई है।

जिन मि० जिन्ना से सारे हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ मुकाबला करते घबराते थे। उन्हीं जिन्ना साहब को विचक्षण जाट राजनीतिज्ञ चौ० छोटूराम ने कान पकड़ कर पंजाब से निकाल दिया था। सन्

४२ में भक्त फूलसिंह जी आततताइयों के हाथ कत्ल हो गये। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज गौरक्षा के लिये बलि हो गये।

सन् ४७ के गृह युद्ध में यदि जाट गिरिराज शरणसिंह उर्फ बच्चूसिंह के नेतृत्व में मेव आक्रमण का मुकाबला न करते तो भारतीय इतिहास की धारा ही दूसरी होती और शायद दिल्ली हमारी न होती। इस गृह युद्ध में जिन लोगों ने जिस वीरता के साथ भाग लिया है, वह किसी जानकार की लेखनी ही लिख सकती है। यह लम्बी वहमी है। वर्तमान हिन्दी सत्याग्रह संग्राम में जाटों ने ही सबसे बढ़, चढ़कर बलिदान दिया। हैदराबाद के धर्मयुद्ध में भरतखण्ड में सबसे अधिक सत्याग्रही हरियाणे से गये। और उनमें भी सबसे ज्यादा थे जाट। पर यश जो उन्हें मिलना चाहिये था नहीं मिला। आज भी जाटों में बलिदाताओं की कमी नहीं है। यदि कमी है तो उनको प्रकाश में लाने वालों की। हो सकता है नई पढ़ी, लिखी सन्तति इस तरफ कुछ ध्यान देकर विशाल भू-प्रदेश में विखरे अपने इतिहास को संग्रहीत करने का प्रयत्न करे। जाटों का इतिहास उत्तर-भारत का इतिहास है। आर्यों के विशाल साम्राज्य का इतिहास है। काश ! जाट तलवार की तरह कलम के भी धनी होता, तो उनका इतिहास यों छि-न्नभिन्न न होता। इस धर्म निरपक्ष गणतन्त्र में वे सँभल जायें तो भी अच्छा है। आशा है दूसरे लोग भी जाटों से विदकना छोड़ कर उसकी उदारता से नाजायज लाभ उठाना छोड़ेंगे।

महाराज श्री किसनसिंह जी बहादुर के जीवन की एक झांकी

(लेखक—चौधरी मूलचन्द)

भरतपुर की भूमि वीर प्रसूता रही है। भरतपुर की भूमि ने अनेक वीरों, दूरदर्शी नेताओं तथा अत्यन्त सफल लोकप्रिय राजाओं को जन्म दिया है। वर्तमान राजवंश के राजाओं ने भरतपुर राज्य की स्थापना सन् १७३३ ई० में की थी। इसी पुण्य भूमि में ४ अक्तूबर १८६६ में एक बालक का जन्म हुआ जो बाद में "लैफ्टिनैन्ट कर्नल हिज हेमूनेस, महाराजा श्री व्रजेद्र सवाई कृष्णसिंह बहादुर जंग' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। श्री रामसिंह को गद्दी उतारने पर श्री कृष्णसिंह जी को २६ अगस्त १६०० ई० में राज्याधिकारी घोषित किया। सन् १६१८ तक जब तक ये नाबालिग रहे राज्य का प्रबन्ध कौंसिल आफ एजेन्सी द्वारा किया जाता था, जो कि ब्रिटिश सरकार की पोलिटीकल एजेन्ट को देखभाल तथा नियन्त्रण में कार्य करती थी। इनकी माता गिरराजकौर सी० आई० इस काल में राजप्रबन्ध की पूरी देखभाल रखती थी। २८ नवम्बर को कृष्णसिंह जी राजगद्दी पर बैठे। इसके राजा होने पर प्रजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। सर्वत्र खुशियां मनाई गईं। महाराजा जसवन्तसिंह के बाल्यकाल में भी राज प्रबन्ध एक पंचायत द्वारा किया जाता था। जो कि राज्य कार्यकारिणी सभा थी। उसी पंचायत का संगठन पुनः किया गया और उसका नाम अब 'स्टेट कौंसिल रखा गया। इस कौंसिल के प्रधान धाऊ बख्शी रघुवीर-सिंह जी के ऊपर बाल महाराज श्री कृष्णसिंह के पालन-पोषण का पूर्ण उत्तरदायित्व था। राजमाता अत्यन्त समझदार विदुषी थी। वही श्री कृष्ण को शिक्षा दिलाती थी। इन्होंने प्रारम्भ में इनको मेयो कालेज अजमेर भेजा। सन् १६१६ में इन्होंने वहाँ से डिप्लोमा प्राप्त किया। कालेज के जीवन काल में भी आपसे प्रिंसपल तथा प्रोफेसर बड़े प्रभावित हुए।

सन् १६१६ में महाराज ने जार्ज पंचम 'प्रिंस आफ वेल्स' तथा साम्राज्ञी 'मेरी प्रिंसेज आफ वेल्स' से आगरे में भेंट की। १६१७ में जार्ज पंचम के राज्याभिषेक पर आपने देहली दरबार में आयोजित सभा में भाग लिया। आपने सन् १६१० में 'कमोरी महल' से भेंट की और १६१४ में इंगलैण्ड की यात्रा की। इस प्रकार बाल्यकाल से ही इन्होंने अंग्रेज शासकों से भी सम्पर्क बना लिया।

सन् १६१४ में प्रथम विश्वमहायुद्ध की ज्वाला प्रज्वलित हुई। छोटी आयु होते हुए भी इन्होंने युद्ध में जाने की बड़ी इच्छा प्रकट की। ब्रिटिश सरकार ने इनकी बड़ी प्रशंसा की। युद्ध में जाने की अनुमति न दी। भरतपुर की सेनाएँ भेजीं जो वीरता में सारे यूरोप में प्रशंसनीय थी। महाराजा को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई कि भरतपुर के वीरों ने अपनी वीरता दिखाकर गौरव रखा। भरतपुर के वीरों की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। ये सैनिक फ्रांस, यूनान, अफ्रीका आदि के रण क्षेत्रों में भी गये सब स्थानों पर भरतपुर की वीरता व साहस की अमिट छाप छोड़ गये। इन वीरों की रणप्रशंसा का स्मारक विक्टोरिया हौस्पीटल के समीप बना हुआ है। यह सेनाएँ युद्ध के समाप्त होने पर ही भरतपुर लौटी। महाराज से अंग्रेजों को आर्थिक सहायता भी पर्याप्त दी। महाराज का हृदय उदार था। भिन्न-भिन्न फण्डों में आपने १५ लाख रुपये की सहायता दी। एक बात ध्यान देने योग्य है कि भरतपुर की सेनाएँ युद्ध समाप्ति तक रणक्षेत्र में रही किन्तु अन्य किसी राज्य की न रही।

३ मार्च १६१३ को महाराजा का विवाह पन्जाब की रियासत फरीद कोट के राजा की छोटी बहिन के साथ बड़ी धूम-धाम से हुआ। महाराज के ७ सन्तानें हुईं। जिनमें ४ राजकुमार तथा ३ राजकुमारियाँ थीं। ३० नवम्बर १६२८ को सबसे बड़े राजकुमार सवाई ब्रजेन्द्रसिंह का जन्म हुआ जो कि भरतपुर के वर्तमान महाराज हैं। महाराज कृष्णसिंह का सम्बन्ध नाभा तथा जीन्द रियासतों से था तथा वैवाहिक सम्बन्ध पटियाला तथा फरीदकोट रियासतों से था।

महाराज ने १६१६ में सैनिक बोर्ड की स्थापना की। अनाथ, अपाहिज, अंग-भंग, सैनिकों को सहायता दी। प्रजा को सन्तान के बराबर समझते थे। वीरगति को प्राप्त हुए सैनिकों के परिवारों को आर्थिक सहायता देते तथा बड़ी सहानुभूति रखते थे। प्रजा भी आपको पिता के समान समझती थी। सारा राज्यप्रबन्ध आपने बड़े सुचारु रूप से चलाया। राज्य में एक राजा होते हुए भी प्रजातन्त्र था। भरतपुर की आर्थिक चिन्ता को आपने सुदृढ़ किया। 'सारा रुपया प्रजा का है। वह प्रजा के काम में आना चाहिए यह आपका विश्वास था। वह आपको ट्रस्ट का ट्रस्टी समझते थे। जनता में पूर्ण सन्तोष था। महाराज ने राज्य की सर्वतोमुखी उन्नति की। सेना का संगठन व पुनर्गठत किया। महाराज स्वयं सैनिकों की देखभाल करते थे। उनकी सुविधा का ध्यान रखते थे। उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क रखते थे। महाराज गौवों के बड़े भक्त थे। स्वयं गायें रखते थे और नगरों में गौशालायें स्थापित करवाते थे। इन्होंने राज्य में अनेक सुधार किये। म्युनिसिपैलिटी की स्थापना भी आपने की। प्रजा के हितार्थ अनेक परिवर्तन भी शासन व्यवस्था में किये। सारी प्रजा सम्पन्न तथा प्रसन्न थी। श्रीमान् जी अनुभवी तथा कुशल शासक रहे। २४ सितम्बर १६२२ ई० को इनकी माता का देहान्त हो गया। जिससे सारी प्रजा को बड़ा दुःख हुआ। राजमाता बड़ी न्यायप्रिय और दयालु थीं। महाराज को भी उनकी मृत्यु से बड़ा धक्का लगा। वे इसकारण रोग ग्रस्त हो गये। सारी प्रजा में दुःख के बादल छा गये। सर्वत्र मन्दिर मस्जिदों में उनके स्वस्थ होने की प्रार्थना की जाने लगी। उनके स्वस्थ होने पर प्रजा फूली न समाई।

महाराज को शिक्षा से बड़ा प्रेम था। प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया। पठित जनों को आदर दिया। योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियां दी जाने लगीं। हिन्दी भाषा को बडा महत्व दिया। सभी राज्य कार्य हिन्दी में होने लगा। सारा कार्य सरकारी विभागों में भी हिंदी में ही कराया जाने लगा। इसीलिये आपने भरतपुर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी करवाया जिसमें रवीन्द्रनाथ टैगोर भी सम्मिलित हुए। आपने जनता के हितार्थ 'भारत वीर, नामक पत्र भी प्रकाशित कराया।

इन्होंने एक ऐक्ट जारी किया। जिसमें भरतपुर राज्य की विधवाओं को सहायता देकर उनका उपकार किया। सहकारी सम्पत्तियां तथा सहकारी बैंक व ग्राम पन्चायतों की स्थापना की और इनके सम्बन्ध में एक ऐक्ट जारी किया। उसके प्रबन्ध का अधिकार जनता को दे दिया। ग्रामों में आयुर्वेदिक अस्पताल खुलवाये। पशुओं के लिए प्रदर्शनी खुलवाई। जिसका नाम जसवन्त नुमाइश पड़ा जो अब भी दशहरे के अवसर पर होती है। व्यापार तथा वाणिज्य की वृद्धि के लिए राजा ने सारे शहर में टेलीफोन तथा बिजली का भी प्रबन्ध कराया।

सन् १६२८ ई० में जयपुर तथा अकवर राज्य का पानी बांध टूटने पर भरतपुर के चारों तरफ भर गया। उस समय महाराज ने प्रजा की प्राणों से रक्षा की जन और धन की रक्षा की आहतों को सहायता प्रदान की। इस प्रकार के कार्यों से वह सर्वजन के हृदय में प्रीतिभाजन हो गए।

महाराज को जाट होने का गौरव था १६२५ ई० में पुष्कर में आयोजित जाट महासभा के अध्यक्ष पद को आपने ही ग्रहण किया था। आप में कर्तव्य-परायणता कूट-कूट कर भरी थी। वे किसी भी जाति व धर्म से द्वेष नहीं करते थे। किसनसिंह बड़े उच्च भाव वाले पथप्रदर्शक नृपति थे। आपने अनेक संशोधन राज्य के प्रबन्ध में किए जिसके कारण भरतपुर राज्य का भविष्य उज्ज्वल बन सका। भूमिसुधार की ओर भी आपने अनेक सुधार किए।

इतना होते हुए भी सन् १६२८ में तत्कालीन भारत सरकार ने इन्हें राज्य छोड़ने पर विवश किया। इन पर अपव्ययता तथा राज्य कुप्रबन्ध के आरोप लगाये। इनके भरतपुर प्रवेश पर रोक लगा दी गई। जिससे इनके हृदय को बड़ी ठेस पहुँची। इन्होंने सरकार का विरोध किया। वे न्याय के लिए अन्त तक लड़ते रहे। भरतपुर निर्वासन के १६ महीने बाद २६ मार्च १६२८ को यह सितारा हमेशा के लिए विलीन हो गया।

महाराज अनन्य देशभक्त, वीर तथा महान् समाज-सुधारक थे। भरतपुर की जनता इस महारथी को सदैव स्मरण करती रहेगी।

देशभक्त सूफी अम्बाप्रसाद

(पं० वेदव्रत गुरुकुल झज्जर)

इस पवित्र भारत भूमि पर सहस्रों देशभक्त हुए हैं जिन्होंने भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर किया है। जिन्होंने निःसंकोच भाव से स्वाधीनता के यज्ञ में अपनी आहुति दी है, पराधीनता की जंजीरों से जकड़ी और पद दलित हुई अपनी जन्म भूमि को बन्धनमुक्त कराने के लिए, उन्नति के शिखर पर चढ़ाने के लिए, सोई हुई आर्य जाति को जगाने के लिए, लुप्त हुए प्राचीन गौधन को पुनः प्राप्त करने के लिए, जन्म मृत्यु के खेल को हंस-हंस कर खेला है। ऐसे वीर शिरोमणियों में से एक वीर श्री अम्बाप्रसाद सूफी थे।

ये सच्चे देश-भक्त थे। इनके हृदय में देश को स्वतन्त्र बनाने के लिए दुःख था, दर्द था और था सर्वस्व स्वाहा करने का महान् सङ्कल्प। वे भारतमाता की प्रतिष्ठा देखना चाहते थे, और चाहते थे इसे सब देशों का मुकुट-मणि बनाना। इन देशभक्तों के विषय में बहुत कम व्यक्ति हैं, जो कुछ जानते हैं। इन भारतीय वीरों की यशोगाथा अतीत के निबिड़ अंधकार में निहित है।

सूफी जी अंग्रेजों के भारत-दमन काल में उत्पन्न हुये तथा ईरान दमन के समय में सन् १६१५ में कारागृह की काल कोठड़ी में समाधि लगाई और नश्वर देह छोड़ दिया।

सूफी अम्बाप्रसाद का जन्म ऐसे समय में हुआ जब सन् सत्तावन के संग्राम की युद्धाग्नि भली-भांति शांत न हो पाई थी। अंग्रेज सरकार भारतीय जनता का दमन कर अपना साम्राज्य स्थापित कर रही थी। तभी सन् १८५८ में मुरादाबाद में सूफी जी का जन्म हुआ। इनका दाहिना हाथ जन्म से ही कटा हुआ था,

अतः ये हँसी में कहा करते थे—"अरे भाई हमने सन् सत्तावन में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया था हाथ कट गया, मृत्यु हो गई, पुनर्जन्म हुआ, हाथ कटे का कटा आ गया।"

शिक्षा

आपकी शिक्षा, मुरादाबाद, बरेली, जालन्धर आदि में हुई। एफ० ए० उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने वकालत पढ़ी, किन्तु की नहीं। उर्दू के प्रभावशाली लेखक होने के कारण सूफी जी ने लेखन कला को ही अपनाया। आप पांव से लेखनी पकड़कर भली-भांति लिख सकते थे।

कार्य क्षेत्र में

३२ वर्ष की अवस्था में आप कार्यक्षेत्र में आये और सन् १८६० में अपने जन्म स्थान मुरादाबाद से ही उर्दू का साप्ताहिक पत्र "जाम्युल अलूम" निकालना प्रारम्भ किया। वे हास्यरस के प्रसिद्ध लेखक थे, किन्तु गम्भीरता भी कुछ कम न थी, साप्ताहिक पत्र का प्रत्येक शब्द इनकी अन्त स्थिति का परिचय देता था।

इसी समय भोपाल स्टेट में रेजिडेण्ट कुछ गड़बड़ कर रहे थे और स्टेट को हड़पना चाहते थे। वहाँ की स्थिति जानने के लिए 'अमृतबाजार पत्रिका की ओर से सूफी जी को भेजा गया। सूफी जी एक पागल का रूप बनाकर रेजिडेण्ट के पास नौकरी के लिए गये। उनको केवल भोजन पर ही नौकर रख लिया गया। जब यह पागल (गुप्तचर)पात्र मांजता था, तब मिट्टी में लथपथ हो जाता था, मुखादि अंगों पर मिट्टी का लेप कर लेता था। किन्तु बाजार की वस्तुएँ लाने में बड़ा ही निपुण था। अतः वस्तु खरीदने के लिए इसीको भेजा जाता था।

उधर 'अमृत बाजार पत्रिका' में रेजिडेण्ट के विरुद्ध लेख सूचना आदि पर्याप्त संख्या में निकलने लगे। अन्त में उसकी ऐसी दुर्गति बनाई गई कि उसको पदच्युत कर दिया गया।

इधर रेजिडेण्ट ने कह रखा था कि जो कोई मेरे भेद खोलने वाले को पकड़वायेगा, उसे पारितोषिक दिया जायेगा।

जब रेजिडेण्ट पदच्युत होकर रियासत से बाहर निकल गया, तब वही पागल-सा व्यक्ति हैट लगाये हुये, पतलून, कोट, बूट पहने हुए उसकी ओर आया। उसे देखकर रेजिडेण्ट आश्चर्य-चकित हो गया। उसने विचारा यह तो वही पागल है जो मेरे पात्र मांजता था, किन्तु आज पागल नहीं है। उसने आते ही अंग्रेजी में वार्तालाप आरम्भ कर दिया। फिर क्या था, रेजिडेण्ट के पांवों के नीचे से भूमि निकल गई और काँपने लगा। अन्त में रेजिडेण्ट ने कहा कि—"तुमको पारितोषिक दे दिया है अब मेरे पास क्यों आ रहे हो?

"आपने कहा था कि जो मनुष्य मेरा भेद खोलने वाले गुप्तचर को पकड़वायेगा, उसको पारितोषिक दिया जायेगा।"

रेजिडेण्ट ने कहा—"हाँ, कहा तो था, क्या तुमने उसे पकड़ लिया? उत्तर में सूफी ने कहा—हां, हाँ पारितोषिक दीजिए वह गुप्तचर मैं स्वयं ही हूं।

रेजिडेण्ट ने क्रोध से कांपते हुए कहा—"यदि राज्य के अन्दर ही मुझे तेरा पता लग जाता तो

बोटी-बोटी उड़वा देता।' किन्तु अब उसके पास क्या शक्ति थी, जो कुछ कर सके। उसने अपने कथनानुसार सूफी को एक सोने की घड़ी दी और कहा—"यदि तुमको स्वीकार हो तो मैं गुप्तचर-विभाग से १०००) मासिक वेतन दिलवा सकता हूं। किन्तु उस देशभक्त के हृदय में धनैषणा न थी। उसने उत्तर दिया—"यदि वेतन ही लेना होता तो तुम्हारे बर्तन क्यों साफ करता।

सन् १८९७ में आपको राजद्रोह के अपराध में डेढ़ वर्ष का कारावास दण्ड मिला। जब १८९९ में छूटकर आये तब उत्तर प्रदेश के छोटे-छोटे राज्यों में अंग्रेज सरकार हस्तक्षेप कर रही थी। सूफी अम्बाप्रसाद जी ने वहां के तात्कालिक राज्याधिकारियों का भाण्डा फोड़ किया। अतएव इन पर मिथ्यादोष आरोपण कर अभियोग चला दिया और ६ वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया, तथा इनकी समस्त धन सम्पत्ति (जायदाद) जब्त कर ली गई। जेल में भी उनको अनेक यातनाएँ सहन करनी पड़ीं, किन्तु वह देशभक्त कभी अपने मार्ग से विचलित होकर पथभ्रष्ट की पंक्ति में सम्मिलित न हुआ।

सूफी जी को एक दिन एक गन्दी कोठरी में बन्द कर दिया था इसलिए वे रुग्ण हो गये, रुग्ण हो जाने पर औषधि तो क्या, पानी का भी ठीक प्रबन्ध न किया गया। जेलर आता, और हँसता हुआ प्रश्न करता—"सूफी, तुम अभी तक जिन्दा हो?

यथाकथञ्चित् ६ वर्ष के कारावास को समाप्त कर १९०६ के अन्त में आप बाहर आये। सूफी जी का निजाम हैदराबाद से घनिष्ट सम्बन्ध था अतः जेल से छूटते ही हैदराबाद चले गये। निजाम ने उनके लिए एक सुन्दर भवन बनवाया और भवन के तैयार हो जाने पर निजाम ने कहा कि—"आपके लिए भवन तैयार हो गया है।" सूफी जी भी—"हम भी तैयार हो गये हैं।" कहकर अपने वस्त्रादि उठाकर पञ्जाब की ओर चल दिये और लाहौर में आकर 'हिन्दुस्तान'' अखबार का कार्य करने लगे। आपकी कार्यकुशलता और वाक्पटुता को देखकर यहाँ भी सरकार की ओर से आपको १०००) मासिक गुप्तचर विभाग की ओर से मिल सकता था, किन्तु इस देशभक्त ने धन की अपेक्षा दरिद्रता और कारावास को ही श्रेष्ठ समझा। अतः ठुकरा दिया। कुछ दिन पीछे "हिन्दुस्तान सम्पादक से भी आपकी न बनी, अतः त्यागपत्र दे दिया।

इन्हीं दिनों में सरदार अजीतसिंह ने "भारतमाता-सोसाइटी" की स्थापना की और पञ्जाब के "न्यूकालोनी-बिल" के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। सूफी जी की उनसे मित्रता हो गई और वे भी इस आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुए।

सन् १९०७ में पञ्जाब के देशभक्तों को अंग्रेज सरकार ने पुनः पकड़ना प्रारम्भ कर दिया, अतः सरदार अजीतसिंह के भाई किशनसिंह और "भारतमाता-सोसाइटी" के मन्त्री मेहता आनन्दकिशोर, सूफी जी के साथ नैपाल चल दिये। वहाँ पर नैपाल रोड के गवर्नर श्री जंगबहादुर जी से सूफी जी का परिचय हो गया और उन्होंने इनके साथ अच्छा व्यवहार किया। पश्चात् सूफी जी को आश्रय देने के अपराध में गवर्नर श्री जंगबहादुर को पदच्युत कर दिया गया और उनकी धन-सम्पत्ति जब्त कर ली गई। सूफी जी को भी नैपाल से पकड़कर लाहौर लाया गया और लाला पिण्डीदास जी के "इण्डिया" पत्र में प्रकाशित लेखों के विषय में इन पर अभियोग चलाया गया, किन्तु निर्दोष होने पर इनको छोड़ दिया। तदुपरान्त सरदार अजीतसिंह को भी छोड़ दिया गया।

सन् १९०८ में सूफी जी और सरदार अजीतसिंह जी ने "भारत माता-बुक-सोसाइटी" की स्थापना की। इसका अधिकतर कार्य सूफी जी ही किया करते थे। इसी संस्था की ओर से सूफी जी ने 'बागी मसीह वा "विद्रोही ईसा" पुस्तक का प्रकाशन किया, सरकार ने जब्त कर दिया।

इसी वर्ष लोकमान्य तिलक पर अभियोग चलाया गया और उनको ६ वर्ष के कारावास का दण्ड मिला। उस समय "देशभक्त" मण्डल के सभी सदस्य साधु बनकर पर्वतों की यात्रा करने के लिये चल दिये। उनके साथ एक भक्त (गुप्तचर) भी आया जो कि बूट-सूट लगाकर पूरा जैण्टिलमैन बना हुआ था। जब साधु इकट्ठे होकर बैठे तब भक्त ने सूफी जी के चरणों पर शिर झुकाकर नमस्ते की और पूछा—"बाबा जी आप कहां रहते हैं?" सूफी भोले भाले न थे, पक्के गुप्तचर थे। अतः वे इस बगुले भक्त को पहचान गये और कठोर शब्दों में उत्तर दिया—"रहते हैं तुम्हारे शिर में।

भक्त ने कहा—"साधु जी आप नाराज क्यों हो गये?"

सूफी जी ने उत्तर दिया—"अरे मूर्ख तूने मुझे ही क्यों नमस्कार किया? और भी अनेक साधु बैठे हैं, इनको क्यों नहीं किया?" भक्त ने पुनः निवेदन किया कि—"महाराज मैंने आपको ही बड़ा साधु समझा।"

सूफी जी ने कहा—"अच्छा, जाओ, खाने पीने की वस्तुयें लाओ" भक्त कुछ काल पश्चात् उत्तमोत्तम पदार्थ लेकर आया। भोजन करने के उपरान्त सूफी जी ने उसको बुलाया और कहा—"क्यों बे! हमारा पीछा छोड़ेगा या नहीं?"

भक्त ने कहा—"भला मैं आपसे क्या कहता हूँ जी?

सूफी जी ने उसको धमकाया—"क्यों चालाकी से बात करता है? आया है जासूसी करने, जा—जा अपने बाप से कह देना कि सूफी पहाड़ में गदर करने जा रहा है" इतना सुनते ही गुप्तचर सूफी जी के चरणों पर गिर गया और कहने लगा—'महाराज! पेट के लिए सब कुछ करना पड़ता है।"

सन् १९०९ में सूफी जी ने 'पेशवा' नाम से एक पत्र निकाला। उन्हीं दिनों में बङ्गाल में क्रान्तिकारियों का आन्दोलन वेग से चल रहा था। सरकार को चिन्ता हो गई कि कहीं यह विद्रोहाग्नि पञ्जाब में भी न धधक उठे, इसलिए पहले ही जनता का दमन प्रारम्भ कर दिया।

दमन चक्र को देखकर सूफी जी, सरदार अजीतसिंह और ज्याउलहक ईरान जा पहुँचे। वहाँ जाकर ज्याउलहक के मन में लोभ आ गया। उसने विचारा कि इन दोनों को पकड़वा दूँ तो मुझे पारितोषिक मिल जायेगा और मैं दण्ड से भी बच जाऊँगा। किन्तु सूफी जी बड़े नीति निपुण व्यक्ति थे, वे उसकी विचारधारा को समझ गये, उन्होंने उसी को आगे भेज दिया। उसने वहां रिपोर्ट की और स्वयमेव पकड़ा गया। सूफी जी और सरदार अजीतसिंह दोनों बच कर निकल गये।

सूफी जी ईरान में कैसे रहे और क्या किया, यह तो ज्ञात नहीं, किन्तु अंग्रेज सरकार ने वहां भी उनका पीछा न छोड़ा, गुप्तचर सदा पीछे लगे ही रहते थे। इसलिए इनको अनेक बार विपत्तियां उठानी पड़ीं।

एक स्थान पर सूफी जी को घेर लिया गया, वहाँ से निकलना कठिन हो गया। वहाँ पर ऊँटों वाले व्यापारी ठहरे हुए थे, उनके ऊँटों पर अनेक बन्दूक वस्त्रादि से भरे हुए लद रहे थे। एक ऊँट के

दोनों सन्दूकों में सूफी जी और सरदार अजीतसिंह को बन्द किया गया और वहां से बचाकर निकाला गया।

इसी प्रकार एक दिन किसी धनाढ्य व्यक्ति के घर ठहरे हुए थे, पुलिस को पता लग गया और उसने घेरा डाल दिया। उसी समय इन दोनों को बुरका पहना कर स्त्रियों में बैठा दिया गया। पुलिस ने छानबीन की। अन्त में स्त्रियों की भी तलाशी आरम्भ की, एक-दो स्त्रियों के बुरके उठाये भी गये, किन्तु मुसलमान लड़ने-मरने को तैयार हो गये। अन्य किसी महिला का बुरका नहीं उतारने दिया गया। इस प्रकार ये दोनों वहां से बच गये। जब-जब भी इन पर विपत्तियां आईं, सर्वदा इसी भाँति चतुरता और कार्य-पटुता के कारण बचते रहे।

इसके पश्चात् सूफी जी से ईरान से ही "आबेहयात नाम का पत्र निकाला। सरदार अजीतसिंह जी टर्की चले गये और सम्पूर्ण कार्यभार इन्ही पर आ गया। इसलिए ये वहाँ पर "आका सूफी" के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

समाधि

सन् १९१५ में अंग्रेजों ने ईरान में अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहा। तब पुनः उथल-पुथल आरम्भ हो गई। उस समय सीराज पर घेरा डाला गया, सूफी जी ने वहां बायें हाथ से रिवाल्वर चला कर अंग्रेज सरकार का सामना किया। अन्त में उनके वशवर्ती हो गये।

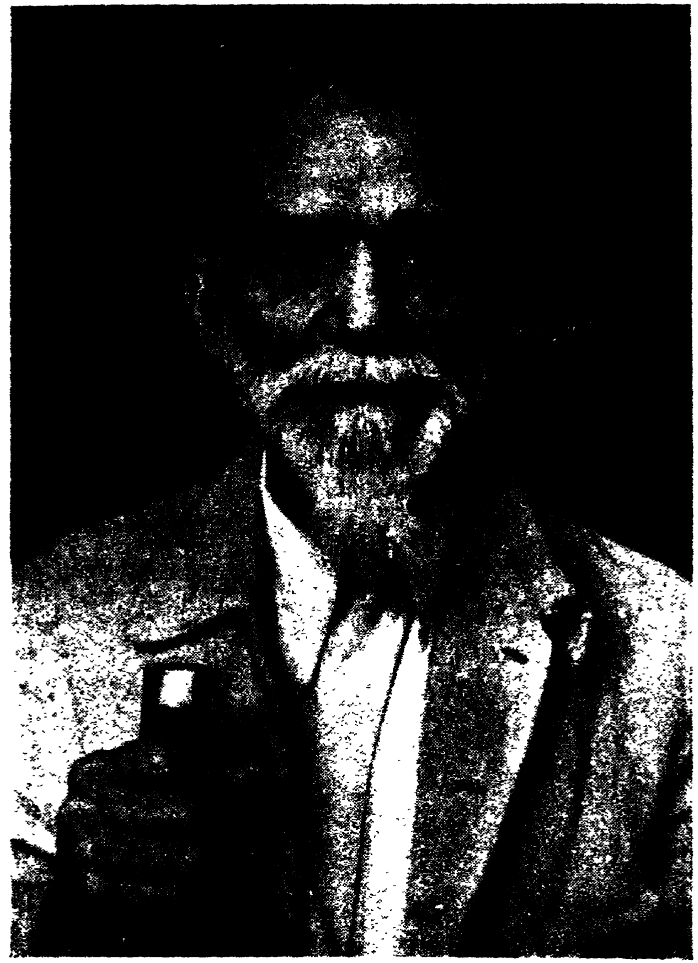
सूफी जी के सम्बन्ध में कोर्टमार्शल (सैनिक न्यायालय) में विचार किया गया तथा निश्चय हुआ कि सूफी जी को कल गोली से उड़ा दिया जाये। इस निर्णय को सुनकर सूफी जी ने उसी रात्रि को अपनी कारावास कुटीर में ही समाधि लगाकर पाञ्चयभौतिक शरीर को त्याग दिया। ऐसे वीरों के लिए मरना भी नव-जीवन है। नवीन उमंग और नये उत्साह के साथ पुनः संसार मञ्च पर आते हैं और अपने कर्तव्य का नाटक खेल कर पुराना चोला बदलने के लिए चले जाते हैं।

सूफी जी की मृत्यु के वृत्तान्त को सुनकर सर्वत्र सन्नाटा छा गया। असंख्य नर-नारी उनके शव के साथ गये थे। उनकी कब्र बनाई गई और वहां पर प्रतिवर्ष मेला लगाया जाता है। इस देशभक्त का नाम सुनकर ईरानी लोग अब भी श्रद्धा से सिर झुका लेते हैं।

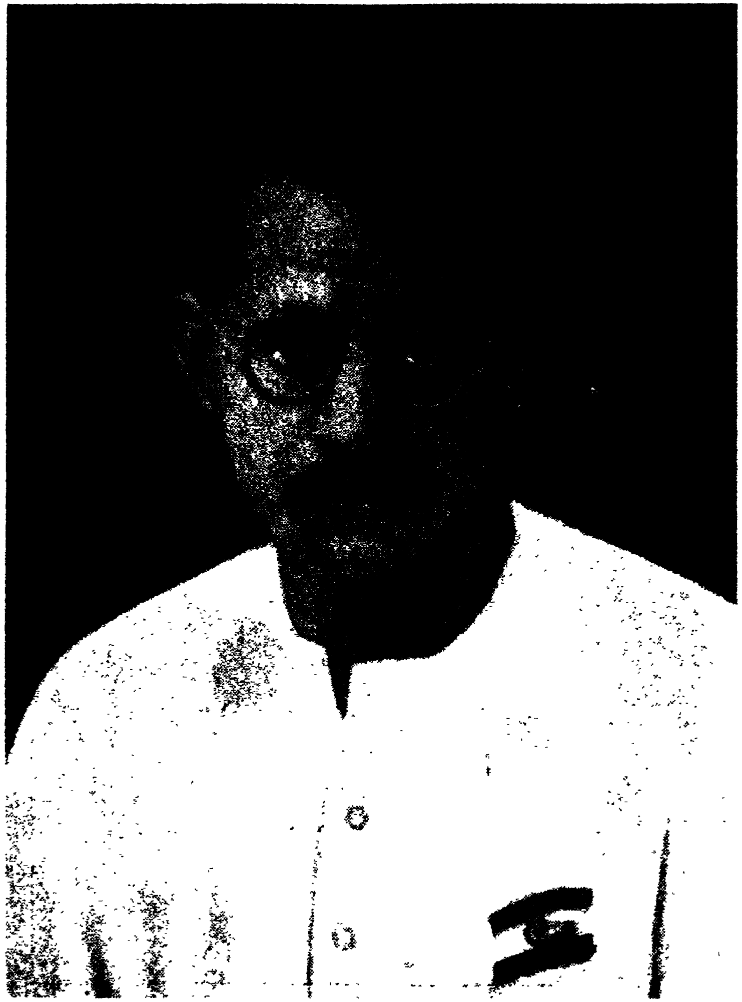
अमर सेनानी—



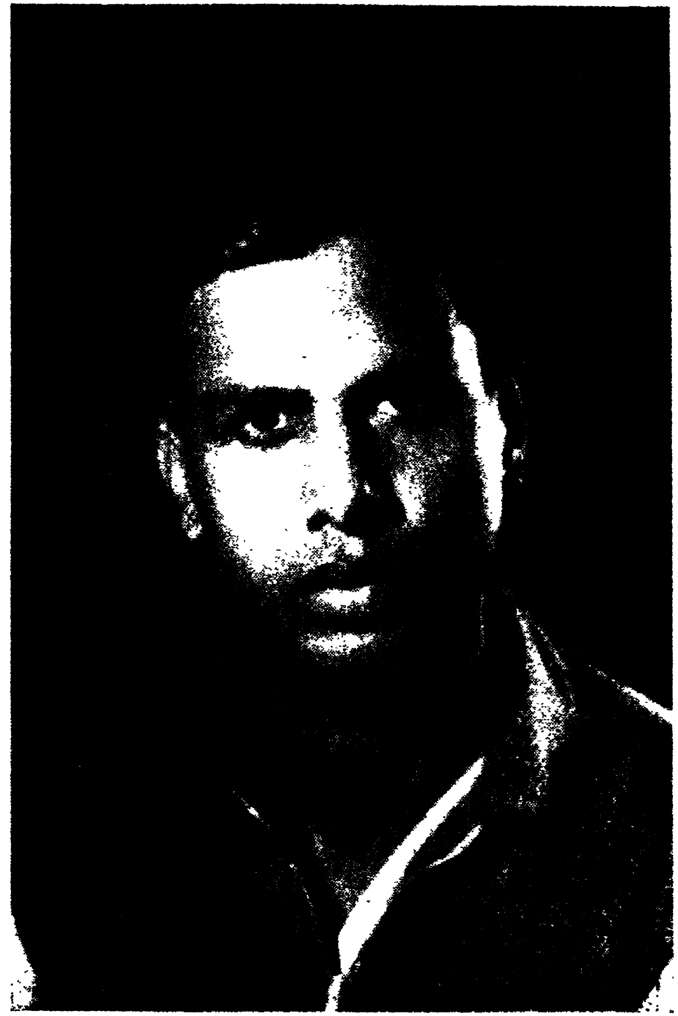
श्री चन्द्रशेखर आजाद



श्री राजा महेन्द्र प्रताप



श्री गणेशशङ्कर विद्यार्थी



श्री विजयकुमार

श्री गणेशशंकर विद्यार्थी

(ब्र० वेदपाल)

भारत के स्वतन्त्रता के इतिहास में जिला कानपुर का "प्रताप" पत्र और उसके सम्पादक श्री गणेश शंकर विद्यार्थी का स्थान बहुत ऊँचा है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य भारत और समस्त राजस्थान के वे आधार-स्तम्भ हैं। श्री गणेश शंकर विद्यार्थी दृढ़ देशभक्त और चरित्र का उज्ज्वल रत्न था। साधारण से घराने में जन्म लेकर एक उच्च पद को, प्राप्त करना कोई सरल बात नहीं है। प्रताप पत्र उनकी ही तपस्या का फल है। प्रताप ने १५ करोड़ जनसंख्या वाले क्षेत्र में नवजीवन का संचार किया था।

उस क्षेत्र निवासी लोगों के दुःखों का प्रकाशन और सहायता कार्य जो 'प्रताप" ने किया वह भुलाया नहीं जा सकता। श्री गणेश शङ्कर विद्यार्थी अहिंसक क्रान्ति के पुजारी थे. किन्तु अंग्रेजों के विरुद्ध किसी तरह भी लड़ने वालों के साथ सब प्रकार से उनकी सहानुभूति थी। आप उनके कार्य को प्रकाशित करने के लिए सदा तैयार रहते थे। काकोरी षड्यन्त्र से लेकर लाहौर षड्यन्त्र तक के क्रान्तिकारियों को जो भी महत्व वे अपनी लेखनी से दे सके खूब दिया। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए जो यत्न आप ने किया आज तक किसी बिरले सम्पादक ने ही किया होगा।

जहां आप देशभक्त थे वहां कुशल साहित्यकार भी थे। आप अभिमान, दम्भादि से सर्वथा दूर थे। आप सभी की निर्धन हो या धनी सहायता करते थे। श्री भगतसिंह तथा श्री आजाद जैसे वीर क्रान्तिकारियों की भी इन्होंने पूरी-पूरी सहायता की थी।

२५ मार्च १९३१ में दो जातियों में भयङ्कर लड़ाई हुई। कानपुर की गलियां रक्त से लाल हो गईं। सड़कों और गलियों में लाशों पर लाशें बिछ गईं। गणेश शङ्कर विद्यार्थी ने दोनों जातियों को बड़ी कुशलता से समझाया, तब कुछ शान्ति का वातावरण उत्पन्न हुआ।

उत्तर प्रदेश की नौकरशाही सरकार ने आपको खूब सताया और जेलों में डालकर अत्यधिक कष्ट दिये थे। आप को कठिनतम यन्त्रणायें देकर इतना तंग किया कि आपके यौवनकाल का सौन्दर्य नष्ट हो गया और जब जेल से निकले तब अस्थि-पिञ्जर मात्र शरीर को लेकर निकले।

सन् १९२० में आपको दो वर्ष के कारावास का दण्ड मिला। तत्पश्चात् आपको फिर गिरफ्तार कर लिया गया और १९२५ तक आपको जेल में रखा गया।

एक दिन की बात है कि वे सायंकाल तक आफिस और घर पर नहीं आये। अन्वेषण करने पर पता चला कि किसी नरपशु ने आपका संहार कर दिया। इस दुःखद समाचार को सुनकर समस्त देश में सन्नाटा छा गया।

चन्द्रशेखर आजाद

(ब्र० वेदपाल)

अलीपुर राज्य (मध्यभारत) की झाबुआ तहसील में एक छोटा सा ग्राम है जिसका नाम भावरा है। इस ग्राम में पं० सीताराम जी तिवारी के घर में एक होनहार बालक ने २३ जौलाई १६०६ में माता जगरानी देवी के गर्भ से जन्म लिया, जिसका नाम चन्द्रशेखर था। वस्तुतः चन्द्रशेखर के पिता जी यू० पी० के उन्नाव जिले के ग्राम बदरका के रहने वाले थे। तिवारी जी की आर्थिक अवस्था अच्छी न थी। वे भावरा में सरकारी बाग की रखवाली करके ८) या १०) रु० मासिक वेतन लिया करते थे। अन्नादि वस्तुओं के सस्ता होने के कारण जैसे-तैसे निर्वाह हो जाता था।

चन्द्रशेखर का बाल्यकाल खाने और खेलने में ही बीत रहा था। चन्द्रशेखर को गुड़ बहुत प्रिय था। गांव में शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था। यह ऐसी दशा में देशी बारूद लेकर तथा उसे एक खिलौने में भर कर तोप चलाने का खेल खूब खेलता था। किन्तु खेलने के लिए इच्छानुसार पैसा नहीं मिलता था।

एक दिन आजाद ने बाग में से आमादि कुछ फल तोड़ कर जिसकी रखवाली इसके पिता जी किया करते थे, बाजार में बेच डाले। इन पैसों से यह गुड़ तथा बारूद खरीदना चाहता था किन्तु किसी कारण वश ऐसा न कर सका।

एक दिन की बात है कि चन्द्रशेखर अपने माता पिता को छोड़कर उस कुटिया से चल पड़ा जिस में वे रहते थे। कुटिया में कोलाहल मचा, बाहर पिता जी चुप-चाप बैठे हैं और अन्दर उनकी माता जी दीवारों पर शिर पटक रही हैं। पूछने पर पता चला कि आजाद घर से गायब है। कुछ दिन पीछे आजाद का पत्र आया। जिसमें उन्होंने लिखा था कि मैं कुशल हूं, आप चिन्त न करें, मैंने संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया है। इस वृत्तान्त से माता के हृदय में कुछ शान्ति हुई क्योंकि इनके पहले भी तीन सन्तानें हो चुकी थीं। किन्तु तीनों अपनी क्षणिक लीला की स्मृतियां छोड़कर अन्तर्धान हो गई थीं। इस कारण इनके मता-पिता अत्याधिक दुःखी रहते थे।

असहयोग-आन्दोलन

सन् १६२१ में असहयोग आन्दोलन चला, इस आन्दोलन के नेता महात्मा गांधी थे। इस आन्दोलन रूपी आंधी को भला कौन भूल सकता है। इस में एक यह विशेषता थी कि इस आन्दोलन में ऐसे वर्ग सम्मिलित हुए, जिनके सम्बन्ध में स्वप्न में भी विचार नहीं किया जा सकता कि ये लोग भी क्या कभी राजनीति में भाग ले सकते हैं। उनमें एक आजाद भी था, यह बनारस में संस्कृत पढ़ने वाला विद्यार्थी था। इस के शिर पर मोटी चोटी, अद्भुत वेष-भूषा, विचार धार्मिक; पर यह भी इस आन्दोलन में अतुल धैर्य के साथ कूद पड़ा।

काशी में इस वृत्तान्त से भारी सनसनी फैल गई कि संस्कृत के कुछ अल्पायु के छात्र गिरफ्तार कर लिये गये हैं। इनमें एक छात्र केवल १४ वर्ष का बच्चा ही है। जब इन सबका मुकद्दमा चला तो खरेघाट नामक मजिस्ट्रेट ने आजाद से पूछा—

तुम्हारा क्या नाम है ?

बालक—आजाद ।

मजिस्ट्रेट—तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?

बालक—स्वतन्त्र ।

मजिस्ट्रेट—तुम्हारा निवास स्थान कहां है ?

बालक—जेलखाना ।

इस पर उस बालक को १५ बेंत की सजा मिली। जिस समय १८ वर्ष के इस बालक के कोमल शरीर पर सड़ासड़-सड़ासड़ बेंत पड़ रहे थे तो उसने किञ्चितमात्र भी कायरता न दिखला कर प्रत्येक बेंत के साथ 'महात्मा गांधी की जय' व'न्दे मातरम्' के नारों से जेल को गुञ्जा दिया। इन नारों को सुनकर साहब और जल्लाद का दिल कांप उठा। यह देखकर उन्होंने सोचा यह बालक फौलाद का बना हुआ तो नहीं हैं, तथा बेंत लगाने और लगवाने वाले दोनों दंग रह गये। आजाद व्यायाम प्रिय था।

जिस समय यह बालक जेल से निकला उस समय इसके मुख-मण्डल पर शौर्य चमक रहा था। बात की बात में यह समाचार सारे शहर में बिजली की तरह फैल गया। नगर कमेटी ने इस बालक के अभिनन्दनार्थ एक सभा का आयोजन किया। सारी काशी इस १८ वर्ष के बालक के अभिनन्दन के लिए उमड़ आई, क्योंकि इस छोटे से बालक ने ब्रिटिश राज्य की अवज्ञा और उसका उपहास किया था। चन्द्रशेखर को एक मञ्च पर खड़ा किया गया, क्योंकि बालक ही था तथा फल मौलाओं से लाद दिया। चन्द्रशेखर के इस अपूर्व साहस से बड़े-बड़े नेताओं का ध्यान भी इस की ओर आकृष्ट हो गया था। इस प्रकार आजाद ने इस पहली टक्कर में ही ब्रिटिश साम्राज्य को करारी चोट पहुँचाई। कहा जाता है कि अन्तिम काल तक आजाद के शरीर पर उन बेंतों के घाव ज्यों के त्यों बने रहे। बेंत लगने वाले दिन से आजाद ने एक दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि—मैं इस ब्रिटिश नौकर शाही को अपने देश से निकाल कर ही दम लूंगा। हुआ भी यही ।

इस घटना के अनन्तर आन्दोलन भी बन्द हो गया। आन्दोलन बन्द होने पर आजाद को कोई मार्ग दिखाई नहीं दिया।

इसके पश्चात् आजाद फिर काशी विद्यापीठ में भरती हो गया। कुछ समय तक वह विद्यापीठ में किसी प्रकार अपसे दिन काटता रहा किन्तु अन्त में वह वहीं से किसी अज्ञात स्थान पर चला गया। आजाद अब किसी ऐसे कार्य में रत रहना चाहते थे जिसमें अपना सारा भावी जीवन व्यतीत कर सकें।

आजाद तो युद्ध में गोलियों की बौछारों के बीच स्वदेश की स्वतन्त्रता के हेतु लडने के लिए और निज साहस और धैर्य प्रदर्शित करने के लिए संसार में आया था, उसे स्कूल और विद्यालयों की पढ़ाई कहां अच्छी लगती। इस लिए पढ़ाई से उसका मन ऊब गया।

असहयोग आन्दोलन के अकस्मात् बन्द हो जाने से देश में यह प्रतिक्रिया हुई कि देश की पराधीनता की बेड़ियों को काटने के लिए युवकों ने पुनः क्रान्तिकारी समितियों का संगठन करना आरम्भ कर दिया। इसी के अनुसार बंगाल की सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी समिति अनुशीलन पार्टी ने अपने कुछ संगठनकर्ताओं की

पार्टी संयुक्तप्रान्त में संगठन करने के लिए भेजी। इसी समय श्री रासबिहारी वसु के पुराने और सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी साथी श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने भी संयुक्त प्रान्त में संगठन कार्य आरम्भ किया। श्री शचीन्द्रनाथ असहयोग आन्दोलन से कुछ ही दिन पूर्व अण्डमान से छूटे थे। बंगाल से कुछ क्रान्तिकाररियों ने काशी में भी अड्डा आ जमाया। इनको भोजन का अत्यन्त कष्ट रहता था। यहा पर इन्होंने एक मकान किराये पर ले लिया और अपना काम आरम्भ कर दिया। इन्होंने अपने मकान के आगे 'कल्याण आश्रम' का बोर्ड लगाया। कुछ ही दिनों में ये अपने कार्य में सफल होगये। इसके पश्चात् ये वापिस बंगाल चले गये और इन के स्थान पर श्री योगेशचन्द्र चटर्जी आ गये। ये इनसे अधिक प्रभावशाली थे। अब संगठन कार्य सुदृढ़ तथा विस्तृत होने लगा।

बनारस में इस समय दो पार्टी चलती थीं। इन का एक ही लक्ष्य होने के कारण दो दलों का होना कुछ लोगों को पसन्द नहीं था। स्वयं श्री शचीन्द्रनाथ भी इस में कोई लाभ नहीं देख रहे थे अतः इन्होंने अनुशीलन समिति से बातचीत करके दूसरे दल को अपने ही दल में मिला लिया। इससे क्रान्तिकारी दल को बहुत बल मिला। इस दल का नाम "हिन्दुस्तान रिपब्लिकन ऐसोसियेशन" रखा और इसका विधान भी प्रकाशित कर दिया। श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी जिनको बाद में काकोरी षड़यन्त्र केस में फांसी हुई, बनारस जिले के संगठन कर्ता नियुक्त किये गये। पुनः पुराने क्रान्तिकारियों से भी सम्पर्क स्थापित हो गया। इसी समय श्री 'रामप्रसाद बिस्मिल' जो कि राजनीतिक क्षेत्र से विरक्त हो गये थे इन्होंने फिर से क्रान्तिकारी आन्दोलन का नेतृत्व प्रारम्भ कर दिया।

इसी समय इस दल के सदस्य श्री प्रणवेश चटर्जी का ध्यान श्री चन्द्रशेखर आजाद पर गया जो विद्यापीठ से विदा होकर संस्कृत का अध्ययन कर रहे थे। श्री मन्मथनाथ तथा श्री श्री प्रणवेश ने आजाद को पार्टी का परिचय दिया। आजाद उसी समय पार्टी के सदस्य हो गये। इसके बाद चन्द्रशेखर शनैःशनैः आगे बढ़ते गये और पार्टी में सबसे योग्य निकले। श्री आजाद ने ब्रह्मचारी गोविन्दप्रकाश तथा जोगेन्द्र-शुक्ल एवं अन्यों को भी पार्टी में शामिल किया। आजाद का एक लुहार भी मित्र था जो कि इनकी बन्दूक आदि को ठीक करता था। उसने एक तमञ्चा भी बनाया था किन्तु यह तमञ्चा अधिक काम का नहीं था।

क्रान्तिकारियों के पास कुछ धन एकत्र हो जाने पर इन्होंने एक पर्चा निकाला जिसका नाम 'क्रान्तिकारी' रखा गया। इसमें जो लोग इन्हें देश में अशान्ति फैलाने वाले एवं अराजकतावादी कहते थे उनको उत्तर दिया था। उसमें लिखा था कि जो लोग हमारे मार्ग में अंग्रेज या कोई हिन्दुस्तानी रोड़ा अटकायेगा उसे समाप्त कर दिया जायेगा, इत्यादि। चन्द्रशेखर का इन पर्चो के बांटने में बहुत प्रमुख हाथ था।

आजाद को धन के लिए एक महन्त के चक्कर में भी पड़ना पड़ा। किन्तु वहां से ये जल्दी ही आ गये। क्योंकि वहाँ पर गुरुमुखी रटनी पड़ती थी किन्तु आजाद इससे बिल्कुल बिमुख थे।

काकोरी ट्रेन डकैती

६ अगस्त सन् १९२५ को काकोरी के समीप एक चलती हुई गाड़ी को रोक कर लूट लिया गया। यह इन्होंने निश्चित कर लिया था कि रेल गाड़ी काकोरी के समीप लूटनी हैं। इन का दल रेल गाड़ी में बठ गया। जब गाड़ी काकोरी के पास आई उसी समय गाड़ी की जंजीर खींचकर गाड़ी को रोक लिया गया। सब नीचे उतर आये और दश मिनट में लूटकर चम्पत हो गये। इस कार्य में आजाद का प्रमुख हाथ था। इस ट्रेन में इनके १०-११ साथी और थे। इस के पश्चात् वहाँ पर कुछ दिन गिरफ्तारियां भी हुईं।

इसी समय श्री आजाद फरार हो गये। इस समय इन्हें बहुत कष्ट उठाने पड़े। किन्तु जो प्राणों को हथेली पर लिये घूमता हो उसे कष्टों से क्या भय! कुछ दिनों के बाद जो क्रान्तिकारी पकड़े गये थे उन्हें लखनऊ जेल में ले जाया गया। आजाद इसी अवसर की प्रतीक्षा में थे कि लारियों को रोक कर पुलिस से युद्ध किया जाय और अभियुक्तों को छुड़ा लिया जावे। किन्तु शस्त्रादि साधनों की कमी होने के कारण यह काम नहीं हो सका।

इस निराशा से आजाद बहुत ही उत्तेजित हुए और काकोरी षड्यन्त्र में सबूत जुटाने वाले पुलिस अफसर खान बहदुर तसद्दुक हुसैन को मार कर स्वयं फांसी पर चढ़ने का विचार किया, किन्तु साथियों ने ऐसा करने से रोक दिया। इस के बाद ये बम्बई और यू० पी० में घूम कर झांसी में काम करने लगे। यहां पर इन्होंने निशाना लगाना तथा मोटर चलाना भी सीखा।

जिन दिनों काकोरी षड्यन्त्र का मुकद्दमा चल रहा था उन दिनों कई क्रातिकारियों ने जेल से भागने का निश्चय भी किया किन्तु असफल रहे। १८ मास तक मुकद्दमा चलता रहा। इस के बाद फैसला सुनाया गया। इस निर्णय में चन्द्रशेखर के चार साथियों को फांसी की सजा मिली उनके नाम हैं—

१—पं० रामप्रसाद बिस्मिल।

२—श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी।

३—श्री रोशनसिंह।

४—श्री अशफाकुल्ला खा।

श्री आजाद को इन प्यारे साथियों की मृत्यु का कितना दुःख हुआ होगा, यह तो वे ही जानते थे। ये फरार होते हुए भी हर समय घूमते रहते थे। इस समय इनका दल खूब संगठित था। इनके अतिरिक्त उस दल में श्री भगतसिंह तथा भगवती चरण वर्मा जैसे सुयोग्य क्रान्तिकारी भी विद्यमान थे।

एक बार एक आदमी के कहने पर इन्होंने एक जगह डाका डाला। इस डाके के पीछे डाका डलवाने वाले का भी स्वार्थ था। डाके के समय वह आदमी भी उपस्थित था। उसने एक स्त्री से व्यभिचार करने के लिए कुचेष्टायें कीं, यह देखकर आजाद ने उसको गोली मार कर समाप्त कर दिया और उस स्त्री से क्षमा मांगकर बिना डाका डाले ही आ गये। इस घटना से उनके चरित्र का अनुमान लगाया जा सकता है कि वे कितने सदाचारी थे तथा स्त्रियों का मान करते थे।

आगरे की घटना है। असेम्बली में बम्ब फेंकने का निश्चय हुआ। सब अपने कार्य में व्यग्र थे। उन्हीं दिनों बटुकेश्वरदत्त बंगाल से आये थे। उनके स्वागत के लिए एक साथी ने डबल रोटी खरीद ली, इस पर उसको खूब डांटा। इस प्रकार आजाद जो कोई अधिक खर्च करता था उस पर बहुत क्रुद्ध होते थे।

सन् १९२८ ई० में अंग्रेज सरकार ने कुछ अंग्रेजों को भारत भेजा। इस दल का नेता साइमन था अतएव इस दल का नाम 'साइमन कमिशन' था। यह दल यह देखने आया था कि भारत में कौन-कौन से सुधार लागू किये जा सकते हैं। कुछ क्रान्तिकारियों ने इस दल का विरोध करने का निश्चय किया। किन्तु किसी कारण वश इस कार्य में सफलता नहीं मिली। लखनऊ में भी इसका विरोध हुआ। जब यह

दल लाहौर पहुंचा तब लाला लाजपतराय ने इसका डटकर विरोध किया। लाला जी को पुलिस ने खूब पीटा तथा इनकी कुछ दिन बाद इसी कारण मृत्यु भी हो गई।

इस खून का बदला लेने के लिये क्रान्तिकारी दल ने निश्चय किया कि पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट साउण्डर्स की हत्या की जाये। इस प्रकार उस को मौत के घाट उतार दिया गया। इस घटना के कुछ दिन बाद ३ क्रान्तिकारी पकड़े गये। उनमें भगतसिंह और राजगुरु को फांसी का दण्ड मिला।

लाहौर षड्यन्त्र में आजाद को सब से ज्यादा दोषी ठहराया गया। यदि ये यहां पकड़े जाते तो उसी समय फांसी पर लटका दिये जाते। काकोरी षड्यन्त्र में आजाद का नाम अवश्य था किन्तु मुखिया न होने के कारण इतना दोषी नहीं समझा गया।

७ अप्रैल सन् १९२९ को एक बिल का विरोध करने के लिए सरदार भगतसिंह ने असम्बली भवन में बम्ब फेंका और श्री दत्त ने इनका पूरा साथ दिया। इस केस में स० भगतसिंह को काले पानी की सजा मिली।

आजाद के जीवन के अंतिम दिन बहुत ही संघर्षमय थे। आजाद ने अनेकों ऐसे कार्य किये हैं जिनको याद कर निवीर्य मनुष्य में भी एक बार अवश्य ही वीरता की लहर दौड़ने लगे। साहस के वे पुतले थे। उनकी वीरता पर आज भारत को गर्व है।

आजाद ने सन् १९२४ में क्रान्तिकारी जीवन अपनाया था। इस क्रान्तिकारी जीवन में उन्हें भयङ्कर कष्ट उठाने पड़े। इस प्रकार आजाद के प्रायः सभी सथी स्वर्ग सिधार चुके थे। आजाद ही एक प्रमुख क्रान्तिकारी शेष था।

इलाहाबाद की घटना है कि आजाद इलाहाबाद में एक सज्जन से कुछ रुपया लेने गये थे। कहा जाता है कि इस व्यक्ति ने एक तरफ तो आजाद को रुपयों के लिए बुला लिया और दूसरी तरफ पुलिस को सूचना दे दी कि आजाद यहां आ रहा है। यह रुपया क्रांतिकारी दल का ही था।

२७ फरवरी १९३१ को प्रातःकाल दश बजे के लगभग आजाद तथा उनके अङ्गरक्षक एलफ्रेड पार्क में बैठे हुये थे। इसी समय एक कार इनके पास आकर रुकी। इस कार से उतरते ही पुलिस अफसर ने आजाद पर गोली चलानी आरम्भ कर दी। एक गोली आजाद की जङ्घा पर लगी। किन्तु फिर भी इस वीर ने एक पेड़ की आड़ ले ली और इसने भी गोली चलानी आरम्भ कर दी। दोनों तरफ से धड़ाधड़ गोली चल रही थीं। एक तरफ तो अकेला वीर आजाद और दूसरी तरफ पुलिस इसी समय इनका अंगरक्षक वहां से निकल गया। आजाद की गोलियों ने पुलिस अफसर तथा अन्य कई पुलिसियों को घायल कर दिया। लगभग आध घण्टे तक दोनों ओर से गोलियों की वर्षा होती रही। अन्तिम गोली आजाद ने अपनी कनपटी में मार ली और आहत होकर भूमि पर गिर गया। गिरने के बाद भी पुलिस आजाद के पास जाने से डरती थी। यहां तक कि आजाद के भूमि पर गिरने के बाद भी उन पर गोलियाँ चलाती रही। जब पूर्णतः निश्चय हो गया कि आजाद अब निष्प्राण हैं तब पुलिस को उनके समीप जाने का साहस हुआ।

इस प्रकार इस संसार से वह जलता दीपक एक दम बुझ गया। इस वीर की एक-एक घटना रोमाञ्चकारी है। इन को पकड़ने के लिए अंग्रेज सरकार ने १००००) का इनाम घोषित कर रखा था।

खुफिया पुलिस इनके पीछे सदा लगी रहती थी। काशी का कोना-कोना छान मारा किन्तु आजाद को पुलिस पकड़ न सकी। जब आजाद की लाश उठाली गई उस समय उनके खून से लथपथ मिट्टी को भी लोगों ने नहीं छोड़ा जिसे जितनी मिली ले गया। इनका शव जनता को नहीं दिया। इस लिये उनकी अस्थियों का बड़ा भारी जुलूस निकाला। पुरुषोत्तमदास पार्क में एक विराट् सभा हुई। जिस में बड़े-बड़े नेताओं के व्याख्यान हुये। इस प्रकार इस वीर का जीवन भारत को परतन्त्रता के पाशों से मुक्त करने में ही काम आया।

अमर शहीद सेनानी आजाद

(रामस्वरूप शर्मा)

कुछ नाटा, हृष्ट पुष्ट, गोल और उभरा हुआ चेहरा, उज्ज्वल एवं शुभ्र ललाट, पूर्ण बलिष्ठ, रंग सांवला, मुंह पर चेचक का दाग, फिर भी अनोखा ओज, आंखें बड़ी और साफ, मूंछें चढ़ी एवं ऐंठी हुईं, मानो फांदता हुआ शेर ताव दे रहा हो। ऐसा वीर पुंगव स्वर्गीय श्री चन्द्रशेखर आजाद ! जिसके नेतृत्व में दल ही क्यों देश के युवक आगे बढ़ रहे थे, प्राणों की बाजी लगा रहे थे। वह हिन्दुस्तान समाजवादी, प्रजातन्त्र सेना का सफल सेना नायक आज हमारे बीच में नहीं है किन्तु उसकी स्मृति, कृतियां एवं आहुतियां जन मन में सदा गूंजती रहेंगी। वे भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम के तेजोमय विभूतियों में से थे। देश को दासत्व एवं बहुमुखी शोषणों से मुक्त करने के लिए इन हुतात्माओं के नेतृत्व में जो जो प्रयास हुए थे वे किसी भी देश के इतिहास के लिए गौरव की वस्तु हो सकती है। हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना की बम फैक्टरी पर पुलिस के धावे, जयगोपाल की गिरफ्तारी एवं उसके मुखविर बन जाने के बाद क्रान्तिकारियों की जबरदस्त धर पकड़ हुई। सारे भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा आतंक फैलाया जा रहा था। जब सारा दल छिन्न-भिन्न हो रहा था उस समय वही था जो अजेय चट्टान की तरह दल के कार्यों में संलग्न हो बढ़ता जा रहा था। यद्यपि उन क्रान्तिकारियों का मार्ग सफल नहीं हुआ, १९१५ का विद्रोह पहले ही दबा दिया जा चुका था। यदि सफलता मिल गई होती तो भारत का रूप आज कुछ दूसरा ही होता तथापि असफलताओं के बावजूद देश प्रेम से प्रेरित हो जिस आत्मत्याग एवं शौर्य का परिचय उन बहादुरों ने दिया था वह जन मन में श्रद्धा एवं समादर का स्थान सदा बनाये रहेगा।

साधारण पढ़ा-लिखा किन्तु पूर्ण अनुभवी और ज्ञानी फिर भी अहंकार से परे नर नाहर आजाद अपनी धुन में मस्त थे। वे सदा व्यक्ति से दल को अधिक प्रमुखता देते थे। वस्तुतः उस सेनानी ने दिखा दिया था कि अक्षर-ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान नहीं है बल्कि विद्या कुछ और वस्तु है। सेनापति केवल योग्यता से ही नहीं बल्कि विश्वास से भी होता है। बिना विश्वास के सफलता नहीं मिल सकती। भाड़े की सेना के लिए भाड़े के टट्टू सेनानी सम्भव हैं किन्तु स्वेच्छया समाज एवँ राष्ट्र के लिए बलिदानियों की सेना का सेनानी चुना जाना ही दल के प्रति एकान्त निष्ठा एवं कर्मण्यता का परिचायक है। निर्भीक व दुस्साहसी, जैसा कई व्यक्तियों ने उनके बारे में लिखा है, ही नहीं थे बल्कि सूझ-समझ एवं रणकौशल में भी पूर्ण पारंगत थे। सरदार भगतसिंह को जेल से निकालने के प्रयास में जेल फाटक पर पहुंचना और स्थिति को भांप कर चुपचाप लौट जाने का संकेत इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वे पूर्ण प्रगतिशील थे और

यदि आज जीवित होते तो रूढ़िवाद और प्रतिक्रियावाद के समर्थन की आशा उनसे कभी नहीं की जा सकती थी। वह फौलाद था झुकना जानता ही नहीं था। शेर की तरह रहा और शेर की तरह गया भी। उन्होंने पहले ही कहा था कि जब कभी घिर जाऊँगा, लड़ूंगा ही, किन्तु अन्तिम गोली बचा लूँगा। हुआ भी वही। इलाहाबाद के अल्फरेड पार्क में वह शहीद हुआ। वह पार्क अभी भी अल्फरेड पार्क है, जनता भले ही आजाद पार्क घोषित करे किन्तु नाम अल्फरेड पार्क बना ही हुआ है। समाधि एवं स्मारक बनाना तो दूर स्वतन्त्र भारत सरकार ने पार्क का नाम अभी तक भी आजाद पार्क नहीं रखा है, पालिका ने भी कुछ नहीं किया। वस्तुतः यह हमारे लिए लज्जा की बात है।

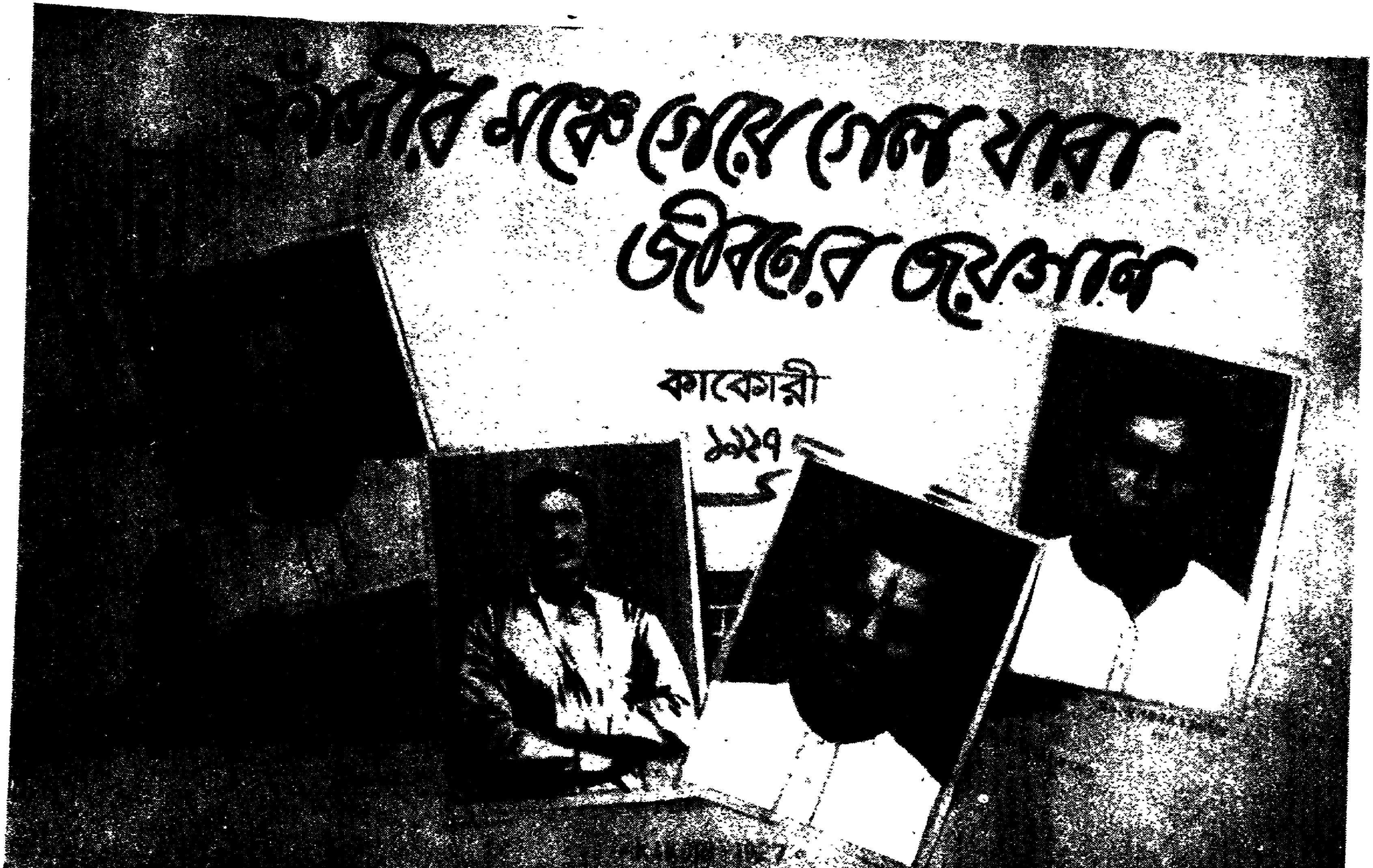
आजाद का जन्म अलीपुर राज्य के भांवरा नामक एक छोटे गांव में सन् १९०६ ई० में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री सीताराम तिवारी था। बचपन में आजाद बहुत ही उग्र थे। निराला स्वभाव था। सर कट तो कट जाय किन्तु झुकने की उनकी प्रवृति नहीं थी। १९२१ ई० के असहयोग में वे कूद पड़े और बारह बेंत की सजा भी बनारस जेल में भुगतनी पड़ी थी। लेकिन इससे उन्हें असन्तोष हुआ और वे आतंकवादियों के गिरोह में शामिल हो गए। काकोरी षड्यन्त्र सरकार को आजाद की चुनौती थी और उसी समय से वे फरार जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्हें देश की प्रतिष्ठा का पूरा ध्यान था। स्वर्गीय पंजाब केसरी लाला लाजपत राय की मृत्यु के कारण साउण्डर्स को स्वर्गीय वीर भगतसिंह के साथ गोली के घाट उतार चम्पत होने में उन्होंने कमाल कर दिखाया। वे एक कर्मठ सैनिक थे। वीरता, निर्भीकता और निशाने में सर्वोत्कृष्ट थे। किन्तु २८ फरवरी १९३१ को इलाहाबाद के आल्फरेड पार्क में वह सच्चा देश सेवक स्वाधीनता की बलिवेदी पर सदा के लिये सो गया। उनका बलिदान हमेशा हमें त्याग और बलिदान की प्रेरणा देता रहेगा, यह निश्चित है।

काकोरी केस के जीवित हुतात्मा—



खड़े हुए—१ श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल, २ श्री मन्मथनाथ गुप्त—
बैठे हुए—१ श्री योगेश चटर्जी एम० पी०, श्री विष्णुशरण दुबलिस एम०पी०

काकोरी केस के चार अमर शहीद—



१ श्री रोशनसिंह, २ श्री अशफ़ाक उल्ला, ३ श्री रामप्रसाद बिसमिल, ४ राजेन्द्र लाहिड़ी

काकोरी के अमर शहीद, क्रान्तिकारी नेता—

पं० रामप्रसाद बिस्मिल

(ब्र० यशःपाल)

ग्वालियर राज्य में तोमर घाट में चम्बल नदी के किनारे शाहजहांपुरा ग्राम विद्यमान है। उस ग्राम में मुरलीधर नाम का एक व्यक्ति रहता था. मुरलीधर के घर में ज्येष्ठ शुक्ल ११ सम्बत् १९५४ में एक बालक ने जन्म लिया, उस बालक का नाम "रामप्रसाद' रखा गया। आपके घर की अवस्था अच्छी नहीं थी। पिता जी बड़े डील डौल के थे, जब आठ वर्ष के हुए तब आपको पिता जी ने हिन्दी के सामन्य अक्षरों का ज्ञान कराया, उर्दू पढ़ाने के लिये एक मौलवी साहब के पास भेजते थे। बालकपन से गाय पालने का बहुत शौक था। बाल्यकाल में बहुत उद्दण्ड थे, पिता जी दण्ड दिया करते थे, परन्तु उद्दण्डता नहीं छोड़ते थे, थोड़े दिन के बाद पैसों की चोरी भी करने लग गये, तथा उपन्यास ग्रन्थ उन पैसों से खरीद-खरीद कर पढ़ा करते थे, शराब भी पीने लग गये। एक दिन की बात है कि शराब पीकर सन्दूक से पैसे निकाल रहे थे, बेहोशी के कारण ट्रंक की आवाज हो गई। आपकी माता जी ने उस आवाज को सुन लिया, उस दिन आप चोरी करते हुए पकड़े गये, और बहुत से रुपये प्राप्त हुए तथा उपन्यासों की पुस्तकें। उस दिन आपको बहुत दण्ड दिया गया।

एक दिन आपके गांव में आर्य समाज के प्रसिद्ध स्वामी सोमदेव जी आये। उनके पास आपका आना जाना होने लगा। आपके जीवन ने पलटा खाया, आप आर्य समाजी बन गये और ब्रह्मचर्य का पालन करने लगे। कुछ दिनों में आपने सब दुर्व्यसनों को छोड़ दिया। महात्मा, संन्यासियों के उपदेश रुचि से सुनने लग गये। इससे देश सेवा का भाव मन में उत्पन्न हो गया, और देश सेवा का व्रत ले लिया, तब से शरीर को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न करने लग गये। प्रति दिन नियम पूर्वक व्यायाम, यज्ञ करते थे, इसके फलस्वरूप आप थोड़े ही दिनों में असाधारण शक्ति शाली हो गये। घोड़ा, साइकिल, तैरने आदि में बड़े निपुण थे। और साठ-साठ मील पैदल चले जाते थे, तब भी हिम्मत न हारते थे, व्यायाम और प्राणायाम इतना करते थे कि देखने वाले दंग रह जाते थे। और व्याख्यान बहुत जोशीला दिया करते थे। जब आप अंग्रेजी की नवीं कक्षा में पढ़ते थे तब कुछ स्वदेशी पुस्तकों का अवलोकन किया, उससे स्वदेश प्रेम उत्पन्न हुआ। शाहजहांपुरा में सेवा समिति की नींव पं० श्रीराम बाजपेयी जी ने डाली। उसमें ये बड़े उत्साह से काम करते थे, आपके हृदय में दूसरों के प्रति सेवा का भाव उत्पन्न हुआ, समझने लग गये, कि वास्तव में देशवासी बड़े दुखी हैं, उसी वर्ष अ० भा० कांग्रेस का उत्सव था, ये भी उसमें सम्मिलित हुए। उसमें निश्चय हुआ कि देश के लिये विशेष कार्य होना चाहिये। भारतवासियों के दुःख तथा दुर्दशा की जिम्मेवारी गवर्नमेंट पर है। अतएव सरकार को पलटना चाहिये, आपने भी इन विचारों का अनुमोदन किया। कांग्रेस के उत्सव में महात्मा तिलक के पधारने की खबर थीं, इस कारण गर्म दल के व्यक्ति भी आये हुए थे। कांग्रेस के सभापति का स्वागत बड़ी धूमधाम से हुआ। दूसरे दिन लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की स्पेशल गाड़ी आने का समाचार मिला, बहुत जनता वहां पर विद्यमान थीं। स्वागत कारिणी समिति के सदस्यों ने निश्चय किया कि शहर में उनकी सवारी न निकाली जाये,

जिसका कारण यह था कि वे जानते थे कि उनका स्वागत कांग्रेस के प्रधान से भी अधिक होगा, तब रामप्रसाद जी से तथा उनके साथियों से यह सहन न हो सका, सबने मिलकर निश्चय किया कि उनकी सवारी शहर में से निकाली जायेगी। जब वे स्टेशन पर आये तब उन्हें मोटर में बिठाकर शहर से बाहर ही ले जाना चाहते थे तो रामप्रसाद जी तथा उनके साथी गाड़ी के आगे लेट गये। बहुत कहने पर भी वे न माने, और भी मनुष्य गाड़ी के आगे लेट गये। एक युवक ने मोटर का टायर काट दिया और लोकमान्य तिलक को घोड़े की गाड़ी में बिठाकर हाथों से गाड़ी को खींचना शुरू किया। इस प्रकार लोकमान्य का स्वागत बड़ी धूम धाम से हुआ।

काँग्रेस के उत्सव के अवसर पर ज्ञात हुआ कि एक गुप्त समिति है जिसका मुख्य उद्देश्य क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेना है। इस बात को सुनकर आप उस समिति के सदस्य बन गये। रुपयों की समिति में आवश्यकता थी तो आपने एक पुस्तक प्रकाशित की, उससे धन प्राप्त किया। पुस्तकें सब बिकने भी न पाई थीं कि देशवासियों के लिये एक सन्देश प्रकाशित किया और सर्वत्र पर्चे बांट दिये गये, क्योंकि पं० गेंदालाल जी अपने दल के सहित ग्वालियर में गिरफ्तार हो गये थे। उनको छुड़ाना था। इसको देखकर सरकार ने पुस्तक जब्त कर ली।

आन्दोलन के लिये हथियार चाहियें, हथियारों के लिये रुपये,। अब चिन्ता हुई कि पैसे हथियार के लिये कहां से लाये जायें,। इधर उधर से पैसे बहुत कठिनता से प्राप्त किये तथा उनसे हथियार खरीदे। हथियार भी अच्छे नहीं मिले और पैसे भी अधिक आपसे ले लिये, क्योंकि हथियारों की आपको जानकारी नहीं थी।

एक दिन की बात है कि आपको एक खुफिया पुलिस ने आकर कहा कि आवो आपको मैं बहुत अच्छे हथियार दिलाऊं। उसके साथ चल पड़े, खुफिया पुलिस इन्स्पेक्टर के घर पकड़वाने के लिये ले गया, आपको शंका हुई कि यह कहां ले जाता है। जब इन्स्पेक्टर के घर के सामने पहुंचे उस समय इन्स्पेक्टर घर पर न थे, तब आपको किसी से पूछने पर पता चला कि यह घर तो इन्स्पेक्टर का है तब उससे आंख बचाकर चलते बने। फिर अपना रहने का स्थान बदला, तथा जिससे आप हथियार खरीदते थे उसका भी खुफिया पुलिस ने पता चला लिया। उस समय आप लोगों के पास दो राइफलें, चार रिवाल्वर तथा दो पिस्तौल खरीदे हुए मौजूद थे। उस दिन एक मनुष्य हथियार लेकर जाने वाला था। इस बात का खुफिया पुलिस को पता चल गया, उन्होंने सर्वत्र तार कर दिये तथा सारी रेलगाड़ी की तलाशी ली गई, उस दिन आप गिरफ्तार हो जाते परन्तु पुलिसियों की असावधानी के कारण बच गये।

इधर आप अपने काम में व्यस्त थे। मैनपुरी के सदस्य ने एक आदमी से रुपयों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये कहा कि आप किसी के यहाँ डाका डलवाओ, उसके मना करने पर, उसने मारने की धमकी दी। उसने पुलिस को सूचना दे दी, मामला खुल गया, मैनपुरी में गिरफ्तारियां आरम्भ हो गईं। उसमें आपके वारण्ट जारी हो गये। उन्हीं दिनों दिल्ली में कांग्रेस की बैठक होने वाली थी। आपने एक पुस्तक लिखी थी वह यू० पी० सरकार ने जब्त कर ली थी, वहां गये तथा पुस्तकें बेचीं, पुलिस को पता चलने पर पुस्तकें लेकर शाहजहांपुरा में आ गये, वहां पर भी पुलिस ने पकड़ना शुरू कर रखा था। शाहजहांपुर से चलकर दूसरे शहर में ठहरे। रात्रि के समय में मालिक ने बाहर से ताला डाल दिया। ग्यारह बजे आपका एक साथी आया। साथी को ताला देखकर सन्देह हो गया। वहां सबके सब दीवार के ऊपर से कूद

कर चल दिये । अंधेरी रात थी, आप सब थोड़ी दूर गये थे कि अकस्मात् एक आवाज आयी कि ठहरो, नहीं तो गोली मारते हैं । सबके सब खड़े हो गये, दरोगा तथा सिपाही बन्दूक हाथ में लिये आपके पास आ गये । आपसे पूछा कौन हो, और कहां जा रहे हो, आपने उत्तर दिया विद्यार्थी हैं, स्टेशन पर जा रहे हैं । दरोगा को शक हुआ क्यों कि गाड़ी पांच बजे आती थी, तब दो बजे थे । आप सब लोगों के चेहरे पर रौनक देखकर शक जाता रहा, अन्यथा सब उस दिन गिरफ्तार हो जाते ।

आप प्रयाग में धर्मशाला में निवास करते थे । वहां पर एक दिन संध्या कर रहे थे तो एक व्यक्ति ने आकर आपके ऊपर तीन वार किये, परन्तु आपको वार न लगे, वार करने वाला, पहले आपका दुश्मन था, परन्तु बीच में मित्रता हो गई थी, आपको इस बात को देखकर बहुत प्रसन्नता हुई कि दो गज के फासले से वार किया, परन्तु आपको न लगा । इसका विचार करके, गद्‌गद् होकर परमात्मा का स्मरण करने लग गये । प्रसन्नता में आपको मूर्च्छा आगई, यदि उस समय कोई पास होता तो मृत्युलोक को पहुंचा सकता था ।

आपको पता चला कि मैनपुरी में होने वाले षड्यन्त्र के सभी गिरफ्तार छोड़ दिये गये हैं और आपके भी वारण्ट वापिस ले लिये गये । तब आप शाहजहांपुरा में आ गये । घोषणा के पश्चात् पुलिस का बड़ा प्रकोप था, कोई मनुष्य आपस में नमस्ते तक न कर सकता था, बात की तो बात ही क्या ।

इसके पश्चात् आप खेती का काम करने लग गये । खेती आप बहुत अच्छी प्रकार से किया करते थे । काम को देखकर कोई कह नहीं सकता था कि यह शहर का रहने वाला है ।

जिनको आप आदर की दृष्टि से देखते थे उन्होंने आपको आकर कहा कि फिर क्रान्तिकारियों का संगठन करें परन्तु आपने मना कर दिया। साथियों के अधिक कहने पर स्वीकार कर लिया । आपको काम यह सौंपा कि दल की देख भाल करें । कुछ मनुष्य दल में खराब भी आ गये । एक ने अपने पास वेश्या ला रखी थी, उसकी ताड़ना की जिससे कि वह रूष्ट हो गया । तभी एक आदमी पकड़ा गया, उसने कईयों के नाम बता दिये, जिससे तीस चालीस दल के मनुष्य पकड़े गये । इसी बीच में कुछ महानुभावों ने कुछ नियमादि बनाकर दिखाये, उसमें एक यह भी नियम था कि जो व्यक्ति समिति का काम करे उसे मासिक व्यय समिति की ओर से दिया जाय । आपने इस नियम को अनिवार्य रूप से मानना अस्वीकार कर दिया । आप यहां तक सहमत थे कि जो व्यक्ति सर्वप्रकारेण समिति का काम करे उसको गुजारा मात्र समिति की ओर से दिया जा सकता है । जो व्यक्ति कोई व्यवसाय करते हैं उनको कुछ भी समिति की ओर से न दिया जाये । जब आपने उनके विपरीत नियम न माने तब आपको मारने का षड्यन्त्र रचा गया । आपको वे मार देते परन्तु एक के हृदय में दया आगई तथा आपके पास आकर मारने के षड्यन्त्र का ज्ञान कराया । उससे आप सतर्क हो गये । आपको इस बात को सुनकर बड़ा दुःख हुआ कि जिनको मैं पिता के समान मानता हूँ वे मेरे साथ कैसा षड्यन्त्र कर रहे हैं । आपको मारने में मुख्य तीन आदमी थे ।

फिर आप आकर नोकरी करने लग गये, क्योंकि माता-पिता को धन की बड़ी आवश्यकता थी । थोड़े ही दिन में आपने पिता जी को धन की कमी न रहने दी । फिर आपको पता चला कि संयुक्त प्रान्त में क्रान्ति आरम्भ हो गई है, आप पहले निश्चय कर चुके थे कि मैं क्रान्ति में भाग न लूंगा, परन्तु दिल की आग ने आपको निश्चल न बैठने दिया । आपने फिर एक क्रान्तिकारियों का संगठन बनाया,

बहुत आपत्तियाँ आईं, कभी कभी तो यहां तक कि रोटी भी न प्राप्त हुई। रुपयों की बहुत आवश्यकता थी, रुपया कहीं से मिलता न था तो फिर विचार आया कि डकैती की जाय, किसी एक व्यक्ति को दुःख न दिया जाय, अतः सरकारी खजाने पर डकैती की जाये।

उसी समय से आपके अन्दर यह धुन सवार हो गई। डकैती का समय तथा स्थान निश्चित किया, ९ अगस्त १९२५ ई० को सन्ध्या के आठ बजे की गाड़ी में दस नवयुवक बैठ गये। गाड़ी हरदोई से लखनऊ जा रही थी। एकाएक काकोरी तथा आलमनगर के बीच में ५२ नम्बर खम्बे के पास दूसरे दर्जे से जंजीर खेंची गई, गाड़ी खड़ी हो गई। एक दस दश नवयुवक उतरे और सबको कह दिया कि कोई मुसाफिर गाड़ी से न उतरे, जो हम सरकारी खजाना लूटेंगे, किसी यात्री को कोई कुछ न कहेगा। दो मनुष्य गाड़ी के दोनों तरफ पहरा देने लग गये, जिससे कोई गाड़ी से न उतरे। साथ साथ थोड़ी थोड़ी देर में गोली चलती थी, इधर गार्ड को पिस्तोल दिखाकर कह दिया कि जमीन पर सीधा लेट जा। तिजोरी बाहर निकाली गई, तिजारी पर घन मारा परन्तु टूटी नहीं। अन्त में अशफाक ने बहुत परिश्रम से उस तिजोरी को तोड़ा, इसी बीच में एक मनुष्य गाड़ी से उतर कर दूसरे डिब्बे में जा रहा था, तो वह गोली का शिकार हो गया। लगभग आध घण्टे के बाद में ये दस मनुष्य धन लेकर चले गये। उस डकैती में बहुत धन प्राप्त हुआ, सारा कर्जा चुका दिया तथा हथियार भी मोल ले लिये, काम अब अति तीव्र वेग से चलने लगा। २५ दिसम्बर को गिरफ्तारियाँ प्रारम्भ हो गईं, २५ दिसम्बर की रात्रि को आप एक मित्र के यहां जा रहे थे, रास्ते में खुफिया पुलिस का सिपाही मिला। आपने उसकी कोई चिन्ता न की, रात्रि को निश्चित होकर सो गये। प्रातःकाल चार बजे शौचादि क्रिया के लिये जा रहे थे, दरवाजे पर बन्दूक के शब्द सुनाई दिये। तभी आप समझ गये कि पुलिस आ गई, दरवाजा खोल दिया, पुलिस अफसर ने आकर आपको गिरफ्तार कर लिया। तलाशी ली गई, दुर्भाग्यवश एक पत्र भी प्राप्त हो गया, जेल में भेज दिये गये, वहां पर ही खुफिया पुलिस का प्रबन्ध कर दिया गया, आपको चिन्ता इस बात की थी कि कभी क्रान्ति कम न हो जाये, जब कोई मिलने आता था तब आप पूछते थे कि काम ठीक चल रहा है या नहीं? जेल के अन्दर आपके पास खुफिया पुलिस आती थी, और आपसे इधर उधर की बातें पूछती थी, परन्तु आपने किसी का कोई परिचय नहीं दिया, एक दिन आपसे जिला कलेक्टर मिले, कहने लगे फाँसी होगी, बचना है तो बयान दे दो। आप उस समय चुप रहे। तत्पश्चात् बात करते करते कहा 'यदि बंगाल का कुछ परिचय देकर बयान दे दो तो आपको थोड़ी सी सजा कर देंगे, तथा १५०००) पारितोषिक दिया जावेगा'। परन्तु कुछ न बताया। इसी प्रकार बहुत बार आये परन्तु परेशान होकर चले जाते थे। मुकद्दमा चला, मुकद्दमे में पैसों की आवश्यकता थी, पैसों की बहुत कमी थी, और न ही कोई गवाह बना। उधर पुलिस की अफसर अत्यधिक सहायता करते थे। अन्त में १९ दिसम्बर १९२७ को फांसी की आज्ञा सुना दी गई। बहुत प्रयत्न किये गये परन्तु फांसी न हटी, ।

फांसी से पहले माता पिता तथा उनका छोटा भाई मिलने के लिये गये, माता जी को देखकर बिस्मिल की आंखों में आंसू आ गये। उस समय माता के कहे वे शब्द ध्यान रखने योग्य हैं, ऐसी ही माता इस संसार में हीरा उत्पन्न करके संसार को स्वतन्त्र बनाती हैं। "मैं तो समझती थी तुमने अपने ऊपर विजय पाई है किन्तु यहां तो तुम्हारी कुछ और ही दशा है। जीवन पर्यन्त देश के लिये आंसू बहाकर अब अन्तिम समय में तुम मेरे लिये रोने बैठे हो, इस कायरता से क्या होगा, तुम्हें वीर की भान्ति हंसते हुए प्राण देते देखकर मैं अपने आपको धन्य समझूंगी। मुझे गर्व है कि इस गए बीते जमाने में मेरा पुत्र

देश की वेदी पर प्राण दे रहा है। मेरा काम तुम्हें पाल कर बड़ा करना था इसके बाद तुम देश की चीज थे और उसी के काम आ गए। मुझे इसमें तनिक भी दुःख नहीं है।" उत्तर में कहा 'माता जी तुम तो मेरे हृदय को भली भांति जानती हो। क्या तुम समझती हो कि मैं तुम्हारे लिये रो रहा हूं। अथवा इसलिये रो रहा हूं कि मुझे कल फांसी हो जायेगी। यदि ऐसा है तो मैं कहूँगा कि तुमने जननी होकर भी मुझे समझ न पाया, मुझे अपनी मृत्यु का तनिक भी दुःख नहीं है। हां यदि घी को आग के पास लाया जायेगा तो उसका पिघलना स्वाभाविक है। बस उसी प्राकृतिक सम्बन्ध से दो चार आंसू आ गए। आपको मैं विश्वास दिलाता हूं कि अपनी मृत्यु से बहुत सन्तुष्ट हूं। इन बातों को सुनकर जेल के सब मनुष्य दंग रह गये।

१९ दिसम्बर को प्रातःकाल ६॥ बजे फांसी है, उसी दिन प्रातःकाल तीन बजे उठते हैं। शौच स्नान आदि नित्य कर्म करके यज्ञ करते हैं, फिर ईश्वर स्तुति करके फाँसी के तख्ते पर यह कहते हुए लटक जाते हैं कि मैं ब्रिटिश साम्राज्य का नाश चाहता हूँ।

देश भक्त—

अशफाक उल्ला खां

(ब्र० यशःपाल)

अशफाक उल्ला खां का जन्म शाहजहांपुर में हुआ था। इनका खानदान वहाँ के प्रसिद्ध रईसों में से था। ये बचपन से ही खेल, कूद, कुश्ती आदि में बहुत रुचि रखते थे। इनका शरीर लम्बा चौड़ा था। चेहरे पर रोब था। तैरना, घोड़े की सवारी तथा शिकार आदि खेलने में ये सिद्ध हस्त थे। आप जन्म से मुसलमान थे, परन्तु आप मुसलमान और हिन्दुओं में कोई भेद नहीं समझते थे। सबको यही कहा करते थे कि हम सब एक ही परमेश्वर के पुत्र हैं, फिर हिन्दू, मुसलमान आदि में भेद क्या है ? यह आपने अपने आचरण से भी स्पष्ट कर दिखलाया। आप बचपन में कविता बड़ी सुन्दर बनाते थे, तथा गाया करते थे। बचपन में आप देश के अन्दर अत्याचारों को देखकर बहुत ही सोच विचार किया करते थे। इन्हीं विचारों के कारण आपके मन के अन्दर क्रान्ति की भावना उत्पन्न हुई। आप क्रान्तिकारी दल के सदस्य बन गये। इसी समय मैनपुरी षड्यन्त्र में शाहजहाँपुरा के निवासी रामप्रसाद "बिस्मिल" के वारण्ट हो गये। इस बात को सुनकर आप बहुत प्रसन्न हुये कि मेरे विचारों वाला एक व्यक्ति शाहजहांपुरा में है। उनसे मिलने के लिये आपने बहुत प्रयत्न किये, किन्तु वारण्ट होने के कारण उससे न मिल सके। जब उनके वारण्ट समाप्त हो गये तब उनसे मिलने के लिये गये। पहले रामप्रसाद जी ने निषेध कर दिया, परन्तु उनके आग्रह को देखकर इन्हें अपना साथी बना लिया। रामप्रसाद जी के साथ रहने के कारण आपके सम्बन्धी कहा करते थे कि "तू काफिर हो गया है।" इसका ये किञ्चिन्मात्र भी विचार नहीं करते थे।

अशफाक उल्ला खां के सामने आर्य समाज मन्दिर तथा मस्जिद एक समान थे। शाहजहांपुरा में एक बार हिन्दू तथा मुसलमानों का झगड़ा हो गया। सारे शहर में मार पीट शुरू हो गई, उस समय में आप बिस्मिल जी से आर्य समाज मन्दिर में बात कर रहे थे। कुछ मुसलमान मन्दिर के पास

आ गये और आक्रमण करने के लिये तैयार हो गये। आपने अपना पिस्तौल लिया और आर्य समाज मन्दिर के सामने आकर मुसलमानों से कहने लगे, कि मैं कट्टर मुसलमान हूं परन्तु इस मन्दिर की मुझे एक एक ईंट प्राणों से प्यारी है। मेरे सामने मन्दिर तथा मस्जिद एक समान हैं। यदि किसी ने दृष्टि-पात किया तो गोली का निशाना बनना पड़ेगा। यदि तुमको लड़ना है तो दूर जाकर लड़ो। उनकी इस सिंह गर्जना को सुनकर सब मुसलमानों के होश गुम हो गये।

आप तथा विस्मिल जी दोनों में गूढ़ मित्रता थी। एक दूसरे को प्राणों से प्यारा समझते थे। एक दिन की बात है कि अशफाक जी को दौरा आ गया। उस समय "राम" "राम" "राम" कह रहे थे। घर वाले न समझ पाये कि राम क्या है ? उसी समय एक ने कहा, "राम" रामप्रसाद विस्मिल है। ये दोनों आपस में राम, कृष्ण कहते हैं। विस्मिल जी आये तब कहा आ गये "राम"। इतने में दौरा समाप्त हो गया।

काकोरी षड्यन्त्र के अन्दर आप शामिल थे। जब रेल रोकी गई, तब आपको तथा आजाद को यह काम सौंपा गया कि कोई मनुष्य रेल से नहीं उतरे, यदि कोई उतरे तो गोली से मार दिया जाय। रेल से तजूरी निकाली गई परन्तु किसी से उसका ताला नहीं टूटा। फिर आपने आकर उसका ताला तोड़ा। उस षड्यन्त्र में बहुत व्यक्तियों के वारण्ट हो गये। और साथ साथ आपके भी वारण्ट हुये। इससे आप फरार हो गये।

उस समय में आपको बहुतों ने कहा कि आप दूसरे देशों में चले जायें, किन्तु आपने उत्तर दिया "काम तो मेरा यहां है मैं दूसरे देशों में जाकर क्या करूंगा।" अन्त में आप ८ दिसम्बर १९२६ में दिल्ली में पकड़े गये। गिरफ्तार करके लखनऊ में लाये गये। अदालत में पहुँचने पर स्पेशल मैजिस्ट्रेट सैयद अईनुद्दीन ने पूछा—"आपने मुझे कभी पहले देखा है।" आपने कहा "मैं तो आपको बहुत दिनों से देख रहा हूँ जब से काकोरी षड्यन्त्र का मुकदमा आपकी अदालत में चल रहा था तब से मैं आपको कई बार देख चुका हूँ। जब पूछा कि मैं कहां बैठता था ? उत्तर दिया साधारण मनुष्यों के बीच में राजपूत वेश में बैठा करते थे।

एक दिन सुपरिन्टेन्डेन्ट खां साहब ने कहा "देखो अशफाक ! तुम मुसलमान हो और हम भी मुसलमान हैं। हमें तुम्हारी गिरफ्तारी से बहुत दुःख है, रामप्रसाद आदि हिन्दू हैं, इनका उद्देश्य हिन्दू राज्य स्थापन करना है। तुम पढ़े लिखे खानदानी मुसलमान हो। तुम कैसे इन काफिरों के चक्कर में आ गये।" यह सुनते ही अशफाक जी की आंखें लाल हो गईं और तीव्र स्वर से कहा। "बहुत हुआ। खबरदार ऐसी बात फिर कभी न कहियेगा।" असल में रामप्रसाद जी आदि सच्चे हिन्दुस्तानी हैं। और आप जैसा कहते हैं अगर यह सत्य है तो भी मैं अंग्रेजी राज्य से हिन्दू राज्य अधिक पसन्द करता हूँ। आपने जो रामप्रसाद जी को काफिर कहा है उसके लिये मैं आपको इस शर्त पर छोड़ता हूँ कि आप मेरे सामने से चले जायें।" सुपरिनटेन्डेन्ट साहब नीचा मुंह करके चले गये।

अदालत में दर्शक और कर्मचारी आपका निद्वन्द्वता पूर्ण व्यवहार देखकर दंग रह गये। फाँसी का तख्ता सिर पर झूल रहा था, परन्तु उन्हें कुछ भी परवाह न थी। अन्त में फैसला सुनाया गया। इन पर पांच अभियोग लगे थे, तीन में फांसी और दो में काला-पानी की सजा हुई थी। अदालत में आपको विस्मिल का लेफ्टीनेन्ट कहा गया था।"

इसके बाद अपील की, किन्तु सभी प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुये और फांसी देना निश्चित हो गया।

फाँसी की बात सुनकर आपको किंचिन्मात्र भी दुःख अनुभव न हुआ। आप मुकदमा समाप्त होते ही फैजाबाद जेल में भेज दिये गये। वहां पर कुछ साथी उनसे मिलने के लिये आये, तब आप कुछ दुर्बल हो गये थे, उनके मित्रों ने उनको देखकर आश्चर्य किया, तब आपने उत्तर दिया कि आप समझते होंगे कि काल कोठरियों ने मुझे दुबला कर दिया परन्तु बात ऐसी नहीं है। मैं आजकल बहुत कम खाता हूं और ईश्वर की भक्ति करता हूं। कम खाने से परमेश्वर की भक्ति में ज्यादा ध्यान लगता है।

फांसी से एक दिन पहले कुछ साथी उनसे मिलने के लिये आये। उसी दिन उनको पुराने कपड़े मिले थे, उन्हें धोकर पहने तथा पैरों में जूता पहना, उबटन लगाकर स्नान किया। बाल कुछ लम्बे थे उनको साफ करके, फिर प्रसन्नता के साथ मित्रों से मिलने के लिये गये। मित्रों से कहा आज मेरी शादी है, दूसरे दिन प्रातः ६।। बजे फाँसी होनी थी।

फांसी से एक दिन पहले उन्होंने एक पत्र देशवासियों को लिखा था वह इस प्रकारहै "भारतमाता के रंग मञ्च का अपना पार्ट अब हम अदा कर चुके हैं। हमने गलत या सही जो कुछ किया, वह स्वतन्त्रता प्राप्ति की भावना से किया। हमारे इस काम की कोई निन्दा करेंगे और कुछ प्रशंसा करेंगे, क्रान्तिकारी बड़े वीर होते हैं, वे सदा अपने देश के लिये भलाई सोचते हैं। मनुष्य कहते हैं, कि हम देश को भयत्रस्त करते हैं, किन्तु यह बात गलत है। इतने लम्बे समय तक मुकदमा चला परन्तु हमने किसी एक गवाह तक को भयत्रस्त करने की चेष्टा न की, न किसी मुखबिर को गोली मारी। हम चाहते तो किसी खुफिया पुलिस के अधिकारी या अन्य किसी आदमी को मार सकते थे। किन्तु यह हमारा उद्देश्य नहीं था। हम तो कन्हाईलाल दत्त, खुदीराम बोस, गोपी मोहन साहा आदि की स्मृति में फांसी पर चढ़ जाना चाहते थे।

भारतवासी भाईयो! आप कोई हों। चाहे जिस धर्म या सम्प्रदाय के अनुयायी हों। परन्तु आप देश हित के कामों में एक होकर योग दीजिये। आप लोग व्यर्थ में झगड़ रहे हैं। सब धर्म एक हैं। रास्ते चाहे भिन्न-भिन्न हों, परन्तु लक्ष्य सबका एक है। फिर झगड़ा बखेड़ा क्यों ? हम मरने वाले काकोरी अभियुक्तों के लिये आप लोग एक हो जाइये। और सब मिलकर नौकरशाही का मुकाबला कीजिये। यह सोचकर कि ७ करोड़ मुसलमान भारतवर्ष में हैं। सबसे पहला मुसलमान मैं हूं जो भारत की स्वतन्त्रता के लिये फाँसी पर चढ़ रहा हूं। मन ही मन में अभिमान का अनुभव कर रहा हूं किन्तु मैं यह विश्वास दिलाता हूं कि मैं हत्यारा नहीं, जैसा कि मुझे साबित किया गया है।"

ऐसा कहकर ६।। बजे प्रातःकाल अशफाक उल्ला खां फाँसी के तख्तेपर चढ़कर परलोक सिधार गये। फांसी के बाद उनके सम्बन्धी शव को प्राप्त करना चाहते थे। पहले तो निषेध कर दिया, किन्तु अधिक कहने पर उनका शव रिश्तेदारों को दे दिया गया। शाहजहांपुरा ले जाते समय जब शव लखनऊ पहुंचा तब कुछ मनुष्यों ने उनके दर्शन किये, उनका कहना है कि फांसी के १० घण्टे बाद भी उनके चेहरे पर रौनक थी तथा मधुरता थी, केवल आंखों के नीचे कुछ पीलापन था।

अमर शहीद ठा० रोशनसिंह

(ब्र० वेदपाल)

ठा० रोशनसिंह जी शाहजहाँपुर जिले के नवादा नामक ग्राम के निवासी थे। आपके पिता अत्यन्त धनवान् थे। आपके पिता के दो पत्नियां थीं। इस ग्राम में प्रायः क्षत्रिय लोग ही रहते थे। यहाँ पर पढ़ने लिखने का रीति रिवाज अत्यल्प था, इसी लिये आपको बाल्यकाल में ही पिता जी ने तलवार आदि के चलाने में खूब अभ्यस्त बना दिया था। बन्दूक चलाने में तो आप अत्यधिक निष्णात थे। आप मल्लयुद्ध भी करते थे, इसीलिये काकोरी षड्यन्त्र में आप सबसे बलिष्ठ थे। आगे चलकर इन्होंने हिन्दी, उर्दू, बंगला और थोड़ी बहुत अंग्रेजी भी सीखी थी। इनके विचार आर्य समाजी थे। व्यायाम नियम पूर्वक प्रतिदिन किया करते थें। धैर्य का तो मानो ये समुद्र थे। जिस समय ये जेल में थे उस समय इनके पिता जी का देहान्त हो गया। इस समाचार को सुनकर भी ये अपने मार्ग से किंचिन्मात्र भी विचलित नहीं हुये। आँखों में आंसू तक भी नहीं आये। केवल दो तीन बार 'ओ३म् तत्सत्' कहा था।

असहयोग आन्दोलन के समय ही इन्होंने क्रान्तिकारी कार्य आरम्भ कर दिया था। और शाहजहांपुर एवं बरेली जिले के ग्रामों में घूम घूम कर ग्रामीणों में स्वराज्य का सन्देश सुनाते थे। इन्हीं दिनों बरेली में गोली चली। इसी सम्बन्ध में इन्हें दो साल की कड़ी सजा भुगतनी पड़ी। सजा के पश्चात् ये रामप्रसाद विस्मिल से मिले और क्रान्ति दल में प्रविष्ट हो गये। ये बहुत उत्साही वीर थे। फांसी के समय इनकी आयु ३६-३७ वर्ष के लगभग थी। काकोरी षड्यन्त्र में इनका पूरा हाथ था। इसी समय में गिरफ्तार हुये और लखनऊ जेल में इनको ले जाया गया। इनका सारा जीवन देश सेवा में ही व्यतीत हुआ। जेल में क्रान्तिकारियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं होता था इसलिये इन्होंने अनशन कर दिया। उस अनशन से भी इन्होंने पूरी वीरता के साथ काम किया। कभी भी दिनचर्या में अदल बदल नहीं हुई, नियमित रूप से कार्य करते थे। जिस किसी कार्य को एक बार उठा लिया उस पर हिमालय की तरह अडिग रहे। मामले की सम्पूर्ण कार्यवाही में इनके विरुद्ध कोई गवाही नहीं थी, फिर भी सेशन जज ने उन्हें फाँसी की सजा दे दी। इनको फांसी भी हो जायेगी यह वृत्त किसी को भी ज्ञात नहीं था। फांसी की सजा सुनकर भी इन्होंने ऐसे धैर्य और साहस का प्रदर्शन किया जिसे देखकर सभी आश्चर्यान्वित हो गये। फांसी के एक सप्ताह पूर्व इन्होंने अपने एक मित्र के पास पत्र लिखा था कि "आप मेरे लिये किसी प्रकार का शोक न करें। जो संसार में आया है उसे जाना अवश्य है। संसार में खराब काम करके अपने को बदनाम न करें। मरते समय ईश्वर को याद करें। मुझमें ये दोनों बातें विद्यमान हैं इसलिये मेरी मृत्यु किसी प्रकार के शोक के लिये नहीं है। जगत् की कष्टमयी यात्रा समाप्त करके मैं अब आराम करने जा रहा हूं। आप मेरी तरफ से निश्चिन्त रहें।

जिन्दगी जिन्दा दिली को जान ए रोशन।
वरना कितने मरे और पैदा हो जाते हैं॥

अन्तिम नमस्ते
आपका "रोशन"

फांसी के दिन रोशनसिंह पहले से ही तैयार थे। जब फांसी की आज्ञा हुई तो गीता हाथ में लेकर चल दिये। फांसी पर चढ़ते समय "वन्दे मातरम्" का गान तथा ओ३म् का उच्चारण करते हुए फांसी के तख्ते पर झूल गये। सरकार ने इनके शव का जुलूस नहीं निकालने दिया।

इस प्रकार इस वीर ने इस क्षणभंगुर संसार को त्याग दिया।

क्रान्तिकारी वीर श्री मन्मथनाथ गुप्त

(ब्र० वेदपाल)

श्री मन्मथनाथ जी का जन्म सन् १६०७ ई० में काशी में एक प्रतिष्ठित वद्य वंश में हुआ था। इन के पिता जी का नाम श्री वीरेश्वर दत्त था। इनके पितामह श्री आद्यनाथ गुप्त १८८० ई० में हुगली (बंगाल) से बनारस में आ बसे थे। आप ५ वर्ष की आयु में ही गणित में प्रवीण हो गये थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा स्कूल में न होकर आपके पिता जी की देख रेख में हुई थी। इसके बाद आपको संन्यास की दीक्षा देने की इच्छा से पढ़ने के लिए एक संन्यासी गुरु के पास भेज दिया गया। कुछ दिन पश्चात् आपका मन संस्कृत पढ़ने से हट गया। इसलिए आप वहाँ से आकर अपने पिता जी के पास रहने लगे। आपके पिता वीरट नगर (नैपाल) में हाई स्कूल के मुख्याध्यापक थे। यहां पर आप दो वर्ष तक रहे और फिर वहां से आने के कुछ दिन पश्चात् असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हो गया और आपको पिता जी ने गान्धी राष्ट्रीय विद्यालय काशी में प्रविष्ट करा दिया।

सन् १६२१ में युवराज भारत में आये थे। उनके बहिष्कार के लिए प्रत्येक स्थान पर हड़ताल आदि हुई। इसी सम्बन्ध में वहां के नेताओं के साथ नोटिस बांटते हुए आपको भी गिरफ्तार कर लिया गया और तीन मास का दंड मिला। इनके पिता जी ने इनको पहले से ही सूचित कर दिया था कि, "नोटिस बांट रहे हो इसलिए तुम्हें जेल जाना पड़ेगा।" इस समय इनकी आयु केवल १४ वर्ष की थी। आपके पिता जी ने कहा कि तुम अभी जेल की यन्त्रणाओं को सहन नहीं कर सकोगे। श्री मन्मथनाथ ने वीरता के साथ उत्तर दिया—'बाबू जी' मैं अपनी मातृ भूमि के लिए सब कुछ सहन करने के लिए तैयार हूं। यह आपके पिता जी की शिक्षा का ही प्रभाव था। जिससे आप इस प्रकार के वीर देशभक्त और सहिष्णु व्यक्ति बन सके।

इस मुकद्दमे में फंसने से पहले ही ये सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने लगे थे। इनके पिता जी ने देशभक्ति तथा सच्चरित्रता का बीज पूर्व ही बो दिया था। असहयोग आन्दोलन और काशी विद्यापीठ के राजनीतिक वातावरण ने देशभक्ति की भावना को सींच कर और भी हरा भरा बना दिया। तीन मास की सजा के पश्चात् ये महात्मा गांधी द्वारा सँस्थापित राष्ट्रिय संस्था काशी विद्यापीठ में फिर प्रविष्ट हो गये और वहां की विशारद (मैट्रिक) परीक्षा पास कर वहीं विद्यापीठ के कालिज में ही पढ़ने लगे।

सन् १६२३ ई० में इनकी भेंट एक बंगाल के सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी से हुई और बहुत वाद-विवाद के पश्चात् इनको निश्चय हुआ कि यदि देश का कल्याण हो सकता है तो इसी मार्ग से हो सकता है। तब ये क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गये।

काकोरी के षड्यन्त्र से बहुत पहले से ही पुलिस की नजर इन पर थी, इसलिए बराबर इनका पीछा किया जाता था। काकोरी षड्यन्त्र की गिरफ्तारी की निश्चित तारीख सन् १६२५ के २६ दिसम्बर को ये गिरफ्तार कर लिये गये। षड्यन्त्र के मुकद्दमे की सब बातों की इन्हें जानकारी नहीं थी। इस कारण इन्होंने यह सोच लिया था कि मुझे फांसी की सजा मिलेगी। यह सोच कर इन्होंने एक दिन अपने पिता जी से (जो कि जेल में इनसे मिलने आये थे) कहा—अब आप मुझे इस संसार में न समझिये। यह

कहते समय पिता के सामने ही इनकी आंखों में से आंसू आ गये। अपने वीर पुत्र के इस प्रकार आंसू देखकर वीर पिता ने कहा—"मैं अपने पुत्र की आंखों में आंसू देखना नहीं चाहता।"

काकोरी के अभियुक्तों में से एक को छोड़कर श्री मन्मथनाथ जी सबसे छोटे थे। इतना होते हुये भी ये बहुत ही गम्भीर थे। यह गम्भीरता उनके विशेष अध्ययन का ही फल थी। मुकदमे में आप मुख्य अपराधियों में समझे जाते थे। सरकार की दृष्टि में आप भयंकर व्यक्तियों में गिने जाते थे। यह ख्याल है कि आज से कई वर्ष पूर्व "यङ्ग इंडिया" में प्रकाशित कुछ लेख इन्हीं के लिखे हुये थे। इस पत्र के लेखो से राजनीतिक जगत् में एक सनसनी फैल गई थी। मुकदमे में सेशन जज ने आपको १४ वर्ष की कठोर सजा दी। पुलिस ने इसे कम जान कर अपील की, किन्तु इनके मामले में से मुँह की खानी पड़ी। सजा के पश्चात् ये श्री विष्णुशरण दुबलिस के साथ नैनी जेल में भेजे गये। वहां आपके साथ साधारण कैदी के समान व्यवहार किया गया। इसके विरोध के लिये आपने दल की आज्ञानुसार अनशन व्रत प्रारम्भ कर दिया। ४६ दिनों तक बराबर अनशन चलता रहा। इसके पश्चात् श्री गणेश विद्यार्थी ने बहुत आग्रह पूर्वक कह कर इनका अनशन व्रत तुड़वाया। इससे पहले भी आपने १५ दिन का अनशन किया था। जब आपका स्वास्थ्य कुछ ठीक हुआ तब कष्ट देने की इच्छा से अधिकारी आपको चक्की चलाने का कार्य देने लगे, किन्तु आपने स्पष्ट शब्दों में इसका प्रतिकार कर दिया। इस पर अधिकारी लोगों का पारा १०८ तक पहुँच गया और धमकी दी गई कि हम चक्की पिसवा कर छोड़ेंगे, किन्तु आप अपने निश्चय से टस से मस भी नहीं डिगे। इससे आपको सजा पर सजायें दी जाने लगीं, किन्तु सब निष्फल हुईं।

आपके मस्तिष्क में सोते जागते सदा एक ही विचार चक्र लगाता रहता था कि देश का उद्धार कैसे हो? बनारस से इन्होंने एक पत्र भी गुप्त रूप से निकाला था। जिसका नाम "अग्रदूत" था। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल इनको कहा करते थे कि—"परमात्मा इसे दीर्घजीवी करे।" हवालात में आप कहा करते कि "अगर मैं रामप्रसाद बिस्मिल वीर जैसे के सेनापतित्व में कुछ करूँ तो अपना सौभाग्य समझूँगा।" आपकी राजकुमार सिन्हा के साथ घनिष्ठ मित्रता थी। इनको अनेकों बार सजायें भुगतनी पड़ीं।

आज इस प्रकार के वीर भारत में बहुत ही कम हैं। आप बहुत ही उत्साही कार्यकर्ता थे। आप कष्टों से कभी भी नहीं घबराये।

फांसी से केवल तीन दिन पहले

(ले० स्व० पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल')

सर फरोशाने वतन फिर देखलो मकतल में है।
मुल्क पर कुर्बान हो जाने के अरमां दिल में हैं॥
तेग हैं जालिम की यारो और गला मजलूम का।
देख लेंगे हौसला कितना दिले कातिल में है॥
शोरे महशर बावपा है मार का है धूम का।
बलबले जोशे शहादत हर रगे 'बिस्मिल' में है॥

आज १६ दिसम्बर १९२७ ई० को निम्नलिखित पंक्तियों का उल्लेख कर रहा हूँ, जब कि १९ दिसम्बर १९२७ ई० सोमवार को ६॥ बजे प्रातःकाल इस शरीर को फांसी पर लटका देने की तिथि निश्चित हो चुकी है अतएव नियत समय पर यह लीला संवरण करनी होगी ही। यह सब सर्वशक्तिमान् प्रभु की लीला है। सब कार्य उसकी इच्छानुसार ही होते हैं। यह परमपिता परमात्मा के नियमों का परिणाम है कि किस प्रकार किस को शरीर त्यागना होता है। मृत्यु के सकल उपक्रम निमित्त मात्र हैं। जब तक कर्मक्षय नहीं होता, आत्मा को जन्म-मरण के बन्धन में पड़ना ही होता है यह शास्त्रों का निश्चय है। यद्यपि यह वह परब्रह्म ही जानता है कि किन कर्मों के परिणामस्वरूप कौनसा शरीर इस आत्मा को ग्रहण करना होगा, किन्तु अपने लिये यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि मैं उत्तम शरीर धारण कर नवीन शक्तियो सहित अति शीघ्र ही पुनः भारतवर्ष में ही किसी निकटवर्ती सम्बन्धी या इष्ट मित्र के गृह में जन्म ग्रहण करूंगा, क्योंकि मेरा जन्म-जन्मान्तर यही उद्देश्य रहेगा कि मनुष्यमात्र को सभी प्राकृतिक पदार्थों पर समानाधिकार प्राप्त हो। कोई किसी पर हकूमत न करे। सारे संसार में जनतन्त्र की स्थापना हो। वर्तमान समय में भारतवर्ष की बड़ी शोचनीय अवस्था है अतएव लगातार कई जन्म इस देशी में ग्रहण करने होंगे और जब तक कि भारतवर्ष के नर-नारी पूर्णतया सर्वरूपेण स्वतन्त्र न हो जावेंगे, परमात्मा से मेरी यही प्रार्थना होगी कि वह मुझे इसी देश में जन्म दे, ताकि मैं उसकी पवित्र वाणी 'वेदवाणी' का अनुपम घोष मनुष्यमात्र के कानों तक पहुंचाने में समर्थ हो सकूँ। सम्भव है कि मैं मार्गनिर्धारण में भूल करूँ, पर इसमें मेरा कोई विशेष दोष नहीं, क्योंकि मैं भी तो अल्पज्ञ जीवमात्र ही हूं, भूल न करना केवल सर्वज्ञ से ही सम्भव है। हमें परिस्थितियों के अनुसार ही सब कार्य करने पड़े और करने होंगे। परमात्मा अगले जन्म में सुबुद्धि प्रदान करे कि मैं जिस मार्ग का अनुसरण करूं वह त्रुटिरहित ही हो।

अब मैं उन बातों का भी उल्लेख करना उचित समझता हूं जो काकोरी षड्यन्त्र के अभियुक्तों के सम्बन्ध से सेशन जज के फैसला सुनाने के पश्चात् घटित हुईं। ६ अप्रैल सन् २७ ई० को अवध चीफ कोर्ट में अपील हुई। इसमें कुछ की सजायें बढ़ीं और एकाध को कम भी हुई। अपील होने की तारीख से पहले मैंने संयुक्त प्रान्त के गवर्नर की सेवा में एक मेमोरियल भेजा था। जिस में प्रतिज्ञा की थी कि अब भविष्य में क्रान्तिकारी दल से कोई सम्बन्ध न रखूंगा। इस मेमोरियल का जिक्र मैंने अपनी अन्तिम दया-प्रार्थनापत्र में जो मैंने चीफ कोर्ट के जजों को दिया था, उसमें कर दिया था। किन्तु चीफकोर्ट के जजों

ने मेरी किसी प्रकार की प्रार्थना न स्वीकार की। मैंने स्वयं ही जेल से अपने मुकद्दमे की बहस लिख कर भेजी, जो छापी गई। जब यह बहस चीफकोर्ट के जजों ने सुनी तो उन्हें बड़ा सन्देह हुआ, कि यह बहस मेरी लिखी हुई न थी। इन तमाम बातों का यह नतीजा निकला कि चीफकोर्ट अवध से मुझे महाभयंकर षड्यन्त्रकारी की पदवी दी गई। मेरे पश्चाताप पर जजों को विश्वास न हुआ और उन्होंने अपनी धारणा का प्रकाश इस प्रकार दिया कि यदि रामप्रसाद छूट गया तो फिर वही कार्य करेगा। बुद्धि की प्रखरता तथा समझ पर कुछ प्रकाश डालते हुए 'निर्दयी हत्यारे' के नाम से विभूषित किया गया। लेखनी उनके हाथ में थी जो चाहे सो लिखते, किन्तु काकोरी षड्यन्त्र का चीफकोर्ट का आद्योपान्त फैसला पढ़ने से भली भांति विदित होता है कि मुझे मृत्युदण्ड किस ख्याल से दिया गया। यह निश्चय किया गया कि रामप्रसाद ने सेशन जज के विरुद्ध अपशब्द कहे हैं, खुफिया विभाग के कार्यकर्ताओं पर लांछन लगाये हैं, अर्थात् अभियोग के समय जो अन्याय होता था उसके विरुद्ध आवाज उठाई है अतएव रामप्रसाद सब से बड़ा गुस्ताख मुलजिम है। अब माफी चाहे वह किसी भी रूप में मांगें, नहीं दी जा सकती।

चीफकोर्ट से अपील खारिज हो जाने के बाद यथा नियम प्रान्तीय गवर्नर तथा फिर वायसराय के पास दया प्रार्थना की गई। रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्रनाथ लहरी, रोशनसिंह तथा अशफाक उल्ला खां के मृत्यु-दण्ड को बदल कर अन्य दूसरी सजा देने की सिफारिश करते हुए संयुक्त प्रान्त की कौंसिल के लगभग सभी निर्वाचित हुए मेम्बरों ने हस्ताक्षर करके निवेदन पत्र दिया। मेरे पिता ने ढाई सौ रईस, आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा जमींदारों के हस्ताक्षर से एक अलग प्रार्थनापत्र भेजा, किन्तु श्रीमान् सर विलियम मेरिस की सरकार ने एक भी न सुनी। उसी समय लेजिसलेटिव असेम्बी तथा कौंसिल आफ स्टेट के ७८ सदस्यों ने भी हस्ताक्षर करके वायसराय के पास प्रार्थनापत्र भेजा कि काकोरी षड्यन्त्र के मृत्युदण्ड पाये पाये हुओं को मृत्युदण्ड की सजा बदल कर दूसरी सजा कर दी जावे, क्योंकि दौरा जज ने सिफारिश की है कि यदि यह लोग पश्चाताप करें तो सरकार दण्ड कम कर दे। चारों अभियुक्तों ने पश्चात्ताप प्रकट कर दिया है। किन्तु वायसराय महोदय ने भी एक न सुनी।

इस विषय में माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जी ने तथा अन्य असम्बली के कुछ सदस्यों ने वाइसराय से मिल कर भी प्रयत्न किया कि मृत्युदण्ड न दिया जावे। इतना होने पर सब को आशा थी कि वायसराय महोदय अवश्यमेव मृत्युदण्ड की आज्ञा रद्द कर देंगे। इसी हालत में चुपचाप विजयादशमी से दो दिन पहले जेलों को तार भेज दिये गये कि दया नहीं होगी। सब को फांसी की तारीख मुकर्रर हो गई। जब मुझे सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल ने तार सुनाया, मैंने भी कह दिया कि आप अपना कार्य कीजिये। किन्तु सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल के अधिक कहने पर कि एक तार दया-प्रार्थना का सम्राट् के पास भेज दो। क्योंकि यह उन्होंने एक-एक नियम सा बना रखा है कि प्रत्येक फांसी के कैदी की ओर से जिस की दया भिक्षा की अर्जी वायसराय के यहां से खारिज हो जाती है वह एक तार सम्राट् के नाम से प्रान्तीय सरकार के पास अवश्य भेजते हैं। कोई दूसरा जेल सुपरिन्टेन्डेट ऐसा नहीं करता। उपरोक्त तार लिखते समय मेरा कुछ विचार हुआ कि प्रीवी कौन्सिल इंग्लड में अपील की जावे। मैंने श्रीयुत मोहनलाल सक्सेना वकील लखनऊ को सूचना दी, बाहर किसी को वायसराय की अपील खारिज होने की बात पर विश्वास भी न हुआ। जैसे-तैसे करके श्रीयुत मोहनलाल द्वारा प्रीवी कौन्सिल में अपील कराई गई। नतीजा तो पहले से ही मालूम था। वहां से भी अपील खारिज हुई। यह जानते हुए कि अंग्रेज सरकार कुछ भी न सुनेगी, मैंने सरकार को प्रतिज्ञापत्र क्यों लिखा। क्यों अपील की, क्यों अपील दया-प्रार्थना की? इस प्रकार के प्रश्न

उठते हैं, मेरी समझ में सदैव यही आया है कि राजनीति एक शतरंज के खेल के समान है। शतरंज के खेलने वाले भलीभांति जानते हैं कि आवश्यकता होने पर किस प्रकार अपने मोहरे भी मरवा लेना पड़ते हैं। बङ्गाल आर्डिनेन्स के कैदियों के छोड़ने या उन पर खुली अदालत में मुकदमा चलाने के प्रस्ताव जब असेम्बली में पेश किये गये तो सरकार की ओर से बड़े जोरदार शब्दों में कहा गया कि सरकार के पास पूरा सबूत मौजूद है। खुली अदालत में अभियोग चलाने से गवाहों पर आपत्ति आ सकती है। यदि आर्डिनेन्स के कैदी लेखबद्ध प्रतिज्ञापत्र दाखिल कर दें कि वे भविष्य में क्रान्तिकारी आन्दोलन से कोई सम्बन्ध न रखेंगे तो सरकार उन्हें रिहाई देने के विषय में विचार कर सकती है।

बङ्गाल में दक्षिणेश्वर तथा सोना बाजार बमकेस आर्डिनेन्स के बाद चले। खुफिया विभाग के डिप्डी सुपरिन्टेन्डेन्ट के कत्ल का मुकदमा भी खुली अदालत में हुआ और भी कुछ हत्यारों के मुकदमे खुली अदालत में चलाये गये। किन्तु एक भी दुर्घटना या हत्या की सूचना पुलिस न दे सकी। काकोरी षड्यन्त्र केस पूरे डेढ़ साल तक खुली अदालतों में चलता रहा। सबूत की ओर से लगभग ३०० गवाह प्रस्तुत किये गये। कई मुखबिर तथा इकबाली खुले तौर से घूमते रहे। पर कहीं कोई दुर्घटना या किसी को धमकी देने की पुलिस ने कोई सूचना न दी। सरकार की इन बातों की पोल खोलने की गरज से ही मैंने लेखबद्ध बन्धेज सरकार को दिया। सरकार के कथनानुसार जिस प्रकार बङ्गाल आर्डिनेन्स के कैदियों के सम्बन्ध में सरकार के पास पूरा सबूत था और सरकार उन में से अनेकों को भयंकर षड्यन्त्रकारी दल का सदस्य तथा हत्याओं का जुम्मेदार समझती तथा कहती थी तो इसी प्रकार काकोरी के षड्यन्त्रकारियों के लेखबद्ध प्रतिज्ञापत्र करने पर कोई गौर क्यों न किया? बात यह है कि 'जबरा मारे रोने न देय' मुझे तो भलीभांति मालूम था कि संयुक्त प्रान्त में जितने भी राजनैतिक अभियोग चलाये जाते हैं उनके फैसले खुफिया पुलिस की इच्छानुसार लिखे जाते हैं। बरेली पुलिस कांस्टेबिलों की हत्या के अभियोग में नितान्त निर्दोष नव-युवकों को फंसाया गया और सी० आई० डी० वालों ने अपनी डायरी दिखला कर फैसला लिखवाया। काकोरी षड्यन्त्र में भी अन्त में ऐसा ही हुआ, सरकार की सब चालों को जानते हुए भी मैंने सब कार्य उसकी लम्बी-लम्बी बातों की पोल खोलने के लिए ही किये। काकोरी के मृत्युदण्ड पाये हुओं की दया-प्रार्थना न स्वीकार करने का कोई विशेष कारण सरकार के पास नहीं। सरकार ने बंगाल आर्डिनेन्स के कैदियों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था सो काकोरी वालों ने किया। मृत्युदण्ड को रद्द कर देने से देश में किसी प्रकार की शान्ति भंग होने अथवा किसी विप्लव हो जाने की सम्भावना न थी। विशेषतया जब कि देश भर के सब प्रकार के हिन्दू मुसलमान असेम्बली के सदस्यों ने इसकी सिफारिश की थी। षड्यन्त्रकारियों की इतनी बड़ी शिफारिश इससे पहले कभी नहीं हुई। किन्तु सरकार तो अपना पासा सीधा रखना चाहती है। उसे अपने बल पर विश्वास है। सर विलियम मेरिस ने ही स्वयं शाहजहांपुर तथा इलाहाबाद के हिन्दू,-मुस्लिम दंगे के अभियुक्तों के मृत्युदण्ड रद्द किये हैं जिन को कि इलाहाबाद हाईकोर्ट से मृत्युदण्ड ही देना उचित समझा गया था और उन लोगों पर दिन दहाड़े हत्या करने के सीधे सबूत मौजूद थे। ये सजायें ऐसे समय माफ की गई थीं, जब कि नित्य नये हिन्दू-मुस्लिम दंगे बढ़ते ही जाते हैं। यदि काकोरी के कैदियों को मृत्युदण्ड माफ करके, दूसरी सजा देने से दूसरों का उत्साह बढ़ता तो क्या इसी प्रकार मजहबी दंगों के सम्बन्ध में भी नहीं हो सकता था? मगर वहाँ तो मामला कुछ और ही है, जो अब भारतवासियों के नरम-नरम दल के नेताओं के भी शाही कमीशन के मुकर्रर होने और उसमें एक भी भारतवासी के न चुने जाने, पार्लमैन्ट में भारत सचिव लार्ड बर्कन हेड के

तथा अन्य मजदूर दल के नेताओं के भाषणों से भली भांति समझ म आया है कि किस प्रकार भारतवर्ष को गुलामी की जञ्जीरों में जकड़े रहने की चालें चली जा रही हैं।

मुझे प्राण त्यागते समय निराश होजाना नहीं पड़ रहा है कि हम लोगों के बलिदान व्यर्थ गये। मेरा तो विश्वास है कि हम लोगों की छिपी हुई आहों का ही यह नतीजा हुआ कि लार्ड बर्कनहेड के दिमाग में परमात्मा ने एक विचार उपस्थित किया कि हिन्दुस्तान के हिन्दू-मुसलिम झगड़ों का लाभ उठाओ और भारतवर्ष की जंजीरें और कस दो। गये थे रोजा छोड़ने नमाज गले पड़ गई। भारतवर्ष के प्रत्येक विख्यात राजनैतिक दल ने और हिन्दुओं के तो लगभग सभी तथा मुसलमानों के भी अधिकतर नेताओं ने एक स्वर होकर रायल कमीशन की नियुक्ति तथा उसके सदस्यों के विरुद्ध घोर विरोध किया है और अगली कांग्रेस पर सब राजनैतिक दल के नेता तथा हिन्दू मुसलमान एक होने जा रहे हैं। वायसराय ने जब हम काकोरी के मृत्युदंड वालों की दया-प्रार्थना अस्वीकार की थी उसी समय मैंने श्रीयुत मोहनलाल जी को पत्र लिखा था कि हिन्दुस्तानी नेताओं को तथा हिन्दू मुसलमानों को अग्रिम काँग्रेस पर एकत्रित हो हम लोगों की याद मनानी चाहिए। सरकार ने अशफाक उल्ला को राम प्रसाद का दाहिना हाथ करार दिया अशफाक उल्ला कट्टर मुसलमान होकर पक्के आर्य समाजी रामप्रसाद का क्रान्तिकारी दल के सम्बन्ध में यदि दाहिना हाथ बन सकते हैं, तब क्या भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के नाम पर हिन्दू मुसलमान अपने निजी छोटे-छोटे फायदों का ख्याल न करके आपस में एक नहीं हो सकते ?

परमात्मा ने मेरी पुकार सुनली और मेरी इच्छा पूरी होती दिखाई देती है। मैं तो अपना कार्य कर चुका। मैंने मुसलमानों में से एक नवयुवक निकाल कर भारतवासियों को दिखला दिया जो सब परीक्षाओं में पूर्णतया उत्तीर्ण हुआ। अब किसी को यह कहने का साहस न होना चाहिए कि मुसलमानों पर विश्वास न करना चाहिए। पहला तजर्बा था जो पूरी तौर से कामयाब हुआ। अब देशवासियों से यही प्रार्थना है कि यदि वे हम लोगों के फांसी पर चढ़ने से जरा भी दुःखित हुए हों तो उन्हें यही शिक्षा लेनी चाहिए कि हिन्दू-मुसलमान तथा सब राजनैतिक दल एक होकर कांग्रेस को अपना प्रतिनिधि मानें। जो काँग्रेस तय करे, उसे सब पूरी तौर से मानें और उस पर अमल करें। ऐसा करने के बाद वह दिन बहुत दूर न होगा जब कि अंग्रेजी सरकार को भारतवासियों की मांग के सामने सिर झुकाना पड़े और यदि ऐसा करेंगे तब तो स्वराज्य कुछ दूर नहीं। क्योंकि फिर तो भारतवासियों को काम करने का पूरा मौका मिल जावेगा, हिन्दू-मुस्लिम एकता ही हम लोगों की यादगार तथा अन्तिम इच्छा है चाहे वह कितनी कठिनता से क्यों न हो।

जो मैं कह रहा हूँ वही श्री अशफाक उल्ला खां वारसी का भी मत है, क्योंकि अपील के समय हम दोनों लखनऊ जेल में फाँसी की कोठरियों में आमने-सामने कई दिन तक रहे थे। आपस में हर तरह की बातें हुई थीं। गिरफ्तारी के बाद से हम लोगों की सजा पड़ने तक श्री अशफाक उल्ला खां की बड़ी भारी उत्कट इच्छा यही थी कि वह एक बार मुझ से मिल लेते। जो परमात्मा ने पूरी कर दी।

श्री अशफाक उल्ला खां तो अंग्रेज सरकार से दया-प्रार्थना करने पर राजी ही न थे। उन का तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबन्द करीम के अलावा किसी दूसरे से दया की प्रार्थना न करना चाहिये परन्तु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया प्रार्थना की थी। इसका दोषी मैं ही हूं जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफाक उल्ला खाँ को उनके दृढ़ निश्चय से विचलित किया। मैंने एक पत्र द्वारा अपनी भूल स्वीकार करते हुए भ्रातृ द्वितीया के अवसर पर गोरखपुर जेल से श्री अशफाक को पत्र लिखकर क्षमा प्रार्थना की थी। परमात्मा जाने कि वह पत्र उनके हाथों तक

पहुँचा भी या नहीं। खैर! परमात्मा की ऐसी ही इच्छा थी कि हम लोगों को फांसी दी जावे। भारतवासियों के जले हुए दिलों पर नमक पड़े, वे बिलबिला उठें, और हमारी आत्मायें उनके कार्य को देखकर सुखी हों। जब हम नवीन शरीर धारण करके देश सेवा में योग देने को उद्यत हों, उस समय तक भारत वर्ष की राजनीतिक स्थिति पूर्णतया सुधरी हुई हो। जन साधारण का अधिक भाग सुशिक्षित हो जावे। ग्रामीण लोग भी अपने कर्त्तव्य समझने लग जावें।

प्रीवी कौंसिल में अपील भिजवाकर मैंने जो व्यर्थ का अपव्यय करवाया उसका भी एक विशेष अर्थ था। सब अपीलों का तात्पर्य यह था कि मृत्युदण्ड उपयुक्त दण्ड नहीं। क्योंकि न जाने किसकी गोली से आदमी मारा गया। अगर डकैती डालने की जिम्मेवारी के ख्याल से मृत्युदंड दिया गया तो चीफकोर्ट के फैसले के अनुसार भी मैं ही डकैतियों का जिम्मेदार तथा नेता था, और प्रान्त का नेता भी मैं ही था। अतएव मृत्युदंड तो अकेला मुझे ही मिलना चाहिये था। अन्य तीन को फांसी नहीं देना चाहिए था। इसके अतिरिक्त दूसरी साब सजायें स्वीकार होतीं। पर ऐसा क्यों होने लगा। मैं विलायती न्यायालय की भी परीक्षा करके स्वदेशवासियों के लिए उदाहरण छोड़ना चाहता था कि यदि कोई राजनीतिक अभियोग चले तो वे भूल करके भी किसी अंग्रेजी अदालत का विश्वास न करें। तबियत आये तो जोरदार बयान दें। अन्यथा मेरी तो यही राय है कि अंग्रेजी अदालत के सामने न तो कभी कोई बयान दें और न कोई सफाई पेश करें। काकोरी षडयन्त्र के अभियोग से शिक्षा प्राप्त कर लें। इस अभियोग में सब प्रकार के उदाहरण मौजूद हैं। प्रीवी कोंसिल में अपील दाखिल कराने का एक विशेष अर्थ यह भी था कि मैं कुछ समय तक फांसी की तारीख हटवाकर यह परीक्षा करना चाहता था कि नवयुवकों में कितना दम है, और देशवासी कितनी सहायता दे सकते हैं। इस में मुझे बड़ी निराशापूर्ण असफलता हुई। अन्त में मैंने निश्चय किया था कि यदि हो सके तो जेल से निकल भागूं। ऐसा हो जाने से सरकार को अन्य तीनों फांसी वालों की सजा माफ कर देनी पड़ेगी, और यदि न करते तो मैं करा लेता। मैंने जेल से भागने के अनेकों प्रयत्न किये किन्तु बाहर से कोई सहायता न मिल सकी, यही तो हृदय पर आघात लगता है कि जिस देश में मैंने इतना बड़ा क्रान्तिकारी आन्दोलन तथा षड्यन्त्रकारी दल खड़ा किया था वहां से मुझे प्राणरक्षा के लिये एक रिवाल्वर तक न मिल सका। एक नवयुवक भी सहायता को न आ सका। अन्त में फाँसी पा रहा हूँ। फांसी पाने का मुझे कोई भी शोक नहीं क्योंकि मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूं कि परमात्मा को यही मंजूर था। मगर मैं नवयुवकों से भी नम्र निवेदन करता हूं कि जब तक उन्हें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान न हो जावे, तब तक वे भूल कर भी किसी प्रकार के क्रान्तिकारी षड्यन्त्रों में भाग न लें। यदि देश सेवा की इच्छा हो तो खुले आन्दोलनों द्वारा यथाशक्ति कार्य करें, अन्यथा उनका बलिदान उपयोगी न होगा। दूसरे प्रकार से इससे अधिक देशसेवा हो सकती है, जो अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। परिस्थिति अनुकूल न होने से ऐसे आन्दोलनों से अधिकतर परिश्रम व्यर्थ जाता है। जिन की भलाई के लिये करो वही बुरे-बुरे नाम फ रते हैं और अन्त में मन ही मन कुढ़-कुढ़ कर प्राण त्यागने पड़ते हैं।

देश वासियों से यही अन्तिम विनय है कि जो कुछ करें, सब मिलकर करें, और सब देश की भलाई के लिये करें। इसी से सब का भला होगा। बस।

मरते 'बिस्मिल' 'रोशन' 'लहरी' अशफाक' अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से॥

श्री रामदुलारे त्रिवेदी

(ब्र० वेदपाल)

श्री रामदुलारे त्रिवेदी का जन्म कानपुर जिले में हुआ था। आप बंगला, हिन्दी तथा अंग्रेजी के अच्छे विद्वान् थे। आपने असहयोग आन्दोलन में भी भाग लिया था। १६२३ ईस्वी में आपने श्री योगेश-चन्द्र चटर्जी के साथ शाहजहाँपुर, अलीगढ़ तथा झाँसी आदि कई स्थानों पर क्रान्तिकारी दल के संगठन के लिये भ्रमण किया। काकोरी षड्यन्त्र में आपको ५ वर्ष का दंड मिला था। जेल में आपने कई बार अनशन किये जिससे आपका बहुत साधन जब्त कर लिया गया।

जब फैजाबाद में बी० क्लास के बन्दी एकत्र किये गये तब आपको भी फतेहगढ़ जेल से वहाँ भेजा गया था, किन्तु आपने वहाँ अपने उग्र विचारों व उपायों से बहुत खलबली मचा दी, इसलिये आप फिर फतेहगढ़ जेल में लौट आये। यहाँ आप बहुत दिन तक मणीन्द्रनाथ बनर्जी के साथ रहे। फिर बरेली जेल में भेज दिये गये। वहीं से आप छूटे।

काकोरी षड्यन्त्र के समय ये स्काउट मास्टर थे। इसी समय "हिन्दुस्तानी सेवा दल" पुनः खुला। इसके आप शिक्षक नियुक्त हुये। जब आप हवालात में थे तब पुलिस अधिकारी आप पर बहुत ही क्रुद्ध हुये और कहा "हम इसे जेल में ही मरवा देंगे।" एक बार आपने एक ओजस्वी भाषण दिया, इसलिये आप धारा १२४ में पकड़ लिये गये किन्तु कांग्रेस मन्त्रिमण्डल ने आपको छुड़वा दिया।

श्री राजकुमार सिन्हा

(ब्र० वेदपाल)

१६२५ ई० में देश और विदेश में क्रान्तिकारियों ने काशी से सर्वत्र क्रान्ति पदा करने के लिये पर्चे बांटे थे।

हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में भी ये पर्चे बँटे थे। प्रातःकाल विद्यार्थी तथा विद्यालय के अधिकारी गण उठे। तब उन्होंने देखा कि प्रत्येक कमरे की दीवार पर पर्चा लगा हुआ है। यहाँ तक ही नहीं टट्टियों की दीवारों पर भी पर्चे लगे हुये थे। इन्होंने भी अपने कमरे के द्वार पर पर्चा देखा और पढ़ा। ये पर्चे आजाद आदि क्रान्तिकारियों ने ही लगाये थे।

हिन्दू विश्वविद्यालय के बंगाली युवकों की "बंगला छात्र परिषद्" नामक एक संस्था चिरकाल से चलती आ रही थी। इसका उद्देश्य छात्रों का बंगला के प्रति प्रेम बढ़ाना था। राजकुमार सिन्हा ने "राष्ट्रीय आन्दोलन और छात्रों का कर्त्तव्य" नामक एक निबन्ध भी लिखा था। पुलिस ने इस निबन्ध को राजद्रोहात्मक बतलाया।

३० अक्टूबर १६२५ को पुलिस ने इनके कमरे की तलाशी ली। उस समय ये बीमारी के कारण कानपुर में रहते थे। तलाशी में एक विंचेस्टर राइफल, एक शेर उड राइफल तथा एक पुलिस दरोगा का झब्बा और पगड़ी मिली। उससे दूसरे दिन ये गिरफ्तार कर लिये। गिरफ्तारी के बाद श्री राजकुमार कुछ दिन तक कानपुर जेल में रक्खे गये और इन पर दबाव डाला गया कि सब बातें बता दें किन्तु ये तो अपने निश्चय पर अडिग थे। इनको एक कोठरी में बन्द करके बहुत कष्ट दिया। ५ दिसम्बर को ये मुकदमे के लिये लखनऊ जेल में लाये गये। इसके कुछ दिन पश्चात् इनके पिता जी का देहान्त हो गया। इससे इनको बहुत दुःख हुआ, किन्तु इतना होते हुये भी इन्होंने सब कुछ सहन किया। ये गायक बहुत ही अच्छे थे। इनका गाना सुनने के लिये सब उत्सुक रहते थे। हवालात में इन्होंने ३, ४ भाषायें भी

सीखीं। ये अन्तर्-राष्ट्रीय राजनीति से बहुत प्यार करते थे। इसी सम्बन्ध में ये अधिक अध्ययन करते थे। अखबारों को प्रतिदिन पढ़ा करते थे। इसी कारण से इनका चित्त राजनीति की ओर झुका था। बरेली सेन्ट्रल जेल में इन्होंने लगातार ३८ दिन तक अनशन किया था। इस स्थिति में इनका भार ४७ पौंड कम हो गया। हवालात में भी इन्होंने ३१ दिन का अनशन किया था।

श्री राजकुमार आज के युवकों की तरह के नहीं थे उन्हें अपने देश से बहुत प्रेम था। ये जाति-पांति को कुछ नहीं मानते थे। इस प्रकार इनका सारा जीवन देश सेवा में ही काम आया। ये बहुत ही वीर थे। आपका सारा जीवन कष्टमय संघर्षों से भरा हुआ है।

विजयकुमार सिन्हा

(ब्र० यश:पाल)

विजयकुमार का जन्म कानपुर के प्रतिष्ठित घराने में हुआ था। आपके पिता का नाम बाबू मारकण्डे दास सिन्हा था। आप दो भाई थे। आपके बड़े भाई का नाम राजकुमार था। आपका बड़ा भाई जब काकोरी डकैती में गिरफ्तार हो गया, तब आपने भी क्रान्तिकारी दल के सदस्यों में नाम लिखा दिया, तब आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी० एस० सी० में पढ़ते थे। पार्टी का कार्य करते हुये आप पुलिस की दृष्टि से न बच सके। लाहौर षड्यन्त्र में पकड़े गये। कई जेलों में आपको भेजा गया। अण्डमान जेल में आपने अनशन-व्रत आरम्भ कर दिया। ५५ दिन में आपने अनशन समाप्त किया था। आपको आजन्म काले पानी का दण्ड मिला।

पं० गेंदालाल दीक्षित

(ब्र० यशपाल)

आगरा जिले के मई नामक ग्राम में पं० भोलानाथ दीक्षित के घर में ३० सितम्बर १८५८ में पं० गदालाल दीक्षित का जन्म हुआ था। आप एन्ट्रेन्स की परीक्षा उत्तीर्ण करके ओरछे के डी० ए० बी० स्कूल में अध्यापक हो गये। आपकी इच्छा थी कि मैं आगे भी पढ़ूं, परन्तु घर की परिस्थिति खराब होने के कारण अध्यापक होना पड़ा।

उन्हीं दिनों बंगाल में बंग भंग का और महाराष्ट्र में शिवाजी जन्मोत्सव का आन्दोलन हो रहा था। आप तिलक जी के भक्त थे इसलिये आपने शिवाजी समिति नामक संस्था की नींव डाली। इस समिति का काम नवयुवकों में देश प्रेम उत्पन्न करना था। कुछ दिन तक तो पुस्तक और अखबारों द्वारा प्रचार होता रहा, परन्तु बंगालियों के मृत्यु से खेलने वाले कार्यों को देखकर आपने उसी नीति का अनुसरण करने का निश्चय किया। उस नीति का अनुसरण करने के लिये बन्दूक और कारतूसों की सुविधा होने के कारण इस मार्ग को छोड़ना ही श्रेयस्कर समझा।

आपने फिर निश्चय किया कि पहले युद्ध विद्या सीखनी चाहिये, इसलिये सेना में भर्ती होना चाहिये। फिर सेना से त्याग पत्र देकर जनता में सैनिक पैदा करने चाहियें। सैनिकों की अच्छी संख्या हो जाने पर देश का काम करना चाहिये। आपने अपना नाम भर्ती अफसरों को नोट करा दिया, किन्तु

आपके ताऊ जी ने आपको भर्ती नहीं होने दिया। आपका मन गांव में नहीं लगता था, क्योंकि आप जो कुछ करना चाहते थे, वह गांव में नहीं हो सकता था, अतः आप औरेया आ गये। औरेया में कुछ दिन के बाद लक्ष्मणानन्द नामक एक ब्रह्मचारी से आपकी भेंट हो गई। उनके और आपके विचार एक थे। उनका शरीर भी बहुत हृष्ट पुष्ट था, दोनों की आपस में गाढ़ मैत्री हो गई।

इटावा जिले से ग्वालियर राज्य लगा हुआ है। यमुना के उस पार के खादरों में डाकू सदैव रहते हैं। वहां ठाकुर पञ्चमसिंह उन दिनों में प्रसिद्ध डाकू था। उसके अनेक साथी काम करते थे। उसके पास हथियार और घोड़े भी थे। स्वामी लक्ष्मणानन्द तथा पं० गेंदालाल दीक्षित दोनों उसके दल के अन्दर मिल गये। उनमें बिजकोले के चौबे दर्शनानन्द जी, गुरुकुल के ब्रह्मचारी सत्यानन्द जी, धनुर्विद्या के शिक्षक अघाराव जी, तथा आगरा के पं० रामरत्न जी, श्री कृष्णदत्त जी आदि उस दल में मिले हुये थे। इनमें सत्यानन्द जी नैपाल को, और लक्ष्मणदास जी मध्य भारत की रियासतों में, गेंदालाल जी यू० पी० में भेजे गये। किन्तु मन में एक तरंग आई और बम्बई पहुंच गये। वहां पर जाकर सावरकर के परिबार से मिले। फिर कोटा में जाकर आप अपने भाई से मिले। वहाँ आपके भाई शिक्षा विभाग के इन्सपेक्टर थे। वहां जाकर आपने बन्दूक चलानी सीखी। कोटे से आप ग्वालियर आ गये। वहां तब पैसों की बहुत आवश्यकता थी, इसलिये निश्चय हुआ कि इटावा जिले में डकैती डाली जाये। नियत समय में डकैती डाली गई। अस्सी हजार रुपये प्राप्त हुये। और कुछ सोना, तथा दो घोड़े भी प्राप्त हुये। उस डकैती में एक मनुष्य मारा गया इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। पं० गेंदालाल जी ने सोचा कि हत्या से प्राप्त धन देश सेवा में नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि पाप से प्राप्त धन कभी सफलता प्राप्त नहीं करा सकता। अतः यह धन अपने दल के लिये रखो। ग्वालियर से लौटकर मैनपुरी के पास एक गांव में आप अध्यापकी काम करने लगे। बाद में आपके मित्रों के दबाव के कारण और दल के लिये धन की महती आवश्यकता के कारण उसी धनी के यहां डाका डालने का निश्चय किया। उस डाके में रामप्रसाद विस्मिल भी शामिल थे।

काकोरी षड्यन्त्र में भी पं० गेंदालाल जी शामिल थे, उस केस के अन्दर इनके साथी पकड़े गय और फांसी के तख्ते पर लटका दिये गये।

मध्य भारत में ठाकुर पञ्चमसिंह तथा मन्नूराज प्रसिद्ध डाकू थे। यू० पी० सरकार इन दोनों को समाप्त करने का विशेष रूप से प्रयत्न कर रही थी। ग्वालियर पुलिस भी इनको पकड़ने की पूरी पूरी सहायता देने लगी। एक दिन ग्वालियर की सरकार ने ठाकुर पञ्चमसिंह को अपने घेरे में ले लिया। उसमें पं० गेंदालाल जी भी सम्मिलित थे। वहां से छिपकर सारा दल भाग गया। आखिर एक दिन दोनों दल पकड़े गये। कारण यह था कि दोनों दल भूखे थे, इन्दुसिंह ठाकुर को सरकार ने लोभ देकर पकड़वाने के लिये नियुक्त कर रखा था। इन्दुसिंह ठाकुर ने इन दोनों दलों को एक वन में ठहरा लिया, और भोज्न लाकर इन दोनों दलों को खाने के लिये दिया, भोजन में विष मिला रखा था और थोड़ी सी दूर पर पुलिस पकड़ने के लिये रखी हुई थी। भोजन करने के पश्चात् इन्हें पुलिस ने आकर घेर लिया। थोड़ी देर तक तो खूब घमसान युद्ध होता रहा अन्त में अचेत हो गये और सब पकड़े गये। इसमें गेंदालाल जी भी शामिल थे। सबको पकड़ कर ग्वालियर किले में भेज दिया गया। इनको छुड़ाने के अनेक प्रयत्न किये परन्तु पुलिस का कड़ा पहरा था इस कारण से छूटना कठिन था।

गेंदालाल जी ने यू० पी० सरकार के सामने सारा अपराध अपने ऊपर ले लिया। पुलिस ने कुछ

बच्चों को पकड़ रखा था। पं० गेंदालाल जी ने पुलिस के सामने कहा इन बच्चों को क्यों पकड़ रखा है। इन सबका कारण मैं हूँ। और दो तीनों के नाम असत्य ही बता दिये। जिससे पुलिस को निश्चय हो गया कि यह सब के नाम बता देगा, तथा सरकारी गवाह बना दिया। उनके पास एक रामनारायण नामक व्यक्ति को देख-भाल के लिये नियुक्त कर दिया। किन्तु उसी रात दोनों हवालात से निकल कर भाग गये।

सारे स्थान ढूंढ मारे परन्तु कहीं पता नहीं चला, दो तीन दिन के पश्चात् अपने घर आये परन्तु घर पर पुलिस का पहरा था। घर पर मिले तथा भोजन आदि किया, माता जी के चरण स्पर्श करके घर से निकल पड़े। और कोटे में आकर काम करने लग गये। भूख प्यास के कारण गेंदालाल जी का स्वास्थ्य खराब हो गया था अतः रुग्ण हो गये। चिकित्सा करने पर भी ठीक नहीं हुए। अन्त में दिल्ली के हस्पताल (चिकित्सालय) में गए वहां पर अपनी पत्नी को बुलाया और मिले। २० दिसम्बर १९२० ई० में आप इस संसार से चल बसे। मरते समय में आपने कहा था कि "मैं दूसरा जन्म लेकर नये उत्साह से शत्रुओं का नाश करूंगा"। मरते समय भी पुलिस चिकित्सालय के द्वार पर विद्यमान थी।

अमर शहीद शालिग्राम शुक्ल

(ब्र० वेदपाल)

श्री शालिग्राम को कानपुर की पुलिस हर समय देखती रहती थी। पुलिस ने उन्हें पकड़ने के लिए दिन रात एक कर रखे थे। एक दिन २ दिसम्बर सन् १९३० को पुलिस को पता चला कि श्री शालिगराम इस समय डी० ए० वी० कालेज में हैं।

कालेज में घूमती हुई पुलिस की आप से भेंट हुई। देखते ही पुलिस इन्सपेक्टर शम्भूनाथ ने आपको ललकारते हुए पकड़ने का यत्न किया। भागते हुये श्री शुक्ल ने पिस्तौल निकाल कर पुलिस पर तीन गोलियां चलाईं जो कि तीन व्यक्तियों को लगी। अन्त में दोनों ओर से गोलियां चलने लगीं तथा मि० हूएट की एक गोली श्री शालिग्राम के लगी। इस गोली के लगने से शुक्ल जी का स्वर्गवास हो गया।

महान् क्रान्तिकारी राजा महेन्द्रप्रताप

(वेदव्रत सिद्धान्त शिरोमणि)

अपनी शूर वीरता के लिये प्रसिद्ध जाटवंश में मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी तदनुसार ६ दिसम्बर १८८६ ई० को ब्रजभूमि मुरसान (मथुरा) में राजा महेन्द्रप्रताप का जन्म हुआ। आप राजा घनश्यामसिंह जी के तृतीय पुत्र और हाथरस के रईस राजा हरनामसिंह के दत्तक पुत्र हैं। वृन्दावन में राजसी ठाट में आपका लालन-पालन हुआ। मुहमडन एंग्लो ओरियण्टल कालेज (वर्तमान अलीगढ़ विश्वविद्यालय) में आपने एफ० ए० उत्तीर्ण की। आपकी गणना होशियार विद्यार्थियों में की जाती थी। जब आप बी० ए० में पढ़ते थे तब १९०७ में नगर की प्रदर्शनी में किसी विद्यार्थी की पुलिस कांस्टेबिल से कहा सुनी हो गई। अंग्रेज प्रिंसिपल ने विद्यार्थी को ३ मास के लिए कालेज से निकाल दिया। विद्यार्थियों की सभा में प्रिंसिपल और कुछ प्रोफेसरों के अशिष्ट व्यवहार के कारण हड़ताल हुई, आपको उस हड़ताल का नेता माना गया और कालेज से पृथक् कर दिया गया। आगरा में कुछ दिन पढ़े, किन्तु आपकी पढ़ाई यहीं समाप्त हो गई।

विदेश की परिस्थितियों के अध्ययनार्थ आपने १६०७ में यूरोप की यात्रा की । १६११ में आपने 'प्रेम' साप्ताहिक पत्र निकाला। इससे पूर्व १६०८ में आपने प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन की स्थापना की थी ।

२८ दिसम्बर १६१५ को आपने लन्दन को प्रस्थान किया। आपके साथ स्वामी श्रद्धानन्द जी के पुत्र हरिश्चन्द्र विद्यालङ्कार भी थे । आप विदेशों में भारत को स्वतंत्र करवाने के लियेही गये थे। १ जुलाई १६१६ ई० को आपकी जायदाद कुर्क कर ली गई। भारत की स्वधीनता के लिये आप ३१ वर्ष तक जर्मनी, स्विट्जर लैन्ड, अफगानिस्तान, काबुल, तुर्की, यूरोप. अमेरिका, चीन, जापान, रूस आदि में भटकते फिरे। इस क्रान्ति के उपासक ने देश के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। आपके सैकड़ों साथी भारत की स्वतंत्र न देख सके, आपको भी सम्भवतः भारत वापिस लौटने की आशा न रही होगी। किन्तु सौभाग्यवश अगस्त १६४६ में आपको भारत आने की अनुमति मिल गई। और आप भारत में लौट आये। यदि कुछ वर्ष पूर्व आप अंग्रेज सरकार के हाथ आ जाते तो गोली से उड़ा दिये जाते, 'बागी' बताकर शूली पर चढ़ा दिये जाते, अथवा 'राजद्रोही' घोषित कर आजन्म काले पानी की सजा दे दी जाती। किन्तु आज हमारे बीच में आप विद्यमान हैं। स्वतन्त्र चुनाव लड़कर आप एम० पी० बने हैं । कांग्रेस के राज्य में आपको कोई यथोचित सम्मान और स्थान मिलने की आशा नहीं की जा सकती।

विदेशों से लौटकर भारत में आये तब फरवरी १६४७ ई० में आप गुरुकुल झज्जर के रजत-जयन्ती महोत्सव पर डा० राजेन्द्रप्रसाद जी के साथ पधारे थे।

१६४१ में राजा जी को एक नया विचार सूझा। आपने आर्य। न लीग, की योजना बनाई। इसका उद्देश्य भी आसाम से ईरान तक के आर्य प्रदेश को स्वतन्त्र करना था और इसके लिये आप एक 'आर्य सेना' खड़ी करना चाहते थे किन्तु वह अनेक कारणों से सफल न हो सकी। ७२ वर्ष की आयु में भी आप नवयुवकों की भान्ति कार्य करते हैं और प्रत्येक कठिनाई का सामना करने के लिये उद्यत रहते हैं। विदेश से लौटने के पश्चात् आप गान्धी जी से मिले और कांग्रेस में सम्मिलित हो गये । पदलोलुप कांग्रेसियों ने आपको उचित स्थान न दिया अतः महान् विद्रोही महेन्द्रप्रताप ने कांग्रेस को छोड़ दिया । काँग्रेस सत्ता आपकी परवाह नहीं करती और आप उसकी कुछ परवाह नहीं करते। तीन कार्यों के लिये वे आज अकेले ही जूझ रहे हैं—

१-ईरान से आसाम तक आर्य बनाना।

२-विश्व राज्य की स्थापना का प्रयत्न करना।

३-भारत में ऐसी सरकार बनाना जो प्रेम और धर्म पर आश्रित हो।

आपका तप, त्याग और स्वदेशानुराग प्रत्येक नवयुवक के लिये अनुकरणीय है।

———

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री रामचरणलाल शर्मा

[ब्र० वेदपाल]

श्री रामचरणलाल शर्मा का जन्म जिला एटा के गांव नगलाडीह में हुआ था। एटा में हिन्दू-उर्दू की शिक्षा समाप्त कर आप अलीगढ़ कालेज में पढ़ने लगे। यहीं से आप कलकत्ता आदि स्थानों पर भ्रमण करने गये और क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गये। दल में रह कर आप ने हृदय से काम किया। सबसे पहले आप १६०८ में गिरफ्तार किये गये। एटा के सेशन जज की अदालत में आप का मुकद्दमा चला, आप पर अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने तथा विद्रोहात्मक भाषण देने का मुकद्दमा चलाया गया। इन अभियोगों में आप को दश-दश वर्ष के काले पानी की सजा मिली। दोनों सजायें साथ-साथ चलीं और आप दश वर्ष में ही छूट गये। आप युक्त प्रान्त के देश-भक्ति के अपराध में इतनी अधिक सजा पाने वाले प्रथम व्यक्ति थे।

जब आप जेल से छूट कर आये उसी समय इलाहाबाद से निकलने वाले "स्वराज्य" पत्र के सम्पादक बन गये। इस पत्र के सात सम्पादकों को अंग्रेज सरकार सजा दे चुकी थी। आप तीसरे सम्पादक थे। इसके पश्चात् प्रेस भी जब्त कर लिया गया। सजा होने के पश्चात् आप को जेलों में रखा गया। तत् पश्चात् आपको अण्डमान भेज दिया गया।

जेल में आप सानन्द जीवन व्यतीत करते थे तथा देशाभिमान में कठोर से कठोर कष्टों को सहन किया। एक बार आप को ३० बेंत लगाये गये और दूसरी बार ६ मास की सजा दी तथा फिर बढ़ा दी गई।

सन् १६१८ में आप एटा में लाये गये। यहाँ लाकर आप छोड़ दिये। छूटते ही नागपुर गये। उसी समय व्याख्यानों के अपराध में आपको पञ्जाब पुलिस ने पकड़ना चाहा। पुलिस जबलपुर पहुंची, आप पाण्डुचेरी चले गये। यहां पर अंग्रेजी पुलिस ने आप का पीछा किया। कुछ दिन तक आप यहां रहे। आप के पांव में जूते ने घाव कर दिया। यह घाव बहुत बढ़ गया, यहाँ तक कि डाक्टरों ने भी इलाज करने से निषेध कर दिया। आप मित्रों की अनुमति से मद्रास में इलाज कराने के लिये तैयार हुये। गवर्नर को तार दिया कि इन पर मुकद्दमा न चलाया जाये। मद्रास के गवर्नर ने इसे स्वीकार कर लिया, जब आप जाने के लिए पांडुचेरी से निकले तभी आप गिरफ्तार कर लिये गये। मद्रास अस्पताल मे आप के पैर का इलाज कराया गया किन्तु सफलता नहीं मिली। अन्त में आप का पैर काटा गया। पैर के कटने से आप का स्वर्गवास हो गया।

धन्य है वीर रामचरणलाल जिनको देश के कार्य के लिए पैर से ही नहीं जीवन से भी हाथ धोना पड़ा। वे देश के लिये प्राणों का बलिदान कर सदा के लिए अमर हो गये।

श्री विष्णु शरण दुबलिस

(ब्र० यश:पाल)

श्री विष्णुशरण दुबलिस मेरठ के रहने वाले हैं। असहयोग के समय में इन्होंने बी० ए० से अपना पढ़ना छोड़ दिया। डेढ साल के लिए जेल भी गए थे लखनऊ जेल में इनके साथ विशेष व्यवहार की आज्ञा हुई, परन्तु इन्होंने अपने लिये विशेष व्यवहार के लिए प्रतिषेध कर दिया। १९२३ से पहले ही क्रान्तिकारी दल में शामिल हो गये। ये प्रान्तीय दल के एक योग्य संगठन कर्त्ता थे। काकोरी केस में हवालात में १६ दिनों तक और फैसले के बाद नैनी जेल में ४४ दिनों तक इन्हों ने अनशन किया था। काकोरी केस में ७ वर्ष की सख्त कैद हुई थी। जनवरी १९२७ में नैनी जेल में जो दंगा हो गया था, उसके सम्बन्ध में इन पर दंगा कराने का अभियोग लगाया गया था। इस मामले में इन्हें आजन्म काला पानी की सजा दी गई। उस दिन जब इस दगे के सम्बन्ध में अन्यों को फाँसी की सजा सुनाई गई तब आप दयार्द्र हृदय से रोने लगे, और कहने लगे कि मुझे फांसी की सजा क्यों नहीं दी गई। आज कल आप भारतीय लोक सभा के सदस्य हैं।

श्री मुकुन्दीलाल

(ब्र० यश:पाल)

श्री मुकुन्दीलाल जी इटावा जिले के ओरैया कस्बा के रहने वाले थे। आपके पिता जी एक प्रसिद्ध व्यापारी थे, मरते समय में काफी धन छोड़ गये थे। गेंदालाल जी ही मुकुन्दीलाल को राजनीतिक जीवन में लाये। मुकन्दलाल जी इन को गुरु मानते थे। काकोरी षड्यन्त्र में आपको काले पानी की सजा हुई थी। सैशन कोर्ट से दस वर्ष की सजा हुई किन्तु अपील करने पर सजा बढ़ गई। साथ ही मैनपुरी षड्यन्त्र में भी छः वर्ष की सजा हुई थी। इसलिए लोग उन्हें "भारत भूषण" भी कहते थे। आपने दोनों सजाये बड़े धैर्य पूर्वक सहीं। जेल में सबके साथ आप का बन्धुत्व का व्यवहार था। ये सब यन्त्रणायें सहने के पश्चात् आप का जीवन सेवा कार्य में ही व्यतीत हुआ।

—=—

अज्ञात क्रान्तिकारी—

मास्टर रामजीलाल

(विजयपालसिंह वर्मा)

मास्टर रामजीलाल जी का जन्म ६ नवम्बर १९०१ को फजलपुर ग्राम, तहसील सरधना, जिला मेरठ में हुआ था। आपने एक गरीब किसान के यहाँ जन्म लिया। बचपन ही से उदार सत्यनिष्ठ तथा विचारशील मनुष्य की भांति उनका ध्येय सात्विक और उन्नत जीवन की ओर अग्रसर होना था। प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा गांव में ही हुई और इसके पश्चात् बड़ोत (मेरठ) से मिडिल पास करके, मिशन स्कूल मेरठ में अंग्रेजी शिक्षा का अध्ययन प्रारम्भ किया। जिस समय आप मिशन स्कूल में पढ़ते थे। उस

समय अंग्रेजी राज्य की तूती बोल रही थी। सभी ओर से ईसाई लोग देशवासियों को प्रलोभन देकर अपनी ओर खींचने का प्रयास करते थे। नौकरी, धन और युवतियों का प्रलोभन देकर इस दीन-हीन भारत की जनता को ईसाई सांचे में ढाला जा रहा था।

मास्टर जी पर भी छात्रवृत्ति का मुलम्मा चढ़ा कर ईसाई बनने पर बाध्य किया गया। परन्तु सौभाग्यवश इन्हीं दिनों आर्य समाज के अथक प्रयत्नों के कारण ईसाई मत के ढोल की पोल को जनता के सामने रखा जा रहा था। फिर भला मास्टर जी जैसा सात्विक और विचारशील मनुष्य इनसे प्रभावित हुये बिना कैसे रह सकता था। आपने असत्य मार्ग पर चलना कभी सीखा ही नहीं था। आपने छात्रवृत्ति को लात मार दी। परन्तु इसका परिणाम मास्टर जी के लिये कष्टप्रद सिद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा आपको मिशन स्कूल छोड़ने पर बाध्य किया गया। अपने कर्त्तव्य व चरित्र की रक्षा कर आप वहां से दिल्ली आये और यहीं पर पढ़ना प्रारम्भ किया। हाई स्कूल परीक्षा पास कर आप सरकारी नौकरी पर लग गये। कुछ महीने अच्छी तरह कार्य किया। उसी समय अंग्रेजों का रोलट एक्ट पास हो रहा था, भारतीय जनता का दमन जनरल डायर की खूनी गोलियाँ कर रही थीं। मास्टर जी जैसा व्यक्ति ऐसे समय में कैसे चुप रह सकता था, सायंकाल को खाना भी मिलेगा या नहीं इसकी परवाह न करते हुये उन्होंने अंग्रेजी नौकरी को लात मार दी।

इसके कुछ दिनों पश्चात् पटवारगिरी सीखी और उसकी परीक्षा में सर्व प्रथम स्थान प्राप्त किया। पटवारी पद के लिए आपको इन्टरव्यू (Interview) का बुलावा आया। उस समय इस पद के लिए मेरठ जिले के प्रार्थी नहीं लिये जाते थे। आपकी आँफिसर तक पहुंच भी थी। आपको कहा गया कि आप अपने को जिला मेरठ का प्रार्थी न कहके किसी और जिले का प्रमाणित कर दीजिये। मास्टर जी के मन में उथल-पुथल मच गई। क्या मैं एक छोटी सी नौकरी के लिए असत्य भाषण करूँगा। आपको इण्टरव्यू (Interview) के लिए बुलाया गया और आपने सत्यता के साथ अपने आपको मेरठ जिले का प्रार्थी ही प्रदर्शित किया। इसी सत्यप्रियता के कारण आपको मिलती हुई नौकरी से हाथ धोना पड़ा। आपको स्मरण था अपने बाबा का वह सदुपदेश, जब वह उन्हें गोदी में लेकर कहा करते थे "बेटा नौकरी वहाँ करना जहाँ असत्यता और रिश्वत का नाम तक न हो।"

इसके पश्चात् आपको कानूनगो बना कर सरकारी नौकरी पर सीतापुर भेज दिया। रोटी की समस्या होते हुए भी उन दिनों की सरकारी नौकरी का जीवन और मास्टर जी के विचार एक दूसरे से मेल न खा सके। आप यहां भी अधिक समय तक न ठहर सके। अतः आपने उस नौकरी से भी त्याग-पत्र दे दिया। तत्पश्चात् स्वावलम्बन का सहारा पकड़, आगरा जाकर कपड़ा बुनना सीखना प्रारम्भ किया, परन्तु काम अच्छा न चलने के कारण आपको चुप होकर ही बैठना पड़ा। सरकारी नौकरी के जीवन से तो आपका मन उचट ही गया था। आपने यही समुचित समझा कि अध्यापक बन कर आरम्भ से ही देश के बालकों को ऐसे सांचे में ढाला जाय, जिससे वह अपने देश जाति, समाज का कल्याण कर सकें। अतएव आपने टीचर्स-ट्रेनिंग पास करके दिल्ली की प्राइवेट संस्था "रामजस" स्कूल में नौकरी की। बहुत समय तक अध्यापन का कार्य सुचारु रूप से करते रहे।

इसके साथ ही साथ आपका सामाजिक कार्य भी दिन पर दिन बढ़ने लगा। जहां कहीं भी सत्संग सामाजिक, सदुपदेश होते, वहां आपको बिना गये चैन न आता। इन्हीं संस्कारों ने एकत्रीभूत होकर आप

को एक आर्य समाज मन्दिर बनवाने की प्रेरणा प्रदान की। आपने अपने अथाह परिश्रम से अपने ग्राम फजलपुर में एक आर्यसमाज मन्दिर की स्थापना की। जो कि अब भी विद्यमान है। प्रतिवर्ष उसके वार्षिकोत्सव होते हैं और जो ग्रामीण जनता को सद्-उपदेशों से सन्मार्ग पर लाने का, भ्रष्टाचार को दूर करने का एकमात्र साधन है।

अध्यापन के साथ-साथ आपका क्रान्तिकारी कार्य-क्रम भी सर्वदा चलता रहता था। गणित, भूगोल, इतिहास और विज्ञान के अतिरिक्त स्काउटिंग के भी अध्यापक थे। उन्हें बाहर भी जाना पड़ता था। इसी बीच उन्होंने क्रान्तिकारियों के लिए क्या-क्या चीज सीखना आवश्यक है, सब सीख लिया। अंग्रेजी राज्य के अत्याचारों को देख कर जनता स्तम्भित थी। स्वराज्य आन्दोलन भी तेज होता जा रहा था। जनता अपनी गई स्वतन्त्रता को किसी भी मूल्य पर वापस लेना चाहती थी। आवेश तथा बदला लेने की भावनायें अपनी जड़ जमा रही थीं। भगतसिंह, बिस्मिल, राजगुरु, सुखदेव सरीखे क्रान्तिकारी तथा अन्य न जाने कितने साथी फांसी के तख्ते को चूम चुके थे।

क्रान्ति की चिनगारी जोर पकड़ती ही गई और १६४२ में 'भारत छोड़ो' के नारे के साथ एक प्रचंड अग्नि में प्रज्वलित हो गई। स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर मर मिटने का बिगुल बजा। ज्वाला की लपटें सारे देश में फैल गईं। अंग्रेजी सत्ता के प्रत्येक यन्त्र को उखाड़ फेंका जाने लगा। अपनी आहुति देने के लिए मास्टर जी भी शान्त न रह सके। आपके पीछे गुप्त पुलिस रहने लगी। सरकार की राजधानी दिल्ली के सबसे बड़े पुलिस स्टेशन कोतवाली चांदनी चौक में भयंकर बम विस्फोट हुआ। केन्द्रीय सरकार की नाक के नीचे इतना सब कुछ हो गया, ये उसके लिए चुनौती थी। मास्टर जी जैसा क्रान्तिकारी ही ऐसा कर सकता था। इसके पश्चात् तो पुलिस आपके पीछे हाथ धोकर पड़ गई और अन्त में बम केस के अभियोग में गिरफ्तार कर लिया गया।

कुछ दिन आपको सदर बाजार दिल्ली के पुलिस स्टेशन में रखा गया। इसके पश्चात् दिल्ली सैन्ट्रल जेल में और तत्पश्चात् आपको फिरोजपुर जेल में भेज दिया गया। दिन रात आपको सोने नहीं दिया जाता था और बड़ी-बड़ी यातनायें दी जाती थीं। आपको अपने क्रान्तिकारी साथियों के फोटो दिये जाते थे और कहा जाता कि क्या आप इनको जानते हैं। परन्तु पुलिस आपसे कोई भी गुप्त रहस्य न जान सकी।

आपके जेल जाने पर आपकी धर्मपत्नी तथा एक मात्र पुत्री को अत्यन्त कष्टों का सामना करना पड़ा, क्योंकि उनके एक मात्र आप ही अवलम्बन थे। १० महीने के कठिन कारावास के पश्चात् आपको केस साबित न होने के कारण छोड़ दिया। जेल से आने के चार वर्ष पश्चात् तक आपके पीछे गुप्त पुलिस (सी० आई० डी०) लगी रही। कारावास से मुक्त होते ही आपने फिर "रामजस" स्कूल में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। चार पांच साल बाद आप इस स्कूल से खत्री उपकारक हाई स्कूल में चले गये।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जब कांग्रेस सरकार ने देश की बागडोर सम्भाली और लोगों को जेल का सर्टिफिकेट दिखाकर कांग्रेस और सरकार में बड़े-बड़े पद मिल रहे थे। तब मास्टर जी ने घोर निराशा से कांग्रेस के साथ असहयोग करने का निश्चय किया। वह कांग्रेस की भोले और असहाय पशु

पक्षियों का मांस भक्षण की प्रोत्साहित करने की नीति के कट्टर विरोधी थे। कला का ठीक उद्देश्य न समझकर उसके नाम पर नवयुवतियों के नाच का प्रचार सरकार द्वारा देखकर वे बड़े दुखी होते थे। देहली की सड़कों पर अनाथ भूखों को देखकर नई दिल्ली की बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं और उनमें रहने वाले ऊँचे वेतन पाने वालों से उन्हें घृणा सी हो गई थी। कभी-कभी तो बड़े दुःख के साथ कहा करते थे कि "हमारे तो सभी प्रयत्न बेकार में ही गये। गोरे चले गये उनके स्थान पर काले सत्ताधारी बन गये। अन्तर केवल इतना ही है।" चल चित्रों द्वारा भारतीय युवक-युवतियों का चरित्र बिगड़ता देखकर वह कांग्रेसी सरकार पर अपना रोष प्रकट करते थे।

आप प्रातः चार बजे उठते तथा नियमित रूप से व्यायाम करते थे। पन्द्रह-पन्द्रह मील की यात्रा पैदल ही किया करते थे। इसी बीच आपको संस्कृत पढ़ने की उत्कृष्ट अभिलाषा हुई। धीरे-धीरे कई छोटी छोटी किताबें पढ़ डालीं। मास्टर जी कहा करते थे कि "अध्यापन कार्य से रिटायरमेंट के दिन पास आ रहे हैं। स्कूल से छुटने के पश्चात् आर्य समाज और संस्कृत के प्रचार कार्य में जीवन व्यतीत करूँगा।" इसी बीच आप विरजानन्द संस्कृत परिषद् के सम्पर्क में आये और उनको परिषद् का महामंत्री नियुक्त किया गया। अभी वह थोड़े ही दिन कार्य कर पाये थे कि देहली के सरकारी कर्मचारियों की लापरवाही से फैली हुई पीलिया की बीमारी जिसने हजारों नागरिकों को मौत का ग्रास बना दिया, मास्टर जी को अपने चंगुल में दबोच डाला और यह एक अज्ञात क्रान्तिकारी ५६ वर्ष की आयु में जब कि वह केवल ४० या ४५ वर्ष के प्रतीत होत थे सर्वदा के लिए संसार से चल बसे।

अमर शहीद श्री देवसुमन

(श्री सत्यव्रत "सत्यार्थी" शास्त्री,)

आज हमें स्वतन्त्र हुए दश वर्ष होगये। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि बिना त्याग और बलिदान के स्वतन्त्रता जैसी अमूल्य वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती। जिसका उदाहरण विश्व के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों का इतिहास है। भारत को परतन्त्रता के असहनीय एवं घृणित पाश से मुक्त कराने को भारतमाता के असंख्य पुत्रों ने अपने आपको स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर चढ़ाया। जिसका कि दिग्दर्शन आप अन्यत्र भी पायेंगे। किन्तु मैं एक ऐसे वीर शहीद का जीवन वृत्त लिखने का सौभाग्य प्राप्त कर रहा हूं जिसने अपनी किशोरावस्था में ही भारत के प्रत्येक नागरिक को स्वतन्त्र देखने का निर्णय कर लिया था और निश्चय किया कि हमारा पवित्र देश विदेशियों से आक्रान्त है। देश की निर्धन जनता विदेशी क्रूर शासन की चक्की में पिस रही है। इसे छुटकारा दिलाना प्रत्येक भारतीय का परम कर्त्तव्य है। वे थे श्री देव सुमन।

अमर शहीद श्री देव सुमन का जन्म १५ मई सन् १९१५ ई० को टिहरी गढ़वाल के जौल ग्राम में श्री पंडित हरिराम शर्मा बडोनी के घर हुआ था। श्री पं० हरिराम भी जनसेवी लोक प्रिय वैद्य थे, आप की मृत्यु भी एक निर्धन हैजे के रोगी की सेवा करते हुये हुई थी। उस समय श्री सुमन की आयु तीन वर्ष की थी। उनकी माता का शुभ नाम श्रीमती तारा देवी था। माता विशुद्ध धार्मिक विचारों की थी। फिर देश सेवा के विचारों का होना स्वाभाविक ही था। एक दिन की घटना है कि जब देव सुमन देश सेवी हो गये उस समय राज्याधिकारियों ने उनकी माता जी को डराया-धमकाया, तो माता ने उत्तर में निर्भीक होकर कहा कि—"पुलिस वालो! तुम मुझे क्यों डराते हो, मुझे जेल से डर नहीं। पकड़ लो मुझे। आगे-आगे मेरा सुमन चलेगा, और पीछे-पीछे मैं चलूँगी।" धन्य ऐसी सन्तान, जिसके पिता निर्धन की सेवा में स्वर्गवासी हुये, और माता देश पर न्यौछावर होने को तत्पर है तथा सन्तान को देश पर मरने की शिक्षा देती है।

सुमन में बचपन से ही नेतृत्व शक्ति काम करती थी। वे ग्राम के बच्चों में कमाण्डर बनकर उन्हें फौजी खेल सिखलाते थे। यही कारण था कि वे किशोरावस्वस्था में ही अपनी अपूर्व संगठन शक्ति से प्रजामंडल की स्थापना कर उसका काम तेजी से चला पाये थे। विधाता का विधान ही विचित्र है। साधारण आर्थिक स्थिति की अवस्था में ही श्री पिता जी का बचपन में स्वर्गवास हो जाने से धनाभाव पढ़ाई चालू रखने में बाधक बना। घर से माता जी को विद्या पढ़ने की सान्त्वना देकर निकल पड़े। पञ्जाब विश्व विद्यालय की हिन्दी रत्न-भूषण तथा प्रभाकर और हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की विशारद व साहित्य रत्न परीक्षाएँ बड़े अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण कीं।

१५ वर्ष की छोटी ही आयु थी कि सन् १९३० का तूफानी जमाना आया। श्री देव सुमन गांधी जी के नमक सत्याग्रह के समय गैर कानूनी नमक बनाते पकड़ा गया। १४ दिन की जेल में २१ बेंतों की प्रतिदिन की सजा देकर छोड़ दिया गया।

सन् १६३१ में लाहौर ओरियन्टल कालेज में भर्ती हो गये। उन्हीं दिनों देश के राष्ट्र नायक श्री पं० मोतीलाल जी की मृत्यु पर देश भर में व्यापक हड़ताल हुई। सुमन ने भी कालेज के छात्रों में जागृति पैदा कर पूर्ण हड़ताल करादी। फल स्वरूप आप को कालेज से विद्रोही कहकर निकाल दिया गया। इसके बाद तो सुमन जी देश स्वतन्त्रता के दिवाने बन गये। और आगे पढ़ने का विचार त्याग देश सेवा करने का ही प्रोग्राम बना लखनऊ दिल्ली आदि नगरों में देश के कर्णधार नेताओं से मिल कर टिहरी स्टेट को आजाद कराने का प्रोग्राम बना अपने साथियों में घूम-घूम कर उन्हें आजादी का जाम पिलाने लग गये। वे उन दिनों अपनी धुन में पागल हो गये थे। रात-दिन एक कर जहाँ कहीं जाते वहां यही चर्चा करते कि टिहरी की जनता को दुहरी गुलामी से मुक्त करना है।

सन् ३७ की बात है टिहरी राज्य को पता लगा कि सुमन योग्य व्यक्ति है। यदि उसे नौकरी दे दी जाय तो फिर विद्रोह नहीं कर सकेगा। राजा ने उन्हें नरेन्द्रनगर बुलाया, अपने विचार व्यक्त किये, तो सुमन ने उत्तर दिया कि—"महाराज मैं चन्द चांदी के टुकड़ों के लिये अपने जीवन का भावी विकास नहीं रोक सकता।" उन्ही दिनों उनका विचार बी० ए०, एम० ए० आदि करने का था। इस लिये वे जामिया मिलया राष्ट्रीय विद्यालय में भर्ती हुये। स्वतन्त्रता की तो प्रचण्ड अग्नि आपके हृदय में धधक ही रही थी और फिर स्टेट के अत्याचारों का नग्न नृत्य उनके सामने आता तो तत्काल ही विद्याध्ययन का विचार त्याग देते। यहाँ भी ऐसा ही हुआ।

सन् १६३८ का समय था, चारों ओर स्वतन्त्रता की अग्नि धधक रही थी। श्री पं० जवाहरलाल नेहरू गढ़वाल के राजनैतिक सम्मेलन में श्रीनगर (गढ़वाल) पधारने वाले थे। बस स्वतन्त्रता समर के अमर सेनानी श्री सुमन श्रीनगर पहुँच गये। वहां उन्होंने पं० नेहरू से रियासती जनता की अवस्था बताई।

आपकी राजनैतिक विचारधारा तथा तीव्र सूझ-बूझ एवं मधुर भाषिता से पं० नेहरू बहूत ही प्रभावित हुए। परिणाम यह हुआ कि पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने भाषण में उसी दिन गढ़वाल राज्य की जनता के कष्टों का वर्णन किया। तत्पश्चात् देश के नेताओं से परामर्श कर आपने २३ जनवरी सन् १६३१ को देहरादून में "टिहरी राज्य प्रजामण्डल" की स्थापना की। फरवरी में जब लुधियाना में अखिल भारतीय देशी राज्य लोक-परिषद् का अधिवेशन हुआ तो उसमें आपको स्थायी समिति के हिमालय प्रान्तीय देशी राज्यों का प्रतिनिधि चुना गया। उस समय सुमन जी की आयु २४ वर्ष की थी। इस अधिवेशन की अध्यक्षता श्री पं० नेहरू ने की थी। उसमें आपने एक भाषण दिया था और "राज्यों में उत्तरदायी शासन हो" का प्रस्ताव पास करवाया था।

इन्ही दिनों दिल्ली में आपने श्री पं० हृदयनाथ कुँजरु की अध्यक्षता में "अखिल पर्वतीय सम्मेलन" करवाया था। लोक-परिषद् में राजनैतिक प्रतिनिधि की हैसियत में महात्मा गांधी से भी विचार विमर्श हुआ। और फिर महात्मा गांधी जी की प्रेरणानुसार टिहरी राज्य के अत्याचारों की जांच के लिये एक कमेटी बनी, जिसके सुमन जी मन्त्री बनाये गये। जब रिपोर्ट निकाली तब दुनिया को पता लगा कि रियासती जनता किस प्रकार से राहुओं का शिकार बनी हुई है।

श्री पं० जयनारायण व्यास (जो अ० भा० देशी राज्य लोक-परिषद् के अध्यक्ष थे) से सुमन जी का अटूट सम्बन्ध हो गया था। आप प्रस्तावादि बनाने भी बड़े पटु थे। क्योंकि आपका कार्य

क्षेत्र घर से बाहर ही था अतएव अपनी प्रिय धर्मपत्नी श्रीमती विनयलक्ष्मी (वर्तमान एम० एल० ए०-उत्तर प्रदेश) को कन्या गुरुकुल कनखल में प्रविष्ट करा दिया था।

पुन: सन् १९४० के लगभग मई मास में आप अपनी प्रिय जन्म भूमि टिहरी राज्य में पहुँच गये। वहां जाकर आपने राज्य के विरुद्ध बगावत करने का खुला चैलेंज दे दिया। यद्यपि आप पर राज्य ने प्रतिबन्ध लगा दिया था। परन्तु श्री नेहरू तथा महात्मा गांधी जी ने आपको पूरे जोर शोर से काम करने का आदेश दिया। फिर क्या था, श्री सुमन जी ने स्टेट में बगवत का झण्डा बुलन्द किया। किन्तु शीघ्र ही आपको गिरफ्तार कर लिया गया। जब दरोगा ने हाथ में हथकड़ियां डालीं तो उस समय सुमन ने एक उर्दू का शेर पढ़ा जिसकी मुझे एक लाइन याद रह सकी कि—"तमन्ना जिसकी थी मुद्दत से वह दिन आज आया है।" उनकी बहादुरी को देखकर सरकारी कर्मचारी भी प्रशंसा करते थे। कुछ दिन कारावास में रखने के पश्चात् आपको स्टेट से निर्वासित कर दिया गया।

फिर आजादी के परवानों को परखने के लिए सन् १९४२ का समय आया। सुमन जी ने स्टेट में विद्रोह की आग सुलगा दी। इधर सारे देश में महात्मा गांधी जी ने "अंग्रेजो भारत छोड़ो" का नारा लगाया। उधर श्री सुमन ने "राजाओ अंग्रेजों से नाता तोड़ो" का भी नारा बुलन्द किया। आपको गिरफ्तार कर देहरादून जेल भेज दिया। देहरादून से फिर आपको २१ नवम्बर ४२ को आगरा जेल भेज दिया गया। वहां आपको काफी यातनायें भुगतनी पड़ीं। १९ नवम्बर सन् १९४३ को रियासती व्यक्ति समझ कर आपको रिहा कर दिया गया।

श्री सुमन जी आगरा जेल से छूटते ही टिहरी आये और वहाँ के राजवन्दियों पर होने वाले जुल्मों की भयानक कथा सुनकर आप अपने को न सम्भाल सके और उन का मुकाबला करने टिहरी की ओर चल दिये। फिर सुमन जी को ३० नवम्बर सन् ४३ को जेल में डाल दिया गया और राजद्रोह का अभियोग चलाया गया। इसी बीच श्री सुमन ने जेल के अत्याचारों के विरुद्ध महाराजा टिहरी से लिखा पढ़ी कर मिलने की इच्छा प्रकट की। परन्तु मिलने की आज्ञा न मिली। फिर सुमन ने २ मई १९४४ से राजा के अत्याचारों के विरुद्ध यह कह कर कि "मैं अपने शरीर के कण-कण के नष्ट होने तक टिहरी की नागरिक आजादी की रक्षा करूँगा," आमरण अनशन कर दिया। ८४ (चौरासी) दिन की लम्बी भूखहड़ताल में अपने जर्जर शरीर की एक-एक सांस से जिस साहस और धैर्य के साथ अन्याय और क्रूरता से संघर्ष करते हुए २५ जौलाई सन् ४४ को हंसते-हंसते सुमन ने भारत माता की पवित्र वेदी पर शरीर को भेंट किया, टिहरी जेल का प्रत्येक कण-कण इस गौरवमयी गाथा को सुनाता रहेगा।

सुमन की शहादत की खबर तमाम देश में बिजली की भांति फैल गई। देशवासियों ने देखा कि सुमन तो भारतीय भव्य मन्दिर की स्वतन्त्रता देवी के चरणों में भेंट हो गया।

डा० पट्टाभि सीतारमैय्या ने अमर शहीद श्री देव सुमन को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा था कि—"युवा सुमन उन अमूल्य फूलों में से थे, जो कि बिना देखे मुर्झा जाने के लिए पैदा होते हैं। लेकिन वे अपने पीछे अपनी सुगन्ध छोड़ गये हैं। सुमन ने जो सेवा की वह सदा अमर रहेगी।

सुमन वास्तव में सुमन फूल थे। उन्होंने बचपन से ही आजादी के गीत गाये और अत्याचार का तीव्र विरोध किया। अन्त में भारतीय स्वतन्त्रता की प्रचण्ड अग्नि में अपने आपको स्वाहा कर दिया।

सिंह और दत्त का संयुक्त वक्तव्य

७ मई १६२६ को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को न्यायालय में उपस्थित किया गया। ऐसेम्बली हाल में बम फेंकने के अपराध में इन पर पुलिस ने धारा ३०७ (हत्या करने का प्रयास) और विस्फोटक कानून की धारा ३ लगाई। जनता का कोई प्रदर्शन न हो, इस भय से न्यायालय की सभी कार्यवाही देहली जेल में ही हुई। मजिस्ट्रेट थे देहली के एडीशनल मजिस्ट्रेट मि० एफ० बी० पुलो। पुलिस का सख्त पहरा था। पुलिस इतनी डरी हुई थी कि प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति को शंका की दृष्टि से देखती थी। जब दोनों अभियुक्तों को न्यायालय में उपस्थित किया गया तब उन्होंने बड़े उच्च स्वर से "इन्कलाब जिन्दाबाद" "साम्राज्यवाद का नाश हो" के नारे लगाये। दो दिन तक सबूत के गवाहों के बयान होते रहे, तत्पश्चात् सिंह और दत्त को सफाई का बयान देने को कहा तो उन्होंने निषेध कर दिया और कहा कि हमें जो कुछ कहना है सेशनजज की अदालत में ही कहेंगे। ४जून १६२६ से देहली जेल में ही सेशनजज की अदालत लगी। सरकारी गवाहों ने पूर्ववत् अपने वक्तव्य दोहरा दिये। उनके पश्चात् भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने एक संयुक्त लिखित वक्तव्य दिया। यह वक्तव्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि क्रान्तिकारी समिति ने जब बम फेंकने का निश्चय किया था तब यह भी निश्चय किया था कि जो लोग बम फेंके वे न्यायालय में ऐसा वक्तव्य दें, कि जिस से हमारे आन्दोलन के उद्देश्य का स्पष्टीकरण हो जाये। इसी लिए इस कार्य के लिए वीर शिरोमणि भगतसिंह को चुना गया और भगतसिंह ने भी अपने साथ राज गुरु को बहुत आग्रह करने पर भी न ले कर बटुकेश्वर दत्त को ही लिया। उस समय वक्तव्य अंग्रेजी में दिया गया था। यहाँ हम हिन्दी में उद्धृत करते हैं। —वेदव्रत सम्पाकक।

"हम लोग संगीन जुर्मो के अभियुक्तों की हैसियत से यहां उपस्थित हैं और इस मौके पर हम अपने आचरण की सफाई देते हैं। (हमारे आचरण के सम्बन्ध में) निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित होते हैं—पहला प्रश्न यह है कि क्या असेम्बली भवन में बम फेंके गये थे? और फेंके गये थे तो क्यों? दूसरा सवाल यह है कि नीचे की अदालत ने हम पर जो फर्द जुर्म लगाया है, क्या यह सत्य है अथवा नहीं? पहले प्रश्न के उत्तर में हमारा जवाब है कि हां असेम्बली में बम फेंके गये थे किन्तु अपने आपको चश्मदीद गवाह कहलाने वालों में से कुछ गवाहों ने झूठा बयान दिया है और चूंकि हम अपनी कार्य तत्परता को उस हद तक जहां तक कि यह जाती है और जिस रूप में कि वह है अस्वीकृत नहीं करते, इस लिये उन गवाहों के बारे में हमारा यह बयान जिस लायक यह है वैसा ही समझा जाय। उदाहरण के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि सार्जेन्ट टेरी की यह गवाही कि उसने हम में से एक आदमी के हाथ में से पिस्तौल छीनी सरासर बनाई हुई झूठ है। क्योंकि जिस समय हमने आत्मसमर्पण किया था उस समय हम में से किसी के पास भी पिस्तौल न थी। दूसरे गवाहों ने जिन्होंने हमारे द्वारा बम फेंके जाते देखने का बयान दिया है, सरासर झूठ बोलने में जरा भी संकोच नहीं किया है। जो लोग कानूनी स्वच्छता और निष्पक्ष न्यायदान के लिये प्रयत्नशील हैं उनके लिए यह (गवाहों की गलत बयानी) स्वतः एक नैतिक सबक है। इसी के साथ ही हम सरकारी वकील की निष्पक्षता और अदालत की इस वक्त तक की न्याय परख के मनोभाव को स्वीकृत करते हैं।

बम क्यों फेंके गये ?

पहले प्रश्न के दूसरे अंश के उत्तर देने में हमें मजबूरन कुछ विस्तार की शरण लेनी पड़ती है और इस प्रकार हमें अपने कार्य के प्रेरक भावों और उन सब परिस्थितियों का पूर्ण और नितान्त स्पष्ट निरूपण करना पड़ता है। जिससे धीरे-धीरे यह बम दुर्घटना ऐतिहासिक काण्ड में परिणत हो हो गई। कुछ पुलिस अफसरों ने हमसे जेल में मुलाकात की थी और उन्होंने हम से कहा था कि लार्ड इरविन ने बड़ी व्यवस्थापिका सभाओं के संयुक्त अधिवेशन में भाषण देते हुए इस घटना को एक ऐसी बात बतलाया था जो किसी व्यक्ति के प्रति नहीं किन्तु एक संस्था के प्रति की गई थी। जब हमने यह सुना तब हमने बहुत शीघ्र ही यह बात मान ली कि इस घटना का सच्चा महत्व बहुत ठीक तौर पर समझ लिया गया हैं। हम मनुष्यता के प्रेम में किसी से भी पीछे नहीं हैं और किसी व्यक्ति के खिलाफ घृणा-भाव रखना तो दूर रहा हम मनुष्य जीवन के वास्तविक रूप में पवित्र समझते हैं। हम न तो उस प्रकार के घिनोने कुकृत्य के करने वाले एवं देश के कलंक हैं। जैसा कि अधकचरे साम्यवादी दीवान चमनलाल हमें कह चुके हैं, तथा न हम ऐसे पागल ही हैं, जैसा कि लाहौरी 'ट्रिब्यून' और कुछ अन्य लोगों ने हमें बतलाया है।

संस्था के खिलाफ आवाज बुलन्दी

हम बहुत नम्रता पूर्वक यह दावा करते हैं कि हम कुछ नहीं हैं। सिवा इसके कि हम इतिहास के गम्भीर विद्यार्थी हैं और आपने मुल्क की हालत को देखने वाले हैं, तथा मानवीय आकांक्षाओं का अनुभव करने वाले हैं और हम पाखंड तथा मक्कारी से नफरत करते हैं। हमारा यह व्यावहारिक विरोध-प्रदर्शन एक ऐसी संस्था के खिलाफ था जो अपने जन्म काल ही से न केवल अपना निकम्मापन ही प्रकट करती रही है, बल्कि शैतानी कर सकने की अपनी अत्यधिक शक्ति का प्रमाण भी देती रही है। ज्यों-ज्यों हमने इस पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया त्यों-त्यों हम पर इस विश्वास की गहरी छाप पड़ती गई कि यह संस्था दुनिया को भारतवर्ष की बेचारगी और उसकी बेइज्जती दिखलाने के लिये ही कायम है। यह संस्था गैर जिम्मेदार और तानाशाही शासन के विकट प्रभुत्व का प्रतिरूप है। जनता के प्रतिनिधियों ने बार-बार राष्ट्र की मांगें पेश कीं और उन राष्ट्रीय मांगों का अन्तिम स्थान कूड़े की टोकरी ही रहा है। ऐसेम्बली द्वारा पास किये गये पुनीत प्रस्ताव नगण्य समझ कर घृणा से पैरों तले कुचले गये हैं और वह भी कहां ? यहां इस नाम धारी भारतीय पार्लियामेंट के भवन में ! दमनकारी और निरंकुश कानूनों को तोड़ने के सम्बन्ध में किये गये प्रस्ताव निहायत नख्वाखाना हिकारत की नजर से देखे गये हैं और सरकार के वे कानून और प्रस्ताव जिन को जनता के चुने हुए मेम्बरों ने अस्वीकरणीय समझ कर ठुकरा दिया था, सिर्फ एक कलम के शोशे से ज्यों के त्यों रहने दिये गये।

थोथा दिखावा

थोड़े में बहुत प्रयत्न करने के बाद भी हम इस संस्था के अस्तित्व की उपादेयता को समझने में नितान्त असमर्थ रहे हैं। बावजूद इस तमाम शान शौकत और तड़क भड़क के जो कि करोड़ों मेहनतकश लोगों की कष्ट प्राप्य दौलत के बल पर कायम रखी जाती है। हम यह समझते हैं कि यह संस्था एक ढोल की पोल का नजारा और शैतानियत से भरा एक बहाना मात्र है। इसके साथ ही हम यह नहीं समझ पाये है कि उन सार्वजनिक नेताओं के मनोभावों को जो जनता का समय और धन भारतवर्ष की

निरुपाय गुलामी के इस नाटकीय प्रदर्शन के लिए खर्च करते हैं, हम इन सब बातों पर गौर करते रहे हैं और साथ ही हमने गौर किया है, मजदूर दल के नेताओं की गठरी भर गिरफ्तारी पर। ट्रेड डिस्प्युटस बिल का प्रारम्भ जिस समय हमें एसेम्बली में खींच कर ले आया उस समय हमने उस बिल की प्रगति को देखा और उस पर किये गये वाद-विवाद को भी सुना। यह सब देखने सुनने के पश्चात् हमारा यह विश्वास दृढ़ हो गया है कि यह संस्था तो सब कुछ हड़प जाने वालों की गला घोंटू ताकत का भय, त्रस्तकारी स्मारक और निस्सहाय मेहनतकशों की गुलामी का चिन्ह है।

जगाने के लिये बम जरूरी है

अन्त में तमाम देश भर के प्रतिनिधियों के आदरणीय मस्तकों पर अमानुषिक और बर्बरतापूर्ण कानून की अपमान जनक गाज गिराई गई और इनका नतीजा यह हुआ कि भूखों मरने वाले और बमुश्किल तमाम अपना पेट पालने वाले लोग अपनी आर्थिक दशा को सुधारने में प्रारम्भिक स्वत्व और एक मात्र उपाय से बंचित कर दिये गये। कोई भी आदमी जिसने हमारी तरह इन बेजवान मनमानी दिशा में हाँक दिये जाने वाले मजदूरों के प्रति तादात्म्य भाव अनुभव किया है, सम्भवत: इस दृश्य को विचलित चित्त से नहीं देख सकता था। कोई भी आदमी जिसके दिल से खून झरता हैं, उन आदमियों के लिये जिन्होंने लूट खसोट करने वालों के आर्थिक भवन के निर्माण के लिये अपना जीवन रक्त दे दिया है और लूट खसोट करने वालों की श्रेणी में, इस मुल्क में यह सरकार सबसे बड़ी दोहन कर्त्ता है—अपनी आत्मा और इस निर्दय प्रहार ने हमारे हृदय के भीतर से वेदना का वह आक्रोश जबरदस्ती बाहर खींच लिया, इसलिए एक समय गवर्नर जनरल की कार्य कारिणी के कानून सदस्य स्वर्गीय श्री एस० आर० दास के उन शब्दों को ध्यान में रखकर जो उनके उस प्रसिद्ध पत्र में प्रकाशित हुए थे, जिसे उन्होंने अपने पुत्र को लिखा था, और जिन शब्दों की मंशा यह है कि इङ्गलेंड को अपने सुख-स्वप्न से जगाने के लिये बम जरूरी है इन शब्दों पर विचार करके हमने ऐसेम्बली की फर्श पर बम फेंक दिये। और यह सिर्फ इस लिए किया कि हम उन आदमियों की ओर से जिनके पास अपने हृदय को चीरने वाली वेदना को प्रगट करने का कोई साधन नहीं है, घोर विरोध प्रदर्शित कर दें। हमारा एक मात्र उद्देश्य यह था कि 'हम लोग बहरों के कान खोल दें। और बेपरवाहों को, अन्य मनस्कों को यथासमय चेतावनी दे दें।

सतयुग अहिंसा के काल का अन्त

औरों ने भी इस दशा का इतने ही ज्वलन्त रूप में अनुभव किया है जितना कि हम ने। और भारतीय मनुष्यों के महासागर की दिखाऊ अक्षुब्धता के भीतर से एक जबरदस्त तूफान फट पड़ने को है। हम ने तो सिर्फ खतरे का सूचक झंडा टांग दिया है। सिर्फ उन लोगों के देखने के लिये जो भागे जा रहे हैं बिना यह विचार किये कि आगे बड़ा भारी खतरा है। हम ने तो सिर्फ यह सूचना भर दी है कि सतयुगी अहिंसा के दिन लद गये। उठती हुई पीढ़ी अहिंसा के निकम्मेपन का इतनी अच्छी तरह अनुभव कर चुकी है कि अपने उस अनुभव में अब उसे सन्देह की छायामात्र भी नहीं रह गई है। मनुष्यता के प्रति हमारी हार्दिक सद्इच्छा है और प्रेम से प्रेरित होकर हम ने सावधान कर देने का यह तातसीकर इसलिए अख्तियार किया है कि बेशुमार कष्ट और वेदनायें टाली जा सकें।

हम ने पहले के पैराग्राफ में 'सतयुगी अहिंसा' शब्द का इस्तेमाल किया है। इस शब्द की व्याख्या करना आवश्यक है। जब बल प्रयोग आक्रान्त करने के लिये किया जाता है, तब 'हिंसा' कहलाता है।

और इस कारण उसका नैतिक मण्डन नहीं किया जा सकता। किन्तु जब बल का प्रयोग (न्यायसंगत) कार्य के पोषण के लिये किया जाता है तब उस बल प्रयोग का नैतिक समर्थन किया जा सकता है। तब बल प्रयोग को बिल्कुल विप्लुत कर देना एक खामखयाली एक सतयुगी बात है। यह नयी हलचल जो मुल्क में पैदा हो गई है और जिस की हम ने सूचना भर दी है, उन आदर्शों द्वारा प्रेरित हुई है जिन के द्वारा गुरु गोविन्दसिंह और शिवाजी, मस्तफा कमाल और रजाखां, वाशिंगटन और गेरी बाल्डी, लाफाएत और लेनिन प्रेरित और परिचालित हुए थे। चूंकि विदेशी सरकार और भारतीय जनता के नेताओं ने अपने आंख, कान इस नये आन्दोलन के अस्तित्व और उसकी ध्वनि की ओर से बन्द कर लिये थे इसलिए हम ने एक बार सब को सावधान कर देना चाहा और सो भी ऐसे समय और ऐसे स्थान पर जहां कि हमारी चेतावनी अश्रुत रह ही न सके।

हमारे इरादे का विस्तार

अभी तक हम ने इस घटना के प्रेरकभाव का ही दिग्दर्शन कराया है। अब हम अपने इरादों के विस्तार का निदर्शन कर देना आवश्यक समझते हैं। इस बात का विरोध नहीं किया जा सकता कि हमारे अन्दर उन आदमियों में से जिन्हें थोड़ी बहुत चोट आई किसी एक के प्रति भी, या व्यवस्थापिका सभा के किसी अन्य व्यक्ति के प्रति भी हमारे अन्दर कोई व्यक्तिगत विद्वेष भावना या नफरत नहीं थी। इस के विपरीत हम फिर से यह बात दुहराते हैं कि हम मानव जीवन को अवर्णनीय रूप में पुनीत समझते हैं और हम मनुष्यता की सेवा में अपने प्राणविसर्जन कर देना कहीं उत्तम समझेंगे। किसी को हानि पहुंचाने की तो बात ही नहीं उठती। हम किराये के सिपाही नहीं हैं, भाड़े के सिपाहियों को यह सिखलाया जाता है कि वे बिना ममता के प्राणनाश कर देंगे। हम मनुष्य जीवन के प्रति आदर भाव रखते हैं और जहाँ तक बन पड़ता है हम मनुष्य जीवन की रक्षा का प्रयत्न करते रहते हैं और फिर भी यह बात स्वीकार करते हैं कि हम ने असेम्बली भवन में जानबूझ कर बम फेंके।

किन्तु वास्तविक बातें स्वयं अपनी कथा आप कह दे रही हैं और बिना कल्पित या सांकेतिक परिस्थितियों एवं गृहीत मान्यताओं का सहारा लिये ही (हमारे) इरादे के सम्बन्ध में परिणाम केवल हमारे कार्य के नतीजे के ऊपर से ही निकलना चाहिये। गवर्नमेन्ट विशेषज्ञ की गवाही के होते हुए भी जो बम असेम्बली भवन में फेंके गये थे उन की वजह से सिर्फ एक खाली मञ्च थोड़ी सी टूट फूट गई और आधे दर्जन से भी कम आदमियों को थोड़ी-थोड़ी खराश सी आ गई। गवर्नमेन्ट विशेषज्ञ ने इस (हल्की क्षति के) परिणाम को जादूमन्तर कहा है, लेकिन हम इस (हल्की क्षति) में एक निश्चित वैज्ञानिक परिणाम सूचकता पाते हैं। पहली बात तो यह है कि दोनों बम खाली जगहों में डेस्कों और लकड़ी के चौखटों तथा बेंचों के बीच फूटे थे। दूसरी बात यह है कि वे आदमी भी जो बम फूटने के स्थान से केवल दो फीट के अन्तर पर थे, या तो बिल्कुल बच गये और या बहुत हल्की तड़प से चोटियल हुए। दो फीट के भीतर रहने वालों में मिस्टर पी० आर० राव०, मि० शंकर राव और सर जार्ज शुस्टर थे। सरकारी विशेषज्ञ ने इन बमों को जिस शक्ति का बतलाया है, वे यदि ऐसे ही होते तो लकड़ी या चौखटा चकनाचूर हो गया होता और आसपास कुछ गजों के भीतर के आदमी ठण्डे हो गये होते। इसके अलावा हम बमों को सरकारी प्रतिनिधियों के बैठने के स्थान पर जहां बहुत से गण्यमान्य लोग बैठे हुए थे, फेंक सकते थे और अन्त में हम उन सर जान साइमन को भी घेर कर मार सकते थे जिन के अभागे कमीशन का सब लोग

घृणा की दृष्टि से देखते हैं। सर जान उस समय प्रेसीडेन्ट महाशय के अतिथियों के स्थान पर बैठे थे। लेकिन यह सब हमारे से बाहर की बात थी। बम ने सिर्फ उतना काम किया जितने के लिये कि वे बनाये गये थे। और 'जादू मन्तर' सिर्फ यही है कि हमने जानबूझ कर बमों को निरापद स्थान में फेंका था।

विचार अमर है

बाद में हमने जानबूझ कर आत्म समर्पण कर दिया। हमने जो कुछ किया था, उसका दंड भोगने के लिये हम तैयार थे। साथ ही हम साम्राज्यवादी लूट खसोट करने वालों को यह बतला देना चाहते थे कि व्यक्तियों को कुचल डालने से वे दाहक विचारों को नहीं मार सकेंगे। दो नगण्य इकाइयों (हम दोनों) को कुचलने से राष्ट्र नहीं दबेगा। हम यह ऐतिहासिक सबक फिर से तरो-ताजा करना चाहते थे कि वेस्टाइल (कैदखाने) और अन्धाधुन्ध वारन्ट फ्रांस की क्रान्तिकारिणी हलचल को दबाने में असमर्थ हुए। फ्राँसीसियों और साइबेरिया की खानों की दर्दनाक गुलामी, रूसी विप्लवकी चिनगारी नहीं बुझा सकी थी। खूनी इतवारों और खूंखार किराये के सिपाहियों की वजह से आयरिश स्वतन्त्रता की हलचल नहीं मिटाई जा सकी। क्या काला कानून और सेफ्टी बिल भारत में स्वतन्त्रता की लपट को बुझा सकता है? षड्यन्त्र के घड़े गये या ढूंढ़कर निकाले गये। मुकदमे और उन नौजवानों का कारागार-वास, जिन्होंने विशालतर आदर्श की झांकी देख ली है, भारत में क्रान्ति की प्रगति को नहीं रोक सकते। लेकिन समय पर दी गई चेतावनी, यदि उसकी ओर से कान न मूंद लिये जायें तो प्राणों के नाश और सामूहिक वेदना को रोकने में सहायक हो सकती है। हमने अपने ऊपर यह कार्य भार लिया था कि हम चेतावनी दे दें, और हम समझते हैं कि हमारा कार्य सम्पूर्ण हो गया है।

विप्लव क्या है ?

भगतसिंह से नीचे की अदालत में पूछा गया था कि तुम्हारा 'क्रान्ति या 'विप्लव' शब्द से क्या मतलब है? इस प्रश्न के उत्तर में मैं कहूंगा कि क्रान्ति का आवश्यक रूप में यह मतलब नहीं है कि उसमें खून खच्चर ही हो, और न क्रान्ति में व्यक्तिगत प्रतिशोध ही के लिये कोई स्थान है। क्रान्ति बम और पिस्तौल का धर्म नहीं है। क्रान्ति से हमारा मतलब यह है कि वर्तमान वस्तु स्थिति और समाज व्यवस्था जो स्पष्टतः अन्याय के ऊपर स्थित है, परिवर्तित हो। पैदा करने वाले या श्रमजीवी समाज के अत्यन्त आवश्यक अंश हैं। परन्तु वे दोहकों द्वारा नोचे खसोटे जाते हैं। उनकी मेहनत का फल उन्हें नहीं मिलता, दूसरे उसे हड़प जाते हैं और उनके प्रारम्भिक अधिकार उनसे छीन लिये जाते हैं। एक ओर वह किसान, जो सबके लिये अनाज पैदा करता है अपने कुटुम्ब के सहित भूखों मरता है। वह जुलाहा जो दुनिया की मण्डी को बुने हुए कपड़ों से पूर्ण कर देता है अपना और अपने बच्चों का तन ढकने भर को भी नहीं पाता। राज, लोहार और बढ़ई जो बड़े बड़े विशाल भवन खड़े करते हैं गन्दे घरों और अनाथालयों में सड़ते खपते और मरते रहते हैं और दूसरी ओर नोचने खसोटने वाले पूंजीपति जो समाज के रक्त शोषक हैं अपनी सनकों की सन्तुष्टि के लिये करोड़ों खर्च कर डालते हैं। ये भयानक असमानतायें और सुविधा प्राप्ति की यह बलात् विषमतायें बडी भारी अस्तव्यस्त दुरावस्था की ओर जा रही हैं। इस प्रकार की अवस्था अब अधिक दिनों नहीं रह सकती। यह प्रकट है कि समाज का वर्तमान रंग ढंग एक ज्वालामुखी के किनारे बैठा हुआ रंगरेलियां कर रहा है। लूट खसोट करने वालों के निष्पाप बच्चे और करोड़ों

दोहित, पतित और प्रताड़ित लोग एक भयानक ढालू जमीन के किनारे पर चल रहे हैं। इस सभ्यता का सम्पूर्ण विशाल भवन यदि समय पर न बचाया गया तो ढह कर चूर चूर हो जायेगा।

पूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता

इसलिये पूर्ण परिवर्तन की बहुत आवश्यकता है। उन आदमियों का जो इस बात का अनुभव करते हैं, यह कर्त्तव्य है कि वे समाज को साम्यवादी सिद्धान्त की भित्ति पर पुनः संगठित करें। जब तक यह नहीं हो जाता और जब तक मनुष्य द्वारा मनुष्य का दोहन और राष्ट्र द्वारा राष्ट्र का दोहन-जो साम्राज्य के नाम से मटरगस्ती करता संसार में डोल रहा है, खतम नहीं कर दिया जाता। जब तक वह वेदना और संहार-क्रीड़ा जिसकी आशंका से मानवता आज संत्रस्त है रोकी नहीं जा सकती तो युद्ध को खतम कर देने की तमाम बातें और नवयुग आगमन का ख्याल एक नग्न पाखंड मात्र है।

क्रान्ति से हमारा मतलब ऐसी समाज व्यवस्था के संस्थापन से है जिसे इस प्रकार के स्खलन का भी कभी भय न रहे और जिसमें सर्वसाधारण की सत्ता का सर्वस्व स्थापित हो। इसका नतीजा यह होगा कि दुनिया में एक ऐसा संसार संघ स्थापित हो जायेगा जिसके कारण मनुष्यता का उद्धार होगा और संसार पूंजीवाद के बन्धन और साम्राज्यवाद के दारुण दुःख से मुक्त हो जायेगा।

यह हमारा आदर्श ! और अपने प्रेरक भाव की इस विचार धारा से प्रभावित होकर हमने बहुत न्यायपूर्ण और साथ ही बहुत उच्च स्वर से पूर्ण चेचावनी दे दी है यदि हमारी चेतावनी पर ध्यान न दिया गया और यदि वर्तमान शासन-क्रम इसी प्रकार प्राकृतिक शक्तियों के उठते हुये तूफान के बीच बाधक सिद्ध होता रहा तो फिर एक घमासान एवं घोर युद्ध का होना अवश्यम्भावी है। उस युद्ध में तमाम बाधायें उखाड़ कर फेंक दी जायेंगी और सर्वजन सत्ता की स्थापना होगी और तब क्रान्ति के आदर्श की पूर्ति का मार्ग प्रशस्त होगा।

मानवता का अविच्छेद्य अधिकार

विप्लव-क्रान्ति मनुष्यता का अविच्छेद्य अधिकार है। स्वतन्त्रता सबका अनिर्दिष्ट जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमजीवी ही समाज का सच्चा धुरीण है। श्रमजीवियों की अन्तिम नियति है जनता की सत्ता। इन आदर्शों और इन विश्वासों के लिये हम प्रत्येक वेदना को जो हमें दी जायेगी, आदर से, स्वागत पूर्वक अंगीकार करेंगे। इस विप्लव की बलिवेदी में अर्पित करने के लिये हम अपनी नौजवानी की धूप--यह सर्वरस लाये हैं, क्योंकि इतने महान् आदर्श के लिये किसी भी प्रकार का बलिदान अत्यधिक नहीं कहा जा सकता। हम सन्तुष्ट हैं। हम क्रान्ति के अवतार की प्रतीक्षा कर रहे हैं !! क्रान्ति युग युग जीवे !"

विश्ववन्द्य महात्मा गांधी—



जिनका ३० जनवरी १९४८ को बलिदान हुआ।



अखण्ड भारत

आजादी की वधशाला

(राष्ट्रकवि रामावतार 'विकल')

(१)

द्वार खोलकर ऊँचे स्वर से,
बोला कातिल मतवाला ।
वो ही आये देश धर्म की,
जिसे जलाती हो ज्वाला ॥
सुरा सुराही शीशा सागिर,
सुरबाला का नाम नहीं ।
बिना पिये ही अविकल जग को,
'विकल' बनाती वधशाला ॥

(२)

देख धर्म ही साथ जायेगा,
और न कुछ जाने वाला ।
समझाने पर भी जालिम ने,
काटा जिस्म जला डाला ॥
जिसे समझते हो देहली में,
शीशगंज का गुरुद्वारा ।
'तेगबहादुर' गुरु अर्जुन की,
यहीं बनी थी वधशाला ॥

(३)

पहिले दीवारों में दोनों,
वीरों को चिनवा डाला ।
तान तेग फिर सिर के ऊपर,
बोला कातिल मतवाला ॥
धर्म छोड़ दो बच सकते हो,
बोले फिर भी है मरना ।
वाह गुरु की फतेह से एक दम,
गूँज उठी थी वधशाला ॥

(४)

[illegible]
[illegible]मा मुबारक ने प्याला ।
[illegible] दी,
[illegible] में जीवन ज्वाला ॥
बांध पीठ सुत चढ़ घोड़े पर,
झूम-झूम कर मतवाली ॥
खोल गई सन् सत्तावन में,
झांसी वाली वधशाला ॥

(५)

धोखे से मारा जाता है,
सत्य बात कहने वाला ।
पिला दूध में कांच लोभवश,
अपना धर्म गवां डाला ॥
'ऋषि दयानन्द' तेरे उर का,
वार पार क्या खाक मिलै ।
बख्शा कातिल को इनाम,
बदनाम नहीं की वधशाला ॥

(६)

हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य की,
भड़क उठी एक दम ज्वाला ।
उसे बुझाने हित उसने,
खून पसीना कर डाला ॥
आंक सके न फिर भी कीमत,
मजहब के अन्धे जौहरी ।
'हा ! गणेशशंकर' जैसे की,
बना कानपुर वधशाला ॥

(७)

जा प्रयाग में कुम्भ त्रिवेणी,
न्हाता है क्या मतवाला ।
धर्म कर्म सब तेरे निष्फल,
क्योंकि तेरा दिल काला ॥
पहले जा अलफ्रेड पार्क में,
होगा तीर्थ तभी सफल ।
खोल गया आजाद दिल जला,
आजादी हित वधशाला ॥

(८)

यहीं रूप रानी के गल में,
डाली मोती ने माला।
आजादी का यहीं जवाहर,
कमला ने दीपक बाला॥
जीते जी जल गया देश हित,
घर का घर ही दीवाना।
आज वही आनन्द भवन है,
नेहरू वंश की वधशाला॥

(९)

ब्रिटिश कफन की कील बनेगा,
मेरे सीने का छाला।
आगे बढ़कर झूम गया,
पंजाब केसरी मतवाला॥
तू जाये लाहौर तो मस्तक,
झुका चूम लेना भू को।
माल रोड पर बनी हुई है,
लाला जी की वधशाला॥

(१०)

डायर ओडायर का हमको,
याद कारनामा काला।
वही जुल्म की अन्तिम सीमा,
बना तीर्थ जलियां वाला॥
पिण्डदान करने कुटुम्ब को,
उठो सभी पञ्जाब चलें।
नया राष्ट्र निर्माण कर गई,
उन वीरों की वधशाला॥

(११)

नामुमकिन को मुमकिन कर,
दिखलाता है करने वाला।
जिसने सिर रख लिया हाथ पर,
उसने सब कुछ कर डाला॥
कब से था पीछे दीवाना,
दम लेकर ही दम छोड़ा।
खुले खजाने लन्दन खोली,
'उधमसिंह' ने वधशाला॥

(१२)

दूर फेंक दो तुलसी दल को,
तोड़ो गंगाजल प्याला।
दुआ फातहा दान पुण्य का,
मरे नाम लेने वाला॥
मेरे मुँह में अरे डाल दो,
एक उसी सतलुज का घूँट।
जिसके तट पर बनी हुई है,
'भगतसिंह' की बधशाला॥

(१३)

'रोशन' सा दिल जला कहां है,
'लहरी' सा विषियर काला।
दीवाना अशफाक बना दे,
सबको विस्मिल मतवाला॥
फांसी के तख्ते पर कीमत,
आजादी की आँक गये।
महाकृतघ्नी भूल जाये जो,
उन वीरों की वधशाला॥

(१४)

गीता गीता कहे न कहता,
त्यागी त्यागी मतवाला।
लिप्त हुआ माया में भूला,
अपने को भोला भाला॥
गीता से अमरत्व बरसता,
है फाँसी के तख्ते पर।
खुदी छोड़ कर कभी न देखी,
'खुदीराम' की वधशाला॥

(१५)

रोक सकी कब बूढ़ी मां के,
अन्तर की जलती ज्वाला।
रोक सकी कब नव बाला के,
नयनों से बहती हाला॥

चौरासी दिन के अनशन से,
चौरासी बन्धन काटे।
अमर हिमालय की चोटी पर,
देवसुमन की वधशाला ॥
(१६)
'राज नारायण मिश्र' वही,
जो खीरी का रहने वाला।
आजादी के लिये गले में,
फांसी का फन्दा डाला ॥
पत्नी की आंखों में आंसू,
देखे तो मुंह फेर लिया।
अरी अभागिन हंसते-हंसते,
देख हमारी वधशाला ॥
(१७)
कुछ दिन को तो दुनियां ही से,
इसे अलग था कर डाला।
अरे जहां 'चित्तू पांडे' का,
रहा खूब शासन आला ॥
कौन भूल जायेगा बोलो,
'बलिया, का बलिदान अमर।
वम बरसा कर अंग्रेजों ने,
जहां बनाई वधशाला ॥
(१८)
चली फौज आजाद हिन्द,
पीकर आजादी का प्याला।
जीत लिया 'इम्फाल' जली,
जनरल टोजो के उर ज्वाला ॥
'रसद न भेजी' हाय किया,
विश्वासघात जालिम तूने।
वही पाप बन गया अन्त,
जापान देश की वधशाला ॥
(१९)
जेरुसिलम यहीं पर समझो,
काबा बुतखाना आला।
बौद्ध बिहार जैन मन्दिर,
औ गुरुद्वारा नानक वाला ॥

कहां भटकते फिरते पगलो,
आओ परिक्रमा कर लें।
'देसाई' 'कस्तूरबा' की,
बनी जहां पर वधशाला ॥
(२०)
भीष्म पितामह सा ब्रह्मचारी,
था दिलेर वह दिल वाला।
डाल चुकी आजादी जिस के,
गले में खूब विजय माला ॥
परवाना बन कर दीवाना,
हा ! अनन्त की ओर उड़ा।
अरे दैव ! निर्दयी खोल दी,
क्या सुभाष की वधशाला ॥
(२१)
हटा न मुल्ला और पुजारी,
के दिल से पर्दा काला।
कभी न मिल कर पीने देते,
यह आजादी का प्याला ॥
छुरी कटारी चल पड़ती हैं,
जरा जरा सी बातों पर।
मन्दिर, मस्जिद आज बने हैं,
भाई भाई की वधशाला ॥
(२२)
मन्दिर तोड़ मुसल्मां इक दम,
बोल उठा अल्ला ताला।
मस्जिद फूंक और हिन्दू का,
बजा शंख घंटा आला ॥
जान पाये ना दोनों पागल,
उसके नाम अनेकों हैं।
किया धर्म बदनाम खोल,
'रहमान' 'राम' की बधशाला ॥
(२३)
दाढ़ी चोटी के झगड़े में,
जीवन व्यर्थ गंवा डाला।
खुराफात में फंस कर भूला,
अस्लि बात को मतवाला ॥

मुसलमान में बोल कभी क्या,
हिन्दू में क्या लाल लगे।
बुरा वही है जिसने खोली,
अगर किसी की वधशाला ॥

(२४)

अपने घर में अपने कर से,
अरे लगा रही ज्वाला।
एक दूसरे से लड़ कर हा !
सर्वनाश ही कर डाला ॥
जब तक रहे गुलाम मांगते,
रहे रोज हम आजादी।
अब होकर आजाद खोल दी,
आजादी की वधशाला ॥

(२५)

पहिले से ही जालिम ने,
सब सामान जुटा डाला।
किसे खबर थी ऊपर से,
उजला है लेकिन दिल काला ॥
नर पिशाच बीसवीं सदी के,
हृदय हीन 'सोहरावर्दी'।
नोआखाली और त्रिपुरा की,
याद रहेगी वधशाला ॥

(२६)

सच कह दे आबे हयात,
किस ने तेरे मुंह में डाला।
अन्न खिला कर बड़े चाव से,
है तुम को किस ने पाला ॥
जन्मभूमि जननी के तूने,
कर डाले टुकड़े-टुकड़े।
पाकिस्तान बना कर खोली,
भारत मां की वधशाला ॥

(२७)

है कोई अपने को सच्चा,
मुसलमान कहने वाला।
दिल पर रख कर हाथ बता दे,
क्या कुरान देखा भाला।
नग्न औरतों की दुनियां में,
कहीं निकाले गये जलूस।
तेरा पाकिस्तान बना,
इस्लाम धर्म की वधशाला।

(२८)

गर्भवती का गर्भपात कर,
जीवित शिशु भू पर डाला।
टुकड़े करके तला तेल में,
हँसता था हँसने वाला।
उसके मात पिता के मुँह में,
फिर वह तोहफा ठूँस दिया।
बोल जायका कैसा है यह,
पूछ रही थी वधशाला ॥

(२९)

जब देखा अब किसी तरह भी,
नहीं धर्म बचने वाला।
स्वाभिमान को लिये इकट्ठी,
हुई सैंकड़ों नव बाला।
नाम 'पद्मिनी' का लेकर वह,
सभी कुयें में कूद पड़ीं।
जौहर जालिम देख रहा था,
जय बोल रही थी वधशाला।

(३०)

नाच गया किसकी थापों पर,
'जिन्ना' होकर मतवाला।
किसके सगे हुए ये गोरे,
रहा हमेशा दिल काला ॥
क्रिप्स लगा कर आग हिन्द में,
सात समन्दर पार गया।
बजा रहा है चर्चिल बगलें,
देख हमारी वधशाला ॥

(३१)

बुरे कर्म करके अच्छा फल,
अरे कहां मिलने वाला।
सोचे समझे बिना अभागे,
यह अनर्थ क्यों कर डाला ॥

तू किस मुँह से है जन्नत का,
तलबगार बतला काफिर।
बना दिया दुनिया को दोजख,
हाय! खोलकर वधशाला ॥

(३२)

कहां फला फूला है कोई,
अरे! जुल्म करने वाला।
इसे जलाकर खाक करेगी,
इसके जुल्मों की ज्वाला ॥
भारत रहा अखंड रहेगा,
यह भविष्यवाणी मेरी।
पाकिस्तान आप खोलेगा,
अपनी एक दिन वधशाला ॥

(३३)

हिन्दू मुस्लिम का फितूर,
भरपूर दूर करने वाला।
चला प्रार्थना प्रभु से करने,
हुआ प्रेम में मतवाला।
अनशन से यदि मर जाता तो,
जग सेवा का क्या था।
विश्व वन्दनीय बापू तेरी,
अमर रहेगी वधशाला।

(३४)

वह हिन्दू हिन्दू कैसा जो,
नीच कर्म करने वाला।
अपने ही हाथों से अपना,
कर बैठा जो मुँह काला ॥
हिन्दू कहलाने वाले क्यों,
हिन्दू को बदनाम किया।
बापू जैसे राष्ट्रपिता की,
अरे खोल कर वधशाला ॥

(३५)

हिंसा से हिंसा बढ़ती है,
पियो प्रेम रस का प्याला।
नफरत से नफरत को बस में,
अरे कौन करने वाला।
बापू के हित अगर तुम्हारी,
आंखों में कुछ आंसू हैं,
बन्द लड़ाई करो न खोलो,
हिन्दू मुस्लिम वधशाला ॥

(३६)

दान धर्म क्या खाक करेगा,
अब कोई करने वाला।
'पाप पुण्य' कुछ नहीं वृथा ही,
जग को धोखे में डाला ॥
परमभक्त बापू का जिसको,
दानवीर जग कहता है।
उसी बिरला का भवन बना,
फिर क्यों 'बापू' की वधशाला।

(३७)

धर्मरूप श्री भीमराव ने,
'हिन्दूकोड' बना डाला।
यह 'मनु' का अवतार कहां से,
हुआ नियम रचने वाला ॥
अच्छा हो सरकार बुलाये,
एक सभा विद्वानों की।
तब निर्णय करके सब खोले,
दुष्कर्म की वधशाला ॥

(३८)

बेटी का समभाग पिता की,
सम्पत्ति में जब कर डाला।
हैं जितने हकदार जलेगी,
नित उनके उर में ज्वाला ॥
बहिन भाई के शुद्ध प्रेम का,
होगा महा भयंकर रूप।
'भैया दूज' न होगी होगी,
बहिन भाई की वधशाला ॥

(३९)

कौन मिलेगी पति चरणों पर,
जीवन अर्पण कर डाला ॥
कौन मिलेगा पत्नी को,
जीवन संगी कहने वाला ॥

कभी परस्पर प्रेम न होगा,
बनी रहेगी यह शंका।
कब 'तलाक' दे हाय न जाने,
कौन खोल दे वधशाला ॥
(४०)
भारतीय नारी का जग में,
हो जायेगा मुँह काला।
था जिसका जीवन महान्,
हा उसे गति में क्यों डाला ॥
'सीता द्रौपदी' की सन्तानें,
रंडी बन कर घूमेंगी।
जरा जरा सी बातों पर,
दिन रात खुलेगी वधशाला ॥
(४१)
देशप्रेम की जिसके उर में,
कल तक जलती थी ज्वाला।
आज वही बन गया हाय!
'परमिट' पर मर मिटने वाला ॥
जनता की आंखों में लेकिन,
खटक रहे हैं यह काँटे।
करे "ब्लैक" मन माना चाहे,
अमन रहे या वधशाला ॥
(४२)
आज नुकीली गांधी टोपी,
खद्दर का कुर्ता आला।
कल था अंग्रेजों का पिट्ठू,
यही जुल्म करने वाला ॥
गंगा गया तो गंगाधर है,
यमुना गया तो यमुनादास।
इस 'अवसर' वादी की,
अरे खोल दो वधशाला ॥
(४३)
मैं लीडर हूं किसका डर है.
जो चाहा सो कर डाला।
है अपनी सरकार मुझे फिर,
रहा कोई न कहने वाला ॥

देश धर्म मिलेंगे आग में,
'उल्लू सीधा' करता हूँ।
जो बोला विपरीत उसी की,
खुलवा दूँगा वधशाला ॥
(४४)
घूँसखोर और चोर जहाँ हों,
इन्तजाम करने वाला।
फिर कैसा इन्साफ कि जिसका,
दिल पहले ही से काला ॥
कांग्रेस को बस ऐसे ही,
गुण्डों ने बदनाम किया।
हाय क्यों न 'सरकार' खोलती,
इन कुत्तों की वधशाला ॥
(४५)
नई-नई संस्था खोलकर,
जग को धोखे में डाला।
बना लिया है धन्धा घूमें,
'चन्दा' चट करने वाला।
ध्येय नहीं कुछ भी जीवन का,
बेपेन्दी के लोटे हैं।
डंड पेलते रहें खोलकर,
'दान धर्म' की वधशाला ॥
(४६)
'मीरा और चैतन्य' प्रभु का,
सब उद्देश्य मिटा डाला।
नाच कूद गुन्डों के संग में,
करें कीर्तन नव बाला ॥
यहीं गर्भ धारण होते हैं,
यहीं निवारण भी होते।
लोग कहें 'गोविन्द भवन' है,
मैं कहता हूँ वधशाला ॥
(४७)
आज पतन की ओर चला,
इन्सान हुआ क्यों मतवाला।
सोच रहा है विश्वनाश का,
नित उपाय दिल का काला ॥

बना लिया 'एटम बम' तूने,
अपने लिये बनाया क्या।
अमर न क्यों हो गया देखनी,
तुझे न पड़ती वधशाला ॥
(४८)
दया क्षमा सन्तोष प्रेम है,
यहां सभी का दिल काला।
जीव मात्र का जीव मात्र,
बन गया खून पीने वाला ॥
क्या तेरे हाथों से है प्रभु,
निकल गई है ये दुनिया ॥
नई बना ले और खोल दे,
इस दुनियां की वधशाला
(दयानन्द सन्देश से उद्धृत)

देशभक्त के उद्‌गार

यह कविता पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने अपने गांव शाहजहांपुर में 'भारत दुर्दशा' नाटक में गाई थी, तब सभी श्रोताओं की आंखों से पानी बहने लगा था। इस कविता के सुनाने पर पण्डित जी को स्वर्ण पदक और पारितोषिक भी मिला था। कविता आज भी उतनी ही सरस है जितनी पहले थी। इस को गाकर पढ़ते हुए आज भी आंखों में आँसू आ जाते हैं और रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस कविता के पढ़ने से पता लगता है कि पण्डित राम प्रसाद जी में कितनी देश-भक्ति थी। वे देश के लिये बड़े से बड़े संकट को सहर्ष स्वीकार करने के लिये उद्यत थे। देश के लिये मरने के लिये दिन रात प्राण हथेली पर रखना और मर कर दूसरे जन्म में भी देश की स्वतन्त्रता के लिये काम करने की भावना कितनी उदात्त है। देश के लिये जीने और देश के लिये ही मरने वाले देशभक्तों के बलिदान के कारण ही भारत स्वतन्त्र हुआ है।

—वेदव्रत सम्पादक

देश की खातिर मेरी दुनिया में यह ताबीर हो, हाथ में हो हथकड़ी पैरों पड़ी जञ्जीर हो।
शूली मिले फांसी मिले या कोई भी तदबीर हो, पेट में खंजर दुधारा या जिगर में तीर हो ॥
आंख खातिर तीर हो मिलती गले शमशीर हो, मौत की रक्खी हुई आगे मेरे तस्वीर हो।
मरकर भी मेरी जान पर जहमत विला ताखीर हो, और गर्दन पर धरी जल्लाद ने शमशीर हो ॥
खास कर मेरे लिए दोजख नया तामीर हो, अलगरज जो कुछ हो मुमकिन वह मेरी तहकीर हो।
हो भयानक से भयानक भी मेरा आखीर हो, देश की सेवा ही लेकिन एक मेरी तकदीर हो ॥
इस से बढ़ कर और दुनिया में अगर ताजीर हो, मंजूर हो! मंजूर हो!! मंजूर हो!!! मंजूर हो!!!!
मैं कहूँगा फिर भी अपने देश का शैदा हूँ मैं, फिर करूंगा काम दुनिया में अगर पैदा हुआ।

पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' द्वारा रचित कुछ कवितायें

(१)

देखना है किस कदर दम खंजरे कातिल में है, अब भी यह अरमान यह हसरत दिले बिस्मिल में है।
गैर के आगे न पूछो इस में है एक खास राज, फिर बता देंगे तुम्हें जो कुछ हमारे दिल में है।
खींच कर लाई है सब को कत्ल होने की उमीद, आशिकों का आज जमघट कूचये कातिल में है।
फिरते ही क्यों हाथ में चारों तरफ खंजर लिये, आज है यह क्या इरादा आज यह क्या दिल में है।

एक से करता नहीं क्यों दूसरा कुछ बातचीत, देखता हूं मैं जिसे वह चुप तेरी महफिल में है।
उन पर आफत आयगी एक रोज मर ही जांय के, वह तो दुनिया में नहीं जो कूचये कातिल में है।
एक जानिब है मसीहा एक जानिब है कजा, किस कशामश में पड़ी है जान किस मुश्किल में है।
जख्म खाकर भी उसे है जख्म खाने की हवश, हौसिला कितना तड़फने का तेरे 'बिस्मिल' में है।

(२)

आओ आओ भाइयो दिल खोल कर मातम करें, हम शहीदाने वतन की बेकसी का गम करें।
साथ वालों ने खुशी से जान दे दी मुल्क पर, रह गये इस फिक्र में बैठे हुए हम क्या करें।
राहे हक में जो मरे जिन्दा है वह गम उनका क्या ? जीते जी हम मर गये जीने का अपना गम करें।
मानने की जो न हो वह बात क्योंकर मानलें, गैर मुमकिन हम उदू के सामने सर खम करें।
आप ही खिलवत में काटें अपने भाई का गला, आप ही फिर बैठकर अहबाब में मातम करें।
जब यह हालत हो हमारे मुल्क के इफराद की, जुल्म से अगियार के फिर चश्म क्या पुरनम करें।
बहुत रोयें अब तो 'बिस्मिल' रोने से होता क्या ? काम इन कैसा करें अब आहोनाला कम करें।

(३)

पूछते क्या हो कि क्या अरमां हमारे दिल में है, कुछ वतन की याद में आहें दमें 'बिस्मिल' में हैं।
साकियाने बाग आलम सब रिहाई पा चुके, एक हमी आफत के मारे कैद की मुश्किल में हैं।
देश वालो दामने हिम्मत कभी छोड़ो नहीं, इम्तहाने इश्क की हम पहली ही मञ्जिल में हैं।
आ ही पहुंचेगी किनारे किश्ती ए भारत कभी, कोई दम में देखना हम दामने साहिल में हैं।

(४)

मिट गया जब मिटने वाला फिर सलाम आया तो क्या ?
दिल की बरबादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या ?
काश अपनी जिन्दगी में हम यह मञ्जर देखते।
यूं सरे तुरवत कोई महशर खराम आया तो क्या ?
मिट गई सारी उमीदें मिट गये सारे खयाल।
उस घड़ी गर नामावर लेकर पयाम आया तो क्या ?
ऐ ! दिले नाकाम मिट जा अब तू कूचे यार में।
फिर मेरी नाकामियों के बाद काम आया तो क्या ?
आखिरी शबदीद से काबिल थी 'बिस्मिल' की तड़प।
सुबह दम गर कोई बालाये बाम आया तो क्या ?

(५)

गैर हालत है मेरी देखने आये कोई, कौन है किस से यह गम जिसको सुनाये कोई।
रोके हर एक से कहती है ये भारत माता, मुझको कमजोर समझ कर न सताये कोई।
दूध बचपन में सपूतों को पिलाया मैंने, अब जईफी में दवा आके पिलाये कोई।
बाप को बेटे से है भाई को भाई से मलाल, रंज आपस के जो हैं इनको मिटाये कोई।

ख्वाब गफलत में पड़े सोते हैं जो अहले वतन, होश में लाए कोई इनको जगाये कोई।
क्या गिनाने कोई अनफास है तेंतीस करोड़, काम एक मेरी मुसीबत में तो आये कोई।
यह जमाने की है खूबी यह मुकद्दर की है, बात चैन से सोए कोई चैन न पाये कोई।
फिर न बिस्मिल रहे दुनिया में कोई ऐ! "बिस्मिल" फिर न आजार जमाने के उठाये कोई।

पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' की प्रिय कवितायें

यहाँ कुछ ऐसी कविताओं को उद्धृत करते हैं जो पं० रामप्रसाद जी' बिस्मिल' को बहुत प्रिय थीं और उन्होंने यथा समय कण्ठस्थ की थीं।

(१)

भूखे प्राण, तजें भले, केहरि खरु नहिं खाहिं, चातक प्यासि ही रहें, बिन स्वांती न अघाहिं।
बिन स्वांती न अघाहिं हंस मोती ही खावे, सती नारि पतिव्रता नेक नाह चित्त डिगावे।
तिमि 'प्रताप' नहिं डिगे होहि चहें सब किन रुखे, अरि सन्मुख नहिं नवें फिरें चहें बन बन भूखे।

(२)

चाह नहीं सुर बाला के गहनों में गूंथा जाऊं, चाह नहीं है प्यारी के गल पड़ूं हार मैं ललचाऊं।
चाह नहीं है राजाओं के शव पर मैं डाला जाऊँ, चाह नहीं है देवों के सिर चढ़ूं भाग्य पर इतराऊँ।
मुझे तोड़कर हे वनमाली उस पथ में तू देना फेंक, मातृभूमि हित शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक॥

(३)

भारत जननी तेरी जय हो विजय हो।
तू शुद्ध और बुद्ध ज्ञान की आगार, तेरी विजय सूर्य माता उदय हो।
हों ज्ञान सम्पन्न जीवन सुफल होवे, सन्तान तेरी अखिल प्रेममय हो।
आयें पुनः कृष्ण देखें दशा तेरी, सरिता सरों में भी बहता प्रणय हो।
सावर के संकल्प पूरण करें ईश, विघ्न और बाधा सभी का प्रलय हो।
गांधी रहें और तिलक फिर यहाँ आवें, अरविन्द लाला महेन्द्र की जय हो।
तेरे लिये जेल हो स्वर्ग का द्वार, बेड़ी की झन झन वीणा की लय हो।
कहता खलल आज हिन्दू-मुसलमान, सब मिल के गाओ जननि तेरी जय हो।

(४)

कोऊ न सुख सोया करके प्रीति।
सुन्दर कली सेमर की देखी, सुअना ने मन मोहा। मारी चोंच भुआ जब देखा, पटक पटक सिर रोया।
सुन्दर कली कमल की देखी, भँवरा का मन मोहा। सारी रैन सम्पुट में बीती, तड़प तड़प जी खोया।

(५)

किसी के आंख का नूर हूं न किसी के दिल का करार हूं,
जो किसी के काम न आ सकूं वह मैं एक मुश्ते गुबार हूं।
न दवाये दर्दे जिगर हूं मैं, न किसी की मीठी नजर हूं मैं।
न इधर हूं मैं, न उधर हूं मैं, न शकेब हूं न करार हूं॥

मैं नहीं हूं नगमये जां फिजां मेरा सुन के कोई करेगा क्या।
मैं बड़े वियोगी की हूं सदा ओ बड़े दुखी की पुकार हूं॥
न मैं किसी का हूं दिलरुवा न किसी के दिल में बसा हुआ।
मैं जमीं की पीठ का बोझ हूं औ फलक के दिल का गुबार हूं॥
मेरा बख्त मुझ से बिछड़ गया मेरा रंग रूप बिगड़ गया।
जो चमन खिजा से उजड़ गया मैं उसी की फसले बहार हूं॥
पये फातिहा कोई आये क्यों कोई शामा लाके जलाये क्यों।
कोई चार फूल चढ़ाये क्योंकि मैं बेकसी का मजार हूं॥
न अख्तर से अपना हबीब हूं न अखतरों का रकीब हूं।
जो बिगड़ गया वह नसीब हूं जो उजड़ गया वह दयार हूं॥

(६)

ऐ मादरे हिन्द न हो गमगीन अच्छे दिन आने वाले हैं, आजादी का पैगाम तुझे हम जल्द सुनाने वाले हैं।
मां तुझको जिन जल्लादों ने दी है तकलीफ जईफी में, मायूस न हो मगरुरों को हम मजा चखाने वाले हैं।
कमजोर हैं और मुफलिस हैं, हम गोकुंज कफस में बेबस हैं,
बेबस हैं लाख मगर माता, हम आफत के परकाले हैं।
हिन्दू और मुसल्मां मिल- करके चाहे जो कर सकते हैं,
ऐ चर्ख कुहन हुशियार हो तू पुरशोर हमारे नाले हैं।
मेरी रुह को करना कैद कफस इनकाम से बाहर है उनके,
आजाद है अपना दिल शैदा, गो लाख जुबां पर ताले हैं।
मगलूब जो हैं होंगे गालिब महकूम जो हैं होंगे हाकिम,
सदा एक सा वक्त रहा किसका, कुदरत के तौर निराले हैं।
आजादी के मतवालों ने यह कैसा मन्त्र चलाया है,
लरजा है जिससे अर्श समां सरकार की जान के लाले हैं।

(७)

मुहब्बाने वतन होंगे हजारों बेवतन पहिले, फलेगा इण्डिया पीछे भरेगा अण्डमन पहिले।
मुसीबत आ कयामत आ यहां जंजीरो जिन्दा हैं, यहां तैयार बैठे हैं गरीबाने वतन पहले।
जमीने हिन्द भी फूले फलेगी एक दिन लेकिन, मिलेंगे खाक में लाखों हमारे गुल बदन पहिले।

(८)

सिर्फ सिकवा आशिकी में लब पै लाना है मना, सामने बेदर्द के आंसू बहाना है मना।
कातिले सफफाक का मकतल में हुक्मे आम है, आशिके जांबाज को सरका हिलाना है मना।
है यह बुलबुल को हिदायत गुल की अजरुये अदब, शाखे गुल पर बैठकर सर का हिलाना है मना।
बदनसीबी देखिये मुझ आशिके नाकाम की, उसके कूचे से गुजर कर मेरा जाना है मना।
जब हँसी आई मुझे तो वह भी फरमाने लगे, आशिकों को इश्क में हँसाना है मना।

(९)

देशहित पैदा हुए हैं देश पर मर जायेंगे, मरते मरते देश को जिन्दा मगर कर जायेंगे।
हमको पीसेगा फलक चक्की में अपनी कब तलक, खाक बनकर आंख में उसकी बसर हो जायेंगे।
कर वही बर्गे खिजा को बादे सर सर दूर क्यों, पेशवाये फस्ले गुल है खुद समर कर जायेंगे।
खाक में हमको मिलाने का तमाशा देखना, तुख्मरेजी से नये पैदा शजर कर जायेंगे।
नौ नौ आंसू जो रुलाते हैं हमें उनके लिए, अश्क के सैलाब से बरपा हशर कर जायेंगे।
गर्दिशे गरदाब में डूबे तो परवा नहीं, बहरे हस्ती में नई पैदा लहर कर जायेंगे।
क्या कुचलते हैं समझ कर वह हमें बर्गे हिना, अपने खूं से हाथ उनके तर बतर कर जायेंगे।
नकशे पा है क्या मिटाता तू हमें पारे फलक, रहबरी का काम देंगे जो गुजर कर जायेंगे।

(१०)

उरियानी न हैरानी न थे पाव में छाले, हम भी थे कभी आह बड़े नाजों के पाले।
जुल खाया मिटे उड़ गई आजादी औ राहत, अल्ला यह दिन अपने तो दुश्मन पै भी न डाले।
मारा है मिटाया है हमें आह उन्हीं ने, कर बैठे थे हम जानो जिगर जिनके हवाले।
हमने तो हमेशा तेरी खुशनुदी ही चाही, खुद बिगड़े मगर काम तेरे सारे सम्भाले।
उसका यह सिला हमको मिला उफरी मुहब्बत, बर्वाद किया डाल दिये जान के लाले।
बेबस हुए हैं जलील हुए मिट तो चुके हम, अब और कयामत भी तो ढाना हो सो ढा ले।
सौगन्ध है तुझको तेरे उस जोरो जफा की, जी भरके हमें जितना सताना हो सता ले।
किस्मत का कभी अपने भी चमकेगा सितारा, हम भी कभी देखेंगे आजादी के उजाले।
बदलेगी लहर तब तेरे सिर चढ़ के कहेगी, था जहर पै कचुल से यह लाचार थे काले।

(११)

यदि देशहित मरना पड़े, मुझको सहस्रों बार भी, तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊं कभी।
हे ईश, भारतवर्ष में शतबार मेरा जन्म हो, कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो।
मरते 'बिसमिल' 'रोशन' 'लहरी' 'अशफाक' अत्याचार से, होंगे पैदा सैंकड़ों उनके रुधिर की धार से।
उनके प्रबल उद्योग से उद्धार होगा देश का, तब नाश होगा सर्वथा दुख शोक के लवलेश का।

(१२)

मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे, बाकी न मैं रहूं न मेरी आरजू रहे।
जब तक कि तन में जान, रगों में लहू रहे। तेरा ही जिक्र या, तेरी ही जुस्तजू रहे।

(१३)

उमड़ आये आंखों में प्राण, श्वास में आई अन्तिम वायु।
धूल में मिलने अब चली, फूल सम खिलकर मेरी आयु।
उठा था मन में मेरे भाव, बसूंगा मृत्यु वधू के द्वार।
और निज रक्त रंग से साज, शत्रु को दूंगा उपहार।
वधिक ! धिक अधिक करे मत, देर खींच तख्ते को रस्सी डार।
वधू इस जीवन के उस पार, चखा दे मृत्यु वधू का प्यार।

श्री अशफाक उल्ला खां के कुछ शेर तथा कवितायें जिनकी आपने फांसी से कुच समय पूर्व रचना की थी ।

फना है सब के लिये हम पै कुछ नहीं मौकूफ। बका है एक फकत जाति किब्रिया के लिये ।।१।।
तंग आकर हम भी उनके जुल्म के बेदाद से, चल दिये सूये अदम जिन्दा ने फैजाबाद से ।।२।।
तनहाइए गुरबत से मायूस न हो 'हसरत', कब तक न खबर लेंगे याराने वतन तेरी ।।३।।
ब जुर्मे आरजू पै जिस कदर चाहे सजा दे ले, मुझे खुद ख्वाहिशे ताजार है मुलजिम हूँ इकरारी ।।४।।

(कविता १)

अफसोस! क्यों नहीं है वेह रुह अब वतन में, जिसने हिला दिया था दुनियां को एक पल में।
ऐ पुख्ताकार--उल्फत हुशियार डिग न जाना, मराज आशंका है इस दार और रसन में।
मौत और जिन्दगी है दुनिया का सब तमाशा, फरमान कृष्ण का था अर्जुन को बीच रण में।
कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो यह है, रख दे कोई जरा सी खाके वतन कफन में।
सैयाद जुल्म पेशा आया है जब से 'हसरत', हे बुलबुले कफस में जागोजगन चमन में।

(२)

बुजदिलों ही को सदा मौत से डरते देखा, गो कि सौ बार उन्हें रोज ही मरते देखा।
मौत से वीर को हमने नहीं डरते देखा, तख्तये मौत पै भी खेल ही करते देखा।
मौत एक बार जब आना है तो डरना क्या है, हम सदा खेलें ही समझा किये मरना क्या है।
वतन हमेशा शाद रहे काम और आजाद, हमारा क्या है अगर हम रहे, रहे न रहे ।।

(३)

न कोई इंगलिश, न कोई जर्मन, न कोई एशियन न कोई तुर्की।
मिटाने वाले हैं अपने हिन्दी जो आज हमको मिटा रहे हैं ।।
जिसे फना वह समझ रहे हैं बका का है राज इसी में मजमिर।
नहीं मिटाने से मिट सकेंगे वो लाख हमको मिटा रहे हैं ।।
खामोश हसरत! खामोश हसरत!! अगर है जजवा वतन का दिल में।
सजा को पहुंचेंगे अपनी बेशक जो आज हमको सता रहे हैं ।।

(४)

पहिनाने वाले अगर बेड़ियां पहनायेंगे, खुशी से कैद के गोशे को हम बसायेंगे।
जो सन्तरी वीर जिन्दा के सो भी जायेंगे, यह राग गाके उन्हें नींद से जगायेंगे ।।
तलब फजूल है कांटे की फूल के बदले, न ले बहिश्त भी हम होमरूल के बदले।
सन्तरी देख कर इस जोश को शरमायेंगे, राग जञ्जीर की झञ्कार में हम गायेंगे ।।

(५)

सितमगर अब यह आलम है तेरे बीमारे फुरकत का, लबों पर दम है दिल में बलबला शौके शहादत का।
मेरी दीवानगी पर चारागर हैरां न हो इतना, यही अञ्जाम होना चाहिये नाकाम उल्फत का ।।

बुता ने संग दिल सुनते नहीं फरियाद बेकस की, निराला ढंग है उन खुदपरस्तों की हुकूमत का।
मिटा कर जामो दिल अपना किसी जालिम जफाजू पर, तमाशा अपनी आंखों देखता हूं अपनी किस्मत का॥
हविस हूरों की हो जिसमें दिलाये याद गिल्मां की, जनाबे शेख मैं कायल नहीं ऐसी रियाजत का।
बर आयें हसरतें हासिल सकूने कल्ब मुजतर हो, कहां ऐसा मुकद्दर हाय मुझ बरगश्ता किस्मत का॥
मजा जब है कि वह कह उठें 'अशफाक' उनका क्या कहना, गजल हैं या मुरक्का है तेरे वक्त मुसीबत का।

(६)

बहार आई है शोरिश है जनूने फितना सामां की, इलाही खैर रखना तू मेरे जेबो-गिरेबा की।
सही जजबाते उलफत भी कहीं मिटने से मिटते हैं, अबस हैं धमकिया दारो रसन की और जिन्दा की।
यह गुलशन जो कभी आजाद था गुजरे जमाने में, मैं शाखे खुश्क हूं हां! हाँ!! इसी उजड़े गुलिस्तां की।
नहीं तुम से शिकायत हम शफीराने चमन मुझको, मेरी तकदीर ही में था कफस और कैद जिन्दा की।
जमीं दुश्मन जमा दुश्मन जो अपने थे पराये हैं, सुनोगे दासता क्या तुम मेरे हाले परेशां की।
यही लिक्खा था किस्मत में चमन पैराये आलम ने, कि फस्ले गुल में गुलशन छूट कर है कैद जिन्दा की।
यह झगड़े और बखेड़े मेट कर आपस में मिल जाओ, अबस तफरीक है तुम में यह हिन्दू और मुसलमां की।
सभी सामाने हशरत थे मजे से अपनी कटती थी, वतन के इश्क ने हमको हवा जिन्दा की।
वह मह लिल्लाह चमक उट्ठा सितारा मेरी किस्मत का, कि तकलीदे हकीकी की अता शाहे शहीदां की।
इधर खौफे खिजां है आशियाँ का गम उधर दिल को, हमे यकसां है तफरीये चमन और कैद जिन्दा की।
करो जब्ते मुहब्बत गर तुम्हें दवाये उल्फत हैं, खमोशी साफ बतलाती है यह तस्वीर जाना की।

फांसी पर जाते समय राजेन्द्रनाथ 'लहरी' का गान

हम सरे दार बसर शौक जो घर करते हैं, ऊँचा सर कौम का हो नजर यह सर करते हैं।
सूख जाये न कहीं पौदा यह आजादी का, खून से अपने इसे इसलिये तर करते हैं।
इस गुलामी में तो कोई न खुशी आई नजर, खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।
सर तन से जुदा करदो ये हैं हाथ तुम्हारे, पर रुह से जजबाते जुदा कर नहीं सकते।

क्रान्तिकारी की उमंग

गजल (१)

मत रो मां तेरे चरणों पर कर दूंगा जीवन बलिहार।
हृदय रक्त जल से धो दूंगा बहती हुई आंसू की धार॥
शीश चढ़ा दूंगा मां तेरे पद कमलों पर पुष्प समान।
पद पखार दूंगा शोणित से किन्तु न होने दूंगा मलीन॥
देखूं कौन देखता है अब जननी तुझको नयन तरेर।
भय के दिन अब बीत गये मां नहीं सुदिन की है अब देर॥
कट जायेंगे तेरे बन्धन पहनेगी तू जय का हार।
मत रो मां अब शेष रहे हैं दुख दिन बस दो ही चार॥

गजल (२)

सरफरोशी की तमन्ना है तो सर पैदा करो, दुश्मने हिन्दुस्तान के दिल में डर पैदा करो ।।
फूंक दो बरबाद कर दो आशियां सैय्याद को, शरबाजो अब जरा फिर से शरर पैदा करो ।
झौंक दो दोजख की भट्टी में तुम इङ्गलिस्तान को जल के हो जायें खाक गोरे वह हशर पैदा करो ।
आगे बढ़ करके जरा अब फोर्ड विलियम छीन लो, लार्ड साहब के मिटाने की अकल पैदा करो ।
दत्त भगतसिंह की तरह झेलो हजारों सख्तियां, दास जैसा सख्त जनिव फिर वसर पैदा करो ।
सन् सत्तावन् सौ अठारह का वही आगाज हो, नौजवानाने वतन फिर से गदर पैदा करो ।
निर्वासिन काले पानी से जरा न भय मानूँगा मैं, भूखे बिना अन्न पानी रह गीत बवा गाऊँगा मैं ।
फांसी पर दे चढ़ा अरे हँसते-हँसते झूलूँगा मैं, बोटी-बोटी मांस नोंच ले आह नहीं बोलूँगा मैं ।
आती सन्-सन्-सन् गोली को छाती से ठुकराऊँ मैं, 'क्रान्ति विजय' 'साम्राज्य नाश' यह शब्द नहीं छोड़ूँगा में ।

युवकों का जयघोष

कुछ साव न कर लें कटती हैं सब कड़ियां तेरी गुलामी की ।
यह हम से हो सकता ही नहीं कि सूरत देखें नकामी की ।।
क्या फिक्र तुझे मां ! कैसे कटे हम नहें नाहें बेचारों से ।
जञ्जीर कढ़ी जो कट सकी. हम बूढ़ों के औजारों से ।।
हम जती सती हैं ऐ माता ! हम तेरा मान बढ़ायेंगे ।
जो हमने तुझ को वचन दिया वह पूरा कर दिखलायेंगे ।।

अहसासे गम नहीं, हमें परवाहे गम नहीं, हमने समझ लिया है, कि दुनिया में हम नहीं ।
बुलबुल को गुल पसन्द है और गुल को बू पसन्द, किसी को कुछ पसन्द हो पर मुझ को तू पसन्द ।
माताये अब करें न ममता देश प्रेम मतवालों की, पिता न मोह करें पुत्रों का बलि दें अपने लालों की ।
वीर पत्नियां बनें न बाधक पतियों को वह बिदा करें, आजादी ले आओ कह कर फर्ज प्रेम से अदा करें ।

'क्या था ?''

(१)

देश दृष्टि में माता के चरणों का मैं अनुरागी था, देश द्रोहियों के विचार से मैं केवल दुर्भागी था ।
माता पर मरने वालों की नजरों में मैं एक त्यागी था, निरंकुशों के लिये अगर में कुछ था तो बस बागी था ।

(२)

माता के बन्धन तोड़ूँगा रखता था नित ध्यान यही ।
अथवा मातृमान् पर मर जाऊँगा था मुझको अभिमान यही ।।
चाह रहा था जीवन में मैं, फांसी का वरदान यही ।
जन्मूँगा फिर भी भारत में होता उर में मान यही ।।

(३)

देश प्रेम के मतवाले कब झुकें फांसियों के भय से, कौन शक्तियां हटा सकी हैं उन वीरों को निश्चय से ।
हो जाता है शक्ति हीन जब शासन अतिशय अविनय से, लखता है जग बलिदानों की पूर्ण विजय तब विस्मय से।

(४)

वीर शहीदों के शोणित से, राष्ट्र महल निर्माण हुए, माता के चरणों पर अर्पित निज देश के प्राण हुए।
उत्पीडक वनराज कुलों के भाग्यदीप निर्माण हुए, रहे न पल भर पराधीन फिर प्राप्त उन्हें कल्याण हुए।

अलीपुर बम केस के अभियुक्त श्री ओम्प्रकाश जी के उद्‌गार

(ये अलीपुर बम केस के अभियुक्त श्री ओम्प्रकाश जी के काले पानी जाते समय के उद्‌गार हैं, इन को श्री पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' कालकोठरी के अन्दर मस्ती से गाया करते थे।)

हैफ जिस पै कि हम तैयार थे मर जाने को, यकायक हम से छुड़ाया उसी काशाने को।
आस्मां क्या यही बाकी था गजब ढाने को, ला के गुर्बत में जो रक्खा हमें तड़फाने को॥
क्या कोई और बहाना न था तरसाने को॥१॥

फिर न गुलशन में हमें लायेगा सय्याद कभी, क्यों सुनेगा तू हमारी कोई फरियाद कभी।
याद आयेगा किसे यह दिले नाशाद कभी, हम भी इस बाग में थे कैद से आजाद कभी॥
अब तो काहे को मिलेगी यह हवा खाने को॥२॥

दिल फिदा करते हैं कुर्बान जिगर करते हैं, पास जो कुछ है वह माता की नजर करते हैं।
खाने वीरान कहां देखिये घर करते हैं, खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं॥
जाके आबाद करेंगे किसी बीराने को॥३॥

देखिये कब यह असीराने मुसीबत छूटें, मादरे हिन्द के अब भाग खुलें या फूटें।
देश सेवक सभी अब जेल में मूंजें कूटें, आप यहां ऐश से दिन रात बहारें लूटें॥
क्यों न तरजीह दें इस जीने से मर जाने को॥४॥

कोई माता की उम्मीदों पै न डाले पानी, जिन्दगी भर को हमें भेज दे काले पानी।
मुंह में जल्लाद हुए जाते हैं छाले पानी, आबे खंजर का पिला कर के दुआले पानी॥
मर न क्यों जायें हम इस उम्र के पैमाने को॥५॥

हम भी आराम उठा सकते थे घर पर रहकर, हम को भी पाला था मां-बाप ने दुःख सहसह कर।
वक्ते रुखसत उन्हें इतना भी न आये कह कर, गोद में आंसू कभी टपके जो रुख से बहकर॥
तिफल उनको ही समझ लेना जी बहलाने को॥६॥

देश सेवा का ही बहता है लहू नस-नस में अब तो खा बैठे हैं चित्तौड़ के गढ़ की कसमें।
सर फरोशी की अदा होती है यों ही रसमें, भाई खंजर से गले मिलते हैं सब आपस में॥
बहनें तैयार चिताओं में हैं जल जाने को॥७॥

नौजवानो जो तबियत में तुम्हारी खटके, याद कर लेना कभी हम को भी भूले भटके।
आप के आज बदन होवें जुदा कट कट के, और सद चाक हो माता का कलेजा फट के॥
पर न माथे पै शिकन आये कसम खाने को॥८॥

अपनी किस्मत में अजल से ही सितम रखा था, रंज रखा था महिन रखा था गम रखा था।
किस को परवाह थी और किस में यह दम रखा था, हमने जब वादिये गुरबत में कदम रखा था॥
दूर तक यादे वतन आई थी समझाने को॥९॥

अपना कुछ गम नहीं लेकिन यह ख्याल आता है, मादरे हिन्द पै कब तक जवाल आता है।
हरदयाल आता है योरुप से न अजीत आता है, कौम अपनी पै तो रो-रो के मलाल आता है।।
मुन्तजिर रहते हैं हम खाक में मिल जाने को ।।१०।।

मैकदा किस का है यह जाने सबू किस का है, वार किस का है मेरी जां यह गुलू किस का है।
जो बहे कौम की खातिर वह लहू किस का है, आस्मां साफ बता दे तू उदू किस का है।।
क्यों नये रंग बदलता है यह तड़फाने को ।।११।।

दर्द मन्दों से मुसीबत की हवालत पूछो, मरने वालों से जरा लुत्फ शहादत पूछो।
चश्मे मुश्ताक से कुछ दीद की हसरत पूछो, सोज कहते हैं किसे पूछो तो परवाने को ।।१२।।

बात तो जब है कि इस बात की जिद्दें ठानें, देश के वास्ते कुर्बान करें सब जानें।
लाख समझाये कोई एक न उसकी मानें, कहता है खून से मत अपना गरेबां साने।।
नासहा आग लगे तेरे इस समझाने को ।।१३।।

न मयस्सर हुआ राहत में कभी मेल हमें, जान पर खेल के भाया न कोई खेल हमें।
एक दिन को भी न मंजूर हुई बेल हमें, याद आयेगा बहुत लखनऊ का जेल हमें।।
लोग तो भूल ही जायेंगे इस अफसाने को ।।१४।।

अब तो हम डाल चुके अपने गले में झोली, एक होती है फकीरों की हमेशा बोली।
खून से फाग रचायेगी हमारी टोली, जब से बङ्गाल में खेले हैं कन्हैया होली।।
कोई उस दिन से नहीं पूछता बरसाने को ।।१५।।

नौजवानो यही मौका है उठो खुल खेलो, खिदमते कौम में जो आवे बला तुम झेलो।
देश के सदक में माता को जवानी दे दो, फिर मिलेगा न ये माता की दुआयें ले लो।।
देखें कौन आता है इरशाद बजा लाने को ।।१६।।

रोहतक में बम का कारखाना

(यज्ञदेव शास्त्री)

जिस समय क्रान्तिकारी वीरों ने अंग्रेज सरकार की नाक में दम कर रखा था और चारों तरफ गिरफ्तारियों की धूम थी और अंग्रेजों के शिकारी कुत्ते क्रान्तिकारियों को खोज निकालने के लिये सूंघते फिरते थे तो भी क्रान्तिकारी वीर अपना सिर हथेली पर रखे अपने उद्देश्य की सफलता के लिये यह शपथ लेकर कार्य में जुट जाते थे कि "हम देश सेवा में अपना सर्वस्व न्योछावर कर देंगे। तन मन धन हमारा सभी कुछ देश के अर्पण होगा" और अपने घर का मोह त्याग कर सिर धड़ की बाजी लगा रहे थे। उसी समय की एक यह छोटी सी घटना आपके सन्मुख रखता हूं। क्रान्तिकारी वीरों का आत्म-त्याग पराकाष्ठा पर था। वह सर्व प्रयत्न से यही चाहते थे कि हमारा देश स्वतन्त्र हो। शान्ति की क्रान्ति से काम न चलता देखकर ही उन्होंने अस्त्र शस्त्रों द्वारा क्रान्ति का रास्ता अपनाया था। जगह-जगह इन वीरों ने बम बनाने के कारखाने बनाये।

क्रान्तिकारी वीर भगवतीप्रसाद ने दिल्ली में बम बनाने की अपेक्षा अन्य छोटे शहर में बम बनाना अधिक अच्छा समझा, क्योंकि वहां से सरकार को शीघ्र पता न चल सकेगा। यह विचार कर आप अपने पुराने परिचित नवयुवक वैद्य लेखराम जी के पास गये जो कि रोहतक में रहते थे। इस कार्य में सहयोग देने के लिये वैद्य जी ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। भगवतीप्रसाद को अधिक कार्य रहता था अतः उन्होंने यह कार्य वीर यशपाल को सौंप दिया। दिल्ली से सब आवश्यक सामान लेकर यशपाल जी रोहतक में वैद्य लेखराम जी के पास पहुंच गये। वैद्य जी ने पहले से ही एक टूटा सा मकान इस कार्य के लिये ले लिया था और सर्वत्र यह प्रसिद्ध करा दिया था कि अब हम पारे इत्यादि के योग से रस भस्म इत्यादि कीमती दवाइयां बनाया करेंगे।

यहाँ आकर यशपाल बिल्कुल ग्रामीण व्यक्तियों की भाँति रहने लगा और अपना नाम भी बदल लिया। यशपाल ने अपना नाम किसना रख लिया। वैद्य जी की दुकान रोहतक के बीच बाजार में थी। यशपाल प्रतिदिन प्रातःकाल दुकान खोलता उसकी सफाई इत्यादि करता था और टाट बिछाकर खरल लेकर दवाइयाँ घोटना प्रारम्भ कर देता था। और इमामदस्ते में दवाइयां भी कूटता था। इस प्रकार कुछ दिन यही क्रम चलता रहा। गरमी का समय था वैद्य जी के पास सब काम करने वाला यही किसना ही था। रोगियों की सेवा व आतिथ्य भी यही करता। पंखा भी गरमियों में प्रायः यही चलाता था।

इस प्रकार कार्य करते करते कुछ दिन बाद बम बनाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। बम बनाने के लिये एक तेजाब में शनैः शनैः दूसरी तेजाब मिलाते समय साथ साथ हिलाना भी पड़ता था इसी प्रकार तीसरी तेजाब मिलानी पड़ती थी। इनके मिलाते समय उनमें से पीले रंग का धुवां निकलता था। बर्तन को छोड़ना भी हानिकर था क्योंकि मिलाते समय चलाना आवश्यक था। तेजाब के धुयें ने यशपाल जी के तमाम वस्त्र ऐसे कर दिये कि जहाँ से पकड़ो वहीं से फट जाय। यह हालत देख यशपाल लंगोट बाँधने लगा और बाहर आने जाने को अन्य पुराने से वस्त्र रखने लगा। कपड़ा न पहनने के कारण अब शरीर

पर से तेजाब के प्रभाव से झुरी उतरने लगी परन्तु कष्ट कोई विशेष नहीं होता था। तेजाब के धुयें के कारण यशपाल को प्रायः खाँसी, सिरदर्द होता ही रहता था किन्तु वह परवाह न करता था। तेजाब के बर्तनादि के साफ करने के कारण यशपाल के हाथ कटते थे और लाल लाल हो जाया करते थे। रबड़ के दस्तानों का प्रयोग करने पर भी हाथों पर असर हो जाता था।

वह प्रतिदिन प्रातः बम बनाने के मसाले का एक घान पकाने के लिये चढ़ाता था। इसके पकाने में चार घण्टे लग जाते थे। पुनः इसे ठंडा करने के लिये चार घन्टे रखना पड़ना था। इस समय में यशपाल दुकान पर जाकर दवाई कूटता, पंखा चलाता, किसी के आ जाने पर कूयें से ताजा पानी लाता था। एक दिन वैद्य के किसी मित्र ने इसके हाथों में लाली देख कर पूछा यह तेरे हाथ लाल क्यों हैं ?

यशपाल ने बड़ी दीनतापूर्वक उत्तर दिया "सरकार जरा मेंहदी लगा ली थी।"

तब लेखराम जी कहने लगे "देखो साले जनखे को, औरतों की भांति मेंहदी लगाता है।"

यशपाल आगन्तुकों के लिये पानी आर्यसमाज के कुएं से लाता था। वहां एक स्वामी जी रहते थे, उससे भी इसका सम्पर्क हो गया। स्वामी जी भी कभी २ उससे जलादि मंगाया करते थे। इस प्रकार अनेक कष्ट सहता हुआ भी यह वीर कार्य में दृढ़संकल्प लगा रहता था।

सायंकाल जब लेखराम जी घर जाते तो कुछ सामान कनस्तर ट्रंक या बोरी इत्यादि यशपाल के सिर पर रखकर ले जाया करते थे। एक दिन इसी प्रकार वैद्य जी और यशपाल जा रहे थे तो रास्ते में वैद्य जी के एक मित्र मिल गये जो सोडा लेमन पी रहे थे। उसने वैद्य जी को भी एक शीशी दी। तब वैद्य जी ने यशपाल की ओर घूर कर पूछा क्यों बे किसना तू भी पीयेगा सोडा ? उसने उत्तर दिया पी लूंगा महाराज।

ऐ हैं ? सोडा पीयेगा ? बड़ा शौकीन है ? साले कभी तेरे बाप ने भी पिया है सोडा ? यह कह कर वैद्य जी ने एक शीशी उसे दे दी। तब वह सड़क पर ही कनस्तर रखकर खड़ा ही खड़ा सोडा पीने लगा। तब वैद्य जी डाट लगाकर बोले "देखो तो बैल की भाँति खड़ा डकार रहा है। बैठकर क्यों नहीं पीता ?" तब उसे सड़क पर ही बैठ जाना पड़ा।

इतना ही नहीं, उसको यदि कभी अखबार भी देखना होता तो छुपकर एकान्त में पढ़ना पड़ता था। क्योंकि रहस्य को छुपाकर रखना भी जरूरी था। किसी को पता भी न चले कि यह पढ़ना भी जानता है इसलिये एकान्त में पढ़ता था। एक बार एक वैद्य जी के मित्र ने इसे अखबार पढ़ते देख लिया और कहा अरे किसना तू पढ़ना भी जानता है ? तब यशपाल ने कहा "नहीं सरकार (योंही मिथ्या किसी की तस्वीर दिखाकर) मैं तो यह महात्मा गान्धी जी की मूर्ति देख रहा था।" वैद्य लेखराम जी यशपाल के खाने पीने इत्यादि का विशेष प्रबन्ध करते रहते थे। और उसे सब प्रकार की सुविधायें देने का ध्यान रखते थे।

बम बनाने का काम प्रायः समाप्त हो गया था। एक दिन सायंकाल को शहर की पुलिस शहर में कुछ खोज कर रही थी। तो लक्ष्मणदास जी ने जो उस लमय कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी थे वैद्य लेखराम ली को बताया कि पुलिस शहर में घूम रही है। यह सुनकर वैद्य जी तथा यशपाल जी घबराये। सोचा कहीं हमारा तो पता पुलिस को लग गया है ? उसी रात को ग्रामीण बेश धारण करके ये दोनों उस मसाले की गठरी बांध कर नहीं देहली चले गये।

इस प्रकार रोहतक में भी इन क्रान्तिकारी वीरों ने बम बनाने का स्थान बनाया और बम बनाये। इन्हीं बमों का प्रयोग इन वीरों ने वायसराय को मारने के लिये उसकी स्पेशल रेल के नीचे दबाकर भी किया था।

देश की स्वतन्त्रता के लिये इन वीरों ने कितने कष्ट सहे। इसकी हम कल्पना भी नहीं कर पाते। उन्हीं आजादी के परवानों के अमर बलिदान का फल है जो आज हम स्वतन्त्रता के आनन्द में फूले नहीं समाते और स्वराज्य का लाभ प्राप्त कर रहे हैं। उन्हीं वीरों ने इस स्वराज्य रूपी वृक्ष को अपने रक्त रूपी जल से सींच कर बड़ा किया था। इतिहास में उन वीरों का नाम सदा के लिये अमर रहेगा।

सहारनपुर में बम का कारखाना

(ब्र० महादेव)

अन्य स्थानों की भांति यहां भी बम बनाने की जगह थी। डा० गयाप्रसाद जी अपने घर पर यह काम कराते थे। आपके पास इस कार्य के लिये शिव वर्मा, और जयदेव कपूर जी थे। १२ ता० को अचानक दोपहर को कपूर जी के मन में ही एक हुकहुकी या अनिष्ट की आशंका अनुभव हुई। आपने अपनी बात शिववर्मा जी को बताई। दोनों ने सावधान होकर रात को भी बारी बारी से पहरा देने का निश्चय किया। आप दोनों सारी रात जागते रहे परन्तु कोई नहीं आया। दूसरे दिन रात्रि में जागने के कारण आंगन में चारपाई डालकर सोने लगे। इस मकान में आगे सड़क पर तीन कोर का एक लम्बा कमरा था। इसी कमरे में डा० की बैठक या डिंसपेंसरी थी। इस कमरे की बगल में एक दरवाजे से घर के भीतर के आँगन के लिए रास्ता था। आंगन के पास एक और लम्बा कमरा था। इसके दरवाजे दोनों ओर थे। प्रातः ७ बजे किसी ने दरवाजा खटखटाया। आवाज जोर की थी अतः शिव की नींद खुल गई। और नींद में ही यह जानकर कि डा० साहब आ गये दरवाजा खोल दिया। देखा तो सामने पुलिस खड़ी है। पुलिस ने आपको घेर लिया। शिव असावधान था अतः वह पिस्तौल भी न लाया था। पुलिस ने आपसे पूछा क्या आप डा० साहब हैं। शिव ने उत्तर दिया, नहीं मैं तो उसका सम्बन्धी हूं बनारस के विश्व विद्यालय में पढ़ाता हूं। छुट्टियों में मिलने आया हूं। डा० कानपुर गये हैं। पुलिस पर्याप्त मात्रा में सशस्त्र थी, साथ डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट मथुरादत्त जोशीदत्त भी थे। आपसे बातें करते जोशी साहब बैठक में चले गये। वहां जाकर बैठक में जो अलमारी थी उसकी तलाशी ली। कुछ जब्त साहित्य कहकर पुस्तकें निकाल लीं। इतने में अन्दर से आवाज आई हजूर इधर आइये यहां बहुत कुछ है। कोतवाल उसी ओर चल पड़ा। जयदेव कपूर अब तक मस्त नींद में सो रहा था। कोतवाल ने उसे जगाया और तीन पुलिसों के घेरे में रख दिया। जोशी जी भी शिवराम वर्मा को लेकर उसी ओर गये। अन्दर के कमरे में एक अलमारी थी उसमें रासायनिक द्रव्य और बम बनाने का सामान था। एक सन्दूक में तैयार बम और छोटी सी बेग में दो पिस्तौल तथा कारतूस थे। जोशी जी शिव वर्मा को इस सामान के विषय में पूछ ताछ करने लगे। चतुरता से बातकर बचने की अब कोई सम्भावना नहीं थी, न ही पुलिस से घिरे हुए अवस्था में शस्त्र ही उठाया जा सकता। था जोशीजी अलमारी खुलाकर एक एक चीज को पूछने लगे यह क्या है ? यह क्या है ? शिव वर्मा ने उत्तर दिया कि मैं क्या जानूं। यह डाक्टर साहब का सामान है। दवाई बनाने का

सामान होगा। उस समय शिव व जोशी जी दोनों पैंतरें बाजी से बात कर रहे थे। एक बक्स की ओर संकेत कर जोशी जी ने शिव वर्मा को आज्ञा दी इसे खोलिये। शिव ने अकड़ कर कहा कि सब कुछ मैं ही खोलूं? तलाशी आप ले रहे हैं स्वयं खोलिये। जोशी ने चट से कहा कि आपको अवश्य खोलना होगा। अच्छा कहकर आपने बक्स को उठाकर भीतर हाथ डालकर ललकारा। अब तुम सब मरो यह बम है। अन्दर से बम निकाल कर ऊपर उठा लिया। जोशी ने चिल्लाकर आज्ञा दी कि पकड़ो! भागो !! और सबसे आगे स्वयं भागने लगा। इधर लोगों ने भी पकड़ने के बजाय भागने की ही आज्ञा का पालन किया। इतने में शिव वर्मा द्वितीय अलमारी की ओर लपका। भरा हुआ बम उसके हाथ में आ गया था परन्तु अकस्मात् विस्फोट की घटना से बचने के लिये पिस्तौल उठा रहा था। इतने में कोतवाल ने पीठ अपनी ओर होती हुई देखकर एक दम आपकी पीठ पकड़ ली और फरश पर दे मारा। और आपके दोनों कन्धों को अपने घुटने के नीचे दबोच लिया। कोतवाल राजपूत था अतः आपको पकड़ने में सफल हो गया। यह तमाशा देखकर पुलिस भी वापिस आ गई। इनके आने पर आपकी खूब मरम्मत की। और आपके हाथ पीछे की ओर बांध कर जयदेव कपूर को बेड़ी पहना दी। इधर जोशी जी भय के मारे बाहर निकल गये थे तब शत्रु के वश होने की बात सुनकर पिस्तौल से धमकाते हुए लौटे। पुलिस से घिरे हुए कपूर से कहा, बम को रख दो नहीं तो गोली मारता हूं। जयदेव कपूर उस समय हांसी करते हुए बोला-होश कीजिये जनाब! मरे हाथ बंधे हुये नहीं दीखते? देखिये आपके पिस्तौल की नली कहां जा रही है? सचमुच जोशी जी का हाथ उस प्रकार डर के मारे हिल रहा था जिस प्रकार हवा में पत्ते हिलते हैं। हिलने के कारण पिस्तौल की नली भूमि की ओर थी।

आप लोगों को वश में कर लेने पर जोशी ने सारा सामान कोतवाली में ले जाने की आज्ञा दे दी और स्वयं इस घटना को डिप्टी कमिश्नर को सुनाने के लिए उसके बंगले पर गया। जोशी के चले जाने पर कोतवाल पराजित शत्रुओं के प्रति राजपूतीय उदारता से बोले "इतने पिस्तौल और कारतूस होते हुए भी आप लोग चाहते तो हमको मारकर भाग सकते थे"। तब जयदेव कपूर और शिववर्मा ने उत्तर दिया कि "आप लोगों को मारने से हमें क्या मिलता? हिन्दुस्तानियों का राज स्थापित करने के लिए हम लड़ रहे हैं। उन्हीं को मारें यह ठीक नहीं। हां यदि गोरकाय का आ जाता तो उसकी क्या गत बनती? यह जान लेते"। सिपाहियों पर इस बात का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। और कहने लगे "अरे बाबू हम लोग टुकड़ा खोर कुत्ते हैं, मर ही जाते तो क्या था? यों भी हम जैसे सैकड़ों मरते हैं, आप लोगों का ही जीवन मूल्यवा न् है" यह कहकर दो तीनों के आंखों से पानी भी आने लगा। एक ने खिन्न स्वर में कहा "हम लोग क्या जानते आप लोग कौन हैं हमें तो यह कहा गया था "कोकिन फरोशो को पकड़ने जा रहे हैं"। जब आप जेल में गये तब आपके साथ इन सिपाहियों ने अच्छा व्यवहार किया।

इधर गयाप्रसाद रुपयों की कुछ व्यवस्था कर तीन दिन के बाद घर पर आये। यदि आप समाचार पत्र पढ़ लेते तो शायद आप घर नहीं आते। क्योंकि आपके घर की घटी घटना उस दिन अखबार में छप चुकी थी। आपके पास सारगपुर का किराया था अतः आपने समाचार पत्र नहीं खरीदा। सारगपुर जाकर ही पत्र पढ़ लेंगे। इधर सारगपुर स्टेशन पर पुलिस आपकी बाट में थी परन्तु डाक्टर साहब अपनी कुशलता व चातुरी से घर पर निरापद पहुंच गये। आपकी प्रतीक्षा में पुलिस के चार आदमी आपके मकान में ठहरा रखे थे। डा० साहब की आवाज सुनकर पर उनमें से एक ने दरवाजा खोला और

झपट कर गयाप्रसाद को कड़े आलिंगन में कस लिया। दोनों ही स्नेह प्रदर्शन की होड़ में आलिंगन का जोर एक दूसरे से अधिक बढ़ाये जा रहे थे। अन्त में इस प्रेम से उबकर आप बोले—बस बस बहुत हो गया यार। अब छोड़ो बात भी सुनो। आप इस आलिंगन करने वाले को कांशीराम समझ रहे थे। क्योंकि इसका इस प्रकार का स्वभाव था, परन्तु जब स्थिति का ज्ञान हुआ तो आप अवाक् हो गये। आपको पकड़ कर हाथों में हथकड़ियां लगा दी गईं और कोतवाले की ओर ले जाने लगे। रास्ते में आपको अचानक स्मरण आया कि आपकी जेब में कुछ आवश्यक कागज थे जिसमें जोगेश को छुड़ाने की योजना थी। वे सोचने लगे कि यदि यह तलाशी में पुलिस के हाथ लग जाये तो करे कराये कार्य का खेल बिगड़ जायगा। अतः आप चलते चलते एक दम थम गये और कहा कि 'हम लघुशंका करना चाहते हैं' सिपाहियों ने विवश होकर हाथ से हथकड़ी निकाल दी और हथकड़ी की रस्सी थामे खड़े हो गये। सड़क के किनारे बैठते ही आपने खुले हाथ से भीतर की जेब से कागज निकाल मुंह में भर जैसे तैसे निगलना चाहा, कागज गले में अड़ गया आपका दम छुटकर आंखें बाहर निकलने लगीं। मुंह से शब्द निकलना कठिन हो गया। वे सड़क पर बैठ गये और अंजली से पानी के लिये संकेत किया। सिपाही डा० के कष्ट का कारण तो न समझ सके पर एक सिपाही पास की दुकान से पानी ले आया। घूंट भर कर डा० ने गला साफ कर लिया। यह घटना आपके स्वभाव और कार्य कुशलता का अच्छा नमूना है।

श्री योगिराज अरविन्द

(ब्र० सोमवीर)

श्री अरविन्द जी का जन्म १५ अगस्त सन् १८७२ ई० में कलकत्ते में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री कृष्णघोषधन जी था और इन की माता का स्वर्णलता देवी था। जब अरविन्द जी ७ वर्ष के हुये थे तो इनके पिता अपने परिवार सहित इनको अंग्रेजी की उच्च शिक्षा दिलाने के लिए इङ्गलैन्ड चले गये. वहां पर अरविन्द जी १८ वर्ष की आयु में ही सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठे थे, परन्तु घुड़ सवारी में उत्तीर्ण नहीं हो सके, अतः इन्होंने परीक्षा में असफल होने के बाद अपने विचारों तथा पथ को बदल दिया और कैम्ब्रिज के विश्वविद्यालय में अंग्रेजी की उच्च शिक्षा ग्रहण करने के विचार से प्रविष्ट हो गए।

आप १८९३ ई० में बड़ौदा नरेश के आग्रह से इङ्गलैंड से भारत आये। अतः २० वर्ष तक विदेश में रहने के कारण जब आप भारत आये तो आप को अपनी मातृ-भाषा दोबारा सीखनी पड़ी। और आप बड़ौदा महाराज के निजी सहायक पद पर नियुक्त हो गये। इसके बाद वहां पर आप की काफी उन्नति होने लगी लेकिन आप अपनी बड़ौदा में बढ़ती हुई उन्नति तथा सांसारिक सुख को त्याग कर फिर बड़ौदे से अपनी जन्म-भूमि बंगाल में लौट आये और देश सेवा के कर्म-क्षेत्र में आ गये।

इस समय बंगाल निद्रा से जागृत होकर करवटें बदल रहा था। बङ्गाल वासियों के हृदयों में देश सेवा के भाव जागृत हो रहे थे। इस समय बङ्गाल लार्ड कर्जन के बङ्गाल विच्छेद का पूर्ण घोर रूप से विरोध कर रहा था, तो अरविन्द बाबू भी इस विपत्ति में आ कूदे और देश सेवा के कार्य में अपने को लगा दिया। और कुछ दिन में आप कांग्रेस के सदस्य बन गये। जब सन् १९०६ ई० में कांग्रेस अधिवेशन

हुआ आपने अपने साथियों को साथ लेकर कांग्रेस में यह प्रस्ताव पास करा दिया कि स्वराज्य प्राप्त करना ही कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य है। आप बन्देमातरम्, पत्र के सम्पादक भी थे। आप उस में बड़े ओ-जस्वी लेख लिखते थे। अतः आप को एक दिन बन्दी कर लिया और कारागार में डाल दिया। आप को एक वर्ष का कारावास हो गया, तत्पश्चात् आप कारागार से मुक्त हुये और फिर राजनीति में पूरे जोर से लग गये।

१९१० ई० में मार्च मास के साप्ताहिक "कर्मयोगिन" में अरविन्द के एक लेख पर राजद्रोह का दोष लगा कर अरविन्द को जेल भेजने की आज्ञा देदी।

परन्तु आप आज्ञा होने से एक माह पूर्व ही किसी अज्ञात स्थान में अपनी साधना के लिये चले गये। इसी समय ही आपने राजनीति के काम से छुट्टी पाली और अपनी योग साधना में रहने लगे। आप ७८ वर्ष की आयु में १९५० को ५ दिसम्बर के दिन अपनी जीवन लीला समाप्त कर स्वर्गधाम को सिधार गये।

वीर भूमि बंगाल के प्रसिद्ध नेता—

श्री चित्तरञ्जनदास जी

(ब्र० धर्मव्रत)

सब से पूर्व अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज उठाने वाले बंगाली ही थे। बंगाल जैसा बलिदान देने वाला अन्य कोई प्रान्त नहीं हुवा। बंगाल ने नलिनी बाग्ची, सुभाषचन्द्र बोस, अरविन्द, राममोहनराय, रामकृष्ण, देवेन्द्रनाथ, केशवचन्द्र, विवेकानन्द, सुरेन्द्रनाथ, अवनीन्द्र जैसे वीरों को जन्म दिया है। इनमें एक चित्तरञ्जनदास भी थे।

चित्तरञ्जनदास का जन्म ५ नवम्बर सन् १८७० ई० को कलकत्ते में एक प्रख्यात ब्राह्मण परिवार में हुवा था। इनके पिता का नाम श्री भुवनमोहनदास था। भुवनमोहनदास कलकत्ता हाईकोर्ट के एक सालिसिटर थे, और उस समय इनकी ब्राह्म समाज के प्रमुख मनुष्यों में गणना थी। भुवनमोहनराय कवि थे एवं पत्र कला से इन्हें जन्म से ही प्यार था। इसी कारण से चित्तरञ्जनदास में भी ये गुण आये। चित्तरञ्जनदास के पिता के बड़े भ्राता श्री दुर्गामोहनदास थे। जो बड़े आजाद और विद्रोही तबीयत के प्रगतिशील सुधारवादी थे। जिन्होंने समाज के रूढ़ि बन्धनों की तनिक भी परवाह न कर पिता की मृत्यु के बाद अपनी युवती विधवा विमाता तक का फिर से विवाह कर देने का असाधारण उदाहरण प्रस्तुत किया था। ऐसे स्वाधीन नेता परिवार में जन्म लेकर चित्तरञ्जनदास के स्वभाव में आरम्भ से ही विद्रोह, साहस और स्वातन्त्र्य प्रेम के गहरे संस्कार बीज जम गये थे। जहाँ अपने पिता व ताऊ से इन्हें उपरोक्त क्षत्रियोचित विशिष्टताओं की विरासत मिली वहाँ साथ ही साथ अपनी माता से उस असामान्य भावुकता और वैष्णवोचित सहृदयता की भी गहरी संस्कारविधि इन्होंने पाई जो कि आगे चलकर इनके जीवन और काव्य क्षेत्रों में फूट-फूट कर जोरों से उच्छ्वसित होती दिखाई दी। सन् १८८६ ई० में कलकत्ते के "लन्दन मिशनरी सोसाइटी इंस्टीट्यूट" नामक शिक्षालय से एण्ट्रेन्स की परीक्षा पास कर चित्तरञ्जन दास स्थानीय "प्रेसीडेन्सी कालेज" में प्रविष्ट हुए और चार वर्ष बाद बी० ए० की उपाधि पाकर तत्कालीन

शिक्षितों के परम लक्ष्य 'आई० सी० एस०' के लिए ये लन्दन पहुंचे। किन्तु उस समय राष्ट्र पितामह दादा भाई नौरोजी के पार्लियामेंटरी चुनाव का ऐतिहासिक राजनीतिक संग्राम चल रहा था। चित्तरञ्जन दास इस समय युवक था, जो कि कलकत्ते के अपने विद्यार्थी जीवन ही में सार्वजनिक हलचलों में विशिष्ट योग्यता दिखा कर देशभक्ति की अपनी जन्मजात लग्न एवं युद्ध प्रवृत्ति का परिचय दे चुका था। भला ऐसे अवसर पर हाथ पर हाथ धरे चुपचाप कैसे बैठ सकता था। फलतः अपने अन्य कई मित्रों के साथ अपने उस वृद्ध नेता के पक्ष समर्थन में भाषणों और लेखों आदि की एक झड़ी सी बाँध दी और कड़े से कड़े शब्दों में अपने देश के शत्रुओं की आलोचना करना प्रारम्भ किया। जिसका कि शीघ्र ही इसे प्रतिफल भी मिल गया। अन्ततः जब आई० सी० एस० का परीक्षा फल प्रकट हुवा तो सूची में से उसका नाम एक दम गायब (लुप्त) था। परन्तु इसकी किञ्चित् भी चिन्ता न कर चित्तरञ्जनदास ने बदले में बैरिस्टरी ही की सनद ले वापस स्वदेश का रास्ता लिया और लौट कर कलकत्ता हाईकोर्ट में तुरन्त ही वकालत का श्रीगणेश कर दिया। परन्तु दैव की कुटिलता तो देखिए कि जो व्यक्ति आगे चलकर पचास हजार रुपये मासिक वेतन की स्थिति तक उठ कर अपने युग का भारत का सबसे अधिक आय वाला वकील होने को था। ये आरम्भ के इन दिनों में वर्षों हाथ पैर पटकते रहने पर भी साधारण भरण पोषण के योग्य पैसे भी इस कार्य से न कमा सके। यहां तक कि अपने परिवार के तत्कालीन घोर अर्थ संकट और नित्य-प्रति बढ़ते चले जा रहे ऋण के पहाड़ के दबाव से जो कि केवल इनके पिता की अत्यधिक उदारवृत्ति का ही फल था। किसी भी प्रकार छुटकारे का चारा न देखा तो अन्ततोगत्वा इन्हें पिता सहित दीवाले की घोषणा करने तक को प्रयत्नशील होना पड़ा।

अपने देश के राष्ट्रीय इतिवृत्त में इतना महत्व पूर्ण भाग लेकर भी इस जननेता का सक्रिय राजनीतिक जीवन अपने अन्य समकालीन नेताओं की तुलना में बहुत ही अल्पकालिक रहा है। इनके कार्य करने की कुल अवधि मिलाकर ७—८ वर्ष होती है। वैसे तो ये 'मानिकतल्ला केस' में ख्याति पाने से पूर्व, सन् १९०६ के दिसम्बर मास में दादा भाई के सभापतित्व में होने वाले कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में एक प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हो, राजनीति के क्षेत्र में अपना नाम लिखा चुके थे और श्री अरविन्द द्वारा सम्पादित पूर्वोक्त राष्ट्रीय पत्र 'वन्देमातरम्' तथा उसी के साथ श्री ब्राह्मबान्धव उपाध्याय एवं भूपेन्द्रनाथ दत्त के सम्पादनत्व में निकलने वाले 'सन्ध्या' और 'युगान्तर' नामक इतिहास प्रसिद्ध उग्र पत्रों की स्थापना के कार्य में भी हाथ बंटा, तथा उन्हीं दिनों सरकार द्वारा उन पर चलाए गये राजद्रोह के मुकदमों में अपनी पूरी शक्ति के साथ पैरवी कर देशभक्ति की अपनी आन्तरिक लगन की स्पष्ट झलक ये दिखा चुके थे। फिर भी सक्रिय रूप से राजनीतिक नेतृत्व के लिए यथार्थतः ये मैदान में सन् १९१७ में ही आये थे जब कि कलकत्ता में होने वाले उसी वर्ष के बंगाल प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन के सभापति के आसन पर बिठा कर इनका पहली बार मूर्धाभिषेक किया और राजनीति प्रवेश के अपने इस पहले ही मुहूर्त में महामति चित्तरञ्जनदास ने अपनी नेतृत्व शक्ति तथा ओजस्विता का उदात्त परिचय अपने देशवासियों को दिया एवं हृदयहारी मन्त्रोच्चारण किया। उससे सहज ही सबकी आँखें इनकी ओर केन्द्रित हो गईं। इन्होंने इस सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिए हुए प्रवचन में देश की वर्तमान अधोगति के साथ-साथ उसके प्राचीन कालीन स्वर्ण युग का एक ज्वलन्त चित्र प्रस्तुत करते हुए पाश्चात्य संस्कारों की बेड़ियाँ तोड़ त्याग की भित्ति पर प्रस्थापित अपनी जातीय संस्कृति के आदर्श को फिर से अङ्गीकार करने के लिए जोरों से आवाज उठाई और कहा कि हमें केवल उन्हीं तत्त्वों को ग्रहण करना

चाहिए जिनका कि हमारी निजी प्रतीभा एवं प्राणधारा के साथ सामंजस्य हो। एवं उन समस्त बातों को एकदम ठुकरा देना चाहिए जो कि हमारी आत्मा के लिए विजातीय हों। इन्होंने स्मरण कराया कि गंगा-यमुना-ब्रह्मपुत्र की उन धाराओं का जो कि अब भी उसी कलकल निनाद सहित इस महादेश के वक्षः स्थलों को सींचते हुए पूर्ववत् अपना प्रवाह जारी किये हुए हैं। और उन्नत मस्तक हिमालय का भी स्मरण कराया जो कि स्वर्ग की ओर शीश उठाए गर्व और गौरव के साथ ज्यों का त्यों आज भी अडिग खड़ा है और इन गौरव स्मारकों की याद दिलाते हुए इस बात की ओर विशेष रूप से इन्होंने इंगित किया कि हमारी मातृभूमि का भौतिक कलेवर तो आज भी ज्यों का त्यों हमारे लिये अक्षुण्ण बना हुवा है केवल आवश्यकता उसमें पुनः उस आत्मा को पुनर्जागृत करने की है जो कि पिछले दिनों की इस गुलामी के कारण मानों जड़वत् हो गई है। इस प्रकार अपनी कवित्व पूर्ण वाणी में एक हृदयहारी जागृति मन्त्र इस देश के निबासियों के कानों में इन्होंने फूँका और सामाजिक तथा राजनीतिक पुनरुत्थान के एक नूतन प्रयास द्वारा राष्ट्र की अन्तरात्मा को जगा कर—"सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्" जैसे दिव्य स्तवनों से वन्दित भारत माता की प्रतिमा में उसे पुनः प्रतिष्ठापित करने के लिए हृदय से सबका आह्वान किया। और इस सम्बन्ध में लगे हाथ दस महत्वपूर्ण आदेशों से मुक्त एक रचनात्मक योजना का मानचित्र भी अपनी ओर से इन्होंने प्रान्त के निवासियों के पुरतः रख दिया। जिसका सारांश यह था कि हमें इतिहास की शिक्षाओं से शिक्षा लेनी चाहिए। यूरोपीय औद्योगिकता के मार्ग को छोड़ देना चाहिये। गांवों की संख्या की बढ़ती के क्रम को रोकना चाहिये। फिर से देहातों को बसाने, उनकी श्रीवृद्धि करने, उन्हें साफ सुथरे और रोगमुक्त बनाने में हाथ लगाना चाहिए। किसानों को उपयोगी दस्तकारियों की शिक्षा दे प्राचीन व्यावसायिक एवं औद्योगिक उपज की छान बीन करनी चाहिये। समस्त देश में ऐसी वस्तुओं के उत्पादन के छोटे-छोटे केन्द्र अथवा उद्योग-गृह खोलने चाहियें, जिनके सम्बन्ध में हमारे जनवर्ग को नैसर्गिक कौशल प्राप्त हों। उद्योग धन्धों के लिए सस्ते दर पर पूँजी सुलभ करने के लिए प्रत्येक जिले में बेंक खोलना चाहिए। अनिवार्यतः आवश्यक पदार्थों को छोड़कर समस्त विदेशी वस्तुओं का मंगाना बन्द कर देना चाहिये। अपनी शिक्षा को वास्तविकतामूलक और राष्ट्र की आत्मा के सानुकूल बनाना चाहिए। और उसे प्रान्त की भाषा ही के माध्यम द्वारा देना चाहिए। कैसी राजनीतिक सूझ बूझ और सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना में पका हुआ यह कार्य-क्रम था। और कितने ऊँचे दर्जे की बात थी। ये बातें इस महान नेता ने ४० वर्ष पूर्व ही, जब कि गांधी जी के प्रख्यात रचनात्मक कार्य-क्रम का पाठ अभी हमने पढ़ा भी न था, एक सुझाव के रूप में देश के समक्ष रख दी थी।

इसके पश्चात् दिन प्रति दिन शुक्ल पक्ष के चन्द्र की भाँति न केवल अपने प्रान्त ही के राजनीतिक गगन में प्रत्युत निखिल भारतीय राष्ट्रीय आकाश में भी चित्तरञ्जनदास के व्यक्तित्व का तेज निरन्तर बढ़ता चला गया और सन् १६१८ के प्रस्तावित 'मांटेगू चेम्सफोर्ड सुधारों' के सम्बन्ध में लोकमत संग्रह करने के हेतु आने वाले प्रसिद्ध 'मांटेगू मिशन' के समक्ष गवाही देते समय जब निर्भीक वाणी में देश के राजस्व तथा नौकरशाही पर सम्पूर्ण अधिकार की मांग प्रस्तुत कर, इन्होंने मि० मांटेगू जैसे मंजे हुए राजनीतिक खिलाड़ी के भी छक्के छुड़ा दिये, तब देश भर में निर्विवादरूप से इनका लोहा मान लिया गया एवं लोकमान्य तिलक की भांति ये भी एक राष्ट्रवादी नेता माने जाने लगे। इन्हीं दिनों पूर्वीय बंगाल के जिलों का एक व्यापक दौरा किया। एवं कांग्रेस को फिसड्डी बनाये रखने वाले मांडरेटों पर निर्मम प्रहार

करते हुए इन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता के मञ्च पर समुत्थित उस नवीन राजनीतिक विचारधारा का जोरों से शंखनाद किया। जिसका सूत्र था--"हर हालत में स्वराज्य की प्राप्ति। क्योंकि स्वशासनाधिकार का अभाव और दूसरों का शासन चाहे वह कितना ही सुखदायी और न्यायपूर्ण क्यों न हो, कदापि श्लाघ्य नहीं हो सकता। वह तो अन्ततोगत्वा आत्महननकारी ही होता है। जिसकी कि छाया के प्रभाव से राष्ट्र की सांस्कृतिक आत्मा जड़ हो जाती है और उसका व्यक्तित्व सदा के लिए मिट जाता है।" निश्चय ही हमारे राजनीतिक आंगन में इस नवीन दृष्टि बिन्दु की स्थापना युगान्तर सूचक थी। यह स्वराज्य की सुस्पष्ट मांग की पहली निर्भीक अभिव्यक्ति और विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने की प्रथम हुँकार भरी खुली चुनौती थी। यह स्वराज्य क्या वस्तु है और इसका मूर्त क्या होगा, इन बारीकियों की व्याख्या या परिभाषा करने के पचड़े में पड़ना इन्होंने इस समय आवश्यक न समझा। इस समय तो उनके लिए सब से पहली आवश्यकता यही थी कि इसमें निहित मूल सिद्धान्त को स्वीकार कर विदेशी शासन का डेरा तंबू यहां से उखाड़ फेंका जाय। यदि किसी ने इन पर जोर देकर पूछा तो इन्होंने कहा कि स्वराज्य, स्वराज्य है, यह परिभाषा के बंधन में नहीं बाँधा जा सकता। यह तो एक भाव है, जिसमें स्वतः अपना शासन करने के लिए प्रत्येक राष्ट्र के जन्म सिद्ध अधिकार की आध्यात्मिक भावना निहित है।

इसके बाद १६१६ का युग परिवर्तनकारी तूफानी जमाना आया। जब कि हमारे निष्प्रभ जनाकाश में अपनी सम्पूर्ण प्रभा सहित गांधी रूपी सूर्य के एकाएक दमक उठने और उसके प्रचण्ड उत्कर्ष की आंच से संतप्त हो शासन तन्त्र के दमन-शस्त्रागार के भी एक अभूतपूर्व खड़खड़ाहट के साथ झनझना बैठने के साथ ही कोरे मौखिक युद्ध की स्थिति से उठकर इस देश का राष्ट्रीय मञ्च एक सच्चा रण आंगन बन गया था। एवं (रोलट बिल) जैसे काले कानून तथा जलियां वाला वाग और पंजाब के अन्य स्थानों में बरस पड़ने वाली सरकारी गोलियों की बौछार ने जब सदा के लिए दबाकर कुचल देने के बदले जन शक्ति के आवेग को उल्टे और भी जोरों के साथ उभार कर सामने लाने का काम किया। इस प्रकार के समय में चित्तरञ्जनदास जैसे जन्मजात योद्धा के लिए मानो लड़ाई का अखाड़ा खुल गया। इन्होंने कलकत्ता के टाउन हाल में आयोजित एक विराट् सभा में कड़े से कड़े शब्दों में 'रौलट' बिल की निन्दा की और कांग्रेस द्वारा पंजाब के हत्या काण्ड की जांच के लिए जब एक गैर सरकारी समिति नियुक्त की गई तो अपना सारा कार्य छोड़ कर उसके एक सदस्य के रूप में लगभग ४ मास इन्होंने जांच करने, गवाहियां लेने तथा रिपोर्ट तैयार करने में व्यतीत किए। इसी कमेटी में इनका सबसे पहले गांधी जी से मेल हुवा था। यहां पर यह बात लिखने योग्य है कि—इन्होंने जांच के लिए स्वतः अपने काम के लिये अमृतसर का वह प्रदेश लिया था जहाँ 'जलियां वाला बाग' जैसा नरमेध घटित हुआ था। एवं इस काम के सहायतार्थ पं० जवाहरलाल नेहरू थे। जिन्होंने अपनी आत्म कथा में इस महान् जननायक के अधीन उस समय प्राप्त किए गये अपने शिक्षा पाठ का साभार उल्लेख किया।

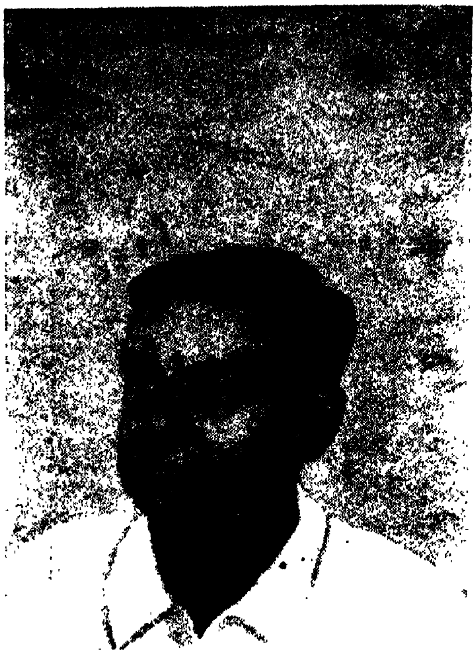
चित्तरञ्जन दास ने नागपुर से कलकत्ता आकर अपनी आमदनी को फलती फूलती वकालत को छोड़ दिया एवं सर्वविध व्यसन छोड़ दिये विदेशी वस्त्रों को फूंककर शुद्ध खद्दर पहनना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से अपनी जीवन धारा को एक राजनैतिक सन्यासी के जीवन में परिणत कर महान बैरिस्टर चित्तरञ्जनदास का चोगा उतार कर वे अपने जमाने के सब से प्रिय नेता बन गए। इस के पश्चात् ये अपने अपराजित युद्ध कौशल, महान् नेतृत्व बंगाल भर के जन हृदय पर प्रस्थापित अपने एकच्छत्र प्रभुत्व के बल पर देश के स्वातन्त्र्य संग्राम के उस प्रथम मोर्चे को जिस प्रकार सफल बनाने में

इन्होंने योग दिया वह किसी भी राष्ट्रीयजन से अज्ञात नहीं है। इनकी एक ही पुकार पर बंगाल भर के विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूल, कालेज खाली कर दिये, वकील, बेरिस्टर अदालतों से बाहर आ गए, जगह जगह राष्ट्रीय विद्यालय उठ खड़े हुए और सैकड़ों हजारों की संख्या में लोग उस 'स्वयं सेवक दल' में भरती होने लगे, जिसकी इनके हाथों द्वारा स्थापना होते ही, बंगाल सरकार इस तरह घबरा गई कि तुरन्त ही उस संस्था को गैर कानूनी घोषित कर दिया। सरकार ने सभा आदि न करने का कानून लगा दिया। इस कानून को तोड़ कर जगह-जगह सभाएं होने लगीं। कांग्रेस और इनकी कमेटी ने इनको ही अपने प्रान्त का सर्वोपरि सूत्र संचालक निश्चित किया। फलतः एक के बाद एक कई 'मैनिफेस्टो' निकाल कर दस लाख स्वयं सेवकों की माँग की। अपनी प्रसिद्ध अपील इन्होंने निकाली। इन्हीं दिनों 'प्रिन्स आफ वेल्स' के भारत आगमन के अवसर पर उनके स्वागत के बहिष्कार का देश व्यापी आन्दोलन उठा। जिसमें बंगाल ने भी बहुत अधिक भाग लिया। फलतः दमन और गिरफ्तारियों का तांता बढ़ता गया। जिसके सिलसिले में ६ दिसम्बर सन् १९२१ को चित्तरञ्जनदास आदि नेता पकड़ लिये गये और ६ मास की सजा देकर जेल भेज दिये गये।

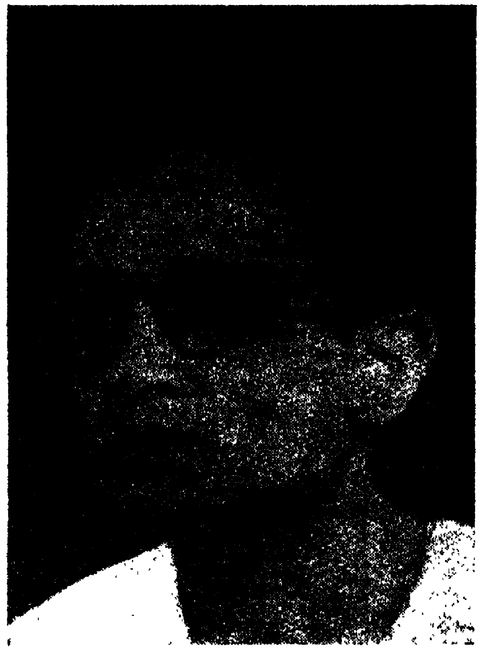
चित्तरञ्जनदास ने अपने जेल जीवन में बंगला साहित्य को बहुत कृति भेंट की। एवं इन्होंने 'राष्ट्रीय उत्थान का इतिहास' तथा 'बंगला भाषा शब्दकोष'' आदि पुस्तकों के लिखने का प्रयत्न किया ये १९२२ को अपनी जेल अवधि पूरी करके कारागर से बाहर आये। बीच बीच में और भी अधिवेशन होते रहे और उनकी पार्टी ने बहुत ही काम किया। अन्त में ये १९२५ म रोगी हो गये। ये अपने को स्वस्थ बनाने के लिए हिमालय पर गये, परन्तु वहां पर भी कुछ लाभ नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा इन्होंने १६ जून १९२५ को अपना यह शरीर छोड़ दिया। इनका शव रेल द्वारा कलकत्ता शीघ्र लाया गया, और इनके शव का अन्तिम संस्कार महात्मा गांधी के नेतृत्व में किया गया। उस समय महात्मा गांधी ने गद गद् स्वर से कहा कि—"मनुष्यों में से एक देवता आज चला गया और बंगभूमि आज मानो विधवा हो गई"।

चित्तरञ्जनदास का जीवन क्या था मानो एक आँधी थी, एक तूफान था। ये भारतीय आंगन में इकट्ठे हुए कूड़े मरकट को बुहार कर देश की आत्मा को पवित्र करने वाला भारत माता का एकमात्र सपूत था। इस महा पुरुष की देन क्या थी? इस विषय में केवल रवींद्रनाथ द्वारा इनकी प्रशस्ति में लिखित निम्न पंक्तियों को ही उद्धृत कर देना ठीक है। वे लिखते हैं—"जो सबसे बड़ी देन है वह अपने देशवासियों के लिए पीछे छोड़ गए। वह कोई विशिष्ट राजनीतिक या सामाजिक कार्य-क्रम की देन नहीं, प्रत्युत एक महान् साध की वह सर्जनात्मक प्रेरणा शक्ति ही है। जिसने कि उस बलिदान के रूप में एक अमर स्वरूप धारण कर लिया। जिसका कि प्रतिनिधित्व इनका जीवन करता है"। ये विद्रोह के पुरोहित व राष्ट्र के सड़े गले कलेवर को मिटाकर एक नवीन स्वस्थ शरीर में उसके सच्चे व्यक्तित्व के उदय और विकाश की आकाँक्षा रखने वाले एक महान् स्वप्नद्रष्टा थे। और इसी लिये याचना से पूर्व ध्वंस का फावड़ा कुदाल ले रुद्र वेश में ये हमारे आंगन में अग्रसर हुए थे। किन्तु उनका ध्वंस करना ही मुख्य उदेश्य नहीं था। इन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि—"यदि मैं विध्वंस करना चाहता हूं तो केवल इसी लिये कि एक सड़ा गला जर्जरित ढांचा उस स्थान पर खड़ा है, जहां कि एक सुन्दर भवन का निर्माण किया जा सकता है। यदि हम अड़ंगा हटाना चाहते हैं इसीलिए कि नूतन निर्माण का अवसर हमारे हाथ लगे'। और यह कहते थे कि—"यदि मैं स्वाधीनता प्राप्ति के इस प्रयास के बीच ही मर जाऊं तब

बङ्गाल के चार क्रान्तिकारी शहीद—



श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल



श्री बटुकेश्वर दत्त



श्री कन्हालालई दत्त



श्री उल्लासकर दत्त

बङ्गाल के दो वीर सेनापति-



श्री नेता जी सुभाषचन्द्र बोस



श्री रासबिहारी बोस

भी पुनः पुनः इसी देश में जन्म लेता रहूंगा। उसी के लिये जीऊंगा, उसी की आशा मन में बसाए रहूंगा, और तब तक चैन न लूंगा, जब तक कि मेरी यह आशा और यह स्वप्न पूरा न हो। मातृभूमि के इस अनुपम पुजारी की राष्ट्र-भक्ति की माप शब्दों के पैमाने द्वारा कैसे की जा सकती है? ये तो देश के लिये ही पैदा हुए थे, और इसी के लिये जीये और इसी के लिये मरे। अतः सभी को इनके जीवन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि किसी भी अत्याचारी राजा की सहायता नहीं करनी चाहिए अपितु उसके विरुद्ध महान् विद्रोह करना चाहिये। चित्तरञ्जनदास ने भी भारतमाता के बन्धन काटने का बहुत प्रयत्न किया और अपने इस मानवीय वपु को महावेदि पर बलि रूप में चढ़ा दिया। इसको पाकर बंगाल देश धन्य है।

नेता जी सुभाषचन्द्र वसु

(ब्र० मनुदेव)

भारतीय क्रान्तिकारियों में सुभाष चन्द्र वसु का एक प्रमुख स्थान है। इनकी सादगी और इनकी सरलता पर सारा देश अत्यन्त मोहित हो उठा, इसलिये कि उन्होंने अपने त्याग से देश को जगाया। वे देश के बहुत बड़े नेता थे। देश सेवा इनकी रग-रग में समाई हुई थी। देश सेवा के आगे इन्हें कुछ अच्छा ही नहीं लगता था। उन्होंने देश सेवा की वेदि पर अपने जीवन की बलि दे दी। रुपये, पैसे, सम्मान-मर्यादा का तो उन्होंने कभी ख्याल ही नहीं किया। देश सेवा के सामने गौरव से भरा हुआ आई० सी० एस० का पद उन्होंने ठुकरा दिया था। खद्दर की एक साधारण धोती के साथ खद्दर का कुर्ता इनके महान् त्याग का परिचय देता था। उनके मस्तक से एक विशेष प्रकार की ज्योति प्रकट होती थी। देश-सेवा की धुन में उन्होंने अपना विवाह भी नहीं किया। भारतवर्ष के ग़रीबों और किसानों की दुःख भरी आवाज हमेशा उनके हृदय में दुःख पैदा किया करती थी।

ऐसे महान् व्यक्ति सुभाष चन्द्र बोस का जन्म १८९७ ई० २३ फरवरी को कटक नामक स्थान में हुआ। इनके पिता का नाम जानकीनाथ था। जानकीनाथ जी का बचपन तथा जवानी दुःखों एवं बाधाओं से भरा हुआ था, किन्तु अपने साहस और परिश्रम से थोड़े ही दिनों में अच्छी उन्नति कर ली। सरकार ने इनके कार्यों से खुश होकर इन्हें राय बहादुर की उपाधि दी थी। जानकीनाथ शिक्षा के बड़े प्रेमी थे। जब ये कटक म्युनिसिपिलिटी के चैयरमैन थे तब उन्होंने शिक्षा के प्रचार के लिए बड़ा यत्न किया था। इनकी सभी सन्तानें अत्यन्त शिक्षित थीं, शरच्चन्द्र, डा० सुनीलचन्द्र, सुभाषचन्द्र आदि सभी ने शिक्षा प्राप्त करने के लिये बिलायत की यात्रा की थी।

सुभाष बाबू की माता भी अधिक धर्मप्रिय एवं बुद्धिमती थी। अपनी सन्तानों को सुयोग्य बनाने में इनकी माता जी का विशेष हाथ था, इनके पिता जानकीनाथ ने कलकत्ते में एलगिन रोड पर एक सुन्दर मकान बनवाया था। सुभाष बाबू १९१३ में इसी मकान में रहे थे।

सुभाष बाबू जब कुछ बड़े हुए, तब यह कटक के एक यूरोपीय स्कूल में पढ़ने के लिये भेजे गये। बालकपन से ही इनकी बुद्धि तीव्र एवं प्रखर थी कि थोड़े ही समय में स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर ली। स्कूली पढ़ाई समाप्त करने के बाद १९०९ ई० में इन्होंने कटक के कालेजियट स्कूल में नाम लिखाया, कालेज में ये सब विद्यार्थियों से समझदार एवं प्रतिभाशाली थे। जब ये द्वितीय श्रेणी में पढ़ रहे थे, श्री

बेनीमाधव दास इनके प्रधानाध्यापक थे। बेनी आदर्श चरित्र एवं त्याग मूर्ति थे। सुभाष बाबू के हृदय पर उनके आदर्श चरित्र का गहरा प्रभाव पड़ा। कुछ दिनों में जब बेनी बाबू स्थानान्तरित हो गये तो सुभाष बाबू को बहुत दुःख हुआ।

इसी समय से उनके जीवन में गहरा परिवर्तन हुआ। जहाँ, वे पहले रामकृष्ण कथामृत पान करते थे वहाँ अब ये गरीबों और दुःखियों की सेवा करने लगे। गरीबों और दुःखियों की दुःखभरी वाणी सुनकर उनका हृदय रो उठता था।

गरीबों और दुखियों की सेवा के साथ ही इनका पढ़ना-लिखना भी चलता रहा। बुद्धि अधिक तेज होने के कारण यह कभी किताबों का कीड़ा न बने। वे जो पढ़ते समझकर पढ़ते, वह इनके हृदय में अंकित-सा हो जाता। १९३१ में सुभाष बाबू ने प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की। इस परीक्षा में इनका दूसरा स्थान था, किन्तु आपने अंग्रेजी में अपनी ऐसी अच्छी योग्यता दिखाई थी कि परीक्षक को विवश होकर यह कहना पड़ गया था, कि ऐसी अंग्रेजी मैं स्वयं नहीं लिख सकता। १९०३ में सुभाष बाबू कलकत्ते चले आये और प्रेसीडेन्सी कालेज में नाम लिखाकर पढ़ने लगे।

इन्हीं दिनों डा० सुरेश मीर्जापुर स्ट्रीट मेडिकल मेटन में एक नये दल की स्थापना कर रहे थे। दल क्या था, एक आश्रम था। सुरेश बाबू इस आश्रम के द्वारा ऐसे नवयुवक कार्यकर्त्ता तैयार कर रहे थे जो जन्मभर अविवाहित रहकर देश की सेवा कर सकें। बंगाल के कई युवकों ने इस आश्रम में नाम लिखवाया था। सुभाष बाबू को जब इस आश्रम का पता चला, तब यह भी उस आश्रम में योग देने लगे। इनके साथ ही इनके भाई शरच्चन्द्र वसु भी आश्रम में शामिल हुए थे। उसी समय से सुभाष बाबू ने अविवाहित रहकर देश सेवा करने की प्रतिज्ञा की थी।

सुभाष बाबू गरीबों के भक्त बन गये थे। संसार के ठाट-बाट के जीवन से इनके हृदय में घृणा पैदा हो गई, इनके हृदय में तरह-तरह के विचार पैदा हो रहे थे उन्हें सुलझाने वाला इन्हें कोई न मिला। अतः एक दिन मां बाप से छिपकर गुरु की खोज में निकल पड़े। सुभाष बाबू के अचानक घर से चले जाने से घर में कुहराम मच गया। जब तक सुभाष बाबू घर नहीं आ गये, माता-पिता के जीवन के दिन रोते ही व्यतीत होते थे। यात्रा में सुभाष बाबू की कई साधु संन्यासियों से भेंट हुई। वे दिल्ली, आगरा, मथुरा, गया होते हुए काशी पहुंचे, काशी में रामकृष्ण मिशन के ब्रह्मानन्द स्वामी के पास भी वे कुछ दिनों तक रहे थे। स्वामी जी ने इन्हें सलाह दी कि तुम मां बाप की आज्ञा लिये बिना घर से निकले हो इसलिये उन्हें घर लौट जाने के लिए कहा। काशी से चलकर बोध गया पहुँचे। बोध गया में इन्हें साधु-संन्यासियों की बुरी लीला देखने को मिलीं इसलिए उनकी साधुओं के प्रति घृणा पैदा हो गई, परन्तु अन्त तक उन्हें कोई सच्चा गुरु नहीं मिला। अन्त में निराश होकर घर लौट आये। इन्हें पाकर मां बाप इस प्रकार प्रसन्न हुए जैसे कोई अपने खोये हुए अमूल्य रत्न को प्राप्त करके प्रसन्न होता है।

घर आकर सुभाष बाबू दिन रात चिन्तित रहा करते थे। चिन्ता इन्हें ज्ञान की थी। ज्ञान की ही खोज में निकले थे। परन्तु आशा पूरी नहीं हुई, स्वास्थ्य अवश्य खराब हो गया। शनैः शनैः उनके स्वास्थ्य में सुधार हो गया और उन्होंने १९१ ई० मे एफ० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। प्रेसीडेन्सी कालेज के सभी विद्यार्थी आपको बड़े सम्मान से देखते थे।

सुभाष एक निर्भीक प्रकृति के व्यक्ति थे। वे कालेज में भी सदा विद्यार्थियों का पक्ष लिया करते

थे, वे कितने निर्भीक थे यह इस घटना से पता चलता है। एक अंग्रेज प्रोफेसर कक्षा में विद्यार्थियों को बुरी गाली देने से कभी बाज न आता था। उसका नाम सी० एफ० ओटन था। कालेज में पढ़ते समय सुभाष को भी उस प्रोफेसर से पढ़ने का अवसर आया। प्रोफेसर ने एक विद्यार्थी से प्रश्न पूछा, वह उसका समुचित उत्तर न दे सका।

प्रोफेसर तड़ककर बोला—"यू रास्केल" तुम पढ़ लिख नहीं सकता,

विद्यार्थी—मैं आपके प्रश्न को नहीं समझा।

प्रोफेसर—"यू ब्लैक मङ्की (कालेबन्दर) तू प्रश्न भी नहीं समझ सकता? यह सब सुभाष को सह्य नहीं हुआ। सुभाष खड़े होकर बोले, "प्रोफेसर साहब जरा सम्भल कर बोलिये, प्रोफेसर" यू ब्लडी" तुम बैठ जाओ। सुभाष बोले—क्या तूने हमें कुत्ता समझ रखा है। प्रोफेसर, हां तुम लोग कुत्ते हो, सुभाष को ये शब्द तीर की तरह चुभ गये सुभाष बोले "हमारी आजादी छीन कर गुलाम बनाने वाले" यह कहकर उसकी तरफ चल पड़े। प्रोफेसर—शटअप यू बास्टर यह कहकर प्रोफेसर जाने लगा, सुभाष ने प्रोफेसर को पकड़कर एक तमाचा उस के गाल पर दे दिया। इसी अपराध के कारण सुभाष को कालेज से निकाल दिया। इनके साथ इनके अभिन्न मित्र अनंग मोहनदास को भी निकाल दिया, किन्तु सर आशुतोष के प्रयत्नों से फिर स्काटिश कालेज में प्रविष्ट हो गये और बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की।

भारत से उनको कितना प्रेम था एक बार उन्होंने कहा था, भारतवर्ष में नया जीवन पैदा हो रहा है। मैं धन्य हूं, जो इस समय भारतर्प में पैदा हुआ हूं। मैं जब मर कर जन्म धारण करूं तो भारतवर्ष में करूं।

बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने बाद उनके पिता ने आई० सी० एस० करने की आज्ञा दी। सुभाष की इच्छा न होते हुए भी पिता जी की आज्ञा से विवश होकर आई० सी० एस० के उस गुलामी टकसाली मार्ग पर उतर पड़े थे। वे विलायत जाकर केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में प्रविष्ट हो गये। सुभाष ने जल्दी आई० सी० एस० परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। आई० सी० एस० का परीक्षा फल प्रकट होने पर जहां उनके माता-पिता स्वजन बन्धु हर्ष से फूले न समाये वहाँ स्वयं अपनी यह सफलता एक दुर्भाग्य सी प्रतीत हुई। और कुछ महीने बीत पाये होंगे कि अपनी आन्तरिक भावना का मूर्त प्रमाण भी उन्होंने प्रस्तुत कर दिया, जब कि वापस स्वदेश लौटने से पूर्व ही भारत-मन्त्री के हाथों में गुलामी की उस नौकरी का त्यागपत्र रखकर एक ही झटके में उस मायाजाल से अपने को छुड़ा लिया जिसकी कि मृगतृष्णा में उन दिनों प्राय: प्रत्येक महत्त्वाकांक्षी शिक्षित युवक उलझा हुआ था।

असहयोग के मैदान में

उस समय जब कि रौलट-बिल, पञ्जाब हत्या काण्ड, मार्शल-ला आदि के रूप में दमन की एक अप्रत्याशित आतंकजनक विभीषिका दृश्य समुपस्थित होते ही सारा देश जागृति और आत्म चेतना की एक अपूर्व लहर में विदेशी सत्ता के विरुद्ध सीना तान कर उठ खड़ा हुआ था और गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग की रण दुन्दुभी बजा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सक्रिय रूप से कुछ करने के लिये ताल ठोक कर लड़ाई के मैदान में उतर पड़ा था। तब सुभाष आई० सी० एस० के उस मृगजाल से छुटकारा पा कर आजीवन मातृभूमि की सेवा का भीष्म-संकल्प करने वाले युवक सुभाषचन्द्र को स्वदेश लौटते ही अपने लिये एक मन चाहा कार्य-क्षेत्र मानो अगवानी करता हुआ पहले से ही तैयार मिल गया। फिर क्या पूछना

था—एक क्षण भी विलम्ब किये बिना तुरन्त ही कमर कस कर वह उस में उतर पड़े और जैसे ही बम्बई में जहाज से इस पवित्र भारत भूमि पर उतरे, वैसे ही पहले तो गांधी जी से असहयोग आन्दोलन के विषय में महत्वपूर्ण भेंट की तथा जब उन्हें गान्धी जी से यथार्थ सन्तोष न मिल सका तो वहां से सीधे कलकत्ते पहुंच, देश के उस दूसरे दिग्गज नेता देशबन्धु चित्तरंजनदास से जाकर वह मिले, जो कि उन्हें अपने विचारों के कहीं अधिक निकटस्थ एवं एक पक्का व्यावहारिक राजनीतिक दिखलाई दिया। श्री देशबन्धु चित्तरंजनदास ने एक नेशनल कालेज की स्थापना की थी, वे देश में क्रान्ति के विचारों को फैलाने के लिए एक समाचार-पत्र भी निकालते थे। जब सुभाष बाबू इनके पास आ गये तो कालेज का तथा समाचार-पत्र निकालने का काम सुभाष को सौंप दिया। बंगाल के असहयोग आन्दोलन के इस पहले मोर्चे में महा तेजस्वी सुभाष बाबू ने अपने अन्तराल में छिपी हुई क्रान्ति की चिन्गारियों को ऐसी प्रखरता के साथ चमकाना शुरू किया कि सहज ही सरकार की राह में वह कांटा बन गये। अतः जैसे ही "प्रिन्स आफ वेल्स" के स्वागत बहिष्कार का वह देशव्यापी आन्दोलन उठा, जिस ने जलते हुये हवनकुण्ड में मानो घी की आहुति छोड़ दी; साथ ही कांग्रेस के तत्वाधान में राष्ट्रीय स्वयं सेवकों की गैर कानूनी भरती का वह दौर-दौरा प्रारम्भ हुआ, जिस से कि घबराकर सरकार को अपने दमनचक्र की गति को और भी तीव्र कर देना पड़ा। वैसे ही प्रान्तीय स्वयं सेवक दल के प्रधान सेनानी के नाते शीघ्र ही सुभाष बाबू पर नौकर शाही की दृष्टि आ लगी और दिसम्बर १९२१ ई० में छः मास की कैद की सजा उन्हें पहली बार मिली और कारागार का द्वार अन्त में उन्हें देखना पड़ा। जो कि इस के बाद से मानो उनका दूसरा घर सा बन गया। कहते हैं कि दण्ड सुनाये जाने के समय विद्रोह-मूर्त्ति सुभाष ने तीक्ष्ण व्यं य युक्त शब्दों में मैजिस्ट्रेट को सम्बोधित करते हुए कहा था ? केवल छः मास ! तो क्या मैंने महज एक मुर्गी चुराने का अपराध किया है। ऐसा था वह वीर सुभाष।

स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरंजनदास और सुभाष एक ही जेल में रखे गये थे। सुभाष बाबू जेल में देशबन्धु चित्तरंजनदास जी के लिये अपने हाथों से भोजन बनाया करते थे। देशबन्धु के प्रति सुभाष बाबू के हृदय में इस समय बहुत अधिक भक्ति थी। देशबन्धु जी जब तक जीवित रहे, सुभाष शिष्य की भान्ति उनके चरणों में रह कर देश की सेवा करता रहा।

इस प्रथम जेल यात्रा से पुनः बाहिर आने पर सुभाष के अपने प्रान्त बंगाल पर बाढ़ की भयंकर आपत्ति के रूप में लोक संकट की एक भीषण विभीषिका मुंह फाड़े सामने प्रस्तुत हुई। अतः आते ही तुरन्त पीड़ितों की सहायता के कठिन कार्य में वह संलग्न हो गये। तदुपरान्त पंडित मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य दल की स्थापना की। इस दल की स्थापना बहुत कुछ कौंसिल के चुनाव ही के लिए की गई थी। सुभाष बाबू देशबन्धु जी के साथ इस दल में सम्मिलित हो गये। बंगाल में भी इस दल की ओर से कौंसिल के लिये प्रतिनिधि खड़े किए गये। चुनाव में इन पत्रों द्वारा भी बहुत सहायता मिली। सुभाष बाबू की अधिक कोशिशों के कारण ही स्वराज्य दल को बंगाल में सफलता मिली। देशबन्धु जी सुभाष बाबू को कौंसिल के लिये प्रतिनिधि खड़ा करना चाहते थे। परन्तु सुभाष इसके लिये तैयार नहीं हुये। इसी बीच सुभाष ने युवक दल की भी स्थापना की थी। जिस का उद्देश्य कांग्रेस नीति से स्वराज्य प्राप्त करना था। इस दल ने किसानों तथा गरीबों के लिये बहुत कार्य किये।

सुभाष बाबू कलकत्ता निवासियों के बहुत अधिक प्रिय बन गये। इनकी सादगी और सरलता की

सारा बंगाल खुले कण्ठ से प्रशंसा करता था। बंगाल का युवक समाज उन्हें अपना मानने लगा था। इस लिए १९३३ में जब कलकत्ता कारपोरेशन का चुनाव हुआ, तब सुभाष बाबू उस में निर्विरोध चुन लिए गये।

सुभाष बाबू कलकत्ता कारपोरेशन के एक्जिक्यूटिव आफिसर बनाये गये थे। इस पद पर सुभाष बाबू ने जो त्याग किया वह बहुत ही सराहनीय है। इसके पहले जो एक्जिक्यूटिव आफिसर होते थे, उन्हें कारपोरेशन से तीन हजार रुपये मासिक वेतन मिलता था। किन्तु सुभाष बाबू ने तीन हजार रुपये लेना मंजूर नहीं किया, उन्होंने डेढ़ हजार ही अपने लिए बहुत समझा। सुभाष बाबू थोड़े ही दिनों तक इस पद पर रह सके थे। किन्तु थोड़े ही दिनों में इन्होंने कारपोरेशन को एक अच्छे साँचे में ढाल दिया। नगर-निवासी इनके प्रबन्धों की बहुत दिल खोल कर प्रशंसा करते थे। इस प्रकार की सुधार योजनाओं के करते हुए सुभाष बाबू ने इस बात का जीता-जागता प्रमाण विश्व के सामने प्रस्तुत कर दिया कि राष्ट्र-निर्माण के रचनात्मक अंग की पूर्ति करने की भी कैसी अगाध क्षमता उन्हें प्राप्त थी। तो फिर अधिक दिनों तक शासन-सत्ता के लौह-चंगुल से भला क्यों कर बचे रह सकते थे; अतः अभी पूरा एक वर्ष भी इस कार्य को हाथों में लिए उन्हें न हुआ होगा कि गोपीनाथ शाह नामक एक तरुण क्रान्तिकारी बंगाली के हाथों मि० डे नामक एक अंग्रेज की हत्या की आड़ में सरकार ने २५ अक्तूबर १९२४ ई० के दिन अस्सी (८०) नव-युवकों के सहित सुभाष को पकड़ कर "बंगाल-आर्डिनेन्स" के आधीन बिना मुकदमा चलाये ही अनिश्चित काल के लिए पुनः उन्हें अपने कारागार का अतिथि बना लिया। इस अन्याय के प्रति स्वभावतया सारा देश रोष और विक्षोभ की एक भयंकर लहर से उद्विग्न हो उठा और स्वयं देशबन्धु के मुख से भी निम्न ओजस्वी वाक्य निकलते सुनाई दिये—यदि मातृभूमि का प्रेम एक अपराध है तो मैं भी अपराधी हूं। अगर सुभाषचन्द्र बोस अपराधी घोषित कर दिया जाता है तब तो मैं भी उतना ही अपराधी ठहरता हूं। तब तो यदि कारपोरेशन का प्रधान एक्जिक्यूटिव आफिसर दोषी ठहरता है तो उसका मेयर उतना ही दोषी माना जाना चाहिए। परन्तु इस प्रतिक्रिया का कोई प्रभाव सरकार पर नहीं हुआ और कुछ दिनों तक अलीपुर सेण्ट्रल जेल में रखने के बाद उस अन्यायी सरकार ने देश के लाड़ले को अन्त में बर्मा की पुरानी राजधानी माण्डले के उस कारागार में ले जा कर नजरबन्द कर दिया जहां कि लोकमान्य और लाजपत-राय भी अपनी सजा काट चुके थे।

इस कठोर कारावास का बड़ा चिन्ताजनक कुप्रभाव सुभाष वसु के स्वास्थ्य पर पड़ा और कुछ ही दिनों में उनका भार लगभग ४० पौंड कम हो गया। इस बीच जेल में दुर्गा-पूजा का पर्व मनाने के प्रश्न पर अपने कुछ साथियों सहित एक लम्बा अनशन भी उन्होंने किया, जिस से उन के शरीर की हालत और भी अधिक चिन्ताजनक हो गई। अन्त में तपेदिक के से लक्षण प्रकट होने लगे और सारा देश उनके स्वास्थ्य की चिन्ता से क्षुब्ध हो उठा, तब कहीं जाकर सरकार उन्हें इलाज के लिए स्विट्जरलैंड जाने की अनुमति देने को तैयार हुई—परन्तु वह भी इस शर्त पर कि बर्मा से जहाज पर चढ़ कर वह सीधे योरुप चले जाएँ, मार्ग में भारत के किसी बन्दरगाह पर न उतरें। भला ऐसी अपमानजनक शर्त नर-केसरी सुभाष कैसे स्वीकार करते। क्योंकि इससे तो जेल में घुल-घुल मर जाना ही उनकी दृष्टि में श्रेय-स्कर था। अन्त में नौकरशाही ही को अपने घुटने टेकने को विवश होना पड़ा और परिणाम स्वरूप मई सन् १९२६ में बिना शर्त के वे मुक्त कर दिये गये। और आश्चर्य की बात थी कि एकमात्र अस्थियों का

कंकाल लेकर वापिस आने पर भी उनका स्वास्थ्य अल्प काल ही में फिर से अपनी पूर्वस्थिति में आ गया मानों कारागार की भित्तिकायें ही उसकी एकमात्र बाधक हों।

जेल से छूटते ही सुभाष ने अपने प्रान्त की कांग्रेस-कमेटी की अध्यक्षता का भार हाथों में ले सन् १९२७ ई० का कौंसिल चुनाव उन्होंने लड़ा, तथा प्रान्तीय धारा-सभा में होने के अतिरिक्त प्रसिद्ध "इण्डिपेण्डेन्स आफ इण्डिया" लीग के संगठन एवं सायमन कमीशन के बहिष्कार के आयोजन में भी हाथ बटाया। साथ ही मद्रास-अधिवेशन में कांग्रेस के संयुक्त प्रधान मन्त्रित्व का भार भी उन्होंने ग्रहण किया था।

सन् १९२८ में कलकत्ते में कांग्रेसाधिवेशन में जिस में सुभाषचन्द्र बोस सैनिक भेष में घोड़े पर सवार हो विधिवत् राष्ट्रीय स्वयं सेवक सेना के प्रधान सेनानी के रूप में राष्ट्रपति के भव्य चल समारोह की शान के साथ अगवानी का दृश्य बड़ा ही मनोहर था और कांग्रेस अधिवेशन भी बड़ी शान के साथ आपके त्याग और तप से सफल हुआ।

कलकत्ता कांग्रेस के कुछ दिनों पश्चात् बंगाल के सुप्रसिद्ध देश सेवी यतींद्रनाथ का देहावसान हुआ। चारों ओर शोक समुद्र उमड़ पड़ा था। जनता ने सरकार के ऊपर अपनी अप्रसन्नता भी प्रकट की। कलकत्ते में यतींद्रनाथ की अर्थी का जो जुलूस निकाला गया था, उस में सुभाष बाबू भी सम्मिलित हुए थे। सम्मिलित ही नहीं हुये थे, किन्तु उन्होंने उनकी देश भक्ति पर ओजस्वी भाषण भी दिया था। सरकार सुभाष बाबू से पहिले ही से सतर्क थी। वह इनके कामों को बड़ी कठोर दृष्टि से देख रही थी। यतीन्द्र नाथ की देश-भक्ति पर सुभाष बाबू ने जो विचार प्रकट किये थे, उसे सरकार सहन न कर सकी। इस लिये सुभाष बाबू को गिरफ्तार करके उन पर मुकद्दमा चला दिया। मुकद्दमे में सुभाष बाबू अपराधी प्रमाणित किए गये और उन्हें छः मास तक की सजा दी गई। अपनी कारावास की अवधि पूरी करके जब बाहर आये उसके अल्प समय के बाद ही, २६ जनवरी सन् १९३१ ई० के स्वातन्त्र्य दिवस के उपलक्ष्य में उनकी अध्यक्षता में आयोजित एक बृहत् जुलूस पर घुड़सवार पुलिस द्वारा लाठी आक्रमण कराकरन केवल उन्हें बुरी तरह आहत ही किया, बल्कि दूसरे ही दिन एक मुकद्दमा चला कर छः मास की सजा देकर फिर जेल भेज दिया। किन्तु गान्धी-इर्विन समझौते के परिणाम स्वरूप इस बार समय से पहले ही छूट आये। जेल से छूट कर आप इन्हीं दिनों मथुरा में होने वाले नौजवान भारत सभा के वार्षिक अधिवेशन में सभापति बनाये गये। सभा के इस अधिवेशन में बहुत से बड़े-बड़े नेता तथा सहस्रों नवयुवक सम्मिलित हुए थे। उस समय सुभाष बाबू ने सभापतित्व के पद से जो भाषण दिया था वह बड़े महत्व का था। सुभाष बाबू के इस भाषण का नवयुवकों पर अधिक प्रभाव पड़ा। साथ ही सरकार भी अधिक भयभीत हो उठी। सुभाष बाबू जेल से बाहिर हैं, यह भला सरकार कैसे देख सकती थी। इसी भाषण पर नौकर शाही ने सुभाषचन्द्र बोस को फिर गिरफ्तार कर लिया।

सुभाष बाबू वीर और साहसी पुरुष थे देश-भक्ति इनकी नस-नस में भरी हुई थी। इसलिए अब तक जीवन का अधिक भाग जेलों ही में बीता था। इस बार सुभाष बाबू गिरफ्तार करके जेल भेज दिये गये। इन पर न मुकद्दमा चलाया और नहीं किसी निश्चित समय की सजा दी गई। पहले ये अलीपुर जेल में रखे गये थे, किन्तु इसके बाद सिवनी भेज दिये गये। लगातार जेलों में रहने के कारण सुभाष बाबू का स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। मांडले में उन्हें जो रोग हुआ था वह फिर पैदा हो गया। फिर इनकी पीठ में दर्द होने लगा और साथही ज्वर भी आने लगा। नेताओं ने सुभाष के छुटकारे के लिये यत्न किया किन्तु

कोई परिणाम न निकला। सरकार सुभाष को छोड़ना नहीं चाहती थी, किन्तु जब सुभाष बाबू की अवस्था अधिक खराब हो गई तो वे चिकित्सा के लिये लखनऊ लाये गये परन्तु स्वास्थ्य में कोई भेद नहीं पड़ा। वहां से आप भुवाली लाये गये यहां भी स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं हुआ।

अब सरकार चिन्तित हो उठी, क्योंकि सुभाष बाबू का स्वास्थ्य प्रति दिन गिरता ही जा रहा था और सरकार इन्हें छोड़ना नहीं चाहती थी। सारे देश में सुभाष बाबू के छुटकारे के लिए यत्न हो रहा था। अन्त में सरकार ने यह निश्चय किया कि यदि सुभाष बाबू छूटते ही विदेश चले जायें तो सरकार उन्हें छोड़ सकती है। पहले उस वीर सुभाष ने यह शर्त स्वीकार नही की किन्तु लोगों ने बहुत समझाया तो इस शर्त पर छूटने के लिये तैयार हो गये। सुभाष बाबू जेल से छूटते ही वायुयान द्वारा स्विटजरलैंड चले गये। वहां की चिकित्सा से आपको अत्यधिक लाभ हुआ, वहीं से आपने रोम, लन्दन, फ्रांस और जर्मन इत्यादि देशों की भी यात्रा की।

सुभाष बाबू तीन वर्ष विदेश में रहे। ये जब स्वस्थ हो गये, तब भारत लौट आना चाहते थे, किन्तु सरकार इन्हें लौटने देना नहीं चाहती थी। विदेश में रहकर भी सुभाष बाबू अपने देश की सेवा करते रहे।

सुभाष बाबू जिन दिनों विदेश में थे, उन्हीं दिनों इनके पिता बाबू जानकीनाथ अधिक अस्वस्थ हो उठे। इनकी बीमारी का समाचार सुभाष बाबू के पास भेजा गया। बाबू जानकीनाथ मरने से पहले एक बार सभाष बाबू को देख लेना चाहते थे। पर सुभाष बाबू के बस की बात तो थी नहीं। सुभाष बाबू के छुटकारे के लिए नेता लोग सरकार के ऊपर दबाव डालने लगे। सरकार सुभाष बाबू को एक शर्त पर भारतवर्ष आने देने के लिये तैयार हो गई कि सुभाष बाबू अपने पिता से मिलकर शीघ्र ही फिर विदेश लौट जायें।

सुभाष बाबू अपने पिता से मिलना चाहते थे, इसलिये सरकार की शर्तें उन्हें माननी ही पड़ीं, पर दुःख है कि सुभाष बाबू की अभिलाषा पूरी न हुई। उनके आने के पहले ही उनके पिता का देहावसान हो गया। सुभाष बाबू के हृदय को इस से एक बहुत बड़ी चोट लगी। आप को सरकार की अपमान जनक पाबन्दियां लगाने के कारण शीघ्र ही योरूप लौट जाना पड़ा।

सुभाष बाबू विदेश में रहते रहते ऊब गये थे। उनके प्राण यह नहीं सहन कर सकते थे कि वे अपनी मातृ-भूमि की गोद से अधिक दिनों तक बाहर रह सकें। अतः उन्होंने निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ हो अब मैं विदेश में नहीं रहूँगा। अतः आठ अप्रेल १९३६ ई० को सरकार की बिना अनुमति प्राप्त किये ही एक इटैलियन जहाज पर सवार होकर स्वदेश आ गये। भारत आते ही आप गिरफ्तार करके जेल भेज दिये गये। इस अन्याय से स्वभावतः सारा देश तिलमिला उठा चारों ओर से छुटकारे के लिये आवाजें आने लगीं। अन्त में जब उनका स्वास्थ्य पहले की तरह बिगड़ने लगा तब कहीं जाकर नौकर शाही का हृदय पसीजा और अन्ततः मार्च १९३७ में बिना शर्त के छोड़ दिये गये। सुभाष बाबू अधिक अस्वस्थ हो गये थे। इनका शरीर बहुत ही दुबला-पतला और कमजोर हो गया था। अतः जेल से छूटकर सुभाष बाबू पुरी गये। वहां कुछ दिन रहकर डलहौजी चले गये।

सुभाष बाबू त्रिपुरी कांग्रेस के सभापति चुने गये। गांधी जी का दल इस बात का बड़ा विरोधी था। इसी विरोध को लेकर कांग्रेस में फूट पड़ गई। फलतः सुभाष ने कांग्रेस को मजबूत बनाने के लिये अग्र-गामी दल की स्थापना की और एक "एडवांस" नामक अंग्रेजी दैनिक पत्र निकाला और दल के प्रचार

के लिये सारे देश का भ्रमण किया। और दल की शाखायें स्थापित कीं। जिसके परिणाम स्वरूप सारा देश आपके विचारों से प्रभावित हो गया।

रामगढ़ में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ। कांग्रेस वाले जो कौंसिलों में थे, त्याग पत्र देकर लौट आये थे। बात वही हुई, जिसे नेताजी बार-बार कह रहे थे। पर "गांधी दल" नेताजी की बात मानने को तैयार नहीं था। रामगढ़ कांग्रेस में नेता जी के सभापतित्व में एक समझौता विरोधी सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में नेताजी ने जो व्याख्यान दिये थे वे स्वाधीनता प्रेमियों के लिये आग के अक्षरों से लिखने लायक थे।

रामगढ़ कांग्रेस के बाद ही कलकत्ते में हालवेल स्मारक के विरुद्ध आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन में नेताजी ने पूरी शक्ति से भाग लिया, फलतः सन् १९४० ई० के जुलाई मास में नव निर्मित 'भारत रक्षा कानून" के अन्दर फिर नौकर शाही सरकार के कारागार का अतिथि बन जाना पड़ा।

नेताजी को इस तरह जेल में जीवन के अमूल्य समय को नष्ट करना अच्छा नहीं लगा,। अतः उस अन्याय मूलक कैद के विरोध में आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। अन्त में सरकार ने जेल से हटा कर पुलिस के कठोर पहरे में कलकत्ते में अपने ही मकान की चारदिवारी में नजर बन्द कर दिये। इन दिनों नेताजी सुभाषबाबू एकान्त जीवन व्यतीत करते थे, लोगों से बहुत कम मिलते-जुलते थे। अन्ततः २६ जनवरी सन् १९४१ में पुलिस की आंखों में धूल झोंक कर उसी एल्गिन रोड वाले मकान से निकल पड़े, और नजरबन्दी का चक्र व्यूह तोड़ कर एक दढ़ियल मौलाना के रूप में उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त की राजधानी पेशावर पहुंचे। वहां से कुछ मित्रों की सहायता से एक गूँगे पठान के छद्मवेश में अफगानिस्तान की सीमा में प्रवेश किया। जिस किसी भी प्रकार अंग्रेज गुप्तचरों की आंख बचाकर काबुल के जर्मन दूतावास की मदद से अन्त में जर्मन की राजधानी बर्लिन पहुँचे। और जाकर हिटलर से जाकर हाथ मिलाया। हिटलर नेता जी की योग्यता और व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुआ कि उसने भारत के "डिप्टी फ्युहरर" की उपाधि दी। जर्मनी की सरकार ने आप को एक मजबूत हवाई जहाज और एक रेडियो ट्रांस मीटर भी दिया था जिस से आप समय समय पर अपने सन्देश प्रसारित किया करते थे।

जर्मनी से सुभाष बाबू पनडुब्बी द्वारा जापान पहुंचे। वहाँ सरकारी अधिकारियों तथा देश के पुराने निर्वासित क्रान्तिकारी श्री रासबिहारी बोस से मिलकर तुरन्त ही उस चिरस्मरणीय "इंडियन इंडिपेंडेंस लीग की बागडोर अपने हाथों में सुभाष बाबू ने ले ली। जिस सभा ने आजाद हिन्द सरकार एवं आजाद हिन्द फौज के निर्माण के लिए नींव का का काम दिया था। जिस आजाद फौज के कारण नेता जी ने ब्रिटेन के विरुद्ध विधिवत् युद्ध घोषणा करके वर्मा की ओर से भारत के पूर्वीय सीमान्त पर धावा बोलकर सारे संसार को चकित कर दिया था। मातृ-भूमि को स्वतंत्र करने के हेतु विदेश में खड़ा किया हुआ एक जबरदस्त मोर्चा! आजाद हिन्द फौज का अपना स्वतन्त्र इलाका ही नहीं किन्तु २० करोड़ रुपयों से भी अधिक का निजी खजाना अदालत, थाने, अस्पताल-स्कूल-प्रेस, अखबार भी थे। उसका सुसंगठित शासन विभाग-मन्त्रिमण्डल एवं भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए आवश्यक पदाधिकारी भी थे। नेता जी फौज के निजि सिक्के और स्टाम्प आदि भी चलाते थे। और अपना वह स्वतन्त्र सैनिक संगठन, जिसमें मंजे हुए भारतीय अफसरों के मातहत (जो कि हारी हुई ब्रिटिश सेना में से छूटकर आ मिले थे।) लगभग ५० हजार सशस्त्र सैनिकों की कई एक सुसंगठित पल्टनें थी। यहां तक कि महिलाओं तक की

एक सैनिक टुकड़ी तथा छोटे-छोटे बच्चों तक का एक "जांबाज" दल उसमें था जिसके कि किशोर सैनिक पीठ पर सुरंगें बाध कर दुश्मन के टेकों की राह में लेटते हुए भी न हिचकते थे।

अन्त में वह दिन भी आ पहुँचा जब कि "दिल्ली चलो" तथा "जयहिन्द" के गगन भेदी निनाद के साथ १९४४ ई० के आरम्भ में बर्मा की ओर से भारत के पूर्वीय सीमान्त पर विधवत् लड़ाई की मशालें भभक उठीं और इम्फाल, कोहिमा, तामू, टिड्डिम आदि चिरस्मरणीय विजय गाथाओं द्वारा नेताजी की इस भीष्म-प्रतिज्ञा को सार्थक बनाने का साकार यज्ञ रचा जाने लगा कि "तुम मुझे अपना रक्त दो और मैं तुम्हें स्वतन्त्रता का उपहार दूंगा।" ये वे दिन थे जब कि महायुद्ध की थपेड़ों से लड़खड़ाकर ब्रिटिश साम्राज्य की दीवारें ताश के घर की तरह बिखर एक के बाद एक धराशायी होने लगी थीं और स्वयं भारत में भी उसके शक्ति दुर्ग की दीवारें सन् ४२ के भीषण आन्दोलन के प्रहार से जड़ से हिल उठीं। अतः जब "कदम कदम बढ़ाये जा' के राष्ट्रगान के साथ नेता जी के मतवाले योद्धा अपना तिरंगा ध्वज लहराते हुए मातृ-भूमि के बन्धन काटने को क्रमशः आगे बढ़े तो जहां देश भक्तों का हृदय एक नई आशा के भाव से लहलहा उठा वहां देश के शत्रुओं का कलेजा स्वभावतः ही कांप उठा। निश्चय से ही यह थी विदेशी सत्ता के अस्त और हमारे अपने स्वतन्त्र्य प्रभात के पुनरुदय की महान् वेला। किन्तु तभी आकाश से टूट पड़ने वाली बिजली की तरह दो बज्रसम घटनाएँ घटीं और उस पुण्यानुष्ठान का तार बीच में ही अचानक टूट गया, जिससे कि हमारा वह स्वातन्त्र्य प्रभात पुनः अल्पकाल के लिए टल गया। ये दुर्घटनाऐं थीं पहली तो संसार के विशद रणप्रांगण में, इन्हीं दिनों धुरी-राष्ट्रों की आकस्मिक पराजय के कारण अंग्रेजों के उखड़े हुए कलेवर में पुनः शक्ति का संचार। और दूसरे इस संकट की घड़ी ही में सिंगापुर से वायुयान द्वारा जापान जाते समय राह में दुर्घटनावश अगस्त सन् १९४५ ई० में नेता जी सुभाषचन्द्र बोस का वह दुर्भाग्यपूर्ण असामयिक अवसान, जिससे कि वह साहसिक अनुष्ठान जहां का तहाँ अधूरा रह गया।

बंगाली वीर—

श्री रासविहारी बोस

(महावीर)

पञ्जाब की भूमि की भाँति बंगाल की भूमि ने भी अनेक वीरों को जन्म देकर अपना नाम इतिहास में चमका दिया है। जिन दिनों देश के अन्य प्रान्तों से भारतीय वीर अँग्रेजों की मृत्यु का सन्देश लेकर यम के दूत के रूप में प्रकट होते थे उन्हीं दिनों बंगाल भी ज्वालामुखी पर्वत बना हुवा था जहाँ से चिनगारियां निकल निकल कर गोरी चमड़ी को भस्मसात् कर रही थीं। उन्हीं चिनगारियों में से श्री रासविहारी बोस भी एक थे जिन्होंने अपने ताप से अंग्रेज-शलभों को भुलस डाला।

श्री रासविहारी बोस भारत के वीर सेनानी आजाद हिन्द सेना के सूत्रधार श्री सुभाषचन्द्र बोस के बड़े भाई थे। देश-भक्ति आपको वंश परम्परा से ही मिली थी। उच्च शिक्षा दीक्षा के पश्चात् भारत-माता की पराधीनता की बेड़ियां काटने की ज्वाला हृदय में जल उठीं और अपना सर्वस्व त्याग कर स्वतन्त्रता देवी की आराधना में लग गये।

सन् १९१२ की बात है। देहली में एक विशाल दरबार लग रहा था। उस समय भारत के भूतपूर्व वायसराय लार्ड हार्डिंज भी आये हुये थे। जब वे हाथी की पीठ पर जलूस के साथ जा रहे थे उसी सम य श्री रासविहारी की योजनानुसार उन पर बम फेंका गया। बम से वायसराय तो मरने से बच गया किन्तु उनका एक चौकीदार मारा गया। लार्ड हार्डिंज का भी एक हाथ घायल हो गया। जिसके कारण वे मूर्च्छित हो गये। सारा का सारा जलूस तितर-वितर हो गया।

रासविहारी बोस के वारन्ट जारी हो गये। सरकार ने बड़े बड़े इनाम उनके पकड़ने के लिये घोषित किये। गुप्तचर विभाग की भी सारी शक्ति उन्हें पकड़ने के लिये लग गई किन्तु वे मरण पर्यन्त हाथ नहीं आये।

लार्ड हार्डिंज पर बम फिंकवा कर इस प्रकार साफ बच जाने पर रासविहारी के विषय में तात्कालीन 'Inglish man' नामक पत्र की सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा गया था कि "रासविहारी बोस एक अत्यधिक भीमकाय और बलवान् पुरुष था। उसका लम्बा चौड़ा शरीर किसी भी वेश में छिपना कठिन था, तो भी आश्चर्य है कि वह कैसे बचकर निकल गया।"

श्री रासविहारी यहां से बचकर घूमते घामते सन् १९१४ में बनारस पहुँचे जहां पर रहकर अंग्रेजों के विरुद्ध गुप्त षड्यन्त्र की योजना बनाने लगे। सरकार ने उन्हें पकड़ने के लिये ७५००) इनाम घोषित कर दिया। और उनका चित्र प्रत्येक पत्र में प्रकाशित कर दिया। श्री रासविहारी ऐसी अवस्था में केवक रात के ही समय कार्य किया करते थे। रात्रि के समय ही वे अपने मित्रों से मिलकर बातचीत करते और उन्हें बम एवं पिस्तौल चलाना सिखाते थे।

इन्हीं दिनों पिङ्गले जो अमेरिका से आया था, रासविहारी के क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गया। पिंगले ने रासविहारी को बतलाया कि उत्तर भारत में विद्रोह के लिये चार हजार क्रान्तिकारी

अमेरिका से आये हैं और क्रान्ति प्रारम्भ होने पर २० हजार और आयेंगे। रासविहारी तभी से पञ्जाब में क्रान्ति की योजना बनाने लगे।

पञ्जाब में क्रान्ति का दिन २१ फरवरी सन् १९१५ निश्चित कर दिया। पञ्जाब में क्रान्ति का मुख्य अधिकार करतार सिंह को सौंपा गया। विनायकराव कपिल को पञ्जाब में बम भेजने के लिये नियुक्त किया गया। इस प्रकार पञ्जाब में क्रान्ति की योजना पूर्ण रूपेण बन गई। ज्यों ज्यों क्रान्ति का दिन निकट आ रहा था, त्यों त्यों क्रान्ति के कार्यकर्त्ताओं में जोश और उत्साह बढ़ता जा रहा था। सब अपना-अपना निश्चित कार्य सुचारुरूप से चला रहे थे।

निश्चित तारीख आने में केवल दो दिन शेष रह गये थे। यह ज्वालामुखी फटने ही वाला था कि इन्हीं के साथी गद्दार कृपालसिंह ने पंजाब सरकार को सारा भेद खोल दिया। एकाएक धरपकड़ प्रारम्भ हो गई। कई क्रान्तिकारी पकड़ लिये गये। करतार सिंह, पिंगले और रासविहारी बोस आदि भाग गये। इस प्रकार एक नीच व्यक्ति के धोखे ने सारी महा क्रान्ति की योजना को विफल कर डाला। यदि कृपालसिंह गद्दारी न करता तो आज 'भारतमाता' और रासविहारी बोस एवं उनके साथियों का इतिहास और ही कुछ होता।

पिंगले २३ मार्च को पकड़ा गया। रासविहारी बोस ने अपनी आत्म कथा में लिखा है कि जब मैंने पिंगले की गिरफ्तारी की खबर सुनी, मेरे पैरों तले की जमीन निकल गई और आँसुओं का समुद्र उमड़ पड़ा।

१९ फरवरी को पुलिस ने इनके भी प्रधान कार्यालय पर छापा मारा, किन्तु ये उनके हाथ नहीं आये। इसके पश्चात् इन्होंने सिंगापुर आदि कई स्थानों पर षड्यन्त्र की शाखायें खोल दीं। सरकार ने उनकी गिरफ्तारी के लिये १२५००) का इनाम बोल दिया और निपुण से निपुण गुप्तचर इन्हें पकड़ने के लिये नियुक्त किया। किन्तु रासविहारी सब की आंखों में धूल झोंक कर साफ बच जाते थे।

सौभाग्यवश श्री स्वर्गीय कवि रवीन्द्रनाथ जी ठाकुर इन्हीं दिनों जापान जा रहे थे। रासविहारी बोस भी उन्हीं व्यक्तियों में सम्मिलित हो गये जो श्री रवीन्द्रनाथ जी के लिये पास पोर्ट आदि का प्रबन्ध कर रहे थे और अन्त में पी० एन० ठाकुर के नाम से आपने भी अपना पास पोर्ट बनवा लिया। अधिकारियों ने कवि रवीन्द्रनाथ जी का ही कोई सम्बन्धी समझ कर आपको अनुमति पत्र दे दिया और आप इस प्रकार जापान जाने में समर्थ हो गये।

वहां पर आप Blaek dragon नामक दल के नेता काउन्ट तोयामा के पास रहने लगे, जो कि सच्चे देश भक्तों को आश्रय देते थे। सन् १९३२ में आजाद हिन्द सेना का नेतृत्व आपके हाथों में सौंपा गया। आपने 'एशियाटिक रिवन्यू' नाम की एक पत्रिका भी निकाली थी।

अन्त में सन् १९४५ की २१ जनवरी को देशभक्त रासविहारी ६४ वर्ष की आयु में भारत की स्वतन्त्रता की अमिट भावना लिये हुये इस संसार से चल बसे। धन्य है भारत भूमे! तूने ऐसे कितने ही लालों को जन्म दिया है जिन्होंने तेरे गौरव को चार चांद लगा दिये।

श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल

(ब्र० सोमवीर)

लार्ड कर्जन के बंग-भंग से समस्त बंगाल में क्षोभ की एक लहर फैल गई । सभी बंगालियों ने लार्ड कर्जन के इस कृत्य की निन्दा की, परन्तु पराधीन और असहाय लोगो की कौन सुनता है । विरोध होते हुए भी बंग का भंग कर दिया गया, इस काण्ड से बंगाल का बच्चा-बच्चा क्षुब्ध हो उठा और बंगाल के युवकों के हृदय उछलने लगे, परन्तु आजादी के दीवाने बंगालियों ने अपने प्राणों की बाजी लगादी । परन्तु अंग्रेज सरकार अपने निश्चय से बिल्कुल नहीं डिगी और सम्राट् की आज्ञा से १९११ ई० में भारत की राजधानी दिल्ली घोषित कर दी । कलकत्ते का वैभव और सौन्दर्य सब मिट्टी में मिल गया । इस आघात से युवकों के हृदयों में विद्रोह रूप ज्वाला जोर से जलने लगी और सारा दोष रासबिहारी बोस के शिर मढ़ा गया और उसको पकड़ने के लिए सरकार ने वारण्ट जारी कर दिये, परन्तु रासबिहारी बोस कब हाथ लगने वाले थे. खुफिया पुलिस ने उन्हें पकड़ने का सिर तोड़ परिश्रम किया परन्तु वे हाथ नहीं लगे ।

एक दिन एक १८-२० वर्ष की अवस्था के नवयुवक की मुलाकात रासबिहारी बोस से हुई । उस युवक के हृदय में क्रान्ति की ज्वाला विद्यमान थी और उसी समय से यह उनका विशेष विश्वास पात्र बन गया । वह युवक शचीन्द्रनाथ सान्याल था । रासबिहारी बोस ने अपना भीतर की क्रान्ति का काम उसे सोंप दिया । शचीन्द्रनाथ जी ने इस काम को ऐसे अच्छे प्रकार से किया कि काफी दिनों तक इस बात का पता नहीं लगा । आखिर एक बार आप पञ्जाब में दौरे के लिए आये थे ताकि सिक्खों के साथ संगठन बना कर विदेशी सत्ता का विरोध किया जाये । परन्तु १९१५ ई० में आपको काशी षड् यन्त्र केस में गिरफ्तार कर लिया गया और आपको कालेपानी की सजा तथा जायदाद जब्त करने की सजा मिली, परन्तु १९-२० ई० में सम्राट् के घोषणा पत्र के कारण आप छोड़ दिये गये । आप का सारा कुटुम्ब ही देश की स्वतन्त्रता के लिये बलिदान हो गया ।

देशभक्त बंगाली वीर—

नलिनी वाक्ची

(श्री वेदव्रत)

नलिनी वाक्ची का बलिदान प्रथम असहयोग आन्दोलन की अन्तिम घटना है । रासबिहारी बोस तथा सरदार कर्तारसिंह आदि के द्वारा किये गये पंजाब के विराट् विप्लवायोजन के विफल हो जाने पर क्रान्तिकारी वीर निराश होकर नहीं बैठ गये थे, जो लोग उस समय की धर-पकड़ से बच गये थे, उन्होंने पुनः महान् विप्लव यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया ।

नलिनी वाक्ची वीरभूमि का निवासी था, वह पढ़ने-लिखने में अति चतुर था, इसीलिए उसको छात्रवृत्ति भी मिलती थी । पंजाब के विप्लव के विफल हो जाने पर नलिनी वाक्ची को सन् १९१६ ई० में बिहार प्रान्त में क्रान्ति के प्रचार के लिये भागलपुर कालेज में पढ़ने के लिए भेजा गया । यहां आकर नलिनी सर्वथा बिहारी बन गया, शिर के लम्बे-लम्बे बाल कटवा कर टोपी पहिननी प्रारम्भ कर दी, मोटे वस्त्र का कुर्त्ता और धोती बांधकर दिन व्यतीत करने लगा ।

बङ्गाल के चार क्रान्तिकारी नेता–



श्री यतीन्द्रनाथदास



श्री शचीन्द्र नाथ बख्शी



श्री मणीन्द्र नाथ



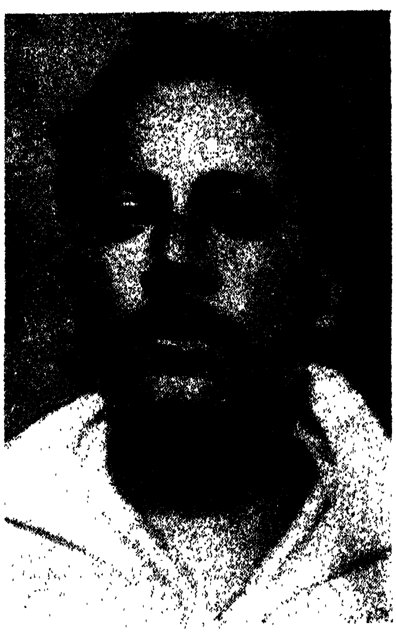
श्री हेमचन्द्र वसु



शालिग्राम शुक्ल



खुदीराम बोस



फुलेना प्रसाद



धनवन्तरि

इतना सब कुछ करते हुए भी नलिनी पुलिस की दृष्टि से ग्रोझल न रह सका, पकड़े जाने के भय से पढ़ना छोड़कर फरार हो गया ग्रौर बिहार के नगर-नगर में घूमने लगा। किन्तु "बकरे की माँ कब तक खैर मनावे", साम्राज्यवादी सरकार के पास असंख्य भाड़े के टट्टू विद्यमान थे, उनके द्वारा पुलिस को पुनः उसका पता लग गया। इस बार नलिनी ने बंगाल में ही जाना उचित समझा।

यह सन् १९१७ ई० का समय था। उस समय बंगाल में ही नहीं सम्पूर्ण भारत में साम्राज्यवादी दमनचक्र बड़े वेग से चल रहा था। चारों ग्रोर धर-पकड़, खानातलाशी, नजरबन्दी, देश निर्वासन, गोलीकाण्ड, प्राण दण्ड फांसी ग्रादि का वातावरण दिखलाई देता था।

ऐसे सङ्कट काल में कुछ थोड़े से क्रान्तिकारी स्वाधीनता संग्राम के टिमटिमाते हुये दीपक की साम्रज्यवाद की भीषण ग्रांधी से रक्षा करते हुए ग्रागे बढ़ना चाहते थे। किन्तु मार्ग कण्टकाकीर्ण था, चहुँ ग्रोर घोर विपत्तियों के बादल मंडरा रहे थे, ग्रौर तो ग्रौर, ग्रपने ही साथी पाँव पकड़ कर घसीट रहे थे ग्रौर घसीट रहे थे वहां जहाँ कि स्वयं नरक के गर्त्त में गिरे हुए थे। स्वयं ग्रागे बढ़ने वाले शिथिलांग हो गये थे ग्रौर साथ ही उन साथियों की याद की ग्राग भीतर ही भीतर जला रही थी जो कि फांसी के तख्ते पर चढ़ चुके थे। इतने भयंकर वज्रपातों को भी सह कर कुछ साहसी वीर सेनानी ग्रागे बढ़े जा रहे थे, उन्हीं के साथ नलिनी वाक्ची भी था।

जब बँगाल में रहना कठिन हो गया तब क्रान्तिकारियों के दल ने निश्चय किया कि स्वाधीनता संग्राम के विशेष-विशेष वीरों को जब तक परिस्थिति ग्रनुकूल न हो जाये, किसी ग्रज्ञात स्थान में सुरक्षित रखा जाये। इसी निश्चय के ग्रनुसार नलिनी ने ग्रपने कुछ साथी नलिनी घोष, नरेन्द्र बनर्जी ग्रादि को लेकर गोहाटी (ग्रासाम) में जाकर डेरा जमाया। ये सभी सोते समय पिस्तौल भर कर सिराहने रख लेते थे ग्रौर पर्याय से एक-एक व्यक्ति खिड़की में बैठकर पहरा देता था। इनका निश्चय था कि वातावरण ग्रनुकूल हो जाने पर पुनः स्वाधीनता यज्ञ के ऋत्विक् बनेंगे ग्रथवा सन्मुख समराग्नि में प्राणों की ग्राहुति दे देंगे।

गोहाटी में रहते हुए ग्रभी कुछ ही दिन व्यतीत हुये थे, किसी ने सूचना दे दी कि ग्रमुक स्थान पर कुछ बंगाली नवयुवक रहते हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल ही इनके स्थान को पुलिस ने घेर लिया। पुलिस को ग्राता देख जागरूक साथी ने शनैः शनैः सबको जगा दिया। सभी ग्रपनी भरी हुई पिस्तौलें उठाकर, बाहर निकल गए ग्रौर पुलिस पर गोलियों की वर्षा प्रारम्भ कर दी। पुलिस को इस प्रकार के ग्राक्रमण का किंचिन्मात्र भी ध्यान न था, ग्रतएव वह सुसज्जित भी न थी, फलस्वरूप पुलिस तितर-बितर हो गई ग्रौर क्रान्तिकारी ग्रवसर पाकर पास की पहाड़ी पर जा पहुंचे।

किन्तु तीसरे पहर ग्रपराह्न में ग्रसंख्य सशस्त्र पुलिस ने ग्राकर पहाड़ी का घेरा डाल दिया। दोनों ग्रोर से घमासान युद्ध होने लगा। बन्दूक तथा पिस्तोलों के शब्दों से ग्राकाश गूँज उठा। किन्तु साम्राज्यवाद की इतनी बड़ी सेना के समक्ष गिने-चुने नवयुवक कब तक ठहर सकते थे। बहुत से क्रान्तिकारी घायल हो गये ग्रौर पुलिस के फन्दे में फंस गये। किन्तु नलिनी वाक्ची ग्रपने एक ग्रन्य साथी सहित यहां से भी पुलिस की ग्राँखों में धूल झोंक कर भाग गया। सात दिन तक बिना कुछ खाये इधर-उधर पहाड़ियों में चक्कर काटता रहा। भोजन के ग्रभाव में नलिनी वाक्ची के सभी ग्रंग शिथिल पड़ गये थे।

इन्हीं दिनों में नलिनी के शरीर पर पहाड़ी कीड़ा चिपक गया। इस कीड़े के विष ने उसको पर्याप्त कष्ट दिया। यहाँ से पैदल चलकर नलिनी बिहार पहुँचा, किन्तु वहां तो उसकी पहले से ढूँढ़ हो रही थी और बिहार की पुलिस भी आपको जानती थी। ऐसी परिस्थिति में नलिनी सोच-विचार कर बंगाल चला गया।

बंगाल में हावड़ा स्टेशन पर पहुंचा तो इसको कोई भी साथी न मिला, शरीर नितान्त निर्बल हो चुका था। पहाड़ी विषैला कीड़ा अब भी चिपका हुआ था, उसी के कारण नलिनी को ज्वर भी आने लगा, पास में भरा हुआ पिस्तौल, किराये के लिए पैसा नहीं, शरीर में चलने की शक्ति नहीं, करे तो क्या कर। विवश होकर नलिनी किले के मैदान में एक वृक्षे के नीचे लेट गया। दो दिन इसी भांति व्यतीत हो गये, तीसरे दिन प्रसंगवश उसका एक साथी उधर आ गया। उस समय नलिनी के शरीर पर चेचक (माता) भलीभांति निकल आई थी, अवस्था अच्छी न थी।

नलिनी की ऐसी अवस्था को देखकर साथी की आंखों में आंसू आ गये। वह उसे उठाकर घर ले गया, किन्तु चिकित्सा कैसे हो? नलिनी को बाहर ले जाना दोनों की मृत्यु को निमन्त्रण देना था। चेचक का इतना प्रकोप हुआ कि मुख तथा आंखें बन्द हो गईं, जिह्वा अचल थी। तीन दिन तक बोलना भी सर्वथा बन्द रहा। साथी उसके शरीर पर हल्दी और तक्र (छाछ) की मालिश करता रहा और पीने क लिये भी छाछ ही दी।

भारत की स्वतन्त्रता के लिए शिर को हथेली पर रख कर लड़ने वाले वीर की कैसी शोचनीय दशा थी। रुग्णावस्था में भिखारी की भांति मैदान में पड़ा हुआ था.न कोई सेवक था, न ही कहीं चिकित्सा करवा सकता था। यदि मर जाता तो कोई अर्थी उठाने वाला भी न था। किन्तु ईश्वर की कृपा और साथी के सहयोग से नलिनी वाक्ची अच्छा हो गया। जिस दिन दोनों साथियों ने साथ बैठकर भौजन किया तो उसी साथी के शब्दों में "उसके आनन्द की सीमा न रही।"

स्वस्थ होकर दोनों पुन: क्रान्ति के लिये निकले। घर से बाहर होते ही नलिनी के साथी को पकड़ लिया गया, किन्तु नलिनी पुन: क्रान्ति के उस टिमटिमाते हुये दीपक को, जिसका तेल समाप्त हो गया था, बत्ती भी जल गई थी, अपने हाथों में लेकर संगठन के कार्य में लग गया।

तत्पश्चात् ढाका में जाकर तारिणी मजूमदार के साथ एक घर में रहने लगा। १५ जून १९१८ ई० को पुलिस ने पुन: इनको घेर लिया। दोनों ओर से गोलियां चलने लगीं, तारिणी मजूमदार कुछ काल युद्ध करने के उपरान्त पुलिस की गोली से शहीद हो गया। नलिनी वाक्ची को भी गोली लग चुकी थी, किन्तु अभी इनकी अभिलाषा पूर्ण न हुई थी। अफसर ने समक्ष आकर कहा—"आत्म समर्पण कर दो।" इसके उत्तर में नलिनी के पिस्तोल की गोली से साहब की टोपी नीचे जा गिरी। इसके साथ ही एक और गोली का शब्द हुआ और नलिनी वाक्ची धराशाही हो गया।

पुलिस तत्काल नलिनी को गिरफ्तार कर घोड़ा गाड़ी में बैठाकर अस्पताल में ले गई, वहाँ पर चारों ओर पुलिसाधिकारियों की भीड़ खड़ी थी। पूछने लगे—"क्या नाम है? कहां के रहने वाले हो? पिता क्या करते हैं? तुम्हें मरने से पूर्व अन्तिम बयान (Dying Declartion) देना होगा।"

नलिनी वाक्ची को जीने की कोई आशा न थी, शरीर कृश हो चुका था, पुलिसाधिकारी बार-बार तंग कर रहे थे, यदि कोई साधारण व्यक्ति होता तो परिचय दे देता, किन्तु जीवन भर साम्राज्यवाद के

विरुद्ध लड़ने वाला वह वीर सेनानी पुलिस को भेद कैसे दे सकता था, उसको अपने नाम की आवश्यकता न थी। केवल इतना ही उत्तर दिया—"मुझे तंग मत करो शान्ति से मरने दो (Dont disturb me please, let me die peacefully) इस प्रकार १५ जून १९१८ को वीर सेनानी नलिनी वाक्ची ने स्वतन्त्रता के संग्राम में अपने प्राणों की आहुति दी और अमर हो गया।

श्री खुदीराम बोस

(ब्र० सोमवीर)

खुदीराम बोस जी का जन्म कलकत्ते के पास किसी गांव में एक कायस्थ परिवार में हुआ था, आप की शिक्षा कलकत्ते में हुई थी, जब आप कलकत्ते में पढ़ते थे तो उस समय कलकत्ते के कोर्ट से जज ने विप्लव वादियों को बड़ा कड़ा दण्ड दिया और विप्लववादियों को ढूंढ-ढूंढ कर मारने का जज किंग्स फोर्ड ने निश्चय कर लिया था। अतः विप्लववादियों ने जज को मारने का निश्चय किया। उस समय खुदीराम जी भी विप्लववादियों में मिल चुके थे, अतः विप्लववादियों ने इनको किंग्सफोर्ड को मारने के लिए नियुक्त किया जिस में प्रफुल्ल कुमार और दूसरे खुशीराम बोस जी थे।

परन्तु अब किंग्स फोर्ड कलकत्ते से बदल मुजफ्फर पुर आ गये, तो ये दोनों वीर भी मुजफ्फर पुर में आकर एक धर्मशाला में ठहर गये। और घूम-घूम कर सब बातों का पता लगाने लगे, कि किंग्स फोर्ड के घूमने का समय कौन सा है और वे गाड़ी में बैठ कर किस ओर घूमने जाते हैं।

अब दोनों इसी घात में रहने लगे कि हमें उसे मारने का अवसर मिले, लेकिन अन्त में मुराद पूरी होने का दिन भी आया। तीस अप्रैल का दिन था, रात के समय सड़क के बीच जोर का धमाका हुआ सारे शहर में इसकी खबर बिजली की तरह फैल गयी कि स्थानीय वकील मि० पी० कनेड़ी पर किसी ने बम फेंक दिया। बात यह थी कि मि० कनेड़ी और किंग्स फोर्ड की कारों का रंग एक सा था। और वे दोनों युवक बम फेंक कर नौ दो ग्यारह हो गये। तो उसी समय पुलिस ने सारे शहर को घेर लिया और अभियुक्तों को पकड़ने के लिए वारण्ट जारी कर दिये। परन्तु ये वहां ठहरने वाले कब थे। ये मुजफ्फर पुर से पूर्व की ओर बीस पचास मील भाग निकले और बेनी पहुंच गये और भूख से व्याकुल हो रहे थे। तो स्टेशन के पास एक मोदी की दूकान पर चने लेने के लिए गये तो वहां पर दो बाबू आपस में बातें कर रहे थे कि मुजफ्फर पुर में दो मेमों की हत्या हो गई है और अभियुक्तों को पकड़ने के लिए वारण्ट आये हैं। चलो देखें कभी वे इसी गाड़ी में न हों,पास खड़े हुये खुदीराम बोस ने भी उनकी यह बात सुन ली और सहसा बोल उठे, क्या किंग्स फोर्ड नहीं मरे, तो उनको इस पर शक हो गया और सिपाही इन्हें पकड़ने के लिए पीछे लग गए और तीन मील पर जाकर इनको पकड़ लिया, और इनको पकड़ कर मुजफ्फर-पुर ले आये। वहां पर इन्हें देखने के लिए बहुत जनता उमड़ आयी और ले जाकर इनको जेल में डाल दिया।

इधर इनका साथी प्रफुल्लचन्द्र भी रेल में जा रहा था कि उसी डिब्बे में एक दरोगा भी बैठा था। उसको प्रफुल्ल पर शक हो गया और इसे पकड़ने के लिये अगले स्टेशन पर तार कर दिया, लेकिन प्रफुल्ल ने उस पर गोली चलायी, फायर खाली गया। अन्त में बचने का कोई उपाय न देख कर खुद पिस्तौल से

आत्म हत्या कर ली, कुछ ही देर बाद खबर आयी कि प्रफुल्ल को पकड़ने वाले दरोगा जी दिन दहाड़े कलकत्ते में मारे गये।

इधर खुदीराम पर मुकदमा चला और मजिस्ट्रेट ने इसे पूछा कि तुमने हत्या की है, इन्होंने बड़ी वीरता पूर्वक उत्तर दिया "हां हमने बम फेंका है और मैंने ही हत्या की है" तो इनको फांसी का हुक्म सुना दिया गया।

खुदीराम जी बड़े प्रसन्न चित्त आदमी थे, फांसी के दिन इनको डाक्टर ने आम खाने को दिया, तो इन्होंने आम खाकर छिलके फुला कर ज्यों का त्यों आम बना कर रख दिया डाक्टर ने इनको पूछा कि आम खा लिया। इन्होंने कहा खा लिया, डाक्टर को इनकी बात पर विश्वास नहीं आया। और छिलके उठा कर देखने लगा और ये खिलखिला कर हँस पड़े। इतने में ११ अगस्त भी आन पहुंची और इनको फांसी के तख्ते पर ले जाया गया, और इन्होंने अपने आप मृत्युपाश गले में डाला और हँसते-हँसते परलोक सिधार गये। और भारत के हृदय के एक उपास्य देव बन गये।

—=—

श्री कन्हाईलालदत्त जी

कन्हाई लाल दत्त जी का जन्म १८८७ ई० में हुआ था। आपके विचार बड़े विचित्र थे, आपकी हर एक बात में बड़ी विचित्रता पाई जाती थी, आपका जन्म एक अच्छे धनी परिवार में हुआ था, आप धनिकों के समान विलासी नहीं थे, आपके हृदय में गरीबों के लिए बहुत भारी स्थान था तथा दुखियों के लिए बड़ी सहानुभूति थी।

आपकी शिक्षा बंगाल में बी० ए० तक हुई थी। आप एक दिन घर वालों को यह कहकर चले गये कि मैं नौकरी के लिए कलकत्ता जा रहा हूं। परन्तु आपके दिल में बात और ही थी। इस समय बंगाल में स्वदेश भक्तों के हृदय में देश भक्ति की आग सुलग रही थी। बंगाल के युवक अपनी जान हथेली पर रखकर विदेशी सत्ता को देश से उठाने के लिए लगे हुए थे। कन्हाईलाल दत्त जी भी कलकत्ते में आकर स्वदेश भक्ति के कार्यों में भाग लेने लग गये। कुछ ही दिनों में आप दल के प्रमुख कार्यकर्ता बन गये। और जिस समय खुदीराम बोस ने बम फका था और सरकार लोगों को पकड़ पकड़कर जेल में डाल रही थी उस समय आप भी जेल में चले गये, वहाँ सब लोग सभायें करते थे और भाषण देते थे परन्तु आप की दिनचर्या सबसे निराली थी। या तो आप आनन्द से पड़े सोते थे या फिर लोगों को तंग करते फिरते थे।

इसी समय लोगों को पता चला कि नरेन्द्र गोस्वामी मुखबर हो गया है, तो सभी साथियों का खून उबलने लगा। कन्हाईलाल भी कब चुप होने वाला था। इसने भी मन ही मन विश्वासघातक को दण्ड देने का निश्चय कर लिया। तो एक दिन कन्हाईदत्त ने पेट के दर्द का बहाना कर लिया और उसे अस्पताल भेज दिया। उधर सत्येन्द्र भी विश्वासघातक से बदला लेने के लिए बुखार के बहाने अस्पताल में गया हुआ था। एक दिन नरेन्द्र अपने दो रक्षकों के साथ सत्येन्द्र से मिलने के लिए आया। सत्येन्द्र ने बेहोशी का बहाना बनाकर नरेन्द्र पर फायर कर दिया परन्तु फायर खाली गया तो कन्हाईदत्त ने शिकार को फन्दे से निकलते देख कर उस पर गोली चला दी, इस भयानक दृश्य को देखकर जेल के कर्मचारी भी इधर-उधर छुप गये और इन दोनों ने उसका कामतमाम कर दिया। आखिर कारतूस समाप्त होने के कारण इनको गिरफ्तार होना पड़ा। और इन पर हत्याओं के मुकद्दमे चलाये गये। आखिर १० नवम्बर सन् १९०८ को इनको फांसी दे दी गई और दोनों साथी एक साथ भारत माता की गोद से विदा ले गए।

श्री यतीन्द्रनाथ दास

(म० फतहसिंह)

जिस समय काकोरी-षड्यन्त्र केस चल रहा था। बल्कि जिस समय उसका मुकद्दमा अच्छी तरह चल भी नहीं पाया था, उसी समय ५ नवम्बर सन् १६२५ को यह वीर गिरफ्तार कर लिए गए। कलकत्ता जेल में इनकी शनाख्त के लिए काकोरी केस के मुखबिर लोग गये, और उन्होंने उनकी शनाख्त करने की चेष्टा की, किन्तु वे उन्हें नहीं जानते थे इसलिए उनकी शनाख्त न कर पाए। यतीन्द्रनाथ उसी प्रकार तथा उसी अर्थ में कान्तिकारी थे जिस अर्थ में कि भगतसिंह तथा चन्द्रशेखर आजाद थे।

जब यतीन्द्रनाथ दास पर काकोरी का मुकद्दमा न चल सका तो इन्हें बंगाल आर्डिनेन्स के केस में बन्दी बना लिया गया। इन्हें कई जेलों में रखा गया तथा इन्हें तरह-तरह की कठोर यातनायें दी गईं। एक बार ढाका जेल में तो आपके साथ अधिकारियों का झगड़ा भी हो गया था। फलस्वरूप इस वीर को अत्यधिक यातनाओं का सामना करना पड़ा। इस वीर ने फिर भी साहस न छोड़ा। जेल में इन्होंने अनशन प्रारम्भ कर दिया। जब अधिकारी वर्ग ने इनके शरीर की हालत चिन्ताजनक देखी तो घबराये। और क्षमा मांगने लगे। इस वीर ने देश के राजनीतिक कैदियों की अवस्था सुधारने के लिये ही यह सब कुछ किया था। इसी अनशन के कारण उनकी हालत चिन्ताजनक हो गई। यह मरने का कुछ भी भय न करते थे। अन्त में इसी के कारण उनका यह देह छूट गया और सदा के लिये अमर हो गये।

जब यह वीर लाहौर षड्यन्त्र में गिरफ्तार हुए तो उस समय इनकी आयु बहुत छोटी थी। यतीन्द्रनाथ वीर में बाल्यकाल से ही साहस व वीरता कूट-कूट कर भरी थी, गिरफ्तार होने पर यह तनिक भी न घबराये। दो तीन बार इन्होंने असहयोग आन्दोलन में पकड़े जाने पर भी जेल की यातनायें सहन की थीं। जेल की यातनाओं को सहन करने के अभ्यस्त हो गये थे। इसीलिए वह जेल से कभी न घबराते थे। इन्होंने अपने पूर्ण प्रयत्न से जान की बाजी लगाकर भी देश के राजनीतिक कैदियों की अवस्था सुधारने का प्रयत्न किया जिसमें इन्हें पर्याप्त सफलता मिली।

बोरस्टल जेल में जब यतीन्द्रनाथ जी बहुत दिनों से अनशन पर थे तो इनका शरीर अत्यन्त कमजोर हो गया। सभी प्रजाजन इनके प्राणों की भिक्षा मांग रहे थे। यह आशंका की जाती थी कि यह वीर अभी कुछ ही घण्टों में शरीर छोड़ने वाला है। किन्तु यह वीर फिर भी ६ दिन तक जीवित रहा और अन्त में १३ सितम्बर १६२६ ई० को यह वीर बोरस्टल जेल में शहीद हो गया।

श्री यतीन्द्रनाथ मुकर्जी

(ब्र० सोमवीर)

श्री यतीन्द्रनाथ मुकर्जी का जन्म बङ्गाल प्रान्त के नदीया जिले के काला ग्राम नामक गांव में हुआ था। पांच वर्ष की ही आयु में इनके पिता का देहावसान हो गया था। और ये अपने बचपन से ही पितृ स्नेह से वञ्चित हो गये। इनके लालन पोषण का भार इनकी स्नेह मयी माता पर पड़ गया। इनकी माता इनको बड़े प्यार से रखती थी। और इनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देती थी। माता की यही हार्दिक अभिलाषा थी कि मेरा पुत्र सुयोग्य बने। वे नहीं चाहती थी कि मेरा पुत्र गुलाम या कायर बने। वे अपने पुत्र को सदा यही उपदेश दिया करती थी।

"हे पुत्र संसार में सदैव निर्भय होकर विचरना, संसार की मोह माया में न फंसना, हमेशा अपने चरित्र बल को बनाये रखना।"

यतीन्द्र बाबू पर उनके उपदेशों का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और अन्तिम समय तक उनके जीवन में माता के उपदेशों का प्रतिबिम्ब झलकता रहा। उन्होंने अपने जीवन का उत्सर्ग तक कर दिया। पर माता के उपदेशों का पालना न छोड़ा, देश पर मरने वाले पुत्र कैसे होते हैं यह प्रत्यक्ष करके दिखला दिया।

इनकी शिक्षा इनके मामा के घर हुई थी। आपने मैट्रिक पास करके एफ० ए० तक की शिक्षा प्राप्त कर ली थी। आप बुद्धि के बड़े चतुर थे। आप का मन पढ़ने-लिखने में इतना नहीं लगता था जितना कि खेलने कूदने व लड़ाई-झगड़े में लगता था। आप शरीर के बड़े फुर्तीले थे, और आपको घोड़े की सवारी बड़ी प्रिय थी। आपने अपने बाल्यकाल ही में लाठी चलाना, तरह-तरह के व्यायाम और कुश्ती लड़ना सीख ली थी। आपके लिये ७०-७५ मील साईकिल पर चढ़े जाना एक आसान बात थी।

एक बार यतीन्द्र जी को एक खेल सूझा। वे जंगल को गये। अचानक उनकी एक चीते से भेंट हो गई। वे डरे नहीं, किसी प्रकार से जीवित चीते को पकड़ कर शहरमें ले आये, जिसने इनके इस कृत्य को देखा वह अवाक् रह गया। यतीन्द्र बाबू बड़े साहसी वीर थे, वे प्रायः इसी तरह के कामों में लगे रहते थे। उन्होंने पढ़ना-लिखना सर्वथा छोड़ ही दिया था। इनकी इस प्रकार की प्रवृत्ति देखकर इनकी माँ ने इनको कहा कि बेटा! तुमको मैंने बड़े कष्ट से पाला है और अब भी मैं आपके होते हुये कष्ट अनुभव कर रही हूँ। अतः मेरे बुढ़ापे की तरफ ध्यान दो। यतीन्द्र जी को माता की यह बात बड़ी अच्छी लगी और इन्होंने सरकारी नौकरी कर ली।

यतीन्द्र बाबू नौकरी तो करते रहे। परन्तु उनका हृदय नौकरी के अनुकूल नहीं था। इनके हृदय में तो स्वतन्त्रता की आग सुलग रही थी। इनका वीरोचित गुण राख से आच्छादित अग्नि के समान था और समय पाकर चमकने का अवसर देख रहे थे।

नौकरी करते हुये भी ये इतने बे फिकर थे कि इनको किसी बात की परवाह ही नहीं थी। एक बार वे ट्रेन से जा रहे थे तो ट्रेन में इनका तीन चार अंग्रेजों से झगड़ा हो गया। आपने उन चारों की अच्छी तरह से मरम्मत की, और ये चारों अंग्रेज कोई साधारण नहीं थे, सैनिक थे। यतीन्द्र बाबू पर इस

झगड़े का मुकदमा भी चला परन्तु उन अंग्रेजों ने बाद में इसमें अपनी हंसी होती हुई देख कर मुकदमा अदालत से उठा लिया। आपकी निर्भयता, उत्साह और पराक्रम से आपके ऊपर पुलिस की निगाह सदा बनी रहती थी। और इस प्रकार की अनेक शिकायतें आपके अफसर के पास भी गई, जिसके कारण आपको उस नौकरी से हाथ धोना पड़ा। इसके बाद आपने कहीं ठेकेदारी का काम करके काफी रुपया कमा लिया, और उस समय देश के नवयुवकों में इसी प्रकार की लहर फैली हुई थी कि देश को आजाद कराना ही देश की अच्छी सेवा है और प्यारे देशवासियों को अंग्रेजी शासन से मुक्त करके इन्हें स्वतन्त्र करना ही मुख्य काम है। यतीन्द्र जी भी इसी उद्देश्य से प्रभावित होकर स्वतन्त्रता की ज्वाला में कूद पड़े।

उस समय पूर्वी बंगाल में स्वतन्त्र रूप से कई छोटे छोटे दल विप्लव का प्रचार कर रहे थे, इन दलों को एक सूत्र में बांधने के लिये काफी प्रयत्न किये जा चुके थे, परन्तु इनको एक सूत्र में कोई भी नहीं बांध सका था। यतीन्द्र जी ने इस काम को करने का बीड़ा उठाया और अन्त में सबको एक सूत्र में बांध दिया, और विप्लव के काम में लग गये। यतीन्द्र बाबू जी कलकत्ते के पथरिया घाट मोहल्ले में रहा करते थे। एक बार ये अपने कमरे में बैठे हुये थे। और साथ में कुछ और क्रान्तिकारी बैठे थे, इतने में इनके पास एक आदमी आया जिस पर इनका गुप्तचर होने का सन्देह था। तो इनके साथियों ने उस पर गोली चला दी और भाग खड़े हुये। इस गोली काण्ड में यतीन्द्र बाबू बिल्कुल नहीं थे। परन्तु मरते समय उस आदमी ने अपने बयान में इनका नाम भी ले लिया कि यतीन्द्र ने मुझे गोली मारी है। तो पुलिस पहले ही यतीन्द्र बाबू पर काफी कड़ी नजर रखती थी। और इस बात को सुन कर तो पुलिस और तेज रफ्तार से उनको पकड़ने की कोशिश में रहने लगी तो उन्होंने भी अपना स्थान बदल दिया और किसी दूसरे स्थान पर अपने पांच छः साथियों के साथ रहने लगे, एक बार पुलिस को उस स्थान का भेद भी लग गया, और उस स्थान को जा घेरा तो उस समय इनके सभी साथी वहां नहीं थे और ये अपने कुछ साथियों के साथ उन्हें लेने के लिये चल दिये और रातों रात घने-जंगलों और उबड़ खाबड़ जमीन पर बारह कोश चल कर वापिस आना क्या हंसी खेल था? ये अपने काम में जुटे हुये थे, ये रातों रात चलने के कारण थक गये थे। भूख प्यास से भी बहुत तंग आ गये थे तो इन्हें किसी नदी पर एक मल्लाह मिला। इन्होंने उससे कुछ खाने को मांगा, तो उसको इनपर दया नहीं आयी और इनको खाने के लिये कुछ भी नहीं दिया और ये अपने अपने काम में भूखे प्यासे लगे हुये ही थे। पुलिस भी इनके पीछे लगी हुई थी। आखिर प्रातःकाल हो गई और पुलिस के कई सौ सिपाहियों ने इन पांच छः वीरों को घेर लिया तो इन्होंने भी उन कई सौ सिपाहियों के मुकाबले में मोर्चा जमा लिया। यह दृश्य देखने योग्य तथा भयानक था। जंगल में गोलियों के धुयें से रात्रि सी छायी हुई थी, शब्द भी केवल बन्दूकों के ही सुनाई देते थे, लेकिन इन पांच छः भूखे प्यासे वीरों ने उन कई सौ सिपाहियों के दांत खट्टे कर दिये। आखिर कब तक ये पाला लेते, इनके एक दो साथी मारे भी गये। आखिर श्रान्त होकर यतीन्द्र जी ने अपने बचे हुये साथियों के साथ आत्म-समर्पण कर दिया। आत्म समर्पण करते ही यतीन्द्र जी बेहोश हो गये, और मुख से केवल पानी शब्द निकलता था, आखिर उनकी इस हालत को देखकर पुलिस अफसर का भी दिल पसीज गया और रोने लग गया। सिपाहियों ने तालाब से अपनी टोपियों में पानी यतीन्द्र जी के मुख में डाला और इनको कुछ होश आया, और इनको गिरफ्तार करके कटक के हस्पताल में रखा गया और वहीं इनकी मृत्यु हो गई, और इनके दो साथियों को मनोरंजन और धीरेन्द्र फांसी तथा ज्योतिष को काले-पानी की सजा मिली, लेकिन ये भी कब शान्त थे? कुछ दिन में इन्हीं के साथ जा मिले।

अमर शहीद मणीन्द्रनाथ बनर्जी

श्री मणीन्द्रनाथ बनर्जी का जन्म बंगाल में हुआ था। इनके पिता का नाम ताराचन्द्र बनर्जी था तथा माता का नाम सुनयनी देवी था। इनके पिता जी काशी के प्रसिद्ध डाक्टर थे। इनकी माता जी बड़ी देशभक्त थी। जभी तो इसने इस प्रकार के वीर पुत्रों को जन्म दिया।

जब १९२७ के काकोरी षड्यन्त्र के अभियुक्त भगतसिंहादि को फांसी दी गई। उस समय मणीन्द्र के दिल को बड़ी भारी ठेस पहुँची और इन्होंने मन में सोचा कि अंग्रेजी सरकार ने इनको फांसी देकर भारत के नौजवानों को चुनौती दी है। और यह जाहिर किया है कि इस मार्ग को न अपनावें, इस कारण मणीन्द्र जी ने यह चुनौती स्वीकार कर ली। और उन्होंने काशी के मारवाड़ी हस्पताल के आगे अपने तमंचे में केवल दो कारतूस लेकर डी० एस० पी० जितेन्द्र बनर्जी पर हमला कर दिया। वे समझते थे कि यही व्यक्ति फांसियों के लिये जिम्मेदार है। उन्होंने पास से गोली चलाई, जो पेड़ू में घुस गयी। तीन दिन तक जितेन्द्र बनर्जी का इतना बुरा हाल रहा कि जीने की कोई आशा नहीं थी। इस बारे में मणीन्द्र जी को दस साल की सजा हुई।

मणीन्द्र जी पर जेल में बहुत अत्याचार किये गये कि वे अपने साथियों के नाम बता दें। पर सब व्यर्थ रहा। यहां तक कि उनको जेल के अधिकारियों के साथ अनेकों लड़ाई अकेले ही लड़नी पड़ीं। आपको १९३१ में "बी" श्रेणी मिली हुई थी परन्तु "सी" श्रेणी वालों के लिये आमरण अनशन कर दिया। उनका कहना था कि राजनैतिक कैदियों के लिये कोई क्लास (श्रेणी) नहीं होनी चाहिये।

इस आमरण अनशन के फल-स्वरूप आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया। और अन्त में आपकी इसी अनशन से मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि मणीन्द्र की मृत्यु के समय श्री मन्मथनाथ गुप्त जी वहीं थे। उन्होंने मरने से दो मिनट पहले अपनी माता जी से मिलने की इच्छा प्रकट की। परन्तु जितनी देर में इनकी माता जी को बुलाया गया इतने में तो वे अंग्रेजी सरकार के बन्धनों से मुक्त होकर न जाने कितनी दूर चले गये हैं।

परन्तु मणीन्द्र जी मरे। इस प्रकार मरे कि बहुत दिनों तक उनकी मृत्यु देशवासियों से अज्ञात रही।

श्री राजेन्द्रनाथ 'लहरी'

काकोरी षड्यन्त्र के अभियोग में फांसी पाये हुये चार व्यक्तियों में राजेन्द्र बाबू भी एक थे। सम्भवतः सन् १९२२ या १९२३ ई० में आप क्रान्तिकारी आन्दोलन में सम्मिलित हुए।

इनका जन्म सन् १९०१ ई० में पवना जिले के भटेंगा ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम क्षितिमोहन लाहिड़ी था। जो बड़े ही उदार विचार के थे। बंग भंग के समय उन्होंने उसमें काफी भाग लिया। राजेन्द्र की प्रारम्भिक शिक्षा गांव में हुई। सन् १९०९ में आप बनारस आये और हिन्दू यूनिवर्सिटी की एन्ट्रेन्स परीक्षा पास करके कालिज में पढ़ने लगे और एम० ए० की परीक्षा पास की। इन्हें अपनी मातृ भाषा से भी बड़ा प्रेम था। आपने माता जी की स्मृति में एक पुस्तकालय खोल रखा था।

आप एक "अग्रदूत" नामक पत्र के संचालकों में से थे। आपका जीवन एक क्रिया शीलता का जीवन था। बाल्यकाल में ही राजेन्द्र ने अपना जीवन देश सेवा में अर्पित करने की प्रतिज्ञा की थी।

आप कभी भी अपने काम का ढिंढोरा नहीं पीटते थे। आप कुछ दिन बाद क्रान्तिकारी दल की प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य बन गए। राजेन्द्र बाबू को हमेशा नेता बनने की धुन सवार रहती थी।

जिस समय काकोरी में डाका पड़ा उसी समय आप दक्षिणेश्वर बम्ब केस के सम्बन्ध में गिरफ्तार किये गये और आपको खुफिया पुलिस ने काकोरी केस में भी शामिल कर लिया। आपसे जवाब तलब किये गये। मुकद्दमा कायम हुआ और अन्त में काला पानी और फांसी की सजा दी गई।

इसके बाद वीर राजेन्द्र लखनऊ से बाराबंकी लाया गया और ११ अक्तूबर सन् १९२७ का दिन फांसी के लिये तय हुआ। कुछ दिन आप बाराबंकी जेल में रखे गये और बाद में फिर गोंडा जेल भेज दिये गये। राजेन्द्रनाथ जी जेल में खूब प्रसन्न रहते हुए गाना गाया करते थे। वे क्षण भर के लिए कभी भी चिन्तित नहीं हुए।

अन्त में १७ दिसम्बर १९२७ ई० को गोंडा जेल में फांसी दे दी गई। राजेन्द्र बाबू का बलिदान अभूतपूर्व था। २६ वर्ष की आयु में वह वीर राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी अपनी सुनहरी झलक दिखाकर इस लोक से सदा के लिये चल दिये।

वीर शिरोमणि वटुकेश्वरदत्त

(ब्र० महादेव)

आपका जन्म सन् १९०८ में कानपुर में हुआ था। वैसे आपके कुटुम्बी बंगाली थे। बाल्यकाल से ही आप अच्छे खिलाड़ी भी थे। आप पढ़ लिख कर क्रान्तिकारी कार्यों में भाग लेने के लिए रंगमंच पर आये। १९२४ ई० में आपका वीर भगतसिंह से परिचय हुआ। एक बार गंगा में बाढ़ आ जाने से जनता को बड़ी हानि हो रही थी, उस समय आपने और भगतसिंह ने पीड़ित जनों की खूब सेवा की। इस प्रकार आप दोनों का सर्वत्र सम्मान होने लगा।

१९२४ में केन्द्रिय विधान सभा में औद्योगिक विवाद का बिल पास हो रहा। था इस बिल से मजदूरों की हानि थी। एच० एस० आर० ए० के सदस्यों ने इसका विरोध करने के लिए एक योजना तैयार की कि जब यह बिल पास हो उस समय इसका विरोध बम फेंक कर किया जाये। और साथ ही यह भी महत्वपूर्ण निश्चय किया कि जो सदस्य इस कार्य के लिए नियुक्त किये जावेंगे, वे यहां से भागेंगे नहीं, बल्कि स्वेच्छा से गिरफ्तार होकर अदालत में बयान द्वारा यह स्पष्ट करेंगे कि यह कार्य किस लक्ष्य को लेकर किया। यह निश्चय कोई साधारण नहीं था। क्योंकि इसका अर्थ यह था कि जान बूझ कर मृत्यु का आलिंगन। इसमें मनोविज्ञानिकों का कथन है कि अकस्मात् जोश में आकर प्राणोत्सर्ग करना सरल है किन्तु जान बूझ कर और विवेक के साथ जो व्यक्ति बलिदान की वेदि पर जाने का साहस करता है सच्चा वीर तो वही है।

इस कार्य को करने के लिए भगतसिंह जी के साथ कभी जयदेव जी कपूर का, कभी राजगुरु शिव-राम जी का नाम आया, परन्तु उनके मित्र विजयकुमार और शिववर्मा जी ने भगतसिंह के जाने का

विरोध कर दिया। इधर श्री बटुकेश्वरदत्त को जब बम फेंकने की सूचना मिली तो समिति को आपने उपालम्भ दिया कि दल के साथ मेरा पुराना सम्बन्ध होते हुए भी मुझे आपने इस प्रकार कार्य करने का सुअवसर नहीं दिया। और खिन्न होकर विरोध करते हुए यह कहा कि शीघ्र ही किसी काण्ड में सक्रिय कार्य करने का अवसर नहीं दिया तो हम संगठन से किसी भी प्रकार का कोई सम्बन्ध न रखेंगे। तब समिति ने आपको तथा विजयकुमार सिन्हा को इस कार्य के लिए नियुक्त किया। इस बैठक में श्री सुखदेव जी न आ सके थे। अतः आपको सूचना पुनः दी। तब वह दूसरी बैठक में उपस्थित हुए। श्री सुखदेव जी व भगतसिंह जी का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध था। सुखदेव ने भगतसिंह को एकान्त में बुला कर कहा कि असेम्बली में बम फेंकने के लिए तुम्हें जाना था दूसरे आदमियों को भेजने का निश्चय क्यों किया गया ? तब आपने उत्तर दिया कि समिति का निर्णय है कि समिति के संगठन के लिये मुझे पीछे रहना आवश्यक है। तब सुखदेव ने कड़ा विरोध किया और कहा कि यह सब बकवास है। तुम्हारे व्यक्तिगत मित्र की स्थिति से मैं देख रहा हूं कि तुम अपने पांव पर कुठाराघात कर रहे हो। तुम सदा इस प्रकार बच नहीं सकते। एक दिन आपको भी अदालत के सम्मुख आना पड़ेगा।

इस प्रकार के वचन सुनकर भगतसिंह ने कहा कि मैं बम फेंकने अवश्य जाऊंगा। इस प्रकार भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त का जाना निश्चित हुआ। ८ अप्रैल सन् १९२९ को बिल पास होने के समय आपने भगतसिंह के बम फेंकते ही दूसरा बम फेंका। समस्त भवन धुएँ से भर गया। जहाँ बम गिरे थे वहाँ के बेंच टूट गये, भदगड़ मच गई, सदस्य और दर्शक सब जान बचा कर भागे। उस स्थान पर केवल तीन चार व्यक्ति उपस्थित थे। १. अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल २. पं० मोतीलाल नेहरू ३. पं० मदनमोहन मालवीय तथा जिन्ना। सर शूटर घोषणा करते समय खड़े थे वह वैसे ही खड़े रह गये। वीर भगतसिंह ने सर शूटर पर गोली चलाई किन्तु वह डैस्क के नीचे छुप गया। इसके बाद सिंह और दत्त ने गगनभेदी नारे लगाये 'इन्कलाब जिन्दाबाद' 'साम्राज्यवाद का नाश हो' 'दुनिया के मजदूर एक हों'। साथ ही आप दोनों ने लाल रंग के घोषणा-पत्र भी भवन में फेंक दिये। यह पत्र अंग्रेजी में थे। उसमें प्रथम पंक्ति इस प्रकार थी "बहरों को सुनाने के लिए विस्फोट के समान ऊँचे ऊँचे शब्दों की आवश्यकता है।" इस समय भी यदि आप भागना चाहते तो भाग सकते थे। परन्तु यह कार्य आप के कार्य-क्रम के प्रतिकूल था। लगभग आध घण्टे के बाद उन्हें पुलिस पकड़ने के लिए आई। किन्तु उन्हें भी पकड़ने का साहस न हुआ। इस पर आप दोनों वीरों ने गोली से भरी पिस्तौलें दूर फेंक दीं और आत्मसमर्पण कर दिया।

इस समय इन नवयुवकों के मुख पर न कोई उत्तेजना थी न भय था। वह एक स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ अपने कार्य को सुचारु रूप से कर लेने का सन्तोष प्रकट कर रहे थे। आप दोनों को बन्दी करके कोतवाली में पृथक् पृथक् कोठरियों में बन्द किया गया। सी० आई० डी० अधिकारी ने आपसे इस षड्यन्त्र के विषय में कुछ पता लगाना चाहा, किन्तु उनको इसमें कोई सफलता न मिली।

इधर पुलिस वर्ग ने इस काण्ड के पीछे षड्यन्त्र का पता लगाने का सिरतोड़ प्रयत्न किया परन्तु कहीं कोई सूत्र न मिल सका। यहां तक कि दिल्ली के सभी धोबियों को बुलाया गया कि इनके कपड़े किसने साफ किये हैं। जितने भी हाथ के प्रेस थे, उनका भी निरीक्षण किया। क्योंकि जो पर्चे बांटे गये थे उनका ज्ञान पुलिस करना चाहती थी कि कहां छपे हैं।

इस घटना ने देश भर को हिला दिया। अंग्रेज सरकार की पुलिस घबरा गई। दिल्ली में कलकत्ते से तत्काल विशेष पुलिस बुलाई गई। उस समय दिल्ली में सभी दूसरे प्रान्तों की राजधानियों तक टेलीफोन

और तार सरकारी सन्देशों के लिये रिजर्व कर लिये गये। उस समय दिल्लीस्थ स्टेटस् मैन के सम्वाददाता लाला दुर्गादास जी ने बम काण्ड का समाचार टेलीफोन या तार द्वारा कलकत्ते भेजना चाहा परन्तु समाचार भेजते के सभी साधन सरकारी काम के लिये थे। उस समय लाला जी ने पत्रकार की विशेष सूझ दिखाई। आपने यह समाचार "स्टेट्स्मैन" के लन्दन कार्यालय को भेजा। वहां से यह समाचार वायरलैस द्वारा कलकत्ता कार्यालय में भेजा गया।

जिस समय "ऐसोसियेटेड प्रेस आफ इण्डिया" द्वारा इस घटना का समाचार कलकत्ते के दूसरे पत्रों को मिला उस समय स्टेट्स्मैन का विशेषांक बाजार में बंट रहा था।

जेल में इन लोगों पर कठोरता का वर्ताव प्रारम्भ हो गया। इन दोनों को एक दूसरे से बहुत दूर बिलकुल तंग और गन्दी कालकोठरियों में बन्द कर दिया गया था। और नित्य अधिकारी वर्ग इनके पास जाकर नेताओं के वक्तव्य दिखा कर उनसे कहते कि समस्त देश तुम्हारे कार्यों की निन्दा करता है। इस प्रकार नैतिक साहस भंग करने की चाल चल रहे थे। यही नहीं दूसरी चाल यह चली कि उन्होंने समाचार पत्रों में वटुकेश्वरदत्त के सरकारी गवाह हो जाने का समाचार दिया। इससे जनता में बेचैनी फैली सो फैली, भगतसिंह को भी इससे आघात पहुंचा।

परन्तु भगतसिंह ने साहस में लेशमात्र भी परिवर्तन न आने दिया। थोड़े दिन बाद मिथ्या प्रचार का भण्डा फोड़ हुआ। पकड़े जाने के दो सप्ताह बाद दोनों युवकों की शनाख्त कराई गई। इनकी शनाख्त करने वाले कुछ भारतीय और कुछ अंग्रेज थे। यह कार्यवाही प्रथम श्रेणी के न्यायालय में जनाब अब्दुल समद के सामने हुई।

न्यायालय की नाट्यशाला में

सरकार ने अपनी पूरी तैयारी के पश्चात् सात मई सन् १९२८ को सिंह और दत्त को अदालत में उपस्थित किया। जनता का कोई प्रदर्शन न हो, इस भय से अदालत की कार्यवाही देहली जेल में हुई। मजिस्ट्रेट मिस्टर सि० एफ० बी० पुल न्यायकर्ता थे।

इन दिनों जेल के भीतर व बाहर पुलिस का बड़ा कड़ा पहरा था। जेल में केवल अभियुक्तों के सम्बन्धी, पत्रप्रतिनिधि तथा सफाई वकीलों को ही आने की आज्ञा दी जाती थी। जब इन दोनों वीरों को अदालत में लाया गया तब आते ही दोनों ने बड़े जोरों से 'इन्कलाव जिन्दावाद' 'साम्राज्यवाद का नाश हो' इत्यादि नारे लगाये। इसके पश्चात् अदालत ने बताया कि पुलिस ने दफा ३०७ (हत्या करने का प्रयत्न) और विस्फोटक कानून की धारा ३ लगाई है। अभियोग में साक्षियों के दो दिन तक बयान चलते रहे। तीसरे दिन मजिस्ट्रेट ने आप दोनों को अपनी सफाई पेश करने के लिए कहा किन्तु आपने बयान देने से इन्कार किया और कहा कि हमें जो कुछ कहना है वह सेशन जज की अदालत में कहेंगे। इस पर मजिस्ट्रेट ने सेशन जज के सुपुर्द कर दिया।

ता० ४ जून १९२९ को देहली जेल में ही सेशन जज की अदालत लगी। इस समय भी पहरा और देख रेख उसी प्रकार सख्त थी। नीचे की अदालत में जो बयान सरकारी गवाहों ने दिये थे वे बयान यहां दे दिये। इसके पश्चात् सिंह और दत्त ने संयुक्त वक्तव्य दिया। वह बयान अंग्रेजी में दिया था। जिस किसी ने यह बयान पढ़ा या सुना उनकी आंखें खुल गईं। उनके विषय में जो झूठी या अज्ञानतावश अफवाहें फैल गईं थीं उनका निराकरण हो गया। (यह बयान इसी अंक में अन्यत्र छपा है) उन्होंने कहा—

मानव का अविच्छेद्य अधिकार

विप्लव-क्रान्ति मनुष्यता का अविच्छेद्य अधिकार है। स्वतन्त्रता का अनिर्दिष्ट जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमजीवी ही समाज का सच्चा धुरीण है। इन आदर्शों और विश्वासों के लिए हम प्रत्येक वेदना को जो हमें दी जायेगी आदर से स्वागतपूर्वक आलिंगन करेंगे। इस विप्लव की बलिवेदि में अर्पित करने के लिये मैं अपनी नौजवानी देने को उद्यत हूं। क्योंकि इतने महान् आदर्श के लिए किसी भी प्रकार का बलिदान अत्यधिक नहीं कहा जा सकता। हम सन्तुष्ट हैं। हम क्रान्ति के अवतार की प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्रान्ति युग युग जीवे।

आप दोनों ने बम फेंकने के अपराध को तो स्वीकार किया था किन्तु हत्या करने के प्रयत्न का जो आरोप लगाया था इसके लिये सफाई की ओर से कुछ गवाहों की आवश्यकता थी। अतः पं० मदन मोहन मालवीय आदि सुप्रतिष्ठित महानुभावों ने न्यायालय में आकर साक्षी दी कि अभियुक्तों ने सभा भवन में आकर जो आचरण किया था उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनका किसी के प्राण लेने का विचार नहीं था। इसके पश्चात् जज महोदय ने अफसरों की सम्मति पूछी तब प्रथम ने कहा कि दोनों अभियुक्त दोनों धाराओं में निर्दोष हैं। दूसरे ने दोनों को हत्या की चेष्टा करने में निर्दोष और विस्फोट में दोषी बताया। तीसरे ने भगतसिंह को दोनों धाराओं में दोषी, और दत्त को हत्या सम्बधी धारा में निर्दोषी बताया। सेशन जज ने चौथे अफसर की सम्मति प्रकट करते हुये ता० १२ जून १९२९ को दत्त और सिंह को दोनों धाराओं का अपराधी घोषित करते हुए आजन्म कालेपानी की सजा सुनाई।

सजा सुनते ही दोनों वीरों ने क्रान्तिकारी गगन भेदी नारों से इसका स्वागत किया। आप दोनों को आजीवन कारावास की सजा देकर भगतसिंह को पञ्जाब की मियांवाली जेल में और वटुकेश्वर दत्त को लाहौर की सैन्ट्रल जेल में भेज दिया। वहां जेलों में आपके साथ बिलकुल साधारण कैदियों जैसा निकृष्ट व्यवहार किया। तब आप दोनों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। परन्तु इस नौकरशाही जमाने में कौन सुनता। अन्त में कोई चारा न देखकर १५ जून से अनशन प्रारम्भ कर दिया था। अब दोनों की हालत दिन प्रतिदिन खराब होने लगी। इधर जनता में भी खलबली मच गई।

पंजाब एवं बंगाल में आपके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए ३० जून को सिंह और दत्त का दिवस मनाया। इधर पञ्जाब की पुलिस ने साण्डर्स हत्या कांड तथा अन्य अनेक क्रान्तिकारी कार्यों के अपराध में अनेक नवयुवकों के साथ आप दोनों को भी फँसा कर एक षड्यन्त्र केस चलाने की तैयारी कर दी।

कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर भगतसिंह और वटुकेश्वर दत्त को लाहौर षड्यन्त्र का अभियुक्त कर दिया। बहुत कड़े पहरे में मियांवाली जेल से भगतसिंह को लाहौर लाया गया। इस समय आप दोनों का अनशन चल रहा था। यहाँ जो अन्य अभियुक्त थे उन्होंने भी अनशन प्रारम्भ कर दिया। परन्तु सरकार अंधी व बहरी बनी रही। अदालत में आपको अनशन अवस्था में ही ले जाया जाता। १७ ता० को इस मामले की सुनाई हुई। उस दिन भगतसिंह कुछ बोल पड़ा, इस पर अखबार व सम्बन्धियों का मिलना बन्द हो गया। इसका स्वागत अभियुक्तों ने राष्ट्रीय नारों से किया। जैसे-जैसे दिन व्यतीत हुए अनशन कारियों की दशा चिन्ताजनक होती गई। अधिकारी वर्ग तो अनशन तोड़ने का प्रयत्न करते ही

थे परन्तु बाहर से गणेश शङ्कर विद्यार्थी, जवाहरलाल नेहरू ने भी अनशन तुड़वाने का प्रयत्न किया। परन्तु प्रयत्न निष्फल हुवा।

अन्त में यतीन्द्रनाथ की अनशन के कारण मृत्यु हो गई। फिर क्या था दूसरे ही दिन कमेटी बुलाकर जेल के नियमों में सुधार कर दिया। इन अनशनों में भगतसिंह ने ११५ व बटुकेश्वरदत्त ने ७२ दिन का अनशन किया था।

चन्द्रशेखर आजाद, भगवतीचरण, इन्द्रपाल, यशपाल आदि ने आपको जेल से छुड़ाने का प्रयत्न भी किया। किन्तु वह इसमें सफलता प्राप्त न कर सके।

० :——

शहीद राजनारायण मिश्र

(ब्र० सोमवीर)

कामरेड राजनारायण भगतसिंह की पार्टी में चलने वाला तरुण था। वे जब तक जीये देश के लिए और मरे तो देश की मान मर्यादा की रक्षा में फांसी की रस्सी को चूमकर।

सन् १९७६ में वसंत पंचमी के दिन पं० बलदेव प्रसाद मिश्र के घर शिशु राजनारायण का जन्म हुआ। इनकी माता तुलसी देवी भी बड़ी निर्भीक और बहादुरी तथा स्नेह की प्रतिमा थी। राजनारायण की चार साल तक पढ़ाई गांव में हुई और प्राईमरी में फिर भेजा गया। यह बालक प्रारम्भ से वीर था। इसने ४० वानरों की सेना ही बचपन में तैयार कर ली थी। जब सरदार भगतसिंह को फांसी दी गई, उसने शपथ ली, "जब तक देह में प्राण हैं ब्रिटिश हुकूमत की एक एक ईंट उखाड़ लूंगा। इस उद्देश्य को लेकर इन्होंने मिडिल तक परीक्षा तो पास की पर आर्थिक अवस्था कमजोर होने के कारण आगे की पढ़ाई न चली और इन्होने मुनीमी का काम १६ साल की आयु में सीख लिया। सन् ३० के आन्दोलन में जिले के पुलिस कप्तान ने बड़ा जुल्म किया था। उसी समय इनका हृदय बदल गया और इनके उस समय एक पिस्तौल भी हाथ लगी। आर्थिक अवस्था अब इनकी कमजोर ही होती जा रही थी। १६ जनवरी को राजनरायण को एक स्पीच देने के कारण एक साल की सजा दी। जब राजनारायण जेल से आए तो देखा कि उनके भाई और पिता का शोक से देहान्त हो गया है। अब उनके ऊपर और भी बाधा आ खड़ी हुई।

फिर भी १४ अगस्त को राजनारायण आजादी की लगन में मस्त अपने आठ साथियों सहित घर से निकले। इनके साथियों ने मिलजुल कर रेल की पटरियां उखाड़ीं। स्टेशनों पर आग लगाई। तारें काटीं और चारों ओर हलचल मचा दी। पुलिस से इनकी मुठभेड़ हो गई और तीन आदमी भी मारे गये।

इन्सपेक्टर जनरल ने इस वीर का गांव फुकवाना प्रारम्भ कर दिया और १६ मकान नष्ट कर दिये। राजनारायण को गिरफ्तार करने के लिये चार सौ रुपये की घोषणा करदी। मार-पीट गाली-गलौच की भर मार थी। औरतों के गर्भ से बच्चे गिराए गए। गांव पर फौजी शासन कायम हो गया। स्पेशल कोर्ट ने गांव के दस आदमियों को अड़तीस-अड़तीस साल की सजा दी। कुछ दिन बाद राजनारायण भाग कर कानपुर आ गए और वहां दफा १२९ में गिरफ्तार हो गये। दो मास बाद छूट कर बाहर आए। वहां से आने पर इन्होंने सरकार विरोधी हड़ताल और जलूस निकलवाये जिसमें इनको ६ मास की कड़ी सजा मिली। फिर यह बम्बई पहुंचे। वहां पर ठीक ढंग का वातावरण न मिलने के

कारण इनको निराश होकर वापिस लौटना पड़ा और साधु होने की सोची। इसी फिराक में हरिद्वार में और ऋषिकेश आदि में घूमे और घूमते-घूमते मेरठ पहुँचे। वहां पर इन्होंने एक खद्दर धारी को नौकरी का वायदा देने पर अपना परिचय दे दिया। वह स्थान एक खद्दर भण्डार में बताया गया। एक दिन राजनरायण जी उन्हीं महाशय के साथ एक मित्र के यहां जा रहे थे तो देखा कि तीन खद्दर पोश उनका पीछा कर रहे हैं। इन लोगों ने थोड़ी दूर पीछे चलने के बाद राजनारायण पर हमला कर के इनको गिरफ्तार कर लिया।

राजनारायण को जेल ले जा कर तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं। तीन दिन तक सोने न दिया गया। पीठ पर बर्फ की सिल्लियां बाँधी गईं। गुदा स्थान में मिर्च ठूँसी गई। मार-पीट तो सहज बात थी इनको बड़ा ही कष्ट दिया गया परन्तु अधिकारी राजनरायण से कुछ भी पता न कर सके।

२७ जून को राजनारायण को फांसी की सजा सुना दी गई। फाँसी की सजा सुनकर इस वीर ने "इन्कलाब' के नारे लगाये। रोती बिलबिलाती भाभी, बहिन व अन्य कुटम्बियों को छोड़ कर राजनारायण फांसी की कोठरी में हंसते हुए चले गये। वहाँ से राजनारायण का तबादला लखनऊ जेल को हो गया। जहां पर इनको दो मास बाद फांसी पर लटका दिया।

बंगाल-

श्री सत्येन्द्रकुमार वसु

श्री सत्येन्द्र कुमार वसु का जन्म बंगाल प्रान्त में हुआ था। मुजफ्फर पुर के हत्या काण्ड के मामले में अनेक युवक गिरफ्तार किये गये और जेल में डाल दिये गये उनमें श्री सत्येन्द्र कुमार वसु भी गिरफ्तार कर लिये गये और जेल में डाल दिये गये थे।

एक दिन अचानक इनको मालूम हुआ कि नरेन्द्र गोस्वामी मुखबिर बन गया है, और वह समिति का भाँडा फोड़ करेगा। इस लिये उस विश्वासघातक को दण्ड देने के लिये आपको यह काम सौंपा गया। आपको जेल में कहीं से पिस्तौल मिल था. अतः आप ज्वर का बहाना बनाकर अस्पताल में चले गये, और वहां आपसे मिलने के लिए अपने दो रक्षकों के स.थ नरेन्द्र आया। आपने उस पर गोगी चलादी। समाचार प्राप्त होने पर कन्हाई लाल दत्त भी पेट का बहाना बनाकर वहां पहुंच गया और इन दोनों ने मिलकर नरेन्द्र का काम तमाम कर दिया। अन्त में इन पर हत्या केस चलाया और फांसी की सजा सुनाई गई।

आप बड़े मस्त थे। फांसी के समय तक मस्ती में आपका काफी भार बढ़ गया था। और हँसते-हँसते आप फांसी के दिन अपने आप ही फाँसी का फंदा डाल कर भूल गये। तथा कन्हाई लाल दत्त को एक ही दिन फांसी हुई।

श्री गोविन्दसिंह जी

श्री गोविन्दसिंह जी का जन्म बिहार प्रान्त में हुआ था। गोविन्दसिंह जी बिहार के उन कर्मचारियों में से हैं जिन्होंने बिहार का मस्तक ऊंचा किया है। जब १९४२ में राज्यक्रान्ति भारत के समस्त शहरों में फैली हुई थी तो बिहार भी उससे कैसे बच सकता था। गोविन्दसिंह भी राज्यक्रान्ति की ज्वाला

में कूद पड़े और स्वयं सेवकों का दल इकट्ठा करके जंगलों में रहने लगे और अनेक यातनाओं को सहन करते हुए भी स्वतन्त्रता के संग्राम का प्रबल रूप स्थापित रखा, और अपने साथियों को सदा महाराणा प्रताप की याद दिलाता रहा कि चाहे जंगलों में घास की रोटियाँ खाकर जीवन बिताना पड़े, पर भारत की स्वतन्त्रता को तो प्राणों से भी प्राप्त करना ही है।

गोविन्दसिंह अनुशासन का बड़ा हामी था। उसका आदेश था कि यदि कोई साथी अनुशासन भंग करेगा तो उसे मृत्यु दण्ड दिया जावेगा। ब्रिटिश साम्राज्य ने उन वीरों को पकड़ने के बाद काफी यातनायें दीं परन्तु यह बराबर बेडिग ही रहे। फांसी की सजा सुनने के बाद तो इस वीर का वजन बहुत बढ़ गया। ज्यों-ज्यों फांसी के दिन समीप आये त्यों-त्यों गोविन्दसिंह प्रफुल्लित मन से फांसी के तख्ते की बाट उत्सुकता से देखने लगा। हंसते-हंसते फांसी पर चढ़कर अपनी मातृभूमि की बलिवेदि पर अपने को उत्सर्ग कर गोविन्दसिंह ने भावी पीढ़ी को देश के लिए मरने का अमर पाठ पढ़ाया।

हिजली काण्ड के शहीद—

श्री सन्तोषकुमार मित्र और तारकेश्वरसेन

हिलजी काण्ड अंग्रेजी सरकार के पाशविक तथा पैशाचिक कृत्यों का एक जीता जागता नमूना है।

क्रिमिलन ला ऐमेण्डमेंट एकट में सरकार ने निरपराध मनुष्यों को जेलो में डाल दिया था जिनकी संख्या कई सौ थी।

एक दिन रात का समय था, लगभग दस बजे हिजली जेल में अचानक खतरे की घण्टी बजी, तो दर्जनों सशस्त्र सिपाहियों ने नजरबन्दियों की बारकों को घेर लिया, तथा वैसे ही अन्धा-धुन्ध कैदियों पर गोली चलानी आरम्भ कर दी। जिसके कारण अनेक वीर बुरी तरह से घायल हो गये और जिसके जिस अंग पर गोली लग जाती थी वही बेकार हो जाता था, नजरबन्दियों को यह घटना बिल्कुल भी समझ में न आ रही थी कि यह हुआ क्या और क्यों हो रहा है? श्री तारकेश्वर सेन जी ने यह मामला जानने के लिए ज्यों ही बरामदे में पैर रखा, त्यों ही उनके माथे में गोली लगी और वीर गति को प्राप्त हो गये। आप गांव गोलिया (बारीसाल) के रहने वाले थे।

ठीक इसी प्रकारकी गति श्री सन्तोषकुमार मित्र की हुई, इनके पेट में दो गोलियां लगीं जिसके कारण इनका प्राणान्त हो गया।

जेल के कर्मचारियों ने सारा दोष निहत्थे कैदियों पर लगा दिया। श्री सुभाषचन्द्र जी ने इस काण्ड की जाँच करने के लिये बहुत प्रयत्न किया, परन्तु उन्हें जेल के अन्दर न जाने दिया। श्री सन्तोषकुमार मित्र जी कलकत्ते के रहने वाले थे, जब इनका शव इनके घर पर पहुंचा तो बड़ी भयंकर दशा थी जिसको देखकर कलेजा कांप उठता था, इनका जलूस लोगों ने बड़ी शान से निकाला जिसमें लाखों नर-नारियों ने भाग लिया। अन्त में इनका अन्तिम संस्कार केवड़ा तला घाट पर कर दिया गया।

कैप्टेन कैमरून के हत्याकाण्ड के शहीद—निर्मलचन्द्रसेन तथा अपूर्व सेन उर्फ भोला

सन् १६३० में होने वाले चटगांव शस्त्रागार कांड ने बंगाल की पुलिस को बहुत चौकन्ना कर दिया था, उन्हें जहां भी विप्लववादियों का थोड़ा सा भी सुराग मिल जाता था, वहीं पुलिस अपने पूरे दल-बल के साथ पहुँच जाती थी।

१३ जून १६३२ की बात है कि पुलिस को किसी भेदिए द्वारा एक सूचना मिली कि—जलघाट गाँवमें

नवीन चक्रवर्ती के घर में कुछ केसों के फरार ठहरे हुए हैं। तो कैप्टेन कैमेरुन ने कुछ सिपाहियों को साथ लेकर सायंकाल के समय स्वर्गीय चक्रवर्ती के मकान को घेर लिया। जिसमें उनकी विधवा पत्नी श्रीमती सावित्री देवी, उनका एक पुत्र रामकृष्ण तथा उनकी लड़की स्नेहलता थी।

विप्लवी लोग वास्तव में उस मकान की छत पर थे, तो पुलिस की तीखी नजरों से न बच सके, और कैप्टेन कैमरुन ने एक हवलदार को सीढ़ी द्वारा ऊपर चढ़ने का आदेश दिया और आप भी साथ ही पीछे-पीछे चढ़ने लगा तो क्रान्तिकारियों ने ऊपर से उन्हें धक्का दे दिया। जिसके कारण वे दोनों नीचे गिर पड़े और विप्लववादियों ने उन पर गोली चलादी। जिससे कैप्टेन कैमरुन तत्काल परलोक सिधार गये। फिर इन वीरों ने जान बचाकर भागने का प्रयत्न किया। भागते-भागते ये सिपाहियों की गोलियों के शिकार बन गये और अन्त में वीर गति को प्राप्त हो गये। और इनके दो साथी किसी तरह पुलिस की आखों में धूल डालकर भाग गये।

इस मामले में चक्रवर्ती जी के परिवार की भी चार-चार साल की सजा हुई।

मिदनापुर मजिस्ट्रेट हत्याकाण्ड के शहीद प्रद्योतकुमार भट्टाचार्य

मिदनापुर जिले में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कागजों की देखभाल करने वाले जिला मजिस्ट्रेट आर० डगलस पर अचानक गोली चलाने वाले दो नवयुवकों ने आर० डगलस की हत्या करदी। सब डिविजनल आफिसर मि० जे० जार्ज उस समय दोनों का पीछा कर रहे थे, परन्तु जिसमें एक भाग निकला तथा दूसरा किसी झाड़ी में उलझ कर गिर पड़ा तथा गिरफ्तार हो गया। गिरने वाले भट्टाचार्य ही थे, गिरफ्तार करने पर इनको तलाशी ली गई तो इनके पास एक रिवाल्वर तथा एक कागज का पर्चा पाया, जिस में यह अंग्रेजी सरकार तथा भारतीयों के लिए संदेश लिखा था।

"यह हिजली जेल में होने वाले दमन का बदला है। इन लोगों की मौत से इंगलैंड को सम्भल जाना चाहिये तथा हमारे होने वाले बलिदानों से भारत को अपनी बन्द आँखें खोलनी चाहियें"—

वन्दे मातरम्

अन्त में श्री प्रद्योतकुमार को अदालत की तरफ से फांसी की सजा हुई।

ऐसे अमर शहीदों के अमर संदेशों का प्रभाव हमारे सामने है। इन सब की शहादत व्यर्थ नहीं गई।

———

पटना सेक्रेटेरियट के छः शहीद

८ अगस्त १९४२ ई० को "अंग्रेजो भारत छोड़ो" के प्रस्ताव का समाचार पाकर ११ अगस्त को पटना में एक बड़ा भारी जलूस निकला जिसने शहर तथा स्कूल, कालिज आदियों को बन्द कराने की कोशिश की थी। इन्कलाब जिन्दाबाद तथा जयघोष के नारों से सारा शहर गून्ज उठा। जलूस के साथ स्थान-स्थान पर लाठी चार्ज हो रहा था, परन्तु निहत्थी और अहिंसा के रंग में रंगी हुई २५-३० हजार जनता आजादी की चाह में उमड़ी जा रही थी जिसमें सबसे आगे विद्यार्थी युवक आजादी की सुरा पीये हुए पागलों की तरह आजादी के चाव में चले जा रहे थे। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस निरपराध जनता के साथ खून की होली खेलने के लिए शहर के बाहर फाटक पर रोक लिया तथा इस आजादी की चाह वाली जनता पर गोलियों की बौछार कर दी, तथा अनेकों को मृत्यु के घांट उतार दिया तथा अनेक को घायल कर दिया।

वाह री पशुओं से भी बदत्तर, निर्लज्ज, कमीनी, गंदी ब्रिटिश सरकार तेरी करतूतें।

इस काण्ड में शहीद होने वाले निम्न वीर हैं। जिनकी शहादत के खून से इस कमीनी अंग्रेज सरकार ने अपने हाथ रंगे।

[१] श्री राजेन्द्रप्रसाद जी

आप गर्दनी बाग हाई स्कूल के विद्यार्थी थे, धीराचक्र गाँव आपकी जन्म भूमि थी, तथा आप के पूज्य पिताजी का नाम शिवनारायणसिंह था।

[२] श्री तारापद चौधरी जी

यह दश वर्ष की आयु का कोमलाङ्ग नन्हा सा बच्चा था। यह अबोध बालक जिसके कोमल शरीर में एक नन्हीं सी फ़ूल की छड़ी भी दुखदाई हो सकती थी। परन्तु हा कोमलांग भाई! तूने आजादी की उपासना में गोली खाई तथा अपनी छाती को गोलियों की बौछारों में खोल दिया। तथा अपनी तपस्या पूर्ण की। देश को आपकी इस शहादत्त पर गर्व है।

[३] श्री सतीश झा

आपक जन्म बटापुर गांव जिला भागलपुर में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके पूज्य पिता नाम श्री मथुराप्रसाद था, और आप पटना कालिज के विद्यार्थी थे। आपके अन्तिम शब्द जो शहादत्त के समय उदगार बनकर निकले थे वे इस प्रकार थे—

"ब्रिटिश साम्राज्य का अन्त आ गया है तथा स्वतन्त्रता सूर्योदय हो चुका है।"

[४] उमाकान्तसिंह जी

आप एक राजपूत वंश के १५ वर्षीय उन वीर रत्नों में से थे, जिन्होंने आजादी के लिए अपने प्राणों को बलि चढ़ादी। आप देश-विदेश की पिछली राज्यक्रान्तियों के पढ़ने का बहुत शौक रखते थे।

[५] श्री जगतपतिप्रसाद जी

आप बी० एन० कालिज के विद्यार्थी थे देश की आजादी की लड़ाई में आपका कार्य सराहनीय था। पटना के प्रमुख वकील सतयुग शरण के भाई थे।

[६] श्री रामगोविन्द जी

आप मैट्रिक के विद्यार्थी तथा अपने माता पिता की एकमात्र सन्तान थे, और आयु में १६ वर्ष के थे। वाह रे वीर माता के जाये, तेरे ही खून से आज यह भारत माता आजाद है।

[७] श्री रामानन्द जी

आपका जन्म फतहा नामक गांव में हुआ था और आप मैट्रिक के विद्यार्थी थे। स्वातन्त्र्य आन्दोलन में नया प्राण डालना आपकी एक विशेषता थी। आपकी आयु १८ वर्ष की थी। आपकी मृत्यु का अथाह दुःख न सहन करने के कारण आपकी पत्नी ने भी प्राण त्याग दिए।

बङ्गाल की वीरांगनाओं के बलिदान

(ब्र० दयानन्द)

[१] श्रीमती लीलावती नाग एम० ए०

श्रीमती लीलावती नाग एम० ए० पेंशनयाफ्ता डेपुटी मैजिस्ट्रेट राय बहादुर शिरीशचन्द नाग की लड़की है। छात्र जीवन में हरेक परीक्षा को इन्होंने नामवरी से पास किया था। यह अंग्रेजी साहित्य से एम० ए० हैं। ढाका के कमरून्निसा बालिका विद्यालय की स्थापना इन्होंने की थी। दो वर्ष तक यह यहाँ की अवैतनिक प्रधानाध्यापिका रहीं। उस समय इसका नाम दीपाली विद्यालय था। इन्होंने दीपाली-संघ नाम से एक नारी-संस्था की भी स्थापना की, जिस का उद्देश्य नारियों की सब प्रकार की उन्नति करना था। गाँव-गाँव घूम कर इन्होंने लड़कियों के विद्यालय भी खोले।

दीपाली विद्यालय से सम्बन्ध टूट जाने पर इन्होंने लड़कियों का एक हाई स्कूल स्थापित किया, जिस का नाम नारी शिक्षा मन्दिर रखा। इसी युग में इन्होंने "जय श्री" नाम की एक मासिक पत्रिका निकाली। १९३१ ई० के २० दिसम्बर को क्रिमिनल ला अमेंडमेंट ऐक्ट के अनुसार गिरफ्तार हुई, लेकिन इस आर्य वीरांगना ने अपनी गिरफ्तारी का कोई दुःख अनुभव नहीं किया। आर्य वीरांगना जो ठहरी। अन्त में सात साल कड़ी जेल-यातना सहन कर १९३८ ई० में जेल से रिहाई हुई। (छोड़ी गई।)

[२] श्रीमती रेणुका सेन एम० ए०

श्रीमती लीलावती नाग एम० ए० जिस का जिक्र मैं पहले कर चुका हूं। उन्होने जब ढाका में कमरून्निसा बालिका-विद्यालय को खोला तब श्रीमती रेणुका सेन वहीं छात्रा थीं। इन्होंने इसी विद्यालय से बी० ए० परीक्षा पास की। तथा कलकत्ता जाकर वहां से अर्थ-शास्त्र में एम० ए० पास की। १९३० के २७ सितम्बर को यह डलहौजी स्क्वायर बमकांड के सम्बन्ध में पकड़ी गईं। एक महीने तक लाल बाजार (Lock up) में तथा प्रेसीडेन्सी जेल में रहने के बाद यह छूट गईं। इसी कारण ये वीरांगना बेथून कालेज

से निकाली गई थी। १९३१ में २० दिसम्बर को यह भी लीलावती नाग एम० ए० के साथ पकड़ी गईं और सात साल जेल यात्रा के बाद १९३८ को छोड़ी गईं।

[३] श्रीमती लीलावती बी० ए०

जब यह वीर-माता आशुतोष कालेज में बी० ए० पढ़ रही थी। उस समय ग्रेंडले बैंक को धोखा देने के सन्देह में गिरफ्तार की गई किन्तु शीघ्र ही छूट गईं। यह महाराष्ट्र की रहने वाली हैं।

[४] श्रीमती इन्दुमतीसिंह

श्रीमती इन्दुमती सिंह चटगांव के रहने वाले श्रीगोलापलालसिंह की लड़की हैं। १९२९ के १४ दिसम्बर को गिरफ्तारी हुई थी और छः साल जेल काट कर १९३५ को छूट गईं।

[५] श्रीमती अमिता सेन

श्रीमती अमितासेन १९३४ ई० में अगस्त के महीने में बंगाल आर्डिनेन्स में पकड़ी गईं। तथा १९३६ में जेल से निकाल कर श्रीमती नेलीसेन गुप्त के मकान पर नजरबन्द कर दी गईं। इसके पश्चात् इस बीरांगना को हिजली भेज दिया गया। अन्त में चार साल की जेल-यात्रा के बाद १९३८ में छूटीं।

[६] श्रीमती कल्याणी देवी एम० ए०

श्रीमती कल्याणी देवी १९३८ के सत्याग्रह के (आन्दोलन के) सम्बन्ध में ८ महीने तक जेल में रहीं। १९३३ में उनके बालीगंज वाले मकान से एक तमंचा मिला, जिस से वे अपने होस्टल में ही गिरफ्तार कर ली गईं किन्तु प्रमाण न मिलने से छोड़ दी गईं फिर तुरन्त ही बंगाल आर्डिनेन्स में ले ली गईं। प्रेसिडेन्सी, हिजली तथा अन्य जेलों में वर्षों रहने के पश्चात् अभी कुछ दिन पूर्व छूटी हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक महिलाओं ने भारत की स्वतन्त्रता की बलिवेदि पर अपना सर्वस्व न्यौछावर किया है किन्तु उनका इतिवृत्त हमें पूर्ण रूप में नहीं मिल सका है।

आसाम की देवी—

कनकलता का बलिदान

कनकलता देवी का जन्म सन् १९२९ ई० में आसाम प्रान्त में हुआ था। यह वीरांगना सन् १९४२ की अगस्त क्रान्ति में थाने पर झण्डा फहराने के प्रयत्न में शहीद हुई।

आयु केवल तेरह साल की थी किन्तु जलूस का नेतृत्व आप के ही जिम्मे रहा। जलूस में झण्डा हाथ में लेकर आप सब से आगे थीं। जब जलूस गोहपुर थाने पर पहुँचा तो पुलिस के लोगों ने रोका।

कनकलता ने सहज भाव से कहा "हमें तो झण्डा लगाना है।" पुलिस ने बन्दूकें तान कर डराया। किन्तु बालिका आगे और जन-समूह उसके पीछे-पीछे बढ़ा। इतने में एक गोली आई और कनकलता की छाती में लगी। गोली के लगते ही कनकलता देवी खून से लथ-पथ हो कर गिर पड़ी। गिरते हुए उसने कहा, भाइयो आगे बढ़ो। मुकन्द नामक युवक ने झंडा हाथ में लिया। उसके भी गोली लगी और वह भी गिर पड़ा। पुलिस वाले घबरा गये कि यह तो सब बीर हैं। मर जायंगे पर पीछे नहीं हटगे। यह सोच कर भाग गये और झंडा थाने पर फहर जाने दिया।

महारानी जिन्दा का बलिदान

(ब्र० दयानन्द)

भारतीय पराधीनता के रक्त रंजित इतिहास में वीर नारियों की कमी नहीं है। उन्हीं वीर नारियों में से पंजाब के स्वर्गीय महाराज रणजीतसिंह की रानी जिन्दा भी एक वैसी ही वीरांगना थी जो शासन की पूरी योग्यता और क्षमता रखती थी। पर क्रूर अंग्रेज अधिकारियों की स्वेच्छाचारिता के कारण महारानी जिन्दा को जो-जो कष्ट सहन करने पड़े हैं, वह अवर्णनीय हैं।

सन् १८५६ ई० में अंग्रेजों का राज्य विस्तार समग्र भारत में हो गया था। बचा था केवल एक पंजाब और अब इस समृद्धिशाली प्रान्त को हड़पने का षड्यन्त्र अंग्रेज लोग कर रहे थे। एक तरफ रेल और तारों द्वारा एक प्रान्त दूसरे प्रान्त से जोड़े गये। दूसरी ओर ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के द्वारा एक एक देशी राज्य हड़प किया जा रहा था। लार्ड डलहौजी के शासन काल में पंजाब, अयोध्या आदि स्वाधीन राज्यों पर भी अंग्रेजों का झंडा फहराया गया। अंग्रेज अफसरों की चतुराई तथा सिख सेनापतियों के विश्वासघात से स्गोब्राहन की पहली लड़ाई में सिख हार चुके थे। इस लड़ाई के बाद भी सिख राज्यों की स्वाधीनता का नाश नहीं हुआ था। पर महाराज रणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके विश्वासघाती मन्त्री अंग्रेजों से मिल गये। महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु पर खजाने में बारह करोड़ रुपये था। परन्तु सिख सरदारों की फिजूल खर्ची और नीचता के कारण खजाने में केवल आधा करोड़ रुपये रह गया था। वह आधा करोड़ भी लार्ड हार्डिंज ने ले लिये और एक करोड़ के बदले काश्मीर लेना चाहा। किन्तु महाराज रणजीतसिंह के प्रिय पात्र जम्मू के शासनकर्त्ता राजा गुलाबसिंह ने हार्डिज को एक करोड़ रुपये देकर काश्मीर खरीद लिया। इस प्रकार से महाराजा रणजीतसिंह के राज्य का पतन होना प्रारम्भ हो गया।

महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के उपरान्त महारानी जिन्दा के हाथ में बागडोर थी। महारानी जिन्दा यद्यपि अबला थी तथापि शासन कला में निपुण थी। लेकिन महारानी को शक था कि वीर केसरी रणजीतसिंह का राज्य अंग्रेजों के हाथ जाने वाला ही है। क्योंकि उन्हीं का बेटा दिलीपसिंह अंग्रेजों के हाथों में कठपुतली हो रहा था।

अंग्रेजों ने महारानी की तेजस्विता नष्ट करने का निश्चय कर लिया तथा इसी सन्देह के आधार पर अंग्रेजी रेजिमैण्ट ने बिना किसी न्याय और विचार के महारानी को कैद कर लिया। उसी का भाई उसकी कैद का हुक्म लेकर महल में आया। महारानी ने अपमान इस सूचक दंड आज्ञा को शिरोधार्य किया। महाराजा रणजीतसिंह की वीर पत्नी १९ अगस्त को मामूली कैदी की तरह शेखपुर ग्राम में कैद की गई। कैद का कारण बताया कि रानी जिन्दा गवर्नमैंट के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रही थी तथा साथ ही सर हैनरी को मरवाने का प्रयत्न कर रही थी।

सच तो यह है कि अंग्रेजों की गिद्ध-दृष्टि पंजाब पर लग चुकी थी। इस कार्य की सफलता में वह महारानी जिन्दा को बाधा समझते थे। इसलिए उन्होंने रानी के पुत्र दलीपसिंह को तो पहले अपनी ओर कर लिया था तथा महारानी के देश निकाले पर दलीपसिंह की मोहर लगा दी। जब वह आज्ञा-पत्र महारानी के पास शेखपुर लाया तो पहले उन्होंने दलीपसिंह के हस्ताक्षर पहचाने और आज्ञा-पत्र

को आंख, माथे पर लगा कर इस वीर रानी को अपनी प्यारी जन्म-भूमि सदा के लिए त्याग देनी पड़ी। पहले वह शेखपुर से फिरोजपुर लाई गई, तत्पश्चात् एक अंग्रेज आफिसर के पहरे में रखी गई। खूंखार शेर की तरह पंजाब ने अपनी महारानी की दुर्दशा देखी पर उससे कुछ भी न बन पाया। बालक दलीपसिंह अपने बचपन के खेलों में लगा। माता के दुःख निवारण में कुछ न कर सका। अंग्रेजों ने रानी को कारावरुद्ध करने में ऐसे क्रूर चक्रों से काम लिया जिन की ओर ध्यान देने मात्र से ही घृणा होती है।

महारानी जिन्दा के साथ जो अनुचित व्यवहार किया उससे पंजाब की आत्मा अति दुखित हुई। पंजाब का बच्चा-बच्चा अपने को अपमानित समझने लगा। उस समय सिख सेनापति शेरसिंह ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि "स्वर्गीय महाराज रणजीतसिंह की विधवा रानी राजमाता जिन्दा के साथ अंग्रेजों ने कैसी बेईमानी और कृतघ्नता का व्यवहार किया। सन्धि की शर्तों में रानी जिन्दा को कैद करने की कोई बात नहीं। अंग्रेजों ने यह अपमान और अत्याचार किया।" काबुल के अमीर दोस्त मुहम्मद खां को भी अंग्रेजों के द्वारा महारानी जिन्दा को कैद किया जाना बहुत बुरा मालूम हुआ। उन्होंने कहा इस से सिखों में आग भड़क उठेगी।

खैर अंग्रेजों ने किसी की टीका-टिप्पणी की जरा भी परवाह न की। नाबालिग बच्चे दलीपसिंह का ट्रस्टी बनकर अंग्रेजों ने पंजाब पर दखल किया। जब पंजाब में दूसरी बार लड़ाई छिड़ी तो बड़े लार्ड डलहौजी ने बेरकपुर में भाषण करते हुये कहा कि मैं शान्ति चाहता हूं, मैं शान्ति का उपासक हूं। पर भारत के शत्रु यदि संग्राम चाहते हैं तो उन्हें वही मिलेगा और भयानक इदले के साथ मिलेगा।

पंजाब के ब्रिटिश शासन में आते ही महाराज दलीपसिंह भी अपने राज्य से बाहर निकाल दिये। फतहगढ़ में उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया गया। उसके कपड़े जो बीसों लाख रुपये के थे ले लिये और दलीपसिंह तथा उनके रिश्तेदारों के लिए ४—५ लाख तक वार्षिक पैंनशन नियंत कर दी। बाद में यह कम होते-होते ८० हजार कर दी गई। गद्दी से उतारने के समय महाराजा दलीपसिंह की आयु ११ वर्ष की थी। गद्दी से उतारने के बाद वे सर जान लाजिन नामक मास्टर के सुपुर्द किये गये। सन् १८५३ में एक ईसाई पादरी ने दलीपसिंह के केश कटवा कर ईसाई बना लिया तथा जबरदस्ती इंग्लेंड भेज दिया। वे सन् १८५७ में भारत आना चाहते थे, पर सरकार ने उन्हें आने न दिया। परन्तु महाराज दलीपसिंह ने ईसाई धर्म त्याग कर पुनः सिख धर्म ग्रहण कर लिया था।

महारानी जिन्दा का क्या हुआ जिनके लिये प्रभु भक्त खालसा सेना ने संग्राम किया। लाखों का खून बहा। उस का परिणाम क्या हुआ वे अन्त में अन्धी होकर बेटे को हृदय से लगाने के लिए सात समुद्र पार इंग्लेंड में गई और सन् १८६३ ई० में पंजाब की राज्य माता ने एक साधारण स्त्री की तरह अपने प्राणप्रिय पुत्र दलीप की गोद में सिर रख कर असार संसार को त्याग दिया।

पञ्जाब केसरी महाराज रणजीतसिंह के परिवार की ऐसी दुर्दशा! हा दैव! तेरी गति अगम्य है।

श्री योगेशचन्द्र चटर्जी

(स्व० रामप्रसाद बिस्मिल)

योगेशचन्द्र चटर्जी पूर्वी बंगाल के ढाका जिला के रहने वाले हैं। इनके जीवन का प्रायः सभी हिस्सा बंगाल में ही बीता। इस समय इनकी आयु लगभग ३२ साल की है। जिस समय इनकी उम्र सिर्फ १५ वर्ष की थी, तभी से क्रान्तिकारी दल के सदस्य हैं। इन्होंने अपने देश की सेवा और सिद्धान्तों की रक्षा के लिये जो कष्ट सहे, जो त्याग किये वे अनोखे हैं। इन्होंने अपने व्यक्तिगत सुख-शोक आदि का कुछ भी ख्याल न करके अपना तन मन धन सर्वस्व देश के लिये न्यौछावर कर दिया। अपनी छोटी सी अवस्था में ही इन्होंने प्रशंसनीय मर्दानगी और साहस के साथ जो जो यंत्रणायें सहीं, उन्हें सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं और इनके प्रति अनायास ही श्रद्धा उमड़ आती है। १९१६ ई० में पहले पहल ये पुलिस के पंजे में पड़े। उन दिनों बंगाल की अवस्था बड़ी खतरनाक थी। सरकार के छक्के छूट गये थे, आज यहां बम गिरता है तो कल वहाँ पुलिस का पिस्तौल से सामना किया जाता है। ऐसी भयंकर स्थिति थी कि पुलिस को यह विश्वास हो गया था कि योगेश बाबू भी इस प्रकार के कामों में लिप्त हैं। इसलिये उसने इनसे इस सम्बन्ध में कुछ बातें जानने की चेष्टा की। शुरू में मीठी मीठी बातों से फिर लालच देकर और फिर धमकी से काम लिया गया। पर इसने साफ साफ इन्कार कर दिया कि "मैं कुछ नहीं जानता" डर और धमकी का वार फिर हुआ। पर इससे कुछ काम न निकलता देख ब्रिटिश न्याय के नाम पर इनके साथ अनेक अमानुषिक अत्याचार हुए। पुलिस वालों ने इन्हें मारना तथा हर प्रकार से तंग करना शुरू किया। चांटे मारे, घूंसे और लातें मारीं, लिटाकर लकड़ी के एक मोटे डंडे से पीठ पर मार-मार के लहू लुहान कर दिया, खाने को एक दो पूरी तथा नाममात्र को तरकारी देकर कई दिनों तक उपवास करने को मजबूर किया। स्नान करने तक की मनाही कर दी, पुलिस नैतिक शक्ति को पशु शक्ति के सामने विजित करना चाहती थी। परन्तु योगेश बाबू टस से मस न हुए। सब कुछ सहा, पर एक बार भी मुंह से आह न निकली। न किसी ने उनकी आंख से आंसू ही आते देखा, आखिर तक 'मैं कुछ नहीं जानता' वे यही कहते रहे। पुलिस तंग आ गई। मारते मारते थक गई पर उसे कुछ भी शर्म न मालूम हुई। अन्त में उसने इस वीर नौजवान को गिराने के लिये एक अत्यन्त बीभत्स और अमानुषिक तरीका अख्तियार किया। दो आदमियों से श्री योगेशचन्द्र जी के दोनों हाथ पकड़वा कर उनका वीर्य स्खलन करवाया गया और इसके बाद ही इस अवस्था में उनके सिर पर मैले विष्ठा से भरा हुआ एक बड़ा गमला एक मेहतर के द्वारा पलटवा दिया गया। सिर से लेकर पैर तक उनके बदन का सब हिस्सा मैले से भर गया। शायद उनके होठों के बीच में भी कुछ पहुंच गया। बदबू से हवा तक खराब हो गई। पर इसी अवस्था में उन्हें देर तक रखा गया। बदन धोने के लिये पानी का एक बूंद तक नहीं दिया गया। पुलिस इस प्रकार उनको कमजोर और पतित बनाना चाहती थी। परन्तु योगेश उस वक्त सचमुच योगेश हो गये, पत्थर से अटल रहे और उन्होंने चूं तक नहीं किया! लड़ाई अब खतम हो गई। एक तरफ बेशुमार आदमी, अपार सम्पत्ति, उचित और अनुचित सभी उपाय और परम शक्तिमान् सरकार थी और दूसरी तरफ एक बिल्कुल अकेला एक निःसहाय नौजवान था, जिसकी मूछों के अभी रेख भी नहीं आये थे। पर

इस निमूछिये नौजवान ने अपने नैतिक बल के अमोघ अस्त्र द्वारा परम शक्तिशाली शत्रुओं की पाशविक शक्ति को चारों खाने चित्त कर डाला। कुछ अनहोनी बातें भी हो गईं और सताने वालों में कइयों ने आकर माफी भी मांगी।

इसके बाद सरकार ने इन्हें १८१८ ई० के तीसरे रेगुलेशन के मुताविक राज्य-कैदी बना के रक्खा। महायुद्ध की समाप्ति के बाद ये छोड़ दिये गये। इसके बाद भी पुलिस को बराबर यह सन्देह बना रहा कि ये बराबर क्रान्ति के कामों में भाग लेते हैं। पर वे गिरफ्तार नहीं किये जा सके। इन्हीं दिनों असहयोग आन्दोलन चला और इन्होंने अपने को उसमें डाल दिया और गांव गांव में रचनात्मक कार्य के लिये काफी दौड़ धूप की। बाद को असहयोग आन्दोलन की शिथिलता के कारण उस आन्दोलन पर से इनका विश्वास उठ गया। दिल्ली की स्पेशल कांग्रेस के समय ये वहीं थे। पुलिस का ख्याल है कि दिल्ली में उन मौके पर विभिन्न प्रान्तों के क्रान्तिकारी नेता पधारे थे। और उन्होंने एक सभा करके यह तय किया कि क्रान्तिकारी आन्दोलन फिर जोरों के साथ चलाया जाये। योगेश बाबू संयुक्त प्रान्त में क्रान्तिकारी केन्द्रों की स्थापना के लिये, बंगाल की तरफ से नियुक्त किये गये थे। और उन्होंने इस प्रान्त में यह आन्दोलन आरम्भ करवाया। १९२४ ई० में युक्त प्रान्त के प्रायः सभी शहरों में 'राय महाशय' के नाम से इन्होंने भ्रमण किया। इधर के लोगों से अपरिचित होने के कारण इस कार्य में इन्हें अनेक कठिनाइयां भी पड़ीं, पर सबों का सामना करते हुए ये अपने कार्य में लगे रहे। शुरू में इन्होंने बनारस और शाहजहांपुर में काम किया। बनारस में उनको कुछ पुराने क्रान्तिकारियों से मदद मिली और शाहजहांपुर में श्री रामप्रसाद 'विस्मिल' से। श्री रामप्रसाद जी सदा इनकी तारीफ करते थे। कुछ दिनों बाद ये सब भार श्री रामप्रसाद जी पर छोड़ बंगाल चले गये। वहां बंगाल की पुलिस बहुत दिनों से उनकी तलाश में हैरान थी। एकाएक एक दिन हावड़ापुल पर पुलिस के कई उच्च अधिकारियों द्वारा घेर कर गिरफ्तार कर लिये गये। कहते हैं कि उनकी जेब में पाये गये एक पत्र के द्वारा पुलिस को यह पता लगा कि बंगाल से बाहर उत्तर भारत के पचास बड़े बड़े शहरों में क्रान्तिकारी दल काम कर रहा है। सरकार उस कागज के मिलते ही सम्भवतः घबड़ा गई। और इस घटना के कुछ ही दिनों बाद बंगाल में काला कानून जारी हो गया, जिसके अनुसार बंगाल के पचासों निर्दोष व्यक्ति जेलों में ठूंस दिये गये। श्री योगेशचन्द्र चटर्जी भी आर्डिनेन्स के ही अनुसार नजरबन्द कर लिये गये। बिहार के वर्तमान गवर्नर और बंगाल के तात्कालीन होम मेम्बर ने उक्त पत्र का हवाला बँगाल कौंसिल में दिया था।

शुरू में योगेश बाबू बंगाल के ब्रह्मपुर जेल में रखे गये थे। यहाँ के काले कानून के कैदियों पर इनका बड़ा प्रभाव देख सरकार ने इन्हें इनके साथी सन्तोषकुमार के साथ हजारीबाग भेज दिया। परिवर्तन के वक्त इन पर जो जुल्म हुए, उसकी निन्दा के लिये बंगाल कौंसिल में बड़ी आंधी उठी और यहां तक कि कौंसिल की कार्यवाही स्थगित करने तक का प्रस्ताव पास हुआ। हजारीबाग से वे नजरबन्द की हालत में काकोरी षड्यन्त्र के मुकदमे में लाये गये। सरकारी वकील ने इन्हें इस 'षड्यन्त्र का जनक' बतलाया था। पुलिस इनसे बहुत अधिक इसलिए जलती थी कि इतनी दूर से आकर वह यहां के सीधे सादे आदमियों को क्यों राजद्रोही बनाता है? सेशन जज ने इन्हें दस साल की सजा दी थी, परन्तु पुलिस ने अपील की, और चीफकोर्ट से इन्हें आजन्म काले पानी की सजा दिलवा ही के छोड़ा। इन दिनों ये आगरा सेण्ट्रल जेल में रखे गए।

ये बड़े ही गम्भीर प्रकृति के आदमी हैं। बोलते बहुत कम हैं और प्रायः हां या ना कहकर ही

अपनी राय बतला देते हैं। जोर से हंसने के कारण मन्द मन्द मुस्कराहट से ही वे अपना काम चला लेते हैं। शरीर में दुबले पतले, आंखें बड़ी बड़ी और चेहरे से बुद्धिमत्ता टपकती है। कोई दोषी व्यक्ति इनकी आंखों से शायद ही अपना दोष छिपा सकता है। बराबर मुसीबतों का सामना करते रहने के कारण इनके चेहरे पर त्याग की एक छाप सी पड़ गई है। ब्रह्मपुर जेल में आर्डिनेन्स के सभी कैदी इनकी बड़ी इज्जत करते थे। उनका उज्ज्वल व्यक्तित्व और त्याग ही इसका मुख्य कारण था। इनमें संगठन शक्ति बहुत जबरदस्त है और अपने सहकारियों को प्रेम से वश में करना खूब जानते हैं। विपत्ति में कभी नहीं घबड़ाते, सब काम नियमपूर्वक करते और जरा भी समय बर्बाद नहीं होने पाता। युक्त प्रान्त में इनके समय के मिनट मिनट का हिसाब रहता था। युक्त प्रांत के विभिन्न नगरों का इन्होंने कई बार दौरा किया था। कार्य करने की इनकी क्षमता और दक्षता का एक बड़ा सुन्दर उदाहरण 'कुमिल्ला लेकर यूनियन' है। इस कम्पनी में इस समय लोहा आदि का काम होता है। मशीनों के पुर्जे भी काफी तादाद में बनाए जाते हैं। २००) से भी कम पूंजी से इन्हीं की देख-रेख में एक टीन के छप्पर के नीचे इसका काम शुरू हुआ था। आज कल इस कम्पनीके व्यवसायकी पूंजी लगभग डेढ़ लाखसे भी ऊपर तक पहुँच गई है। इस व्यवसाय में जो लाभ होता है उसी में लगा दिया जाता है। सरकारी वकील ने कहा था कि इस कम्पनी का गुप्त उद्देश्य क्रान्ति के समय राइफल और पिस्तौल बनाना है। योगेश बाबू ने कभी इस कम्पनी से एक पैसा भी नहीं लिया। ये आजन्म ब्रह्मचारी हैं और आजीवन विवाह नहीं करना चाहते। विचारों में पूरे साम्यवादी हैं। खाने पीने में किसी से किसी प्रकार का परहेज नहीं रखते। कहते हैं मैंने मेहतर के हाथ का खाना तो कितने ही मर्तबा खाया है। आपके विचार आरम्भ से ही बहुत गर्म हैं। आपने हवालात में १५ रोज और सजा के बाद फतेहगढ़ जेल में ५५ दिनों तक अनशन किया। शरीर से कमजोर होने के कारण ४५ दिनों के अनशन के वक्त मृतप्राय हो गये थे। जेल के कैदी इनकी बड़ी इज्जत करते और इनके लिये हर एक तकलीफ सहने को तैयार रहते। अधिकारियों को यह बहुत खटका फिर उन्होंने फतेहगढ़ से उन्हें आगरा सेन्ट्रल जेल में भेज दिया। बड़े अच्छे तैराक होने के साथ ही नाव चलाना भी ये खूब जानते हैं। जेल में हमेशा कबड्डी आदि खेलों में बराबर भाग लेते थे। गाना गाने में ये बड़े निपुण हैं और जिस वक्त मस्त होकर गाना गाने लगते उस समय सुनने वाले विह्वल हो जाते हैं। १९१६ ई० की गिरफ्तारी के वक्त ये कालेज में पढ़ते थे। इन्होंने अन्तर-राष्ट्रीय प्रगति, आयरलैंड का इतिहास, पूर्वी देशों की जागृति आदि का अच्छा अध्ययन किया है।

श्री गोविन्दचरण कर

(स्व० रामप्रसाद बिस्मिल)

गोविन्दचरण कर बंगाल प्रान्त के सुदूरपूर्व ढाका जिले के रहने वाले हैं। ये पुराने क्रान्तिकारी हैं। सोलह सत्रह वर्ष की उम्र में ही पढ़ना छोड़कर ये क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गये। कुछ दिनों बाद पुलिस की दृष्टि इन पर पड़ी, और सन् १९१० ई० से ही वह इनके पीछे पड़ गई। ये बड़ी सावधानी से काम करते रहे। पर अन्त में १९१६ ई० में पुलिस ने इन्हें गिरफ्तार कर ही लिया। पर ये सहज ही गिरफ्तार न हुए। उन दिनों ये पवना में रहते थे, पुलिस ने अचानक इनके मकान को घेर लिया। इन्हें सीधे गिरफ्तार होना पसन्द न आया। प्रश्न जीवन मरण का था, क्योंकि सामने हथियारबन्द पुलिस खड़ी थी। वह यह खूब समझते थे कि भागने पर गोली से मारे जायेंगे। या पकड़े जाने पर फांसी होगी। परन्तु इस बहादुर ने चिन्ता को मार भगाया, और अपनी जान हथेली पर लेकर मकान के पीछे के रास्ते से निकल भागा। हाथ में भरा तमंचा था और घोड़े पर उङ्गली, मकान के पीछे भी पुलिस सशस्त्र तैनात थी, परन्तु पुलिस के दिमाग में यह बात न आई कि जान पर खेल कर कोई ऐसी हिम्मत भी कर सकेगा कि उनकी राइफलों के मुँह के सामने से भाग निकलेगा। इसलिये उनके निकल भागने के कुछ देर बाद तक वह हतबुद्धि सी रह गई। तब तक श्री कर महाशय धान के खेतों से होते हुए कई सौ गज निकल गये। पर शीघ्र ही पुलिस के कई सिपाहियों ने हाथ में बन्दूक लिए उनका पीछा किया। पुलिस ने गोली चलाना भी आरम्भ किया। कर महाशय भी अपने तमंचे से गोलियों का गोलियों से जवाब देने लगे। वे भागते जाते थे, तमंचा बदलते जाते थे, उसमें गोली भरते जाते थे और साथ ही फायर भी करते जाते थे। उनका भागना, पुलिस वालों का पीछा करना और गोलियों का चलना लगातार बहुत देर तक जारी रहा। पुलिस इस आशा पर कि इनकी गोलियों के खतम होते ही गिरफ्तार कर लेंगे, पीछा करती जा रही थी। अन्त में हुआ भी ऐसा ही। कर बाबू दौड़ते-दौड़ते थक गये। पुलिस की कई गोलियां उन्हीं को लग चुकी थीं। लगातार खून निकलने से बदन में बहुत कमजोरी आ रही थी और दुर्भाग्यवश वे इस समय ऐसी जगह जा पड़े थे जहां खुला मैदान ज्यादा था, फसल वाला खेत कम। इन सब कारणों से इन्हें विश्वास सा हो गया कि अब और ज्यादा देर तक पुलिस से बचना सम्भव न होगा। इसीलिये वे धान के एक घने खेत में घुसकर बैठ गये, और अपनी बची बचायी शारीरिक शक्ति एवं कारतूसों की मदद से अन्त तक लड़ना निश्चित किया। पुलिस ने झाड़ में रहकर खेत को घेर लिया, नजदीक जाने की उसकी हिम्मत न पड़ी; और अन्दाज से ही उनका लक्ष्य करके वह गोली चलाने लगे। कर बाबू भी गोली चलाते रहे। कई पुलिस वाले घायल भी हुए। आखिर उनकी गोलियां खतम हो गईं। पुलिस बहुत देर तक उनके तमञ्चे की आवाज न सुनकर खेत की तरफ बढ़ी और उसने उनको गिरफ्तार कर लिया। उस वक्त वे अर्ध मृत और प्रायः बेहोश अवस्था में पाये गए। चलने की शक्ति नहीं थी, बदन से जगह-जगह से खून की धार बह रही थी। पर गिरफ्तारी के वक्त इनके पास हथियार का कोई नामोनिशान भी न था। पूछने पर कि तमञ्चा कहां है, उन्होंने आश्चर्यचकित होकर कहा—तमञ्चा कैसा ? मुझे तो गोली चलाना भी नहीं आता, मैं तो अभी तक आप ही लोगों की गोलियों की बौछार से आच्छादित

था। पुलिस वाले ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गये, पर तमञ्चा का कुछ भी पता न चला! गिरफ्तारी के बाद श्रीकर बहुत दिनों तक हिरासत के अस्पताल में रक्खे गये। अच्छा हो जाने के बाद उन पर 'पबना शूटिंग केस' चला। इस मुकद्दमे में बंगाल में बड़ी खलबली मच गई थी। पुलिस ने इन पर हत्या करने की कोशिश करने की दफा लगवाना चाहा, पर पास में हथियार के न पाये जाने के कारण मुकद्दमा न जम पाया, तिस पर भी इन्हें दस साल काले पानी की कैद की सजा हुई। काले पानी में आप कई साल रहे। उन दिनों अण्डमन में क्रान्तिकारियों की भरमार थी अधिकारियों के सब अत्याचारों के रहते हुए भी कर महाशय का कहना है कि वहाँ का जीवन बड़ा आदर्श था। वहाँ बड़े-बड़े विद्वान् इकट्ठे थे। सम्पादकों और लेखकों की कोई कमी न थी। देश पूज्य सावरकर, भाई परमानन्द वगैरह उस वक्त वहीं थे। कहने का मतलब यह कि एक रास्ते पर चलने वाले बहुत से सिद्धान्तवादी मुसीबत के कारण सौभाग्यवश एक स्थान पर एकत्रित हो गये थे। समय की कोई कमी नहीं थी। किताबों के पार्सल बराबर पहुंचते रहते थे। वहां एक खासा पुस्तकालय बन गया था। सरकार तो यह समझती थी कि वह अपने शत्रुओं की शक्ति उन्हें वहां बन्द कर कुचल रही है। पर वास्तव में ज्यादातर लोग वहाँ अपना भविष्य निर्माण कर रहे थे। कर महाशय ने वहाँ काफी अध्ययन किया। वे अपने जीवन को सदा याद किया करते, तथा काकोरी केस के हवालात के समय अण्डमन के राजनैतिक कैदियों के जीवन सम्बन्धी अनेक जानने लायक बातें बड़े ही रोचक ढंग से अपने दूसरे साथियों से कहा करते थे। इनकी इन बातों के सुनने से लोग कभी ऊबते न थे।

अभी पूरा चार साल भी न हो पाया था कि अस्वस्थता के कारण १९२० ई० में ये रिहा कर दिये गये। वहां से लौटते ही आपने असहयोग आन्दोलन में भाग लेना शुरू कर दिया। ढाका के गांव-गांव में बहुत प्रचार-कार्य किया। ढाका कांग्रेस कमेटी में इनका काफी प्रभाव था। इस जमाने में भी दिन रात सी० आई० डी० इनके पीछे लगी रहती थी। सन् १९२५ ई० में श्रीशचीन्द्रनाथ सान्याल और श्री योगेशचन्द्र चटर्जी की गिरफ्तार के बाद संयुक्त-प्रदेश के विप्लव-आन्दोलन को ठीक तरह से चलाए रखने के उद्देश्य से इन्हें बंगाल से इधर भेजा गया। संयुक्त प्रान्त के बड़े-बड़े शहरों में घूमकर इन्होंने षड्यन्त्रकारी आन्दोलन का प्रचार भी किया। इस केस में इनकी गिरफ्तारी लखनऊ में हुई। उन दिनों ये वहाँ वेष बदलकर अमीनाबाद के पास एक मामूली होटल में रहा करते थे। यहां रहने का पता केवल एक 'देशभक्त' महाशय को मालूम था, जिन्होंने विश्वासघात करके पुलिस को बतला कर इन्हें गिरफ्तार करवा दिया। यह देशभक्त वही सज्जन हैं जिन्होंने बनारस में श्री कुन्दीलाल को भी गिरफ्तार करवाया था। इनकी गिरफ्तारी के बाद यह भी पता लगा कि उधर बंगाल सरकार 'आर्डिनेन्स' के द्वारा इन्हें अपना मेहमान बनाने के लिए अलग परेशान थी। कर जी को सेशन जज ने दस साल की सजा दी थी। परन्तु पुलिस को इससे क्यों सन्तोष होने लगा। उसने औरों के साथ इनकी सजा बढ़ाने के लिए भी अपील की और अपील से इन्हें आजन्म काले पानी की सजा दी गई। काकोरी केस के हवालातियों में श्री कर सबसे अधिक उम्र वाले होते हुए भी अपने को 'लड़ाका' और 'योद्धा' कहने में गौरवान्वित होते थे। पहली बार की गिरफ्तारी के समय के पुलिस की गोलियों के तीन-चार चिह्न अब भी इनकी देह में बने हुए हैं।

आप कहते हैं कि यही हमारा तमगा है। आप क्रान्ति और स्वाधीनता प्राप्ति के विभिन्न पहलुओं पर सदा विचार करते रहते हैं। और सदा दूसरे स्वतन्त्र देशों के इतिहास से अपने देश की तुलना कर व्यग्र होते हैं। इन्होंने कितनी ही रातें इन्हीं बातों के सोचने में बिताई है। इनका जीवन लड़कपन से ही

त्यागमय और कठोर रहा है। ये अभी तक अविवाहित हैं। इन्होंने पंजाब तथा बम्बई प्रान्त के प्राय: सभी नगरों में भ्रमण किया है। अहमदाबाद के मजदूरों के जीवन का इन्हें अच्छा ज्ञान है। कई प्रकार का उद्योगधन्धा करना भी यह अच्छी प्रकार जानते हैं। मजाकिया तो अव्वल दर्जे के हैं। हवालात में इन लोगों का जो जमाव होता, ये उसमें बहुत प्रमुख भाग लेते थे। हवालात के समय लखनऊ में १५ दिनों तक और सजा देने के बाद फतेहगढ़ जेल में ४५ दिनों तक इन्होंने अनशन किया था। पहले कुछ दिनों तक ये ढाका हिन्दूसभा के मन्त्री भी रह चुके हैं।

श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य

(श्री स्व० रामप्रसाद बिस्मिल)

श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य का जन्म बनारस में पहली अगस्त १८९७ ई०को हुआ था। इनके पिता का नाम पं० ईश्वरचन्द्र जी शिरोरत्न था। १६ वर्ष की आयु में इन्होंने बंगाली टोला हाईस्कूल से मैट्रिक परीक्षा पास की और उसके बाद बनारस के सैण्ट्रल हिन्दू कालेज में पढ़ने लगे। इन्हीं दिनों पुलिस वालो की निगाह इन पर पड़ी और १९१४ ई० में पकड़ कर ये उरई (जालौन) में चार वर्ष तक नजर बन्द कर दिये गये।

इस प्रकार इनकी कालेज की पढाई बन्द हो गई। नजर बन्दी से रिहा होने के बाद ये ऊरई से ही निकलने वाले 'उत्साह' नामक हिन्दी साप्ताहिक पत्र का दो वर्ष तक सम्पादन करते रहे फिर कानपुर के 'वर्तमान' तथा 'प्रताप' के सहकारी सम्पादक रहे। आप जिन दिनों 'प्रताप' में काम कर रहे थे, उन्हीं दिनों काकोरी केस के सम्बन्ध में गिरफ्तार हुए। सेशन जज ने इन्हें सात साल की सख्त कैद की सजा दी थी, पर अपील से यह सजा बढ़ा कर दस वर्ष कर दी गई।

श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य बजपन से ही बड़े तेज बहादुर और साहसी रहे हैं। इनका स्वभाव मिलनसार व्यवहार मधुर तथा आचरण सादा और पवित्र है। यह इनकी सच्चरित्रता और पवित्रता का ही फल है कि इस अवस्था में भी इनका चेहरा दमकता रहता है और इन्हें देख कर एक बार दूसरों के हृदय में भी आनन्द उल्लसित हो उठता है। सदा प्रसन्न रहना और मजाक करना इनका खास गुण है। कोई भी व्यक्ति एक बार इन से मिलकर इन्हें कभी भूल नहीं सकता। गाने में ये बड़े निपुण हैं। और जिस समय मस्त होकर गाने लगते हैं उस समय सुनने वाले गद्गद् हो उठते हैं। यह बड़े उदार प्रकृति के मनुष्य हैं।

श्री भूपेन्द्र सान्याल

(स्व० रामप्रसाद बिस्मिल)

श्री भूपेन्द्र सान्याल श्री शचीद्रनाथ सान्याल के सब से छोटे भाई हैं। इनका जन्म पहली जनवरी सन् १६०६ ई० में कलकत्ते में हुआ। जन्म के इसी ही वर्ष इनके पिता का देहान्त हो गया। इसके बाद इनका बाल्यकाल अपनी माता के साथ बनारस में बीता। बनारस षड्यन्त्र के मुकद्दमे के समय इनकी अवस्था नौ दस साल की थी। खुफिया पुलिस वाले अकसर इन्हें मिठाईयां देकर श्री शचीद्रनाथ सान्याल के विषय में पूछ ताछ करते थे। परन्तु भूपेन्द्र उन्हें कभी कुछ भी उत्तर न देते और सदैव उन्हें निराश होना पड़ता था।

बनारस षड़यन्त्र में इनके तीनों भाइयों को सजा हुई थी। श्री शचीन्द्रनाथ की आजन्म काले पानी श्री यतीन्द्रनाथ को दो वर्ष की सख्त कैद और श्री रवीन्द्रनाथ (जो आजकल सेण्ट एण्ड्रुज कालेज गोरख पुर में प्रोफेसर हैं) नजरबन्द कर दिये गये थे।

श्री भूपेन्द्रनाथ पर अपनी माता का बहुत असर पड़ा और सदा इनका जीवन उत्साहमय रहता आया। गोरखपुर से स्कूल लीविंग परीक्षा पास कर के ये इलाहाबाद चले आये। और यहां पर इविंग क्रिश्चियन कालेज से आई० एस० सी० पास कर जब यूनिवर्सिटी कालेज में बी० एस० सी० में (चतुर्थ वर्ष) पढ़ रहे थे, काकोरी षड्यन्त्र के मुकद्दमे में गिरफ्तार कर लिये गये और इन्हें प्रत्येक धारा के अनुसार पांच-पांच वर्ष की कड़ी कैद की सजा दी गई। यूनिवर्सिटी के वाद विवाद में ये खूब भाग लेते थे। शरीर से अधिक हट्टे कट्टे होते हुए बड़े परिश्रमी उद्यमशील और फुर्तीले व्यक्ति हैं। फुटबाल तथा हाकी के अच्छे खिलाड़ी हैं। इनके चेहरे से गम्भीरता, उत्साह, साहस प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं। मातृ-भूमि के उद्धार के लिये इनके हृदय में उत्साह है।

श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी

श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी का जन्म २५ दिसम्बर १६०४ ई० में बनारस में हुआ था। इनके पिता फरीदपुर (बंगाल) के कृष्णपुर नामक गाँव के प्रतिष्ठित बख्शी खानदान के वंशज हैं। श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी बड़े योग्य क्रान्तिकारी संगठनकर्ता हैं। श्री मन्मथनाथ गुप्त और श्री बख्शी श्री योगेशचन्द्र चटर्जी के दो भुजा थे और बनारस का सुदृढ़ संगठन इन्हीं लोगों के बल पर हुआ था। श्री राजेन्द्र लाहरी तो इनके संरक्षक और उत्साहदाता थे। श्री बख्शी के पिता काशी निवासी प्रवासी बंगाली हैं। युवावस्था में कुछ दिनों तक ये जंगल विभाग में मुलाजिम थे। इस कारण श्री बख्शी को बचपन में जंगलों में रहना पड़ा जिसके फलस्वरूप वे बड़े साहसी और निर्भीक हो गये, श्री बख्शी ने १६२१ ई० मे बनारस के ऐंग्लो बंगाली हाईस्कूल से मैट्रिक परीक्षा पास की। इसके बाद वे जिन दिनों बनारस क्वींस कालेज से एफ० ए० में पढ रहे थें, तभी पुलिस वालों की दृष्टि इन पर पड़ी जिसके कारण एफ० ए० की परीक्षा देने के पहले ही इन्हों ने पढ़ना छोड़ दिया। इसके बाद व्यायामशालाओं के संस्थापक की हैसियत से इन्होंने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। शुरू में इन्होंने 'सेण्ट्रल हेल्थ इम्प्रूविंग' नामक व्यायाम समिति स्थापित की। इनके रहते-रहते उसमें नवयुवक सदस्यों की संख्या ७०--८० तक पहुँच गई। और समिति सार्वजनिक

जीवन का एक मुख्य केन्द्र समझा जाने लगा। पर बाद को इस में जी हुज़ूरों का प्रवेश हो गया जिसके कारण श्री बख्शी ने इस से अलग होकर 'सेन्ट्रल हेल्थ यूनियन' नाम की व्यायाम समिति स्थापित की। यह संस्था इस समय काशी के सार्वजनिक जीवन में एक प्रमुख स्थान रखती है। श्री बख्शी ने इस समिति के द्वारा तैराकी प्रतिद्वन्दिता का कार्य भी आरम्भ किया था। और आज तक प्रतिवर्ष इसी समिति द्वारा ही चुनार से बनारस तक की १३ मील की तैराकी प्रतिद्वन्द्विता हुआ करती है। अब तक इस समिति के चार सदस्य राजनैतिक कैदी हो चुके हैं। काकोरी केस वालों में श्री बख्शी के अतिरिक्त श्री मन्मथ और श्री राजेन्द्र भी इसके सदस्य थे। चौथे सदस्य श्री केशव चक्रवर्ती थे, जिन्हें गवर्नमेंट ने बंगाल के कालेज कानून (आर्डिनेन्स) के अनुसार गिरफ्तार कर रखा था। ये भी काकोरी षड्यन्त्र में फांसे जाने वाले थे, परन्तु इधर प्रमाण न मिला और काले कानून के शिकार बना दिये गये। श्री केशव चक्रवर्ती बड़े ही दक्ष तैराक हैं। बनारस की १३ मील की तैराकी प्रतिद्वन्द्विता में लगातार तीन बार प्रथम आ कर सैकड़ों रुपये के तमगे आदि प्राप्त कर चुके हैं।

दिल्ली की स्पेशल कांग्रेस के कुछ दिन पहिले ही बख्शी से श्री योगेश चटर्जी की भट हुई और वे क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गये। वे तो मानो इसकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। कुछ दिनों तक बनारस में काम करने के बाद ये झाँसी गये। वहां न तो कोई इनका परिचित था और न पास में इतना रुपया ही था कि सुविधा से अपना कार्य-सञ्चालन कर सकें। परन्तु ऐसे साहसी वीरों को विपत्तियों की कुछ परवाह नहीं होती है। वे वहां डट गये और काम करने लगे। इन्हें यहां एक और बड़ी बाधा थी। झांसी में एक ऐसे महाशय हैं, जो क्रान्तिकारी न होते हुये भी अपने को क्रान्तिकारी बतलाते हैं और इस प्रकार रुपये आदि ठग कर अपना उल्लू सीधा किया करते हैं। पहिले तो लाला मुकन्दीलाल जैसे पुराने क्रान्तिकारी भी इनके चक्कर में आ गये थे। पर श्री बख्शी उनके जाल में फंसने वाले जीवन न थे। बख्शी जी का झांसी में रहना उनके लिये खतरनाक था, क्योंकि किसी भी वक्त उनकी पोल खुल जाने की आशंका थी। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि बख्शी जी को यहां से भागना चाहिये। इसके लिये वे कई चाल चले, पर श्री बख्शी के सामने उनकी एक न चली। एक दफे उन्होंने यह भी उड़ा दिया कि बख्शी पुलिस के आदमी हैं। पर श्री बख्शी इससे भी न दबे। इन बाधा विपत्तियों के होते हुए भी श्री बख्शी ने वहाँ बड़ी इज्जत प्राप्त की। वे बहुत दिनों तक वहां एक अंग्रेजी पत्र के सम्पादक भी रहे। इस पत्र में उन्होंने श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल की गिरफ्तारी पर एक जोरदार लेख लिखा था, इस पर इन से और प्रकाशक से विरोध हुआ और इन्होंने सिद्धान्त के निमित्त यह त्याग कर दिया। गिरफ्तारी के वक्त वे स्थानीय म्यूनिसिपैलिटी के चुनाव में खड़े होने वाले थे।

श्रीयुत बख्शी के ख्यालात इतने गरम हैं कि क्रान्तिकारियों में भी उन्हें गरमपन्थी कहना चाहिए। एक बार उन्हों ने कुछ क्रान्तिकारियों से कहा था "तुम लोग चाहे जो कुछ समझो, मैं तो क्रान्तिकारी काम के बिना जी नहीं सकता। मैं यदि कभी देखूंगा कि सभी लोग खिसक गये हैं। कोई भी सहायक नहीं' तब मैं अकेला ही अन्याय से लडूंगा। एक ऊँचे मकान में एक बन्दूक तथा कुछ कारतूस लेकर बैठ जाऊंगा और कुछ न हो सका तो चिल्लाकर ही ऐलान कर दूंगा कि मैं बागी हूं, मेरे साथ जिसे लड़ना हो लड़े। बख्शी जी राजनीतिक क्रान्तिकारी होने के अतिरिक्त सामाजिक क्रान्तिकारी भी हैं। उनका कहना है "केवल राजनीतिक क्रान्ति से या देश में साम्यवाद का प्रचार होने से हमारा केवल एक आना काम हो चुकेगा। बाकी पन्द्रह आने सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक क्रान्ति से होंगे। उनकी समझ से समाज की

अट्टालिका इस समय कुसंस्कारों तथा अनावश्यक प्राचीन प्रथाओं के भित्ती पर खड़ी है, उसको खोद कर विज्ञान तथा बुद्धि की नींव पर उसे स्थापित करना पड़ेगा। तभी देश का पूरा और वास्तविक कल्याण होगा। इन सामाजिक कुसंस्कारों को चुनौती देने के उद्देश्य से उन्होंने कई बार गोमांस भी खाया। उनका कहना है कि यह कुसंस्कार हैं कि गाय को माता कहा जाय, और जानवरों के पीछे मुसलमानों की अर्थात् आदमियों की हत्या की जाये। हाँ आर्थिक बुनियाद पर गोरक्षा अवश्य बहुत आवश्यक है। श्री बख्शी अपने वासस्थान काशी में पुरोहितो, पुजारियों तथा साधुओं की अपार ढोंग लीला लड़कपन से देखते आये थे। वे जानते हैं कि इनके बड़प्पन की कोई वास्तविक नींव नहीं है। इनका मान मिथ्या कुसंस्कार तथा अनावश्यक लोकाचार पर अवलम्बित है। इस कारण उनको इस श्रेणी से विशेष चिढ़ थी और इस पोप लीला को अन्त करने का काम नवयुवकों पर निर्भर बतलाते थे।

एक बार काशी के पुरोहितों और ब्राह्मणों ने निश्चय किया कि काशी के ब्राह्मणों की एक सभा कर महात्मा गांधी के अछूतोद्धार बिषयक कार्यों की तीव्र निन्दा की जाये, और स्पष्ट शब्दों में यह कह दिया कि किसी सामाजिक या धार्मिक विषय पर महात्मा जी का बोलना उनकी अनधिकार चेष्टा है। काशी के षड्यन्त्रकारी दल में यह समाचार पहुंचा। श्रीयुत बख्शी ने कहा—"अव्वल तो हम लोगों को ऐसी सभा होने नहीं देनी चाहिए और यदि हो भी जाय तो किसी भी हालत में उपरोक्त प्रस्ताव पास न होना चाहिए"। उनके इस निश्चयानुसार श्री राजेन्द्र लहरी, श्री बख्शी और श्री मन्मथ गुप्त दल बल के सहित सभा स्थल पर समय से पूर्व ही पहुंचे। अभी बिचारे पंडित लोग आ भी न पाय थे कि इन लोगों ने अपनी तरफ से एक सज्जन को सभापति बनाकर वक्तृतायें शुरू कर दीं, और महात्मा गांधी की जय, तथा वन्दे मातरम ध्वनि से सभास्थल को गुंजा दिया। पंडितों ने आकर जब यह हालत देखी तो बहुत शोर गुल किया, पर जनता उनके विरुद्ध थी, विचारे करते तो क्या करते ? बख्शी जी के प्रस्ताव पर सभी ने निर्णय किया कि महात्मा गांधी बहुत उचित काम कर रहे हैं, उसके लिये वे दीर्घजीवी हों। दूसरे प्रस्ताव में यह निर्णय किया गया कि पण्डितों को लघुकौमुदी में लगा रहना चाहिये, महात्मा गांधी के कार्यों की समालोचना करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। उस दिन से श्रीयुत बख्शी काशी के धर्म व्यवसायियों के लिये एक भयानक शत्रु से हो गये थे। स्त्रियों और किसान तथा मजदूरों की उन्नति के सुधार और शिक्षा के सम्बन्ध में भी उनके विचार बड़े ही उन्नत हैं।

बख्शी जी बड़े ही सच्चरित्र तथा सीधे व्यक्ति हैं। उनको किसी बात का गर्व नहीं, पर आत्माभिमान उनमें कूट-कूट कर भरा है। वे हरेक क्रान्तिकारी को अपने भाई से भी बढ़कर प्रेम करते हैं। उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र है। एक बार वे लखनऊ की एक धर्मशाला में बन्दूकों की एक पेटी लेकर ठहरे थे। किसी कारण वहां के अध्यक्ष को उन पर सन्देह हुआ तथा उसने उनकी तलाशी लेनी चाही। बख्शी जी तलाशी के पूर्व ही उसे अलग ले गये और सब खोल कर कहा कि वे क्रान्तिकारी हैं और इन बन्दूकों का इस्तेमाल देश के निमित्त क्रान्तिकारी कामों में होता है। इस पर वह व्यक्ति इतना प्रभावित हुआ कि बिलकुल शान्त हो गया। और कहने लगा 'बाबू जी आपके लिये मेरी जान हाजिर है।" खैर थोड़ी देर बाद वे वहाँ से खिसक गये। यदि उन्होंने इस प्रकार हाजिर बुद्धिमत्ता न दिखाई होती तो उन्हें अवश्य 'लालघर' जाना पड़ता। इस प्रकार ये कितने ही मर्तबा बचे। क्रान्तिकारी बख्शी काम की धुन में खाना भी भूल जाते हैं। वे समयाभाव के कारण दाढ़ी भी न बना पाते और न अखबार ही ठीक से

पढ़ पाते। उन्होंने साम्यवादी साहित्य बहुत कम पढ़ा है। पर वे हमेशा वही बात करते और कहते हैं साम्यवादी की दृष्टि सबसे उचित होती है। ये बड़े अच्छे तैराक तथा साइकिलिस्ट भी हैं। उन्होंने एक बार क्रान्तिकारीदल की एक आवश्यकता के कारण लगातार झांसी से कानपुर तक बिना कहीं रुके साइकिल से सफर किया था। मुंह से खून आने लगा था, पर तो भी वे कहीं न रुके।

काश्मीर की बलि-वेदि का अमर शहीद—

डा० श्यामप्रसाद मुखर्जी

(ब्र० महादेव)

आपका जन्म २७ जुलाई १६०१ में कलकत्ते के भवानीपुर में हुवा था। आपके पिता जी श्री सर आशुतोष मुखर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति थे। आप एम० ए० और बी० एल० करके विलायत चले गये। वहां १६२८ में बैरिस्ट्री पास की, और १६३४ में कलकत्ता विश्व विद्यालय के ३३ वर्ष की आयु में उपकुलपति चुने गये। १६३७ में आपने इस पद से अवकाश ग्रहण किया। उसी समय आपको डाक्टर आफ ला की उपाधि से विभूषित किया।

१६३६ में आप सक्रिय राजनीति क्षेत्र में प्रवेश कर शीघ्र ही बंगाल परिषद् के सदस्य हो गये। १६४१ में उस समय बङ्ग के प्रधान मन्त्री व जिन्ना की आपस में टक्कर होने के कारण फजलुलहक ने आप से मिल कर हिन्दू-मुसलिम संयुक्त मन्त्रिमंडल बनाया। परन्तु अंग्रेज सरकार के अन्याय को न सहकर मन्त्रिपद से त्याग पत्र दिया। कुछ वर्ष बाद मुसलिम लीग पाकिस्तान बनाने में तुली हुई थी। हिन्दुओं पर अत्याचार की चरम सीमा थी। इस प्रकार यवन राज्य में हिन्दुओं के साथ हो रहे अत्याचार व अन्याय को देखकर आपका हृदय कहरा उठा। पाकिस्तान बनने पर आपने अपने अथक परिश्रम से व निरन्तर संघर्ष से आधा बंगाल बचा लिया।

१६४७ के अगस्त में भारत स्वतन्त्र हुआ। स्वतन्त्र मन्त्रिमंडल में आपको भी लिया गया। परन्तु कांग्रेस की घातक नीति को देखकर मन्त्री मंडल से त्याग पत्र दे दिया। १६५१ में आपने जनसंघ की स्थापना की। आज जो बढ़ चढ़ कर उन्नति शिखर की ओर बढ़ रहा है। राजनीतिज्ञ के रूप में अपनी अग्नि परीक्षा १६५२-५३ में दी। उस समय काश्मीर भारत से पृथक् हो रहा था। आपने अत्यन्त निर्भीकता और साहस से शेख अब्दुल्ला के विरुद्ध आवाज बुलन्द की। ध्यान रहे यह नीच उस समय सबसे बड़ा राष्ट्रवादी और धर्म निरपेक्षवादी माना जाता था। आपने भारत की जनता व सरकार को अब्दुल्ला के षड्यन्त्र के विरुद्ध चेतावनी दी। परन्तु इस पर अधिक ध्यान न दिया तो आप स्वयं स्थिति को बचाने के लिए काश्मीर चले गये। वहां आपको पकड़ कर जेल में ठूंस दिया गया। शेख अब्दुल्ला की कूटनीति से आपका प्राणान्त हुवा। आपने काश्मीर की वेदि पर प्राण देकर सरकार व जनता को सावधान कर दिया। आज राष्ट्र को आपका अभाव खटक रहा है। आपके जाने से राष्ट्र की क्षति अभी तक पूरी नहीं हुई है।

आपका बलिदान आज भी पुकार पुकार कर कह रहा है कि काश्मीर भारत का अविभाज्य अंग है। शेख अब्दुल्ला ने अपने कुटिल षड्यन्त्रों से आपको हम से छीना। आज उसी शेख से काश्मीर भी छीना गया। जो-जो अत्याचार शेख अब्दुल्ला ने आप पर किए उन्हीं अत्याचारों के अभिशाप से वह स्वयं भी न बच सका। आज उसकी क्या दशा है यह सर्वविदित है।

बलिदान

(श्री भीष्म प्रताप शास्त्री)

बलिदान राष्ट्र के लिए क्या चीज है? जिन्होंने बलिदान को अपनाया उन्हें क्या परिणाम मिला? बलिदान के कारण किस देश में क्या हुवा? बलिदान शब्द में महान् शक्ति है। मानव मात्र स्वतन्त्र और स्वयं द्रष्टा है। इसलिये स्वतन्त्रता मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। इसी स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये उसने बलिदान को अपनाया। यद्यपि इसकी व्याख्या करना हंसी खेल नहीं फिर भी एक नवयुवक की हैसियत से चूंकि भारत की उन्नति अवनति के लिए प्रत्येक युवक बहुत अंश में उत्तरदायी है। अतः इसी निमित्त दो लड़खड़ाते हृदय से उद्भूत शब्दों को व्यक्त करने के लिए लेखनी न रुक सकी और चलती हुई ने अधीरतावश लिख ही दिया। क्या आप भूल गये रोमन साम्राज्य के निर्माण को? वर्तमान चीन का सिंहावलोकन करिये और सुनिये। रूसी नेताओं के मुख से रसियन राष्ट्र की करुण कहानी--रामू की कथा अभी जीति जागती है, प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं क्योंकि यह सब कवियों, लेखकों, इतिहास कारों, समाचार पत्रों तथा वक्ताओं की विभूति बन चुका है। क्या याद नहीं रहा शहीदों का लहू, जो कारागार की कोठरी में, निर्वासन में फांसी के तख्ते पर और लिपा हुवा है अवलाओं के सीने पर। आज की स्वतन्त्रता का अंकुर है तो यही है। पंजाब केसरी के शब्दों को निहारिये—"दुख के लिए आवाज उठा कर अन्त तक सामना करना चाहिये।" विज्ञ पाठक! क्या सभी राष्ट्रों का निर्माण खून के नाले बहाने से लोमहर्षण अभिनय करने से हुवा है। क्या तपोधनी भारत योगीन्द्र, त्यागभूमि, वीरभूमि भारत स्वतन्त्र भारत—शिरोमणि भारत संसार को प्रेम, शान्ति और निराकार का सन्देश देने वाला भारत, शिवा, प्रताप का भारत, तुलसी सूर का सखा भारत, अर्जुन भीम का भक्त भारत, महात्मा गाँधी तिलक का उज्ज्वल भारत, भगतसिंह चन्द्रशेखर का अनुपम भारत, सुभाष व झांसी का ओजस्वी भारत, स्वतंत्रता की आग को कोने कोने में प्रज्ज्वलित कर क्रान्ति का भीषण सन्देश देश की रग रग में पहुंचाने वाले दयानन्द का भारत, विवेकानन्द-रामतीर्थ का भारत, क्या कुछ नहीं कर सका? सब कुछ किया, लुटा दी अनमोल जानें। फिर भी रक्त का प्यासा हिंस्र वनराज नहीं, भारत अहिंसा का विराट् भारत है, भारत उद्दण्ड और अमानुषिक भारत नहीं, वह शान्ति तथा त्याग से, बलिदान की अग्नि को प्रज्ज्वलित कर अपने अभीष्ट की पूर्ति करने की वृद्धाकांक्षा वाला आदर्श भारत है। जिसका बच्चा-बच्चा त्याग और बलिदान के महत्व को समझता है।

राष्ट्र का निर्माण हँसी खेल नहीं, लोहे के चने चबाना है और विल को डाटना है। प्यार भरे, स्नेह-मय गिरते हुए माता-बहन-पत्नी के अजस्र आसुओं में। सच मानिये आजादी देवी का रिझाना सरल नहीं, असिधारा व्रत तुल्य है। वह भक्तों की कठोर तपस्या चाहती है और परीक्षा भी बार बार लेती है। ऐसी देवी को प्रसन्न करने के हेतु किसको क्या नहीं देना पड़ता? और किसने क्या कुछ नहीं दिया? सब कुछ दिया। कहना न होगा, कोई राष्ट्र नहीं जिसने अपने पुत्र-पुत्रियों को तलवार के घाट न उतारा

हो, जिस पर उसके जिगर के टुकड़े का शोणित न बहा हो। बलिदान के बिना विराट् व्योम में स्वतन्त्र आह्वान रण-रंग की रौद्रमयी चिल्लाहटों से न गुंजाया हो। बलिदान, राष्ट्र की महा विभूति है। यह व्रत रोते रोते नहीं: फीके, उतरे, पीले, झुके चेहरों से नहीं, आन्तरिक आवेदन और सच्ची लग्न और तड़फ से हो सकता है। जिसके लिए तप हो, सहनशीलता हो और हो जरूरत दीवानेपन की, देशभक्ति की मस्ती की और भभकती हुई प्रेम की ज्वाला की। सच मानिये ! जो इस व्रत को धारण करता है, संसार का लावण्य, संसार का नाता, संसार का कहा जाने वाला कृत्रिम सौम्य जीवन इस कठिन कठोर बलिदान के लिए ठोकर से ठुकराना होगा, महात्मा बुद्ध की तरह। और बनना पड़ता है भीष्म से भयंकर, दधीचि से दृढ़। जिसने इस व्रत को धारा, धरा उसके समक्ष झुकी। संसार ने उसके चरण रज को माथे लगाया, अमर हुवा और तरसती है सफलता उसके पैर चुम्बन को। उसने मानव जीवन के सार को अपनाया और सब कुछ प्राप्त कर लिया।

पाठक ! सच्चा वीर वही है जो मायावी संसार में रहकर पूर्णतः लेता है, उसका असीम सन्ताप अमर आशा, अटूट आदर्श, त्याग, रोम-रोम में देशभक्ति का उन्माद, कर मरने की पिपासा, शोषण की चक्की में पीसे जाने वालों को बचाने की महत्त्वाकांक्षा, अन्याय को मिटाने वाला ही बलिदान के खप्पर को अपने उष्ण शोणित से परिपूर्ण कर सकता है। भगतसिंह, बिस्मिल, सुभाष इसी कोटि के थे। लीजिए ऐसे ही नर वीर की जीवनी पर विचार करें। जिसने दिल्ली के बाजार चाँदनी चौक में, जहां अपार जन समुदाय उमड़ रहा था। किसी के नेत्रों से खून बह रहा था, कोई गद्-गद् हुवा फिरता था, कोई भूखा था कोई प्यासा था। कोई अपने दिल को जलाये बैठा था और कोई बैठा था सुनहरी मौके की घात में। यह सब क्यों ? और किस लिये ? क्योंकि आज लार्ड की सवारी निकलने वाली थी इसीलिये तमाम साम्राज्य की ताकत दिल्ली में जमा हो गई। क्या गली और कूचा ? और क्या सड़क और मकान ? एक इंच इंच जमीन पर सख्त पहरा था। यह सब क्यों ? केवल लार्ड की रक्षा के लिए व शक्ति प्रदर्शन। दोनों ही बातें आज प्रमाणित हो रही थीं। शक्ति प्रदर्शन इसलिये कि देखो भारतीयो ! चाहे तुम मन से मानो या न मानो, परन्तु हम तुम्हारे शासक हैं। शक्ति का अभिप्राय वहां होने वाली फौज और पुलिस से है। अचानक एक शोर हुवा, गाने बजाने का शब्द सुनाई दिया। सवारी का समय था। सवारी निकल रही थी, लार्ड के आगे पीछे बड़ी संख्या में फौज। जय घोषों से आकाश गूंज उठा। आज दिल्ली दुलहन बनी हुई थी। उसके शृंगार में अंगुली उठाने को कमी न थी। अपार जन समुदाय। धीमी-धीमी चाल से धक्के खा रहे थे दर्शक। अहा ! कैसा हृदय विदारक दृश्य था, मार्मिक था, कोई कुछ कह न सकता था। मानो भगवान् ने सबको मूक बना दिया हो। बेचारे अपाहिजों की भाँति घर के मालिक ढकेले और विदेशी शान अकड़ के साथ जा रहे थे। हम एक टक देख रहे थे, यही तो हमारी गुलामी का चित्र था। परन्तु नहीं उस जन समूह में भी एक मस्ताना, स्वाभिमानी, देशभक्त था, जिसने बताया कि शरीर पर अधिकार एक और बात है और हृदय पर और। आज तक तुम बनिये के वेश में थे, अब शासक के रूप में आये हो। इसलिये सावधान ! ज्यों ही लार्ड की सवारी दिखाई दी तथा चलती-चलती कोतवाली के सामने पहुंची एकाएक जोर का धमाका हुआ। शब्द होते ही क्या है ? क्या है ? आवाज गूँज उठी, सवारी रुक गई। लार्ड बाल-बाल बचे और झनझनाईं पुलिस और फौज की संगीनें।

यह दृश्य बड़ा करुणाजनक था। दुध मुँहे बालक, स्त्री पुरुष एक बूँद पानी को तरसते थे। इस लिये यहीं शायद इन्हीं में खूनी छिपा हो। आखिर मास्टर साहब को सी० आई० डी० ने गिरफ्तार किया

और बांध दिया जंजीरों से। मास्टर साहब निरपराध हैं, यह कह रहा था शहर हृदय से, मुँह से नहीं, क्योंकि राज्य था आतंक अंग्रेज का। मास्टर साहब को फांसी से आलिंगन का बुलावा हुवा, खुशी में चले। चेहरे पर आभा थी कान्ति थी और मुस्कराते हुए कह रहे थे। फांसी जीवन का अन्त नहीं। वह जीवन ज्योति को जगाने वाली दवा है। हमने इससे प्यार किया और प्यार किया दूसरे पराधीन मुल्कों ने। यह स्वतन्त्रता मन्दिर की सीढ़ी है जिसकी पहली पौड़ी पर लिखा है—"बलिदान"! मास्टर जी फाँसी पर झूमने लगे। उस दिन मनुष्य पशु पक्षी सब आंसू बहा रहे थे। उन हुतात्माओं के लिए जो संसार में आते हैं और दूसरों को मार्ग दिखा जाते हैं। उन्हीं का यह वृतान्त है जो कि रास बिहारी के साथी "मास्टर अमीरचन्द" थे। आओ इनके बलिदान से शिक्षा ले, देश जाति के लिए मर मिटने की।

——:०:——

श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती

(सुदर्शनदेव शास्त्री)

सोते संसार को जगाने वाले महर्षि दयानन्द के गुरु विरजानन्द जी का नाम इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में उल्लेखनीय है। आपने ही संसार को अज्ञानगर्त में पड़ने से बचाया और अस्त हुए वेद-सूर्य को फिर से संसार में चमकाया। जब तक सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशमान है तब तक मानव-आकाशमण्डल में विरजानन्द सूर्य भी चमकता रहेगा।

बाल्यकाल

आपका जन्म १८३५ वि० तदनुसार १७७८ ई० में जालन्धर जिले के कर्त्तारपुर उपनगर के निकट गंगापुर ग्राम में, शारदशाखीय, भारद्वाज गोत्रीय सारस्वत ब्राह्मण श्री पं० नारायणदत्त जी के घर में हुआ था। गङ्गापुर ग्राम बोई नदी की बाढ़ से बह गया, इसलिए श्री नारायणदत्त जी के कुल के सम्बन्ध में अधिक वृत्तान्त ज्ञात नहीं। स्वामी विरजानन्द जी का एक बड़ा भाई भी था। स्वामी जी का बाल्यकाल का नाम अज्ञात है।

पांच वर्ष की अवस्था में शीतला नामक रोग से स्वामी जी की आंख जाती रही। बाल्यावस्था में नेत्रहीन हो जाने से कहा जाता है कि इनको रंग रूप का कोई ज्ञान न था। कुछ ऐसा देखने में आता है कि भगवान् जिसे किसी इन्द्रिय से विहीन करता है उसे कोई न कोई उस कमी की पूर्ति के लिए विशेष शक्ति प्रदान करता है। भगवान् ने सांसारिक विषयों से विमुख करने के लिये जहाँ स्वामी जी के बाह्य-नेत्रों को हरण कर लिया वहां इन्हें बुद्धि रूपी दिव्य नेत्र प्रदान किया। इनकी बुद्धि बहुत ही विलक्षण थी।

ब्राह्मण कुल परम्परा के अनुसार इनको पिता जी ने बाल्यावस्था में ही संस्कृत पढ़ाना प्रारम्भ किया। कुछ वेदमन्त्र तथा अनेक शिक्षाप्रद श्लोक आदि भी कण्ठस्थ करवाये, क्योंकि जब तक बच्चे को शुद्ध उच्चारण एवं सामान्य मन्त्रपाठ न आ जावे तब तक यज्ञोपवीत धारण का अधिकार नहीं माना जाता। आठ वर्ष की आयु में पिता ने बालक का यज्ञोपवीत संस्कार किया।

माता-पिता का स्वर्गवास

इस बालक को बाल्यावस्था में नेत्र-विहीनता का दुःख तो मिला ही था, अब इसके एक मात्र माता-पिता ही सहारा थे। भगवान् ने उस सहारे से भी इसे वंचित कर दिया अर्थात् बाल्यकाल में ही माता-पिता

स्वर्ग सिधार गये । इस असहाय बालक को ऐसी भयंकर अवस्था में कितना कष्ट सहना पड़ा होगा ? इसे लेखनी नहीं लिख सकती । यह तो हृदय से ही जाना जा सकता है ।

लोक में माता-पिता के पश्चात् अबोध बालकों का बड़ा भाई ही पितृ-तुल्य समझा जाता है, किन्तु इस बालक पर तो विपत्तियों के मेघ मंडरा रहे थे । बड़े भाई और भावज को यह बालक आंख में कुणक के समान रड़गने लगा । भाई-भावज के कुव्यवहार से इस बालक को एक दिन घर की देहली से बाहर पैर रखना ही पड़ा ।

हृषीकेश को ओर प्रस्थान

यह बालक अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर ब्रह्मचारी वेष धारण कर अनेक विघ्न बाधाओं का सामना करता हुआ १५ वर्ष की आयु में हृषीकेश पहुँचा । उस समय यातायात के आज जैसे उत्कृष्ट साधन न थे । अतः यात्रार्थी को अनेक कष्ट सहने पड़ते थे, यह बालक तो नेत्रविहीन था, इसने यात्रा में कितने कष्ट सहे होंगे, यह अनुमानगम्य है ।

ये हृषीकेश में पहुंच कर एक कुटीर बनाकर वहाँ रहने लगे । ये कन्द मूलों का आहार करते हुए गायत्री जाप में लीन रहते थे । रात्रि में अनेक बार जंगली पशु आते और इनकी कुटिया के दरवाजे खट-खटाते, किन्तु इन्हें किसी प्रकार का भय नहीं था । ये सर्वथा निर्भीक थे । पशु-भग्न कुटीर को फिर बना लेते थे । ये प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर कंठ तक गंगाजल में खड़े रहकर गायत्री का जप किया करते थे ।

हृषीकेश का परित्याग

एक दिन की घटना इस प्रकार से बतलाई जाती है कि इस बालक को रात्रि में सोते समय यह ईश-वाणी सुनाई दी "तुम्हारा यहां जो कुछ होना था वह हो चुका, अब तुम यहां से चले जाओ" इस वाणी को सुनकर यह बालक उठ बैठा और हृषीकेश से जाने की मन में ठान ली ।

यह हृषीकेश से चलकर कनखल पहुंचे, यहाँ आकर स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जी से संन्यास की दीक्षा ली और उनसे विद्या भी पढ़ने लगे । स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जी ने इनका विरजानन्द नाम रखा ।

काशी की ओर प्रस्थान

स्वामी विरजानन्द जी कनखल से चलकर गङ्गातीर के साथ-साथ भ्रमण करते हुए काशी पहुंचे । उस समय काशी में विद्याधर नामक एक पंडित प्रवर रहते थे । जो वास्तव में ही विद्याधर थे । विरजानन्द जी ने उनसे विद्याध्ययन आरम्भ किया । स्वामी जी की कुशाग्रबुद्धि से श्री पं० विद्याधर जी बहुत ही प्रभावित हुए । अनेक ईर्ष्यालु पण्डितों के प्रतिषेध करने पर भी पं० विद्याधर जी अपनी ज्ञानगंगा में स्वामी जी को नहलाते रहे । धन्य हैं श्री पं० विद्याधर जी जिन्होंने स्वामी जी को विद्यारत्न बनाने में पूरा बल लगाया ।

स्वामी विरजानन्द जी काशी में पढ़ते समय पढ़ाया भी करते थे । स्वामी जी के पढ़ाने की रीति बहुत ही विलक्षण थी । जिसे देखकर काशी का पण्डित-मंडल दांतों तले अंगुली दबाता था ।

गया-यात्रा

स्वामी जी ने काशी से गया की ओर पैदल ही प्रस्थान किया । मार्ग में स्वामी जी को कुछ एक लुटेरों ने आ घेरा । इन्होंने रक्षा के लिये चीत्कार किया । निकट में ही ग्वालियर राजा के सिपाहियों का

शिविर था। चीत्कार को सुनकर सशस्त्र सिपाही वहां आ पहुँचे। जिन्हें देखकर डाकुओं के पैरों के नीचे से भूमि निकल गई और वे भाग गये। सिपाही स्वामी जी को राजा के पास ले गये। राजा ने स्वामी विरजानन्द जी का बहुत सत्कार किया। कुछ काल वहां निवास कर स्वामी जी गया चले गये और वहां भी अध्ययन करते हुए अध्यापन कार्य करते रहे।

स्वामी जी गया से कलकत्ता, कलकत्ता से सोरों और सोरों से गड़ियाघाट पहुंचे। यहां भी पठन-पाठन का कार्य करते रहे। स्वामी जी में यह एक विशेषता थी कि वे छात्रों से माता-पिता के सदृश प्रेम किया करते थे। छात्रों के चरित्र का भी विशेष ध्यान रखते थे।

अलवर नरेश से भेंट

एक दिन स्नानादि के पश्चात् गंगा में खड़े होकर स्वामी विरजानन्द जी स्तोत्र-पाठ कर रहे थे। संयोग-वश उस दिन अलवर-नरेश भी वहां उपस्थित थे। अलवर-नरेश अत्यन्त विद्वत्प्रिय थे। वे अपनी राजधानी को दूसरी काशी देखना चाहते थे। जब तक स्वामी जी स्तोत्र-पाठ करते रहे तब तक वे उन्हें एक टक देखते रहे। स्वामी जी के मधुर स्वर एवं ब्रह्मचर्य से देदीप्यमान तेजस्वी ललाट को देखकर अलवर-नरेश अपने में खो गये। स्वामी जी पाठ-समाप्ति के पश्चात् जब अपनी कुटिया की ओर चलने लगे तो राजा ने कहा आप अलवर चलिये। स्वामी जी समझ गये कि ये अलवर नरेश हैं। विरजानन्द जी ने उत्तर दिया तुम गृहस्थी और राजा. हम साधु और अकिञ्चन, हमारा तुम्हारा क्या मेल ? अलवर-नरेश के बार-बार अत्यन्त आग्रह करने पर स्वामी विरजानन्द जी ने इस प्रतिज्ञा पर अलवर जाना स्वीकार कर लिया कि "यदि आप मुझ से विद्याध्ययन करें, और जिस दिन आप पढ़ने न आवें मैं उसी दिन अलवर छोड़ दूँगा" राजा ने यह प्रतिज्ञा सहर्ष स्वीकार कर ली। कुछ काल पश्चात् स्वामी विरजानन्द जी अलवर पहुंच गये।

अलवर-निवास

अलवर पहुंचने पर अलवर-नरेश ने स्वामी जी के भोजन, छादन आदि का सुप्रबन्ध कर दिया। अलवर नरेश स्वामी जी से नित्य प्रति पढ़ने लगे। एक दिन राजा ने स्वामी जी महाराज से प्रार्थना की कि कृपया कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे मैं शीघ्र ही संस्कृत-व्याकरण पढ़ सकूँ। शिष्य विनयसिंह की विनय पर स्वामी जी ने शब्द-बोध नामक ग्रन्थ की रचना की। जिससे राजा की व्याकरण में अच्छी गति हो गई। स्वामी जी का लिखा "शब्द-बोध" नामक ग्रन्थ आज भी अलवर के पुस्तकालय में सुरक्षित है।

स्वामी जी यहां अन्य छात्रों को भी संस्कृत पढ़ाया करते थे। प्रेमसुख नामक छात्र प्रमुख शिष्यों में से था। स्वामी जी का पुराना शिष्य अंगदराम भी यहां पठनार्थ आ गया था।

एक दिन राजदरबार में नृत्य गान, राग-रंग हो रहा था। उस दिन यह राजच्छात्र उसी में लीन रहा और पाठ के समय को भूल गया। स्वामी जी वचन के पक्के थे। उसी दिन अंगदराम शिष्य के साथ अलवर छोड़कर चले आये। अलवर नरेश इससे बहुत खिन्न हुआ और अपने किये पर पश्चाताप करने लगा।

पुनः सोरों आगमन

स्वामी जी अलवर से सोरों गड़ियाघाट में फिर आ विराजे। विद्या पिपासु छात्र विद्यानिधि स्वामी जी के पास फिर आने लगे। यहां पठन-पाठन का कार्य पुनः प्रारम्भ हो गया। अंगदराम शिष्य ने स्वामी जी महाराज की बहुत सेवा की।

सोरों परित्याग

एक दिन स्वामी जी को भयंकर रोग ने आ घेरा। यहाँ तक कि स्वामी जी के जीवन की कोई आशा न रही, किन्तु भगवान् को ऐसा इष्ट न था। अंगदराम तथा वैरागिवर मथुरादास ने अत्यन्त श्रद्धा एवं भावना से स्वामी जी की बहुत ही शुश्रूषा की जिससे स्वामी जी को फिर से जीवन मिला। तत्पश्चात् स्वामी जी को यह स्थान न रुचा। सोरों से स्वामी जी मुरसान चले गये. और मुरसान से भरतपुर पहुंचे। यहां के राजाओं ने भी स्वामी जी का हृदय से स्वागत किया।

मथुरा—निवास

स्वामी जी भरतपुर से चलकर मथुरा पहुँचे। मथुरा में आकर अलवर के जागीरदार गूजरमल के घर पर ठहरे। तत्पश्चात् उन्होंने गतश्रम नारायण के मन्दिर में पाठशाला खोली। इस मन्दिर में यह पाठशाला केवल दो मास पर्यन्त चली। तत्पश्चात् एक मकान किराये पर लिया जो "सिरानों का घर" नाम से प्रसिद्ध है। इसमें पाठशाला का संचालन किया। पाठशाला को सुचारु रूप से चलाने के लिए छात्रों के भोजन आदि का भी प्रबन्ध किया। स्वामी जी अपनी पाठशाला में व्याकरण में सिद्धान्तकौमुदी, शेखर, मनोरमा आदि, न्याय में न्याय-सिद्धान्त मुक्तावलि, न्यायदर्शन आदि तथा अमरकोष निघण्टु आदि ग्रन्थ पढ़ाया करते थे। स्वामी विरजानन्द जी की अध्यापन-शैली बहुत ही सुन्दर थी। विदित हुआ है कि छात्र काशी से भी स्वामी जी की पाठशाला मथुरा में विद्याध्ययन के लिये आया करते थे। इससे स्वामी जी के पाण्डित्य का अनुमान सरलता से किया जा सकता है।

स्वामी जी की पाठशाला को अलवर, जयपुर के राजा आर्थिक सहायता प्रदान करते थे। इसी आर्थिक सहायता से स्वामी जी पाठशाला को सुचारु रूप से चलाते थे।

स्वामी विरजानन्द जी के चित्त में एक बड़ी भारी चिन्ता बनी रहती थी। वे सोचा करते थे कि संसार का उद्धार किस प्रकार से हो सकता है। स्वामीजी का अनेक राजे महाराजाओं से सम्बन्ध था। इससे विदित होता है कि वे राजा महाराजाओं की बुद्धि को बदलना चाहते थे। और उनको वैदिक धर्मावलम्बी बनाना चाहते थे। यदि राजा लोग सुधर जावें तो प्रजा का सुधार सरल है। साथ-साथ भारत का परतन्त्रता रूपी कण्टक भी उनके हृदय को बहुत क्लेश देता रहता था। वे इसी चिन्ता-समुद्र में डूबे रहते थे कि किस प्रकार से प्रिय भारत को परतन्त्रता के बन्धन से मुक्त कर स्वतन्त्रता के दर्शन कराऊँ। किस प्रकार से फिर से संसार में वैदिक धर्म का प्रसार हो। अनुमान है स्वामी जी का सोरों से मथुरा-आगमन का यही एक मात्र कारण प्रतीत होता है।

कृष्ण शास्त्री का शास्त्रार्थ

मथुरा में राधाकृष्ण नामक एक प्रसिद्ध सेठ निवास करता था जो प्रथम जैन मतावलम्बी था। उसे कारणवशात् जैन मत से घृणा हो गई और वह वैष्णव बन गया। वैष्णव मत की दीक्षा उसने रङ्गाचारी नामक गुरु से ली। रङ्गाचारी के गुरु कृष्ण शास्त्री थे, जो व्याकरण और न्याय के प्रकांड

पण्डित माने जाते थे। सेठ राधाकृष्ण ने वृन्दावन में एक बड़ा भारी मन्दिर बनवाया। जो निज गुरु रङ्गाचारी के सम्मानार्थ उन्हें भेंट कर दिया। सेठजी को इससे भी सन्तुष्टि न हुई। सेठजी ने एक सुवर्णमय मन्दिर मथुरा में भी बनवाया जो "शाह जी का मन्दिर" नाम से प्रसिद्ध है। यह भी जनता में गुरु जी की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये गुरु जी को भेंट कर दिया।

एक दिन सेठ जी के गुरु जी के गुरु श्री कृष्ण शास्त्री जी मथुरा पधारे और कुछ काल के लिये मथुरा में रहने लगे। एक घटना इस प्रकार बतलाई जाती है कि कहीं कृष्ण शास्त्री के शिष्य लक्ष्मण ज्योतिषी तथा मुडमुडिया पाण्डया और स्वामी विरजानन्द जी के शिष्य रङ्गदत्त चौबे और गंगादत्त चौबे इनमें "आजाद्युक्ति" पद में क्या समास है इस विषय में वाद-विवाद ठन गया। शिष्य वाद-विवाद का निर्णय न कर सके। अपने-अपने गुरु जनों से जाकर इस सम्बन्ध में चर्चा की।

सेठ राधाकृष्ण अपने गुरु के समान गुरु के गुरु कृष्ण शास्त्री की भी प्रतिष्ठा फैलाना चाहते थे। उन्होंने मथुरा में शास्त्रार्थ की घोषणा करवा दी कि स्वामी विरजानन्द और कृष्ण शास्त्री का शास्त्रार्थ होगा। शास्त्रार्थ में यह प्रतिज्ञा रखी गई कि २००) रु० कृष्ण शास्त्री जी की ओर से तथा २००) रु० विरजानन्द की ओर से एकत्र किया जावें। जो विजयी घोषित हो वह यह धन प्राप्त करे।

शास्त्रार्थ की निश्चित तिथि आई। जनता भी शास्त्रार्थ देखने के लिये बड़ी उत्सुक थी। स्वामी जी ने अपने उन्हीं दो शिष्यों को भेज दिया और कहा जब शास्त्री जी आ जावें, मुझे तत्काल सूचित कर देना, मैं शास्त्रार्थ के लिये पहुँच जाऊँगा। शास्त्रार्थ का समय हो गया किन्तु शास्त्री जी नहीं पहुंचे। अन्त में जनता में रोष एवं कोलाहल हो गया। इस अवसर को पाकर सेठ राधाकृष्ण ने शास्त्रार्थ महारथियों के शिष्यों का ही कुछ काल शास्त्रार्थ करवा कर कृष्णशास्त्री की विजय की घोषणा करवा दी और वह ४००) रु० मथुरा के चौबों में बांट दिया। यह अन्याय देखकर स्वामी विरजानन्द जी के शिष्य सेठ जी की मरम्मत बनाने को तैयार हो गये। उपस्थित जनता ने उनको यथा तथा शान्त कर दिया।

सेठ जी को इसी से सन्तुष्टि न हुई, किन्तु गुरूणां गुरु के पक्ष-पोषण के लिए काशी के पण्डितों से लिखित व्यवस्था मंगवा ली। और मथुरा में यह प्रसिद्ध कर दिया कि शास्त्री का ही मत सत्य है ऐसा काशी के सभी पण्डित भी स्वीकार करते हैं।

जब स्वामी जी को यह वृत्तान्त विदित हुआ तभी एक व्यक्ति को काशी भेजा। पंडितों से इस सम्बन्ध में उसने पूछताछ की। काशी के पंडितों ने पैसे के लोभ में धर्म को बेच दिया था। उन्होंने कहा—यह हमारी व्यवस्था वास्तव में सत्य तो नहीं है, किन्तु हम पहले ऐसी व्यवस्था दे चुके हैं। अब क्या करें, विवश हैं।

स्वामी विरजानन्द जी धर्मविक्रमी काशी के पंडितों की ऐसी दशा देखकर बहुत व्याकुल हुए और सोचने लगे कि आज जब काशी के पंडितों की ही ऐसी दशा है तो अन्य सामान्य जनों की क्या दशा होगी। आज देश में धर्म का सूर्य अस्त हो चुका है। लोग धर्म को दो कौड़ी में बेचने के लिये तैयार हैं। इस पतित भारत देश का किस प्रकार से सुधार हो सकता है। वे इस व्यथा से व्यथित रहते थे और संसार के कल्याण का मार्ग ढूंढा करते थे।

स्वामी जी के हृदय पर आर्षग्रन्थों का गहरा प्रभाव

स्वामी विरजानन्द जी का एक दक्षिणात्य ब्राह्मण पड़ोसी था जो अष्टाध्यायी का पाठ किया करता था। एक दिन वह ब्राह्मण पाठ कर रहा था। स्वामी जी ने उस पाठ को बड़े ध्यान से सुना। जब उन्हें

"आजाद्युक्ति" पद में अपने पक्ष को पुष्ट करने वाला प्रबल प्रमाण अष्टाध्यायी का सूत्र "कर्तृकर्मणोः कृति" (२ । ३ । ६५) मिला । तब स्वामी जी के हृदय में हर्ष का पारावार न रहा । उसी दिन से स्वामी जी के हृदय में कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों के प्रति प्रबल घृणा उत्पन्न हो गई, और तत्काल ही अपनी पाठशाला से अनार्ष ग्रन्थों का बहिष्कार कर दिया और अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि आर्ष ग्रन्थों को पढ़ाने लगे । यह घटना आज से १०० वर्ष पूर्व की है ।

सिद्धांत कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों के पढ़ने में क्या भयंकर दोष हैं और अष्टाध्यायी आदि आर्ष-ग्रन्थों के अध्ययन में क्या दिव्य गुण हैं । यह एक पृथक् विवेचनीय विषय है ।

स्वामी का यह स्वरचित पद्य उनकी आर्षग्रन्थों के प्रति गम्भीर श्रद्धा व्यक्त करता है—

अष्टाध्यायी महाभाष्ये द्वे व्याकरण पुस्तके ।
अतोऽन्यत्पुस्तकं यत्तु तत्सर्वं धूर्त्तचेष्टितम् ॥

अर्थात् संसार में व्याकरण के दो ही सत्य ग्रन्थ हैं, एक अष्टाध्यायी और दूसरा महाभाष्य । इन के अतिरिक्त और जो पुस्तकें हैं वे सब धूर्त्तों की लीला मात्र हैं ।

एतदनन्तर स्वामी जी छात्रों से दिन में दो घण्टों तक महाभाष्य का श्रवण करते और रात्रि में इसका मनन और स्मरण करके अगले दिन महाभाष्य को कंठस्थ सुनाते । इस प्रकार स्वामी जी ने सम्पूर्ण महाभाष्य कण्ठस्थ किया । स्वामी जी फिर से एक आदर्श छात्र बन गये । आर्ष ग्रन्थों के प्रचार के लिए उनके हृदय में एक तीव्र भावना पैदा हो गई । जब भी किसी पण्डित से मिलते, इसी सम्बन्ध में वार्तालाप करते और चाहते कि यह भी यथा तथा आर्षग्रन्थ-अनुरागी हो जावे । जो भी मथुरा में प्रसिद्ध विद्वान् आते, उसी से मिलते और आर्षग्रन्थों के प्रसार एवं प्रचार के लिये उन्हें प्रेरणा करते रहते थे । स्वामी विरजानन्द जी को आर्षग्रन्थों के प्रचार की ही एक धुन थी । आर्षज्ञान का यह सूर्य संसार में फिर से चमकने लगा ।

स्वतन्त्रता संग्राम के सूत्रधार

१९१४ विक्रमी तदनुसार १८५७ ई० में जो स्वतन्त्रता-संग्राम लड़ा गया, उसके जन्मदाता महर्षि स्वामी विरजानन्द जी ही महाराज थे । क्योंकि जिन राजाओं ने उस स्वतन्त्रता-संग्राम यज्ञ में भाग लिया वे सब स्वामी विरजानन्द जी महाराज के शिष्य थे । स्वामी विरजानन्द जी महाराज को इस पवित्र कार्य की प्रेरणा देने वाले उनके गुरु श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती थे, जो उस समय अति वृद्ध हो चुके थे । स्वामी विरजानन्द जी ही १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम यज्ञ के सूत्रधार थे । इस सत्यता में संशय के लिये स्थान नहीं है ।

अब प्रश्न उठता है कि जो लोग साधु एवं स्वामी हैं उनको इन संसारी झञ्झटों से जूझने की क्या आवश्यकता है । संसार की सुदशा हो या दुर्दशा, संसार सुखी हो या दुःखी, साधुवृत्ति वाले लोगों का तो भगवान् की भक्ति में ही लीन रहना एक मात्र कार्य है । अतः स्वामी विरजानन्द जी को क्या आवश्यकता पड़ी कि वे इन सांसारिक झञ्झटों में पड़ते ।

यह प्रश्न सामान्यतया ठीक सा प्रतीत होता है । किन्तु गहराई में पहुंचा जावें तो इस प्रश्न में कोई तत्व नहीं । सच्चे साधु सन्यासी जनों में "आत्मवत् सर्वभूतेषु" की भावना अहर्निश कार्य करती रहती है । जो प्राणिमात्र के क्लेशों को अपना क्लेश एवं दुःख समझता है वास्तव में वही मानवपद से सम्बोध्य

है। इस बात से कोई भी सहृदय व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता। जब बात ऐसी है कि किसी प्राणी को दु:ख में देखकर सभी सहृदय प्राणियों का हृदय काँप उठता है तो सोचिये जिसे सारे संसार के उद्धार की गम्भीर चिन्ता है, जिसे मानव मात्र से पुत्रवत् प्रेम है, जिसने सारे संसार को जगाने का बेड़ा उठाया है, और जिसका एक मात्र ध्येय सारे भू-मण्डल में वैदिक धर्म को फैलाना है वह किस प्रकार से अपनी प्रिय जन्मभूमि भारतवर्ष को म्लेच्छों के हाथ में देख सकता है, और स्वतन्त्रता संग्राम के लिये चुप्पी साध कर बैठ सकता है यह कभी हो नहीं सकता। यह डंके की चोट से कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता-संग्राम यज्ञ के जन्मदाता एवं सूत्र महर्षि स्वामी विरजानन्द जी महाराज ही थे।

स्वामी विरजानन्द सरस्वती के जन्म से छ: वर्ष पहिले भी बंगाल के संन्यासी मण्डल ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये एक बड़ा भारी आन्दोलन किया था।

सार्वभौम सभा की योजना

१८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम में भारत को पराजय का मुख देखना पड़ा। १९१६ वि० तदनुसार १८५९ ई० के नवम्बर मास के अन्त में गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग ने देश में शान्ति की भावना स्थापित करने के लिए आगरा में एक अधिवेशन का आयोजन किया। जिसमें सभी राजे-महाराजे नियन्त्रित थे। जयपुर के राजा रामसिंह भी वहां बुलाये गये थे। स्वामी विरजानन्द जी आगरा पहुँचे और राजा रामसिंह से मिले। स्वामी जी ने राजा रामसिंह से कहा कि स्वतंत्रता संग्राम में तो हम पराजय का मुख देख चुके हैं। मैं अब एक सार्वभौम सभा की स्थापना करना चाहता हूँ जिसके आप प्रधान हों। भारत के सभी प्रकाण्ड पण्डितों तथा राजाओं को उसके लिए निमन्त्रित किया जावे। मैं पण्डितों तथा राजा लोगों को आर्ष ग्रन्थों का उत्कर्ष तथा अनार्ष ग्रन्थों का अपकर्ष समझाना चाहता हूं। जो इस सम्बन्ध में शास्त्रार्थ करना चाहे मैं शास्त्रार्थ के लिए भी तैयार हूं। जब तक संसार में आर्षग्रन्थों का प्रचार नहीं होगा। तब तक भारत को अखण्ड स्वतंत्रता के दर्शन नहीं होंगे।

उस समय तो राजा रामसिंह ने यह स्वीकार कर लिया कि मैं इस कार्य के लिए पूरा पूरा प्रयत्न करूंगा। और जयपुर जाने पर आपको पूर्ण विश्वासात्मक उत्तर दूंगा। आगरा का अधिवेशन समाप्त हुआ। स्वामी विरजानन्द जी ने राजा रामसिंह को इस सम्बन्ध में एक पत्र लिखा। किन्तु इस पत्र का कोई उत्तर स्वामी जी को न मिला। स्वामी जी की सब आशायें निराशा में परिवर्तित हो गई। यदि राजा रामसिंह यह कार्य कर जाते तो आज संसार में अमर हो जाते, किन्तु यह यश राजा रामसिंह के भाग्य में न था।

स्वामी जी ने अपने जीवन काल में अनेक विद्वान् छात्रों को पढ़ाया। अनेक प्रकाण्ड पंडितों से शास्त्रार्थ करके पण्डितों के मोघ पाण्डित्य के मद का मर्दन किया। स्वामी जी की कीर्त्ति चन्द्रिका सभी दिशाओं में फैल गई। किन्तु स्वामी विरजानन्द जी को इससे संतुष्टि न थी। उन्हें एक बड़ी भारी चिंता थी, वे सोचा करते थे कि यदि मेरी आर्षग्रंथ प्रचार की एवं भारत को स्वतंत्र बनाने की योजना मेरे साथ ही समाप्त हो गई तो संसार हित से वंचित रह जायेगा। वे शरीर से भी अत्यंत वृद्ध हो चुके थे। किंतु भगवान् को ऐसा अभिप्रेत न था। कृपालु ईश ने स्वामी विरजानंद जी के योजना-वृक्ष को फलीभूत करने के लिए तथा उनके निराश हृदय में आशा जल सींचने के लिए एक दिव्य विभूति को उनकी पाठशाला में भेजा। उस दिव्य विभूति का नाम दयानन्द सरस्वती था। जिसे पाकर स्वामी विरजानंद सरस्वती जी ने कहा था कि "अंधेन यष्टिका लब्धा" अर्थात् अंधे को लाठी मिल गई।

स्वामी दयानन्द जी का मथुरा में विद्याध्ययन

सम्वत् १६१७ वि० तदनुसार १८६० ई० में स्वामी दयानंद विरजानंद जी की मथुरा पाठशाला में पहुंचे। स्वामी विरजानंद जी महाराज से दयानंद जी ने अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त आदि आर्ष ग्रंथों का गम्भीर अध्ययन किया और ज्ञान पिपासा को पूर्णतः पूर्ण किया। एतत्सम्बंधी विशेष घटनाओं का उल्लेख स्वामी दयानंद के जीवन चरित्र प्रकरण में किया गया है।

स्वामी विरजानंद जी महाराज ने स्वामी दयानंद को अपने तुल्य विद्यासागर बनाया। आर्ष-ग्रंथों का प्रचार एवं वैदिक धर्म का प्रसार, भारत स्वतंत्र्य योजना आदि महत्व पूर्ण कार्यों का भार अपने कंधों से उतार कर स्वामी दयानंद को सौंप दिया।

अपने जीवन के अंतिम काल में विरजानंद जी ने योग्य शिष्य को प्राप्त करके सुख और शांति का अनुभव किया। इस प्रकार के आदर्श गुरु-शिष्य का प्रमाण इतिहास में खोजा नहीं मिलेगा।

देहावसान

जीवन मुक्त गुरुवार स्वामी विरजानंद जी महाराज सम्वत् १६२५ वि० आश्विन वदी-त्रयोदशी, सोमवार, तदनुसार १८६८ ई० सितम्बर में अपने जीर्ण शरीर-वस्त्र को छोड़ कर इस लोक से चल बसे। गुरु विरजानंद जी के निर्वाण का वृत्तांत सुनकर स्वामी दयानंद जी के मुखारविंद से ये शब्द निकले। 'आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया है"।

अपनी कीर्ति प्रभा से स्वामी विरजानंद जी संसार में सदा जीवित रहेंगे।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

आदर्श सुधारक—

महर्षि दयानन्द सरस्वती

भारत ही नहीं जब समग्र संसार अविद्या अन्धकार से आवृत था, राष्ट्रीय, सामाजिक, पारिवारिक शैक्षणिक सभी व्यवस्थायें अव्यवस्थित हो चुकी थीं, वेद का कोई नामलेवा न था, सर्वत्र मतमतान्तरों का जाल बिछा हुआ था, ऐसी भयंकर अवस्था में भारत की पवित्र भूमि ने एक दिव्य विभूति को जन्म दिया। जिसका नाम महर्षि दयानन्द सरस्वती था।

वंश परिचय

ऋषिवर ने स्वयं को एक बार व्याख्यान में औदीच्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ बतलाया था। औदीच्य ब्राह्मणों के सम्बन्ध में "औदीच्यप्रकाश" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "ईसा की दशवीं शती में अनहलवाड़ा पाटन के महाराज मूलराज सोलङ्की ने उत्तर भारत के विविध स्थानों से एक हजार चरित्र-वान् ब्राह्मणों को अपने राज्य में (जिसमें सब गुजरात प्रान्त भी सम्मिलित था) मंगवाया। उनमें से सामवेदी तिवाड़ी ब्राह्मणों को सिद्धपुर नामक स्थान में बसाया गया। उन सभी ब्राह्मणों में से २१ ब्राह्मणों को चुनकर ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। इन २१ ब्राह्मणों में से गुण कर्म की दृष्टि से चौथा

ब्राह्मण तिवाड़ी उपाधिधारी सामवेदी दालभ्यगोत्री था। इन दालभ्यगोत्री ब्राह्मणों के उपास्यदेव महादेव थे।

दालभ्यगोत्री स्वामी दयानन्द के पितामह (दादा) का नाम लाला जी तिवाड़ी था। जो सिद्धपुर में निवास करते थे। कारणवश सिद्धपुर छोड़कर वे जामनगर राज्य के कौशिया नामक ग्राम में आ बसे थे।

दयानन्द जी के पिता का नाम कर्षण जी तिवाड़ी था। वे संस्कृत के विद्वान् धन सम्पन्न, सच्चरित्र और अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्तियों में से एक थे। १८७३ ई० तदनुसार सं० १९३० वि० में मन्ना चौधरी से वार्तालाप करते हुए स्वामी दयानन्द जी ने बतलाया था कि "मेरे पिता जी का टङ्कारा में वही पद था जिसे ब्रिटिश भारत में रेवेन्यू कलक्टर=माल अफसर कहते हैं। गुजरात में उस अधिकारी को जमेदार कहते हैं।

बाल्यकाल

कट्टर शैव कर्षण जी तिवाड़ी के घर १८२४ ई० तदनुसार १८८१ संवत् में एक बालक ने जन्म लिया। गुजरात प्रान्त की रीति रिवाज के अनुसार उस बालक के मूलजी और दयाल जी दो नाम रखे गये। दयाल जी नाम का अधिक व्यवहार था। प्रथम बालचन्द्र का देखकर गृह निवासियों के मन में हर्ष का सञ्चार होना स्वाभाविक होता है। कर्षण जी ने इस अतुल हर्ष में दान पुण्य में किसी प्रकार की भी कमी न छोड़ी। दयाल जी की माता का नाम यशोदा बाई था। दयाल जी का एक भाई वल्लभ जी था, तथा दो बहिनें थीं। एक बहिन का नाम प्रेमबाई और दूसरी बहिन का नाम अज्ञात है।

कर्षण जी जिस प्रकार स्वयं कट्टर शैव थे इसी प्रकार बालक दयाल जी को भी कट्टर शैव भक्त बनाना चाहते थे। बालक को शिव पुराण आदि की कथा सुनाते और शिवरात्रि व्रत का महत्व समझाते। जिससे बालक के हृदय में इष्टदेव के प्रति श्रद्धा के भावों का जन्म हो। जब दयाल जी १४ वर्ष के हुए तब पिता जी ने बालक को व्रत रखने की प्रेरणा की। माता जी ने कहा कि यह अभी बालक है। कठोर व्रतों के कष्टों को सहन नहीं कर सकेगा। पिता जी ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। पिता जी की प्रेरणा पर दयाल जी ने श्रद्धा पूर्वक व्रत पालन स्वीकार किया। ग्राम से ४ मील दूर शिव-मन्दिर में रात्रि-जागरण के लिए दयाल जी पिता जी के साथ गये। रात्रि के तीसरे पहर में भक्तगण निद्रा के वशीभूत होकर ढूलने लगे, और कुछ एक भूमिशय्या पर हाथ का तकिया बनाकर सो रहे। दयाल जी की आंखों में निद्रा न थी। यदा कदा निद्रा के वेग को जलकणों से दूर करते रहते थे।

दयाल जी के देखते-देखते ही एक विचित्र घटना घटी। दयाल जी क्या देखते हैं कि कुछ एक चूहे शिवलिङ्ग पर खिलवाड़ कर रहे हैं, और नैवेद्य (शिवलिङ्ग पर चढ़ाये हुये उत्तम द्रव्य) को बड़ी अभिरुचि से खा रहे हैं। दयाल जी के मन में एक शङ्का पैदा हुई और पिता जी को जगा कर कहा कि "पिता जी क्या यही वह सच्चा शिव है जिसका आप मुझे महत्व समझाया करते थे। यह तो अपने शरीर से चूहों को भी हटाने में असमर्थ है। यह मनुष्यों की किस प्रकार से रक्षा कर सकता है। यह सुनकर पिता जी प्रथम तो क्रुद्ध हुए, तत्पश्चात् शान्तिपूर्वक बालक को समझाया कि यह तो सच्चे शिव की प्रतिकृति मात्र है। कलियुग में सच्चे शिव के दर्शन नहीं होते। दयाल जी को इस उत्तर से सन्तोष नहीं हुआ। बालक पिता जी से अनुमति लेकर घर लौट आया, और मन में धारणा की कि जब तक मैं सच्चे शिव के दर्शन नहीं कर लूँगा तब तक इस कृत्रिम (बनावटी) शिव की पूजा नहीं करूँगा।

बहिन और चचा का देहावसान

दयाल जी की १६ वर्ष की आयु में उनकी छोटी वहिन का देहावसान हो गया। कुटुम्बी जनों पर इस घटना से शोक का वज्र-पात हुआ। घर में हाहाकार मचा हुआ था किन्तु दयाल जी की आंखों में आंसुओं का नाम न था। दयाल जी सोच रहे थे कि मृत्यु क्या वस्तु है? क्या एक दिन मुझे भी इस संसार से इस प्रकार ही जाना होगा। इस मृत्यु-रोग की कोई औषधि अवश्य होनी चाहिये।

जब दयाल जी १६ वर्ष के थे इनके स्नेही विद्वान् चचा का स्वर्गवास हो गया। चचा जी दयाल से अत्यन्त स्नेह रखते थे। इनकी मृत्यु पर दयाल जी को अत्यन्त असह्य कष्ट सहना पड़ा। इन घटनाओं को देखकर दयाल जी की मनोभूमि में वैराग्य का अंकुर उत्पन्न हुआ।

गृह त्याग

जब कर्षण जी को यह विदित हुआ कि बालक वैराग्य की ओर झुक रहा है। तब उन्होंने इनकी वैराग्य भावनाओं को दबाने के लिए इनके विवाह का ढमढमा रचाया। जो कि ऐसे अवसरों पर प्रायः उपयोग में लाया जाता है। दयाल जी इस समय २२ वर्ष के थे। अब तक दयाल जी व्याकरण, मीमांसा, शिव पुराण आदि पढ़ चुके थे। पिता जी ने सामवेदीय ब्राह्मण होते हुए भी दयाल जी को यजुर्वेद भी कण्ठस्थ करवा दिया था।

विवाह के दिन निकट ही थे कि दयाल जी एक दिन सायंकाल घर से भाग गये। भगवान् पर विश्वास रखके अपरिचित पथों से यात्रा आरम्भ की। मार्ग में धूर्त साधुओं का एक मंडल मिला, जिन्होंने उनके शरीर पर जो सुन्दर वस्त्र और आभूषण थे वे सब ठग लिये। दयाल जी के घर से चले जाने पर कर्षण जी ने बहुत खोज करवाई किन्तु कोई पता नहीं चला।

दयाल जी घर से निकल कर सर्व प्रथम स्वामी ब्रह्मानन्द जी नामक साधु से मिले। इन्होंने उनसे संन्यास दीक्षा लेने की अभिलाषा व्यक्त की। अल्पायु होने से उन्होंने दीक्षा देने से प्रतिषेध कर दिया। और दयाल जी का नाम शुद्ध चैतन्य रख दिया।

एक दिन शुद्ध चैतन्य जो घूमते हुए सिद्धपुर पहुँच गये। इनके पिता जी को एक व्यक्ति द्वारा विदित हो गया कि दयाल सिद्धपुर आया हुआ है। कर्षण जी तत्काल सिद्धपुर पहुँचे और इन्हें पकड़कर घर ले गये। इन पर कठोर पहरा लगा दिया गया। जिससे यह वैरागी युवक कहीं भाग न जावे। इतने पर भी एक दिन शुद्ध चैतन्य जी शौच के मिष से हाथ में जलपात्र लेकर रक्षकों की आंखों में धूल डाल कर उनके चक्र से निकल ही गये। कर्षण जी ने पहरेदारों को बहुत डाँटा और विदित होने पर तत्काल इधर उधर ढूँढने के लिए सिपाहियों को भेजा, किन्तु कर्षण जी के सब प्रयत्न विफल रहे। शुद्ध चैतन्य ने फिर कभी भी लौट कर आजीवन ग्राम का मुख नहीं देखा। इसे र वैराग्य वकहते है।

संन्यास-दीक्षा

शुद्ध चैतन्य जी ने सच्चे शिव की खोज में अनेक प्रकार के असह्य कष्टों को हँसते हँसते सहा। चिरकाल पश्चात् ज्वालानन्दपुरी और शिवानन्दगिरि नामक दो साधु मिले। जो योग के अच्छे अभ्यासी थे। शुद्ध चैतन्य जी ने इनसे योगाभ्यास सीखा। पश्चात् इन दोनों योगप्रवीण साधुओं ने कहा कि हम अहमदाबाद जा रहे हैं, यदि आप योग सीखना चाहते हैं तो वहीं आ जाना। इनकी योगाभ्यास सीखने

की उत्कण्ठा अत्यन्त तीव्र थी। अपने जीवन में उन्होंने स्वयं लिखा है कि इन साधुओं ने मुझे निहाल कर दिया।

शुद्ध चैतन्य जी घूमते हुए सन् १८५५ में स्वामी विरजानन्द जी के गुरु श्री पूर्णानन्द जी के पास पहुँचे। आपने उनसे संन्यास दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने आपका नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती रखा। स्वामी जी ने कहा कि मैं वेदादि सच्छास्त्रों का अध्ययन करना चाहता हूं। स्वामी पूर्णानन्द ने बतलाया कि मैं तो अतिवृद्ध हो चुका हूँ। मेरे शिष्य स्वामी विरजानन्द सरस्वती मथुरा में रहते हैं, आप उनसे अपनी ज्ञान-पिपासा का शमन करें। आप मथुरा चले जाओ।

क्रान्तिकारी स्वामी दयानन्द

सन् १८५५ में जब नाना साहब क्रान्ति यज्ञ को प्रारम्भ करने के लिए सर्वतोभावेन बल लगा रहे थे तब मार्च १८५७ तक स्वामी दयानन्द गङ्गा के साथ-साथ गंगोत्तरी और बदरीनाथ से बनारस तक गढ़वाल, दोआब और काशी के प्रदेश में घूमते रहे। जहां कि उस समय भारत स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए क्रान्ति की तैयारियाँ जनता में गुप्त रूप से बड़े जोरों पर की जा रही थी।

सन् १८५६ के मास में स्वामी दयानन्द जी नाना साहब के नगर कानपुर में भी गये। ५ मास पर्यन्त कानपुर और इलाहाबाद के मध्य में ही भ्रमण करते रहे। जब १८५७ में क्रान्ति की पूर्ण तैयारियां हो गईं तब नाना साहब के अनेक सन्देशवाहक साधु क्रान्ति फैलाने के लिये पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण देश के सभी कोनों में फैल गये। स्वयं नाना साहब और उनके साथी अजीमुल्ला भी क्रान्ति की तिथि निश्चित कर यह सब कार्य-क्रम अपनी आंखों से देखने के लिए तीर्थ यात्रा के मिष से भ्रमणार्थ चले। तब स्वामी दयानन्द भी बनारस से मिर्जापुर आदि स्थानों में होते हुए क्रान्ति का सन्देश फैलाने के लिए दक्षिण की ओर चल दिये।

सन् १८५७ से १८६० तक तीन वर्ष का स्वामी दयानन्द के जीवन का कोई इतिवृत्त नहीं मिलता। इससे द्योतित होता है कि स्वामी दयानन्द ने १८५७ की क्रान्ति में बढ़ चढ़कर कार्य किया और अपने हस्तलिखित जीवन में भी इस सम्बन्ध में उन्होंने कुछ लिखना किसी कारणवश उचित नहीं समझा।

अक्टूबर सन् १८६० के पश्चात् स्वामी दयानन्द की जीवन घटनायें विदित होती हैं।

सच्चे गुरु की प्राप्ति

जब १८५७ की क्रान्ति असफल हो गई तब स्वामी दयानन्द हाथरस से मुरसान होते हुए १८६० के अन्त में प्रज्ञाचक्षु संन्यासी श्री विरजानंद सरस्वती के पास पहुंचे। उस समय विरजानंद जी महाराज ने अपनी पाठशाला से कौमुदी आदि अनार्ष ग्रंथों का सर्वथा बहिष्कार कर दिया था। स्वामी दयानंद ने १८६० से लेकर १८६३ पर्यन्त तीन वर्ष विद्याध्ययन किया। स्वामी विरजानन्दजी क्रान्तिकारियों के सर्वाग्रणी थे। यह उनके जीवन में प्रतिपादित किया जा चुका है।

जब १८५७ का क्रान्ति युद्ध असफल हो गया तब भारत के विद्वानों के मस्तिष्क में एक प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने सोचा कि हमारी पराजय का कारण एकमात्र यही है कि देश में आर्ष-ग्रंथों का लोप और अनार्ष-ग्रंथों का प्रसार होता जा रहा है। जिससे भारत की विमल संस्कृति भी दिन प्रतिदिन लुप्त होती जा रही है। जब तक भारत की शिक्षा में सुधार नहीं होगा और प्राचीन संस्कृति को नहीं अपनाया

जायेगा, तब तक भारत परतन्त्रता के पाश से मुक्त नहीं होगा। इस प्रकार के विचारकों में से विरजानंद सरस्वती का नाम सर्वप्रथम है।

स्वामी दयानन्द को जिस प्रकार के गुरु की अभिलाषा थी ठीक उसी प्रकार के गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती उन्हें मिल गये। स्वामी विरजानन्द सरस्वती भी इसी प्रकार के आदर्श शिष्य की खोज में थे।

इस अनुपम संयोग ने शस्त्र क्रान्ति के विफल हो जाने पर शास्त्रों द्वारा शिक्षा में क्रान्ति उत्पन्न की। इन दोनों अनुपम गुरु-शिष्यों की परस्पर एकान्त में भारत के सुधार एवं स्वातन्त्र्य समस्या पर घण्टों तक विचार विमर्श हुआ करते थे। ये सोचा करते थे, कि भारत का एकमात्र सुधार शिक्षा-सुधार में ही निहित है। जब तक शिक्षा में आमूल चूल परिवर्तन नहीं होगा, तब तक प्रिय भारत को अखण्ड स्वतंत्रता के दर्शन नहीं होंगे।

गुरुदक्षिणा

स्वामी दयानन्द गुरुवर से प्राप्तव्य को पाकर जब चलने लगे तब गुरुदक्षिणा में कुछ लौंग लाये और कहने लगे गुरुवर! आपकी सेवा में यह तुच्छ भेंट लाया हूँ। क्योंकि मेरे पास और कुछ नहीं है, कृपया इसे स्वीकार करो। गुरुवार ने कहा, पुत्र! मेरे लिये तो यही सबसे बड़ी दक्षिणा है कि "संसार अज्ञान की गहरी निद्रा में सो रहा है उसे जाकर जगाओ, और वेदों के सूर्य को फिर से चमकाकर सारे संसार को सुखी बनाओ। गुरुवर की आज्ञा सहर्ष स्वीकार करके दयानन्द कार्यक्षेत्र में कूद पड़े। दयानंद ने गुरु की आज्ञा का आजीवन परिपालन किया। इस प्रकार के आदर्श गुरु-शिष्य का उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता।

कार्यक्षेत्र

मथुरा पाठशाला के स्नातक होने के उपरान्त स्वामी दयानन्द ने भारत में ही नहीं अपितु देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तरों में भी वेदों का सन्देश सुनाया। लेख और व्याख्यानों से शिक्षा में क्रान्ति पैदा की। भारत स्वातंत्र्य के सम्बंध में स्वामी दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश के निम्नाङ्कित शब्द स्वर्णाक्षरों में उल्लेखनीय हैं—

"अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य प्रमाद और परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की कथा ही क्या कहना किंतु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड स्वतंत्र, स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रांत हो रहा है। कुछ थोड़े से राजा स्वतंत्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात् शून्य, प्रजा के ऊपर माता पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है।

(स्थूलाक्षर सत्यार्थप्रकाश अष्टमसमुल्लास पृ० १६५)

महर्षि दयानंद ने अपने जीवन में आर्षज्ञान का प्रचार, मूर्तिपूजा का वहिष्कार, भारतीय एकता का विस्तार, अछूतोद्धार, स्त्री शिक्षा, मिथ्या मतमतान्तरों का खण्डन आदि, आदि अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये।

आर्य समाज की स्थापना

१ मार्च सन् १८५७ ई० तदनुसार चैत्र शुदि प्रतिपदा सम्वत् १९३१ में बम्बई नगर में स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की। जिससे मेरे पीछे भी मेरा यह कार्य बन्द न हो सके। संसार में वेद का सूर्य चमकता ही रहे। संसार में शांति की ज्योति जलती रहे। महर्षि दयानंद जी द्वारा लगाया हुआ आर्य-समाज-वृक्ष आज पुष्पित, फलित और विकसित होकर फैल रहा है। यह सर्व विदित है।

ऋषिवर ने आर्य समाज की स्थापना करके कोई अपना मत नहीं चलाया, अपितु जिस पावन प्राचीन भारतीय संस्कृति को लोग अज्ञान-अंधकार में गिरकर भूल गये थे। उसने सत्य को फिर से प्रकाशित किया है। वैदिक धर्म को हृदा स्वीकार करने वाला प्रत्येक मानव आर्य पदवाच्य है।

वेद-भाष्य

ऋषिवर ने जहां अन्य महत्व पूर्ण कार्य किये वहां सर्वोत्तम तथा महत्व पूर्ण यह किया कि लोग उस समय वेदों को सर्वथा भूल चुके थे। वेदार्थज्ञान तो कोसों दूर था। ऋषिवर ने वेदों को खोजकर लन्दन से मंगवाया और उनका सत्यार्थ प्रकाशित करने के लिए सर्वप्रथम यजुर्वेद और ऋग्वेद का (मं० ७ सू० ६१ पर्यन्त) भाष्य किया। किन्तु साथ साथ हमें खेद है कि ऋषिवर अपना वेदभाष्य का पावन कार्य सम्पूर्ण न कर सके। क्या ही अच्छा होता यदि वे अपनी पवित्र लेखनी से सम्पूर्ण वेदभाष्य लिख जाते। ऋषिवर शास्त्रों का भी भाष्य करना चाहते थे,

ऋषिवर ने अपने जीवन काल में अनेक शास्त्रार्थ भी किये। यहां तक कि काशी के सभी दिग्गज पण्डितों को अकेले ही ऋषिवर ने शास्त्रार्थ में झकझोर दिया था। परमेश्वर की सहायता से तथा अपने अद्‌भुत विद्यावल से कहीं भी पराजय का मुख नहीं देखा। सदा सफलता की माला ही आपके कण्ठ को अलंकृत करती रही।

ग्रन्थ-महिमा

स्वामी दयानंद ने भगभग २२ ग्रंथ लिखे हैं। जो सभी सत्यता एवं अमृत से भरपूर हैं। उन ग्रंथों में से सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, संस्कार विधि और वेदभाष्य ये ४ ग्रन्थरत्न अत्यन्त उपयोगी और उपादेय हैं। ये ग्रंथ ऋषि के जीवन का सार हैं। इन ग्रंथों के श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय करने से हो नहीं सकता कि मानवमात्र का जीवन पलट न जावे और वह सच्चा आर्य न बन जावे। ऋषिवर ने ये आर्य सिद्धान्त के मार्मिक ग्रंथ रचे हैं।

इस प्रकार ऋषिवर ने वेदों के प्रचार के साथ साथ तत्कालीन अनेक माण्डलिक राजाओं को भी धार्मिक, देशभक्त, और प्राचीन संस्कृति के पुजारी बनाने का सफल प्रयत्न किया। यदि ये राजा लोग परस्पर प्रेम से रहें और सब मिलकर ये प्रयत्न करें तो भारत-स्वातन्त्र्य और देश का उद्धार सम्भव है। 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार ऋषिवर राजाओं का सुधार करना चाहते थे और भारत में सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य स्थापित करना चाहते थे।

विदेशों में प्रचार

केवल इतना ही नहीं ऋषिवर ने विदेशों में भी वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिये अपने प्रिय शिष्य श्याम जी कृष्णवर्मा को इङ्गलैंड भेजा था। श्याम जी कृष्णवर्मा ने बड़ी लग्न के साथ वहां प्रचार कार्य

किया। श्याम जी कृष्णवर्मा विदेश से लौट कर स्वामी दयानन्द जी द्वारा संस्थापित वैदिक यन्त्रालय अजमेर के व्यवस्थापक भी रहे और स्वामी जी के वेदभाष्य आदि कार्य में भी उन्हें पूर्ण सहयोग देते रहे। श्याम जी का अन्य इतिवृत्त उनके जीवन में लिखा जा चुका है।

महर्षि स्वामी दयानन्द का जीवन आद्योपान्त परोपकार भावना एवं सत्यता से ही भरपूर है। चाहे कोई राजा ही क्यों न हो वे सत्यकथन से कभी नहीं घबराते थे।

एक दिन की घटना है कि ऋषिवर जोधपुराधीश के राज-भवन में पधारे। उस समय वहां वेश्या नन्हीं जान भी आई हुई थी। स्वामी जी को आते हुए देखकर राजा ने उसकी पालकी झट वहाँ से उठवा दी। स्वामी जी रहस्य को समझ गये। और राजा से कहने लगे। "सिंह होकर कुतिया का शिकार" इस ऋषिवचन से राजा के हृदय पर बहुत प्रभाव पड़ा। दिन प्रतिदिन राजा का प्रेम वेश्या से हटता गया। पहिले राजदरबार में वेश्या का बहुत मान था। वह स्वामी जी को ही एक मात्र अपने अपमान का कारण समझकर स्वामी जी के सर्वविध अनिष्ट पर तुल गई। यहां तक कि इस सर्पिणी ने स्वामी जी के प्राणहरण तक के सब प्रयत्न किये।

भयंकर-विषपान

कहा जाता है कि स्वामी जी को विरोधियों ने १६ बार जहर पिलाया। ऋषिवर उसे यौगिक क्रिया के बल से निकालते रहे। अन्तिम बार स्वामी जी के पाचक जगन्नाथ ने कांच में पीसकर हलाहल विष दूध में मिलाकर पिला दिया। स्वामी जी दूध पीकर सो गये।

थोड़ी ही देर सोते हुए हुई थी कि उदर में वेदना पैदा हुई। उसी व्याकुलता में इन्हें तीन बमन हुई। प्रातः वे बिलम्ब से उठे, उठते ही फिर बमन हो गई। तत्पश्चात् उदर में अत्यंत तीव्र वेदना उत्पन्न हो गई। उन्होंने स्वयं अनुभव किया कि हलाहल विष शरीर के रोम रोम में प्रविष्ट हो चुका है। शरीर में भयंकर जलन पैदा हो रही थी। वे अपार धैर्य से असह्य दारुणवेदना को सहन कर रहे थे। डा० सूरजमल को बुलाया गया उन्होंने वमन और प्यास को रोकने की औषधि दी।

सायंकाल ४ बजे राज्य वैद्य अलीमर्दानखां औषधोपचार के लिये आये। इसके उपचार से रोग ने भयंकर रूप धारण कर लिया। इसके विरेचन औषधि से स्वामी जी को प्रतिदिन तीस पेंतीस अतिसार आने लगे। यह नीच अलीमर्दानखां औषधि में भी विष मिलाकर ऋषिवर को पिलाता रहा।

दयानन्द की दया

अपने प्राणघातक जगन्नाथ को कुछ भी नहीं कहा। गम्भीरभाव से उसे कहने लगे—जगन्नाथ! मेरे इस समय मरने से मेरा कार्य अधूरा रह गया। आप नहीं जानते कि इससे लोकहित की कितनी भारी हानि हुई है। अच्छा, विधाता के विधान में ऐसा ही होना था। "जगन्नाथ! लो ये कुछ रुपये हैं, इनके द्वारा अपने प्राणों का परित्राण करो और शीघ्र से शीघ्र इस राज्य की सीमा से बाहर हो जाओ"। अहो! दयानन्द तेरी दया। अपने प्राणघातक को पकड़कर भी उसे अपनी प्राणरक्षार्थ धन देकर मुक्त कर दिया।

श्रद्धालु जनों ने स्वामी जी के अनेक उपचार किये। आबू पर्वत पर भी स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये उन्हें ले गये किन्तु "रोग-बढ़ता ही गया, ज्यों ज्यों दवा की"। कोई सफलता नहीं मिली।

ऋषिवर का निर्वाण

कार्तिक अमावास्या मंगलवार दीपमाला के दिन उनकी भयंकर रुग्णावस्था के समाचार पाकर दूर दूर से आर्य पुरुष एकत्र हुए थे। पहले कण्ठ कुछ रुद्ध था, आज उनका गला कुछ खुल गया था। सायंकाल चार बजे शौच आदि से निवृत्त होकर नापित को बुलाकर क्षौरकर्म कराया। तत्पश्चात् नाखून भी उतरवाये, उसके बाद पलंग पर बैठकर उपस्थित आर्यजनों से वार्तालाप भी किया। साढ़े पांच बजे स्वामी जी ने कमरे के सब द्वार खुलवा दिये। आर्य पुरुषों को अपनी पीठ पीछे खड़ा होने का आदेश दिया। पुनः पूछा कि आज पक्ष, तिथि, और वार कौन हैं। पण्ड्या मोहनलाल ने बतलाया कि आज कार्तिक कृष्णपक्ष का अवसान है। अमावस्या और मँगलवार हैं।

तत्पश्चात् ऋषिवर ने दिव्यदृष्टि से उस भवन के चहुं ओर से देखा। फिर गम्भीर ध्वनि से वेद-पाठ किया। वेदगान के पश्चात् संस्कृत में परमात्मा से प्रार्थना की। तत्पश्चात् गायत्री मन्त्र का जप किया। जाप करते हुए वे मौन हो गये, और चिरकाल तक निश्चलरूप से समाधि में बैठे रहे। तत्पश्चात् अपने नयनों से दिव्य-ज्योति को फैलाते हुए कहा—"हे दयामय! हे सर्व शक्तिमान् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, सचमुच तेरी यही इच्छा है। परमात्म देव! तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा! मेरे परमेश्वर! तूने अच्छी लीला की।"

ये शब्द उच्चारण करते हुए ऋषिवर ने अपने प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र से प्रणवनाद के साथ शरीर से बाहर निकाल दिया।

आर्य पुरुषों ने ऋषिवर के शव को बड़े सम्मान पूर्वक ले जाकर अजमेर नगर के दक्षिण भाग में वेद विधि से अन्त्येष्टि संस्कार किया। चन्दन और पीपल की समिधाओं से चिता चयन हुआ। रामानन्द और आत्मानन्द जी ने यथाविधि अग्न्याधान किया। दाह-संस्कार में चार मन घृत, पांच सेर कपूर, एक सेर केसर और दो तोले कस्तूरी डाली गई थी। चरु और घृत की आहुतियों से ऋषिवर की काया प्रेमियों के नीर भरे नयनों से देखते देखते अपने कारणों में लीन हो गई।

ऋषिवर का अन्त्येष्टि संस्कार करके आर्यजन शोकातुर हुए और अजमेर लौट आये।

ऋषिवर के आदेशानुसार उनकी अस्थियां और भस्म शाहपुराधीश के दिये उद्यान में गड़वा दी गईं। यह उद्यान अनासागर के तट पर पुष्कर की सड़क पर स्थित है।

'आनन्द सुधासार' दयाकर पिला गया, भारत को दयानन्द दुबारा जिला गया।
शंकर दिया बुझाय दिवाली को देह का, कैवल्य के विशालवदन में बिला गया॥

(नाथूराम शंकर)

मुनिवर-

पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी

(श्री सुदर्शनदेव शास्त्री)

पञ्जाब की पावन भूमि ने अनेक नररत्न उत्पन्न किये हैं। उनमें से अत्यन्त प्रतिभाशाली एवं कुशाग्रबुद्धि मुनिवर पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी भी पञ्जाब की भारत को अमूल्य देन है।

बाल्यकाल

गुरुदत्त विद्यार्थी का जन्म २६ अप्रैल १८६४ ई० में मुल्तान नामक ग्राम में, सरदाना नामक कुल में श्री रामकृष्ण जी के घर हुआ। ला० रामकृष्ण जी फारसी के प्रसिद्ध विद्वानों में से एक थे। आपकी माता जी यद्यपि अपठित थी परन्तु उदार तथा धार्मिक थी। कहते हैं कि रामकृष्ण जी की सन्तान होते ही स्वर्ग सिधार जाती थीं, इससे रामकृष्ण जी अत्यन्त व्याकुल थे। एक दिन वे अपने कुल-गुरु के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि महाराज! मैं पुत्र-रत्न से वञ्चित हूं। कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे मैं पुत्र-रत्न को प्राप्त करके अपने आपको सौभाग्यशाली बना निज-कुल को समुज्जवल कर सकूं। गुरु के आशीर्वाद तथा भगवान् की कृपा से रामकृष्ण जी की आशा पूर्ण हो गई और उन्हें एक पुत्र पैदा हुआ। गुरु के आशीर्वाद को सफल समझ कर रामकृष्ण जी ने बालक का नाम गुरुदत्त रखा।

गुरुदत्त को संयम और धैर्य माता जी से तथा शारीरिक बल तथा तीव्र बुद्धि पिता जी से मिले। दो वर्ष की अवस्था में ही गुरुदत्त जी विचित्र प्रश्न करते, जिसे सुनकर माता पिता चकित रह जाते थे।

शिक्षा

गुरुदत्त जी के पिता शिक्षा-विभाग में अध्यापक थे। उन्होंने इनके पढ़ने का सब यथोचित प्रबन्ध कर दिया। वे गुरुदत्त को स्वभाव के अनुकूल चलने से नहीं रोकते थे। वे गुरुदत्त को बड़े मनोरञ्जक ढंग से पढ़ाते थे। जब कभी वे निकटवर्ती ग्रामों में जाते, गुरुदत्त जी को साथ ले जाते। वे गुरुदत्त जी के सभी प्रश्नों का भली भांति समाधान करते थे। उन्होंने गुरुदत्त जी को उर्दू और फारसी का घर पर ही अच्छा ज्ञान करवा दिया था। तत्पश्चात् उनका विचार गुरुदत्त जी को अंग्रेजी पढ़ाने का हुआ। वे स्वयं अंग्रेजी से अनभिज्ञ थे। उन्होंने सोचा मेरे द्वारा गुरुदत्त शीघ्र ही अंग्रेजी भाषा पढ़ सकेगा, एतदर्थ रामकृष्ण जी ने पहिले अंग्रेजी की प्रथम पुस्तक पढी, तदन्तर पुत्र को पढ़ाई।

स्कूल में प्रवेश

श्री रामकृष्ण जी झंग नामक स्कूल में अध्यापक थे, अत: गुरुदत्त को भी उसी स्कूल में प्रविष्ट करा दिया। इस समय गुरुदत्त जी की आयु ८ वर्ष की थी। विद्यार्थी गुरुदत्तजी अंग्रेजी में तो अन्य विद्यार्थियों के ही तुल्य थे किन्तु फारसी और गणित आदि विषयों में सभी छात्रों से बढ़-चढ़ कर थे। गुरुदत्तजी ने स्कूल जीवन में फारसी के अनेक ग्रन्थ पढ़ डाले। गुरदत्तजी में कविता करने की शक्ति अद्भुत थी, ये गद्य को पद्य में अति शीघ्र बदल देते थे। आपकी कविता नियम बद्ध तथा रोचक होती थी मिडिल पास करने के पश्चात् ये निज जन्मभूमि मुल्तान लौट आये और हाईस्कूल में प्रविष्ट हो गये। वहां का अध्यापक-वर्ग आपके बुद्धि चातुर्य एवं योग्यता पर लट्टू था।

स्वाध्याय शीलता

प्रायः करके सभी छात्रों का एक मात्र ध्येय परीक्षान्तर्गत पुस्तक घोट कर परीक्षा में उत्तीर्ण होना ही होता है, किन्तु आपने तो छोटी सी आयु में ही पुस्तकालय के सभी पुस्तक पढ़ डाले। प्रथम आपने स्कूल का पुस्तकालय पढ़ा तत्पश्चात् गांव का भी पुस्तकालय पढ़ा। एक धार्मिक अध्यापक के सत्संग से आपको कुछ धार्मिक-साहित्य हस्तगत हुआ। जिसमें प्राणायाम सम्बन्धी पुस्तकें भी थीं। इन पुस्तकों के अध्ययन से आपके जीवन में नवसंचार हुआ। आपकी रुचि प्राणायाम की ओर बढ़ी।

मन की एकाग्रता

गुरुदत्त जी ने प्राणायाम की क्रियाओं का अभ्यास करना आरम्भ किया। बुद्धि तो प्रथम से ही तीक्ष्ण थी। प्राणायाभ के अभ्यास से मन में एकाग्रता की बुद्धि होने लगी। प्राणायाम तथा कुशाग्र बुद्धि के बल से गम्भीर से गम्भीर विषय के तत्त्व को क्षण में ही जान लेते थे। परन्तु हाईस्कूल की शिक्षा ने इन्हें अंग्रेज विद्वानों की ओर आकृष्ट किया। इन्होंने अंग्रेज-विद्वानों के अनेक ग्रन्थ पढ़े, जिनके कुप्रभाव से ईश्वर-विश्वास की भावना समाप्त हो गई। यह स्वभाविक ही था, क्योंकि जो लो लोग जिस प्रकार के साहित्य का अध्ययन करते हैं उनकी विचार धारा भी तदनुकूल ही बन जाती है। उस समय ईसाई लोग भी पूरे बल के साथ ईसाई-धर्म के प्रचार में तुले हुये थे, यहां तक कि सारे भारत को ईसाई बनाना चाहते थे, किन्तु उन्हें क्या पता था कि यह सब वैदिक धर्म की चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो जायेगा। उस समय महर्षि दयानन्द जी महाराज के प्रबल प्रचार से ईसाई लोगों के पैर उखड़ गये। और उनकी सब आशायें निराशा में परिवर्तित हो गईं। यह प्रकाश गुरुदत्त जी के हृदय तक भी पहुंचा।

आर्यसमाज में प्रवेश

गुरुदत्तजी के विचारों का पलड़ा आर्यसमाज की ओर झुकने लगा। आपने प्रथम सत्यार्थप्रकाश का श्रद्धा से अध्ययन किया। २० जून १८८० ई० को आप विधिपूर्वक आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गये। आपके रमलदास और ला० चेतनानन्द जी आर्यसमाजी परम मित्र थे। आप वेद, ईश्वर आदि अनेक विषयों पर चर्चा करते रहते थे। अपने गुरु अक्षयानन्दजी से अष्टाध्यायी का डेढ अध्याय पढ़ा। तत्पश्चात् महर्षि-कृत वेदांग-प्रकाश के द्वारा अष्टाध्यायी पर आपने अच्छा प्रभुत्व प्राप्त किया। संस्कृत-साहित्य में भी आप की अच्छी गति हो गई। आपकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि अध्यापक तथा इन्स्पेक्टर तक भी आपके प्रश्नों में उलझ जाते थे। उच्च कक्षाओं के छात्र भी आप से पढ़ने आते थे। आप अत्यन्त सुशील थे।

योग-प्रेम और साधु-सेवा

गुरुदत्तजी बाल्यकाल से ही प्राणायाम की ओर रुचि रखते थे। अब इन्हें योग-साधना की धुन लगी। जिस किसी साधु को यह समझते कि ये योग की क्रियायें जानते हैं उसकी अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से सेवा करते। इस प्रकार आपकी स्वामी दयानन्दजी महाराज के तुल्य घर से भाग जाने की भावना आपके मन में उत्पन्न हुई। माता जी ने जाने से बहुत रोका। हृदय-गंगा के प्रवाह को कौन रोक सकता है।

आपको आर्यसमाज की ऐसी धुन लगी कि आपकी इण्ट्रेन्स परीक्षा के समय भी आप वैदिक-साहित्य के अध्ययन में रत रहते थे। परीक्षा की पुस्तकें अलमारी में भरी रहती थीं। इस समय आपकी

आयु १५ वर्ष की थी। एण्ट्रेंस में पढ़ते समय गुरुदत्तजी एफ० ए० के छात्रों के साथ प्रतियोगिता की योग्यता रखते थे। गुरुदत्तजी किसी भी विषय को रटते नहीं थे, समझ कर याद करते थे।

सत्यप्रियता और सदाचार

आप अत्यन्त सत्यप्रिय थे। हास्य में भी कभी झूठ नहीं बोलते थे। आपका चरित्र एवं चाल चलन इतना ऊँचा था कि उसके कारण से किसी भी कार्य के करने में भय नहीं लगता था। आप अपने धार्मिक नियमों पर अडिग रहते थे। कोर्स की पुस्तकों को छोड़ कर आप धार्मिक साहित्य का बहुत अध्ययन किया करते थे।

कालिज जीवन

सन् १८८१ ई० में आप लाहौर कालिज में प्रविष्ट हुए। उस समय पंजाब भर में एक ही कालिज था। सारे पञ्जाब के छात्र वहीं पढ़ने जाते थे। कालिज के प्रिन्सिपल लाइटनर साहब एक अच्छे विद्वान् तथा सहृदय व्यक्ति थे। उस समय कालिज से प्रायः सभी सुयोग्य छात्र निकलते थे। गुरुदत्त जी पर भी इस कालिज का अच्छा प्रभाव पड़ा। कालिज में गुरुदत्त जी ने सब दार्शनिक ग्रन्थों का विश्लेषण किया। आप दर्शन-शास्त्र के तो प्रकाण्ड पंडित थे ही, किन्तु गणित, साइंस, अरबी, व्याकरण आदि विषयों में अनुपम योग्यता रखते थे। आप कोर्स के अतिरिक्त पुस्तकों में अधिकतम रुचि रखते हुए भी १८८३ में एफ० ए० की परीक्षा में सर्वप्रथम रहे।

आपने अध्ययन काल में एक सभा का निर्माण किया। जिसका नाम "निःशुल्क विवाद सभा" रखा गया। इसमें छात्रों के आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर व्याख्यान होते थे। ला० लाजपतराय भी इसके सदस्य थे। इस सभा का लोगों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। लोग आर्य बनने लगे। आपने अपने साथियों से मिलकर एक हस्तलिखित पत्र भी निकालना प्रारम्भ किया। इस पत्र का नाम "आर्यावर्त का संस्कारक" था। आपने इस पत्र द्वारा आर्यसमाज के सिद्धान्तों का बहुत प्रचार किया।

आस्तिकता की छाप

सन् १८८३ ई० में गुरुदत्त जी को अकस्मात् आज्ञा मिली कि आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द जी महाराज अजमेर में रुग्ण हैं। आपको उनकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आपकी आयु १६ वर्ष की ही थी, किन्तु आप इस पवित्र कार्य के सर्वथा योग्य थे, एतदर्थ इसलिये आपको ही स्वामी जी की सेवा के लिए अजमेर भेजा गया। आपने इस पवित्र कार्य को प्राप्त करके अपने आपको धन्य समझा।

आपको ईश्वर की सत्ता पर सन्देह रहता था। महर्षि को अत्यन्त भयंकर रोग में भी प्रसन्नवदन तथा दुःखसूचक कोई भी शब्द उनके मुख से न सुनकर आप के हृदय पर अद्भुत प्रभाव पड़ा। महर्षि को आप बड़ी आश्चर्यभरी दृष्टि से देखा करते थे। ब्रह्मचर्य, योग तथा ईश्वर-विश्वास की साक्षात् मूर्त्ति महर्षि दयानन्द जी को देखकर आपके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। आपके जीवन में एक अद्भुत परिवर्तन हुआ। जब ऋषिवर इस असार संसार को छोड़ रहे थे, उस समय उन्होंने प्राणायाम किये और इस संसार से चल बसे। ऋषि ने अन्तिम समय ये शब्द कहे "हे दयामय! हे सर्वशक्तिमान्, परमात्मन्! तूने अच्छी लीला की। तेरी इच्छा पूर्ण हो, तेरी इच्छा पूर्ण हो, तेरी इच्छा पूर्ण हो।" ऋषिवर के ये अन्तिम शब्द सुनकर गुरुदत्त जी मन्त्रमुग्ध हो गये। उन पर जादू का सा प्रभाव पड़ा। आज से गुरुदत्त कट्टर आस्तिक हो गये।

अजमेर से आते ही आपने वैदिक साहित्य का मन्थन कर डाला। आप जैसे-जैसे ऋषि ग्रन्थों का स्वाध्याय करते जाते थे वैसे-वैसे आपकी ऋषि के प्रति अगाध श्रद्धा होती जाती थी। आपने ऋषि के अमूल्य रत्न "सत्यार्थप्रकाश" नामक ग्रन्थ को अट्ठारह बार पढ़ा। जब कि आप प्रत्येक पुस्तक को एक बार पढ़कर ही स्मरण कर लेते थे। आप कहा करते थे कि जितनी बार भी मैंने सत्यार्थप्रकाश पढ़ा है मुझे प्रत्येक बार नया नया ज्ञान-प्रकाश मिला है।

सन् १८८६ में आपने एम० ए० की परीक्षा दी। एम० ए० में भी आप यूनिवर्सिटी में सर्वप्रथम रहे। आश्चर्य है कि गुरुदत्त जी ने इतने अंक प्राप्त किये कि आज तक इतने अक किसी छात्र ने भी प्राप्त नहीं किये हैं। जब कि वे प्रायः आर्यसमाज के कार्यों में ही व्यस्त रहा करते थे। इस प्रकार आपकी कीर्ति-चन्द्रिका सभी दिशाओं में तीव्र-गति से फैल गई।

आपने योग सीखने के लिये योगदर्शन का अध्ययन किया तथा अनेक योग की क्रियायों का अभ्यास किया। तत्पश्चात् आपको वेदार्थ समझने की धुन लगी। एतदर्थ आपने निरुक्त आदि ग्रन्थों का भी गम्भीर अध्ययन किया। आपके जीवन तथा स्वाध्यायशीलता का आपके मित्रों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। आपके मित्र मुन्शीराम तथा आत्माराम के हाथों में सदा अष्टाध्यायी रहती थी। आपने स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य को पढ़ना प्रारम्भ किया।

स्वा० अच्युतानन्द जी एक अद्वैतवादी संन्यासी थे। इनसे गुरुदत्त जी उपनिषदों का अध्ययन किया करते थे। गुरुदत्त जी के प्रश्न-उत्तर का इन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे अद्वैतमत को छोड़कर सच्चे आर्यसमाजी बन गये।

इसी प्रकार एक देहरादून निवासी महानन्द नामक प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् थे। गुरुदत्त जी ने उनसे भी कुछ दिन पढ़ा था। गुरुदत्त जी के प्रभाव मे वे भी आर्यसमाजी बन गये। इससे अधिक पंडित गुरुदत्त जी की योग्यता का और क्या प्रमाण हो सकता है।

विदेशी पंडितों को मुंह तोड़ उत्तर

अमेरिका और यूरोप के अनेक विद्वान् वेद और योग के सम्बन्ध में आपसे प्रश्न पूछा करते थे। आप उनको युक्तियुक्त और मुंह तोड़ उत्तर दिया करते थे। जिन्हें सुनकर वे दांतों तले अंगुली दबाते थे भारतीय बुद्धिमता" नामक पुस्तक लिखी। उसमें अनेक त्रुटियां का दिग्दर्शन करवा संशोधन करवाया।

गुरुदत्त जी ने वैदिक सिद्धान्तों पर आक्षेप करने वाले सभी पाश्चात्य विद्वानों को युक्तियुक्त एवं अकाट्य उत्तर दिये। ऋषिप्रदर्शित वैदिक सिद्धान्तों को पाश्चात्य वैज्ञानिकों के सम्मुख प्रस्तुत किया। "सामवेद-संहिता के स्वरों का भी संशोधन किया।

आपने "वैदिक मैगजीन" नाम का एक पत्र भी प्रकाशित किया। जिसके द्वारा वैदिक-सिद्धान्त एवं आर्यसमाज का डट कर प्रचार कार्य किया। आर्यसमाज का दिन-रात कार्य करने के कारण आपके स्वास्थ्य ने साथ नहीं दिया। आप रोगी हो गये। आपके स्वास्थ्य-सुधार के लिए प्रसिद्ध डाक्टरों को बुलाया गया। डाक्टरों ने स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिये आपसे मांस-भक्षण के लिये कहा। आपने उत्तर दिया कि "क्या मांस-भक्षण से मेरी मुक्ति हो जायेगी ? मैं थोड़े से जीवन के लोभ में अपने धर्म का बलिदान नहीं कर सकता, धर्म पर स्वयं बलिदान होने के लिये तैयार हूं।"

स्वर्ग-वास

ता० १८ मार्च, १८९० ई०, रात के बारह बजे आपकी दशा शोचनीय हो गई। जीवन की कोई आशा न रही। आपने देहावसान से पूर्व-मन्त्रों का उच्चारण किया, ईशोपनिषद् की कथा सुनी। दूसरे दिन ता० १९ को संसार को जगाकर इहलोक से सदा के लिये स्वर्ग सिधार गये।

धन्य हैं मुनिवर पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी जिन्होंने महर्षि की आज्ञा के अनुसार अपने अन्तिम श्वासों तक आर्यसमाज की अनवरत सेवा की। आर्यसमाज की पवित्र वेदि पर अपने अमूल्य जीवन की बलि चढ़ाई। आज तक आर्यसमाज में आपके स्थान की पूर्त्ति नहीं हो पाई है।

आर्यपथिक

धर्मवीर पण्डित लेखराम

(श्री सुदर्शनदेव शास्त्री)

धर्मवीर पण्डित लेखराम जी का नाम कौन नहीं जानता। ये आचार के धनी, आर्य संस्कृति के अनन्य उपासक, और निज पावन लक्ष्य के लिए मर मिटने वाले थे। सर्दी हो, गर्मी हो, आंधी हो या बरसात, सम्पत् या विपत्, दिन हो या रात, ये सतत अपने लक्ष्य की पूर्त्ति में ही लगे रहते थे। आपका पावन लक्ष्य यह ऋचा थी "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" सारे संसार को आर्य बनाओ। आप अन्तिम समय तक इस लक्ष्य की पूर्त्ति के लिये देश-सेवा करते रहे।

आपका जन्म शाण्डिल्यगोत्रीय, सारस्वत ब्राह्मण कुल में जेहलम जिले की चकलाला तहसील के सैदपुर नाम ग्राम में १९१५ वि० शुक्रवार के दिन पं० तारासिंह जी के घर हुआ था। आप के दादा जी का नाम नारायणसिंह था। ६ वर्ष की अवस्था में आप को उर्दू भाषा पढ़ने के लिये स्कूल में भेजा गया। आप कुशाग्रबुद्धि थे। आप अत्यन्त सुशील एवं हंसमुख थे। आपका स्वभाव स्वातन्त्र्य भावनाओं से ओत-प्रोत था। आपकी कविता-निर्माण की ओर भी रुचि थी।

१७ वर्ष की अवस्था में २१ दिसम्बर १८५७ ई० में आप के चचा श्री गण्डाराम जी ने आप को पुलिस में भरती करवा दिया। आपने पुलिस में सार्जेण्ट पद प्राप्त किया। आप को वहां एक सिख सज्जन के सत्संग से ईश्वर-उपासना का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप ब्राह्ममुहूर्त्त में प्रातःकाल ही उठते और ईश्वर-उपासना में लीन हो जाते थे। आप गीता का भी पाठ किया करते थे। गीता के प्रभाव से आप कृष्ण, कृष्ण पद का बहुत उच्चारण करते रहते थे। आप पर अद्वैतवाद का भी प्रभाव रहा।

२१ वर्ष की अवस्था में माता, पिता ने आपके विवाह करने का निश्चय किया। आपका वाग्दान (सगाई) कर दिया गया। विवाह के लिये माता जी ने तथा चचा जी ने पूरा बल लगाया। आपने विवाह से सर्वथा प्रतिषेध कर दिया कि मैं अभी विवाह करना नहीं चाहता। माता जी तथा चचा जी ने जिस कन्या के साथ आपका वाग्दान हुआ था, उसका विवाह आपके छोटे भाई श्री तोताराम जी के साथ कर दिया।

शनैः शनैः आपका मन धर्म की ओर आकृष्ट होने लगा। आपने अध्ययनार्थ काशी से गीताभाष्य

मंगवाया। उन्हीं दिनों में आपको पञ्जाब के प्रसिद्ध सुधारक श्री कन्हैयालाल जी अलखधारी द्वारा विरचित धार्मिक साहित्य का पता लगा। आप ने तत्काल ही वह सब साहित्य मंगवा कर पढ़ा। इस साहित्य के अध्ययन से आदर्श सुधारक महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रति अत्यन्त श्रद्धा हो गई। तत्कालीन समाचार-पत्रों में भी महर्षि के प्रचारों की धूम थी। श्री पण्डित जी अद्वैतवाद को तिलाञ्जलि देकर संवत् १९३७ में विधिवत् आर्यसमाज में दीक्षित हो गये। आप ने ऋषि के सभी ग्रन्थ मंगवा कर पढ़े। ऋषि-ग्रन्थों के अध्ययन से पंडित जी की काया पलट हो गई। आप ऋषि-लिखित प्रत्येक शब्द पर क्रियात्मक रूप से आचरण करने लगे। आप ऋषि के अनन्य भक्त बन गये। आपने सं० १९३७ में पेशावर में एक आर्यसमाज की स्थापना भी की, और अपने अनेक साथियों को आर्यसमाजी बनाया। आप सभी मतमतान्तरों का जोरदार खण्डन करते, किन्तु वेदान्त-विषय में आप कई बार उलझ जाते थे। शंका-समाधान के लिये आप ५ मई १८८० में ऋषि दयानन्द जी के दर्शनों के लिए गये। आप ने ऋषि जी से अनेक प्रश्न किये, सब का यथोचित उत्तर प्राप्त करके आप के हर्ष का पारावार न रहा। ऋषिवर ने पंडित जी को शिक्षा दी कि आप कम से कम २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का अवश्य पालन करना! ऋषि के अल्पकालीन सत्संग से ही आप में नवजीवन का सञ्चार हुआ। आप वैदिक धर्म के सच्चे पुजारी बन गये।

ऋषिवर के दर्शनों के पश्चात् अजमेर से लौट कर बड़ी लग्न से आर्यसमाज का कार्य आरम्भ कर दिया। आपने अपने सम्पादकत्व में "धर्मोपदेश" नामक मासिक पत्र का भी सञ्चार किया। आप वक्तृत्व कला में भी अत्यन्त दक्ष थे।

संवत् १८८२ में महर्षि दयानन्द जी ने आप को दो पत्र लिखे। प्रथम पत्र गोरक्षा के सम्बन्ध में था। गोरक्षा के हेतु जनता के हस्ताक्षर करवाने की प्रेरणा स्वामी जी ने पत्र द्वारा की थी। दूसरे पत्र में पञ्जाब में हिन्दी प्रचार के लिये शिक्षा कमीशन को मेमोरेण्डम भेजने के लिये लिखा था। आपने स्वामी जी के पत्र मिलते ही यह कार्य आरम्भ कर दिया और बड़े उत्साह से यह कार्य किया।

आपको किसी के द्वारा मिर्जा गुलाम मुहम्मद द्वारा लिखी "बुराहीन अहमदिया" नामक पुस्तक मिली। उसमें आर्यसमाज के प्रति विष उगला गया था। आपने उनको ऐसे उत्तर दिये कि मिर्जा जी को मुँह की खानी पड़ी। आपके ये उत्तर "यवन मत समीक्षा" पुस्तक रूप में प्रकाशित भी हैं।

आपने २४ सितम्बर १८८४ में सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और वैदिक धर्म के सच्चे सेवक बन कर आर्यसमाज का डट कर प्रचार करने लगे।

सम्वत् १९४० वि० में ऋषिवर दयानन्द जी महाराज इस लोक से चल बसे थे। स्वामी जी के देहावसान से पण्डित लेखराम जी के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। सारे संसार को वैदिक धर्म के झण्डे के नीचे लाना आप ने स्वकर्त्तव्य समझा और इस कार्य के लिए आप सर्वतोभावेन कटिबद्ध हो गये। आर्य जाति के लालों को विधर्मियों के जाल से बचाना और आर्यसमाज पर किये सभी आक्षेपों का उत्तर देना आपका नित्यकर्म था।

मिर्जा जी ने एक विज्ञापन प्रकाशित किया। उसमें घोषित किया गया था कि जो व्यक्ति एक वर्ष के लिए कादियां में आकर रहे वह मेरे चमत्कारों को प्रत्यक्ष कर सकता है और हो नहीं सकता कि वह यवन मत का अनुयायी न बन जावे। श्री पं० लेखराम जी तुरन्त कादियां पहुँचे। इन्हें उनको एक दिन

भी रखना कठिन हो गया। आपने मिर्जा जी का प्रबल खण्डन किया। इतना ही नहीं आपने कादियाँ में एक आर्यसमाज की स्थापना की।

एक बार मिर्जा गुलाम मुहम्मद ने एक विष्णुदास नामक हिन्दू को बहकाया, कि तेरी मृत्यु हो जायेगी। यदि तू ने एक वर्ष के अन्दर यवन मत स्वीकार नहीं किया। पण्डित जी को यह समाचार तार द्वारा मिला। तार मिलते ही पण्डित जी कादियां पहुंचे और उसे आर्यसमाज का महत्व समझाया और उसे आर्यसमाज का सभासद् बना दिया। वहां आर्यसमाज के प्रचार से साधारण जनता भी मिर्जा जी की पोल को जान गई।

मिर्जा जी ने एक "सुरमा चश्म आरिया" नामक पुस्तक लिखी। पंडित जी ने इस पुस्तक के उत्तर में "नुस्खा खब्र अहमदिया" नाम से प्रकाशित की थी।

पंडित जी उपदेश कार्य करते हुए लाहौर पहुंचे। वहां पंडित जी ने संस्कृत व्याकरण का अच्छा अभ्यास किया। एतत्पश्चात् आपने वैदिक साहित्य का भी अनुशीलन किया। पादरी खड़कसिंह जी ने ईसाई मत समर्थक छः व्याख्यान दिये। पंडित जी ने ट्रैक्ट प्रकाशित करके सबका उत्तर दिया। फिरोजपुर से प्रकाशित होने वाले "आर्य गजट" नामक पत्र का सम्पादन कार्य भी आप करते रहे। आप सदा आर्य समाज के कार्यों में व्यस्त रहते थे।

ऋषिवर के निर्वाण के कुछ काल पश्चात् ही आर्य समाज के प्रचार से ऋषि के जीवन-चरित्र की चारों ओर से मांगें आने लगीं। आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने पंडित जी को ही यह दुःसाध्य कार्य सौंपा। पंडितजी ने यह कार्य सहर्ष स्वीकार किया। अभी तक आपका कार्य क्षेत्र पंजाब था। जीवन-चरित्र लिखने का कार्य भार सम्भालने के पश्चात् आपने समस्त भारत का भ्रमण किया। इसी बीच में आपका स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज से घनिष्ठ परिचय हो गया।

ऋषिवर के जीवन-चरित्र की सामग्री प्राप्त करने के हेतु आप सर्व प्रथम मथुरा पहुँचे। उस समय स्वामी विरजानन्द जी के शिष्य पं० युगलकिशोर और पं० दामोदर चौबे जीवित थे, जो ऋषिवर के सहपाठी थे। मथुरा में कुछ दिन निवास करने के पश्चात् जहां जहां ऋषिवर पधारे थे वहां वहां पंडित जी ने भ्रमण करके उनकी जीवन-घटनाओं का संग्रह किया।

मिर्जापुर आर्यसमाज के एक सभासद् थे जो जन्म से कलवार थे। आर्यसमाज के सभासद् होने पर भी उन्हें किसी ने भी यज्ञोपवीत प्रदान नहीं किया। जब पंडित जी मिर्जापुर पहुंचे तो उस सभासद् से पूछा कि "तुम यज्ञोपवीत क्यों नहीं लेते" उत्तर मिला कि मुझे कोई भी आर्यसमाजी पंडित यज्ञोपवीत देने के लिए तैयार नहीं हैं। पंडित जी ने उसका तत्काल यज्ञोपवीत संस्कार कराया और पंडितों को समझाया कि शुभ कार्यों में जाति बिरादरी की कोई परवाह नहीं करनी चाहिये।

आप सत्यार्थप्रकाश का फारसी में अनुवाद करना चाहते थे, और अफगानिस्तान, परशिया, अरब आदि देशों में वैदिक धर्म का पावन संदेश सुनाना चाहते थे, किन्तु आपकी यह इच्छा अपने जीवन-काल में पूर्ण न हो सकी।

सिन्ध हैदराबाद में कुछ हिन्दू और मुसलमान ईसाई बनने को तैयार थे। आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने इस कार्य को सम्भालने के लिए आपको भेजा। वहां का एक रईस अपने दो पुत्रों सहित ईसाई बनने को तैयार था। आप स्वामी पूर्णानन्द जी (जो सिन्धी भाषा जानते थे) को साथ लेकर वहां पहुंचे। लोगों को ईसाई मत स्वीकार करने से बचाया और वैदिक धर्म के प्रचार से सिन्ध-निवासियों को सचेत किया।

दीवान सूरजमल नामक एक सिन्धी रईस मुसलमान होने को तैयार थे। यह वृत्तान्त पंडित जी को विदित हुआ। वे तुरन्त उनके पास पहुंचे। सेठ जी तो आपका आगमन सुनकर कहीं खिसक गये। आपने उनके पुत्रों को समझाया। आप चार बार सिन्ध गये। मौलवी लोगों को अनेक बार शास्त्रार्थ के लिए ललकारा, अन्त में मौलवियों को शास्त्रार्थ में सामने आना पड़ा। एक दिन डट कर शास्त्रार्थ हुआ लोग सत्य और असत्य को पहिचान गये। आपने अनेक हिन्दू परिवारों को मुसलमान बनने से बचाया। आप सच्चे धर्म वीर थे।

ऋषिवर के जीवन चरित्र की सामग्री संग्रह करने के विचार से पंडित जी अजमेर पधारे। वहां के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिले। ऋषि-जीवन के सम्बन्ध में जो बातें मिलतीं उन्हें नोट करते जाते थे। श्री चान्दकरण जी शारदा एडवोकेट के पिता बाबू रामविलास जी से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया।

आर्य जगत् के पूज्य संन्यासी नित्यानंद जी तथा विश्वेश्वरानंद जी बूँदी राज्य में शास्त्रार्थ कार्य में जुटे हुए थे। इनकी सहायतार्थ पंडित जी को भी भेजा गया। बूँदी के राजा ने शास्त्रार्थ की स्वीकृति नहीं दी अतः पंडित जी वापिस आकर जहाजपुर पहुंचे। आप यहां व्याख्यान दे रहे थे कि एक मुसलमान सूबेदार ने बीच में ही उठ कर कहा कि "यदि ऐसे ही तीसमारखां थे तो बूँदी से क्यों भाग आये।" पंडित जी कालोत्तरी (हाजिर जबाब) थे। आपने तुरन्त उत्तर दिया "विरोधी दल शास्त्रार्थ के लिये नहीं आया तो फिर हम वहाँ क्या करते, हम हजरत मोहम्मद की तरह हिजरत करके (भाग कर) तो नहीं आये।"

आपकी उपनिषद् भाष्य, मनुस्मृति भाष्य, तथा वाल्मीकि रामायण का अनुवाद करने की प्रबल इच्छा थी, किन्तु यह आपकी इच्छा पूर्ण न हो सकी।

ऋषिवर के जन्म स्थान का अब तक ठीक पता न था। आप ऋषि के जन्म स्थान का ठीक ठीक पता करने के लिए काठियावाड़ पहुँचे। आपने वहां बांकानेर प्रांत और मौरवी राज्य में भ्रमण किया। दिन रात के परिश्रम से और बड़ी कठिनता से आपने ऋषिवर के जन्म स्थान का पता लगाया कि उनका निश्चित जन्म स्थान मौरवी राज्य में टङ्कारा नामक ग्राम है।

ऋषिवर ने आपको एक आज्ञा दी थी कि २५ वर्ष से पहिले गृहस्थ में प्रवेश मत करना। आपने ऋषि-आज्ञा का इतना दृढ़ता पूर्वक पालन किया कि ३६ वर्ष तक आपने ब्रह्मचर्य का पालन किया। वैशाख १६५० विक्रमी में पर्वतीय प्रदेश में भन्त ग्राम निवासिनी लक्ष्मीदेवी से आपका विवाह हुआ। देवी की आयु इस समय २६ वर्ष की थी। इस सम्बन्ध स्थापना में आपने जन्मगत जातीय जञ्जीरों के बंधन को खण्ड-खण्ड करके सच्चे धर्मवीर होने का परिचय दिया। लक्ष्मीदेवी अपठित थीं। आपने उसको स्वयं घर पर पढ़ाया।

एक बार स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा पंडित लेखराम करनाल आर्यसमाज के उत्सव पर गये। पंडित जी के पांव में फोड़ा निकला हुआ था। पंडित जी उत्साह के धनी थे, फोड़े की कोई परवाह न करके चले तो गये किन्तु फोड़े ने जोर पकड़ा, वापिस आ न सके। जब डाक्टर बुलाने की बात आई तो एक मुसललान डाक्टर का नाम उनके सामने उपस्थित किया गया। पंडित जी ने कहा—क्या कोई आर्य डाक्टर नहीं है? श्री ला० कर्त्तारामजी ने कहा—डॉक्टर के साथ आर्य अनार्य का क्या सम्बन्ध। पंडित जी की आंखें लाल हो गई और कड़क कर बोले "जो आर्य समाज डाक्टरों, स्कूल के अध्यापकों और

विद्यार्थियों को आर्य न बना सका वह क्या खाक प्रचार करेगा" यही तो आर्य समाज के प्रचार के सर्वोत्कृष्ट साधन हैं। आपका हृदय "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" की भावनाओं से ओतप्रोत था।

आप संसार को आर्य बनाने के निम्नलिखित साधन बतलाया करते थे।

१—विधवा विवाह की परम आवश्यकता है। जिससे हिन्दुओं की विधवायें विधर्मियों के चँगुल में न फँसे।

२—शुद्धि-फण्ड की स्थापना। व्यक्ति को जिस धर्म में से सामान्य अपराध कर देने पर सदा के लिये बहिष्कृत कर दिया जाये और सुधार की कोई व्यवस्था न हो उस धर्म का किस प्रकार से अस्तित्व रह सकता है।

३ वेद प्रचार निधि की स्थापना। जिसके बल से समग्र भूमंडल में वेद का प्रचार किया जा सके।

४—बाल-विवाह निषेध।

५—प्रत्येक भाषा में वैदिक साहित्य का प्रकाशन करना।

६—वर्तमान साधु धर्म के कार्य में निरत रहें।

७—दान की व्यवस्था ठीक हो। दान के नाम से व्यर्थ धन नष्ट न किया जाये।

सियालकोट के रिसाले के कुछ एक सिपाही मुसलमान बनने को उद्यत थे। श्री पंडित जी को इस बात का पता चला। इतना सुनने पर पंडित जी के लिये एक क्षण ठहरना असम्भव था। आप शीघ्राति-शीघ्र सियालकोट पहुंचे। वहां तीन दिन तक मुसलमानी मत का खंडन किया। परिणाम यह हुआ कि सैकड़ों सिख मुसलमान होने से बच गये।

२४ मई को भेरा आर्यसमाज का उत्सव था जिस में आपको सम्मिलित होना था, परन्तु आपके सन्तान होने वाली थी। इस ओर का आप कोई ध्यान न करते हुये १५ मई को लाहौर से कहूटा चले गये। १८ मई को आपके घर एक पुत्र ने जन्म लिया। गृहस्थों के लिये घर में पुत्र-जन्म का होना अत्यंत हर्षवर्द्धक होता है। परंतु पंडित लेखराम जी उन व्यक्तियों में से न थे। उनके समक्ष तो सर्व प्रधान आर्यसमाज का ही कार्य रहता था। आप २५ मई को भेरा पहुंचे। वहां बालकराम नामक साधु आर्य समाज की निन्दा करता फिर रहा था। आपने उसको शास्त्रार्थ के लिये ललकारा किन्तु उसका सामने आने का साहस नहीं हुआ।

भेरा में आपने एक बहुत ही ओजस्वी व्याख्यान दिया। जिसमें युवकों को संदेश दिया कि आज कल के युवक व्यायाम नहीं करते और २, ३ चपाती खाकर खड़े हो जाते हैं। नवयुवकों को अच्छा भोजन करना चाहिये और व्यायाम अवश्य करना चाहिये। व्याख्यान का उपस्थित जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा।

पंडित जी क्वेटा बिलोचिस्तान आदि की ओर प्रचार कार्य के लिये गये हुए थे। घर से तार पहुंचा कि आपके अनुज (छोटा भाई) तोताराम की मृत्यु हो गई है। आप प्रचार कार्य में इतने व्यस्त थे कि आप प्रचार कार्य को छोड़ कर नहीं आ सकते थे। एक बार घर पर जाना भी आवश्यक था। किन्तु आप प्रचार कार्य में ही संलग्न रहे। आपने "वसुधैव कुटुम्बकम्" का आदर्श उपस्थित किया। क्वेटा के प्रचार कार्य से आप निवृत्त ही हुए थे कि दामानगर से एक तार आया। जिसमें लिखा था कि मुसलमान

मौलवी आपसे शास्त्रार्थ करने के लिये उद्यत हैं। पंडित जी के नानानगर पहुँचने पर कोई भी मौलवी समक्ष नहीं आया। आपने वहां पर सन्ध्या के सम्बन्ध में व्याख्यान दिया।

एतत्पश्चात् पंडित जी अमृतसर पहुंचे ही थे कि मुरादाबाद से एक तार आया कि श्रीराम सारस्वत ब्राह्मण ईसाई बन चुका है। आप तार मिलते ही मुरादाबाद की ओर चल दिये। वहां पहुँच कर पंडित जी ने श्रीराम को आर्यसमाज मन्दिर में ५०० व्यक्तियों की उपस्थिति में शुद्ध किया। इसके पश्चात् घोर बर्षा में ही आप धर्मशाला (पर्वतीय स्थान) की ओर चल दिये। वहां सनातनी पंडित ब्रह्मानंद जी से वेदान्त के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ करके विजय प्राप्त की।

अजमेर आर्यसमाज का वार्षिक उत्सव था। नगर कीर्तन में पंडित जी भी सम्मिलित हुए। यहाँ पंडित जी की बातों से सभी मुसलमान भड़क उठे। जब नगर कीर्तन ख्वाजा चिश्ती की दर्गाह के पास पहुँचा तो सभी आर्य समाजी भयभीत हो गये। पंडित जी नहीं जानते थे कि डर किस चिड़िया का नाम है। पंडित जी ने दर्गाह के द्वार से तीस कदम गिन कर छोटे पुल पर खड़े होकर कब्रपरस्ती और मर्दुमपरस्ती का बड़ी निर्भयता से खण्डन किया। मुसलमान यह सब खड़े-खड़े देखते रहे। धर्मवीर पंडित लेखराम जी को इस प्रकार वीरता से व्याख्यान देते हुये देख कर आर्यों का साहस भी चौगुना हो गया।

आर्यप्रतिनिधि पंजाब से आप केवल २५) रु० ही वेतन लेते थे। विवाह के पश्चात् आपको ३०) रु० दिया जाने लगा। तत्पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द ने ३५) रु० वेतन करा दिया। आप सभा से इतना ही वेतन लेते थे जिससे आपका कार्य मात्र चलता रहे। आपने अपने वेतन के सम्बन्ध में कभी भी कोई बात नहीं कही। आपका एक मात्र लक्ष्य संसार में आर्यसमाज का प्रचार करना ही था न कि धनोपार्जन करना।

आपको विदित हो जाता कि अमुक स्थान पर लोग मुसलमान या ईसाई बनने को तैयार हैं। आप सभा के प्रतिषेध करने पर भी वहां पहुंचते और सभा से कह देते कि मैं वहाँ पर अवश्य जाऊँगा, यदि आपने वेतन काटना हो तो काट लेना। आपको आर्य जाति एवं धर्म से अत्यन्त प्रेम था।

एक बार एक स्कूल के अध्यापक ने आर्यसमाज का प्रचार करने के लिये श्री पं० लेखराम जी को कर्तारपुर बुलाया। उन्होंने अपने व्याख्यान में कुछ शब्द इस प्रकार के कहे कि जो पुरुषोत्तम राम के भक्त होते हैं वे राम की स्तुति और रावण की निन्दा करते हैं। यदि कोई रावण का भक्त हो तो वह इसी प्रकार रावण की स्तुति और राम निन्दा करेगा। ये शब्द जब श्रोताओं ने सुने तब उनमें से कितने ही मूर्ख पंडित जी के भावों को न समझ कर यह कहने लगे कि "यह तो मर्यादा पुरुषोत्तम राम की निन्दा करते हैं" और यह कह कर पंडित जी पर ईंट-पत्थर और मिट्टी के ढेलों की वर्षा आरम्भ कर दी। पंडित जी निर्भयतापूर्वक व्याख्यान देते रहे। व्याख्यान की समाप्ति पर गाड़ी पकड़ने के लिये जब स्टेशन पर जाने लगे तब जिस अध्यापक महोदय ने उनको प्रचारार्थ बुलाया था वह कहने लगा "पण्डित जी महाराज वस्त्रों पर जो मिट्टी गिर गई है उसे झाड़ लेंगे।" पण्डित जी ने हँस कर उत्तर दिया "अभी तो मार्ग में और मिट्टी के ढेले पड़ने हैं स्टेशन पर जाकर इकट्ठी झाड़लेंगे।" पंडित जी महाराज ईंट-पत्थरों की वर्षा से कहां डरने वा घबराने वाले थे। उन्होंने उसी दिन निश्चय कर लिया कि "कर्तारपुर में आर्यसमाज की स्थापना अवश्यमेव करनी है।" पंडित जी अपनी धुन के धनी थे। जो निश्चय करते थे उसे पूर्ण करके छोड़ते थे। वे तो सिर को हथेली पर लिये फिरते थे; ईंट पत्थर का भय उनके लिये

अर्थ रखता था। एक दो बार ही नहीं, सात बार प्रचार करने के लिए पंडित लेखराम जी कर्त्तारपुर गये और आर्यसमाज की स्थापना करके ही छोड़ी।

"एक बार मेरठ प्रान्त के एक ग्राम के बड़े जमींदार जो मुसलमानों की संगति में उठते बैठते थे, उन्होंने अखबारों में घोषणा की कि अमुक तिथि तक मेरी शंकाओं का समाधान किसी हिन्दू पंडित ने नहीं किया तो मैं हिन्दू धर्म को छोड़कर मुसलमान हो जाऊँगा।" इसकी सूचना किसी ने पत्र द्वारा पंडित लेखराम जी को भेज दी। जिस समय यह पत्र पहुँचा उस समय पंडित जी भोजन कर रहे थे, उसी समय पत्र खोलकर पढ़ा और तांगा मंगवा कर चलने को तैयार हो गये। इनकी वृद्धा माता और पत्नी ने यह कह कर रोका कि "आपको हमारा तो ध्यान नहीं, किन्तु आपका इकलौता पुत्र भयंकर रोग में ग्रस्त है, संभव है बचे या न बचे, इसकी चिकित्सा का प्रबन्ध तो आपको करना ही चाहिये" माता जी के आदेश और पत्नी की प्रार्थना की ओर विशेष ध्यान न देकर मुझे आवश्यक कार्यवश जाना है, यह कह चल दिये। मार्ग में तार मिला कि "पुत्र की मृत्यु हो गई"। तार पढ़ कर कहने लगे "क्या हुआ एक पुत्र मर गया ? मुझे जाति के हजारों पुत्र बचाने हैं।" जिस समय पंडित जी निश्चित स्थान पर पहुँचे उस समय वहाँ पर सैंकड़ों मौलवी पहुँचे हुए थे और वह जमींदार अपने सैंकड़ों साथियों के साथ मुसलमान होने के लिए तैयार था। पंडित जी को वेष-भूषा भी मौलवियों के समान थी, थोड़ा सा भेद था, गले में कुरान लटकी हुई, दाढ़ी बहुत छोटी मूँखें लम्बी-लम्बी थीं। एक मौलवी ने पडित जी को भी मौलवी समझकर पूछा "क्यों मौलवी साहब ! आपकी मूँछ तो लम्बी-लम्बी हैं आपकी दाढ़ी को क्या हुआ ?" पंडित जी अवसरवादी (हाजिर जवाब) थे, अतः पडित जी ने हँसकर उत्तर दिया कि "शेरों के तो मूछें ही हुआ करती हैं दाढ़ी तो बकरों के होती हैं" इसके पश्चात् पंडित जी ने एक दो घण्टा डट कर सब मौलवियों से शास्त्रार्थ किया। उन बेचारों में कहां शक्ति थी कि उनकी अकाट्य युक्तियों के आगे वे टिक सकें। कुछ समय के पश्चात् सब भाग खड़े हुये। पंडित जी ने वहाँ ठहरकर प्रचार किया और उन सैंकड़ों किसानों को इस्लाम के गड्ढे में पड़ने ने बचा लिया और उन्हें यज्ञोपवीत देकर सच्चे वेदामृत का पान कराया।

एक बार आप और स्वामी श्रद्धानन्द जी की सनातन धर्म के महोपदेशक श्री पंडित दीनदयालु से भट हो गई। लेखराम जी ने उनस कहा "आप हमें तो कोसने में बड़े बहादुर हैं किन्तु मुसलमान आपकी जड़ खोखली कर रहे हैं। उन्हें आप कुछ नहीं कह सकते।" दीनदयालु जी ने उत्तर दिया कि—"यह काम हम लोगों ने आपको सौंप रखा है, जब तक पंडित लेखराम जीवित हैं तब तक हमारी जड़ कौन खोखली कर सकता है।" संसार में वे पुरुष धन्य हैं जिनकी विरोधी भी प्रशंसा करें।

आपको लेख कार्य से बहुत स्नेह था। यह सत्य है कि जितना सुधार कार्य लेख से हो सकता है उतना अन्य प्रकार से नहीं। लेख स्थिर रहने से प्रचार कार्य में अत्यन्त सहायक होता है। आपने अपने जीवन में दिन रात प्रचार कार्य करते हुए लगभग ३३ पुस्तकें लिखीं। आप सच्चे लेखराम थे।

स्वर्ग-वास

सन् १८९७ फरवरी मास में एक युवक आपके घर आया। जो शरीर से काला और कद से छोटा था। उसने बतलाया कि मैं दो वर्ष पहले हिन्दू था, मुझे मुसलमान बना लिया गया। अब मैं शुद्ध होना चाहता हूँ। शुद्ध होने की बात सुनकर पंडित जी के हर्ष का पारावार न रहता था। वह पंडित जी के सदा साथ रहने लगा। अनेक व्यक्तियों ने पंडित जी से कहा भी कि यह भयंकर आकृतिवाला युवक बहुत

भयंकर है। आपको इससे बच कर रहना चाहिए। इस बात की पंडित जी ने कोई चिन्ता न की।

४ मार्च को मुसलमानों का प्रसिद्ध पर्व ईद थी। इस नीच युवक ने लेखराम के वध का यही दि अच्छा समझा। सभा के कार्यालय से विदित हुआ कि ता० ६ मार्च को पंडित जी लाहौर पहुँच रहे हैं पंडित जी मध्याह्नोत्तर २ बजे लाहौर पहुँचे। वह पिशाच भी उनके साथ हो लिया। लेखराम जी लेख कार्य में व्यस्त थे। सन्ध्या का समय होने पर लेखनी, कागज आदि रख कर जब पंडित जी ने अङ्गड़ाई ली तो उस राक्षस ने अपना मनोरथ पूरा करने के लिये कम्बल में छुपाई छुरी को निकाल कर पंडित जी के पेट में छुरा घोंप दिया। जिससे उदर में कई घाव हो गये। अन्तड़ियां कट कर बाहर पड़ना ही चाहती थीं। आपने बाये हाथ से उन्हें दबाये रखा और दायें हाथ से घातक को पकड़ा। सहायता के लिए माता तथा पत्नी भी आई। हाथ छुड़ा कर वह नीच राक्षस भाग गया।

आपको चिकित्सालय में ले जाया गया। डा० बेरी साहब दो घंटे तक आपकी आंतें सीते रहे, किन्तु एक आँत के कट कर दो टुकड़े हो चुके थे चिकित्सा में सफलता नहीं मिली। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भी आपके पास ही बैठे हुये थे। मृत्यु से पहले आर्य सज्जनों ने आपसे पूछा कि आपकी अन्तिम इच्छा क्या है ? आपने उत्तर में कहा—"आर्यसमाज के लेख का कार्य बन्द नहीं होना चाहिये।" पंडित जी को इस समय भी आर्य समाज के कार्य की ही एक मात्र चिन्ता थी। पंडित जी को न घर वालों की चिन्ता थी, न घातक पर रोष था, न मृत्यु से किसी प्रकार का भय था। आप "विश्वानि देव" और गायत्री मन्त्र का निरन्तर पाठ करते हुए ता० ७ मार्च १८९७ ई० रात्रि के दो बजे इस संसार से चल बसे।

ता० ७ मार्च को सूर्योदय से पूर्व ही सारे लाहौर नगर में पंडित जी की मृत्यु का वृत्तान्त बिजली की भांति फैल गया। सभी मतावलम्बियों को आपकी मृत्यु पर अत्यन्त खेद हुआ। दो हजार व्यक्ति आपके अन्तिम दर्शन करने पहुँचे। शव-शय्या जब अनारकली बाजार में पहुंची तब उसके दर्शनार्थ बीस हजार व्यक्ति एकत्र थे। सभी शोक-सागर में डूबे हुये थे। एक नवयुवक तो शोकवश अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ा। सात हजार व्यक्ति श्मशान भूमि में शव के साथ पहुँचे। वहां वैदिक रीति से अन्त्येष्टि संस्कार किया गया।

पंडित जी गुणों की खान थे। उनका जीवन अदम्य उत्साह और वैदिक धर्म के प्रचार की धुन से ओत प्रोत था। पंडित जी के गुणों का वर्णन करने के लिए न लेखनी में इतनी सामर्थ्य है और न इतनी वाक् में शक्ति है। भगवान् भारत में ऐसे नररत्न काले-काले उत्पन्न करते रहें।

"स जातो येन जातेन देशो याति समुन्नतिम्"

धर्मवीर—



श्री पं० लेखराम जी 'आर्य पथिक'
जिनका मतान्ध मुसलमान के छुरे से बलिदान हुआ।

अमर शहीद-



श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज
जिनका मतान्ध मुसलमान की पिस्तौल की गोलियों से बलिदान हुआ ।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान

(श्री देवराज विद्यावाचस्पति)

जिस महान् व्यक्ति के विषय में मुझे यहां लिखने का अवसर प्राप्त हुआ है, उसके लिए श्री सम्पादक जी को धन्यवाद है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम सब जनता में प्रसिद्ध है। सन्यासाश्रम से पहले इनका नाम महात्मा मुन्शीराम जी था। जब इन्होंने अपनी सर्व सम्पत्ति का त्याग कर दिया, और अधिकांश में गुरुकुल कांगड़ी को वह सम्पत्ति दे दी। और उनके पास अपने और अपने पुत्रों के लिए कुछ बाकी न रहा, तब उन्हें आर्य जनता ने "महात्मा" शब्द से पहचाना। इसके पहले वे लाला मुन्शीराम शब्द से ही प्रख्यात हुए।

महात्मा जी का जन्म जालन्धर जिले के तलवन ग्राम में सन् १८५६ ई० में हुआ था। इनके पिता लाला नानकचन्द जी उत्तर प्रदेश में पुलिस के बड़े अफसर थे। वे बनारस, बरेली आदि कई बड़े शहरों में पुलिस कोतवाल के पद पर रह चुके थे। वे नौकरी से निवृत्त हो कर अपने गांव में आकर रहने लगे थे।

तलवन ग्राम समृद्ध था। उसमें पक्के मकान थे। दो कुंए और एक मंदिर था। एक भाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय लोगों की बस्ती थी और दूसरे भाग में उसका बाजार था जिसमें प्रायः सभी चीजें मिलती थीं। तीसरे भाग में काश्तकार प्रायः अराईं मुसलमान रहते थे। तलवन उस समय पुराने विचारों का जबरदस्त गढ़ था।

श्री मुन्शीराम जी का गृहस्थाश्रम में यह स्वभाव था कि हरेक चीज को बड़ी मात्रा में रखा करते थे। उस समय कोलर, नकटाई आदि सब कुछ पहनते थे। परन्तु सिर के ऊपर साफा या फैल्ट कैप होती थी। अंग्रेजी टोप उन्होंने कभी नहीं पहनी। वे अपने वकालत के दिनों में भी सुगन्धित तैल लगाकर बाहर नहीं जाते थे। जल्दी सोना और जल्दी उठना सर्वदा उनके जीवन का अंग बना रहा। उनका सर्वदा यही विचार रहा कि यथा सम्भव पुरानी रस्मों को तोड़ा जाय।

इसी के कारण वह ऐसी शिक्षा प्रणाली चाहते थे जिस शिक्षा में शिक्षित हुए भारत के नवयुवक पुराने रूढ़ि रिवाजों से अलग होकर वैदिक शिक्षा प्रणाली के अनुसार शिक्षित हों। इन विचारों की और भी अधिक पुष्टि हो गई "जब उन्होंने बरेली में महर्षि स्वामी दयानन्द के व्याख्यान सुने और उनसे ईश्वर धर्म आदि के सम्बन्ध में अनेक विचार परिवर्तन किये। इससे उनके जीवन में महान् क्रांति हुई। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा और उसमें बताई हुई गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का निर्देश और आवश्यकता प्राप्त की। उनको इस विचार ने इतना अधिक प्रेरित किया कि जब तक भारतीय विद्यार्थी नवीन अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को छोड़कर पुरानी वैदिक आर्य प्रणाली के पठन-पाठन का अभ्यास नहीं करेंगे तब तक भारतीय युवकों में जागृति नहीं आ सकती।

इतिहास का अध्ययन करते हुए उन्होंने भारत की पराधीनता का कारण जान लिया कि भारतीय युवकों को अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा ऐसा बनाया जा रहा है जिससे भारतीय युवक देखने में तो भारतीय हों परन्तु अन्दर से आचार व्यवहार और विचारों में पूरे अंग्रेज हों।

अंग्रेजी शिक्षा मैकाले की शिक्षा पद्धति का परिणाम है। उसे जड़ से बदलने की आवश्यकता महात्मा जी ने अनुभव की।

अंग्रेजी शिक्षा के परिणाम से नवयुवकों में मद्य-मांस का प्रचार हो रहा था। सिगरेट और बीड़ी का व्यसन लोगों में घुस गया था। अफीम, भांग, चरस आदि मादक द्रव्यों में नवयुवक बंधते जा रहे थे। शिक्षित लोग मिथ्याभिमान के कारण अशिक्षितों से घृणा और भेद भाव सीख चुके थे। युवकों में अशिष्टता, असभ्यता और दुराचार आदि के रूप में अंग्रेजी शिक्षा में युवकों के हृदयों को काबू कर लिया था। संयम और सदाचार शब्द असम्भव जैसी वस्तुएँ समझी जाने लगी थीं। कलियुग में ब्रह्मचर्य जैसी कोई वस्तु भी हो सकती है इस पर से लोगों का विश्वास हट गया था। इस प्रकार ,महात्मा जी ने यह आवश्यक समझा कि सदाचार का प्रचार करने के लिये सद्धर्म प्रचारक अखबार निकाला जाय, और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के लिये एक संस्था स्थापित की जाए।

सद्धर्म प्रचारक अखबार उर्दू भाषा में प्रकाशित होता था। परन्तु शिक्षा प्रणाली के लिए गुरुकुल की स्थापना हुई। उसके कुछ ही वर्ष पश्चात् सद्धर्म प्रचारक को शुद्ध हिन्दी 'भाषा में' और देव नागरी लिपि में कर दिया गया। धार्मिक विचारों के प्रचार के लिये सम्पादकीय मुख्य लेख महात्मा जी का अपना होता था। और साथ ही भारतीय जनता में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में प्रेरणात्मक अनेक लेख होते थे।

महात्मा जी ने अपने दृढ़ संकल्प के अनुसार महान् कार्य करने के लिए अपनी वकालत छोड़ दी। और आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब का प्रधान पद भी छोड़ दिया, तथा उन्होने प्रतिज्ञा की कि जब तक ३०००० (तीस हजार) रुपया इकट्ठा नहीं कर लूंगा तब तक घर में पांव नहीं रखूंगा। उनके अनेक मित्रों ने, आर्य बन्धुओं ने उनको बहुत समझाया कि यह कार्य नहीं हो सकेगा और ऐसी प्रतिज्ञा न करें। परन्तु वे दृढ़प्रतिज्ञ, आशावादी और ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा रखने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने किसी की बात नहीं सुनी। और अपने कार्य में दत्तचित्त होकर लग गये। कुछ ही दिनों में उनको तीस हजार रुपये प्राप्त हो गए। शिक्षा सम्बन्धी देश में क्रांति होने वाली थी। परमेश्वर ने उनकी सहायता की। कांगड़ी ग्राम की भूमि प्राप्त होने पर गंगा के तट पर निर्जन वन में गुरुकुल की स्थापना कर दी।

साधारण जनता के सामने जो प्रतिनिधि सभा के लोग थे और D. A. V. कालेज में अथवा अंग्रेजी शिक्षालयों में पढे हुए थे, तथा आर्यसमाजों के सभासद् मंत्री व प्रधान भी थे। उन सब को यही चिन्ता थी कि निर्जन वन में कौन अपने लड़कों को भेजेगा। कैसे वहां के लड़कों का भरण पोषण होगा। इत्यादि अनेक संशय वाली बातों से महात्मा जी के मन को ढीला करने का प्रयत्न किया जाता था। परन्तु महात्मा जी के हृदय में परमेश्वर पर अटल श्रद्धा थी और स्वामी दयानन्द जी के सत्यार्थ प्रकाश से उनको अटल प्रेरणा मिल चुकी थी। जिससे उन्होने निर्जन वन में बैठकर गुरुकुल जैसी महान् शिक्षण संस्था का आदर्श देश-देशान्तर में फैलाया। उनको सहायक भी मिल गये और भारत के सभी प्रान्तों के बच्चे भी इकट्ठे हो गये। कार्य बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न होने लगा।

आर्य समाजियों के अतिरिक्त पौराणिकों ने भी गुरुकुल शिक्षण में बड़ा सहयोग प्रदान किया। उस समय के संस्कृत पढ़ाने और व्याकरण, दर्शन, शास्त्रादि पढ़ाने वाले प्रायः सभी पौराणिक पण्डित थे। महात्मा जी ने एक एक विद्वान् को काशी से तथा अन्य स्थानों से ला, ला कर जमा किया था। वे बड़े प्रेम के साथ ब्रह्मचारियों को शिक्षण दिया करते थे।

एक बार एक कट्टर पौराणिक गुरुकुल देखने के लिये आ गया। उन्होंने यह जानकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया कि चारों वर्णों के बालक एक ही पंक्ति में एक आसन पर बैठकर भोजन करते हैं। यह अच्छा नहीं। महात्मा जी ने कहा हमें तो कोई भेद नहीं दीखता। अभी तो वे शिक्षा ग्रहण करने वाले बालक हैं। शिक्षा ग्रहण करके आगे जैसे वे अपने कर्म दिखलायेंगे, वैसे वे सबके सामने आ जायेंगे। अच्छा मैं बालकों को एक पंक्ति में खड़ा कर देता हूं। आप बालकों में से बता दीजिये कौन ब्राह्मण है कौन शूद्र है ? पंडित जी ने जो जन्मना शूद्र बालक थे उनको तो ब्राह्मण बतला दिया और जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे उन्हें शूद्र बता दिया। सब लोग हँस पड़े। महात्मा जी ने कहा कि जिन को आपने शूद्र बताया है वे तो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए हैं। और जिन्हें ब्राह्मण बतलाया हैं वे शूद्र कुल में उत्पन्न हुए हैं। पण्डित जी बड़े लज्जित हुए। सचमुच बाहर के रंगरूप से कोई वर्ण नियत नहीं होता। प्रत्युत, गुण कर्म से वर्ण नियत होता है। इस प्रकार देश में प्रचलित रूढिवाद पर गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ने बड़ा भारी आघात किया है। और भारतीय बालकों में नवजीवन का सञ्चार किया है कि वे विद्या, बुद्धि और पुरुषार्थ के द्वारा जीवन में आगे बढ़ सकते हैं। जब कि उन को आग बढने का मार्ग नहीं मिलता था। इस प्रकार गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ने भारतीय जीवन में क्रान्ति पैदा कर दी है।

महात्मा जी ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली स्थापित करके ब्रह्मचर्य के नियमों का मुख्य रूप से अभ्यास कराने का प्रयत्न किया है। प्राचीन गुरुकुल में तो ब्रह्मचारी नंगे पांव, नंगे सिर रहते थे। छाता, जूता आदि कभी धारण नहीं करते थे। चाहे गर्मी हो, सर्दी हो वा वर्षा हो। तपस्यामय जीवन था। विद्याभ्यास और नियम पालन में सब समय जाता था। घर की किसी को याद नहीं आती थी। कोई रोगी हो जाता तो उसकी सेवा करने के लिए ब्रह्मचारी हर समय उद्यत होते थे। सब का आपस में प्रेम-मय सम्बन्ध था। इन सबके पीछे एक ही बात विशेषत: काम करती थी कि महात्मा जी प्रतिदिन ब्रह्मचारियों को सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते रहते थे। प्रात: सायं और मध्याह्न एक-एक बार सब ब्रह्मचारियों के कमरे में जाकर ब्रह्मचारियों को देख लिया करते थे। और केवल उनके चेहरों को देखकर ही पहचान लेते थे कि किसी में ब्रह्मचर्य सम्बन्धी कोई दोष तो नहीं है। किसी को कभी निराश और हतोत्साह नहीं करते थे। वे अपने बच्चों के समान सब ब्रह्मचारियों को समझते थे। ब्रह्मचारी अपने आचार्य महात्मा जी को एक ही व्यक्ति में अपना मातृत्व और पितृत्व माने हुए थे। इस प्रकार गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के द्वारा भारत में एक नई जागृति, नई चेतना का उद्‌गम हो रहा था। समझदार शिक्षण शास्त्री विदेशी और स्वदेशी सभी इस शिक्षण प्रणाली की प्रशंसा करते थे। प्राय: सभी विदेशों के महानुभाव, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का मूर्त रूप देखने आते रहे और यह निश्चय करके लाते रहे कि वे भी अपने देश में इसी शिक्षा प्रणाली को चलावेंगे।

महात्मा जी ने १९१७ के गुरुकुलोत्सव से कुछ दिन पूर्व संन्यास ग्रहण करने का निश्चय कर लिया और १० अप्रैल १९१७ के दिन संन्यास ग्रहण कर लिया। बड़ी प्रसन्नता का वह दिन था जब उन्होंने संन्यास ग्रहण किया और अपने जीवन का कार्य बहुत अधिक विस्तृत कर दिया। इस कर्म क्षेत्र में अब वह आदर्श कर्मयोगी नेता के रूप में भारत के सामने उपस्थित हुए। उन्होंने लिखा है कि संसार के नेताओं को चाहिए कि मन वचन और कर्म द्वारा संसार को अपने आदर्श से जनसमुदाय का जीवन सुधारें। यदि नेताओं का जीवन अपने उदाहरण से दूसरों के मन, वचन और कर्म का पालन नहीं करवा सकता हो तो अपने किये हुए कर्मों के प्रायश्चित्त के लिए उसे एकान्त में बैठ जाना चाहिए।

उन्होंने हिन्दु संगठन आन्दोलन आरम्भ कर दिया। जिसमें चार भागों पर बल दिया गया।

१—जो लोग अज्ञान, स्वार्थ व प्रलोभन वश आर्य हिन्दू धर्म का त्याग करके अन्य मतावलम्बी हो गए हैं। उनको शुद्धि संस्कार के द्वारा पुनः आर्य हिन्दू धर्म और समाज में मिला देना चाहिए।

इस कार्य के लिए स्वामी जी ने फरवरी १९२३ में "भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा" की आगरा में स्थापना की। और मलकाना, राजपूत आदि नव मुस्लिम दो लाख से अधिक मुसलमान शुद्ध किये गये।

२—प्राचीन आश्रम प्रणाली का पुनरुद्धार किया जाय। २५ और १६ वर्ष की आयु से पूर्व किसी युवक और कन्या का विवाह न हो।

३—बाल विधवाओं को विवाह की अनुमति निस्संकोच दी जाय। और उन्हें शास्त्रीय व्यवस्थानुसार कन्या ही समझा जाय।

४—प्राचीन आर्यों की वर्णाश्रम पद्धति का पुनरुद्धार किया जाय। हजारों जाति उपजातियों को मिटा दिया जाय। तथाकथित अस्पृश्य व दलित वर्ग को चार वर्णों में सम्मिलित कर दिया जाय। गुण कर्म स्वभाव द्वारा ही किसी भी हिन्दू का वर्ग निश्चय किया जाय। इस प्रकार से नष्ट होती हुई हिन्दू जाति बच सकती है।

सन् १९२५ में ईद के अवसर पर देहली निवासियों को सम्बोधन करते हुए कहा कि जितना तुम सहन करोगे और मुसलमान भाइयों को प्रेम का मार्ग दिखलाओगे। उतना ही भगवान् तुम पर कृपा करेंगे।

स्वामी जी का ईश्वर पर अटल विश्वास व श्रद्धा थी। इसी कारण उन्होंने अपना नाम श्रद्धानन्द रखा था। ईश्वर पर विश्वास और श्रद्धा के कारण ही वे बड़ी से बड़ी आपत्ति आने पर भी कभी विचलित नहीं हुए।

श्रद्धेय स्वामी जी की निर्भयता इस उदाहरण से और भी अधिक प्रगट होती है कि ३० मार्च सन् १९१९ को देहली में आपके नेतृत्व में सार्वजनिक सभाएं हुईं। जलूस निकाला गया और गोरखों की संगीनों के आगे आपने अपनी छाती खोलकर निर्भयता पूर्वक कहा—"लो, मैं खड़ा हूं, गोली मारो।"

स्वामी श्रद्धानन्द जी के नेतृत्व में उन दिनों दिल्ली में सचमुच रामराज्य रहा। शहर में एक भी ताला नहीं टूटा। एक भी मार-पीट नहीं हुई। एक भी जेब नहीं कतरी गई। और तो क्या जुयेखाने और शराबखाने भी बन्द रहे। सब ने देवियों को मां बहिन और बेटी समझकर उनका आदर किया। इस रामराज्य ने सरकार की पुलिस व सेना की कहीं छाया तक देखने में न आती थी, शहर का सब प्रबन्ध जनता के अपने हाथों में था।

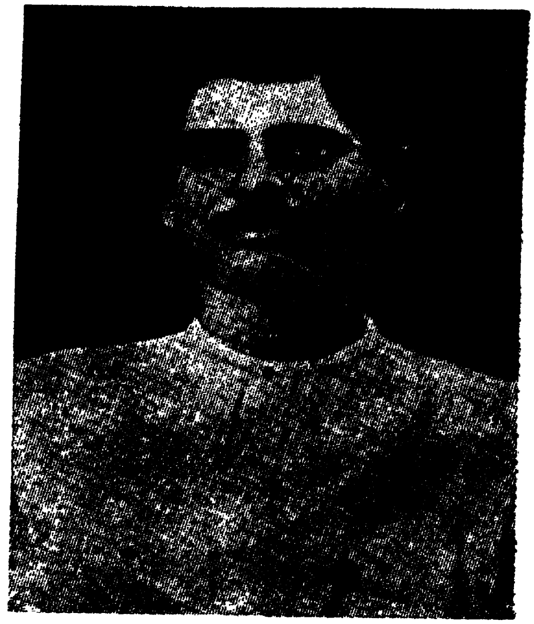
४ अप्रैल के दिन दोपहर बाद की नमाज के पीछे जामा मस्जिद में मुसलमानों का एक विशाल जलसा हो रहा था और उसमें मौलाना अब्दुला चूड़ी वाले ने आवाज देकर कहा स्वामी श्रद्धानन्द जी की तकरीर भी होनी चाहिए। दो-तीन जोशीले नौजवान उठे और तांगे पर जाकर नये बाजार से स्वामी जी को लिवा लाये। "अल्लाहो अकबर" के नारों के साथ स्वामी जी मस्जिद की वेदि पर आरूढ़ हुए। शायद यह भारत के ही नहीं इस्लाम के इतिहास में पहला अवसर था कि एक मुसलमानेतर व्यक्ति ने जामा मस्जिद की वेदि पर से वाज किया। स्वामी जी ने ऋग्वेद के एक मन्त्र से अपना व्याख्यान आरम्भ किया और ओ३म् शांतिः शांतिः शांतिः के साथ समाप्त किया। ६ अप्रैल को फतहपुरी मस्जिद में भी स्वामी जी का भाषण हुआ।

देशभक्त—



श्री दवसुमन

सन् ४२ का शहीद—



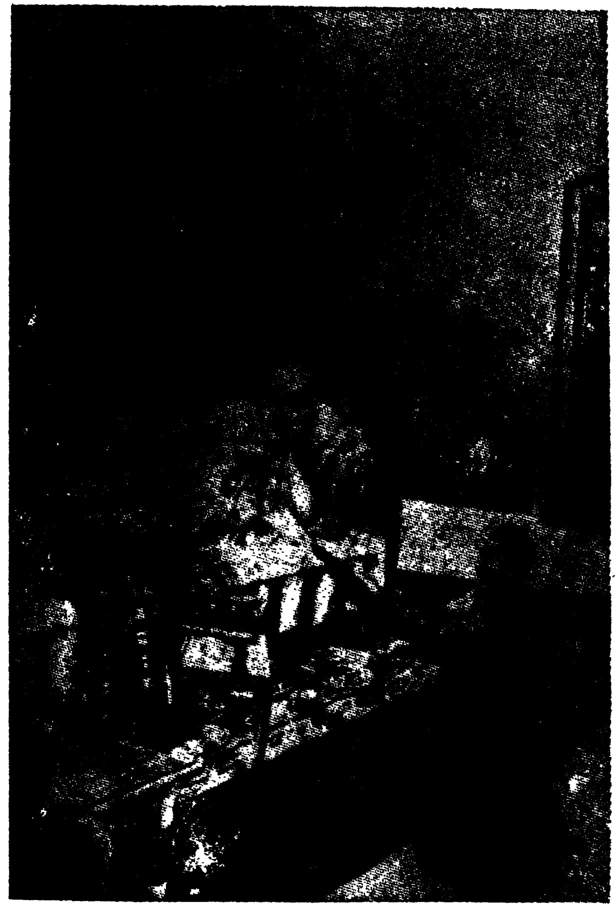
श्री रमेश



गुरुकुल झज्जर के संस्थापक पं० विश्वम्भर दयाल जी



श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी शुद्धि करते हुए



श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का अमर बलिदान

१९१९ के अन्त में अमृतसर में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसने देश की राजनीति में युग परिवर्तन कर दिया था। उसके स्वागताध्यक्ष और सभापति क्रमशः युवाकाल के पुराने साथी स्वामी श्रद्धानन्द जी और पं० मोतीलाल जी नेहरू नियुक्त हुए थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी पर वहाँ के प्रबन्ध का भार डाला गया। दिसम्बर का महीना था। आकाश में बादल घिर गये थे। ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी। दूर देशों के प्रतिनिधि मुसीबतों में पड़ गये थे। सर्दी से बचाने के लिए उन्हें धर्मशालाओं और पक्के मकानों में ठहराया गया था तो भी वे सर्दी से परेशान थे।

हिन्दू मुसलमानों के मेल ने असहयोग आन्दोलन को असाधारण बल प्रदान कर दिया। इसके कारण भी महात्मा गांधी जी का देशकीय राजनीति पर पूर्ण अधिकार हो गया।

८ दिसम्बर १९२६ को एक बार फिर गुरुकुल आए। गुरुकुल पहुंचते ही प्रातः तेज ठंडी हवा लगने से उन्हें बुखार हो गया। और सायंकाल लौटने पर जब डाक्टर सुखदेव जी ने परीक्षा की तो मालूम हुआ कि उन्हें ब्रांको निमोनिया का आक्रमण हो चुका है। दूसरे दिन से डाक्टर अंसारी की चिकित्सा आरम्भ हुई। चार दिन के लिए डा० अंसारी को रामपुर जाना पड़ा। लौटते ही उन्होंने रोगी को फिर सम्भाल लिया। उनको आश्वासन दिलाया जाता था कि आप उठ खड़े होंगे। परंतु स्वामी जी ने स्पष्ट कहा कि अन्दर से यह आवाज नहीं उठती कि मैं उठ खड़ा होऊंगा। स्वामी जी ने शुद्धि सभा के मंत्री स्वामी चिदानन्द जी को बतलाया कि अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण कर शुद्धि के अधूरे काम को पूरा करूँ।

२३ दिसम्बर सन् १९२६ को मध्याह्न में पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति प्रतिदिन की भाँति श्रद्धेय स्वामी जी के दशन करने गए तो उन्होंने स्वामी जी को सोये हुए पाया। पास के कमरे में स्वामी जी के मंत्री पं० धर्मपाल जी विद्यालंकार सोए हुए थे। स्वामी जी की चारपाई के पास दरी पर उनके सेवक धर्मसिंह जी गाढ़ निद्रा में सोये पड़े थे। स्वामी जी की निद्रा में बाधा डालना उचित न समझकर श्री पं० इन्द्र जी सायंकाल दर्शन करने का विचार करके वापिस घर चले गये। और किसी स्वयं सेवक को कमरे में बैठा गए। लगभग २॥ बजे डा० सुखदेव जी आदि कुछ सज्जन स्वामी जी के दर्शनार्थ आये। ३॥ बजे स्वामी जी ने सबको विदा किया। सेवक धर्मसिंह ने कमोड लाकर दिया और शौचादि से निवृत्त होकर स्वामी जी मसनद के सहारे सावधान होकर बैठ गए। इतने में सेवक धर्मसिंह ने सीढ़ियों में किसी युवक को ऊपर आते हुए देखा। उसने उसे रोकना चाहा। पर युवक ने स्वामी जी के दर्शन का आग्रह किया। स्वामी जी ने आवाज सुनकर कहा कौन है? अन्दर आने दो। अब्दुलरशीद नामक उस मुस्लिम युवक ने (जो एक साधारण जिल्दसाज था) आते ही स्वामी जी से कहा कि मैं आपसे इस्लाम के मुतल्लिक कुछ गुफ्तगु करना चाहता हूं। स्वामी जी ने कहा भाई! मैं बीमार हूँ। तुम्हारी दुआ से राजी हो जाऊँगा, तो बातचीत करूँगा।

इतने में उसने पानी मांगा। स्वामी जी ने सेवक धर्मसिंह को पानी लाने को कहा। ज्यों ही धर्मसिंह पानी लाने के लिए बाहर की तरफ गया। उस दुष्ट ने मसनद के सहारे बैठे हुए स्वामी जी पर पिस्तौल से तीन गोलियां चला दीं। सच्चे सेवक धर्मसिंह ने उसका सामना किया। तो उसने उसकी टांग पर गोली चला दी जिससे वह जमीन पर लेट गया। हत्यारा भागने की चेष्टा में ही था कि स्वामी जी के मंत्री पं० धर्मपाल जी ने आकर इसको दबा लिया। एक हाथ रिवाल्वर वाले हाथ पर और दूसरा पर रखे हुए उसको प्राय: आधे घण्टे दबाये रखा। इन तीनों गोलियों ने स्वामी जी का तो शरीरान्त कर

दिया था। अन्त समय में उन्होंने ओ३म् का स्मरण अवश्य किया होगा और साथ ही ऐसे मतान्धों की स्मृति के लिए भी भगवान् से प्रार्थना की होगी।

इस प्रकार गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के समुद्धारक आदर्श सुधारक, आदर्श आचार्य, आदर्श कर्मयोगी नेता, दीनों दलितों के परम उद्धारक सच्चे ईश्वर भक्त, श्रद्धा मूर्ति आर्य जाति के हृदय सम्राट् संन्यासी का अमर बलिदान २३ दिसम्बर १९२६ ई० की सायं ४ बजे के लगभग हुआ। वस्तुतः वीर संन्यासी के योग्य यही अवसान था।

श्रद्धेय स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

(श्री वेदव्रत सिद्धान्त शिरोमणि)

स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज का जन्म माघ शुक्ला पञ्चमी संवत् १९२५ वि० में श्रीवास्तव कायस्थ कुल में ग्राम डुमरा जिला आरा (बिहार) में हुआ था। इनका जन्म का नामब्र ह्मदत्त था। ये दो भाई तथा चार बहनें थीं। इनकी माता जी का नाम देवमूर्ति था और पिता का नाम था श्री रामगुलाम-सिंह, इनके दादा सूरजमल बिहार के राजा कुंवरसिंह के दीवान थे। राजा कुंवरसिंह १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के प्रमुख कर्ता-धर्ताओं में से एक थे। अतः उनसे सम्बन्धित सभी लोगों को पर्याप्त कष्ट उठाना पड़ा। फिर भी स्वामी जी के पिता रामगुलामसिंह को हितचिन्तक मित्रों की सहायता से पुलिस इन्सपेक्टरी मिल गई। स्वामी जी का लालन-पालन अपनी ननिहाल में हुआ था।

सत्यार्थप्रकाश के बार बार पढ़ने के कारण १६ वर्ष की आयु में ही आप आर्यसमाजी बन गये थे। इस समय आप आरा के हाईस्कूल में एन्ट्रेंस में पढ़ते थे, एण्ट्रेंस पास करने के पश्चात् आप एफ० ए० पास न कर सके, स्वयं अभ्यास द्वारा आपने अपनी योग्यता बहुत बढ़ा ली थी। आप धारा प्रवाह अंग्रेजी में भाषण कर सकते थे।

योगसाधन की बातें बतलाने वाले विशेष साधक श्री कृष्णदयाल जी की कृपा से १२ वर्ष की आयु में ही योगसाधन में लग गये थे, यह साधन भविष्य में बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

आपके घर दो पुत्र और दो पुत्रियां हुईं। पुत्र आत्मानन्द अनन्तानन्द। पुत्रियों के नाम हैं पद्मावती तथा मेधावती। बहिन के पुत्र पं० विक्रमादित्य का भी पालन पोषण आपने ही किया था, क्योंकि पंडित जी की माता उनकी एक वर्ष की आयु में ही दिवंगत हो गई थीं। आत्मानन्द, अननन्तानन्द और विक्रमादित्य तीनों लड़कों की शिक्षा दीक्षा गुरुकुल कांगड़ी में ही हुई। पं० विक्रमादित्य का देहांत गुरुकुल झज्जर में सांप के काट जाने से हो गया था औड़ बड़े पुत्र डा० आत्मानन्द जी का देहान्त १४ मई १९२७ ई० को रक्तचाप से गोरखपुर में हो गया। आपके कनिष्ठा पुत्र डा० अनन्तानंद जी गुरुकुल कांगड़ी में एक्सरे विभाग के अध्यक्ष और शरीरोपाध्याय हैं।

स्वामी ब्रह्मानंद जी ने लगभग १२ वर्ष की आयु में सार्वजनिक सेवा क्षेत्र में एक पत्रकार के रूप रूप में पदार्पण किया। सन् १८९० ई० में 'आर्यवर्त' साप्ताहिक के सम्पादक नियत किये गए। यह पत्र आर्यसमाज कलकत्ता के कुछ सभासदों की देख रेख में भागलपुर के प्रसिद्ध आर्य दानवीर रायबहादुर तेजोनारायणसिंह जी तथा बाबू महावीरप्रसाद जी की सहायता से सन् १८८७ ई० से प्रकाशित हो रहा था।

१८६२ के मध्य में आर्यवर्त प्रेस कलकत्ता से दानापुर (बिहार) आ गया और यहीं से आर्यावर्त प्रकाशित होने लगा। इस समय आप आप आर्यवर्त के सम्पादक और व्यवस्थापक दोनों पदों पर कार्य करते थे। इस प्रकार १८६७ ई० के अंत तक आप 'आर्यावर्त साप्ताहिक के सम्पादक व्यवस्थापक पद पर और कभी इस के संयुक्त सम्पादक और व्यवस्थापक पदों पर कार्य करते रहे। इनका उस समय का कार्य कैसा था यह तो आर्यावर्त की फाइल अथवा उस समय के विद्वान् ही बता सकते हैं।

इन्हीं दिनों में हिमालय के एक योगी अकस्मात् दानापुर आये। उनसे स्वामी जी महाराज ने विशेष लाभ उठाया। रायबहादुर तेजोनारायणसिंह जी के स्वर्गवास के पश्चात् १८८६ आर्यावर्त दानापुर से उठाकर रांची लाया गया और स्वामी जी कलकत्ते के आर्यभाषा के सुप्रसिद्ध राजनैतिक साप्ताहिक पत्र 'भारत मित्र' के सम्पादक नियत हुए। यह किसी भी सम्दप्रदा का पोषक न होकर राजनीति का प्रचारक था। पत्र के अति प्राचीन होने के कारण इसमें महर्षि दयानन्द जी के भी अनेक लेख छपते थे। आपने कलकत्ता जाकर "दैनिक भारत मित्र" को जन्म दिया और एक वर्ष तक इसका सम्पादन करते रहे।

इन्हीं दिनों में कलकत्ते के आर्यों और पौराणिकों में कुछ वाद-विवाद हो गया। स्वामी जी प्रति सप्ताह आर्यसमाज के सिद्धान्तों की पुष्टि में व्याख्यान देते रहे। 'भारत मित्र' की प्रबन्ध कारिणी सभा में भी कुछ आन्दोलन हुआ और पं० दीनदयालु जी व्याख्यानवाचस्पति के अनुयायी भी स्वामी जी के साथ कार्य करने के लिए आ गये। उन्होंने 'भारत मित्र' पर पौराणिक रंग चढ़ाना चाहा। इस पर आपने त्याग पत्र दे दिया।

तदनन्तर चार वर्ष तक आप इटावा तथा रांची में स्वाध्याय और साधना में तत्पर रहे। इटावा में अग्निष्टोम याग से पूर्व होने वाले वरुण प्रघास तथा चातुर्मास यज्ञों में रोमसहित आटे के मेष-मेषी के हवन और मृतक श्राद्ध होने के कारण अपने शिक्षक पंडित भीमसेन शर्मा से आपकी बिगड़ गई। इटावा की सभाओं में आपने अवैदिक कृत्यों का खंडन किया और रांची आकर आर्यावर्त पत्र में उक्त यज्ञ के सम्बन्ध में अनेक लेख अवैदिक कृत्यो के विरुद्ध लिखे।

रायबहादुर रामविलास शारदा प्रधान प्रबन्ध कर्त्ता सभा वैदिक यन्त्रयालय ने आपको रांची से अजमेर बुला लिया। क्योंकि उस समय महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित वैदिक यन्त्रणालय का कार्य ढीला हो रहा था। १ अगस्त सन् १६३० ई० को आपने वैदिक यन्त्रणालय के मैनेजर पद का कार्य भार सम्भाल लिया। कुछ दिन अन्वेषण के पश्चात् इनको ज्ञात हुआ कि यन्त्रणालय के संशोधक पं० बद्रीदत्त जी तथा पं० रामजीलाल जी ने महर्षि दयानन्द द्वारा रचित ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका की संस्कृत में १०६ स्थानों पर परिवर्तन कर दिए हैं। उक्त पंडितों से परिवर्तन का कारण पूछा तो उन्होंने बतलाया कि महर्षि को पूर्ण वैयाकरण सिद्ध करने के लिए अशुद्ध संस्कृत को हमने शुद्ध कर दिया है।

पं० शिवशर्मा काव्य तीर्थ को छान्दोग्योपनिषद् भाष्य करने के लिये आपने अजमेर बुला रखा था। उक्त दोनों पंडितों और पं० शिवशङ्कर जी को अपने समक्ष बुलाकर उक्त परिवर्तनों के सम्बन्ध में विचार किया और तीनों पण्डितों से उक्त परिवर्तन के विषय में लिखित सम्मति भी प्राप्त की। पं० शिवशङ्कर सभी परिवर्तनों को अनुचित बतलाते थे, किन्तु पं० बद्रीदत्त जी तथा रामजीलाल जी कुछ परिवर्तनों को अनुचित और कुछ को उचित बतलाते रहे।

स्वामी जी ने समझ लिया कि उक्त पंडितों ने परिवर्तन बुरी भावना से तो नहीं, किन्तु अज्ञानता

के कारण किये हैं। गम्भीर अपराध होने के कारण दोनों संशोधकों को यन्त्रणालय से पृथक् कर दिया। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के परिवर्तित भागों को जो उक्त संशोधकों द्वारा छपवाये गये थे रद्दी करके उनके स्थान में महर्षि के पहले छपे ग्रन्थ के अनुसार शुद्ध फार्म छपवाकर सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया।

३१ जनवरी १९०७ तक लगभग साढ़े तीन वर्ष तक स्वामी जी ने वैदिक यन्त्रालय के मैनेजर पद पर कार्य किया। श्रीमती परोपकारिणी सभा द्वारा नियुक्त वैदिक यन्त्रालय के सुपरिटेण्डेण्ट (अधिष्ठाता) महात्मा मुन्शी राम जी अपने साप्ताहिक पत्र सद्धर्मप्रचारक को उर्दू से बदल कर आर्य भाषा में निकालना चाहते थे और इस कार्य में वे स्वामी ब्रह्मानन्द जी (पं ब्रह्मदत्त जी) का सहयोग चाहते थे। अतः उक्त पत्र के सम्पादन के लिए आप अजमेर से जालन्धर चले गये और १ मार्च १९०७ से सद्धर्म प्रचारक को आर्य भाषा में निकालने लगे। सम्पादक महात्मा मुन्शीराम जी थे और सहायक सम्पादक आप बने।

'सद्धर्मप्रचारक' थोड़े ही दिनों में जालन्धर से गुरुकुल कांगड़ी चला गया। अतः आप भी कांगड़ी पहुंचे। लगभग पाँच वर्ष तक आपका 'सद्धर्म प्रचारक' तथा गुरुकुल कांगड़ी के साथ सम्बन्ध रहा। गुरुकुल में आप धर्म शिक्षा के अध्यापक थे और भारतवर्ष का इतिहास प्रथम भाग जो आचार्य रामदेव जी के नाम से प्रसिद्ध है, उसका प्रथम भाग स्वामी ब्रह्मानन्द जी द्वारा ही संकलित था जैसा कि आचार्य रामदेव जी ने उसकी भूमिका में लिखा भी है। इससे स्वामी जी की वैदिक साहित्य और प्राचीन इतिहास विषयक अच्छी विद्वत्ता प्रकट होती है।

जब लाला लाजपतराय जी को देश निर्वासन का दण्ड मिला तब हरयाणा प्रान्त पर विशेषतया रोहतक जिले के आर्यों पर सरकारी कर्मचारियों का प्रकोप प्ररम्भ हुआ। रोहतक जिले के प्रमुख आर्यों का एक शिष्ट मंडल महात्मा मुन्शीराम जी के पास पहुँचा, और अपने सब दुःख सुनाये। उन दिनों गोरे हाकिमों का आतंक छाया हुआ था। प्रायः ग्रामीणों से पूछा जाता थाकि—"वैल तुम आर्या है?"

महात्मा मुन्शीराम जी ने आपको रोहतक जिले में प्रचारार्थ भेजा। सब विघ्न बाधाओं का समना करते हुए आप प्रचार कार्य में जुट गये। लगभग तीन चार वर्ष तक गुरुकुल कांगड़ी की ओर से तथा १२ वर्ष तक आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब की ओर से आपने प्रचार कार्य किया। उस समय आप ही हरयाणा के प्रचारकों के अधिष्ठाता थे। इन १५-१६ वर्षों में आपने अपने सहायक उपदेशक और भजनिकों के सहयोग से कम से कम दश हजार नये आर्य समाजी बनाये। लगभय १२ हजार रुपये गुरुकुल कांगड़ी को, दो हजार रुपये गुरुकुल भैंसवाल को और कई हजार रुपये गुरुकुल झज्जर को दिये। साथ ही आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब लाहौर के वेद प्रचार कोष में भी लगभाग २५ हजार रुपये भिजवाये। ऐसे दमन के काल में रोहतक जिले एवं हरयाणे में आपने कितना कार्य कर दिया, इससे आपके उत्साह, धैर्य और कार्य करने की शक्ति का परिचय मिलता है कि वह कितनी प्रबल थी।

महर्षि दयानन्द की जन्म शताब्दी पर मथुरा में फाल्गुन बदी नवमी सं० १९८१ वि० तदनुसार १७ फरवरी १९२५ ई० को ५६ वर्ष की आयु में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज से आपने संन्यासाश्रम की दीक्षा ली।

इसके पश्चात् अनेक वर्षों तक गुरुकुल भैंसवाल और गुरुकुल झज्जर के मुख्याधिष्ठाता और आचार्य पद का कार्य किया। साथ ही वैदिक धर्म के प्रचार के लिए भी प्रयत्नशील रहे। वैदिक धर्म

और आर्य संस्कृति में आप की दृढ़ निष्ठा थी, आप इसके प्रचार के लिए सदा प्रयत्नशील रहते थे। धनिक वर्ग तथा राजा महाराजाओं में वैदिक धर्म प्रचार के लिए आप विशेष उत्सुक रहते थे। इस दिशा में आपको सफलता भी मिली। आपने अवागढ़ नरेश को वैदिक धर्म की ओर आकृष्ट किया। वे लगभग १० वर्ष तक गुरुकुल वृन्दावन को ३ हजार रुपया वार्षिक देते रहे हैं और अपने ज्येष्ठ पुत्र के विवाह पर ७ लाख रुपया दान करके स्थायी डिपाजिट के रूप में इलाहाबाद बैंक में जमा कर दिया है।

हैदराबाद सत्याग्रह में भी आपने सक्रिय भाग लिया था और हरयाणा प्रान्त से प्रबल आन्दोलन कर पर्याप्त सत्याग्रही भी भेजे थे। वृद्धावस्था में भी आप सामाजिक कार्यों में तत्पर रहते थे, कर्तव्य पालन में कभी आलस्य प्रमाद न करते थे।

मुझे गुरुकुल झज्जर में आपकी कुछ सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आप स्वभाव के अत्यन्त मधुर थे। प्रायः सभी को बच्चा! कहकर सम्बोधन करते थे। आपकी वाणी में मिठास था। अतः लोग आपकी बातों को ध्यान से सुनते थे और आपकी ओर आकृष्ट होते थे। आप ब्रह्मचारियों से बहुत स्नेह करते थे। जब कभी गुरुकुल में आते थे तब ब्रह्मचारियों के लिए केला, सन्तरा, आम इत्यादि फल अवश्य लाते थे। केला आपका बहुत प्रिय फल था। वृद्धावस्था में दांत गिर जाने के कारण सायंकाल प्रायः केला और दूध ही ग्रहण करते थे। मध्याह्न में रोटी का चूरमा बहुत बारीक आटे के सामान ही, बनाकर खाते थे।

३१ जनवरी १९४८ को आचार्य रामधन शास्त्री तथा रामदास गांधी ने महात्मा गांधी का अंत्येष्टि संस्कार राजघाट पर करवाया था, उस समय आचार्य रामधन शास्त्री के साथ स्वामी जी महाराज भी संस्कार करवाने में सम्मिलित थे। अब भी उनके सामान में एक हड्डी रखी हुई है, सम्भव है वह महात्मा गाँधी की हो।

सन् १९२५ में संन्यास लेने के उपरान्त अक्तूबर सन् १९४२ तक आप गुरुकुल झज्जर के आचार्य रहे। अक्तूबर ४२ में यह स्थान आचार्य भगवान् देव जी को सौंप दिया और आप गुरुकुल के कुलपति बनाये गये। अन्तिम दिनों में आर्यसमाज दीवानहाल देहली में रहते थे, वहां आप रुग्ण हो गये तो आपको श्री डा० अनन्तानन्द जी गुरुकुल कांगड़ी में ले गये। आपका लगभग ८० वर्ष की आयु में सन् ४८ के अन्तिम दिनों में देहावसान हो गया।

आपका सारा जीवन देश सेवा और धर्मप्रचार एवं शिक्षा प्रसार के कार्यों में व्यतीत हुआ है। अतः यह लिखना अत्युक्ति पूर्ण नहीं कि आपका बलिदान देश और धर्म के लिये हुआ है। महर्षि दयानन्द जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी आदि साधु महात्माओं के उपदेश और प्रचार के कारण ही हरयाणा आर्यसमाज का गढ़ बन सका है। इस गढ़ की रक्षा करना समाज के नेता और नवयुवकों का कर्त्तव्य है।

अमर हुतात्मा भक्त फूलसिंह जी

(श्री पं० महामुनि)

महर्षि दयानन्द जी महाराज के निर्वाण के बाद उनके द्वारा प्रज्ज्वलित सत्य की ज्योति को जिन महा पुरुषों ने संसार में फैलाने का यत्न किया, उन्हीं में से अन्यतम हरयाना प्रान्त के ख्यात नामा स्वनामधन्य महात्मा फूलसिंह जी वानप्रस्थ भी है।

इनका जन्म रोहतक मण्डलान्तर्गत ग्राम माहरा (जूआं) में सं० १९४२ विक्रमी (सन् १८८५) में हुआ। इनके पिताजी जाट कुल के साधारण जमींदार थे। आठ वर्ष की अवस्था में इनको पिताने समीपस्थ गांव जूआं में स्कूल में भेजा। प्राइमरी शिक्षा के बाद ग्राम-महरौली के मिडिल स्कूल में प्रविष्ट करा दिए गये। इनमें बाल्यकाल से ही सेवा-भाव, निर्भयता, सरलता, मधुर-भाषिता, सदाचार, सुशीलता आदि गुण विद्यमान थे। अपने गुरुजनों के सेवादि कार्य स्वेच्छा से प्रायः वे ही किया करते थे। इनके सेवा-कार्य करते हुए हैडमास्टर (जो कि मुसलमान था) की इनके प्रति कुदृष्टि हो गई जब ये सातवीं श्रेणी में पढ़ते थे।

एक दिन सेवा के बहाने से हैडमास्टर ने इनको कमरे में बन्द कर लिया। इन्हें अपने बचाव का कोई उपाय न दीखा तब कोने में रखी हुई लाठी पर इनकी दृष्टि पड़ी। उसे उठाकर ये हैडमास्टर पर टूट पड़े और उसको खूब पीटा। वह बड़ी कठिनाई से अपनी जान बचा कर भागा। यह उनकी सच्चरित्रता और निर्भयता का ज्वलन्त उदाहरण है। इसी कारण उन्हें कोई बदमाश विद्यार्थी भी छेड़ने का साहस न करता था। इसके बाद वे महरौली में न पढ़कर खरखौदे के मिडिल स्कूल में प्रविष्ट हुए जहां से उन्होंने मिडिल पास किया। इसके बाद दो साल में करनाल से पटवार की परीक्षा उत्तीर्ण करके पटवारी हो गए। इस समय वे लगभग बीस वर्ष के हो गये थे। प्रथम इनको ग्राम उरलाना (जिला करनाल) जो कि मुसलमान रांघड़ों का गांव है पटवारी बनाया गया। जन्म से हिन्दू होते हुए भी उनके मन में मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम-भाव था। एक बार अकाल के कारण उरलाना के मुसलमान जमींदारों से सरकारी मालगुजारी का रुपया नहीं पट सका। नम्बरदारों ने पटवारी जी के पांव पकड़ लिए। उन्होंने द्रवित होकर एक हिन्दू महाजन से ५०००) रु० अपने नाम से कर्ज लेकर उनका संकट दूर किया। महाजन ने इनको समझाया भी "पटवारी जी! आप इनकी चाल में न आयें। ये मुसलमान बड़े धोखे बाज होते हैं। आप पछतावेंगे।" परन्तु करुणा से द्रवित इन्होंने उसके कहने की परवाह न की। सेवा-भाव की एक घटना भी उरलाना ग्राम की है --जब सन् १९०९ में प्लेग प्रलय की महामारी समस्त देश में फैली तब समस्त सरकारी कर्मचारी छुट्टियां लेकर अपने-अपने घरों को चले गए किन्तु ये वहीं पर डटे रहे और प्रातः काल के सात बजे से लेकर रात के एक दो बजे तक लगातार कठोर परिश्रम से बीमार लोगों की सेवा शुश्रुषा करते रहते थे। इनके हितैषियों ने चिट्ठी आदि द्वारा इनको छुट्टी लेकर घर जाने की सलाह दी और कहा "क्यों इन मुसलमानों में नाहक अपनी जान गँवाते हो"। किन्तु दुखियों को छोड़ कर जाने की इनके मन ने गवाही नहीं दी। अतिथि सत्कार में, दूसरों को खाने-पिलाने में उन जैसा मिलना कठिन है। आरम्भ में जब वे पौराणिक विचारों के थे तब श्राद्धादि में प्रातः से सायंकाल तक

ब्राह्मणों को जिमाने के लिए लगे ही रहते थे। आर्य समाजी होने पर भी जब कभी कोई महानुभाव इनके पास किसी काम से आता था तब कुछ न कुछ दूधादि खिलाना पिलाना अपना कर्त्तव्य समझते थे। अधिक महानुभाव होने पर पड़ौसियों तक के दूध का भी सफाया करवा दिया करते थे।

चौधरी परीतसिंह पटवारी (इसराना निवासी) के सत्संग से इनकी वैदिक धर्म व ऋषि दयानन्द के प्रति श्रद्धा पैदा हुई और वे सन् १९०८ में पानीपत का आर्य समाज में नियम-पूर्वक यज्ञोपवीत धारण करके दृढ़ आर्य-समाजी बन गये। जब पानीपत के आर्य समाज अपने वार्षिकोत्सव पर सरकार द्वारा जलूस पर प्रतिबन्ध लगाने पर उनको याद करता था तब वे अपने पुरुषार्थ व प्रभाव से उस प्रतिबन्ध को दूर करवाते थे। आर्यसमाजी होने के बाद इनके मन में वैदिक धर्म के प्रचार व प्रसार की लगन विषय रूप से प्रज्वलित व जागृत हो गई। इस लिए उन्होंने अपना तबादला आर्यों के गाँव बुवाणा लाखू (जिला करनाल) में करवा लिया। यहां रहते हुये इन्होंने पटवारी के अतिरिक्त समय को आर्य समाज की सेवा में लगाया। व्याख्यान व भजनों द्वारा भी लोगों में प्रचार करते करवाते रहे।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों व जीवनी का नियम पूर्वक स्वाध्याय करते थे तथा नित्य नियम से सन्ध्या हवन भी करते थे। सन् १९१६ में आर्य सिद्धान्तों की विशेष जानकारी के लिए इन्होंने विरजानन्द साधु आश्रम हरदुआगंज में स्वामी सर्वदानन्द जी के पास जाने का विचार किया और पटवार से दो मास की छुट्टी भी ले ली, किन्तु "मेरे मन कुछ और है विधना के कुछ और" इस कहावत के अनुसार साधु आश्रम में जाने से एक दिन पूर्व पहली रात को ही ग्राम सम्मालखा के दो तीन प्रतिष्ठित व्यक्ति आये। उनकी आधी रात को ही बुलाया तथा सम्मालखा ग्राम में हत्था खुलने की सरकारी आज्ञा सुनाई और कहा कि "—पटवारी जी हमसे कुछ भी करवा लो परन्तु वहां हत्था न खुलने दो"। भक्त जी ने उनको दिलासा दिया और अपना साधु आश्रम जाना स्थगित कर इसी कार्य में लग गये। अन्त में सामूहिक शक्ति प्रदर्शन द्वारा सरकार को हत्था बन्द करने पर बाध्य कर दिया। यह भक्त जी की गोभक्ति, कार्य कुशलता व परिश्रम शीलता का जीता जागता प्रमाण है। इसी प्रकार लगभग सन् १९३७-३८ में लाहौर में पचास लाख रुपये से पंजाब गवर्नमेंट द्वारा खुलने वाले प्रसिद्ध हत्थे के बन्द करवाने में भी भक्त जी महाराज का विशेष हाथ था। छुट्टी समाप्त करके फिर पटवार करने लगे किन्तु अब इनका मन पटवार में लगता नहीं था। समाज सेवा की धुन शिर पर सवार हो चुकी थी। अन्त में हितैषियों के मना करने पर भी सन् १९१८ में पटवार में त्याग-पत्र दे ही दिया और अपना सारा समय आर्य समाज के प्रचार व प्रसार में लगाने लगे।

वैदिक धर्म के प्रचारार्थ इन्होंने विचार किया कि जिस प्रकार बौद्ध भिक्षुओं ने बुद्धमत को समस्त संसार में फैला दिया उसी प्रकार आर्य मिश्नरी पैदा किये जायें जो सारे संसार में वैदिक धर्म को फैला दें, दिगृदिगन्तर में ऋषि दयानन्द के संदेश को सुना दें।

अपने इस विचार को उन्होंने पंडित ब्रह्मानन्द जी (बाद में स्वामी ब्रह्मानन्द) आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक के आगे प्रस्तुत किया। उन्होंने इनको गुरुकुल खोलने की सम्मति दी तब इनके मन में गुरुकुल खोलने का विचार दृढ़ हुआ। उपयुक्त वातावरण पैदा करके ग्राम भैंसवाल कलां में सन् १९२० में गुरुकुल की विधिवत् स्थापना की जो अद्यावधि यथाशक्ति आर्य समाज व वैदिक धर्म की सेवा कर रहा है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की आज्ञानुसार आपने मुसलमान राजों व राजपूतों की शुद्धि के

लिए कठोर परिश्रम किया। इस कार्य में कई स्थानों पर उपवास भी करना पड़ा। कतिपय स्थानों पर मुसलमानों द्वारा अपहृत हिन्दू देवियों को भी छुड़वाया। इन कारणों से इलाके के मुसलमान आप के शत्रु हो गए।

भक्त जी के कार्यों में ग्राम सुधार भी एक विशिष्ट कार्य रहा है। इसके लिए भी इनकी आयु का अधिक भाग व सामर्थ्य व्यय हुआ है। ग्रामों के सुधार के लिए वे पुरानी पंचायती-प्रथा को उपयुक्त समझ कर उसका सब जगह प्रचार करते थे। पंचायत के द्वारा परस्पर विवादों को शान्त करते करवाते थे।

लोगों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए विवाह आदि अवसरों पर व्यर्थ का खर्च व आडम्बर न किया जावे इसके लिए सन् १९२५ में ग्राम गान्धरा में हरयाना प्रान्त के सब खापों की एक बड़ी भारी पंचायत बुलवाई। उसमें बहुत से उपयोगी प्रस्ताव पास करवाये जिनका कि बेरी की सर्वखाप पञ्चायत से पहले सारे हरयाना में पालन होता था। गांवों की बुराइयों को दूर करने के लिए उन्हें कई बार अनशन भी करना पड़ा। अज्ञान अवस्था में की हुई अपनी बुराइयों से इनको अपने मन में बड़ा क्षोभ होता था। और उनके लिए बड़ा प्रायश्चित्त करते थे। इसी लिये इन्होंने अपना उपनाम भी "फूलसिंह प्रायश्चित्ती" रख लिया था। अपनी निर्धनता के कारण पटवार काल के आरम्भ में ली हुई रिश्वत का भी इनको रह रह कर पश्चात्ताप होता रहता था। अन्त में इन्होंने निश्चय किया कि—"जब तक मैं ली हुई रिश्वत लोगों को वापिस न करूँगा तब तक मेरे मन को शान्ति नहीं मिलेगी" इस लिए अपनी कुछ जमीन बेचकर उसको चुकाने का निश्चय किया। इस प्रकार ५०००) की जमीन बेचकर लोगों से ली हुई रिश्वत को उन्हें वापिस कर दिया जिसमें एक एक, दो दो रुपये की रिश्वत भी शामिल है। रिश्वत का कोई लेखा जोखा थोड़े ही रखा जाता है, किन्तु अपने आत्मिक प्रकाश से उस समय उनको सब यथावत् भासित हो गया था।

लोहारू रियासत का नवाब अपने यहां वैदिक धर्म के प्रचार में बाधाएँ डालता था तथा वहां के आर्य बन्धुओं को तरह-तरह से पीड़ित करता था। भक्त जी महाराज ने नवाब से तथा पंजाब के उच्च सरकारी अधिकारियों से मिलकर प्रचार की सब बाधायें दूर करवाईं तथा वहां के आर्य बन्धुओं को तन मन धन से सहायता पहुँचाई। ऐसा करते हुए वे नवाब की गुण्डा शाही के शिकार भी हुए और मृत्यु के मुख से बाल बाल बचे।

हैदराबाद रियासत के आर्य सत्याग्रह में हरयाना प्रान्त ने जो भाग लिया वह भारत के सब प्रान्तों से बढ़कर था। उसका विशेष श्रेय श्री पूज्य भक्त जी महाराज की कार्य कुशलता व प्रभाव को ही समझना चाहिये। इसी लिए सत्याग्रह की समाप्ति पर महाशय कृष्ण ने विनोद में कहा था कि—"जब भक्त फूलसिंह जैसे फरिश्ते आर्य समाज में विद्यमान हैं तब हमको जेल में कौन बन्द रख सकता है?"

समस्त हरयाने में जिस किसी दुखिया को कहीं शरण नहीं मिलती थी वह अन्त में भक्त जी महाराज की शरण में आता था और वे अपनी सारी शक्ति लगाकर उसके दुःख निवारण की चेष्टा करते थे। ऐसी ही दुःखी जनों में गांव मोठ (जिला हिसार) के चमार बन्धु भी थे जिनका कुआ मुसलमान रांघड़ों ने बनता-बनता बन्द करवा दिया था। मोठ के हरिजन भाई सब जगह से निराश होकर अन्त में भक्त जी की शरण में आये और अपनी कष्ट गाथा सुनाई। भक्त जी महाराज ने आश्वासन दिया कि कुछ दिन ठहरो भगवान की कृपा से आपका सब मनोरथ पूरा हो जावेगा (उन दिनों में हैदराबाद का सत्याग्रह चल रहा था, जो अपने अन्तिम चरण में पहुँच चुका था)

सत्याग्रह के सफल होते ही भक्त जी महाराज बिना किसी को कोई सूचना दिये एक व्यक्ति के साथ १ सितम्बर १६४० को गांव मोठ में पहुंच गए। तीन दिन तक ग्रामवासियों को समझाते रहे किन्तु मुसलमान न माने। अन्त में उन सबके सामने आमरण अनशन व्रत कर दिया "अर्थात् कुआ बनने पर ही अन्न-ग्रहण करूँगा अन्यथा यहीं प्राण त्याग दूंगा।" इसका भी मुसलमानों पर कोई प्रभाव नहीं हुआ और भक्त जी महाराज को तीन-चार दिन के बाद वहां से उठाकर जंगल में ले जाकर अधमरा करके डाल आये। उस रात जो उन्हें यातनायें मुसलमानों द्वारा सहनी पड़ीं वे वर्णनातीत हैं। ईश्वर की कृपा से अन्त में २३ दिन के उपवास के बाद अपने कार्य में सफल हुए और इस व्रत के कारण ससस्त पंजाब में हरिजनों के लिए पानी की समस्या हल हो गई। कुआ की समाप्ति पर श्री भक्त जी महाराज को पूज्य महात्मा गांधी जी ने मिलने के लिए दिल्ली बुलाया और डेढ घण्टे तक वार्तालाप किया तथा उस वार्तालाप में अपना अनुयायी बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया, परन्तु असफल रहे। महात्मा जी के कहने का मुख्य सार यही था—"आप आर्यसमाज के दायरे से निकल कर मेरे प्रोग्राम के अनुसार कार्य कीजिये। समय समय पर मैं भी आपको यथाशक्ति सहायता देता रहूँगा। इससे आप देश की अधिक सेवा कर सकेंगे।"

भक्त जी महाराज ने छल कपट रहित सरल और सीधी सादी भाषा में उत्तर दिया—महात्मा जी मैं आप की सब आज्ञाओं को मानने के लिए तैयार हूं परन्तु आर्य समाज को नहीं छोड़ सकता क्योंकि "ऋषि दयानन्द और आर्य समाज तो मेरे रोम-रोम में रम चुके हैं वे इस जन्म में तो निकाले से भी नहीं निकल सकते।" जिस महात्मा जी को लोग जादूगर कहते थे उनका जादू दयानन्द के शिष्य पर असफल रहा।

भक्त जी का दृढ़ विश्वास था कि "संसार का भला भगवान दयानन्द के बताये हुये रास्ते पर चलने से ही हो सकता है "दुनिया में अगर सुख-शान्ति की वर्षा हो सकती है तो महर्षि दयानन्द के द्वारा सिखाये हुए सत्य मार्ग पर चलने पर ही हो सकती है।"

उनके सर्वतोमुखी कार्यों में स्त्री-जाति की उन्नति भी एक कार्य था। इसके लिए उन्होंने एक कन्या पाठशाला की स्थापना भी की जो जींद में कई वर्षों तक चलती रही परन्तु वहां वह स्थिर न हो सकी। अन्त में ग्राम खानपुर कलां (जिला रोहतक) में उसकी स्थिर नींव रखी जो अब बढ़कर कन्या गुरुकुल खानपुर कलां के नाम से विख्यात है। इन सब कार्यों के करते हुए ही सन् १६४२ में श्रावण सुदि द्वितीया को रात के साढ़े नौ बजे चार मुसलमानों की गोली से वीरगति को प्राप्त हुए। इस प्रकार के त्यागी, कर्मनिष्ठ, तपोधन आर्य समाज में भगवान् फिर से पैदा कर।

पूज्य पण्डित बस्तीराम जी

(श्री सुखदेव शास्त्री)

आर्यसमाज के इतिहास में पण्डित बस्तीराम जी का नाम सदा अमर रहेगा। उन्होंने बाल्यकाल से लेकर जीवन पर्यन्त आर्य सिद्धान्तों का प्रचार अति दृढ़ता तथा उत्साहपूर्वक किया। उन्हें वैदिक सिद्धान्तों का गहन ज्ञान था। विशेषतया वे ज्योतिष तथा पुराणों के पण्डित थे। अतएव वे पौराणिकों से कभी शास्त्रार्थ में परास्त न हुए।

जन्म—उनका जन्म जिला रोहतक की झज्जर तहसील के ग्राम सुलतानपुर खेड़ी में सम्वत् १८९८ में ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता जी अच्छे संस्कृतज्ञ थे। माता जी भी धार्मिक भाव की थी। पण्डित बस्तीराम जी ने भी देवनागरी के अक्षर पढ़ कर संस्कृत का अध्ययन किया। ब्राह्मणों जैसी सामान्य यज्ञ प्रक्रिया सीख कर वह पुरोहित कार्य भी करने लगे। अपने यजमानों के पास रह कर पुराणों की तथा सत्यनारायण आदि की कथा भी करते थे। बचपन से ही इन्हें गाने का बड़ा शौक था। कविता भी साधारण रूप से कर लेते थे। उन्हें मूर्तिपूजा तथा पौराणिक पाखंडों पर बड़ा विश्वास था। इन सब का वह बहुत बड़ा महत्व मानते थे। अतएव उनका प्रचार भी करते थे। इस प्रकार अपने यजमानों में उन का समय व्यतीत हुआ।

महर्षि दर्शन

उन दिनों महर्षि दयानन्द भी वैदिक धर्म का प्रचार बड़े जोरों से भारत भर में घूम-घूम कर कर रहे थे। उन्होंने भारतीय मतवादियों को शास्त्रार्थ में परास्त करने के लिए अनेक विज्ञापन छपवाए तथा अनेक पौराणिक पण्डितों से शास्त्रार्थ भी किए। भारत के सुधार के लिए महर्षि ने तेजी से काम किया। इससे उनके प्रचार-सुधार कार्य की धूम देश-विदेशों में मच गई। भारत के नगर-नगर, ग्राम-ग्राम में महर्षि की चर्चा थी। यह चर्चा कभी-कभी पं० बस्तीराम जी भी अपने पण्डितों से सुना करते थे। महर्षि द्वारा प्रचारित एक विज्ञापन-पत्र पण्डित बस्तीराम जी के भी हाथ लगा। विज्ञापन में लिखा था कि मूर्त्तिपूजा आदि वेद विरुद्ध हैं। पुराण वेद विरोधी हैं। गंगा स्नान से मुक्ति नहीं प्राप्त होती। इस प्रकार का यह विज्ञापन जब पण्डित जी ने पढ़ा तो उनके मन में हलचल मची, महर्षि दयानन्द के दर्शन की लालसा जगी। उनसे शास्त्रार्थ करने की मन में ठानी। अतएव यह विज्ञापन उन्होंने अपने ग्राम के प्रतिष्ठित सज्जनों को भी सुनाया, उनको भी प्रेरणा दी। सब की सम्मति हुई। वह सब चले महर्षि से टक्कर लेने। महर्षि दयानन्द उन दिनों हरद्वार में पाखंड खण्डनी गाढ़ कर पाखण्ड खंडन कर रहे थे। हरद्वार में भीमगोडा नामक स्थान पर ऋषि का प्रचार-स्थान था। पण्डित जी के साथ १५-१६ व्यक्ति थे, यह सब हरद्वार पहुंचे। प्रथम बार महर्षि के दर्शन पा कर कृतार्थ हो गए। पण्डित जी गए थे शास्त्रार्थ करने, किन्तु दो-चार प्रश्नों के बाद महर्षि के उत्तर पाकर अति प्रभावित हुए। और महर्षि से अधिक बातें न कर सके। इसके साथ ही दूसरे दिन गुसाईं जी भी शास्त्रार्थ करने आए, किन्तु वे भी न टिक सके। इस प्रकार महर्षि को अगाध ज्ञान समुद्र जान कर बस्तीराम जी उसी दिन से आर्यसमाज के हो गये थे। १५-१६ दिन महर्षि के साथ रह कर अन्य अनेक शंकाएँ मिटा कर वापस घर लौटे। अब वे पाखंडी

बस्तीराम न रह कर आर्य बस्तीराम हो गए थे। अतः घर आ जाने पर वेदविरुद्ध बातों का खण्डन करने लगे। बात-बात में महर्षि का यश वर्णन करते रहते। ऐसा करने पर उनके पौराणिक यजमान नाराज रहने लगे। सब ने मिल कर इनका बहिष्कार कर दिया। किन्तु वे विचलित न हुए। घर, परिवार छोड़ कर ऋषि द्वारा निर्दिष्ट बातों का प्रचार करने लगे। निकटस्थ ग्रामों में जाकर लोगों में प्रचार करते। यहां यह भी स्मरण रहे कि पण्डित जी अपनी आयु के ४० वे वर्ष में चेचक की बीमारी में अन्धे हुए थे। इसके अतिरिक्त बीच-बीच में महर्षि के दर्शनों का भी अनेक बार सौभाग्य प्राप्त करते रहे। पुनः कई मास के पश्चात् महर्षि दयानन्द रेवाड़ी पधारे, यह समाचार पाकर पण्डित जी भी रेवाड़ी पहुंचे।

रेवाड़ी में राव राजा तुलाराम जी के उत्तराधिकारियों में राव राजा युधिष्ठिर थे। वे महर्षि के दर्शन-प्रवचन पा कर आर्य बन गए थे। महर्षि के कहने पर उन्होंने रिवाड़ी में गोशाला की स्थापना की थी। यहां प्रचार कार्य में एक दिन पण्डित जी ने महर्षि की प्रशंसा में एक भजन गाया, किन्तु ऋषि ने अपनी प्रशंसा करने से निषेध कर दिया। ऐसे ही महर्षि की अनेकों आंखें देखी बातेंप ण्डित जी बतलाया करते थे। यह सब बातें विस्तार भय से यहां नहीं लिखी जा सकतीं।

प्रचार की लगन

अब तो पण्डित जी की एक ही आर्य-धर्म के प्रचार की लगन रह गई थी। जिसे वह पूर्ण करने में लग चुके थे। अपनी भजनपार्टी बना कर हरयाणा के ग्रामों में प्रचार किया। अपने प्रचार में पोप का नाम लेकर उनका विशेष खण्डन करते थे। पाखण्ड खंडन का प्रचार कटु आलोचना से किया करते थे। जिस से कई नामधारी ब्राह्मण रुष्ट होते थे। किन्तु सत्य प्रचार के सामने उन्होंने उनकी कोई परवाह न की। इस अति वृद्धावस्था में आंखों से अन्धा होने पर भी प्रचार कार्य नहीं छोड़ा। गांव-गांव में घूम कर प्रचार किया। अपना धर्म-प्रचार छोड़ कर किसी पार्टी वालों के पिछलग्गू कभी न बने, आर्यसमाज का ही प्रचार करते रहे। किसी सभा या पार्टी से कुछ भी न लेकर धर्मप्रचार किया, दक्षिणा में जो रुपया प्राप्त होता उसे ये गुरुकुल भैंसवाल में दिया करते थे। उनके पास अपना कुछ न था, जो था वह था समाज का। केवल था एक इकतारा, जिस से वे सब को एक तार में बांधना चाहते थे। आज भी उनके लम्बे-लम्बे गीत हरयाणा के घरों में गाए जाते हैं। उन्होंने अनेक भजनों की पुस्तकें भी लिखी हैं जिन में मुख्य हैं—पोप की नाखर, पाखण्ड खण्डनी, अघमर्षण प्रार्थना आदि। हरयाणा के हजारों परिवारों को जनेऊ देकर आर्य बनाया। अनेक बालकों को गुरुकुलों में भिजवाया। शिक्षा का प्रचार किया।

हरयाणा में प्रचारकार्य का श्रेय पण्डित बस्तीराम को भी है। अपने दीर्घ जीवन में स्वामी श्रद्धानन्द, पं० लेखराम, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, भक्त फूलसिंह आदि के साथ मिल कर प्रचारकार्य किया।

अन्तिम समय में वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए झज्जर तहसील के ग्राम बराणी में ठा० हरफूल-सिंह के यहां तारीख २६ अगस्त को प्रातःकाल सूर्योदय होने पर उस महारथी का ११७ वर्ष की दीर्घायु में देहान्त हो गया। इस दृढ़व्रती आर्य उपदेशक के लिये हमारा शतशः प्रणाम है।

आर्य वीर श्री मेघराज जी

(स्व० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज)

सर्वश्रेष्ठ है नाथ ! सुवैदिक धर्म हमारा।
हो उसका उद्धार बने सबका यह प्यारा।।
इस सुधर्म को ग्रहण करें सारे नर नारी।
जिससे हो कल्याण मिटें विपदायें सारी।
अखिल विश्व फिर से प्रभो ! ग्रहण करे इस रत्न को।
दयानन्द ऋषि आदि का सारा सफल प्रयत्न हो।।

श्री मेघराज जी का जीवन उन पुरुषों का जीवन है जिन्होंने अपनी उन्नति आप की है। उन्होंने किसी स्कूल में शिक्षा नहीं पाई थी। अपितु घर का काम-काज सम्हालते हुए अपने ही अनवरत उद्योग के द्वारा असाधारण योग्यता प्राप्त कर ली थी। काव्योपयोगी हिन्दी का उन्हें अभ्यास था। संस्कृत, गुजराती, मराठी, उर्दू और अंग्रेजी भी जानते थे। कुछ प्रान्तीय भाषाओं का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। रामायण, गीता, प्रेमसागर और पुराणों का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया हुआ था। उनका स्वभाव मिलनसार था। अपनी धुन के पक्के थे। वे मृदुभाषी, हंसमुख तथा विनोदप्रिय पुरुष थे। उनके जीवन में हम परोपकार की, समाज के सुधार की आग लगी हुई पाते हैं।

श्री मेघराज जी नारायणगढ़ होल्कर राज्य के निवासी थे। उनका जन्म संवत् १९३८ में जाट घराना में हुआ था। वे भी पौराणिक संस्कारों के बीच अपने बचपन को बिताकर बड़े हुए। उस समय वे आत्मिक शांति की खोज करने लगे। पर उन्हें वह उपलब्ध न हुई। अपनी जीवन नौका को तब वे अपार संसार समुद्र में लक्ष्यहीन नाविक की भाँति खेते हुए ले जा रहे थे। अचानक ही उनको जीवन नौका को खींचकर किसी ने मार्ग पर लगा दिया। उनको उनका सुदूर चमकता हुआ लक्ष्य दिखाई दिया—और वे थे श्री विनायक राव।

श्री विनायकराव जी उन पुराने आर्य पुरुषों में थे जिनके हृदय में महर्षि दयानन्द के पावन उद्देश्य की ज्वाला सदा धधकती रहती थी। जो कि किसी उपदेशक की या प्रतिनिधि सभा के प्रचारक की अपेक्षा किये बिना ही स्वयं उपदेशक का, भजनीक का तथा वेद के प्रचारक का कार्य करते थे। जिन्हें नई-नई समाजें खोलने की धुन लगी रहती थी। श्री विनायकराव जी इसी धुन में नारायणगढ़ आ निकले। उन्होंने वहां निर्भय होकर ऋषि दयानन्द का पवित्र सन्देश सुनाना शुरू किया। पौराणिक पंडितों में खलबली मच गई। जनता में हलचल उत्पन्न हो गई। लोगों ने विनायकराव जी के उपदेशों से एक आश्चर्य अनुभव किया। पौराणिकों ने असन्तोष और अपमान अनुभव किया, ईंट पत्थरों की बौछारों से विनायकराव जी का स्वागत किया गया। उन्हें चोट लगी, पर पूछने वाला कोई न था। उपदेशक के साथ तो यह सब होती ही है। वे उसे सहन कर गये।

वीरवर मेघराज जी भी घटना स्थल पर उपस्थित थे। उनकी आँखों ने सब कुछ देखा और दिल ने कुछ समझने की चेष्टा की। उनके हृदय में पौराणिकों की अधम-प्रवृत्ति के विरुद्ध तूफान पैदा हो गया।

वे पण्डित जी को घर ले आये। वहाँ उनकी अच्छी तरह सेवा शुश्रूषा की। तत्पश्चात् पण्डित जी से वार्तालाप किया। मोती का मिलना था कि वे आकर पाने के लिये व्यग्र हो गये। परिणाम यह हुआ कि उन्हें ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थ और वैदिक सिद्धान्तों की पुस्तकों के पढ़ने की प्रबल जिज्ञासा उत्पन्न हो गई। शनैः शनैः मेघराज जी स्वयं इस विषय के अच्छे ज्ञाता हो गये तथा अपने उपदेशों से अन्यों को भी लाभान्वित करने लगे।

श्री मेघराज जी चरित्र के धनी थे। हृदय के उदार थे। "सादा जीवन और उच्च विचार" उनका लक्ष्य था। उनका जीवन परिश्रमशील था। धर्म प्रचार की धुन उन्हें सदा समाई रहती थी। किसानों की सुविधाओं का ध्यान रखकर वे उपदेश का समय अधिकतर शाम को ही रखते थे। अपने साथियों के साथ कोसों पैदल चलकर प्रचारार्थ जाया करते थे। अबलाओं तथा अनाथों को कई बार दुष्टों के फंदे से बचाया था। वे धारा प्रवाह बोलते थे। उनकी लेखन-कला भी अच्छी थी। जिनमें से 'मानवहित' नाम की पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। इसे उन्होंने अपनी मृत्यु से कुछ ही दिन पूर्व छपवाय था औरों को भी छपवाने का विचार था।

सन् १९३८ के मार्च मास में इन्दौर नरेश ने अछूतों के मन्दिर प्रवेश की घोषणा की। इस घोषणा से रूढ़ि पन्थियों में विक्षोभ का वातावरण छा गया। उन्होंने उपरोक्त घोषणा के विरोध में स्थान-स्थान पर सभायें कीं, तथा उसे अनुचित एवं निन्दनीय प्रयत्न बतलाया। सवर्णों ने अछूतों को धमकियां दीं कि—"यदि तुम देव दर्शन के लिए मन्दिर प्रवेश का प्रयत्न करोगे तो हानि उठाओगे।" इस प्रकार की धमकियों से वहुत स्थानों पर इच्छा करते हुए भी अछूत मन्दिरों में देव दर्शन न कर सके और वह घोषणा मात्र रह गई।

आर्य वीर मेघराज जी ने अछूतों के नागरिक अधिकारों की अवहेलना होते देख उन्हें विश्वास दिलाया कि "यद्यपि मैं मूर्ति पूजा का घोर विरोधी हूं, तथापि आप अपने नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए मन्दिर प्रवेश करना चाहेंगे तो मैं अग्रणी होकर आपके कार्य में सहयोग दूंगा। इसके विपरीत यदि किसी ने अनुचित चेष्टा की तो मैं उसे नरेश तक पहुँचा दूंगा।" उपरोक्त आश्वासन वे अपने बलिदान से एक दिन पूर्व दे चुके थे। उनके इस कार्य कलाप से कस्बे में हलचल सी छा गई। कट्टरपन्थी कानाफूंसी करने लगे। पौराणियों के हृदय धड़कने लगे। जनसाधारण में कौतूहल छा गया। अन्त में कुछ पौराणिक वीर अपने बाप दादों से चले आये, इस पुरातन धर्म की रक्षा के लिये कमर कस कर तैयार हुए। उन्होंने मेघराज जी के विरोधियों को उकसाया कि यदि तुम इस अवसर पर कुछ कर सको तो तुम्हें हम पूर्ण सहयोग देंगे। तुम्हारा बाल भी बांका न हो सकेगा।

उस दिन रामनवमी थी। आर्य वीर मेघराज जी कार्यवश जंगल में गये हुए थे। दुष्टों को सुयोग मिला। सात सशस्त्र व्यक्तियों ने उन्हें अकेले में घेर लिया। और बड़ी नृशंसता के साथ उन पर वार करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ समय पश्चात् जब वे गिर पड़े तथा नयन बन्द कर लिया, हत्यारे उन्हें मरा जान कर भाग गये। कुछ कन्याओं ने यह वीभत्स समाचार कस्बे में आकर सुनाया। बात की बात में श्री मेघराज जी की वीर पत्नी श्री आनन्दी बाई जी तथा दूसरे व्यक्ति घटनास्थल पर जा पहुँचे। उस समय मेघराज जी अन्तिम सांसें ले रहे थे। जब लोगों ने उनसे कहा कि "आर्य वीर! आज हम तुम्हें इस अवस्था में देखकर अत्यन्त दुःखी हैं।" तब उन्होंने उत्तर दिया कि—"मुझे अपनी इस स्थिति पर

तनिक भी खेद नहीं है। भगवान् भूलों को सुपथ बतावें, और आर्य जाति का कल्याण हो।" इसके बाद उन्होंने पुनः न खोलने के लिये आंखें मींच लीं।

नारायणगढ़ की राजनैतिक परिस्थिति उन दिनों बड़ी बिगड़ी हुई थी। आर्यों तथा सुधारकों से सब अधिकारी चिढ़े हुए थे। यदि 'श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान' के अधिकारी इस कांड को अपने हाथ न लेते तो हत्यारे दण्ड के स्थान पर पारितोषिक पाते। प्रतिनिधि सभा ने बड़ी जागरूकता से काम लिया। इस काम की पूरी जांच करवाई तथा हत्यारों को दण्ड दिलवाया।

धर्मवीर मेघराज जी के रिक्त-स्थान की पूर्ति अभी तक नहीं हो पाई। उन्होंने अपने जीवन काल में १२ समाजें स्थापित कीं। नायारायण गढ़ उनको पाकर धन्य हुआ है। ओ३म्-देव पुनः हमारे बीच ऐसे धर्मवीर, सेवाप्रेमी, आदर्शजनक उत्पन्न करें।

(आर्यसमाज के महाधन से उद्धृत)

महाशय राजपाल जी

(स्व० स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज)

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।

वह मरता नहीं जिसकी खूबी हो बाकी।
वह गायब नहीं जिसका जिकर हो बाकी॥

महाशय राजपाल जी का जन्म अमृतसर के एक निर्धन परिवार में ५ असाढ़ संवत् १९४२ को हुवा। आपका नाम घसीटाराम रखा गया। आपके पिता जी सम्भवतः अर्जी नवीस थे जो आपको आप के छोटे भाई और माता जी को बिना किसी आश्रय के छोड़ कर किन्हीं कारणों से गृह का परित्याग करके किसी तरफ चल दिये और पुनः उनका पता न लगा।

आप उन दिनों स्कूल में पढ़ते थे और आपका दूसरा भाई सन्तराम अभी बहुत छोटा था। आप ने इसी निर्धनता और सहायक हीनता की अवस्था में मिडिल पास किया। आप मेहनती और होशियार थे। आपने शीघ्र ही इस उत्तरदायित्व को समझ लिया कि मेरे छोटे भाई और पूज्या माता जी की सहायता का भार मेरे ऊपर ही है। उन दिनों मिडिल पास के लिए नौकरी मिल जाना सम्भव था, परन्तु इन जैसे निःसहाय के लिए कठिनता तो अवश्य थी। आपका कर्त्तव्य आपको बाधित कर रहा था, कि अपने छोटे भाई और अपनी माता के गुजारे के लिए कुछ न कुछ अवश्य पैदा करें। आपने इसी चिन्ता में लेखन कला की ओर ध्यान दिया। दिन रात मेहनत करके उसमें सफल हो गये और कुछ दिनों तक किताबत से ही सारे घर का निर्वाह करते रहे। सबसे पहली पुस्तक जो उन्होंने लिखी वह संस्कारविधि का सबसे पहला उर्दू तर्जुमा था तथा जिस अखबार की सर्व प्रथम उन्होंने किताबत की वह 'सर्व-दुःख निवारण' नामक साप्ताहिक वैद्यक का पत्र था।

आप अधिक परिश्रम और पर्याप्त भोजन न मिलने के कारण सदा ही जुकाम से ग्रसित रहते थे। स्वास्थ्य की निर्बलता से बाधित होकर आपने किताबत का काम छोड़ दिया। और अमृतसर के हकीम फतहचन्द के यहां बारह रुपये मासिक पर नौकर हो गये। आपने दिन रात के परिश्रम और ईमानदारी

से हकीम साहब को ऐसा प्रसन्न किया कि वे उनकी आज तक प्रशंसा करते हैं। हकीम साहब ने एक पत्र में उनसे सम्बन्ध रखने वाली एक दो घटनाओं का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं "राजपाल जी के हृदय में वैदिक धर्म के लिये प्रेम कूट-कूट कर भरा हुवा था। यद्यपि उनकी आयु थोड़ी थी तथापि उनमें सदाचार, सज्जनता और सत्यनिष्ठा ऐसी थी कि जो भी उनसे एक बार मिल लेता वह उनके सद्गुणों से प्रभावित हो जाता। मैं तो उन्हें अपने पुत्र की भांति ही जानता था। जब तक मेरे पास रहे इतनी नेकनीयती से काम किया कि आज तक उनके गुणों को याद करते हैं।

एक बार होलियों के दिनों में लड़के बाजार में अश्लील गीत गाते जा रहे थे। राजपाल जी मेरे पास से उठकर उनके पास गये और उनको समझाने लगे कि "जिन शब्दों को तुम लोग बाजार में बोल रहे थे, क्या इनको घर में भी बोल सकते हो?" लड़के लज्जित हो गये। जब होलियां समाप्त हो गई तब राजपाल जी ने उन बालकों को बुलाया और सबको उपदेश देकर 'बालक-सुधार' सभा स्थापित की। प्रतिदिन नियमित रूप से रात के आठ बजे यह सभा लगने लगी। इस सभा में स्कूलों के विद्यार्थियों को जिनमें मुसलमान लड़के भी थे, इकट्ठे कर उन्हें धर्मोपदेश देते थे। इस सभा ने बच्चों के सुधार का प्रशंसनीय कार्य किया। सभा में मांस भक्षण, तम्बाकूपान, मदिरापान इत्यादि विषयों पर वाद-विवाद होते थे। एक दिन महाशय राजपाल और एक मुसलमान युवक में मांस-भक्षण पर वाद-विवाद छिड़ गया। उस विवाद में पता चला कि राजपाल जी ने उस अल्प अवस्था में भी अपने धर्म ग्रन्थों का कितना अच्छा अनुशीलन किया हुवा था। वह युवक इनकी युक्तियों के सामने निरुत्तर हो गया। यह है उनकी प्रारम्भिक युवावस्था में धर्म प्रचार में धुन की एक झलक।"

आरम्भ से ही आपको लेख लिखने का भी शौक था। जब हकीम साहब ने अखबार "मुहक्कक" अमृतसर से जारी किया तो आप प्रायः उसमें लेख लिखा करते थे जो रोचक समझे जाते थे। जब हकीम साहब ने औषधियों के अतिरिक्त सामाजिक पुस्तकों की दूकान 'कर्मू डयोढ़ी' में खोली तो आपने इस पर भी बहुत दयानतदारी से काम करके यह सिद्ध कर दिया कि व्यापार में भी आप एक सफल व्यक्ति हो सकते हैं।

आप महात्मा मुन्शीराम जी के भक्त थे। जब उन पर मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी ने कुछ आक्षेप किये तो आपने महात्मा मुन्शीराम जी के हक में बहुत कुछ "सत्य धर्म प्रचारक" में लिखा।

सन् १९०६ ई० में आप जालन्धर 'सत्य धर्म प्रचारक पत्र' में क्लर्क होकर गये। वहां शायद आप पच्चीस रुपये मासिक वेतन लेते थे। वहां भी आपने बड़ी सच्चाई और परिश्रम से काम करके लोगों की प्रसन्नता प्राप्त की। आपका रसूम और मेल जोल बहुत अच्छा था। आपने हँसमुख और मजाकिया तबीयत पाई थी। सदा प्रसन्न बदन और पुलकित शरीर रहा करते थे। उन दिनों आपका बड़े लोगों से और भी रसूम बढ़ा। महात्मा मुन्शीराम जी के साथ रहने के कारण लोग आपको अच्छी तरह जानने लग गये थे। उन दिनों आप बहुत सादा रहते थे और समय मिलने पर थोड़ा बहुत किताबत का भी काम करते थे। अपनी इस छोटी सी आयु में से वे कुछ गुजारे के लिए अपने पास रख कर शेष छोटे भाई और माता के निर्वाह के लिए अमृतसर भेज देते थे। अपनी मौसी जी की भी आप ही मदद करते थे।

सत्यधर्म प्रचारक उन दिनों उर्दू में था। परन्तु १९०६ ई० के अन्त में महात्मा जी ने उसे हिन्दी में कर दिया। सत्यधर्म प्रचारक के हिन्दी में हो जाने पर आप फिर अमृतसर आ गये और उन्हीं हकीम

साहब के पास कुछ काल नौकर रहे। परन्तु उनसे मिलने वाले वेतन से उनका निर्वाह बड़ी मुश्किल से होता था।

दैवयोग से लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर आपकी महाशय कृष्ण जी से भेंट हुई। वह उन दिनों साप्ताहिक 'प्रकाश' निकालते थे। और उनको एक व्यक्ति की आवश्यकता थी। इसलिये आप उनके पास मेनेजर के रूप में बीस रुपये वेतन पर लाहौर चले आये। अपनी दयानतदारी और परिश्रम के स्वभाव से आपने अपने मालिक को शीघ्र ही प्रसन्न कर लिया।

उन दिनों 'प्रकाश' आरम्भिक दशा में था। बांस मण्डी के एक छोटे से मकान में उसका दफ्तर था। प्रकाश स्टाफ में आपके अतिरिक्त सम्पादक महोदय और एक चपरासी था। आप इतने सरल और मेहनती थे कि चपरासी की अनुपस्थिति में स्वयं ही प्रेस से फार्म आदि ले आया करते थे। और दफ्तर में रहते हुये दिन रात 'प्रकाश' की उन्नति में लगे रहते थे। 'प्रकाश' के सारे काम के अतिरिक्त 'प्रकाश-एजेंसी' के पुस्तकालय से पुस्तकें भी बाहर भेजने का काम करते थे।

स्वामी दयानन्द जी के आप सच्चे भक्त और अनुयायी थे। आपके विचार शुद्ध और परिष्कृत थे। मित्रों के कहने पर आपने निश्चय किया कि घसीटाराम की जगह कोई और नाम रखें। दिसम्बर मास के अवकाश में आप अमृतसर गये। वहां हकीम फतहचन्द के सामने भी नाम परिवर्तन का विचार उपस्थित किया। हकीम जी का आप पर पुत्रवत् स्नेह था। उनके एक छोटे शिशु 'राजपाल' की मृत्यु हो गई थी। अतः उनके आग्रह से आपने विधिपूर्वक संस्कार करा कर अपना नाम राजपाल रखा। तब से 'राजपाल' नाम से प्रसिद्ध हुये।

१९११ ई० में आपका विवाह हुआ। आपका उत्तरदायित्व बढ़ गया। दफ्तर से आपको चालीस रुपये के लगभग वेतन मिलने लग गया। फिर भी घर के खर्च का बोझ अधिक था। इससे आप चिन्तित रहते थे।

'प्रकाश' को आपने जिस लग्न, परिश्रम और सचाई से काम करके उन्नति के शिखर पर पहुँचाया इससे आपके मालिक बहुत प्रसन्न रहते थे। अन्ततः इनके काम से उन्हें ऐसी प्रसन्नता हुई कि नौकर, मालिक का सम्बन्ध टूट कर भाई का सम्बन्ध स्थापित हुआ। 'प्रकाश' के प्रबन्ध के अतिरिक्त वे रिपोर्ट आदि लेने का काम भी बड़ी अच्छी तरह कर लेते थे।

१९१९ ई० में जब हिन्दू-मुस्लिम मेल था और उन्हीं दिनों जब महाशय कृष्ण जी राजनैतिक अपराधी समझे जाकर 'मार्शल-ला' के अनुसार 'कारागार में डाल दिये गये तब उनकी अनुपस्थिति में उन्होंने 'प्रकाश' डगमगाने नहीं दिया अपितु उसी प्रकार जारी रखा।

आपकी मेहनत से 'प्रकाश' की पर्याप्त उन्नति हो गई और आपकी सहायता के लिए एक और लेखक की आवश्यकता समझी गई। आपका वेतन बढ़ा दिया गया। जिस पर आप अपनी माता और छोटे भाई को लाहौर ले आये और यहीं रहना प्रारम्भ किया।

आवश्यकताओं के बढ़ जाने के कारण आपने सोचा कि दिन में दफ्तर का काम करने के अतिरिक्त रात को कुछ किताबों का भी काम किया जावे। परमात्मा ने आपको उत्साह दिया। और आपने सबसे पहले दो पुस्तकें छपवाईं, 'प्राचीन सभ्यता' और स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की "सत्योपदेशमाला"।

पहले तो आपको बहुत मेहनत करनी पड़ी। कुकाम ने अब तक साथ न छोड़ा। परन्तु आपने भी हिम्मत को हाथ से न जाने दिया। और काम कुछ कुछ चल निकला। आपने 'सरस्वती आश्रम' और

'आर्य पुस्तकालय' के नाम से एक पुस्तकालय जारी कर दिया। पीछे कुछ काम प्रारम्भ हो जाने के बाद आपने एक नई दुकान किराये पर ली और अपनी कार्य कुशलता से पुस्तकालय की इतनी उन्नति की कि उनके मुकाबले का पुस्तक विक्रेता लाहौर में न था।

महाशय जी सदाचार के पक्के पक्षपाती थे। परनारी को सदा माता तथा बहन की दृष्टि से देखते थे। उनकी दृष्टि सदा झुक जाती थी। स्त्री जाति के लिये उनके हृदय में प्रेम था। उन्होंने स्त्री जाति के उपकारार्थ कई नई उत्तम पुस्तकें छपवाईं। मास्टर लक्ष्मण जी ने अपना आर्य पुस्तकालय गुरुकुल को दान दिया। और गुरुकुल वालों ने विक्रयार्थ उक्त पुस्तकालय राजपाल को सौंपा। तब से इसका नाम "सरस्वती-आश्रम" और आर्य पुस्तकालय हो गया।

आज का युग प्रकाशन का युग है। महाशय जी ने इस तथ्य को भली-भाँति समझा था। आर्य समाज सम्बन्धी साहित्य को नियमित और संगठित रूप से प्रकाशन करने का श्रेय महाशय राजपाल जी को है। उन्होंने अपने छोटे से जीवन काल में उच्च-कोटि के अनेकों ग्रन्थ प्रकाशित किये। पंजाब के हिन्दू उन दिनों प्रायः हिन्दी भाषा से अनभिज्ञ थे। अतः महाशय जी ने आर्य-समाज की सैकड़ों पुस्तकें उर्दू में प्रकाशित कीं। धर्म की धुन के ऐसे धनी थे, कि यदि उन्हें पता चल जाता कि किसी विपक्षी ने आर्य समाज पर आक्षेप-जनक पुस्तक लिखी है तो जब तक दिन रात आर्य-समाज के विद्वानों को प्रेरणा करके उक्त पुस्तक के खण्डन और आर्य सिद्धान्तों के मण्डन में पुस्तक लिखवा प्रकाशित न कर देते तब तक उन्हें सन्तोष न होता था। उन्होंने आर्य समाज के साहित्य में जो पुष्कल वृद्धि की है वह प्रशंसनीय है। आर्यसमाज के जितने लेखक हैं प्रायः सभी की रचनाएं उन्होंने हिन्दी, उर्दू, वा अंग्रेजी में प्रकाशित की हैं। सन् १९२३ में महाशय राजपाल जी ने अपने आर्य पुस्तकालय में उर्दू सत्यार्थ-प्रकाश का १०००० प्रतियों का संस्करण प्रकाशित किया। इसके बाद पांच संस्करण और भी 'आर्य पुस्तकालय' ने प्रकाशित किए। और इस तरह कुल ४०,००० सत्यार्थ प्रकाश उर्दू जानने वालों में लागत मूल्य पर वितरण हुए। इस उर्दू सत्यार्थ-प्रकाश में ८०० से ऊपर पृष्ठ थे और मूल्य था केवल आठ आना। उसी प्रकार महाशय जी ने उर्दू में 'संस्कार विधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' आदि पुस्तकें भी प्रकाशित कीं। हिन्दी में महाशय जी द्वारा सम्पादित 'भजन-पुष्पाञ्जलि' दो लाख दस हजार से भी अधिक छप कर देश और विदेश में पहुँच चुकी है। इसी प्रकार 'भक्ति-दर्पण' नामक आर्यों का नित्य कर्म का गुटका भी, जो महाशय राजपाल जी की सूझ का परिणाम है, एक लाख आठ हजार से भी अधिक छप कर देश, विदेशों में आर्यसमाज के प्रचार का साधन बन रहा है। राजपाल जी के प्रकाशित साहित्य ने वैदिक-धर्म के संदेश को भारतवर्ष में और बाहर विदेशों में फैलाने में बहुत सहायता दी है।

इनका हृदय बहुत सहानुभूति पूर्ण था। वाणी में ऐसी मिठास थी कि पराया भी इनके पास आकर अपना हो जाता था। अपने नौकरों से उनका व्यवहार बहुत अच्छा था। जिसे एक बार नौकर रख लिया, उसको फिर निकालते न थे। यदि कोई अपरिचित भी उनके पास सहायता का इच्छुक होकर जाता तो निराश नहीं लौटता था। अपनी सन्तान के साथ आप माता से बढ़कर प्रेम करते थे तथा सदा उनको सुशिक्षा देते रहते थे। निर्धनता और निःसहायता की अवस्था से उठकर किस प्रकार एक आदमी सांसारिक ऐश्वर्य, धन सम्पत्ति और यश को प्राप्त कर सकता है? श्री राजपाल इसके प्रतीक थे।

उनके व्यापार का मूल था—सत्य। सैकड़ों और हजारों के लेन, देन में उनका एक रुक्का काफी था। प्रेसों का आपमें विश्वास था। आपका काम सभी खुशी से छापते थे। कागज वाले हजारों कागज

संकेत पर देने के लिए उद्यत थे। लेन देन के विषय में उनका किसी से झगड़ा न हुआ और जिस जिसका उनसे सम्बन्ध पड़ा, वह सब आपकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं। इसका आप एक प्रमाण लें। मैंने एक बार श्री भाई परमानन्द जी से पूछा आप किताबें लिखते रहते हैं और पुस्तक वालों को छापने के लिये देते भी हैं, कहिए क्या हाल है? उन्होंने उत्तर दिया। सिर्फ राजपाल की दुकान नियम से पैसे देती है, बाकी तो सब वैसे ही हैं।

सन् १९२४ में कादियानियों के प्रकाशन गृह से "उन्नीसवीं का सदी महर्षि" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। उसमें ऋषि दयानन्द के जीवन पर अनुचित आक्षेप किए गए थे। इसके पश्चात् मई १९२४ में महाशय राजपाल जी के सरस्वती आश्रम की ओर से उक्त पुस्तक के जवाब में "रंगीला रसूल" नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई। पहले 'रँगीला-रसूल' पर गवर्नमेंट ने कोई रिपोर्ट नहीं ली थी, न उसे बुरा समझा था। किसी मुसलमान ने वह पुस्तक महात्मा गांधी के पास भेज दी। उन्होंने सर्व-प्रथम उसके विरुद्ध लिखा। इसके बाद मुसलमानों ने भी उसका विरोध करना शुरू किया। और सभायें करके रंगीला रसूल के विरुद्ध प्रस्ताव पास किया। इस पर पंजाब सरकार ने आप पर इस पुस्तक को छापने के अपराध में मुकदमा चलाया और पुरतक जब्त कर दी। यह मुकदमा पँजाब के अदालती इतिहास में विशेष महत्व रखता है। मुकदमा लम्बा खिचता गया और इनके हजारों रुपये इसमें लग गये। परन्तु इन्होंने किसी भी सभा या समाज से एक पाई भी लेनी स्वीकार न की। मुकदमे की यह विशेषता थी कि जहां मुसलमानों की ओर से सैकड़ों मुसलमान और मौलवी इकट्ठे हो जाते थे, वहां आर्यसमाज की ओर से अकेले राजपाल जी अन्त तक निर्भयता से डटे रहे। इन्हें जहां एक ओर मुकदमे की तैयारी में न दिन को चैन था न रात को आराम, वहां दूसरी ओर मुसलमान अखबारों और मौलवियों ने इनके विरुद्ध बड़े जोरों का प्रचार किया। और कुफ्र का फतवा देकर कत्ल करने की धमकी दी। महाशय जी अभियोग में पहले तो कैद हुए परन्तु हाईकोर्ट से साफ बरी हो गये। कानून भी सत्य का गला दबा नहीं सका। और मना लिया कि 'रंगीला रसूल' में दूध का दूध तथा पानी का पानी है।

राजपाल जी एक शान्ति प्रिय पुरुष थे। यदि वे चाहते तो उसके कई संस्करण निकाल लेते, परन्तु ज्यों ही उन्हें यह मालूम हुआ कि मुसलमान इस पुस्तक के प्रकाशन से रुष्ट हैं, उन्होंने दूसरा संस्करण निकालने का विचार छोड़ दिया और घोषणा कर दी कि मुसलमानों की भावनाओं का आदर करते हुए उक्त पुस्तक को दूसरी बार नहीं छपवायेंगे।

मुसलमानों ने उनकी इस सहृदयता का क्या बदला चुकाया यह भी देख लीजिये। २६ सितम्बर १९२७ के प्रातःकाल मैं और स्वा० वेदानन्द जी तीर्थ महाशय जी की दुकान पर खड़े बातचीत कर रहे थे। इतने में एक खुदाबख्श नाम का व्यक्ति आया और उसने झट महाशय जी पर प्रहार कर दिया। उनके हाथ, बाहु तथा जंघा पर घाव हो गये। उसको वहीं पकड़ कर पुलिस के हवाले कर दिया गया। महाशय जी को महीना भर मेयो हस्पताल में पड़ा रहना पड़ा।

इसके पश्चात् फिर ९ अक्टूबर १९२७ को आक्रमण हुआ। महाशय जी की दुकान पर श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज किसी कार्यवश बैठे थे। 'अब्दुल अजीज' ने उन्हीं को राजपाल समझ कर पीछे से छुरी घोंप दी। वे अभी एक दो वर्ष के एकान्तवास से लौटे थे। स्वामी जी पर्याप्त समय हस्पताल में रहे, तब जाकर धीरे-धीरे स्वस्थ हुये। आक्रमणकारी को सजा मिली।

इसी बीच में महाशय जी को धमकियां मिलती रहीं कि मुसलमान हो जाओ अन्यथा कत्ल हो

जाओगे। अन्त को ६ अप्रेल १९२९ को जब उसी दुकान पर बैठे महाशय जी हिसाब मिला रहे थे तब 'इल्मदीन' नामक एक युवक आया। वह झट महाशय जी पर झपटा और तुरन्त छुरी के घाट उतार गया।

इल्मदीन पर मुकदमा चला और इसे मियां वाली जेल में फांसी मिली। उसकी लाश खोदकर लाहौर लाई गई और उसका शानदार जलूस निकाला गया। कोई ही बड़े से बड़ा मुसलमान होगा जो इस अर्थी के साथ न गया हो। कादियानी पत्र 'लाइट' ने लिखा "प्रत्येक हिन्दू-राजपाल है, इसलिये प्रत्येक मुसलमान को इल्मदीन बन जाना चाहिये।"

महाशय जी के मित्र कहा करते थे मौत से मत खेलो। वे कहते-मौत से डरें तो जिन्दगी क्या? वे बड़े तार्किक वा बड़े शास्त्रार्थी नहीं थे। वे सीधे सादे एक सच्चे मनुष्य थे। अभिमान आदि से शून्य। वे शिष्टता की मूर्ति थे। पुस्तक विक्रय का कार्य वे धर्म की दृष्टि से सेवा के लिये करते थे। इसी मार्ग में हंसते-हंसते अपनी जान दे दी।

इनके शहीद हो जाने के उपरान्त शिमले में मुझे मालवीय जी मिले। उन्होंने मुझसे पूछा—राजपाल ने उस पुस्तक के लेखक का नाम बतलाया या नहीं। मैंने कहा—न अभियोग में, न पहली बार आक्रमण होने पर। अर्थात् मरण तक किसी को यह नहीं बतलाया कि इस पुस्तक का लेखक कौन है। इस पर मालवीय जी ने कहा—ये बड़े महान् आत्मा हैं। जान देते हैं पर बात नहीं बतलाते।

मुझे उस समय प्रसिद्ध कवि वारिशशाह की यह पंक्ति याद आई।

वारिशशाह न भेद सन्दूक खुले।
भावें जान दा जंदरा टूट जावे।

वैरागिप्रवर—

श्री स्वामी योगानन्द जी "सरस्वती"

(श्री सुदर्शनदेव शास्त्री)

आपका जन्म हिसार जिले की हांसी तहसील के अन्तर्गत उमरा नामक ग्राम के पास (जहां पहिले एक गुरुकुल भी चलता था) देपली की ढाणी नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता जी एक सामान्य किसान थे। बाल्यकाल में ही आपके पिता जी ने आपका विवाह कर दिया था। आप बाल्यकाल में ग्राम के स्कूल में ही पढ़ते रहे। सौभाग्यवश एक सज्जन अध्यापक ने आपको एक धार्मिक-शिक्षा नामक पुस्तक पढ़ने को दी। जिस में ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन था। उसी दिन से आपने ब्रह्मचर्य के महत्त्व को समझा और ब्रह्मचर्य-पालन की सच्ची लगन लग गई।

माता-पिता ने आपको गृहस्थी बनने के लिये बाधित किया, किन्तु आप को तो ब्रह्मचर्य पालन की सच्ची धुन लग चुकी थी। आप ऋषि दयानन्द की भांति घर छोड़ कर चले गये। घूमते-घूमते दयानन्द वेद विद्यालय देहली में पहुंचे। जो आचार्य राजेन्द्रनाथ जी शास्त्री की देख-रेख में चल रहा था। उन दिनों आचार्य भगवान्देव जी भी इसी विद्यालय में विद्याध्ययन कर रहे थे। आचार्य जी ने इन्हें सम्भाला और इनके विचारों को पूरा बल दिया। स्वामी जी के जीवन-निर्माण में आचार्य जी का पूरा-पूरा हाथ रहा।

माता-पिता ने इनका खोज निकाल लिया और विद्यालय में आ पहुँचे। इन्हीं पर चलने के लिये बाधित करने लगे। ये तो घर से सर्वथा विरक्त हो चुके थे और ब्रह्मचर्य के वास्तविक आनन्द को पहचान गये थे। इन्हें गृहस्थ से घृणा हो चुकी थी। माता-पिता जी के सर्वविध प्रयत्न असफल रहे। यहां तक कि एक बार इन्हें पिता जी ने लाठी लेकर मारा भी किन्तु ये अपने दृढ़ निश्चय से विचलित नहीं हुए। "न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदन्न धीराः" इस भर्तृहरि के वचन का दृढ़तापूर्वक पालन कर अपने धैर्य का उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किया।

एक बार माता-पिता आप की धर्मपत्नी को लेकर भी विद्यालय में पहुंचे। यहां तक भय दिखलाया कि यदि तुम घर नहीं चलते तो हम इसे भी यहीं छोड़ कर जायेंगे। किन्तु आपने इसकी भी कोई परवाह न की। अपने निश्चय पर अडिग रहे। श्री आचार्य भगवानदेव जी ने भी इस समस्या को सुलझाने में पूरा-पूरा इन्हें सहयोग दिया।

श्री आचार्य भगवानदेव जी ने नरेला (देहली) में "आर्य विद्यार्थी आश्रम" की स्थापना की। जहां अनेक ब्रह्मचारी आर्य सिद्धान्तों का अध्ययन करते और जीवन साधना में रत रहते थे। स्वामी जी ने भी अनेक वर्ष यहां निवास किया तथा अपने जीवन को आदर्श जीवन बनाया। आप सभी नित्य कर्म अत्यन्त श्रद्धा भक्ति से किया करते थे। आप अत्यन्त व्यायाम प्रेमी थे। आपका कद लगभग छः फुट था। आप एक दर्शनीय नवयुवक थे। आप घंटों संध्या किया करते थे। आप सच्चे योगानन्द ही थे।

सन् १९४२ में श्री आचार्य भगवानदेव ने गुरुकुल झज्जर (रोहतक) का कार्य भार आ सम्भाला। स्वामी जी आचार्य जी के ही पदचिह्नों पर चलते थे। स्वामी जी भी अध्ययनार्थ गुरुकुल झज्जर में आ पहुंचे। आपने यहां संस्कृत-व्याकरण का अध्ययन किया। आप एक घण्टा में अष्टाध्यायी के ४ हजार सूत्रों का पाठ कर दिया करते थे। साथ-साथ आप गुरुकुल में सेवा कार्य भी करते रहे। गुरुकुल के लिये अन्नसंग्रह तथा प्रचार कार्य भी आपने बड़ी लग्न के साथ किया। आप एक अथक और अत्यन्त उत्साही नवयुवक साधु थे। आप जीने पर दो-दो पैड़ी लांघ कर भागते हुए चढ़ जाया करते थे।

एक दिन आप श्री आचार्य भगवानदेव के साथ ग्राम बालन्द (रोहतक) में मैजिक लालटेन द्वारा प्रचारार्थ गये। ग्राम में दो दिन प्रचार हुआ। प्रथम दिन तो पिता जी ने कोई ये ड्रामा आदि दिखलाने वाले हैं ऐसा समझ कर लेखक (सुदर्शनदेव) को नहीं जाने दिया। अगले दिन ज्ञात हुआ कि ये तो गुरुकुल झज्जर से पधारे हुए हैं। जो आर्यसमाज का प्रचार कर रहे हैं। अगले दिन लेखक को प्रचार में जाने का सौभाग्य मिला। स्वामी जी का ओजस्वी भाषण सुन कर मैंने विचार किया यदि पढ़ना है तो गुरुकुल में ही पढ़ना है। कुछ दिन के पश्चात् स्वामी नित्यानन्द जी के साथ गुरकुल में आया और अपनी इच्छा पूर्ण की। धन्य है स्वामी जी महाराज जिन्होंने मुझे अपने ओजस्वी भाषण एवं आदर्श जीवन के बल से आर्यसमाज की शरण में आने को प्रेरित किया।

सन् १९४७ में जब हिन्दू मुस्लिम झगड़ा हुआ और पाकिस्तान बना, तब आप कुल्लू कांगड़े के पहाड़ों में गये हुए थे। आप के सिर पर चोटी न देखकर आप को कई सिखों ने घेर लिया, और आप पर हमला किया। आप प्राण-रक्षार्थ एक छोटी सी कुटिया में घुस गये, जिस के किवाड़ तो थे किन्तु शृङ्खला (सांखल) न थी। आपने किवाड़ों को बन्द कर दिया और अपने ब्रह्मचर्य के बल से उनके पूर्ण बल लगाने पर भी नहीं खुलने दिया। आप अत्यन्त बल-शाली थे। आपने साधु कर्तव्य अहिंसा-पालन का उत्कृष्ट उदाहरण दिया।

माता का देहावसान किस के आंखों में आंसू नहीं बहा देता। आप की माता जी का देहावसान हुआ। श्री आचार्य भगवान्देव जी को यह वृत्तान्त विदित हुआ। श्री आचार्य जी ने स्वामी जी से कहा कि आप की माता जी का स्वर्गवास हो चुका है। आपने बड़े धैर्य से उत्तर दिया कि "हो गया होगा।" माता जी के स्वर्गवास से किसी भी प्रकार का विकार आपके मन में नहीं आया। इसे वैराग्य की पराकाष्ठा कहते हैं।

समाज सेवा के लिए आपने आयुर्वेद पढ़ना अत्यन्त उपादेय समझा। आचार्य भगवान्देव जी की अनुमति से आयुर्वेद पढ़ने के लिये "आयुर्वेदिक तिबिया कालिज देहली" चले गये। वहां लगन से आयुर्वेद अध्ययन करते रहे। इसी बीच में श्री आचार्य भगवान्देव जी को मोटर साइकिल के एक्सीडेण्ट से दोनों पैरों में भारी चोट आई। जिस चोट का आज तक भी श्री आचार्य जी के पैरों में कुप्रभाव शेष है। श्री आचार्य जी की चिकित्सा नरेला में हो रही थी। आप श्री आचार्य जी से अनेक बार मिलने-जुलने आया करते थे। और आचार्य जी की दशा का पता ले जाया करते थे।

स्वर्गवास

एक दिन आप श्री आचार्य जी से मिलने के लिये तिबिया कालिज देहली से रेलगाड़ी द्वारा नरेला जा रहे थे। गाड़ी में भीड़ होने के कारण आप अपनी सुशीलता वश डिब्बे में नहीं घुसे अपितु गाड़ी में आरोहणार्थ डडों को पकड़ कर ही खिड़की पर खड़े हो गये। गाड़ी चलकर बादली स्टेशन पर पहुंची। किसी धूम्र-पान व्यसनी व्यक्ति ने आप की ओर बीड़ी का धूआँ छोड़ा। आपने धूँवे से बचने के लिए पीछे को शिर किया कि आपका शिर सिगनल से टकरा गया और टकराते ही आपका शिर फट गया। आप गाड़ी से गिर गये। शिर के द्वारा आप के शरीर से सारा रक्त निकल गया। सूचना मिलने पर श्री सुखलाल जी तथा श्री वैद्य कर्मवीर जी आदि आपको उठा ले गये। उनके आने से पूर्व आप इस ससार से चल बसे थे। श्री आचार्य भगवान्देव जी को जब यह सूचना मिली तो आप की मनोव्यथा का पारावार न रहा। इतना दुःख श्री आचार्य जी को अपनी माता की मृत्यु पर भी नहीं हुआ। किन्तु "भवितव्यं केन निवार्यते"। श्री सुखलाल जी तथा कर्मवीर जी आदि ने आपका वैदिक रीति से देहली में अन्त्येष्टि संस्कार किया।

यह वृत्तान्त वायुवेग से सर्वत्र फैल गया। जब इस दुर्घटना की सूचना श्री फलसिंह जी पतला निवासी द्वारा गुरुकुल में पहुंची तो सारे गुरुकुल में शोक का सन्नाटा छा गया। स्वामी जी की दिवंगत आत्मा की शान्ति एवं निज मनोव्यथा के अपाकरण के लिये सभी गुरुकुलवासी कर्मचारी एवं ब्रह्मचारियों की सम्मिलित शोक सभा हुई।

श्री स्वामी जी के जीवन से तिबिया कालेज के प्रिन्सिपल भी अत्यन्त प्रभावित थे। उनके स्वर्गवास से तिबियाकालेज में भी हड़ताल रही।

श्री स्वामी आत्मानन्द जी का भी यमुना नगर जगाधरी से भी पत्र आया कि "हमारे बीच से एक विरक्त साधु साथी हम से सदा के लिये वियुक्त हो गया। इसका मुझे बहुत दुःख है।"

श्री स्वामी योगानन्द जी का स्मारक

वैदिक साहित्य सदन (देहली)

श्री आचार्य भगवान्देव जी, श्री जगन्नाथ जी बी. ए. एल. एल.बी., श्री पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती आदि महानुभावों ने मिल कर स्वामी योगानन्द जी की पुण्य स्मृति में वैदिक साहित्य सदन की स्थापना

की। और निश्चय किया गया कि इस वैदिक साहित्य सदन की ओर से ब्रह्मचर्य सम्बन्धी तथा वैदिक साहित्य का प्रकाशन किया जाये। क्योंकि स्वामी जी अखंड ब्रह्मचारी तथा वैदिक साहित्य प्रेमी थे। वैदिक साहित्य-सदन अनेक वर्षों से स्वामी जी की स्मृति में साहित्य-सेवा कार्य कर रहा है। ब्रह्मचर्य सम्बन्धी बहुत साहित्य प्रकाशित किया है। जिस से देश में ही नहीं विदेशों में भी अनेक युवक इस साहित्य से लाभ उठा रहे हैं।

स्वामी जी की पुण्यस्मृति में गुरुकुल झज्जर में भी "वैदिक विश्वम्भर पुस्तकालय" संस्थापित है। जो ब्रह्मचर्य सम्बन्धी तथा वैदिक-साहित्य का प्रकाशन कार्य करता है। यह भी अनेक वर्षों से चालू है। यहां से भी अनेक युवक जीवन सम्बन्धी साहित्य प्राप्त कर लाभ उठा चुके हैं। यहां से विदेशों में भी जीवन-सम्बन्धी साहित्य भेजा जाता है।

श्री स्वामी जी महाराज अत्यन्त सुशील शान्त स्वभाव के साधु थे। लेखक के साथ स्वामी जी महाराज अनेक वर्षों तक रहे। किन्तु मैंने कभी भी उनके मुखमंडल पर क्रोध का आभास मात्र भी नहीं देखा। बार-बार पूछने पर भी कभी अपने माता-पिता तथा ग्राम का नाम नहीं बतलाया। अन्य जो भी उनके साथ रहे इसी प्रकार से उनके सम्बन्ध में बतलाते हैं और उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं।

दुःख है स्वामी जी आज हमारे बीच में नहीं हैं। वे अपने यौवनकाल में ही हमें छोड़ कर चले गये। क्या अच्छा होता यदि वे आज हमारे साथ होते। ठीक है कि वे आज शरीर रूप में संसार में जीवित नहीं हैं किन्तु उनके आदर्श संसार में सदा जीवित रहेंगे। भगवान् संसार में ऐसे विरक्त साधु समय-समय पर उत्पन्न करते रहें।

पण्डित तुलसीराम

(स्व० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज)

उपकृतिरेव खलानां दोषस्य गरीयसो भवति हेतुः।

संसार ही की सेवा, शुभ टेक हो हमारी।
हम आर्य चाहें यह तन बलिदान के लिए हो॥

जिस व्यक्ति के जीवन की चर्चा हम अपनी इन पंक्तियों में करने चले हैं उनका वध उस सम्प्रदाय के व्यक्तियों ने किया जिनके लिए अहिंसा सर्वस्व है। जिनका धर्म ग्रन्थ 'अहिंसा परमो धर्मः' की दुन्दुभि बजाता हुआ सूक्ष्मातिसूक्ष्म हिंसा से बचने का आदेश देता है। जो भगवान् महावीर को अपना आचार्य मानते हैं। पंडित तुलसीराम का इन जैनियों से कोई द्वेष नहीं था, वे सरल साधु प्रकृति थे, परन्तु उन का सत्यप्रचार इनके कानों में पीड़ा उत्पन्न करता था। इन लोगों ने उनका प्राणान्त करके अपनी इस पीड़ा को दूर किया। परन्तु क्या सचमुच इनकी पीड़ा दूर हो गई?

पण्डित तुलसीराम का जन्म जिला गुरुदासपुर के डेरा बाबा नानक के समीप रुडा ग्राम में हुवा था। ये पवित्र पुञ्ज वंश के ब्राह्मण थे। इनके पिता श्री हरिराम जी थे जो साहूकार का काम करते थे। आपके दो छोटे भाई और एक बहिन थी, जिसका नाम लक्ष्मीदेवी था। बचपन में ही माता आपको छोड़ स्वर्ग सिधार गई। १२ वर्ष की आयु में पिता की छाया भी आप पर से उठ गई।

गुरुदासपुर के गवर्नमेंट हाईस्कूल से आपने दशवीं की परीक्षा पास की। इसके बाद रुड़की ओवरसियर क्लास में पढ़ने चले गये। वहां आठ महीने पढ़ते रहे। पश्चात् बीमार हो जाने से छोड़कर चले आये। और रेलवे में नौकरी कर ली। और लांधरा स्टेशन पर लगे। जब आप सनावा में असिस्टेशन मास्टर थे तब बटाला में श्री लाजवन्ती देवी से उनका विवाह हुआ। आपने रसीदा, मुलतान छावनी, पत्तोकी, मुरीदके शोरकोटरोड, दाउदखेल, फरीदकोट इन स्टेशनों पर कार्य किया।

आप में आर्यसमाज के कार्य करने की बड़ी लगन थी। आर्यसमाज का संस्कार उनमें गुरुदासपुर में पढ़ते हुए मास्टर मुरलीधर जी से आया था। आप जहां जाते आर्यसमाज का प्रचार करते थे। यदि समाज नहीं होती तो नई समाज की स्थापना करते। और यदि होती तो यथाशक्ति उसकी उन्नति करते थे। रेलवे कार्यकाल के बाद अपना समय प्रचार में लगाते थे। और कई बार रात को दो-दो बजे घर लौटते थे। आप गायक बड़े अच्छे थे और प्रचार कार्य में अपनी इस कला का भी उपयोग करते थे उनकी सितार अब तक उनके घर पर पड़ी है।

सनावा में वे लगभग सन् १६०० में थे। सनावा में आर्यसमाज से लोग अनभिज्ञ थे। आप अपनी डयूटी के बाद सनावा नगर (जिला मुजफ्फरगढ़) में और आस पास के ग्रामों में प्रचार करते थे। गुरमानी में उनके प्रेमी चौधरी रतनचन्द जी थे। सनावा में आपने बहुतों से मांस मदिरा छुड़ाया। आप मूर्तिपूजा के विरुद्ध भी जोरदार विचार प्रकट करते थे। सनावा से आप स्टेशन मास्टर बन कर तबदील हुए।

आप आतिथ्य सत्कार बड़े आदर से करते थे। आपके घर पर कोई न कोई उपदेशक अतिथिरूप में रहता ही था। रसीदा स्टेशन पर स्वर्गीय पण्डित लेखराम जी कई बार आपके अतिथि बने थे।

बदलते हुए आप फरीदकोट स्टेशन पर १६०३ में आये। रियासत में जैनियों का प्राबल्य था। इनका धर्म प्रचार शान्तिमय और निर्दोष धर्म प्रचार उनके हृदय में चुभने लगा। भावड़ा जाति के जैनियों ने इनके वध का षड्यन्त्र किया। रियासत के अधिकारी भी इसमें सम्मिलित हो गये। गोपीराम भी जिसकी श्री पं० तुलसीराम ने स्टेशन पर जनाना डिब्बे के सामने शरारत करने के कारण भर्त्सना की थी, इस षड्यन्त्र में शामिल हो गया। रात को आर्यसमाज फरीदकोट के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य में पंडित तुलसीराम जी सितार बजाते हुए नगर में प्रचार कर रहे थे। शनिवार का दिन था। एक जगह अंधेरे में इनसे किसी ने पूछा कौन हो? इन्होंने उत्तर दिया—तुलसीराम! उसने लाल मिर्ची मिली रेत आँखों में झोंक दी। जब यह पीड़ा से बैठ गये वह उन्हें छुरा घोंपकर भाग गया।

बड़ी मुश्किल से ये स्टेशन पर पहुंचे। वहां से इन्हें फिरोजपुर लाया गया। मालूम होता है आततायियों ने डाक्टरों की जेबें पहले ही गरम कर दी थीं। लाजवन्ती बेचारी रास्तों से अनजान भटकती रही। उसे पता नहीं कहां जाये। जब वे अस्पताल पहुँची तो पता चला कि उनका उचित उपचार नहीं हुआ महाधन के अन्तिम शब्द थे—बिना अपराध के मार दिया। अच्छा, धर्म के मार्ग पर मैंने प्राण दिया।

सोमवार को शाम को साढ़े पांच बजे इनका देहावसान हो गया।

गोपीराम को आजीवन कारावास की सजा हुई थी। परन्तु दस साल की सजा काटकर वह टीका के विवाह पर छूट गया। रियासत का वजीर भी इस षड्यन्त्र में शामिल होने के कारण निकाला गया।

महाधन होने के समय श्री पण्डित तुलसीराम जी की आयु ३२ वर्ष की थी। इनका शरीर लम्बा और सुडौल था। देखने में कमनीय थे। वे भक्त प्रकृति के व्यक्ति थे। उनकी वैरागिन जिससे वे ध्यान करते थे, श्री लाजवन्ती देवी के पास अब तक है। सन्ध्या हवन नियम पूर्वक रोज करते थे। धार्मिक

भावना में वे इतने दृढ़ थे कि जब छुरा लगने पर शरीर में शक्ति देने और खून रोकने के लिए स्टेशन पर ब्राण्डी लाई गई तो उन्होंने नहीं ली। प्राण दिया परन्तु शराब का स्पर्श नहीं किया।

उन्होंने नौ वर्ष तक भिन्न-भिन्न स्टेशनों पर काम किया। इतने दीर्घकाल में आदमी क्या नहीं कमा लेता। परन्तु इन्होंने कभी किसी से रिश्वत नहीं ली। मरते समय कमाई के कुल एक हजार रुपये वे छोड़ गये। इनकी दो लड़कियां विद्यमान हैं।

(आर्यसमाज के महाधन से उद्धृत)

वीर रामचन्द्र

(स्व० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज)

रुद्रोऽद्रिं जलधिं हरिर्दिविषदो दूरं विहाय श्रिताः।
भोगीन्द्राः प्रबला अपि प्रथमतः पातालमूले स्थिताः॥
लीनाः पद्मवने सरोजनिलया मन्येऽर्थिसार्थाद्भिया।
दीनोद्धारपरायणाः कलियुगे सत्पुरुषाः केवलम्॥
भूत छूत का दूर भगा दो, हिन्दू बनो उदार।
मित्र! अछूत शब्द को मेटो, मिलना भुजा पसार॥

मेघजाति के उद्धार में अपना प्राण गँवाकर रामचन्द्र ने अपना नाम अमर कर लिया है। रियासत जम्मू जिला कठुवा, तहसील हीरानगर में ला० खोजूशाह महाजन खजाञ्ची के घर में १६ आषाढ़ संवत् १६५३ के दिन इनका शुभ जन्म हुआ। इनके ८ छोटे भाई और १ बहिन है। आप सबसे बड़े थे। आपने मिडिल तक शिक्षा प्राप्त की थी। अपनी श्रेणी में सदा प्रथम रहते थे। रियासत के दफ्तरों की कार्यवाही डोगरी भाषा की जगह उर्दू में हो जाने से खजाञ्ची का काम पिता की जगह पुत्र को मिला।

रामचन्द्र की प्रवृत्ति बचपन से धार्मिक थी। अखबार पढ़ने का खूब शौक था। आर्यसमाज की सत्संगति ने उस पर खासा रंग चढ़ा दिया था। खजाञ्ची बनने पर उनकी बदली बसोहली हो गई। वहाँ दो वर्ष आर्यसमाज की बड़ी सेवा की। पुनः कठुवा बदलकर चले गये। यहां आर्यसमाज का प्रचार करना मौत के मुख में पड़ना था। परन्तु उन्होंने निर्भयता से समाज का काम किया और अछूत जातियों की शुद्धि भी की। इससे विरोध का तूफान मच मच गया, इस कारण उन्हें १६१८ में साम्बना में तब्दील कर दिया गया। वहां जाते ही आर्यसमाज कायम किया। एन्फ्लुएंजा की देशव्यापी बीमारी में सेवासमिति खोलकर बड़ी सेवा की। राजपूत ब्राह्मणों के विरोध का अकेला मुकाबला करते हुए आर्यसमाज का उत्सव बड़ी सफलता से सम्पन्न किया।

इन्हें कांग्रेस से भी बड़ा प्रेम था, सदा शुद्ध खद्दर पहनते थे। कांग्रेस के सालाना जलसे में ८-९ साल तक जाते रहे। मार्शल्ला के दिनों में पंजाब की खबरें दूसरे प्रान्तों में गुप्तरीति से भेजते थे। साम्बा में आप 'कौमी सेवक'' कहे जाते थे। १६१७ की अमृतसर कांग्रेस में जाने की जब तहसीलदार

ने इजाजत न दी तब आपने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। उनकी दृढ़ता देखकर तहसीलदार ने उन्हें जाने की आज्ञा दे दी।

१९२२ में साम्बा से अखनूर बदली हो गई। यहां के लोग छूतछात के बड़े पक्षपाती थे। मेघजाति से बड़ी घृणा करते थे। रामचन्द्रजी ने उनके उद्धार और उन्नति के लिए एक धनी सज्जन का मकान लेकर मेघ बालकों के लिए पाठशाला खोल दी। यह पाठशाला ही इनकी महाधनता की नींव थी। तहसील का काम करने के बाद सारा समय मेघों में प्रचार करने में लगाते थे। आधी रात तक पहाड़ी इलाकों में घूमना, उन्हें पढ़ाना, उनके दुःख दर्द में सम्मिलित होना, बीमारों को दवा देना, यह उनका नित्य का काम था।

जन्माभिमानी जन मेघ बालकों का पाठशाला में पढ़ाना बर्दाश्त न कर सके, उन्होंने अफसरों को शिकायतें भेजीं। मुसलमानों को उकसाया। व्याख्यानों में विरोध किया। एक बार कुछ लोग रामचन्द्र जी के मकान पर लाठी लेकर चढ़ आये परन्तु पुलिस के पहुँच जाने से दंगा न कर सके। अन्त में सन् १९२२ की जुलाई में हिन्दू बिरादरी ने आर्यसमाजियों का बाईकाट कर दिया। लगातार चौबीस दिन के बाईकाट के बाद रामचन्द्र जी की अनुपस्थिति में आर्यों ने अफसरों के दबाव पर यह समझौता कर लिया कि हिन्दू मुसलमानों की शिकायत को ध्यान में रखते हुए कि मेघ बच्चों के नगर में पढ़ाने से भ्रष्ट होने का डर है, इसलिये बस्तियों से दूर पर पाठशाला खोली जायेगी। जब रामचन्द्र जी अखनूर वापिस आये और यह समाचार सुना तो मानने से इन्कार कर दिया। गवर्नर, वजीर, वजारत से बहुत दिनों तक इस सम्बन्ध में पत्र व्यवहार होता रहा।

रामचन्द्र जी की निस्वार्थ सेवा से मेघ लोग उन पर मोहित हो गये। सब की जिह्वा पर उनका नाम था। यह भी महाजन होते हुए भी प्रेमवश अपने को मेघ कहते थे। इनकी प्रबल इच्छा थी कि पाठशाला का अपना निजी मकान बनाया जाये। इसके लिये उनके श्रद्धावान् भगत मेघपण्डित रूपा और माई मौली ने अपनी खेती की जमीन दे दी। इस पर सरकारी कारिन्दों ने और हिन्दू मुसलमानों ने उन पर बड़ा दबाव डाला। परन्तु वे अपनी बात पर अटल रहे। इसके बाद खजाञ्जी जी ने इमारत के लिये रुपये की अपील छापी। १९२२ में बड़े समारोह से वेदमन्दिर का प्रवेशसंस्कार हुआ। सब रुकावटों को पार करके अन्त में पाठशाला खुल गई। इससे मेघों के हौसले बढ़ गये। एक सफलता दूसरी सफलता के लिये भूमि तैयार कर देती है। वीर रामचन्द्र को आस-पास के गांवों में जमीन के वायदे और पाठ-शाला खोलने के निमन्त्रण मिलने लग गये। इतने में उन्हें जम्मू में तबदीली कर दिया गया।

उन्होंने अपने कार्य को पूरा करने के लिये चार मास की अवैतनिक छुट्टी ले ली।

अखनूर से चार मील दूर बटौहड़ा के मेघों ने भी उन्हें बुला भेजा। आप १९७९ वि० तदनुसार ३१ दिसम्बर १९२२ ई० को कुछ आर्यों और विद्यार्थियों के साथ ओ३म् का झण्डा लिये और गीत गाते बटौहड़ा पहुँचे। विरोधदल उन्हें देख भड़क उठा। उसने इनका अपमान किया। गालियां दीं, झंडा छीन लिया, और हवनकुण्ड तोड़ दिया। इससे उस दिन का कार्यक्रम पूरा न हो सका। सारे इलाके में यह समाचार शीघ्र ही फैल गया। रामचन्द्र जी इस घटना से निराश नहीं हुए। उन्होंने २ माघ (४ जनवरी १९२३) को पाठशाला खोलने का दिन नियत कर दिया। लाहौर से उपदेशक भी बुला लिया। उधर मेघोद्धार से तप्तहृदय राजपूतों ने रामचन्द्र जी को इसका मूलकारण समझ कर उनके वध का षड्यन्त्र किया। दो माघ के दिन दंगल के बहाने उन्होंने लोगों को बुलाया। नियत दिन जम्मू से भी रामचन्द्र

लाला भगतराम, लाला दीनानाथ, लाला अनन्तराम, ओ३म्प्रकाश और सत्यार्थी यह सज्जन बटौहड़ा चले। वह दो मील था। रास्ते में आर्योपदेशक सावनमल जी की पार्टी से मिले। उन्होंने सूचना दी कि स्थिति खतरनाक है। राजपूत भड़के हुए हैं, अतः वापिस चलना चाहिये। यह विचार करने पर सब लौट चले।

राजपूतों को इनकी वापिसी की सूचना मिलते ही एक भक्तू नामक व्यक्ति की कमान में कुछ मुसलमान गूजर और डेढ़ सौ राजपूतों ने सवार और पैदल दौड़कर पीछे से हल्ला बोल दिया। सबकी जबान पर 'खजाञ्ची को मारो'' का नारा था। श्री भगतराम जी उनकी रक्षा के लिये बढ़े तो उन पर भी अगणित लाठियां बरसीं। लाठी कीवर्षा से शेष भी नहीं बचे। रामचन्द्र को अन्त में वह लोग लोहे के हथियार से जख्मी करके बेहोश छोड़ कर भाग गये।

रामचन्द्र जी को उसी रात जम्मू के राजकीय हस्पताल में पहुंचाया गया। वहां छः दिन बेहोश रहकर २६ वर्ष की आयु में ८ माघ १९७९ वि० (२० जनवरी १९२३) की रात को ११ बजे यह वीरात्मा स्वर्ग को प्रयाण कर गया।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने इनकी स्मृति को स्थायी रखने के लिये एक रामचन्द्र स्मारक बनाया है जिसके चार उद्देश्य हैं।

१—अछूतों की सामाजिक उन्नति करके उन्हें सवर्णों के बराबर स्थान प्राप्त कराना।

२—उनके लिये निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करना।

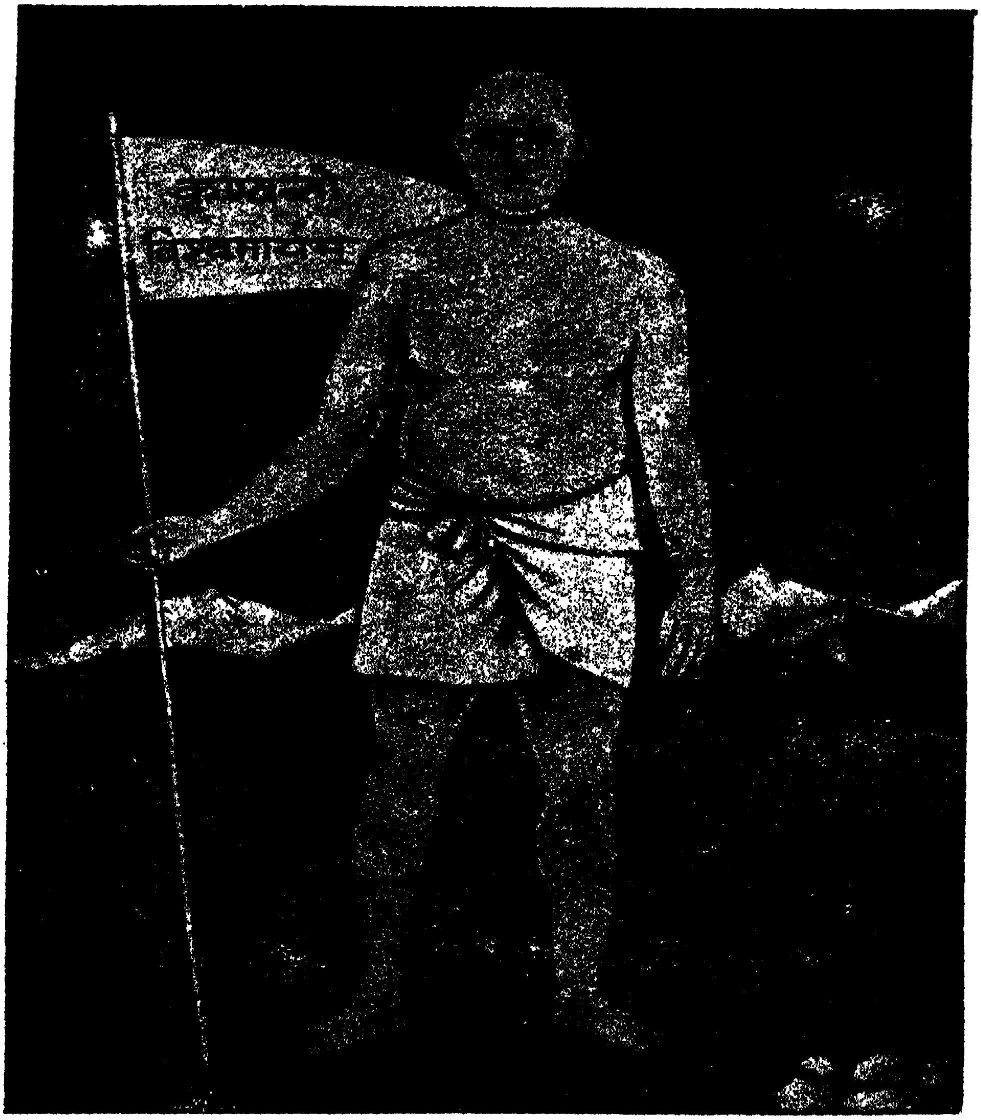
३—उनमें धर्मप्रचार करवाना।

४—अछूतों के अन्दर आत्मसम्मान के भाव उत्पन्न करना।

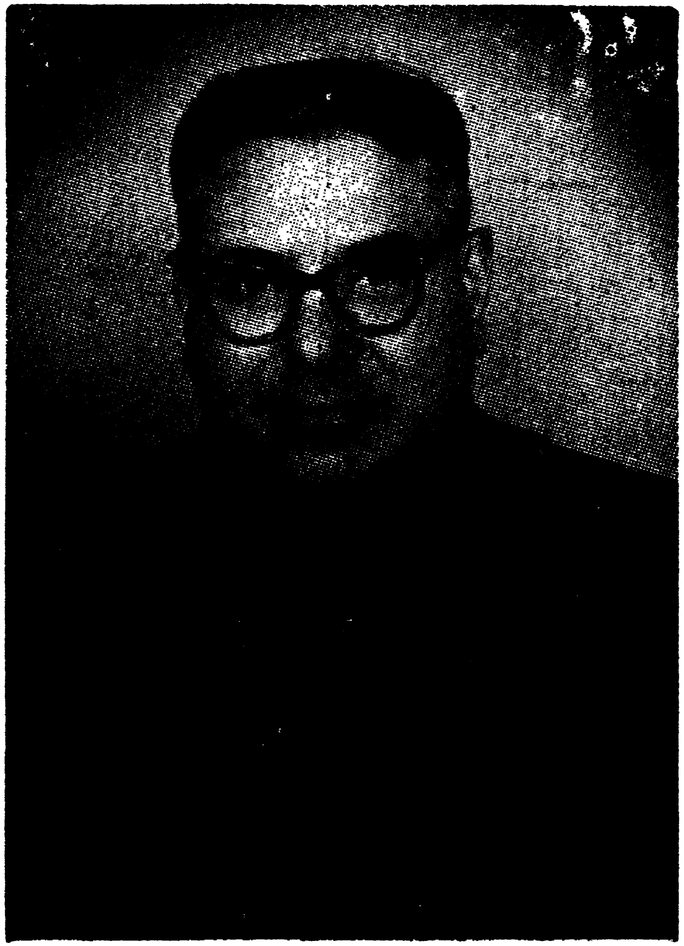
रामचन्द्र के नाम पर जहाँ यह महाधन हुए थे यह सभा प्रतिवर्ष एक मेला लगाती है। आर्यसमाज के परिश्रम और महाराजा हरिसिंह जी की उदारता से यह कार्य अब तक जम्मू में हो रहा है। आरम्भ से इसके अधिष्ठाता श्री अनन्तराम जी हैं। जहां इनका स्मारक लगा है वहाँ अब कुआ बन गया है। अखनूर को जाने वाली पक्की सड़क बन गई है। कुछ मकान बन गये हैं सुन्दर बगीचा है। यह नहर के किनारे एक मनोहर स्थान है।

——:०:——

पाखण्ड खण्डनी पताका लिए हुए कुम्भ के मेले में—

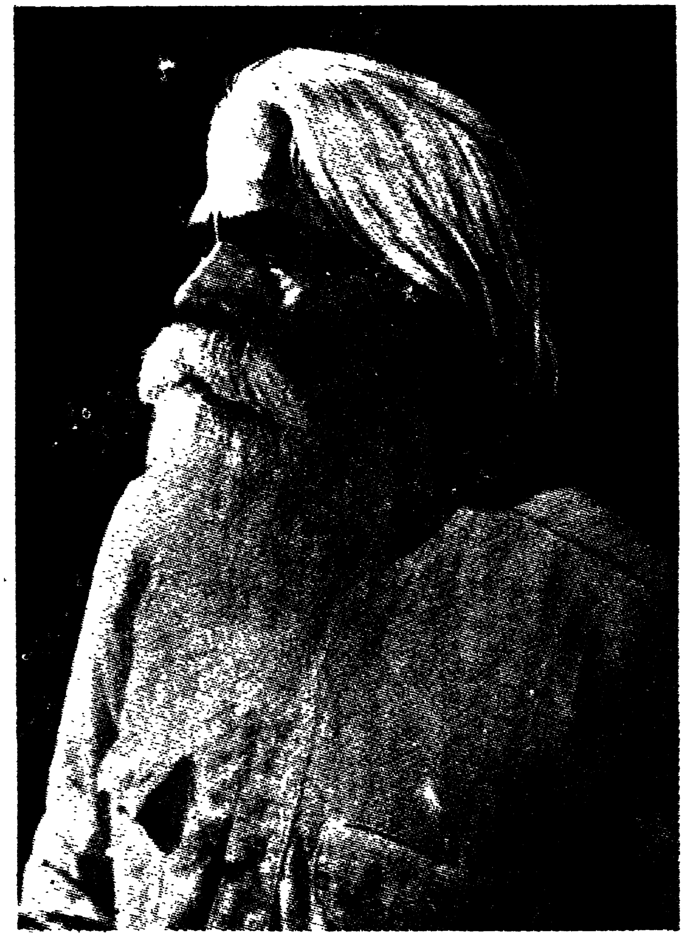


महर्षि दयानन्द सरस्वती



श्रो वैद्य सत्यव्रत सभा मंत्रो
श्रार्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

धर्म-शहीद—



श्री बंशीलाल व्यास

दक्षिण केशरी भाई वंशीलाल जी

(ब्र० महादेव)

जिस समय हैदराबाद स्टेट में यवनराज्य का अत्याचार चरम सीमा पर था और वैदिक धर्म अपना अस्तित्व गवां रहा था उसी समय जिला बीदर के माणिक नगर नामक ग्राम में ब्राह्मण घराने में आपने जन्म लिया था। आपके पूज्य पिताजी का नाम भोलाप्रसाद व माता जी का नाम छट्टोबाई था। आपके एक भाई जिनका नाम श्यामलाल जी वकील तथा तीन बहने थीं। आप बाल्यकाल में अत्यन्त चञ्चल प्रकृति के थे। कहा जाता है ६ मास में आप दोड़ने चलने लग गये थे। आप को पांच छः वर्ष की अवस्था में पढ़ने भेज दिया। आपने अपनी श्रेणी में कभी अनुत्तीर्ण होना न सीखा। आप के पिताजी कट्टर पौराणिक व पुजारी थे। अतः आपको कभी कभी पूजा के लिये भेज दिया करते। परन्तु आप वहाँ मूर्ति पर चढ़ा हुआ नैवेद्य खाकर चले आते। आप की १५ वर्ष की आयु में पिता जी संसार से चल बसे। उनके कारण पढ़ाई में भी विघ्न आया किन्तु आपने साहस न छोड़ा। आप स्वयं भोजनादि पकाते रहे और घोर परिश्रम से वकालत पास की। वकील बनने से पूर्व ही पक्के आर्य व वैदिक धर्मी हो गये थे।

वकील होने के पश्चात् आर्यसमाज के प्रचार में जुट गये और स्थान-स्थान पर जाकर सत्यार्थ प्रकाश की गाथा व व्याख्यानादि करने लगे। आप का २५ वर्ष की आयु में विवाह सम्पन्न हुआ। यह संस्कार आपने स्वयं वैदिक रीति से ही किया था। आपने स्थान स्थान पर उत्सवादि कराने आरम्भ कर दिये। आपकी माता जी आपको कहा करती थी, आप उपदेश कर जनता की सेवा करें, मैं कार्य कर जनता की सेवा करती हूँ। उत्सवों पर आपकी माता भोजनादि की व्यवस्था में सहयोग देती थी। आपने अपनी माता जी को भी ४० वर्ष की आयु में पढ़ना सिखाया। माता जी के संसार से चल बसने पर अपनी पनपती हुई वकालत को जो कि हाईकोर्ट की थी, तिलाञ्जलि दे दी।

आपने वकालत में कभी पराजय का मुख न देखा। अपने समय में आप वकीलों के सिरमोर थे। वकालत के बाद आप सर्व प्रयत्न से समाज के प्रचार में जुट गये। हैदराबाद से निकलने वाले 'वैदिक सन्देश' के प्रकाशक भी रहे। आपको प्रचार की कितनी लगन थी यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है। एक बार नीलंगा नामक ग्राम में आर्य समाज के अन्दर जाकर एक सरकारी अधिकारी ने हवन कुण्ड को लात मारी और चारी दीवारी आदि गिराकर समाज को मिटाने का असफल प्रयत्न किया। इसकी सूचना जब आपको मिली तब तत्काल वहां जाकर प्रतिज्ञा की कि जिस ने इसका अपमान किया है उसके धन से दुबारा बनवा कर इसमें यज्ञ करके यहाँ से जाऊंगा। इधर घर से तार आया कि आपकी पुत्री हैजे से आक्रान्त है। परन्तु आपने अपनी पुत्री की परवाह न की और उत्तर दिया मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी किये बिना यहाँ से नहीं आ सकता।

आपने सरकार में अभियोग चलाया और उस में सफलता प्राप्त की। जिस अधिकारी ने यह कुकृत्य किया था उसके धन से आर्य समाज व यज्ञवेदि बनवा कर उसमें यज्ञ करके ही लौटे। हैदराबाद राज्य में जहाँ कहीं धार्मिक कृत्यों पर पाबन्दी होती वहां जाकर आप उस कार्य को बड़ी शान से करवाते थे।

राज्य म जहाँ उत्सव होता था वहां शंका समाधान करने में आप अद्वितीय थे। आपने अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ भी किये थे। उदाहरणार्थ एक मनोरंजक व विचित्र से शास्त्रार्थ का दिग्दर्शन कराता हूँ। एक दिन एक विद्वान लिङ्गायती संन्यासी पधारे। आप भी अपने कुछ साथियों के साथ वहां पर जो धमके। कुछ देर तक वेदविषय पर शास्त्रार्थ होता रहा। अन्त में वह संन्यासी निरुत्तर व क्रोधित होकर कहने लगा—"क्या वेद में सब कुछ है" आपने बल पूर्वक कहा "हां"। इस उत्तर को सुनकर साथियों का दम घुटने लगा और आपस में कानाफ़ूसी करते हुए कहने लगे कि वेद में सब कुछ कहा है। एक ने आप के कान में भी कहा कि पण्डित जी आप अपने उत्तर को वापिस ले लें। परन्तु यह दयानन्द का अनन्यभक्त अपने वाक्य को वापिस किस प्रकार लेता। और बल पूर्वक कहा कि वेद में सब कुछ है। तब संन्यासी ने कहा तुम यहां बैठे हो, यह वेद में है। आपने उत्तर हाँ में दिया। आपके साथी और भी घबरा गये। परन्तु आप में वेद की अगाध श्रद्धा व भक्ति थी। आपने कहा मैं यहां बैठा हूं यह वेद में है। सन्यासी ने कहा—कैसे? आपने उत्तर में प्रश्न किया—क्या यह ठीक है मैं यहां बैठा हूँ? उसने उत्तर दिया हां सत्य है। तब आपने कहा कि सत्य को मानना ही वेदों में लिखा है। संन्यासी उत्तर पाकर नतमस्तक हो गया। इस प्रकार के अनेक शास्त्रार्थों में अपने विरोधियों से विजय प्राप्त की।

जब आप कार्य क्षेत्र में उतरे थे उस समय केवल हैदराबाद में दो समाजें थीं। आपने अपने जीवन काल में अपने परिश्रम से ५०० समाजें स्थापित कीं। इनको एक सूत्र में बांधने के लिए एक प्रतिनिधि सभा की भी स्थापना की। जिसके प्रधान श्री केशवराम जी हाई कोर्ट के जज, और आप महामन्त्री बन गये थे। आदि में केवल तीन उपदेशक नियुक्त किये गये थे। प्रचार कार्य बढ़ता ही गया। परन्तु उपदेशकों को दक्षिणा देने के लिये धन न था। वास्तव में आर्य समाज से प्रेम की परीक्षा का यही समय था। वीर! धन्य है उस माता को जिसने तुझे जन्म दिया। आपने अपनी धर्मपत्नी की बनारसी अमूल्य साड़ियां बेचकर भी धन की कमी देख आभूषण गिरवी रख कर उपदेशकों का वेतन पूरा किया। इसे ही तो कहते हैं घर फूंक तमाशा। आपके अन्दर एक मात्र धर्म प्रचार की ज्वाला जल रही थी। उसको शान्त करने के लिये ही यह आपका त्याग था।

आपने तीन वर्ष तक निश्शुल्क सभा की सेवा की। मित्र की सहायता से घर का कार्य चलता था। आप दोनों भाई तथा साथ में विनायकराव जी भी होते थे। कभी-कभी हंसी में कहते, राम-लक्ष्मण के बीच में हनुमान भी विद्यमान है। निजाम की नादिर शाही दिन प्रति दिन बढ़ती हुई देख आपने शिरोमणि सार्वदेशिक सभा का ध्यान इस ओर आकृष्ट कराया किन्तु आपको वहां से कोई विशेष सहायता न मिली। आपने अपने कौशल के बल पर सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। आपके सहयोग के लिए नारायण स्वामी तथा स्वतन्त्रानन्द जी आ गये। आपको जेल जाने का सुअवसर नहीं दिया गया। इस कारण विरोधियों की ओर से आवाज आई। भाई वंशीलाल बाहर क्यों? जेल में क्यों नहीं जाते।

इधर जब आप जेल जाने की आज्ञा मांगते तो स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी कहते कि आपके जेल जाते ही हम सत्याग्रह बन्द कर देंगे। विवश होकर आपको लोकापवाद सुनना पड़ा। सत्याग्रह विजय का अधिक श्रेय आपको ही है। सत्याग्रह विजय के बाद आप का जगह जगह बुलावा होता और भव्य स्वागत होता था। आपके घर की दयनीय दशा देखकर नारायणस्वामी जी ने १००) रुपये की सहायता दी। परन्तु आपने इस धन को एकत्रित करके सभा के लिए एक प्रेस लेकर दिया। यह है निस्वार्थ प्रचार का ज्वलन्त उदाहरण।

आप के इस प्रकार के प्रचारकार्य को देखकर सरकारी कर्मचारी व विशेषतया यवन आप से जलने लगे। यहां तक कि आपको मारने का भी षड्यन्त्र रचा गया। एक दिन एक यवन वेष परिवर्तन कर आपके घर आया और कहने लगा मुझे धर्मोपदेश दो। आपने अतिथि सत्कार की दृष्टि से भोजनादि कराया। इतने में आपका मित्र आया उसको इस पर सन्देह होगया। उसने इससे गाम नाम इत्यादि पूछा जब जाति पूछी तब उत्तर में उसके मुख से अचानक मुसलमान निकल गया। तभी उसे घर से बाहर कर दिया। इस प्रकार आप बच गये।

आप में साहस भी कमाल का था। एक बार आर्य समाज लातूर का उत्सव हो रहा था। दो दिन तो आनन्द से बीत गये। तीसरे दिन कुछ अधिकारी व यवनों ने आर्य समाज पर धावा बोल दिया। आर्य समाज बन्द कर दिया जिससे कि कोई अन्दर न आ सके। परन्तु वह नीच दीवारों पर चढ गये इधर स्त्री जाति में भय के मारे कोलाहल मच गया। आपने स्त्रियों को आश्वासन दिया कि जब तक मैं हूँ आप का बाल बांका न होगा। आपने अपनी पिस्तौल से एक अधिकारी को गोली मार दी। वह नीचे गिर पड़ा। फिर क्या था सबके सब गीदड़ की भांति भाग गये। जहां आप स्वयं पुरुषों में प्रचार करते थे वहाँ अपनी धर्मपत्नी को स्त्रियों में प्रचार करने के लिए तैयार किया।

अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की शिक्षा पद्धति को पढकर आपके मन में गुरुकुल खोलने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। अतः आपने अमर शहीद भाई श्यामलाल जी की पुण्य स्मृति में श्यामार्य गुरुकुल की स्थापना सं० १९९९ विजयादशमी तदनुसार १९४२ ई० में की। यह गुरुकुल परिस्थितियों के वशीभूत होकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवर्तित होता रहता था। अन्त में बार्शी शोलापुर में स्थिर हुआ। गुरुकुल का सारा भार आप पर ही था। गुरुकुल की कोई सभा न थी। कुछ दिन बाद श्री आचार्य भगवान् देव जी एवं आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री जी से आपका सम्पर्क हुआ। तब ही से दयानन्द वेदविद्यालय की शाखारूप में चल रहा था। अध्यापन कार्य श्री रुद्रदेव जी व्याकरण शास्त्री कर रहे थे। अन्त समय में इन पंक्तियों के लेखक को भी आठ मास इस गुरुकुल में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सन् ४८ में हैदराबाद की परिस्थितियां बहुत खराब थीं। अतः आपने दिल्ली आकर भारत के गृहमन्त्री लोहपुरुष सरदार बल्लभभाई पटेल से मिलकर हैदराबाद की स्थिति का ज्ञान किया जिसका परिणाम यह हुआ कि सारा मन्त्रिमण्डल विरोध में होते हुए भी लोहपुरुष ने पुलिस कार्यवाही कर हैदराबाद का भाग्य खोल दिया। परन्तु दुःख से लिखना पड़ता है कि उस स्वर्ग समान दिन आने से पूर्व ही आप इस संसार से चल बसे। आप का जीवन आर्ष शिक्षा पद्धति में एक प्रकार से बलिदान के रूप में पूरा हो गया वृद्ध अवस्था में आपने भी अष्टाध्यायी पढ़नी आरम्भ की थी, आर्ष ग्रन्थों से आपको विशेष प्रेम था।

श्री पं० वंशीलाल व्यास

(ब्र० देशपाल)

श्री पं० बंशीलाल जी व्यास का जन्म नागोर (राजस्थान) से चार मील पर स्थित नराधना नामक एक छोटे से ग्राम में, २ नवम्बर १८६६ ई० दीपावली के दिन रिजकुल में हुआ था। आपके पिता का नाम चतुर्भु ज व्यास, तथा माता का नाम जानकी बाई था।

आप व्यापार करने की दृष्टि से दक्षिण हैदराबाद चले गये। वहां उन दिनों आर्यसमाज का व्यापक प्रचार स्व० भाई वंशीलाल जी, स्व० भाई श्यामलाल जी वकील, तथा चन्दूलाल जी आर्य आदि किया करते थे। इसी बीच आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वानों का उपदेश श्री व्यास जी को सुनने का अवसर मिला, जिसमें शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी, पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार तथा पं० मंगलदेव जी शास्त्री आर्य समाज आदि उल्लेनीय हैं। बस उसी दिन से श्री व्यास जी आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त बन गये। आर्य समाज का कार्य करते करते आपने देश में कर्मठ विद्वान् बनाने के हेतु १८३८ ई० में, अनन्तगिरि में गुरुकुल की स्थापना की। वहां के जलवायु की प्रतिकूलता के कारण अपने शैशव के चार वर्ष वहां बिताने के बाद, यह गुरुकुल सन् १६४१ ई० में, घटकेश्वर ग्राम के समीप, श्री रामगोपाल राठी द्वारा दिये गये उद्यान में स्थित एक कोठी में स्थानान्तर किया, जहां वह अब विराट् रूप धारण कर विद्यमान है।

सन् १६३८ ई० के हैदराबाद (द०) आर्य सत्याग्रह में पिता की मृत्यु की परवाह न करते हुए आर्य सत्याग्रह में भाग लिया, और सत्याग्रह को रात दिन एक करके सफल बनाया।

सन् १६५३ में श्री वंशीलाल जी व्यास, आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद के मन्त्री चुने गये, जो अन्तिम समय तक रहे। श्री व्यास जी के आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री बनने के बाद, उनके कन्धों पर एक और कार्य भार आ पड़ा। श्री व्यास जी का ऐसे समय में आर्य प्रतिनिधि सभा में मन्त्री पद पर चुनाव हुआ, जब कि श्री पं० नरेन्द्र जी प्रधान सभा. को ऐसे ही त्यागी और निःसंकोच, धैर्यशील, कर्मयोगी की आवश्यकता थी। यदि सत्य निःस्वार्थ भाव से देखा जाय, तो सभा में केवल पण्डित नरेन्द्र जी ही दीख पड़ते थे। श्री पं० नरेद्र जी आर्य प्रतिनिधि सभा का संचालन करने के लिए एक ऐसे ही साथी की खोज में थे। इन दोनों ने मिलकर आर्य समाज का जो कार्य किया, उसके न केवल हैदराबाद राज्य की जनता अपितु समस्त भारत के आर्य कार्यकर्त्ता साक्षी हैं।

आपका ईश्वर पर अटूटर विश्वास था। आपकी मृत्यु सन् १६५६ ई० में रेल दुर्घटना के कारण हुई। श्री व्यास जी की मृत्यु से आर्यसमाज की बहुत बड़ी क्षति हुई है।

धन्य हैं ऐसे साधु महात्मा, जिनसे मनुष्यों को कुछ न कुछ शिक्षा लेनी चाहिये, और अपना जीवन आर्य समाज के सेवा में लगाना चाहिये।

अमर धर्मवीर स्मरण

(श्री पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड)

गुरुवर स्मरण तुम्हारा हम में, नव जीवन संचार करे।
श्रद्धा शौर्य धैर्य साहस को, निर्भयता को नित्य भरे ॥१॥

श्रद्धा न्यून हुई इससे ही, आत्मिक बल में ह्रास हुआ।
श्रद्धामूर्ति महात्म संस्मरण, निर्बलता निस्तेज हरे ॥२॥

पर उपकार हेतु तन मन धन, अर्पित तुम ने सर्व किये।
यज्ञ रूप जीवन का पतिवर, शुभ आदर्श सदैव धरे ॥३॥

धर्मवेदि पर बलि देकर तुम, धर्मवीर वर, अमर बने।
स्मरण तुम्हारा सब आर्यों में, धर्म भाव उद्दीप्त करे ॥४॥

शिक्षादर्श सिखाने तप से, तुमने था गुरुकुल खोला।
देव शक्ति दे शिष्यवर्ग को, वह तव पथ अनुसरण करे ॥५॥

नहीं दिखाई देता तुमसा, तेजस्वी नेता निर्भीक।
कृपा करें जगदीश तुम्हारा, जीवन भर नेतृत्व करे ॥६॥

गुर्खों की संगीनों सन्मुख, तुम ने निज छाती खोली।
दृश्य न अद्भुत किसके मन में, निर्भयता संचार करे ॥७॥

सेवा का शुभ भाव तुम्हारे, कूट-कूट हिय भरा हुआ।
वही भावना सब के मन में, परमेश्वर दिन रात भरे ॥८॥

पी श्रद्धा की दिव्य सुधा तुम, नित आनन्द उठाते थे।
अमृतपान करा दो वह जो, पाप ताप अभिशाप हरे ॥९॥

श्रद्धा हीन भरे जो जीवन, देवभक्ति उत्साह विहीन।
उनमें भी बलिदान तुम्हारा, भव्य भावना दिव्य भरे ॥१०॥

——:०:——

धर्मवीर हकीकतराय

(श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड)

धन्य-धन्य तुम वीर हकीकत धन्य तुम्हारा था बलिदान ।
धर्म वेदि पर परम हर्ष से तुमने किया आत्म बलिदान ॥१॥
दिये प्रलोभन यवन जनों ने कितने तुम्हें गिराने को ।
पर न धर्म से पतित हुए तुम रक्खी तुमने अपनी शान ॥२॥
मात पिता तक बने सहायक तुम्हें गिराने मोहाधीन ।
पर न डिगे तुम धर्म मार्ग से धन्य धन्य तुम धैर्य निधान ॥३॥
काट सकें जो चीज हकीकत नहिं ऐसी जग में तलवार ।
यह कह अडिग रहे तुम गिरि सम धन्य तुम्हारा आत्मज्ञान ॥४॥
आत्मा अजर अमर अविनाशी समझ किया तुमने वह काम ।
जिसे न जग में कर सकते हैं बड़े बड़े तार्किक विद्वान् ॥५॥
कहता कौन करे तुम उस दिन किया यवन ने मुँह काला ।
जिस दिन काट तुम्हारा मस्तक अमर हुए तुम कर बलिदान ॥६॥
श्रद्धा पूर्वक स्मरण करें तव, सारे मिल करके प्यारे ।
नई स्फूर्ति भरता तव चिन्तन, तुम बालक पर वीर महान् ॥७॥

बलि का गीत

(रणजीतसिंह 'तन्मय')

राग नहीं यह, बलि का गीत ।
देश धर्म पर बलि-बलि जाना, वैदिक आर्य जनों की रीत ।
चाहे सन्मुख काल खड़ा हो, फिर भी तनिक नहीं भयभीत ॥
जगदीश्वर है उनका मीत । राग नहीं यह, बलि का गीत ॥१॥
जब देश धर्म पर भीड़ पड़ी, जब जब भी न्यौता आया है ।
ये परवानों से तड़फ गिरे, अरु संकट दूर भगाया है ॥
अपनी धार पुरानी रीत । राग नहीं यह बलि का गीत ॥२॥
सूर्य चन्द्र भी पथ विचलित हों, तारागण चाहे टूट गिरें ।
निज मर्यादा छोड़े चाहे, सागर पर न वीर टरें ॥
युग के युग जावें चाहे बीत । राग नहीं यह, बलि का गीत ॥३॥
अधिकार हमारा जन्म सिद्ध इसको जतलाते आये हैं ।
अन्यायों अत्याचारों से, ये लड़ते भिड़ते आये हैं ॥
भाग्य इन्हीं के हैं 'रणजीत' । राग नहीं यह, बलि का गीत ॥४॥

आर्यसमाज के शहीद

(श्री पं० नरेन्द्र)

संसार के सम्मानित राष्ट्रों का इतिहास उन व्यक्तियों के चरित्रों से सदा भरपूर रहा है, जिन्होंने उच्च एवं पवित्र उद्देश्यों की पूर्ति के लिए महान् से महान् त्याग किया और समय पड़ने पर इस संघर्ष में अपने जीवन तक को न्यौछावर कर दिया और पीछे बलिदानों की अवशेष रख गए, जो अनुगामियों का पथप्रदर्शन कर सकती हैं।

हर उस मृतात्मा को जो स्वाभाविक दिवंगत हुआ हो अथवा किसी दुर्घटना का शिकार हुआ हो, यह 'शहीद' की प्रमाणित उपाधि नहीं मिलती। साधारणतया समरांगण में अपने प्राणार्पण करने वाले भी इस परीक्षा में सम्मिलित न हो सके। यह गौरव केवल उन सौभाग्यशालियों को प्राप्त होता है जो उच्च एवं पवित्र ध्येय की पूर्ति में अपना अन्तिम रक्त बिन्दु तक स्वाहा कर देते हैं। ऐसे ही आत्मा शहीदों के नाम से स्मरण किये जाते हैं।

शहीदों का मिशन

शहीदों को मृत्यु कभी स्पर्श नहीं करती अपितु वे स्वयं मर कर अमर हो जाते हैं। इतिहास से स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी महान् आत्माओं का रक्त कदापि व्यर्थ नहीं गया अपितु समय आने पर एक ऐसे प्रखर प्रचंड रूप में प्रवाहित हो निकला जिसमें हिंसा, अत्याचार और पाशविकता के दल स्वतः निमग्न हो गए। यह व्यक्ति धर्म-प्रचार, सदुपदेश, प्रजावाद की प्रस्थापना, शांति और प्रेम एवं सत्य को साधारण व्यक्तियों तक पहुंचाने के लिये अपने जीवन-लक्ष्य की कठिनाइयों को पार कर आगे बढ़ते ही रहे। इन्होंने सदा पराक्रान्तों का साथ दिया और मानवता के उच्च आदर्शों के रक्षक हुए। और इन हेतुओं से निज तन-मन-धन की बलि देकर स्पष्ट कर दिया कि इनका सेवा कार्य में कितना उत्साह था तथा बलिवेदि से कितना ऊँचा प्रेम था।

भारत में कई शतियों से जो निरक्षरता एवं भ्रष्टाचार परम्परागत शासनारूढ़ था, उसका सर्वनाश कर देने और एक नवयुग का समारम्भ करने के लिए एक महान् पथ-प्रदर्शक, विद्वान् ऋषि की आवश्यकता थी जो पुनः एक बार वैदिक धर्म के जीवन-दायक सन्देश को भारत एवं पृथ्वी के कोने-कोने तक पहुँचा दे, रूढ़िवाद और अन्धविश्वास रूपी घन अन्धकार में जीवन की सत्यता का प्रकाश फैला दे, बुराइयों का समूल नाश कर श्रेष्ठत्व की सुन्दरता को विस्तृत कर दे, पतझड़ प्रताडित भारत रूपी उद्यान को अपने रक्त से सींचे और अपने पश्चात् ऐसा हार्दिक सन्देश छोड़ जाए जो सदा मानवता का मार्ग दर्शन करता रहे।

दयानन्द सरस्वती, शहीद महान्!

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने पवित्र लक्ष्य-पूर्ति के हेतु जिन कष्टों का वहन किया, जिन आपत्तियों का सामना किया और अपनों तथा बिगानों की कृतघ्नताओं का जिस प्रकार निशान बनते रहे उसका बृहद् वर्णन यहां उपस्थित करना अभिप्रेत नहीं है; क्योंकि इन बातों को लगभग सभी जानते

हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द के शहीद हो जाने से एक ऐसी ज्योति प्रज्वलित हुई जो न केवल बलिदान के विशाल मन्दिर की शोभा बनी हुई है अपितु इससे आर्यसमाजी और हिन्दू सदा प्राण देते रहेंगे।

आर्य समाजियों में एक नई शक्ति

महर्षि दयानन्द ने जिन श्रेष्ठतम उद्देश्यों के लिए महान् त्याग और वलिदान का उदाहरण दिया उन्होंने वैदिक धर्म के अनुयायियों और आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं में एक नवीन उत्साह और स्फूर्ति का संचार कर दिया। आर्यसमाजी भारत में स्वामी जी के मिशन को प्रत्येक दिशा में फैलाने के लिए पूर्ण निष्ठा के साथ काम करने लगे और जब समय आया तो अपने धर्म-गुरु के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए अपने जीवन तक का उत्सर्ग करने में भी संकोच न किया।

हैदराबाद में आर्यसमाज

हैदराबाद में आर्यसमाज ने अपनी ज्योति सन् १८६२ में प्रदीप्त की ताकि पथभ्रष्ट भटकते न फिरें और इस अभिनव प्रकाश से पूर्ण लाभ उठाते हुए वैदिक धर्म के सीधे और असली मार्ग पर आ जाएँ। आर्यसमाज हैदराबाद में सन् १६२० तक धीरे-धीरे कार्य करता रहा., किन्तु जब इसे टेढ़े-मेढ़े रास्तों का ज्ञान हो गया और जब इसकी आवाज में आकर्षण पैदा हो गया तो जनता भी इससे आलिंगन करने लगी और इस प्रकार इसका विस्तार होने लगा।

निजाम सरकार की नादिरशाही

निजाम की नादिरशाही सरकार आर्यसमाज की प्रगति को देखकर मन ही मन जल उठी कि कहीं इस रियासत के हिन्दू, शक्ति सम्पन्न एवं जागृत होकर इसका सर्वनाश न कर दें। इसके अतिरिक्त इसका यह भी विचार था कि एक इस्लामी रियासत में केवल मुसलमानों ही को अपने धर्म प्रचार का अधिकार है और हिन्दुओं को आधीन रखना उनका काम है। निजाम सरकार ने अपनी साम्प्रदायिकता की नीति के अनुसार आर्यसमाज के मार्ग में पग-पग पर काँटे बिछाने आरम्भ किये और पुलिस की ओर से बात-बात पर प्रतिबन्ध और रुकावट होने लगा। आर्यसमाज सदा ही राजनीति से दूर रहा है, पर निजाम सरकार इसके उत्साह, कार्य क्षमता और इसके कार्यकर्त्ताओं में त्याग भाव देखकर घबराने लगी और उसने हिंसा और अत्याचार का सहारा ले लिया। रियासत में अरब, पठान, रोहिले और रजाकार, आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं के शत्रु हो गए किन्तु वैदिक धर्म के इन सच्चे सपूतों और स्वामी दयानन्द के इन सच्चे भक्तों के परिश्रम करने में किसी प्रकार का अन्तर न आया। वे पूर्ण निर्भयता के साथ अपने कर्तव्यों की पूर्ति में जुटे रहे।

आर्यसमाजी लाठियों, संगीनों आदि से दबे नहीं

एक धर्मवीर आर्य की ज्योति शांत कर देने की चेष्टा की गई तो इससे और अनेक ज्योतियां देदीप्यमान हो गईं। एक के सीने पर गोली दागी गई तो दूसरा आर्य वीर शहीद होने के लिए अग्रसर हुआ। निजाम पुलिस की लाठियों और संगीनों और अरबों के शस्त्रों और पठानों के चाकू और खंजर तथा रजाकारों की रायफलों से आर्यसमाजी भयातंकित न हो सके। आर्यसमाज के शहीदों का रक्त जो सत्य और धर्म रक्षा में बहता रहा, अन्त में एक प्रखर बाढ़ का रूप धारण कर लिया और सितम्बर १६४८ में निजाम सरकार और रजाकारों की हिंसात्मक प्रवृत्तियों का सदा के लिए अन्त हो गया।

आर्यसमाजी शहीदों का रक्त

आर्यसमाज के शहीद मरने के बाद अमर हो गए और इन हुतात्माओं के रक्त से हैदराबाद में वैदिक धर्म का जो चमन सींचा गया, वह अब एक विस्तृत उद्यान बन गया है और रियासत में वैदिक धर्म का नव सन्देश दे रहा है।

यहाँ मैं कुछ आर्यसमाजी शहीदों का परिचय संक्षिप्त में देता हूँ। वे इस भौतिक संसार में तो उपस्थित नहीं हैं, पर वे सब के हृदयों में स्मरण रहेंगे और ऐसा प्रतीत होता है कि हम इन्हें कभी भूल नहीं सकेंगे।

१. वेदप्रकाश जी

दासप्पा संवत् १८२७ में गुंजोटी में पैदा हुए। इनकी माता का नाम रेवतीबाई और पिता का नाम रामप्पा था। गरीब माँ-बाप को इसकी क्या सूचना थी कि उनका बेटा बड़ा होकर हुतात्मा बनेगा और वैदिक धर्म के मार्ग में शहीद होकर अमर हो जाएगा। दासप्पा ने मराठी माध्यम द्वारा आठवीं श्रेणी तक शिक्षा ग्रहण की। जैसे-जैसे ये बढ़ते गये वैसे-वैसे उनकी अभिरुचि धर्म की ओर झुकती गई। वे आर्यसमाज के सत्संगों में बराबर सम्मिलित होते थे। वैदिक धर्म के आकर्षण ने इन्हें महर्षि दयानन्द का पक्का भक्त बना दिया। आर्यसमाजी बनने के बाद यह वेद प्रकाश कहलाने लगे। इनकी आर्यसमाज में असाधारण प्रेम एवं निष्ठा के ही कारण गुँजोटी में आर्यसमाज की नींव डाली गयी। स्थानीय ईर्ष्यालु यवन इन्हें देख कर जलने लगे। वेद प्रकाश जी सुगठित शरीर एवं सद्गुण रखते थे और लठ-तलवार चलाने की विद्या में पर्याप्त दक्ष थे। इनकी यह दक्षता कई भयंकर संकटों के समय इनकी सहायक सिद्ध हुई। कई बार विरोधी दल ने इन पर आक्रमण किये और ये अपने आपको सुरक्षित रखने में सफल हुए।

गुँजोटी का छोटे खाँ नामक एक पठान स्त्रियों को घूर-घूर कर देखता था। एक दिन वेदप्रकाश जी ने इसे ऐसा करने से रोका और सावधान किया कि भविष्य में इस प्रकार कुदृष्टि मातृसमाज पर न डालें। यह बात गुण्डों को हृदयग्राही न थी और सब इनके शत्रु हो गए। वेदप्रकाश जी ने गुँजोटी में हिन्दुओं के लिये पान की एक दुकान खोल दी और चांदखाँ (पान का एक व्यापारी) इनका शत्रु हो गया और भीतर इनके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगा।

एक दिन यवनों ने स्थानीय आर्यसमाज के मन्त्री के मकान पर अकस्मात् धावा बोल दिया, इसकी सूचना वेदप्रकाश जी को मिली, वे इन आक्रमणकारियों को रोकने के लिए निःशस्त्र ही चले गये। मन्त्री के मकान के समीप दो-तीन मुसलमानों ने इन्हें पकड़ लिया और आठ नौ व्यक्तियों ने इन्हें नीचे गिरा कर हत्या कर डाली। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि उस दिन पुलिस ने वहाँ के प्रतिष्ठित हिन्दुओं को बुलाकर थाने में बिठा लिया था। आक्रमणकर्त्ताओं और हत्यारों को पहचान लिया गया और न्यायालय में गवाह भी उपस्थित किये, पर फिर भी हत्यारों को निर्दोष घोषित कर दिया गया। वेद प्रकाश जी का रक्त हैदराबाद में पहला रक्त था जो बड़ी निर्दयता के साथ बहाया गया और इसके बाद वीर आर्यों के बलिदानों का एक क्रम-सा चल पड़ा।

२. धर्मप्रकाश जी

नागप्पा जी का जन्म कल्याणी में संवत् १८३९ में हुआ। इनके पिता जी का नाम सायन्ना था। इनका पदार्पण जब आर्यसमाज में हुआ तब से धर्मप्रकाश कहलाने लगे। कल्याणी एक मुस्लिम नवाब

की जागीर थी। वहां मुसलमानों का अत्याचार नग्न-रूप में नाच रहा था। मुसलमानों के अत्याचारों को देखकर धर्म प्रकाश इसकी रोक-थाम की तैयारी में लग गये। हिन्दुओं को शास्त्र-विद्या सिखाने लगे। कल्याणी के मुसलमान हिन्दुओं के शारीरिक अभ्यास (Physical Training) से रुष्ट हो गए और उन्होंने इनकी हत्या करने पर कमर कस ली। कल्याणी के इस धर्मवीर पर कई बार आक्रमण किये गये पर इन्हें अपनी अपवित्र मन कामनाओं में सफलता न मिली।

कल्याणी में खाकसार इनके लिए समय की ताक में थे। २७ जून १९३७ ई० की रात को धर्म-प्रकाश आर्यसमाज कल्याणी के सत्संग से अपने घर वापिस जा रहे थे कि खाकसारों ने इन्हें एक गली में घेर कर बरछों और भालों की सहायत से मार डाला। वेद प्रकाश की हत्या से आर्यसमाज में शोक व दुःख छा गया। इस हत्याकांड के हत्यारे भी न्यायालय से निर्दोष करके छोड़ दिये गये।

३. महादेव जी

महादेव जी अकोलगा के रहने वाले थे। साकोल आर्यसमाज के सत्संगों में जब इन्हें कई बार सम्मिलित होने का अवसर मिला, तब वैदिक धर्म का जादू इन पर चढ़ गया। इनके मन और मस्तिष्क पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि आर्यसमाजी बन जाने के बाद वैदिक धर्म के प्रचार की धुन लग गयी। तरुणोत्साह और साहस इन्हें इस मार्ग पर आगे बढ़ाता ही रहा। महादेव जी की मुखाकृति पर तेज था, भाषण देते समय इनके मुख से जो वाक्य निकलते, उन्हें लोग बड़ी तन्मयता और रुचि से सुनते और एक तरुण आर्य युवक को प्रचार के काम में इस प्रकार तल्लीन देखकर लोगों को भी इच्छा होती थी कि वे भी इसी प्रकार बनें। महादेव जी के प्रचार का काम जब प्रगति करने लगा तब मुसलमान इनके अकारण ही शत्रु हो गये। कई बार इन पर इस दृष्टि से आक्रमण हुए कि वे सदा के लिए मौन हो जाएँ पर वे बचते ही रहे।

एक दिन की घटना है कि महादेव जी अपने प्रिय धर्म प्रचारार्थ कहीं जा रहे थे कि रास्ते में किसी अज्ञात व्यक्ति ने पीछे से आकर छुरा घोंप दिया और १४ जुलाई १९३८ के दिन यह आर्य युवक २५ वर्ष की आयु में सदा के लिए इस संसार से बिदा हो गया।

४. श्यामलाल जी

धर्मवीर श्यामलाल जी १९०३ ई० में भालकी में पैदा हुए। इनके पिता का नाम भोलाप्रसाद और माता का छोटूबाई था। आपका सम्बन्ध ब्राह्मण कुल से था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा मराठी में हुई। ये अपने माता-पिता के अनुसार मूर्तिपूजक थे और कट्टर धार्मिक थे। इनके एक मामा आर्यसमाजी थे, जिनके प्रभाव से श्यामलाल जी के ज्येष्ठ भ्राता बंसीलाल जी वैदिक धर्म के अनुयायी और स्वामी दयानन्द के अन्तःकरण से भक्त बन गये। आर्यसमाज के सर्वप्रिय नेता भी कहलाने लगे। आरम्भ में तो श्यामलाल जी आर्यसमाज से दूर रहते थे, परन्तु बाद में यह इस धर्म से इतने प्रभावित हुए कि इन्होंने आजीवन वैदिक धर्म के प्रचार में अपने आपको लगा दिया। गुलबर्गा में आपके ही प्रयासों से आर्य समाज की स्थापना हुई। वे स्वयं इस समाज के मन्त्री बनकर कार्य संचालन करते रहे। १९२५ ई० में वकील बने और उदगीर में वकालत करने लगे। [illegible]

स्वामी जी के इस बलिदान का प्रभाव इन पर अत्यधिक पड़ा। लाहौर से वापिस आकर उदगीर में आर्यसमाज की स्थापना की और प्रतिज्ञा की कि आजीवन वैदिक धर्म का प्रचार करेंगे। उदगीर के तत्कालीन मुसलमान तहसीलदार ने स्थानीय मुसलमानों को प्रेरित कर इनके मकान पर आक्रमण करवा दिया, परन्तु यह आक्रमण विफल रहा। आर्यसमाज उदगीर की स्थापना के बाद आपके अथक प्रयासों से विजय-दशमी के अवसर पर प्रथम बार जुलूस निकाला गया। होली के जुलूस के अवसर पर आप पर आक्रमण किया गया पर आप बच गए। श्यामलाल जी ने अछूतों के लिए एक पाठशाला, एक व्यायामशाला तथा एक निःशुल्क चिकित्सालय भी स्थापित किया।

१९२८ ई० में उदगीर आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव हुआ और इसी के बाद पुलिस आपका पीछा करने लगी। इसी वर्ष धारा १०४ के आधीन आप पर झूठा मुकद्दमा चलाया गया और आपसे दो हजार की जमानत और मुचलका लिया गया। श्यामलाल जी उदगीर से बाहर निकलकर भालकी, कल्याणी, औराद शाहजहानी, लातूर तथा औसा आदि स्थानों पर प्रचार करने लगे। कई बार मुसलमानों ने आप पर आक्रमण किया, और कई ऐसे अवसर आये जब कि हिन्दुओं ने आपको अपने पास आश्रय देना अस्वीकार किया। आपने कई रातें मार्ग पर चलते बितायीं। और दिन में फिर प्रचार कार्य किया। १९३५ ई० में माणिकनगर की यात्रा के अवसर पर मुसलमानों ने आप पर छुरा घोंप देने का प्रयत्न किया पर एक नवयुवक बीच में आया, स्वयं जख्मी हुआ और इन्हें बचा लिया। १९३८ ई० में इन पर पुलिस ने एक झूठा मुकद्दमा चलाया और न्यायालय ने इन्हें दीर्घकालिक दण्ड दिया। अभी आप कारावास में दंड भोग रहे थे कि आपका देहांत हो गया।

पं० श्यामलाल जी का नाम हैदराबाद आर्यसमाज के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा रहेगा क्योंकि ये अपने अथक प्रयत्नों, संघर्ष और श्रद्धा से आर्यसमाज को शक्तिशाली और विस्तृत करने की चिन्ता अन्तिम श्वास तक करते रहे।

५. व्यंकटराव जी

व्यंकटराव जी कंधार जिला नांदेड़ के रहने वाले थे। इन्होंने स्टेट कांग्रेस द्वारा संचालित सत्याग्रह में भाग लिया और दण्ड भोगते रहे। कारावास के अधिकारियों द्वारा मार-पीट के कारण १८ अप्रैल १९३८ ई० में आप परलोक सिधार गये।

६. विष्णु भगवान् जी

विष्णु भगवान् जी ताण्डूर (गुलबर्गा) के रहने वाले थे। इन्होंने गुलबर्गा में ही सत्याग्रह किया और वहीं इन्हें कारावास का दण्ड दिया गया। आपको गुलबर्गा से औरंगाबाद और फिर हैदराबाद जेल में रखा गया और यहाँ दूसरे सत्याग्रहियों के साथ इन्हें इतना पीटा गया कि ये सहन न कर सके और २ मई १९३९ ई० में आपने ३० वर्ष की आयु में अपना शरीरान्त किया।

७. माधवराव सदाशिवराव जी

आप लातूर के रहने वाले थे। आपकी आयु ३० वर्ष होगी जब कि आर्य सत्याग्रह में भाग लिया और गुलबर्गा जेल में बन्द कर दिये गए। २६ मई १९३९ ई० के दिन कड़कती धूप में नंगे पैर जेल में कठिन परिश्रम करने से रोगग्रस्त हो गए। चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया और आप इस प्रकार निजाम सरकार की क्रूरता के कारण देहावसान कर गये। माधवराव सदाशिवराव के देहान्त की

सूचना पाकर असंख्य नर-नारी इनके अन्तिम दर्शन करने गए पर पुलिस ने रोक दिया और जेल में ही इनका शव अग्नि की भेंट कर दिया गया।

८. पाण्डुरंग जी

इस नवयुवक आर्य को जो उस्मानाबाद का रहने वाला था सत्याग्रह करने के कारण कारावास का दंड दिया गया था। गुलबर्गा जेल में इन पर इन्फ्लुएंजा का आक्रमण हुआ पर चिकित्सा का कोई प्रबन्ध न किया गया। हालत चिन्ताजनक होती गई। २५ मई १९३९ के दिन इन्हें नागरिक औषधालय (Civil Hospital) में भेजा गया और वहीं २७ मई को इनका देहान्त हो गया। असंख्य नर-नारी इन के अन्तिम दर्शनों को आए पर पुलिस ने इन्हें वापिस जाने पर विवश कर दिया और पुलिस द्वारा ही इनका अन्तिम संस्कार किया गया।

राधाकृष्ण जी

ये निजामाबाद के एक राजस्थानी थे। १९०३ ई० में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम जीतमल था। १९३४ ई० में आप आर्यसमाजी बने और तभी से इसके प्रचार की धुन लग गई। इन्होंने ही निजामाबाद में आर्यसमाज की स्थापना की थी। इसी कारण आप पुलिस की वक्रदृष्टि में खटकने लगे। मुहर्रम के दिनों में आप पर मुकद्दमा चलाया गया और इनसे एक साल के लिए दो हजार रुपये का मुचलका लेकर छोड़ा गया। आर्य सत्याग्रह के समय आप बड़े उत्साह के साथ चन्दा एकत्रित करने में जुटे थे। २ सितम्बर १९३१ ई० को दिन एक अरब ने छुरा घोंप कर मार डाला और यह बात सर्व विदित हो गई कि इनके हत्या षड्यन्त्र में पुलिस का हाथ था।

१०. लक्ष्मणराव जी

आपने धार्मिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए सत्याग्रह किया। जेल के नृशंसात्मक कठोर व्यवहार को सहन न कर सकने के कारण ३ अगस्त १९३९ ई० के हैदराबाद जेल में आपका देहान्त हो गया।

११. शिवचन्द्र जी

आपका जन्म ३ मार्च १९१६ ई० में हुआ था। जन्म स्थान दुबलगुण्डी है। पिता जी का नाम अन्नपक्षप्पा था। १९३५ ई० में मैट्रिक परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। सरकार की ओर से इन्हें छात्रवृत्ति भी मिली, पर ये हुमनाबाद की एक पाठशाला में अध्यापक बन गए। पाठशाला के अवकाश के समय में आर्यसमाज के साहित्य का अध्ययन करते थे और अन्ततोगत्वा आर्यसमाजी बन गए। आर्य-समाज के लिए इन्होंने बड़े उत्साह और श्रद्धा से काम किया। शोलापुर से आप सत्याग्रहियों को हैदराबाद लाते थे और सत्याग्रह के समाचार हैदराबाद से बाहर भेजते थे। ३ मार्च १९४२ ई० के दिन होली के जुलूस के अवसर पर मुसलमानों ने आक्रमण कर दिया, फलस्वरूप आप शहीद हो गए। आप के साथ आप के साथी लक्ष्मणराव जी, राव जी अगड और नरसिंह राव जी गोलियों का निशाना बन गये।

१२. रामकृष्ण जी

रामकृष्ण जी का जन्म लावसी ग्राम में एक ब्राह्मण कुल में हुआ था और यह शहीद होने से केवल दो सप्ताह पूर्व ही आर्य समाजी बने थे। एक दिन पठानों ने घोषणा की थी कि "उस दिन वे मन्दिर को तोड़ेंगे, जिस धर्म पर विश्वास हो वे आकर उन मन्दिरों को उनके हाथों से बचा लें।" सब हिन्दू घबरा कर अपने मकानों में बैठ गए, किन्तु जब राम ने यह घोषणा सुनी तो वे क्रोधाग्नि से जल

उठे। पुजारियों ने कभी इसे मन्दिर में प्रवेश होने नहीं दिया था और फिर आर्यसमाजी होने के कारण इसे मन्दिर और इन मन्दिरों की मूर्त्तियों से क्या रुचि ? परन्तु पठानों के इस घोषणा को इनेने सम्पूर्ण हिन्दू जाति के लिए ऐक चैलेंज समझा और जाति की मान रक्षा के हेतु मन्दिर द्वार पर अपना डेरा डाला। यहाँ इस पर गोलियों की वर्षा हुई; वह घायल हुआ, घायल होने पर भी पठानों को मार भगाया और हिन्दू जाति की लाज रख ली। स्वयं शहीद होकर इन्होंने मन्दिर की रक्षा की और जिस जाति में वे पैदा हुए थे, उसकी प्रतिष्ठा रख ली।

१३. भीमराव जी

आप हिपला (उदगीर) के रहने वाले थे। इनके मित्र माणिकराव की बहन को मुसलमानों ने मुसलमान बना लिया था। भीमराव ने उसे शुद्ध कर लिया था। इस कारण मुसलमानों ने क्रोधित होकर इनके घर को आग लगा दी और इन्हें मार कर इनके हाथ-पांव काट डाले और इन्हें आग में जला दिया।

१४. माणिकराव जी

यह भी हिपला (उदगीर) के रहने वाले थे। इनकी बहन को मुसलमान बना लिया गया था। जब इसे शुद्ध कर लिया गया तो मुसलमानों ने माणिकराव जी को गोलियों का निशाना बना दिया।

१५. सत्यनारायण जी

आप अम्बोलगा (बीदर) के रहने वाले थे। आर्यसमाज का काम बड़े जोश के साथ करते थे, इसी लिए मुसलमान इनके शत्रु हो गए। मुहर्रम के दिनों में वे बाजार से जा रहे थे कि एक मुसलमान ने तलवार से हमला कर दिया। वे तुरन्त ही चिकित्सालय पहुंचाए गये, पर वहाँ जाते ही परलोक सिधारे।

१६. महादेव जी

यह तिवाड़े के रहने वाले थ। गुलबर्गा में ही सत्याग्रह करने के कारण जेल में डाल दिए गये थे। जेल वालों के अत्याचार से १६३६ ई० में ही चल बसे।

१७. अर्जुनसिंह जी

आप आर्य समाज के एक नर-रत्न थे। आप तालुका कन्नड़ (औरंगाबाद) में पैदा हुए थे। बचपन से ही वे हैदराबाद में रहने लगे थे। अपने उत्साह और निष्ठा के कारण आप हैदराबाद दयानन्द मुक्ति-दल के सेनापति बनाए गए थे। सम्वत् १८६१ में जंगली विठ्ठोबा की यात्रा में कुशल प्रबन्ध करने के बाद घर को वापिस लौट रहे थे कि मार्ग में कुछ सशस्त्र मुसलमानों ने आक्रमण कर दिया, तुरन्त ही उस्मानिया दवाखाना भेजे गए, पर दूसरे ही दिन परलोक सिधार गए।

१८. गोविन्दराव जी

आप निलंगा जिला बीदर के रहने वाले थे। सत्याग्रह करके जेल गए। पर वहाँ के अत्याचारों को सहन न कर सकने के कारण देहावसान कर गए।

१९. गोविन्दराव जी, लक्ष्मणराव जी

इन दोनों ने सत्याग्रह में अपनी जान की बाजी लगा दी।

आर्यसमाजी शहीदों का यह बहुत ही संक्षिप्त परिचय है। जिसका सहज ही में अनुमान लगाया

जा सकता है कि हैदराबाद में वे निजाम सरकार और मुसलमानों के अत्याचारों का किस प्रकार निशाना बने और वैदिक पताका को ऊँचा रखने के लिए किस प्रकार इन्होंने अपना अन्तिम रक्तबिन्दु तक बहा दिया।

अमर शहीद—

नर केशरी श्यामलाल

(श्री ब्र० महादेव)

जिस धर्ममूर्ति के विषय में कुछ लिखने के लिए लेखनी उठाई है, उनके मृत्यु की याद आते ही आत्मा संतप्त होती है, हाथ काँपने लगता है। आप हैदराबाद राज्य में आर्य समाज के प्राण, दक्षिण केसरी श्री पं० बंशीलाल जी के सगे भाई थे। आपके पिता का नाम भोलानाथ था व माता जी का नाम छट्टोबाई था। आपका जन्म १६०३ ई० में बीदर जिले के अन्तर्गत भालकी नामक ग्राम में हुआ था। आप के पिता जी पक्के शिव भक्त ब्राह्मण थे। आपकी निर्धनता तो पैतृक सम्पत्ति थी। वे कठोर परिश्रमी पुरुष थे। अपनी जीवन यात्रा के लिए आपको स्थानात् स्थानान्तर जाना पड़ता था। आपके जीवन का अधिकांश भाग घर से बाहर कमाने में बीता। आप मराठी व हिन्दी जानते थे। अन्त में आप माणिक नगर में एक मन्दिर के पुजारी बन गये।

इसी प्रकार आपकी माता भी बड़ी धैर्यवाली व वीराङ्गना थी। उनमें उदारता कूट-कूट कर भरी हुई थी। निर्धनता के होते हुए भी घर का कार्य बड़ी कुशलता से करती थी। आपके विचार बड़े सरल व उत्तम थे। जिनका प्रभाव सन्तान पर भी पड़ा। एक दिन अपने पुत्र श्यामलाल से आपने कहा "विवाह करके एक पराई लड़की का जीवन नष्ट करने की अपेक्षा उत्तम यह है कि देश और जाति की सेवा करते रहो।" धन्य है वह पुत्र कि जिसको माता इस प्रकार की मिली हो। पति के मर जाने पर कुटुम्ब का सारा भार आपने सम्भाला। इस प्रकार की जननी कोई बिरला ही होती है।

श्यामलाल जी का शिक्षण आरम्भ में भालकी में ही छोटी सी पाठशाला में हुआ था। शिक्षा का माध्यम मराठी था। आपके पूर्वज उत्तर प्रदेश के निवासी थे। अतः आपकी स्वाभाविक ही मातृभाषा हिन्दी थी। आप बालकपन से ही श्रद्धा-भक्ति के पुजारी थे। परम्परा की दृष्टि से आप मूर्तिपूजक थे।

इधर इनके मामा स्व० गोकुलप्रसाद जी आर्यसमाज के अनुयायी बन गये थे, आर्य बनने के पश्चात् आप प्रचार कार्य में लग गये। उन्हीं की कृपा से आपके बड़े भाई बंशीलाल जी आर्यसमाजी बन गये। अतः आप दोनों भाइयों में मूर्तिपूजा पर खूब वाद-विवाद होता था। यहां तक कि कभी-कभी उग्र रूप धारण करता था। जब आपकी आयु १३ वर्ष की हुई तब आप अपने भाई जी व माता जी के प्रभाव से आर्यसमाज की ओर झुकने लगे।

आपकी बड़ी बहिन उदगीर में ब्याही गई थी। उदगीर का स्थान आर्यसमाज के इतिहास में विशेष महत्व रखता है। क्योंकि आपके भावी कार्य क्रम का केन्द्र उदगीर ही था। अपने गांव से उर्दू व मराठी की शिक्षा प्राप्त करके आप अपनी बहिन के पास उदगीर आये। और उनके बड़े भाई बंशीलाल जी हैदराबाद में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजे गये। जब आप उदगीर गये तब वहाँ की दशा बहुत दयनीय



आर्यसमाज के शहीद

दत्तात्रय (उमरी) राधाकृष्ण जी (निजामाबाद) श्यामलाल जी (हैदराबाद) विष्णुभगवान जी (ताण्डूर)
शिवचन्द्र जी (हुमनाबाद) वेदप्रकाश जी (गंजोटी)



हुमनाबाद के ४ शहीद



शहीद सुन्हरा
हैदराबाद सत्याग्रह में लाठियों से बलिदान



भाई बंशीलाल वकील

थी। जो व्यक्ति व्यभिचारी व निन्दनीय हो वही बड़ा माना जाता था। झूठ, चोरी, पाप इत्यादि का खूब आश्रय था। ऐसे वातावरण में रहकर भी आप कुसङ्ग से बचे रहे। नाच गानादि से आपको बाल्यकाल से ही घृणा थी। तोरनी नाम के ग्राम में आपके पिता जी एक जागीरदार के यहाँ नौकर थे। एक दिन वेश्या का नाच हो रहा था। आपके पिता जी वह कुकृत्य दिखाने के लिए आपको ले गये। वहाँ उन्होंने आपके द्वारा दो रुपये वेश्या को पुरस्कार में दिलाने का प्रयत्न किया, परन्तु आप भरी सभा में रुपयों को फेंक कर घर आ गये। बालक के इस कार्य पर सब आश्चर्य चकित रह गये।

आप व आपके बड़े भाई बंशीलाल उस जागीरदार की छात्रवृत्ति से पढ़ते रहे। आपने अपने मामा दत्तत्रेय प्रसाद जी की कृपा से आठवीं कक्षा पास की। और उन्हीं की सहायता से वकालत भी पास की।

उस समय आपको आर्यसमाज के सिद्धान्तों का अच्छा ज्ञान था। अतः आपने १९२१ ई० में प्रथम बार कुरीति पर भाषण दिया था। आपके हृदय में प्रचार की लगन थी। आप उठते बैठते, चलते, फिरते, सोते, जागते, वैदिक धर्म की ही चर्चा किया करते थे।

हुमनाबाद यवनों का गढ़ है, वहां अधिक मात्रा में पठान रहते थे। अतः स्वाभाविक था कि हिन्दुओं पर अत्याचार हो। इस पर भी श्यामलाल जी ने १९२१ ई० में शिवरात्रि का पर्व वैदिक रीति से मनाया। और होली पर प्रथम ही बार नगर कीर्तन निकलवाया। इन दोनों कार्य-क्रमों से हिन्दू जनता अत्यधिक प्रभावित हुई।

आपको सन् १९२३ ई० में चर्मरोग हो गया था परन्तु आपने इसकी उपेक्षा की और आर्यसमाज के प्रचार का कार्य दिन रात करते रहते। इस रोग ने १९२६ ई० में भयंकर रूप धारण किया। सिर से पैर तक सूजन हो गया। इसके उपचारार्थ आप लाहौर के प्रसिद्ध वैद्य कविराज हरनामदास जी के पास गये वहाँ आपने अपने प्रभाव से उनको प्रभावित किया।

कुछ आपका स्वास्थ्य सुधर रहा था कि २३ दिसम्बर १९२६ ई० को स्वा० श्रद्धानन्द जी का अमर बलिदान हुवा। उस बलिदान से आपके मन पर बड़ी ठेस लगी। फिर क्या था आप वहां से उसी समय चलकर उदगीर पहुँचे। १९२६ में ही आर्यसमाज की स्थापना की। और उसी समय यह व्रत लिया कि "मैं आजीवन वैदिक धर्म का प्रचार करूँगा।"

आपकी कार्यकुशलता तथा सोई हुई हिन्दू जाति में जागृति को देखकर सबसे प्रथम उदगीर के तहसीलदार महम्मद जान के कान खड़े हुये। उसने कुछ स्थानीय यवनों को बहका कर आपके घर पर धावा बुलवा दिया। आप उस समय बाल-बाल बच गये। इस प्रकार मतान्धों का व्यवहार देखकर आपने और अधिक उत्साह से आर्यसमाज का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। प्रथमवार दशहरे का चल समारोह निकाला गया, उस पर नीच तहसीलदार ने झूठी रिपोर्ट कर उसे बन्द करना चाहा, परन्तु उसके प्रयत्न निष्फल हुए। इसके बाद आप अपने साथ शस्त्र रखने लगे।

उसी वर्ष आपने आर्यसमाज का होली पर चल समारोह (जलूस) निकाला। उसमें दो यवनों ने श्यामलाल जी को मारने का यत्न किया, परन्तु ईश्वर की कृपा से आप बाल-बाल बच गये। उसी दिन एक यवन ने बारूद जला कर हाथ पर छोटा सा निशान बना लिया और यह प्रसिद्ध किया कि पं० श्यामलाल जी ने अपने रिवाल्वर से घायल किया है। तब क्या था रात के समय सैकड़ों की संख्या में एकत्रित होकर

यवनों ने आपके घर पर धावा बोल दिया। आप पहले ही से कमर कस कर इसी प्रतीक्षा में थे। जब यवनों ने उनके घरवासियों की गगनभेदी जयघोष सुनी तब भीरु यवन भाग गये। यही नहीं पश्चात् यवनों की ओर से बहुत सी धमकियां दी गईं। परन्तु आप दुगुने उत्साह से प्रचार कार्य में लग गये, इस ओर जनता का भी विश्वास आप पर और आर्यसमाज पर बढ़ता गया।

आप यहीं तक सीमित नहीं रहे अपितु आर्यसमाज की ओर से हरिजनों के लिये पाठशालायें खोलीं, नवयुवकों को तैयार करने के लिए व्यायामशाला तथा गरीबों की सेवार्थ एक औषधालय भी खोला। इससे जनता की बहुत सेवा हुई। उस समय उदगीर में प्रायः नित्य हिन्दू नारियां चोरी जाती थी। आप उनकी रक्षा का प्रबन्ध करने लगे। ग्रीष्मकाल में आप कुएँ पर जाकर प्रतिदिन चार पांच सौ घड़े पानी के स्वयं खींच कर अछूतों को देते थे। इस कार्य के लिए बाद में आपके कुछ साथी भी बने। आप में अपार सेवाभाव था। महामारी, हैजा, प्लेग के दिनों में आपने जो जनता की सेवा की है वह प्रशंसनीय है। आप सेवा करते समय मित्र व शत्रु का भेद नहीं रखते थे। यहाँ तक कि स्वयं ज्वराक्रान्त होते हुए भी आप रात के समय रोगियों को औषधि देने के लिए उनके घर जाते थे। इस पर आपके साथियों ने रात्रि में जाने से रोका, परन्तु आप यह कहा करते थे कि हरएक रोग मेरे मृत्यु का सन्देशा लेकर आता है। पता नहीं कब मैं इस संसार से चल बसूँ। अतः मेरी इच्छा है कि जीते जी अधिक से अधिक इस जाति की सेवा और आर्यसमाज का प्रचार कर सकूँ। कहीं मन की अभिलाषा मन में न रह जाये। इस प्रकार आर्यसमाज की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी और आर्यों के सहवास व सेवा से प्रसन्न होकर स्थानीय युवक आर्यसमाज की गोद में आने लगे।

१९२८ में आपने उदगीर आर्यसमाज का उत्सव मनाया। इसमें पं० मङ्गलदेव जी पधारे थे। आपका बड़ा प्रभावशाली भाषण हुआ था। आर्यसमाज का जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। उत्सव के पश्चात् पुलिस पं० श्यामलाल जी के पीछे लगी। और कुछ दिन बाद १०४ धारा के आधीन एक अभियोग चलाया परन्तु इसमें पुलिस निष्फल हुई। आप से दो हजार की जमानत और दो हजार का मुचलका लिया गया। इसकी अपील उच्च न्यायालय में करने पर आप निर्दोष सिद्ध हुए। उस समय न्यायाधीश ने लिखा था "इस शख्स को खलल दिमाग मजहबी मालूम होता है मगर इस मर्ज की दवा दफा १०४ जाप्ते फौजदारी से नहीं हो सकती और न इसके इलाज के लिए यह दफा वजा किया गया है।" इस अभियोग में पुलिस ने यह आरोप लगाया था कि श्री श्यामलाल जी सशस्त्र रहते हैं। व्यायाम करते हैं, आर्यसमाज का प्रचार करते हैं इत्यादि। परन्तु योग्य न्यायाधीश ने अपने निर्णय में लिखा कि "आजादी तकरीर पर रियासत की रियाया का एक फितरी हक्क है।" इसी केस के साथ आपके ऊपर एक और भी केस चलाया था कि आपकी वकालत की सनद जब्त हो जाये। परन्तु दोनों अभियोगों में पुलिस को निष्फलता प्राप्त हुई। इसके पश्चात् आप के उत्साह में वृद्धि हुई। आप उदगीर से बाहर भी भालकी कल्याणी लातूर, अवसा, अन्धोरी इत्यादि स्थानों पर प्रचार करने लगे। इस प्रचार काल में आपको अनेकबार सशस्त्र यवनों ने घेरा परन्तु आप ईश्वर की कृपा से बचते रहे। अनेक बार हिन्दुओं ने आपको न रहने को स्थान व न ही सहयोग दिया किन्तु आप मार्ग में ही सोकर रात व्यतीत कर देते थे। और लक्ष्य पर चलते रहते थे। इस विषय में एक घटना है—एक बार आप अन्धोरी जा रहे थे, मार्ग में आपको सशस्त्र यवनों ने अहमदपुर के पास घेर लिया। आपके साथ एक साथी था दोनों ऊँट पर थे। आपने ऊँट से नीचे उतर कर अपना रिवाल्वर सम्भाला तब यवन भाग गये। जो इनका साथी था वह

भी विधर्मी होने के कारण ऊँट लेकर भाग गया। अहमदपुर में आपको कोई स्थान देने के लिए तैयार न था तब आपने दुश्मन से भरपूर ग्राम में रास्ते पर सोकर रात बिताई। प्रातःकाल पर्वतीय यात्रा तय कर अन्धोरी पहुँचे। उसी समय आपने "वर्णव्यवस्था" "हमारे स्वामी" पुस्तकों का मराठी भाषा में अनुवाद प्रकाशित कराया।

हैदराबाद राज्य में जब आपने देखा कि पर्याप्त मात्रा में आर्यसमाजें खुल गई तब उनकी व्यवस्था ठीक करने के लिए एक शिरोमणि सभा की स्थापना की। उस सभा के प्रधान दक्षिण केसरी बंशीलाल जी और मन्त्री आपने बनकर कार्यभार सम्भाला। पुनः १९३१ में हैदराबाद में आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना की। उस स्थापना के दो वर्ष पश्चात् उस सभा के मन्त्री श्री श्यामलाल जी बन गये। उसी कोहिर नामक ग्राम में होली के पर्व पर एक व्यक्ति की शुद्धि हुई। और भारी संख्या में एक चल समारोह निकाला गया। इस चलसमारोह का यवन समूह ने घोर विरोध किया, परन्तु आप वीरतापूर्वक यवनों की भीड़ को चीरते हुए अपने चलसमारोह को निकाल कर ले गये।

एक दिन की घटना है कि आप देवनी नामक ग्राम में प्रचारार्थ गये हुए थे। लौटते समय भरी नदी में से घोड़े पर बैठ कर जा रहे थे। नदी में पानी का प्रवाह अति तीव्र था। आपका घोड़ा उस तीव्र प्रवाह की ओर चल पड़ा। इस दृश्य को तटस्थ धर्मान्ध यवन देख रहे थे कि अब हमारे कंटक का नाश हो जायेगा। परन्तु ईश्वर की इच्छा और थी। आप बच निकले।

जब अजमेर में शताब्दी हुई तब आप सभा की ओर से प्रतिनिधि रूप में भेजे गये। वहां से आने पर डिवीजन अधिकारी ने नोटिस भेजा कि आप भविष्य में ऐसे उत्सवों पर न जाया करें। यह नोटिस रात को आया था। इसके उत्तर में बड़ी गम्भीरता से आपने कहा कि मेरे गुरुवर स्वामी दयानन्द जी की अर्धशताब्दी थी। उसमें सम्मिलित होना मेरा धार्मिक कर्तव्य था। कुछ दिन बाद आप की माता भी मर गई। सन् १९३४ ई० में उसके साथ आपके ज्येष्ठभ्राता पं० बंशीलाल जी ने वकालत छोड़ दी।

सभा का कार्य बढ़ गया। क्योंकि आर्य समाजों की स्थापना दिन प्रतिदिन अधिक होती जा रही थी। इस कार्य के लिये लेखक रखे और स्वयं प्रबन्ध कार्य में लग गये।

सन् १९३५ ई० में उदगीर की व्यायामशाला का उत्सव था। उत्सव बड़े धूम-धाम से मनाया जा रहा था। उस समय आपके वारण्ट कटे हुए थे। वे स्वयं भी छुपना नहीं चाहते थे, और साथ ही साथियों का आग्रह था कि आप अवश्य पहुंचे। अन्त में आप उत्सव में गये। और बड़ी निडरता से कार्य में भाग लिया। परन्तु पुलिस का आपको पकड़ने का साहस नहीं हुआ। आप पहले से ही रोगी थे। पुनः प्रचार के अधिक परिश्रम से और उत्सव की थकावट के कारण रोग ने भयंकर रूप धारण किया। आप उपचारार्थ पुनः उत्तर भारत में जाकर डा० कुन्दनलाल जी की सम्पति से उत्तरकाशी में तथा सहस्रधारा आदि स्थानों पर जाकर स्वास्थ्य प्राप्त कर आये।

आप राज्य में हरेक मेले में विशेष रूप से भाग लेते थे। प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी अर्थात् १९३५ ई० में आप माणिकनगर के मेले में प्रचारार्थ गये, वहां आर्यों का नगर-कीर्तन निकल रहा था। उस पर नीच यवनों ने धावा बोल दिया। एक ने आप पर भी छुरे का भयंकर वार किया। पर एक युवक ने आपको बचा दिया और वह वार आप खा गया, इसका पुलिस ने उलटा दावा कर आपको तथा बँशीलाल जी को ५०) का जुरमाने का दण्ड दिया।

इसके पश्चात् आपकी बीमारी ने पुनः जोर पकड़ा, और आप फिर चिकित्सा के लिये बम्बई गये,

वहां आपके सब दांत निकाल लिये गये। और साथ ही आंखों का भी आपरेशन किया गया। आपका जीवन निर्वाह दूध और केला था। इस प्रकार भयंकर रोगग्रस्त होने पर भी आप बम्बई आर्य समाज में काम करते थे। एक दिन आपका व्याख्यान रक्खा गया, इसके दो दिन पूर्व आंखों का आपरेशन हुआ था। नेत्र में भयंकर पीड़ा थी, साथ ही ज्वर भी था। इतना होने पर भी आपके पास कोई सेवक नहीं था। सारा काम आप स्वयं करते थे। इस अवस्था में भी आपने सभा में जाकर भाषण दिया। चिकित्सा के पश्चात् आप उदगीर आ गये। क्योंकि सभा का कार्यालय वहीं था। सभा के मन्त्री श्री बंशीलाल जी थे। उस समय सत्याग्रह रूपी ज्वालामुखी पर्वत फटने वाला था। श्री वेदप्रकाश जी का और श्री धर्मप्रकाश जी का बलिदान हो चुका था। स्थान स्थान पर यवनों ने उधम मचाया था। हिन्दुओं को हानि पहुँचाई जा रही थी। यहां तक कि हैदराबाद में भी विनायकराव जी की कोठी पर धावा बोल दिया था। हैदराबाद, गुलबर्गा, हुपली आदि में दुःखद काण्ड तमाम जनता के चर्चा का विषय बना था। इस प्रकार कई दर्जनों की गिनती में आर्यसमाज पर अभियोग चल रहे थे। इस अवस्था में अधिक कार्य करने से आपके स्वास्थ्य की स्थिति भी डांवडोल हो गई। अर्थात् आपका स्वास्थ्य कभी अच्छा रहता कभी बिगड़ जाता।

सन् १९३७ में विपत्तियों का वज्रपात करने वाला दशहरा आ गया। उदगीर के निवासियों की आप में अधिक श्रद्धा थी। अतः इस अवसर पर आपको आग्रहपूर्वक बुलाया गया, और आप वहां पहुंच गये। आपके बड़े भाई बंशीलाल जी देहलीस्थ सार्वदेशिक सभा के अन्तरंग अधिवेशन में गये थे। दशहरे के दिन उदगीर में दङ्गा हुआ। तथा गङ्गाराम नामक एक लिंगायत द्वारा एक यवन मौत के घाट उतारा गया। इस पर अत्याचारी पुलिस ने पं० श्यामलाल जी को इस अभियोग में लेकर बीदर जेल में डाला, इस कारागार से वे सजीव बाहर न आ सके।

श्यामलाल जी के अमर शहीद होने से एक मास पूर्व भाई बंशीलाल जी ने आपकी दशा का ज्ञान कराने के लिये अपने मामा के पुत्र श्री कृष्णदत्त को शोलापुर से भेजा, क्योंकि बंशीलाल जी स्वयं हैदराबाद में प्रवेश नहीं कर सकते थे। तीन दिन के अन्दर दौड़ धूप से श्री कृष्णदत्त को मिलने की आज्ञा मिली। श्यामलाल जी से मिलकर जो वृत्तान्त आपने बंशीलाल जी को बताया उसे सुनकर उन्होंने एक पत्र उस समय के प्रधानमन्त्री सर अकबर हैदरी को इस प्रकार लिखा कि "पं० श्यामलाल जी अस्वस्थ हैं उनका भोजन केवल दूध व केला है। उनको जेल में अत्यधिक कष्ट दिया जा रहा है। इसलिये उनके जीवन मरण की जुम्मेवारी हुकूमत पर है।"

आपको जेल में फिर कष्टों का सामना करना पड़ा, उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार था। *किस प्रकार आपको यातनायें दी गईं, किस प्रकार आपका प्राणहरण किया।* इसकी झलक उनके हाथ से लिखे पत्र द्वारा मिलती है, जो कि आपने अपने बड़े भाई श्री बंशीलाल को लिखा था। पत्र निम्न प्रकार था।

"नये दरोगा साहेब हमारे लिये भेजे गये हैं उन्होंने आते ही कह दिया कि श्यामलाल को दरवाजे के सामने जहां खूब हवा मारती है। सारी रात सुलायें। यहीं मैं अकड़ता पड़ा रहा। एक गार्ड नियत किया गया कि कोई कैदी मुझसे इशारे से बात तो नहीं करता। ता० १४ को मेरी खुराक जो दूध दिया जाता था, वह एकदम बन्द कर दिया गया। इसके बाद दो दिन भूखा पड़ा रहा। दूसरे दिन ता० १५ को मुझे ऐसी जगह रक्खा गया कि दूसरे कैदी की सूरत तक दिखाई न दे। और शाम को दरोगा साहब

पहुंचे और कहा, आप कैदियों का खाना क्यों नहीं खाते ? मैंने कहा जनाब ! आज चौदह मास से दूध पर हूं। दवा ले रहा हूँ दवा पर परहेज है जिससे मुझको बहुत फायदा हो चुका है। अभी चार छः महीने लेना बाकी है। उसे कैसे छोड़ूं। "तुमको यह खूराक खानी पड़ेगी"। ता० १६ को पेशी है उस समय तक दूध दीजिये। ता० पर मेरे रिश्तेदार आवेंगे तो उनसे दूध के पैसे दिला दूंगा। और आइन्दा मैं अपना इन्तजाम करवा लूँगा। मेरी दवा न छुड़ाइये। "अच्छा अब तक तुम्हारी इज्जत रही सो गनीमत समझो अब कैसे रहती है मैं देखता हूं। अगर न लोगे तो बेंत से पीटे जाओगे। डाक्टर ने भूल की है जो तुमको यह दवा खाने की इजाजत दी है।" वह चल दिया थोड़ी देर में दो ज्वार की रोटी और खट्टी मिर्च की दाल भोजन बनाने वाले को साथ ले दफेदार हाथ में बेंत लिये हुए पहुंचे। "लो खूराक" नहीं ले सकता। "लेना पड़ेगा" दरोगा को बुलाइये दरोगा आये। जनाब इतने दिन से दूध पर हूं एक दम रोटी मिर्च वगैरा की दाल खा लूं तो क्या हाल होगा ? 'कुछ नहीं' तुम महकमे के कानून खिलाफ वर्जी करते हो नतीजा बुरा होगा कुछ ले लो। जनाब ! मुंह में दांत नहीं कैसे खाऊं ? आज ले लो कल से चावल देदेंगे। आज जबसे देखने को कानून मांगता हूं नहीं मिलता। यह रोटी लेकर रख दूँ तो भी खिलाफवर्जी होगी। इसको हम माफ कर देते हैं। चला गया। मैं भूखा सो गया। ता० १६ को दफेदार छड़ी लेकर चावल, खट्टी दाल लिये आया। खट्टी मिर्च डाली हुई दाल मैं नहीं खा सकता। मत खाओ लेकिन ले लो। पहले हुकम की तामील करो कल से इन्तजाम करेंगे वरना गत बनेगी। "अच्छा रख दीजिये" उस दिन भी भूखा रहा। ता० १७ को चावल फीकी दाल आई एक छटांक खाकर पानी पीया होगा। पेट खराब हो गया डकारें आने लगीं, शाम का खाना लौटा दिया। अब तक छटांक अनाज मुश्किल से जाता है। डाक्टर नहीं है कम्पाउन्डर बुलाया। क्यों कैसा है मिजाज ? अभी वैसी ही है। तुम्हारे पैर में जूता क्यों ? डाक्टर साहब ने मेरे मिजाज को देखकर इजाजत दी है। दूसरे भी तो साहूकार के बच्चे हैं। गरीब अमीर की बात नहीं। मुझे अलग क्यों रक्खा गया। "मर्ज की वजह" इसीलिये मोहतमीम साहब ने इजाजत दी है। "मैं ऐसे खिलाफ जाब्ता हुकम को नहीं मानता छोड़ दो" जूते लिये। तारीख १५ से हवन करना भी मना कर दिया है जिस दिन से दूध बन्द है उसी दिन से दवा भी बन्द है। अब तक जब मैं भूखा था तो रामचन्द्र, लक्ष्मण, श्रीनिवास, वामन, काक्ष, भूषण, रामदास, दिगम्बर, महारुद्र (यह सब सज्जन पण्डित जी के साथ दशहरे के दँगे में पकड़े गये थे) भी भूखे रहे। तो बेंते मारने की तैयारी की गई। और कहा तुम सरकारी खाने को इन्कार करते हो। नहीं, भाई को (श्यामलाल जी तथा बंशीलाल जी को लोग प्रेम तथा श्रद्धा से भाई कहा करते थे) भूखे देख नहीं खाया जाता क्या करें ? अच्छा शरारत करते हो कहकर पैर में डण्डे डाल कर छोड़े हैं। इनको शोलापुर पहुँचाना। पैसे की सूरत न देखना। कोई फिकर न करना।"

यह पत्र गुप्त रूप से श्री विनायकराव के पास पहुंचा। पत्र मिलने के दूसरे दिन यह दुःखद समाचार आया कि १६ दिसम्बर १६३८ ई० को आपका वलिदान हो गया। उनके मामा श्री दत्तात्रेयप्रसाद जी वकील ने अपनी बुद्धि की चतुरता से शव प्राप्त किया। सुना जाता है कि आपका शव अधिकारी वर्ग नहीं दे रहे थे, तो आपके मामा दत्तात्रेयप्रसाद ने किसी उच्च अधिकारी के नाम से जेल के अधिकारियों को तार दे दिया कि श्यामलाल जी का शव दे दिया जावे। फिर क्या था, शव प्राप्त हो गया। इस घटना पर अधिकारी वर्ग हाथ मलते रह गये।

आपका शव जब शोलापुर गया तब अखिल भारतीय आर्य महा-सम्मेलन की तैयारियाँ हो रही

थीं। आपका शव जब आर्यनगर में पहुँचा तो चारों ओर विद्युत् की तरह हलचल मच गई। उस समय आपका शरीर केवल कंकाल-मात्र था। स्थानीय डा० श्री नीलकण्ठराव जी एल० एम० एस० के० ओ० वियाना ने शव की परीक्षा करके लिखा था कि "पेट सिकुड़ कर पीठ से जा लगा था। हाथ के नाखून काले पड़ गये थे। दाईं टांग के गिट्टे के पाल आध इंच घेरे का एक घाव था, दाईं टांग पर भी एक लम्बा घाव था, कुछ और घावों का भी डाक्टर ने उल्लेख किया था"। यह निःसन्देह बात है कि उनकी मौत जेल की नृशंस यातनाओं और कठोर अत्याचारों के कारण हुई। आपके शव का दाह-संस्कार बड़ी शान से किया गया।

आर्य कान्फरेन्स शोलापुर ने २७ दिसम्बर १९३८ ई० को हुतात्मा श्यामलाल के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास किया। वह निम्न प्रकार है।

"आर्य प्रतिनिधि सभा निजाम राज्य के उप-प्रधान धर्मवीर पण्डित श्यामलाल जी के अन्तिम पत्र के अधार पर जो उन्होंने बीदर जेल से भेजा था। और जिसमें दुर्व्यवहार की शिकायत की गई थी। उनके मृत शरीर को देने से पूर्व लिखित आश्वासन लेने की जेल के अधिकारियों की सन्देह-जनक कार्य-वाही, शोलापुर में शव-परीक्षा की डाक्टरी रिपोर्ट एवं अन्य कई आवश्यक तथा प्रासगिक बातों की विद्यमानता में यह सम्मेलन यह आरोप लगाने में युक्ति युक्त है कि पण्डित श्यामलाल जी की मृत्यु का तात्कालिक कारण उनके प्रति जेल में हुआ दुर्व्यवहार है। यह सम्मेलन इस मामले में खुली जांच की मांग करता है। जो हैदराबाद से बाहर के कानून के प्रसिद्ध पण्डितों द्वारा कराई जाय तथा जिसमें सम्बन्धित सभी व्यक्तियों का विश्वास हो।"

पंडित श्यामलाल जी अपने अमर बलिदान से संसार में अमर हो गये। आपकी मृत्यु ने हजारों को बलिदान देने का मार्ग दिखाया। आपकी यही मनोकामना थी कि धर्म प्रचार में मरूँ, वह पूरी हो गई। आपका व्यक्तित्व आकर्षक था। आप सदा प्रसन्नचित्त रहते थे। निर्भयता दृढ़ता तथा गम्भीरता की आप साक्षात् मूर्ति थे। आपका प्रभाव इतना आकर्षक था कि जो व्यक्ति आपके सम्पर्क में आता, आपका अनुयायी हो जाता था। आपके चारों ओर सदा नवयुवकों का जमघट लगा रहता था। जहां आप स्वयं वैदिक धर्म का पालन करते थे। आपकी महर्षि दयानन्द में अपार श्रद्धा थी। आप उनका नामोच्चारण करके गद्गद् हो जाते थे। आप कहा करते थे कि मैं जो भी कुछ कार्य कर रहा हूं यह सब ऋषि के त्याग व आशीर्बाद का फल है। आप ऋषि जी के साथ अन्य महा-पुरुष की तुलना करने में कभी तैयार न थे। महर्षि जी के गुणों का स्मरण कर आनन्दित होते थे।

आप में वैदिक धर्म के प्रचार की जितनी लगन थी, उतनी लगन वाला कोई विरला ही व्यक्ति मिलेगा। आप समय वा परिस्थिति की प्रतीक्षा नहीं करते थे। वह हर समय और हर अवसर पर आर्य-समाज की ही चर्चा किया करते थे। आर्यसमाज के प्रचार में आप शरीर का भी ध्यान नहीं रखते थे। अस्वस्थ होने पर भी उसी प्रकार लगे रहते थे। आप धर्म प्रचार के मूर्तिमान् आदर्श थे। आज जो हैदरा-बाद में आर्यसमाज का प्रचार है, वह आपके ही परिश्रम का फल है। आपको उठते बैठते, चलते फिरते, जागते सोते वैदिक धर्म के प्रचार की ही धुन लगी रहती थी। आप अपनी निर्भयता, दृढ़ता तथा वैदिक धर्म के प्रचार की धुन के कारण निजाम राज्य के बड़े बड़े अधिकारियों की आंखों में कांटे की तरह चुभते थे। आपने हैदराबाद राज्य में आर्यसमाज के प्रचार का क्षेत्र साफ बनाया। ईश्वर से प्रार्थना है कि घर-घर में ऐसा पुत्र उत्पन्न हो। और वैदिक धर्म का प्रचार करे।

हुतात्मा सुनहरा

(स्व० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज)

युवैव धर्मशीलः स्याद नित्यं खलु जीवितम ।
को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति ॥

सुनहरा अपने परिवार और गाँव का सुनहरा जवान था। हँसमुख, स्वस्थ और सुन्दर। शरीर बलिष्ठ था। मल्ल युद्ध का इन्हें शौक था। माता पिता के एकमात्र पुत्र थे। पर आह! सुमन की कली बिन खिले मुरझा गई।

सुनहरा जि० रोहतक के ग्राम बुटाना में जाट परिवार में श्री जगराम जी के गृह में उत्पन्न हुआ। पिता सम्पन्न थे। माता के बाल्यावस्था में ही देहान्त हो जाने पर पिता ने अपना समस्त स्नेह इस पर उडेल दिया। लालन-पालन बड़े प्रेम से होने के कारण ये पाठशाला में नहीं बैठ सके। घर पर ही हिन्दी भाषा की योग्यता प्राप्त की।

जिस समय सत्याग्रह आरम्भ हुआ इनके गौने के दिन निश्चित हो चुके थे। ये उससे पहले ही सत्याग्रही जत्थे में भर्ती होकर हैदराबाद के लिए तैयार हो गये। सम्बन्धियों ने बहुतेरा समझाया पर किसी की इन्होंने एक न सुनी। अपने विचारों पर दृढ़ रहते थे। जो निश्चय किया उस पर डटते थे। श्री महाशय कृष्ण जी के साथ ५ जून को आपने औरंगाबाद में सत्याग्रह किया और गिरफ्तार किये गये। जेल में इन्हें ज्वर हो गया। और उस ज्वर ने शीघ्र ही भयानक रूप धारण करे लिया। उसकी बगल में एक फोड़ा भी निकल आया। ज्वर १०५ डिग्री तक जा पहुंचा। इन्हें सिविल अस्पताल भेजा गया। फोड़े का बिष शरीर में फैल गया और उनको सन्निपात हो गया। रोगी दानवी गति से बढ़ता गया और ८ जून की सवेरे ७॥ बजे वह सुनहरा का जीवन हरण कर ले गया। महाशय कृष्ण जी तथा अन्य सत्याग्रहियों को उनकी मृत्यु की सूचना कई घण्टे बाद दी गई।

माननीय श्री अणे ने औरंगाबाद जेल में हुए लाठी चार्ज पर वक्तव्य देते हुए लिखा था कि— ५ जून को महाशय कृष्ण के साथ ७०० सत्याग्रही गिरफ्तार हुए थे। इतने व्यक्तियों के एकाएक आ पहुँचने से जेल के अधिकारी घबरा गये और उनके लिए उनके रहन-सहन और भोजन की व्यवस्था का करना कठिन हो गया।

कहा जाता है कि गिरफ्तार हो जाने के ३० घंटे के बाद उनको ज्वार की सिर्फ आधी रोटी दी गई। इसके विरुद्ध असन्तोष होना स्वाभाविक था। असन्तोष फैला तो जेलर ने मुँह बन्द करना चाहा। उसे सफलता नहीं मिली। इस पर वह झल्ला उठा। उसने पुलिस को लाठी चलाने की आज्ञा दी। पुलिस ने हाथ खोलकर लाठियां चलाई और बाद में घायलों को घसीट कर कोठरी में बन्द कर दिया।

इसके आगे लिखते हुए हैदराबाद सरकार को कुछ सलाह देते हुए लिखते हैं—कि मैंने देखा कि—

श्री सुनहरा की मृत्यु बड़ी सन्दिग्ध अवस्था में हुई है। कहा जाता है कि उनके शव पर चोटों के चिन्ह थे। अबतक जो मौतें जेलों में हो चुकी हैं, वे सब रहस्य पूर्ण हैं। कहा जाता है कि सभी के जिस्म पर चोटों के घाव व निशान थे।

जिस समय नगर औरंगाबाद में सुनहरा की मृत्यु का पता लगा, तब बहुत से प्रतिष्ठित पुरुष वहां पहुँच गये। उनकी इच्छा थी कि हम शव को शहर में से ले जायेंगे। कर्मचारी इससे सहमत न थे। अन्त में यह समझौता हुआ कि जिस मार्ग से कर्मचारी चाहते हैं महाशय कृष्ण और सत्याग्रही उसी मार्ग से शव को श्मशान भूमि में ले जयें। नगर निवासी पुनः अन्तिम दर्शन के लिए शमशान भूमि में आये।

ऐसा ही किया गया। शमशान भूमि में सहस्रों नगर निवासी उस वीरात्मा की अन्त्येष्टि में उपस्थित हुए। सुनहरा के शव को विभावसु की शिखाओं को भेंट करके सत्याग्रही अपने साथी के भाग्य के साथ ईर्ष्या करते हुए जेल वापिस आ गये।

(आर्यसमाज के महाधन से उद्धृत)

अमरशहीद श्री परमानन्द

(स्व० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी)

मुझे तोड़ कर हे वन माली ! उस पथ में देना तू फेंक।
धर्म-वेदी पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक ॥

दुनिया में सज्जन और दुर्जन दोनों प्रकार के आदमी रहते हैं। आकृति से साम्यता होने पर भी उनके कार्य अलग-अलग हैं। जहाँ एक पीड़ित जनों का निष्कारण बन्धु होता है वहां दूसरा निःस्पृह होकर दुःखदान करता है। किसी ने ठीक कहा है—

यथा परोपकारेषु नित्यं जागर्ति सज्जनः।
तथा परापकारेषु जागर्ति सततं खलः ॥

प्राणियों का वध इनके लिए क्रीड़ा मात्र है। सदुपदेश इनके कर्ण विवर में प्रवेश नहीं करते। अपने स्वार्थ से अन्धे होकर, पक्षपात के वशीभूत होकर ये अत्यन्त निर्दोष प्राणियों के ही प्राण हरण कर लेते हैं। धर्मवीर परमानन्द का प्राणान्त भी ऐसे ही सज्जनों के हाथ से हुआ।

परमानन्द हरिद्वार के निवासी थे। अपने पिता श्री गोकुल प्रसाद के प्यारे पुत्र थे। ३० वर्ष की आयु में हृष्ट-पुष्ट युवक थे। स्वभाव के सौम्य और सरल प्रकृति। गुरु अपने स्नात शिष्य से बड़ी आशायें रखता है। नव जवान पुत्र पर पिता की आँखें लगी होती हैं। एक नवयुवक के हृदय में समुद्र लहराता है और कल्पना की तरंगे तरंगित होती रहती हैं। श्री परमानन्द के साथ भी ये बातें सम्बद्ध थीं परन्तु यहाँ तो "चला विभूतिः क्षणभंगि यौवनम्" है।

सत्याग्रह की लहर बड़े जोरों से चली और परमानन्द को बहा ले गई। १० सत्याग्रहियो के साथ भाग्य नगर पहुंचे। वहां राचूर में सत्याग्रह करके बन्दी हुए। गुलबर्गा जेल से उन्हें चञ्चल गुडा भेजा गया। वहां १.४.३९ को उनका देहान्त हो गया।

उनका शव प्राप्त करने में निजाम सरकार ने बड़ी बाधा उपस्थित की। अन्त में शव लेने वालों को रेजिडेन्ट एच० हालिन्स तक जाना पड़ा। डाक्टरी परीक्षा के अनुसार उनकी दाईं भुजा पर तीन इंच

लम्बा एक तिरछा घाव था दाई कोहनी और छाती पर भी घाव था। कान के पास भी चोट लगी थी। परीक्षा के समय नाक और मुँह से खून निकला था।

निर्दोष खून अपना रंग लाये बिना नहीं रहते। आखिर बलिदानों को लेकर निजाम सरकार को झुकना ही पड़ा।

महाधन श्री फकीरचन्द

(स्व० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज)

"सुजीवति यशो यस्य कीतिर्यस्य स जीवति"

श्री फकीरचन्द जी का जन्म जिला करनाल, तहसील कथैल में सेरधा गाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री बालाराम जी था। जातीय दृष्टि से ये चमार थे। उनका सारा परिवार वैदिक धर्मी है।

श्री फकीरचन्द जी पढ़े हुए थे और आर्यभाषा जानते थे। जब ये हैदराबाद सत्याग्रह में गए तब इनकी आयु २२ वर्ष की थी इन्हें सत्याग्रह में जाने के लिए पहले बहुत मना किया गया। परन्तु ये फिर घर से दौड़कर रास्ते में कैथल के काकाराम के जत्थे में मिल गये।

आपने श्री महाशय कृष्ण जी के साथ ५ जून को औरंगाबाद में सत्याग्रह किया और बन्दी हुए। जेल में ही आपको उदर पीड़ा शुरू हुई जिसने शीघ्र ही 'अपेण्डिसाइटीज' का रूप धारण कर लिया। आपको सिविल अस्पताल में भेज दिया गया। वहां तीस जून १६३६ को इनका आप्रेशन किया गया। और १ जौलाई को सवेरे सात बजे इनका प्राणान्त हो गया।

आपरेशन के बाद इनकी समुचित देखभाल न हो सकी। इनके दो पुत्र और धर्मपत्नी भी परिवार में हैं। सार्वदेशिक सभा इनके परिवार को ११) रुपये पेन्शन देती है।

धर्मवीर श्री वैद्यनाथ जी

(स्व० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज)

मृत्योर्विभेषि किं बाल ! न स भीतं विमुञ्चति।
एक बार सब मिल जावें तो सारा विश्व हिलादें हम।
विश्व सरोवर के तट पर सब एक सरोज खिलादें हम।

लोग कहते हैं कि "धन का भूषण दूषण है। जहां वित्त है वहां विलास है, परोपकार और सेवा का अभाव है, मद और दम्भ का प्रभाव है। धन दुर्गुणों का पालक और सद्गुणों का घातक है।" परन्तु सर्वांश में यह बात ठीक नहीं कही जा सकती। ऐसे बहुत से मिल जायेंगे जो धनी हैं जहां ऐश्वर्य उनके आंगन में विलास करता है। परन्तु अभिमान उन्हें छू तक नहीं गया है। विनय की मूर्ति हैं सेवा और

परोपकार के व्रती हैं। आखिर कीचड़ में कमल भी तो होते हैं। कांटे में कुसुम और सर्प में मणियां भी होती हैं।

श्री वैद्यनाथ जी इसी प्रकार कांटे में कुसुम और मिट्टी में स्वर्ण पैदा हुए थे। उनका परिवार सम्पत्ति शाली था। नगर में प्रतिष्ठित था। एक ऐश्वर्य सम्पन्न परिवार को जो कुछ उपलब्ध होता है वह सब उन्हें प्राप्त था। परिवार के वे आशा कमल थे। माता पिता की आँखों की पुतली थे।

श्री वैद्यनाथ जी चम्पारण जिला के नरकटियागंज के निवासी थे। उनके पूज्य पिताजी का नाम धरिद्धनराम था। धर्म के संस्कार उनमें प्रबल थे। उनकी आयु १६ वर्ष की थी। उनमें स्फूर्ति थी। धर्म के प्रति लगन थी। परपीड़ा को मिटाने का चाव था।

हैदराबाद के सत्याग्रह की रणभेरी सुन आप भी युद्ध क्षेत्र की ओर चल दिये। घर में नवविवाहिता स्त्री आई थी परन्तु उसका आपने तनिक भी ध्यान नहीं किया। यह उन मेवाड़ी वीरों की याद दिला देता है जो विवाह का कंगन हाथ से खुलने से पूर्व ही देश के लिये युद्धक्षेत्र में अपने प्राण चढ़ा देते हैं।

श्री वैद्यनाथ जी ने धर्म की वेदी पर अपने प्राणों की भेंट चढ़ा दी। उनकी अक्षयकीर्ति इस संसार में विद्यमान है। वे रुग्णावस्था में जेल से मुक्त हुए। और वहां से आकर बेतिया अस्पताल में २५ जून १९३९ ई० को उनका देहान्त हो गया।

उनके पिता अपने महाधन पुत्र की स्मृति में नरकटियागंज में एक धर्मशाला का निर्माण करा रहे हैं।

अमर शहीद ब्रह्मचारी दयानन्द

(स्व० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज)

यस्य जना न वदन्ति महत्वं नो समरे मरणं विजयं वा।
न श्रुत दान महाधनतां वा तस्य भवः कृमिकीट समानः॥

ब्रह्मचारी दयानन्द का जन्म स्थान हरदोई जिलान्तर्गत सुरसा ग्राम है। उनका जन्म सन् १९१९ के पौष मास में हुआ था। उनके पिता रघुनन्दन जी शर्मा की ५ संतानें थीं। दयानन्द उनके ज्येष्ठ पुत्र थे। दयानन्द के दो छोटे भाई तथा तीन बहनें थीं। शकुन्तला का देहान्त हो चुका है। शान्ति और प्रभा अभी विद्यमान हैं।

दयानन्द अपनी माता श्री सहोदरा देवी के लाडले पुत्र थे। उनका जन्म उस कमरे में हुआ था जिसमें प्रातः स्मरणीय महर्षि दयानन्द का चित्र टंगा हुआ था उनकी जननी का अधिकांश काल इसी प्रकोष्ठ में व्यतीत होता था। जन्म के समय घर की स्त्रियों ने उन्हें बलिष्ठ और सुन्दर देखकर दयानन्द नाम रख दिया पिता ने भी इस प्रथम पुत्र को महर्षि दयानन्द के चरण चिन्हों पर चलने तथा आर्य समाज की सेवा करने के लिये अर्पण कर दिया।

६ वर्ष की उम्र में दयानन्द को गांव की पाठशाला में बिठाया गया। चौथी कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद घर पर ही पं० रामस्वरूप जी से उन्होंने संस्कृत में प्रथमा परीक्षा की तैयारी की और उत्तीर्ण हुए।

तदनन्तर उन्हें गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में प्रविष्ट कराया गया। वहां चार वर्ष के निरन्तर परिश्रम के बाद उन्होंने मध्यमा परीक्षा पास की। इसके बाद उनके पिता ने न्याय पढ़ने के लिये उन्हें नित्यानन्द वेद विद्यालय काशी में भेजा। वहां दो वर्ष तक न्याय की शिक्षा प्राप्त करते रहे। इसी बीच में उनकी जननी का स्वर्गवास हो गया। दयानन्द इस शोक में अपने ग्राम आये। पश्चात् ग्रीष्म अवकाश बिताने के लिए महाविद्यालय ज्वालापुर चले गये।

उसी समय हैदराबाद सत्याग्रह का सूत्रपात हो गया। दयानन्द ने भी सत्याग्रह में भाग लेना निश्चित किया। विद्यालय के अधिष्ठाता की ओर से उनके पिता के पास स्वीकृति के लिये पत्र आया। यद्यपि पं० रघुनन्दन शर्मा स्वयं जिला कांग्रेस कमेटी के मन्त्री पद से स्तीफा देकर जत्था लेकर सत्याग्रह में जाने का निश्चय कर चुके थे। तथापि अपने मित्र बा० छेदालाल जी एम० ए० के परामर्श से दयानन्द को सत्याग्रह में जाने की अनुमति उन्होंने दे दी।

ब्रह्मचारी दयानन्द महाविद्यालय के तीसरे जत्थे के साथ सम्मिलित हो गये। ब्र० आनन्दप्रकाश जी के नेतृत्व में यह जत्था विभिन्न स्थानों में प्रचार करता हुआ हैदराबाद पहुँचा। वहां उसने २ जून १९३९ को सत्याग्रह किया। सब बन्दी कर लिये गये। और दो वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड सुना दिया गया।

दयानन्द के बलिष्ठ शरीर और होनहार व्यक्तित्व को देख कर जेल कर्मचारी मन ही मन कुढ़ने लगे। वह उनके प्रत्येक अनुचित कार्यों का तीव्र विरोध किया करता था। इससे उसके प्रति उनका व्यवहार दिनों दिन उग्र होता गया। परिणाम यह हुआ कि जहां उसका आमाशय पत्थर भी पचा सकता था वहां दस्त आने प्रारम्भ हो गये।

इसी बीच में सत्याग्रह सम्बन्धी समझौता हो गया। बन्दी मुक्त कर दिये गये। दयानन्द भी उन मुक्त बन्दियों के साथ छूट कर हरद्वार होते हुए हरदोई पहुंचे। लोगों की आंखें आश्चर्य स्तम्भित हो गईं। जब उन्होंने दयानन्द को देखा पहचाने जाने पर भी भ्रम होता था कि कहीं आखें धोखा तो नहीं दे रहीं। स्टेशन से लाकर बा० छेदालाल जी की धर्मशाला में उनका स्वागत किया गया तथा प्रीति भोज हुआ।

इसके पश्चात् दयानन्द अपने पिता के साथ हरदोई के मकान में गये। वहाँ उनका सर्वविधोपचार किया गया परन्तु दस्त बन्द न हुए। अन्त में ९ मार्च १९४० के दिन प्रातः काल उनका देहान्त हो गया। मृत्यु का समाचार विद्युत की भांति सारे शहर में फैल गया। वृहज्जन समूह की उपस्थिति में उनका शव शमशान भूमि में ले जाया गया। वहां उस नश्वर शरीर का वैदिक रीति से दाह संस्कार कर दिया गया।

दयानन्द का भौतिक शरीर इस संसार में नहीं है, परन्तु धर्म के लिए किया गया उसका बलिदान उसके नाम को अमर रखेगा।

दयानन्द में जहां अन्य अनेक गुण थे वहाँ एक विशेष गुण था—अन्याय का प्रतिकार करना। अत्याचार सहना उसे पसन्द न था। अपमानित होकर वह चुपचाप नहीं बैठ सकता था। अपने स्वत्व की रक्षा करना उसने सम्भवतः जन्म से ही सीखा था। उसकी नाड़ियों का रक्त प्रवाह उष्ण था। देश धर्म और जाति पर मिटने की दिव्यभावना उसमें तरंगित होती थी।

जिस समय बनारस में हिन्दू मुस्लिम दंगा हुआ था उस समय उसने जिस वीरोचित उत्साह का

प्रदर्शन किया था जिस प्रकार से हिन्दुओं का त्राण किया और उनके अपमान का बदला लिया था वह उसके ही योग्य था। उसके मित्र उसके उन कार्यों को अब भी बड़े गौरव से याद करते हैं।

एक और घटना है। पिता घर पर नहीं थे। दयानन्द उस समय १६ वर्ष के थे। बाहर से घर आये। उनके सम्बन्धी चाचा को झगड़े में किसी ने मार दिया। चाची के करुण क्रन्दन ने उसके हृदय में क्रोध का तूफान पैदा कर दिया। उसने जन समूह के बीच में जाकर उस व्यक्ति पर प्राण घातक वार किया। यद्यपि भीड़ के कारण वह बच गया परन्तु उसे बड़ी भीषण चोटें लगीं। दयानन्द पर मुकद्दमा दायर हुआ और उसके नाम वारण्ट निकल गया। यद्यपि आशा थी कि सजा बहुत होगी तथाहि शहर कोतवाल भगवानसिंह आर० बी० छेदालाल जी के प्रयत्न से साफ बरी हो गया।

ये घटनायें उसकी मनोदशा का संकेत करने के लिये पर्याप्त हैं। ये अपने पिता के आज्ञाकारी पुत्र थे। जहाँ उनमें स्वयं आर्यसमाज की सेवा करने की प्रबल भावना विद्यमान थी वहां उनके पिता भी उन से बड़ी आशायें लगाये हुए थे। परन्तु जो होना था सो हुआ।

उनका बलिदान उनकी इच्छाओं के अनुरूप हुआ है। हुतात्माओं की श्रेणी में अंकित उनका नाम उन्हें कीर्तिशाली बनायेगा।

अमर शहीद श्री नन्हूसिंह

(स्व० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज)

मृतः स एवास्ति यशो न यस्य,
धर्मे न धीर्यस्य स एव शोच्यः।

श्री नन्हूसिंह जी उन पुरुषों में से हैं जिन्होंने चुपचाप अपनी आहुति धर्मयज्ञ के कुण्ड में दे दी है। आर्यसमाज में ऐसे महाधन पुरुषों की कमी नहीं होगी जो अपने रक्त से वेदधर्म के पादप को सींच कर इस संसार से अज्ञात ही प्रयाण कर गये हैं। हमें इस प्रकार के पुरुषों के जीवन की खोज करनी चाहिये।

नन्हूसिंह जी बुन्देलखण्ड के निवासी थे। अमरावती में वे मजदूरी करके निर्वाह करते थे। आप श्री गणेशसिंह जी के सुपुत्र थे, उनकी प्रवृत्ति धार्मिक थी। हैदराबाद सत्याग्रह आन्दोलन ने उनकी भावनाओं को प्रबल प्रेरणा दी। वे अमरावती से नाना साहब भट्टवकील के साथ ५२ वर्ष की आयु में हैदराबाद सत्याग्रह के लिये गये और गिरफ्तार हुए। चञ्चलगुड़ा जेल में वे २६ मई को बीमार हुए। २६-५-३६ को उस्मानिया अस्पताल में उनका निमोनियां से स्वर्गवास हो गया। उनका शव छिपा कर जला दिया गया।

सरकार ने उनकी मृत्यु का पता तक नहीं दिया। सार्वदेशिक सभा ने तार पर तार भेजे तथा कई व्यक्तिगत प्रयत्न किये। परन्तु सरकार के कान पर जूं तक न रेंगी। सत्याग्रह समिति की ओर से हरिश्चन्द्र विद्यार्थी अधिकारियों से मिले परन्तु बालू में से तेल न निकला। अन्त में उन्होंने वह स्थान ढूंढ लिया, जहां उनका शव जलाया गया था। वहां अपनी आंखों से उन्होंने उनका आधा जला हुआ धड़ और खोपड़ी को अलग-अलग पड़े देखा, उसका चित्र भी लिया गया था।

गुरुकुल भैंसवाल के संस्थापक—



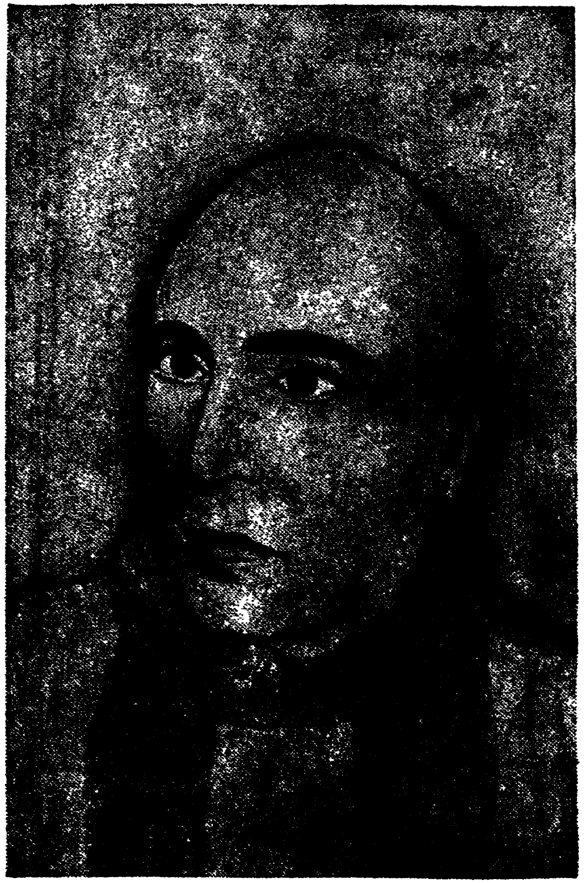
श्री भक्त फूलसिंह जी

गुरुकुल मटिण्डू के संस्थापक—



श्री चौ० पीरूसिंह जी

गोरक्षा आन्दोलन के शहीद—



श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी

गुरुकुल झज्जर के कुलपति—



स्व० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी

एक जेलमुक्त सत्याग्रही ने बतलाया है कि हुतात्मा नन्हूसिंह जी नल पर नहा रहे थे। नहाते-नहाते किसी जेल कर्मचारी ने नल बन्द कर दिया। जब खोलने को कहा तब सिर पर जोर से एक लाठी मारी, जिस से वह अचेत हो गये। उनको उठा कर हस्ताल में पटक दिया गया। यहीं पर उनका देहान्त हुवा। मृत्यु के पश्चात् उनके शव को टाट और कपड़े से लपेट दिया और एक अन्धेरे स्थान पर डाल दिया।

उनके मृतक शरीर की किस प्रकार मिट्टी पलीत की गई, राज्य कर्मचारियों की जघन्य वृत्ति किस प्रकार सीमोल्लंघन कर गई थी। यह उनके गुप्त रूप से किये गये अन्त्येष्टि कर्म के जघन्यतम समाचारों से पता लगता है।

उनका दाहसंस्कार कठोर हृदय राजपुरुषों द्वारा शमशान भूमि पर नहीं किया गया, एक दूसरे ही स्थान में शव जलाया गया? इस प्रकार की धार्मिक विधि अमल में लाई गई। वहां भी उनका शव अध-जला पड़े रहने दिया गया। संसार की कोई भी जाति अपने मृतक शरीर का अपमान नहीं सह सकती, राजकर्मचारियों ने धोखे से उस अपमान को करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी।

गोरक्षा आन्दोलन के अमर शहीद—

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

(श्री स्वामी ईशानन्द जी)

आपका जन्म लुधियाना जिले के मोही नामक ग्राम में हुआ था जो मुल्लापुर स्टेशन के निकट स्थित है। आपके पिता जी का नाम भगवान्‌सिंह था। आपका बाल्यकाल का नाम केहरसिंह था। आप नोरङ्ग-सिंह, बलवन्तसिंह, हनुमंतसिंह ये चार भाई थे। बलवन्तसिंह और हनुमंतसिंह का जन्म दूसरी माता से था। आपकी माता बाल्यकाल में ही स्वर्ग सिधार गई थी। आपका पालन-पोषण आप के नाना के घर लताला (लुधियाना) में ही हुआ। आपके भाई नोरंगसिंह प्रसिद्ध पहलवान् थे। जो आजीवन ब्रह्मचारी रहे। उन्होंने समग्र भारतवर्ष में मल्लयुद्ध (कुश्ती) में विजय प्राप्त की। श्री बलवन्तसिंह जी आजकल भी जीवित हैं।

आपने स्कूल में मिडिल कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की। प्रथम जालन्धर छावनी में पढ़ते रहे, तदनन्तर पेशावर में पढ़े।

आपके पिता सूबेदार मेजर थे। तत्पश्चात् रिटायर्ड होकर बड़ौदा चले गये थे।

गृह-परित्याग

आपने लताला में श्री विशनदास जी से जो उदासी साधु थे संस्कृत पढ़ी। आप और आपके भ्राता श्री नोरंगसिंह जी अधिक समय इन्हीं की संगति में बिताते थे। २२ वर्ष की आयु पर्यन्त आप साधुओं की ही संगति में रहे। इसी बीच में आपने रायकोट में श्री अब्दुलहक जी से यूनानी सीखी। यूनानी पढ़ते समय मुसलमानों के ऊपर भी आप का यह प्रभाव था कि यह कोई सामान्य विद्यार्थी नहीं है। यह एक दुर्वेस (ओजस्वी साधु) है।

२२ वर्ष की आयु में आपका चेहरा ब्रह्मचर्य के तेज से चमकता था। जिस प्रकार से सारी मथुरा नगरी स्वामी दयानन्द के पावन चरित्र एवं ब्रह्मचर्य के ओज से प्रभावित थी उसी प्रकार रायकोट की जनता आपके ब्रह्मचर्य के तेज से प्रभावित थी। दूर-दूर से लोग आप के पवित्र दर्शनों के लिए आया करते

थे। जब आपके लिये फौजी जमादारी के लिये आर्डर आया और साथ-साथ माता-पिता ने विवाह करना चाहा तभी आप घर को छोड़ कर भाग गये।

सत्याग्रह की प्रथम रात्रि रायकोट में ही व्यतीत हुई। आप ने सन् १९०० दिसम्बर मास में गृह-त्याग किया था। १९०१ में श्री स्वामी पूर्णानन्द जी पुरी से संन्यास की दीक्षा ली। इन्होंने आपको केहर-सिंह से प्राणपुरी बना दिया। श्री स्वामी प्राणपुरी जी संन्यास दीक्षा से दीक्षित होकर चीन में विदेश-यात्रा के लिये चले गये। वहा के हाँकांग, फार्मोसा आदि सभी प्रसिद्ध नगरों में आपने पैदल यात्रा की। भ्रमण के साथ-साथ सद्ग्रंथों का भी स्वाध्याय करते रहे। वहां आपने २॥ वर्ष तक भ्रमण किया।

विदेश से लौटने के पश्चात् भारत में २॥ वर्ष तक भ्रमण के साथ-साथ वेदान्त दर्शन का गम्भीर स्वाध्याय किया। जहां आप वेदान्त दर्शन के अद्वितीय प्रकांड पण्डित थे वहां आप गुरुग्रन्थ साहब के भी मर्मज्ञ थे।

प्राणपुरी से स्वतन्त्रानन्द

आप स्वतन्त्र विचारधाराओं के थे। अन्य साधु लोग देवी-देवताओं को बहुत मानते थे। किन्तु आप देवी-देवताओं को नहीं मानते थे। आप को साधु लोग स्वतन्त्र कहने लगे। इस प्रकार से आपका नाम स्वतन्त्रानन्द पड़ गया। आपका यह नाम गुरुप्रदत्त नहीं था।

नासिक का कुम्भ

इस प्रकार ५ वर्ष भ्रमण के पश्चात् १९०६ ई० में नासिक का कुम्भ आया। इस कुम्भ पर दूर-दूर से साधु सन्यासी लोग भी पधार रहे थे। आपके पिता सरदार भगवानसिंह जो बड़ौदा में विशिष्ट सेना-धिकारी थे इन्होंने सोचा कि सम्भव है कि केहरसिंह भी नासिक के कुम्भ पर आवे। अतः उन्होंने बड़ौदा की सभी सड़कों पर सिपाहियों को नियुक्त कर दिया और उन्हें बतला दिया कि इस-इस प्रकार की आकृति वाला यदि कोई साधु यहां से जावे तो उसे रोक लेना और मुझे तुरन्त सूचित कर देना। सड़कों से अनेक साधुओं का निर्गमन हुआ। एक दिन एक बड़े भारी साधु मंडल के साथ श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी भी वहां से गुजरे। सिपाहियों ने उनके पिता श्री भगवानसिंह जी द्वारा बताये लक्षणों से उन्हें पहिचान लिया और समग्र साधु मंडल के सहित उन्हें रोक लिया। इनके पिता जी को तत्काल सूचना दे दी गई। पिता जी सूचना मिलते ही आ पहुँचे और पिता पुत्र की चार आंखें हुईं। स्वामी जी को पिता जी ने घर चलने के लिए कहा। स्वामी जी ने कहा कि साधु लोग घर नहीं जाया करते। पिता जी अत्यन्त आग्रह से समग्र साधु मंडल के सहित स्वामी जी को घर ले गये और सभी को घर पर प्रेम से भोजन करवाया। तत्पश्चात् जब चलने लगे तब पिता जी ने सभी को मार्ग व्यय (किराया) देना चाहा। स्वामी जी ने कहा हम संन्यासी हैं हम पैसे को हाथ नहीं लगाते। पिता जी ने उनको स्वयं टिकटें खरीद कर दीं। अब सभी जाने को तैयार थे। गाड़ी भी आने ही वाली थी। पिता जी ने स्वामी जी को एकान्त में बुलाकर कहा पुत्र! तूने हमारे कुल को कलङ्कित कर दिया। मैं तो तुम्हें सरदार देखना चाहता था और तुम भिखारी बन कर कुल को धब्बा लगा रहे हो। स्वामी जी ने कहा यह तो समय बतलायेगा कि मैंने कुल को कलङ्कित किया या समुज्ज्वल! एक दिन आयेगा कि मैं सारे भारत का ही नहीं देश का सरदार बनूंगा। इतने में ही रेलगाड़ी आई और स्वामी जी परिव्राजक-मंडल के साथ गाड़ी में बैठ कर चले गये।

स्वामी जी का पिता जी पर प्रभाव

एक दिन स्वामी जी मोही ग्राम से दक्षिण दिशा में १०, १५ मील दूर किसी ग्राम में उपदेश कर रहे थे। एक बड़ा भारी साधु-मंडल दत्त चित्त होकर उपदेशामृत का पान कर रहा था। सौभाग्य से श्री भगवानसिंह जी (स्वामी जी के पिता) भी उसी मार्ग से ऊँट पर बैठे हुए किसी रिश्तेदारी में जा रहे थे। उनके मन में एक शंका पैदा हुई कि यह जो साधु उपदेश कर रहा है हो न हो कदाचित केहरसिंह ही हो। वे स्वामी जी की ओर आये जहां वे बैठे हुए उपदेश कर रहे थे। स्वामी जी ने पिता जी को पहिचान लिया और एक साधु को आदेश दिया कि खड़े होकर ऊँट पकड़ लाओ। पिता जी स्वामी जी के पास आकर बैठ गये और उपदेश आरम्भ हुआ। पुत्र का मधुर उपदेश सुनकर पिता जी की प्रसन्नता का कोई पारावार नहीं रहा और कहा कि तूने सत्य कहा था कि मैं एक दिन देश का सरदार बनूँगा, तूने कुल को वास्तव में कलङ्कित नहीं किया। अपितु समुज्ज्वल किया है। यह कह कर पिता जी यथेष्ट स्थान पर चले गये।

आर्यसमाज का परिचय

जब स्वामी जी १९०८ ई० में चिम्भा (पटियाला) नामक ग्राम में चतुर्मास (वर्षाकाल) व्यतीत कर रहे थे। आपके गुरु श्री पं० विशनदास का पत्र पहुंचा कि पत्र के मिलते ही तुम लताला आ जाओ। स्वामी जी ने आदेश का पालन किया। लताला पहुंचने पर श्री पं० विशनदास जी ने कहा कि "तुम आर्यसमाज का कार्य करो।" वे स्वयं उदासी साधु थे किन्तु आर्यसमाज के कार्य को बहुत ही अच्छा समझते थे। स्वामी जी ने कहा कि मैं आर्यसमाज के सम्बन्ध में कुछ जानता तो नहीं किस प्रकार से मैं कार्य करूँ। उन्होंने कहा कि जैसा भी हो तुम्हें यह कार्य अवश्य करना पड़ेगा। यह सुनकर स्वामी जी ने गुरुवर की आज्ञा पालन के लिए यत्न आरम्भ किये।

आर्यसमाज में प्रवेश

तत्पश्चात् स्वामी जी ने केवल १५ दिन में सारी गीता स्मरण कर डाली। ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि सभी ग्रन्थ मंगवा कर बड़ी श्रद्धा से पढ़े। कथरा गांव में एक बुर्ज था जहाँ स्वामी जी ऋषि ग्रन्थों का स्वाध्याय किया करते थे। वह बुर्ज आज तक भी विद्यमान है।

श्री पं० विशनदास जी ने स्वामी जी को फिर लताला बुलाया, क्योंकि मोधा (फिरोजपुर) आर्यसमाज का वार्षिक महोत्सव निकट था। पंडित जी स्वामी जी को आर्यसमाज के महोत्सव में अपने साथ ले गये। स्वामी जी ने आर्यसमाज का यह प्रथम महोत्सव देखा। इससे स्वामी जी के हृदय पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

आर्यसमाज के स्टेज पर सर्व प्रथम भाषण

एतत्पश्चात् स्वामी जी रामामंडी चले गये। सिरसा आर्यसमाज का वार्षिक महोत्सव निकट था। श्री चौ० अजीतसिंह जी तथा स्वामी जी रामामंडी से सिरसा आर्यसमाज के वार्षिक महोत्सव में सम्मिलित हुए। यहां स्वामी जी ने आर्यसमाज के स्टेज से सर्वप्रथम भाषण दिया।

घोर तपस्या

आप अत्यन्त विरक्तता में भ्रमण किया करते थे। केवल एक कौपीन तथा एक बाल्टी रखते थे। स्नान करके स्वामी दयानन्द जी की भांति धूलि में बैठ जाते थे और कौपीन सूखने पर बांध लेते थे।

बाल्टी रखने के कारण आप को लोग बाल्टी वाला साधु कहा करते थे। भिक्षावृत्ति से भोजन किया करते थे। एक घर से केवल एक रोटी ही आप लिया करते थे। बरसती हुई अग्नि और कड़कती हुई सर्दी में भी आप कुछ भी शरीर पर धारण नहीं करते थे। हेमन्त ऋतु में जब हिम (बरफ) पड़ने लगती तब आप पूलिकानिचय (छोर) में घुस कर रात्रि बिता लिया करते थे। आपने ऋषि दयानन्द के समान घोर तपस्या से अपने जीवन को पावन बनाया।

कार्य क्षेत्र

स्वामी जी सन् १९१० में महाशय कृष्ण जी से सर्वप्रथम लुधियाना में मिले। उस समय महाशय कृष्ण जी आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के महामन्त्री थे। महाशय जी से मिलकर स्वामी जी ने प्रचार का भावी कार्यक्रम बनाया।

सन् १९११ में स्वामी जी ने लुधियाना की संस्कृत पाठशाला को अपना केन्द्र स्थान बनाया। स्वामी जी ने सारे पञ्जाब का भ्रमण किया। और उपदेश का कार्य आरम्भ किया।

अफ्रीका में प्रचार कार्य

सन् १९१३ में श्री डा० भारद्वाज जी अफीका में प्रचार कार्य करके भारत लौटे। भारद्वाज ने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामन्त्री श्री महाशय कृष्ण जी से कहा कि "अफीका में प्रचार कार्य के लिए अब ऐसे एक विरक्त साधु की आवश्यकता है जो सर्वतोभावेन वैदिक धर्म के ही प्रचार में तन्मय रहे। और मेरे किये हुए कार्य को सुरक्षित रख सके। और जो आर्य सिद्धान्तों का मर्मज्ञ भी हो। महाशय कृष्ण जी ने स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को इस शुभ कार्य के लिए सर्वथा योग्य समझा। १९१४ ई० में स्वामी जी महाराज अफ्रीका चले गये और वहां वैदिक धर्म का डट के प्रचार किया। स्वामी जी के जीवन से प्रभावित वहां की जनता आज भी उन्हें याद करती है। १९१७ तक आप अफीका में ही रहे। आपकी अफ्रीका यात्रा के सम्बन्ध में एक पुस्तक भी प्रकाशित है। वहां के अन्न जल आदि के अनुकूल न होने से आपकी आँखें खराब हो गई। बहुत चिकित्सा की किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। आप ३ मास पर्यन्त बिल्कुल अन्धे रहे। किन्तु प्रचार के कार्य को तब भी नहीं छोड़ा। तत्पश्चात् भारत लौटे और आंखों की चिकित्सा करवाई। जिसमें डेढ़ वर्ष लगा।

योगाभ्यास

गुरुवर श्री पं० विशनदास जी से आपने यौगिक क्रियायें सीखीं। आपके मन में योग सीखने की धुन थी। आप ८० प्राणायाम प्रातःकाल, ८० प्राणायाम मध्याह्न में और ८० प्राणायाम सायंकाल करते थे। योगाभ्यास के दिनों में आपने अन्न का सेवन छोड़ दिया था। आप केवल २ सेर दूध और २ छटांक घी प्रतिदिन सेवन करते थे।

योगाभ्यास में विचित्र बाधा

योगाभ्यास में सर्वतोभावेन निरत रहने पर भी यदा कदा मन में चंचलता का आभास होता रहता था। स्वामी जी आश्चर्य में थे बात क्या है? एक दिन अपने गुरुवर श्री पं० विशनदास जी से स्वामी जी ने निवेदन किया कि मैं सदा योगाभ्यास में ही लगा रहता हूं। न जाने बात क्या है कि मन में चंचलता का आभास लुप्त नहीं होता। पण्डित जी ने आपके भोजन के सम्बन्ध में पूछा। आपने बतलाया कि दूध तो आपके यहां से ही जाता है। अन्न का मैं सेवन नहीं करता। गुरु जी ने पूछा कि घी कहां से

आता है ? स्वामी जी ने कहा कि एक ग्राम से आता है। गुरू जी ने बतलाया कि जिस घर से घी आता है उस घर में कोई अत्यन्त चंचल वृत्ति वाला व्यक्ति रहता है ? आप वहां से घृत न मंगवाया करें। खोज करने पर विदित हुआ कि उस घर में एक स्त्री बहुत ही चंचल स्वभाव की थी। और जो आचार विचार से भी अच्छी नहीं थी। स्वामी जी ने उस घर से घी मंगवाना बन्द कर दिया। तत्पश्चात् स्वामी जी अपनी साधना में कृत-कार्य हुए। यह घटना बतलाती है कि किसी कार्य में भावनायें कहां तक काम कर सकती हैं।

आपके योग सम्बन्धी अनुभव श्री पं० सातवलेकर जी द्वारा प्रतिपादित एक योग-आसन पुस्तक में प्राणपुरी के नाम से संगृहीत हैं,

आपने मथुरा शताब्दी में भी बढ़ चढ़कर भाग लिया। लाहौर में उपदेशक महाविद्यालय की स्थापना की। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के साथ मिलकर १॥ लाख मुसलमानों को शुद्ध किया। दीनानगर, डिकसाई, धर्मशाला जालन्धर, रोहतक इन पांच नगरों में दयानन्द मठों की स्थापना की आज दीनानगर, जालन्धर, रोहतक में तीन मठ सुचारु रूप से चालू हैं। हैदराबाद-सत्याग्रह के आप नेता रहे, लुहारू सत्याग्रह में आपने लाठियां भी खाईं। आपने अपने जीवन में अनेक पावनकार्य किये। जिनके सम्बन्ध में बिस्तार से फिर कभी लिखा जायेगा।

सार्वदेशिक गोरक्षा आन्दोलन से देहावसान—

भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर भी भारत में गोहत्या का कुकृत्य सरकार ने बन्द नहीं किया। यह बात आर्यसमाज के नयनों में कुणक बनी हुई थी। इस कार्य को स्वामी जी महाराज ने अपने कन्धों पर लिया। गोरक्षा आन्दोलन प्रारम्भ करने से पूर्व आपने यू० पी० का तूफानी दौरा किया। जिससे स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। रुग्णावस्था में आप तीन मास पर्यन्त देहली रहे। सर्वविध चिकित्सा करने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। तत्पश्चात् आप बम्बई चले गये। वहां भी आपके स्वास्थ्य में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। रुग्णावस्था में जो भी लोग आपसे मिलने आते और पूछते स्वामी जी महाराज क्या हाल है ? आपका यही उत्तर होता था कि "बहुत अच्छा हाल है"।

स्वास्थ्य विकृति के साथ साथ आपके उदर में एक फोड़ा हो गया था। जिसे कसर कहते हैं। इसकी चिकित्सा में साफल्य नहीं मिला। गोरक्षा आन्दोलन के तूफानी दौरे के कारण सं० २०१२ वि० चैत्र शुदी ११ को बम्बई के एक हस्पताल में स्वामी जी महाराज का देहावसान हो गया।

यद्यपि स्वामी जी महाराज सदेह संसार में नहीं हैं परन्तु-आर्यसमाज के इतिहास में स्वामी जी महाराज का नाम सदा अमर रहेगा। स्वामी जी महाराज अत्यन्त स्वाध्याय शील थे। प्रतिदिन वेदपाठ किया करते थे। आप विचित्र प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। देश और धर्म पर बलिदान होने के लिये सदा तत्पर रहते थे। आपका जीवन एक आदर्श जीवन था। भगवान् इस प्रकार के विरक्त साधु-रत्न समय समय पर भारत को प्रदान करते रहें।

अगस्त १९४२ का महान् विप्लव

(श्री ब्र० मनुदेव)

भारतवर्ष के इतिहास में अगस्त क्रान्ति एक महान् चिरस्मरणीय घटना है। इस क्रान्ति ने ब्रिटिश भारत के इतिहास में ऐसी भयंकर सामूहिक उथल-पुथल पैदा की कि ब्रिटिश सिंहासन ही डोलायमान हो गया था। भारत के कुछ प्रान्त, मसलन, बिहार युक्त प्रान्त, आन्ध्र, सतारा, आदि तो पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र हो गये थे। इन प्रान्तों में उन दिनों अंग्रेजी शासन का नामोनिशान ही नहीं रह गया था। इन प्रान्तों की सर्वोपरि सत्ता जनता के हाथों में थी। समस्त भारत की जनता इस आन्दोलन में कन्धे से कन्धा मिलाकर डट जाती तो समस्त भारत उस समय पराधीन नहीं रहता। परन्तु यह भारतवासियों के भाग्य में नहीं था।

क्रान्तियां एकाएक पैदा नहीं हो जातीं। क्रांतिया घनघोर घटाओं में से एकाएक बिजली की तरह टूट नहीं पड़ती। क्रांतियां पैदा होती हैं, निरन्तर जनता की भावनाओं के कुचले जाने से जनता की आकाक्षा ओं के निरन्तर दमन से ही क्रान्तियाँ जन्म लेती हैं। शान्ति की बनावटी बातों की धरातल के नीचे ज्वालामुखी की तरह जनता की विरोध की आग धीरे-धीरे सुलगती रहती है। जरासी ठेस पहुंचने के साथ ही इस आग में विस्फोट हो जाता है। और वह धरातल को फोड़ कर ऊपर आ जाती है और बगावत का रूप धारण कर लेती है। धरातल के नीचे की आग में जितना भी जोर होता है विस्फोट या आन्दोलन उतना ही तीव्र रूप धारण कर लेता है। आन्दोलन के रूप व प्रसार के लिए तत्कालीन देश की स्थिति संस्कृति नेताओं के विचार व उनकी संगठन शक्ति पर ही निर्भर रहना होगा। जैसा उस समय देश के नेताओं का संगठित प्रोग्राम होगा जनता उतने ही प्रमाण में आन्दोलन को उग्र रूप देने में समर्थ होगी।

१९४२ में जनता की कुचली हुई देशव्यापी-भावनाएँ अपने चरम पर पहुंच चुकी थीं। जनता की बढ़ी हुई बेचैनी, परेशानी और असंतोष सभी ने एक साथ मिल कर उग्रतम रूप धारण कर लिया था। आर्थिक कठिनाईयां बेहद बढ़ रही थीं, चीजों के मूल्य द्रुत गति से सीमोल्लंघन करते जा रहे थे। खाने की चीजों का बिलकुल ही अभाव हो गया था। प्रचलित सिक्का चांदी का लोप होकर कागजी नोटों का बाहुल्य सामने आ रहा था। हांगकांग से लेकर बर्मा तक की जापानी जीत ने अंग्रेजों के प्रति जनता के दिल में अविश्वास पैदा कर दिया था। जनता के मन में यह बात गहरा असर कर गई थी कि अंग्रेज जब अपनी ही रक्षा करने में असमर्थ हैं तो जनता की क्या रक्षा करेंगे। जनता ताड़ गई थी कि अंग्रेजों की सैनिक शक्ति कमजोर है। इतना ही नहीं बर्मा से भागी हुई जनता की करुण कहानियों ने भारतीय जनता के दिल में उनके प्रति घृणा के भाव भर ही नहीं मजबूत भी कर दिये थे। अंग्रेज सैनिकों के द्वारा रंगून की जनता की सम्पत्ति की निर्लज्जता पूर्ण लूट एवं अग्नि काण्डों ने जनता को बहुत ही उत्तेजित कर दिया था। पूर्वी बंगाल व आसाम के हवाई अड्डों व अन्य फौजी कामों के लिए जनता की जमीन की जब्ती आदि कामों ने जनता के दिल में घृणा उत्पन्न कर दी थी। अंग्रेजों के सत्य न्याय और मानवता की रक्षा के नाम पर किये गये कुकृत्यों से जनता आतंक भय और बेचैनी से आहें भर रही थी।

जनता में भय ने जोश उत्पन्न कर दिया और जोश से भरकर जनता अपने नेताओं की तरफ देखने लगी थी। निराशा, घृणा, बेचैनी अविश्वास और असंतोष दिन प्रतिदिन लोगों के दिलों में बढ़ता ही जा

रहा था। इधर सरकार उनकी भावनाओं की रत्ती भर भी परवाह न करके दमन किये ही जा रही थी। वह अपनी बर्मा की हार की झेंप को भारतीय आकांक्षाओं के दमन द्वारा छिपाना चाहती थी।

समय तथा जनता की नब्ज को ठीक पहिचानने वाले भारतीय नेताओं के दिल में इसी समय तूफान उठा और उसकी अपार शान्ति क्रान्ति की हिलोरें लेने लगी। नेताओं ने जनता की आवाज को पहचान लिया था। जनता का नारा था "अंग्रेज निश्चय हारे" नेताओं ने आवाज उठाई कि अंग्रेज निकल जाओ, जनता के और नेताओं के दिल मिल गये। दोनों ने दोनों को पहचान लिया। और नेताओं ने आन्दोलन छेड़ दिया। उस समय जनता ने जो कुछ किया वह अगले पृष्ठों में देखिये।

८ अगस्त के साथ ही एक जबरदस्त तूफान आया बहुत वेग से आगे बढ़ा और अन्त में शान्त सा हो गया। लाखों मनुष्य इसके वेग में बह गये, करोड़ों ने किसी न किसी रूप में सहयोग दिया, ५-६ माह तक, खूब क्रान्ति हुई सरकार ने सभी नेताओं व कार्य कर्त्ताओं को जेल में डाल दिया। नेताओं ने सरकार को चुनौती दी जनता पर लगाये हुये आरोपों को सिद्ध करे। नहीं तो खुली अदालतों में मुकद्दमे चलायें इस महान् आन्दोलन का नारा था, "अंग्रेजो भारत छोड़ो" और कार्य के साधन के लिए नारा था "करो या मरो" इन्हीं नारों से स्पष्ट है कि इस आन्दोलन का ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना था और उस के लिये अपना बलिदान तक दे देना था। इस आन्दोलन के नारे वास्तव में समयोचित और उपयोगी थे। इन नारों के पीछे एक महत्वपूर्ण कल्पना और भावना छिपी हुई थी, जो सदैव भारतवासियों के अन्दर एक स्फूर्ति, जागृति आशा और तड़पन बनाये रही।

९ अगस्त के बाद देश में क्रान्ति प्रज्वलित हो गई। यह क्रान्ति यदि सच कहा जाय तो, आकार, विस्तार त्याग बलिदान संगठन शक्ति उत्साह एवं ध्येय के प्रति अदम्य लगन में पिछली भारतीय क्रान्तियों से कहीं बढ़-चढ़ कर थी। इस क्रान्ति में प्राय: ६-७ हजार मनुष्य मरे १ लाख से ज्यादा जेलों में गये, पचासों गांव वीरान कर दिये गये। इस क्रान्ति में प्रय: ४ करोड़ व्यक्तियों ने खुले रूप से भाग लिया। आन्दोलन का संगठित व सामूहिक रूप दो या तीन महीने रहा। इसके बाद अकथनीय दमन हुआ। नेताओं का अभाव तो आन्दोलन का श्री गणेश से ही था। इस लिए आन्दोलन ने आगे चलकर भूमिगत रूप धारण कर लिया। क्योंकि १९४२ की क्रान्ति संगीनों की साया में प्रारम्भ हुई थी। इसमें अनेक जलियां वाले काण्ड हुये। जनता ने सरकारी सत्ताओं पर आधिपत्य करने के लिये खुले प्रयत्न किये। बिहार में लो सरकारी डाकखानों, थानों, सरकारी इमारतों पर कब्जे कर लिये गये। सरकार ने स्वयं अपनी सत्ताओं को शहरों में परिवर्तन कर लिया। इस महान क्रान्ति में विद्यार्थियों ने सर्व प्रथम लाखों की संख्या में भाग लिया। नेताओं की गिरफ्तारी के बाद उन्होंने जनता का नेतृत्व किया। मुसलमानों ने भी इस आन्दोलन में बढ़ चढ़ कर भाग लिया।

इस महान् क्रान्ति से देश को अपूर्व लाभ हुआ, जनता सरकारी शक्ति को छीनने में सिद्ध हस्त हो गई,। गोलियों की वर्षा में जनता ने उठना सीखा विदेशों में भारत की इज्जत बढ़ी। हमारे अनोखे नारों "भारत छोड़ो" ने दुनियां को विस्मय मुग्ध कर दिया, अन्त में ब्रिटिश सरकार को इस क्रान्ति के कारण हार माननी पड़ी, एक के बाद एक नेता को भी सरकार छोड़ने लगी दमन हिंसा का परित्याग करना पड़ा।

इस महान् क्रान्ति में भारतीय वीरांगनाओं ने अपूर्व, धैर्य शौर्य, वीरता, साहस और बलिदान का परिचय दिया। भारतीय महिलायें स्वातन्त्र्य संग्राम में सदा पुरुषों से आगे रही। १८५७ के प्रथम स्वातन्त्र्य

युद्ध में प्रातः स्मरणीय लक्ष्मीबाई ने जिस अद्भुत साहस और वीरता का प्रदर्शन किया था उससे कोई भी भारतीय अनभिज्ञ नहीं। आज भी झांसी की रानी की अमर कथा से भारतीय मस्तक सर्वोन्नत है। सन् १८५७ के विद्रोह के असफल हो जाने पर भी अवध की बेगम ने अंग्रेजों के सम्मुख आत्म-समर्पण कर देने में इन्कार कर दिया और अनेक प्रयत्न करने के पश्चात् भी उस वीर रमणी को बन्दी न बना सके।

उसी प्रकार १९४२ में महिलाओं ने खूब काम किया महिलाओं ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तक ही अपनी शक्तियों को सीमित नहीं रखा किन्तु क्रान्ति में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। उन्होंने कानून द्वारा रोकी गई सभाओं का सभापतित्व व जलूसों का नेतृत्व किया। भारतीय महिलाओं ने आन्दोलन की नीति का निर्माण एवं पथ-प्रदर्शन में पूर्ण रूप से भाग लिया।

आसाम प्रान्त में ताजपुर गाँव की कनकलता बरुआ नाम की एक १४ वर्ष की लड़की ने जलूस का नेतृत्व किया। उसे सरकारी अधिकारियों ने रोका पर उसने किसी की भी चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। इस पर पुलिस अफसर ने उसे गोली से मार दिया। उस बालिका का नाम भारतीय जनता के हृदय में अंकित हो गया। बम्बई की कुमारी उषा मेहता ने जनता गुप्त रेडियो का जिस कुशलता से संचालन किया था उसकी प्रशंसा सारा भारत करता है।

अगस्त आन्दोलन में भारतीय स्त्रियों को अनगिनत कष्ट सहने पड़े। आष्ट्री चिमूर बलिया तथा दूसरे स्थानों पर भारतीय महिलाओं के साथ सरकारी अमानवों ने पशुओं जैसे अत्याचार किये क्या उन्हें देशवासी कभी भूल सकते हैं ? सभी विपत्तियों के बाद भी भारतीय वीरांगनाओं ने अगस्त आन्दोलन में जिस साहस के साथ वीरता का परिचय दिया है। उसे पढकर भारत तो क्या विश्व की महिलायें भी गर्व से मस्तक ऊँचा कर सकती हैं।

असफलता के कारण

सन् १९४२ की महान् क्रान्ति एक बड़ी समुद्री लहर की भांति आई थी और चली गई किन्तु अपने पीछे इतिहास के पृष्ठों पर एक एक जबरदस्त चिन्ह अवश्य छोड़ गई। क्या कारण था कि इतनी बड़ी क्रान्ति होने पर भी असफल क्यों रह गई। इस के बहुत से कारण हैं।

१—सर्व प्रथम यह कारण था कि हमारे बहुत नेताओं का यह मत था कि हम कितनी ही कोशिश करें, परन्तु हम अंग्रेजी राज्य का पार नहीं पा सकते। इस बात पर विश्वास करने वालों का क्रान्ति को किसी प्रकार की सहायता न देना।

२—संगठन की कमजोरियां, इतने बड़े आन्दोलन को जिसका इतना बड़ा विस्तृत एवं व्यापक स्वरूप था अच्छी प्रकार संचालित करने के लिए अनुशासित संगठन न था। इस आन्दोलन का क्या स्वरूप होगा और हर एक व्यक्ति के सुपुर्द क्या काम होगा इसकी रूपरेखा तक नहीं बन पाई थी। असंगठन भी आन्दोलन के असफल होने का कारण बना।

आन्तरिक ढीलापन इस क्रान्ति में १८५७ के विद्रोह की तरह ही कुछ जिलों गांवों तथा व्यक्तियों ने भाग लिया। इसका परिणाम भी स्पष्ट ही था कि क्रान्ति की शक्ति बिखरी रही और अंग्रेजों को क्रान्ति के दबाने के लिए बहुत अवसर मिल गया। सारे देश की क्रान्ति को अंग्रेज कभी नहीं दबा सकते थे। इस के भिन्न देश के सभी वर्गों ने इसमें पूरा भाग नहीं लिया, छात्रों किसानों व महिलाओं ने तो इसमें अपने जीवन तक की बलि दे दी। परन्तु मजदूर वर्ग अपने दर्शकों के फेर में पड़कर प्रायः उदासीन ही

रहा। इन कारणों से भी पृथक् सब से महत्वपूर्ण गद्दारी हमारे देश के पूँजीपतियों ने की। जब सम्पूर्ण देश में विद्रोह की लपटें उठ रही थीं, समाचार पत्रों ने अपना प्रकाशन रोक दिया था, उस समय इन कारखानेदार पूँजीपतियों ने अपने लाभ के लिए सरकारी लम्बे लम्बे ठेकों को पाने के लिये नौकरशाही खुशामदें कीं।

उस समय इन पूंजीपतियों ने एक दिन को भी अपने कारखाने बन्द नहीं किये, अपितु आन्दोलन को सहायता देने से भी अपना मुंह मोड़ लिया था। यदि इन लोगों ने एक हफ्ता तो क्या दो दिन को भी काम बन्द कर दिया होता तो सरकार नेताओं को मुक्त करने के लिये बाध्य हो जाती।

विद्रोहियों में कुशलता का अभाव, यह स्पष्ट है कि यह हमारी स्वयं की ही कमजोरी थी। भारतीयों को क्रान्ति तो व्यापक करनी थी, ब्रिटिश सत्ता उखाड़ फंकने के इरादे थे। परन्तु इसके लिये तैयारी न थी। उस समय विद्रोहियों ने कार्य कुशलता से काम नहीं लिया। उन दिनों कई समाचार पत्र लोगों ने स्वयं बन्द कर दिये थे। कुछ सरकार ने बन्द कर दिये। हमारे समाचारों के भेजने, सन्देश पहुंचाने के कार्य बन्द हो गये। भारतीयों ने उस समय इतनी भी कुशलता का परिचय नहीं दिया कि इस कार्य की पूर्ति किस प्रकार की जाय। इन कारणों से यह आन्दोलन असफल रहा। यदि हमारे नेता थोड़े से भी सोच कर कदम उठाते तो संसार की कोई शक्ति नहीं थी, जो इस क्रान्ति को दबा सकती।

बम्बई प्रान्त—

अगस्त सन् १९४२ का विप्लव

९ अगस्त १९४२ के आन्दोलन का बम्बई प्रान्त में खूब असर रहा। ९ अगस्त को ग्वालिया मैदान बम्बई में जब सभा हो रही थी। तो पुलिस ने दो बार अश्रुगैस का प्रयोग किया। परन्तु नेताओं के कहने से जनता लेट गई जिसके कारणसे जनता पर अश्रुगैस का कोई प्रभाव नहीं हुआ। जब अश्रुगैस का कोई प्रभाव नहीं रहा तो पुलिस ने लाठियां चलानी शुरू कर दीं, और मुख्य मुख्य नेताओं को गिरफ्तार करके ले गई।

बम्बई के धुलिया जिले में नन्दखर नामक शहर में ९ अगस्त को जब विद्यार्थियों ने सुना कि देश के नेता गिरफ्तार हो चुके हैं तो उन्होंने एक छोटा सा जलूस निकाला। जलूस में ५ वर्ष की उम्र से लेकर १५ वर्ष तक के लड़के व लड़कियां थी। जलूस जिस समय बाजार में से जा रहा था, पुलिस के थानेदार को किसी ने एक ढेला मार दिया। वास्तव में बात यह थी कि थानेदार की किसी व्यक्ति से दुश्मनी थी और उस दुश्मन ने यह वक्त उचित जान भीड़ में घुसकर ढेला मार दिया। इसमें लड़कों का रत्तीभर भी हाथ नहीं था। लेकिन थानेदार आग बबूला हो गया और शक्ति के नशे में आकर उसने बच्चों पर गोलियां छोड़ने की इजाजत दे दी। बच्चे भागने लगे। एक चौदह वर्षीय बच्चे ने ओ३म् पताका हाथ में ले ली। गिरफ्तार करना तो दूर, पुलिस ने बच्चे पर गोलियां दागीं। भूल से पहली गोली बच्चे के पैर में लगी। बच्चा गिर गया। पर पुलिस उस बच्चे पर तब तक गोलियां छोड़ती रही जब तक कि बच्चे का शरीर छलनी नहीं हो गया। इस भगदड़ में जहां भी जगह मिली, बच्चे भागे। पर सिपाहियों ने भागते हुए बच्चों पर पीछे से वार किये।

इस हत्याकाण्ड में ५ बच्चे मारे गये और बारह बुरी तरह घायल हुये जिनमें एक लड़की भी थी।

पूना में पुलिस ने घर घर में घुसकर स्त्रियों को बेइज्जत किया। बच्चों और मर्दों पर घर से बाहर निकाल कर गोलियां दागीं।

गुजरान्त।प्रान्त में राक्षसो कृत्य

ज्योंही नेताओं की ६ अगस्त के सुबह गिरफ्तारी हुई त्योंही सरकार ने सभी प्रकार की सभाओं और जलूसों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। जनता तो क्रोध में थी ही इन प्रतिबन्धों के कारण आग बबूला हो गई। उसने जहाँ भी हुआ सरकार के लगाये हुए प्रतिबन्धों को तोड़ने का निश्चय किया। बदले में सरकार ने लाठी चार्ज, गोली वर्षा, अश्रु गैस का प्रयोग आरम्भ किया। यहां तक कि गोलियों की बौछार तो जनता के लिये दैनिक कार्य हो गया।

बड़ौदा से आनन्द की ओर एक विद्यार्थी दल प्रचार कार्य करने जा रहा था। यह दल ३४ छात्रों का था। आनन्द में अपना कार्य पूरा करने के बाद वह दल बड़ौदा लौटने के लिये आनन्द स्टेशन पर आना चाहता था। पर रास्ते की एक संकरी गली में रायफलों से लैस ६ कान्स्टेबिलों ने दल को रोक लिया और सभी को बैठ जाने की आज्ञा दी। उन लोगों ने पुलिस की आज्ञा मान ली और बैठ गये। उन विद्यार्थियों के मन में यही विचार आ रहे थे कि दूसरी जगहों की घटनाओं की तरह उन पर भी बैठाकर लाठीचार्ज होगा या गिरफ्तारी कर लेंगे। पर यहाँ तो नारकीय कार्य हुए जिनकी समानता हिटलर के कार्यों से भी नहीं की जा सकती। पुलिस वालों ने उन विद्यार्थियों के सीने से रायफलें अड़ाकर गोलियां दाग दीं। पांच छात्र तो वहीं भूमिसात हो गये १२ बुरी तरह घायल हुए। घायलों में से एक अस्पताल में जाकर मर गया।

इस तरह ब्रिटिश सरकार ने जनता पर खूब अत्याचार किया जिसकी करुण कहानी इतिहास गा रहा है।

बिहार प्रान्त—

बिहार प्रान्त में दमन चक्र

बिहार प्रान्त में शायद ही कोई ऐसा गाँव बचा होगा, जहाँ अगस्त आन्दोलन की लपटें न पहुँची हों। उस समय के नेताओं की गिरफ्तारी के बाद जनता में भयंकर तूफान सा उठ आया। और स्थान-स्थान पर उसका फल दीखने लगा।

इस क्षेत्र में रेलवे तथा तार आदि सब सूचना के साधन एक दम नष्ट भ्रष्ट कर दिये। २५० के लगभग स्टेशन जला दिये गये। सैंकड़ों की संख्या में तारें तोड़ी गईं। उस समय इस प्रकार ज्ञात होता था कि पटनास्थ लोगों का ही राज्य है। इसके साथ अन्य किसी का कोई सम्बन्ध नहीं। उधर ब्रिटिश सरकार को यह सह्य नहीं हुआ। इसके दमन करने के लिये पुलिस और फौज को अंकुश रहित करके दिल खोलकर अत्याचार ढाने के लिए छोड़ दिया, बिहार में पुलिस और फौज ने निरपराध जनता की सम्पत्ति लूटी, गाँव के गांव जला दिये। कई पुरुषों को धधकती अग्नि में जीवित ही जला दिया गया। उस समय जो नौकरशाही पुलिस ने अत्याचार किये उनको सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यही नहीं हमारी मां बहिनों के साथ पुलिस व फौजियों ने बलात्कार करके यहाँ तक की एक-एक के साथ तीन-तीनों ने यह दुष्कर्म किया। यहाँ के एक माननीय नेता को पकड़ के उसके मुँह में एक मेहतर द्वारा पेशाब कराया गया। इस समय छात्रवर्ग भी पीछे नहीं रहा उसने इसमें दिल खोलकर भाग लिया। लगभग सारे प्रान्त के स्कूल व कालेज बन्द थे। एक दिन विद्यार्थी वर्ग जुलूस निकाल रहा था। जब जुलूस विधान सभा के भवन से

कुछ दूर था, तब सामने फौज दीवार के रूप में खड़ी हो गई। यह फौज संगीन व बन्दूकों से सुसज्जित थी। दूसरी ओर कुछ केसरी की भांति जनता भारत छोड़ो के नारों से गगनभेदी आवाज करती हुई बढ़ी आ रही थी। फौज के अधिकारी मि० आर्चर ने पूछा तुम आखिर क्या चाहते हो। एक छात्र ने सीना तानकर कहा—हम विधान सभा भवन पर पताका लहरायेंगे। मि० आर्चर ने उत्तर दिया, ऐसा न होगा तुम लौट जाओ। इस पर दल में से एक छात्र ने उत्तर दिया। हम तो झंडा फहराकर ही लौट सकेंगे। आर्चर ने कड़ककर जवाब दिया, देखें तुम में से कौन झंडा फहराना चाहता है। जरा आगे आओ। इतना सुनना था कि ११ छात्र दल में से बाहर निकल आये। एक छोटे बच्चे को तनक रखड़े देख, मि० आर्चर ने कहा, झंडा फहराने से पहले अपना सीना खोल लो। इतना कहना था कि वीर अभिमन्यु ने अपना सीना खोल आगे बढ़ा दिया। मि० आर्चर ने गोली चलाने की आज्ञा दे दी फिर क्या था ग्यारह के ग्यारह वीर भूमिसात् हो गये। इसके बाद पुलिस ने गोलियों की बौछार लगा दी। जनता ने बुरी तरह घायल होकर भी पीछे हटने का नाम न लिया।

इतने में गुम्मद पर एक वीर छात्र भारत छोड़ो का नारा लगाता हुआ दिखाई दिया। विशाल जलूस उसी की ओर चल पड़ा। और विधान सभा भवन पर राष्ट्रीय पताका लहरा दी, और अपने ११ अमर शहीदों को सलामी देकर जनता लौट गई।

११ अगस्त को गण्य मान्य नागरिक श्री रामसिंह की हत्या नृशंसों ने बड़ी कठोरता से की। जिसके आगे पशु हत्या भी व्यर्थ हो जाती है। लोहे के नोकदार खूंटे पर गुदा द्वार के सहारे बिठाकर तीन टामियों ने उन्हें दबाया तब तक दबाते गये जब तक कि खूंटा शिर का भेदन करके बाहर न निकल गया।

इस प्रकार के भयंकर अत्याचारों से बिहार प्रान्त की क्रान्ति का दमन ब्रिटिश सरकार ने अपनी सारी शक्ति लगाकर किया। महान् अत्याचार किये। जिन अत्याचारों को देख कर आज भी खून गर्म हो जाता है। परन्तु फिर भी सरकार क्रान्ति को न दबा सकी। बिहार प्रान्त के अनेक वीरों ने भारत भूमि के लिए बलिदान दिये।

उड़ीसा प्रान्त—

उड़ीसा की क्रान्ति तथा बलिदान

अगस्त क्रान्ति के यज्ञ में उड़ीसा का बलिदान भी प्रमुख है। ९ अगस्त ४२ के बाद वहां के बालासोर जिले में पुलिस द्वारा भीषण गोलीकांड हुए जिसमें ४२ व्यक्ति मृत्यु के घाट उतारे गये। २७० व्यक्ति घायल हुये, कई गांवों पर सामूहिक जुर्माना भी किया गया। जो उन गांव वालों से जबरदस्ती लिया गया, यहां तक कि महिलाओं को अपने आभूषण देने के लिये विवश किया, पुलिस ने खुल कर नृशंसता का नाच किया।

इस प्रान्त में स्त्रियों को तथा बच्चों को नंगा करके वृक्षों पर लटका कर, कोड़े से मार की गई। जिन कोड़ों की संख्या ४ से ४६ तक थी। इस प्रकार उड़ीसा में ब्रिटिश सरकार ने खूब अत्याचार किये।

आंध्र प्रान्त—

आन्ध्र की क्रान्ति

आन्ध्र के लोग स्वभाव से स्वतन्त्रताप्रिय और देशभक्त हैं। अगस्त ४२ में आम जनता ने दिल खोल कर भाग लिया। साथ में विद्यार्थी वर्ग भी किसी से पीछे नहीं था। विद्यार्थी वर्ग ने भी अपने शिर को हथेली पर रखकर इस आन्दोलन में भाग लिया। पश्चिमी गोदावरी जिले में इसी सिलसिले में ४५

नजरबन्द ३१० को कड़ी सजाएं और ४० के लगभग बेंत के शिकार बनाये गये। एक पर ४६ तक बेंतें लगाईं। इनमें से एक हरिजन छात्र बेतों की मार से संसार से चल बसा। ८६५०) रुपया व्यक्तिगत ३६४५००) रुपये सामूहिक जुर्माना लिया गया। सारे आन्ध्र प्रान्त में १३० व्यक्ति नजरबन्द १७०० को कड़ी सजायें २१ मौत के घाट उतार दिये गये। ८ लाख के ऊपर जुर्माना हुआ १५ हजार तारें काटीं गईं, १८ रेलवे स्टेशन फूंके गये। ७ रेलवे लाईन उखाड़ी गईं। १० जगह डाकखाने तथा थाने जलाये गये। इस प्रकार आंध्र ने बलिदान दिया।

महाराष्ट्र प्रान्त—

महाराष्ट्र का भारत के इतिहास में निराला स्थान है। यहाँ के लोग हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान होते हैं। यहां जनता दो भागों में बँटी हुई है। एक-ब्राह्मण व दूसरे अब्राह्मण। सरकार के सारे बड़े-बड़े पदों पर ब्राह्मण पार्टी का राज था। परन्तु उस समय अब्राह्मण पार्टी में जागृति पाई गई। अतः इसने सबसे अधिक बढ़ चढ़कर भाग लिया। महाराष्ट्र के सभी जिलों ने ४२ की क्रान्ति में भाग लिया था। सरकार ने अपनी सारी शक्ति उठी हुई इस क्रान्ति को दबाने में लगा दी। परन्तु वह सब विफल गई, सरकार के धक्केशाही का फल यह हुआ कि शहर वाले अधिक भड़क उठे। हड़ताल पर हड़ताल होने लगी। इन्हीं के साथ स्कूल कालेज भी बन्द हो गये। छात्रवर्ग ने भी इसमें सहयोग दिया। पूने में एक बार छात्रों ने जुलूस निकाला इस पर पुलिस ने गोलियों की वर्षा की इस पर जनता इधर उधर होने लगी। बची हुई जनता पर लाठी चार्ज किया। घायल आदमियों को डाक्टर ने संभालना चाहा परन्तु पुलिस ने ऐसा नहीं करने दिया, इस कारण हजारों की संख्या में मनुष्य मृत्यु के मुख में चल दिये।

कुछ दिन बाद बम्बकांड में ५ गोरों की हत्या हो गई। समीप के गोली बारूद के गोदाम में आग लग गई। जिसके कारण १ करोड़ रुपये का नुक्सान हुआ। इसके केस में २५ आदमी पकड़े गये। इसी प्रकार पश्चिमी और पूर्वी खान देश में भी आन्दोलन उग्र रूप में था। १४-१५ अगस्त को नन्दूखार में विद्यार्थियों का एक जुलूस शांतिपूर्वक चल रहा था। किन्तु पुलिस ने अकारण ही उन पर बेंत वर्षा आरम्भ कर दी। इस पर छात्रवर्ग तितर बितर हो गया। शेष बचे हुओं पर थानेदार ने गोली चलवाई। उत्तेजना पाकर थानेदार छात्रों की ओर लपका, इतने में एक वीर बालक अपनी छाती तानकर आगे खड़ा हुआ और कहा कि गोली मार दो। उस पर उस नीच थानेदार ने गोली मार दी, परन्तु उस बार बच गया। इस पर उस वीर बालक ने पुनः अभिमानपूर्वक फिर गोली मारने को कहा इस पर फौजी सिपाहियों ने उसे घेर कर गोलियों से भून दिया। जिससे वह वीरगति को प्राप्त हुआ। इसके साथ चार और मारे गये और १७ घायल हुए। घायलों को डाक्टरी भी नहीं करने दी। उसी समय एक वकील गांधी टोपी पहन कर जा रहा था। उसने इस दशा पर सहानुभूति दिखाई तब उस अधिकारी ने उसे। तांगे से उतार कर कोड़ों से पीटा। इस प्रकार की क्रांति नासिक, अहमदनगर आदि में भी हुई, परन्तु इस प्रान्त में यह विशेषता थी कि जहां इन्होंने अन्य प्रान्तों की भांति तोड़ फोड़ किया वहाँ इन्होंने अदालत तक को भी फूंक दिया।

कर्नाटक में एक वीर बालक की कथा बड़ी वीरता पूर्ण है। हुगली में गोलियों की बौछार से नरेन्द्र नामक एक छोटा सा बालक मृत्यु के मुख में था उससे पूछा गया कि तुम क्या चाहते हो ? तब उस वीर बालक ने अपनी हाथ की मुट्ठी बाँधकर बड़े जोरदार शब्दों में कहा कि मैं स्वराज्य चाहता हूं और कुछ

नहीं" यह कहकर वह संसार से चल बसा। इसकी अर्थी का जलूस १५ हजार के जन समूह ने बड़ी शान से निकाला। सारे महाराष्ट्र प्रांत में ७४४६ की गिरफ्तारी ३२० नजरबन्द किये। और फरारी क्रांतिकारियों को पकड़ने के लिये लाखों रुपया खर्च किया गया। इस प्रकार महाराष्ट्र ने देश के लिये बलिदान दिये।

बंगाल प्रान्त

बंगाल प्रान्त को राष्ट्रियता का पिता तथा क्रांतिकारी षड्यन्त्रों का घर माना जाता है। यहाँ के मनुष्य कुशाग्र बुद्धि तथा भावुक हैं। इस प्रान्त ने अन्य प्रान्तों के समान हजारों नररत्न व देशभक्त उत्पन्न किये। यहाँ वीर सेनानी सुभाषचन्द्र बोस, खुदीराम बोस, शरत्चन्द्र, डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी आदि महान् आत्माओं को इसी पवित्र भूमि ने जन्म दिया। सन् ४२ में अन्य प्रान्तों की भाँति इस प्रान्त में भी ब्रिटिश सरकार ने काले कृत्य निम्न प्रकार किये।

२२ स्थानों पर २५ बार गोली चलाई। ३४ आदमी मृत्यु के मुख में पहुंचा दिये। १९९ आदमी सख्त घायल हुये, १४२ को साधारण चोटें आईं। ६३ स्त्रियों का नीच पुलिसियों ने बड़ी बेरहमी में सतीत्व लूटा। ३१ स्त्रियों का बलात्कार से जीवन बेकार कर दिया। १५० स्त्रियों को अन्य उपायों से तङ्ग किया गया। १२४ स्त्रियों में पेट्रोल छिड़क कर जला दिया गया। जिस से १३९५००) की सम्पत्ति नष्ट हो गई। १४०० घर लूटे गये। जिस के फलस्वरूप २११०८७१० की हानि हो गई। ६० परिवारों का सामान कुर्क कर लिया गया। १९ संस्थाओं को गैर कानून करार कर दिया। इस प्रान्त में स्त्रियों के साथ जो अत्याचार किये गये, उनके दो एक उदाहरण दिये जाते हैं।

"मैं" श्रीमती सिन्धू बाल मैती अधरचन्द मैती की स्त्री हूं और चट्टीपुर गांव मदियादल थाने जिला मिदनापुर की रहने वाली हूं, मेरी आयु १९ वर्ष को है, मैं एक बच्चे की माँ हूं, १-९-४३ को ९॥ बजे सुबह निलनि राहा कुछ फौजी सिपाहियों को लेकर मेरे मकान पर आया, कुछ सिपाही मेरे पति को जबरदस्ती पकड़ कर ले गये। इस प्रकार मैं अकेली रह गई। निलनि राहा मेरे पास आया और उसने जबरदस्ती मेरे साथ बलात्कार किया। मैं बेहोश हो गई. यह मेरे साथ दूसरा बलात्कार था।

इससे पहले २७-१०-४२ को बलात्कार किया गया था। दूसरे बलात्कार के बाद जो जख्म आये उससे आहत होकर वह ९ दिन बाद मर गई।

इस प्रकार की घटनाओं में औरतों के गाल काटने, उनके कपड़े उतार कर नंगा करने, उनकी छातियां काटना तथा निर्दयता के साथ उनको पीटने तथा घायल अवस्था में उन्हें घसीटने की भी घटनाएँ शामिल हैं।

पुरुषों को भी हाथी के पैरों से बांध-बांध कर घसीटा गया। अमानुषिक अत्याचार किये। इस प्रकार बंगाल क्रान्ति को दबाने का ब्रिटिश सरकार ने पूर्ण यत्न किया।

आसाम प्रान्त—

आसाम में क्रान्ति की लहर

सिपाही विद्रोह में ब्रिटिश हकूमत को जड़ से उखाड़ देने की चेष्टा में सहयोग देने वाले और अन्त में उस अपराध के लिये हंसते-हंसते फांसी की रस्सी को स्वयं अपने गले में डाल लेने मनीराम, दीवान का आसाम भी सन् ४२ की क्रान्ति में चुपचाप न बैठा रहा। यहां के निवासियों ने खूब दिल खोलकर

क्रान्ति की, इस पर सरकार ने इसको कुचलने के लिये भी पुलिस को खुल्लमखुल्ला खेलने का अवसर दिया। वहां पुलिस ने निहत्थी जनता पर तरह-तरह के जुल्म ढाये। कनकलता और तुलेश्वरी जैसी नौजवान लड़कियों की हत्या के सिवाय २४ फरवरी जोहर जेल में जहां राजबन्दी अपने पिंजरे में बन्द थे। लाटी चार्ज किया गया, जिस के फलस्वरूप में १८० जेल बन्दी बुरी तरह घायल हुये।

इस प्रकार अत्याचार और बरबरता की चरम सीमा थी, इसी प्रान्त में मिरी जाति में कमला मिरी का नाम भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। भारत की आजादी और अपने सिद्धान्त के निमित्त अपने प्राण हंसते-हंसते बलि वेदि पर चढ़ा दिये। आसाम प्रान्त में महिलाओं ने जो क्रान्ति की, वह चिर स्मरणीय है।

बलिया में क्रान्ति तथा दमन

इस प्रान्त में अन्य प्रान्तों की तरह क्रान्ति की ज्वालायें भड़क उठी थीं। यहाँ पर नौकरशाही पुलिस ने जो अत्याचार किये उसके उदाहरण अन्य प्रान्तों में नहीं मिलते।

१७ अगस्त को जनता का समूह कोतवाली की ओर राष्ट्रिय पताका फहराने को गया। परन्तु वहां के चालाक अधिकारियों ने गांधी कैम्प खोलकर उनका स्वागत किया, और वहां राष्ट्रिय पताका फहराने के बाद जब जनता ने अपने छिने हुए हथियार मांगे। तब अधिकारियों ने कहा कल मिल जायेंगे। तब १८ अगस्त को पच्चीस, तीस हजार का जन समूह अपने छिने हुए शस्त्र लाने के लिये थाने की ओर गया। परन्तु थानेदार ने पूर्व ही इसका प्रबन्ध कर लिया था, कुछ एक सशस्त्र राजमार्ग के वृक्षों पर चढ़ा दिए, कुछ सशस्त्र पुलिसिये छतों पर लिटा दिये। जब जन-समूह अन्दर आ गया तब कम्पाउन्ड का दरवाजा बन्द कर दिया, और ऊपर से गोली वर्षा आरम्भ कर दी, जनसमूह वीरतापूर्वक गोली वर्षा सहता रहा। किवाड़ों के पास एक नोकदार घन था। उसका बोलना ही एक इशारा था।

इसी मध्य एक राष्ट्रिय पताका को गिराते हुए देखकर एक जवान लड़का कौशल्याकुमार, इस बदमाशी को सहन न करता हुआ झटपट गोली संगीनों की सरसराहट में चतुदर्शीय बालक थाने में प्रवेश कर गया और अपनी छाती के बल से झंडे को थाम लिया। छाती के मध्य में पताका का बांस था। उसके खुले हुए वक्षस्थल पर गोली लग गई। उसके फलस्वरूप उस वीर बालक के प्राण पखेरू झंडा ऊँचा रहे हमारा" कहते हुये उड़ गये। परन्तु आश्चर्य है कि प्राण न रहते हुये भी उस किशोर का मृतक शरीर आध घंटे तक पकड़े रहा, तब तक निर्दय हत्यारों ने उसका शरीर छलनी-छलनी कर डाला। धन्य उस वीर को जब तक गोली से वह ढेर नहीं हो गया, तब तक झंडा थामे रहा।

इसी प्रान्त में निरपराधी मनुष्यों को किस प्रकार पीटा गया, उसका दृश्य इस घटना से पता लगता है। इलाहाबाद के मैदान में ५॥बजे सात बन्दियों को बेंत मारने की आज्ञा दे दी गई। जब बेंतें लगने लगीं उस समय सिविल सर्जन उपस्थित थे। बेंत कपड़ा पहना कर लगीं थीं, मि० पियर्स, ने कहा कि ऐसे बेतें नहीं लगा करते, कपड़े उतार कर ७-७ बेंतें फिर से लगाओ, बन्दियों के जनेऊ तक उतार लिये गये। एक-एक लंगोट पहनने को दी गई। फिर जोर-जोर से बेंतें लगने लगीं, सातों बन्दी बुरी तरह छटपटा रहे थे। सारा शरीर लहूलुहान हो गया था, सब के सब मूर्छित दशा में गिर पड़े।

बाबू शमशेर बहादुरसिंह अपने गांव से घोड़े पर चढ़ कर बलिया की ओर आ रहे थे। पचखोरा के पास उन्हें एक फौजी लारी और एक कार मिली, कार पर मि० पियर्स मि० एन० डी० कक्कर और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के इंजीनियर मि० कृष्णानन्द सिन्हा थे। इन्हें देख कर कार खड़ी कर दी गई, और तब

मि० एन० डि० कक्कर ने कहा कि इनके भाई, बाबा राधागोविन्दसिंह बड़े भारी क्रान्तिकारी हैं, उन्होंने ही बाँसडीह तहसील का खजाना लुटवाया है, फिर क्या था उन्हें पकड़कर मोटर में डाला गया और घोड़े को मार कर भगा दिया। ठा० शमशेरसिंह को जिले भर के पुलिस अफसरों द्वारा बलिया के अधिकारियों के सामने जूतों, थपेड़ों और बेंतों से खूब पीटा गया। स्वयं मि० मार्श-स्मिथ बूट पहन् कर, कभी तो बूट की ठोकर से और कभी घुटने से मार कर सिपाहियों को सिखाते थे कि बागियों को ऐसे मारा जाता है। ठाकुर साहब खरौने के ताल्लुकेदार थे। इससे दो दिन पहले पुलिस के कर्मचारी उन्हें सलामी देते थे। परन्तु आज किसी में हिम्मत नहीं थी कि उन्हें बचावें।

२४ अगस्त को सुखपुरा में फौज आई इसी गांव के पास ४-५ दिन पहले छीनी जा चुकी थीं। लारी की घरघराहट सुनते ही सब लोग गाँव छोड़ कर भाग निकले। घरों में औरतें, बच्चे और बूढ़े बच गये थे। फौज ने आते ही गोली बरसानी शुरू कर दी. सुखपुरा के महन्त सरकार के अंध भक्त थे। उसने १००००) लड़ाई का चन्दा दिया था। उसका मकान ऊँचा था, फौज वाले उस पर चढ़ गये। बूढ़े महन्त भी प्राण-रक्षा के लोभ से पीछे की ओर से ४० फीट नीचे कूद पड़े। बच तो गये परन्तु एक टाँग टूट गई। गांव के बाहिर क्रान्तिकारियों के नेता चंडीप्रसाद जा रहे थे। फौज वालों ने उन्हें रोका। किसी ने बतला दिया कि ये क्रान्तिकारियों के नेता हैं। उन्हें गोली मार दी गई। बा० चंडीप्रसाद बलिया लाये गये। वहां अस्पताल में मृत्यु को प्राप्त हुये।

बलिया में ब्रिटिश सरकार ने महान् अत्याचार किये, जिन अत्याचारों की गिनती करनी बड़ी कठिन है, उनमें से कुछ आंकड़े यहां दिये जाते हैं। १००० गिरफ्तारियां हुईं, ३० गाँव भस्मसात् कर दिये गये। १७ जगह सरकार ने गोलीं कांड करवाये। २१५ घर खण्डशः कर दिये गये। १०० से अधिक घर जला दिये गये। १२०००००) रुपया सामूहिक जुर्माना किया। इस प्रकार बलिया में खूब अत्याचार किए।

जहां ब्रिटिश सरकार ने अत्याचार करने में कमी नहीं रखी वहां जनता भी क्रान्ति करने में पीछे नहीं रही। जनता ने थाने आदि जलाये। रेलवे लाईन तोड़ डालीं, स्टेशन जला दिये। सर्वत्र जनता का राज्य हो गया। बलिया की जनता ने भी अपनी स्वतन्त्र सरकार स्थापित की, बलिया के नाहर श्री वीर चित्त पांडेय उस समय के स्वतन्त्र शासक नियुक्त हुये। इस प्रकार संयुक्त प्रान्त में भी खूब क्रान्तियां हुईं।

सन् ४२ का शहीद रमेश

(श्री ब्र० मनुदेव)

अत्याचार करने वाले से अत्याचार सहने वाला अधिक पापी होता है—महर्षि दयानन्द के इस आदर्श वाक्य को मानकर निर्भीकता पूर्वक अपने पथ पर चलने वाले वीर युवक रामसहाय ने फाल्गुन कृष्णा सप्तमी सं० १९६७ को विजयगढ़ (अलीगढ़) के आर्य परिवार में श्री ला० बैनीराम के घर जन्म लिया। घराना धन सम्पन्न होने के कारण रामसहाय का बाल्यकाल बड़े लाड़-प्यार से बीता। रमेश का पूर्व नाम रामसहाय था। ला० बैनीराम के रमेश ही एक पुत्र था। इसलिए शिक्षा प्राप्ति के लिये प्रेम-वश रमेश को दूर न भेज सके। इस कस्बे के मिडिल स्कूल में मिडिल तक ही रमेश ने शिक्षा प्राप्त की। मिडिल शिक्षा प्राप्त करके घर पर ही अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करने लगे। अंग्रेजी के साथ पं० गुरुदत्त जी शर्मा से धार्मिक शिक्षा भी लेने लगे। पिता जी के साथ संध्या, हवन भी किया करते। गुरुकुल वृन्दावन आदि के उत्सवों में जाने से उनकी प्रवृत्ति आर्यसमाज की ओर बढ़ती गई।

नगरों में गन्दे छन्दों का प्रचार था। अतः रमेश ने बाल्यकाल में ही कुछ छन्द महर्षि दयानन्द तथा आर्य सिद्धान्तों के सम्बन्ध में रचकर छोटी पुस्तिका में बद्ध कर दिये। यह लग्न धीरे-धीरे बढ़ती गई और २१ वर्ष की आयु में युक्त प्रान्त की प्रमुख आर्यसमाज विजयगढ़ के मन्त्री चुने गये। आपने अपने मन्त्रित्व काल में जो उत्सव कराये उनका प्रबन्ध अति प्रशंसनीय था।

नमक सत्याग्रह शुरू हो चुका था। रमेश बिना घर पर सूचना दिये, दूकान पर एक पत्र रख कर ठा० टोडरसिंह के जत्थे में एक मित्र को और साथ लेकर सम्मिलित हो गये। यह जत्था पैदल आगरे का जा रहा था। जब पिता जी को इस बात का पता चला तभी पिताजी ने कार द्वारा पीछा किया और दोनों को पकड़ लिया, साथी बातों में आकर लौटने के लिग तैयार हो गया, परन्तु रमेश नहीं माना अन्ततो गत्वा पिता जी ने इस शर्त पर रमेश को तैयार किया कि चलो तुम्हें घर से आशीर्वाद के साथ सत्याग्रह में भेजेंगे। रमेश लौट आया। परन्तु घर वालों की अन्य इच्छा देखकर रात्रि के तीन बजे घर से चुपचाप चल दिये और श्रीकृष्णदत्त पालीवाल के जत्थे में शामिल हो गये जो उसी दिन सत्याग्रह करने वाला था। परन्तु रमेश को छोटा जानकर जत्थे में सम्मिलित नहीं किया, किन्तु अलीगढ़ जिले में प्रचार कार्य करने के लिये उनको रख लिया। रमेश ने यहां खूब प्रचार किया।

विदेशी वस्त्र-बायकाट-आन्दोलन में रमेश ने न केवल विजयगढ़ में ही विदेशी वस्त्र की होली जलाई अपितु अलीगढ़ तथा हाथरस जाकर अनेक दुकानों के आगे लेट लेट कर विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर सीलें लगवाई।

सन् १९३१ के आन्दोलन के पश्चात् कांग्रेस और तिरंगा झंडा अवैधानिक घोषित कर दिया गया था। जनता को भयभीत करने के लिए पुलिस का, सर्वतोमुखी प्रयत्न पूरे जोर पर था। उस समय विजय गढ़ में रमेश ने राष्ट्रिय झंडा हाथ में लेकर, "विश्व विजयी तिरंगा प्यारा झंडा ऊँचा रहे हमारा" का नाद करते हुये सारे नगर में जलूस निकाला। दूसरे दिन प्रातः ही जब कि सोकर उठे भी नहीं थे कि

पुलिस वारंट लेकर रमेश के घर आ गई और रमेश को लेकर पुलिस चौकी पहुँच गई। पुलिस चौकी पर इनके मित्र गणपतिचन्द्र केला ने तथा उनके अनुज श्री महेशचन्द्र ने नारों द्वारा स्वागत किया तथा फूल मालायें पहनाईं। पुलिस को यह सब भी अवैधानिक लगा और साथ में इनको भी गिरफ्तार कर लिया गया। अलीगढ़ अदालत में केस चला और महेशचन्द्र को आगाह करके बरी करने के पश्चात् दोनों मित्रों को तीन-तीन मास का कठोर कैद का दंड मिला और अलीगढ़ जेल की काल कोठरी में दोनों मित्र बन्द कर दिये गये। कुछ दिनों के पश्चात् इनकी बदली लखनऊ सैंट्रल जेल में हो गई। जेल में इनसे चक्की चलवाई जाती थी। लखनऊ मे इनकी बदली फैजाबाद हो गई। फैजाबाद जेल से जब रमेश मुक्त हुआ तब स्वर्ण-समान तपकर चमका।

जेल से छूटकर आर्यसमाज क्षेत्र में इस समय कार्य की आवश्यकता अनुभव कर रमेश विजयगढ़ में आ जमा और समाज का कार्य करने लगा। थोड़े ही दिनों के बाद प्रान्तीय सभा के निरीक्षकों द्वारा समाज का निरीक्षण हुआ और उसने अपने पत्र "आर्य मित्र" में विजयगढ़ समाज को प्रान्त में अग्रणी ठहराया। इन्हीं दिनों छोटी बहन श्री विद्यावती का विवाहोत्सव आ गया। रमेश ने सोचा ऐसे अवसर पर आर्यसमाज का भी प्रचार होना चाहिये। अतः विवाहोत्सव के साथ समाज के आर्योत्सव का भी आयोजन हुआ। जिसमें प० धुरेन्द्रजी शास्त्री, स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती आदि विद्वानों को आमन्त्रित किया गया। विद्वान् महानुभाव रमेश की कार्य कुशलता एवं लग्न को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुये।

रमेश अपने जिले में पत्र प्रकाशन की कमी को देखकर पत्र कला की ओर झुका और अपने ताऊ शोरीलाल जी के प्रेम के वशीभूत होकर दिल्ली को चल दिया। सन् १९३४ में दिल्ली में अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हो रहा था। रमेश ने उसके लिए अपनी सेवाएँ बिना कुछ लिये समर्पित कर दीं और वहां इस योग्यता से कार्य किया कि दिल्ली के अनेक प्रमुख व्यक्ति अनायास ही उसकी ओर आकृष्ट हो गये। कुछ समय पश्चात् ही रमेश "वीर अर्जुन" का सहकारी सम्पादक चुन लिया गया।

दैनिक और साप्ताहिक वीर अर्जुन का कार्य करते हुये भी रमेश केवल उसी में फँसा न रह सका और इस कार्य को सुचारु रूप से चलाते हुए भी सार्वजनिक और राजनीतिक कार्यों में भी भाग लेता रहा। रमेश ने सुभाषचन्द्र बोस, अब्दुल कलाम आजाद आदि की जीवनी लिखकर प्रकाशित की। उनकी लेखन शैली का पता केवल इसी से लग जाता है कि शुभाषचन्द्र बोस की जीवनी के ६ मास में दो संस्करण निकल गये।

इसी बीच निजाम हैदराबाद में नागरिक स्वतन्त्रता का हनन कर हिन्दुओं पर अत्याचार होने से सारे भारत में हलचल मची। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रयत्न करने पर भी जब रियासत में किसी तरह की सुविधायें नहीं मिलीं तब अन्त में सत्याग्रह की घोषणा कर दी गई। सत्याग्रह संग्राम प्रारम्भ होते ही जहाँ देश के हजारों वीरों ने अपने को सत्याग्रह के लिए प्रस्तुत किया, वहां रमेश भी किसी से पीछे नहीं रहा। सत्याग्रह समिति जहां उपयोगिता समझती वहीं पर रमेश को लगा देती थी। रमेश के आग्रह पर भी उसे सत्याग्रह न करने दिया और उसे प्रचार कार्य के लिए दौरे पर भेज दिया गया। अनेक स्थानों पर कार्य करते हुये रमेश अपने एक मित्र के साथ मनमाड़ सत्याग्रह कैम्प पर पहुंचा वहां कुछ जिलों और शहरों में सत्याग्रह स्थानों का दृश्य देखकर उसे वास्तविक स्थिति का पता लगा। और उसी के अनुसार लौट कर उत्तर भारत में प्रचार कार्य किया। अनेक सत्याग्रहियों और धन से

रमेश ने जो सहायता पहुँचाई उसके लिए रक्षा समिति के अधिकारियों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की। रमेश भी जब तक सत्याग्रह चलता रहा चुपचाप न बैठा।

सन् १६३६ में यूरोपीय महायुद्ध का श्री गणेश हुआ। भारत से बिना पूछे ही उसकी ओर से युद्ध घोषणा कर दी गई और बलात् जनता से युद्ध सहयोग के नाम से चन्दा प्राप्त किया जाने लगा। भारतीय नेताओं की चेतावनी और वार टेक्स के विरोध का जब कोई समुचित उत्तर न मिला तो तब इसके विरुद्ध महात्मा गांधी ने सत्याग्रह छेड़ दिया। सत्याग्रह के लिए प्रत्येक को आज्ञा-पत्र लेना पड़ता था। रमेश ने भी सत्याग्रह के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा और उसे स्वीकृति मिल गई। २३ फरवरी को विजयगढ़ में सत्याग्रह किया और पुलिस ने वारंट दिखा कर गिरफ्तार कर लिया। अलीगढ़ में रमेश का केस चला और अन्यायी सरकार ने १८ मास की सख्त कैद और १००) जुर्माना किया।

फतहगढ़ सेंट्रल जेल में रहते हुए रमेश ने "बन्दी" नामक हस्तलिखित पाक्षिक पत्र निकाला जिस के प्रकाशन से अधिकारी विक्षुब्ध हो उठे। और रमेश की बदली बाराबंकी नाम की जेल में कर दी, वहाँ पर भोजन की व्यवस्था ठीक न होने से तीन चार दिन तक उपवास करना पड़ा। फिर भी रमेश जेल में धार्मिक प्रचार करते रहे। वहां से रमेश लखनऊ कैम्प जेल में भेज दिये गये। वहां पर भी नई जेल होने से भोजन के लिए उबले गेहूँ दिये जाते थे। अतः बन्दियों ने भूख हड़ताल प्रारम्भ कर दी जिसके कारण से अधिकारी बौखला उठे। उधर बन्दियों ने नारे लगाने प्रारम्भ कर दिये। परिणामतः लाठी चार्ज हुआ, रमेश को भी कई स्थान पर चोटें लगीं।

इन्हीं दिनों सरकार कुछ झुकी और कांग्रेस से समझौता हो गया। फलस्वरूप रमेश भी चौदह मास का कठोर कारावास भुगतकर सभी साथियों के साथ मुक्त कर दिये गये। लौटकर आए तो विजयगढ़ दिल्ली आदि सभी स्थानों पर उनका स्वागत किया गया।

कर्तव्य भी कभी कभी विकट समस्या उत्पन्न कर देता है। विजयगढ़ के टाउन एरिया चुनावों में रमेश जी के सम्मुख एक ऐसा ही प्रश्न आ उपस्थित हुआ। चुनाव में एक ओर उनके गुरु थे दूसरी ओर अनन्य मित्र ? आपस में समझौता कराने के लिए अनेक चेष्टाएँ कीं किन्तु सब व्यर्थ। अन्त में चुनाव वोटिंग प्रारम्भ हुआ। रमेश जी के गुरु की ओर से सभी परिवार जन आन्दोलन कर रहे थे। और रमेश भी उन्हीं की ओर से पूर्ण उत्साह पूर्वक कर्त्तव्य पालन में संलग्न थे। वोट जब खुले तो सब के सब यह देखकर आश्चर्य चकित रह गये कि रमेश का वोट अपने मित्र के लिए था। पिता जी एवं गुरु जी बिगड़े। नाराजगी का पत्र लिखा गया, किन्तु रमेश ने शरीर पर गुरु का और मन पर मित्र का अधिकार बताकर अपना आदर्श उपस्थित किया।

आठ अगस्त १६४२ के "अंग्रेजों, भारत छोड़ो" के आन्दोलन में भी रमेश ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। सब जगह नेताओं की गिरफ्तारी हो रही थी। आन्दोलन के कार्य में भाग लेने से रमेश के भी वारण्ट हो गये। वारण्ट होते ही रमेश पूर्ण रूप से आन्दोलन का कार्य करने के लिए "वीर अर्जुन" के सम्पादक पद से भी त्याग पत्र देकर अपने जिले में कार्य करने चले गये। वहां भी पुलिस रमेश की खोज कर रही थी। रमेश को पाकर जिले में नवजीवन की लहर दौड़ गई।

१५ जून ४३ को रमेश विजयगढ़ में थे। बरसात हो रही थी। ऐसे समय में पुलिस इनके घर पर आ धमकी। रमेश उस समय भोजन कर रहा था। वृद्धा मां बीमार थी। इसी समय फाटक पर आवाज

लगी। मां ने कहा कि यहां कोई नहीं है, पुलिस फाटक तोड़ने का प्रयास करने लगी। पिता जी ने आकर फाटक खोला तो थानेदार आपे से बाहर होकर गालियां देने लगा। भला कौन सुपूत अपने आगे पिता का अपमान सह सकता है। रमेश उछलकर थानेदार की गर्दन पर सवार हो गये और क्षमा मांगने पर छोड़ा।

मकान की तलाशी लेकर रमेश को गिरफ्तार कर लिया। यह समाचार सारे नगर में फैल गया। हजारों की भीड़ में रमेश जी पुलिस के साथ चल दिये। जनता ने शानदार विदाई दी। १५ जून को रमेश थाने में रखे गये। १६ तारीख भी थाने में बीती। १७ जून को कमरे में भेज दिये गये। १७ जून को जेलर ने कमरे में रमेश को बुलाकर कहा कि तुम पर कई डकैती केस चलाये जायेंगे। यदि छुटकारा चाहते हो तो मुखबिर बन जाओ। परन्तु रमेश ने अपने को निर्दोष बताकर मुखबिर बनने से इन्कार कर दिया। शाम को दो पुलिस अफसर जेल पहुंचे और रमेश को अलग कमरे में बुलाया।

१६ जून प्रातः जब पिता जी सर्किल इन्स्पेक्टर को पत्र लिख रहे थे। तभी जेल का वार्डर उनके पिता के पास आया, पूछने पर कहा कि रमेशचन्द्र का शव ले जाइये। रात कुएँ में गिरकर उसने आत्म हत्या करली। यह सुनकर लोगों ने कहा ऐसा नहीं हो सकता उनको मार डाला होगा। तभी सारा बाजार बन्द हो गया। रमेश के पिता अलीगढ़ पहुंचे, वहां पहुँच कर बहुत कोशिश करने पर भी अधिकारियों की बहाने बाजी के कारण रात को शव मिला। वहां से १७ मील दूर ताँगे में शव को विजयगढ़ लाये। कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों द्वारा शव का परीक्षण किया गया। गले पर छोटे फलकों की माला, दोनों बाहों पर बड़े-बड़े फलक, पैरों पर खिचरने के निशान और घाव सिर पर छोटे बड़े घाव, और सूजन इतने अधिक कि जिसके कारण मुँह टेढ़ा हो गया और एक आँख बन्द थी, पोस्टमार्टम की चीर फाड़ से पृथक् यह सब देखकर उसी समय ढाई सौ प्रतिष्ठित सज्जनों ने हस्ताक्षर गवाही के रूप में कर दिये। कुछ सज्जनों ने उनके पिता जी से कहा पुत्र के अन्तिम दर्शन कर लीजिये, उस समय उनके पिता ने कहा कि मेरे हृदय पर तो उसका जाते समय का शेर जैसा चित्र खिचा हुआ है उसे मैं विकृत नहीं करना चाहता, इसके बाद रमेश का अन्त्येष्ठि संस्कार कर दिया गया। इस प्रकार देश जाति का भला करता हुआ रमेश इस लोक से प्रस्थान कर गया।

—:•:—

सन् ४२ का शहीद सूरज

(ब्र० मनुदेव)

भारत के स्वतन्त्र आन्दोलनों में सन् ४२ का अगस्त आन्दोलन भी अपना कम महत्व नहीं रखता है। जहां अनेक शहीदों ने अपना बलिदान देकर स्वतन्त्रता की नींव को मजबूत बनाई, वहां हम एक १६ वर्षीय सुकोमल बालक को भी नहीं भूल सकते। जिसने ब्रिटिश सरकार को दफनाने में अपने को किसी भी प्रकार पीछे नहीं रखा।

संयुक्त प्रान्त के बलिया कस्बे में 'सूरज' के उदय होने से वहां छाया हुआ अँधेरा फिर दूर हुआ। इस महान् आत्मा का ध्यान बचपन से ही देश-सेवा की ओर उत्तरोत्तर बढ़ता गया। सन् ४० में बलिया में व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाया गया। १४ वर्ष की वाल्य अवस्था में इस सत्याग्रह का नेतृत्व भी सूरज को सौंपा गया। और इस युवक ने निर्भीकता से इसका संचालन किया। ब्रिटिश सरकार ने इस स्वतन्त्रता के पुजारी को ६ महीने के लिये जेल का महमान बना दिया। जब सूरज मजिस्ट्रेट के सामने लाया गया तो मजिस्ट्रेट ने उसकी मोहनी मूर्ति को देखकर—"युवक तुम माफी मांग कर इन भयंकर यातनाओं से छुटकारा पालो"। नौकरशाही के ये शब्द सूरज की क्रोधाग्नि में घी का काम करने लगे।

युवक ने सीना खोलकर कहा—"मुझे अपना अतिथि बना लो" युवक के यह दृढ़ शब्द कोर्ट के इस कोने से उस कोने की टक्कर लेकर ऐसे गूंजे कि वहाँ उपस्थित लोग अवाक् रह गये। ६ महीने का कठोर कारावास भुगत कर सूरज अंधेरे से प्रकाश में आया।

सन् ४२ में फिर विद्रोह उठा और बलिया बच्चा बच्चा विद्रोही समझा जाने लगा। सूरज पहला व्यक्ति था, जिसने बलिया में दफा १४४ को तोड़ा। सरकार की आंख तो इस युवक पर पहले से ही थी। फौरन ही चार दिवारी में युवक को बन्द कर दिया गया। इससे जनता में भारी क्षोभ फैल गया। नौकरशाही को जनता की एक साथ उठी हुई, आवाज के सामने झुकना पड़ा और सूरज १६ अगस्त को छोड़ दिया गया। यह युवक प्राणों की ममता तो होश सम्भालते सम्भालते ही छोड़ चुका था। इधर महात्मा गांधी की गांव-संगठन योजना चल रही थी। सूरज भी जेल ले निकल कर सीधा ग्राम-संगठन के लिये चल पड़ा। अभी सूरज को सींकचों के बाहर निकले तीन दिन भी पूरे नहीं होने पाये थे, कि न्याय का स्वाँग रचने वाली सरकार ने २२ अगस्त को फिर सूरज को अपना मेहमान बनाया और इस निर्दय नौकर-शाही ने सूरज को नग्न कर सारे बाजार में २० बेंत लगाये। लेकिन सूरज ने दुःख की आह तक नहीं खेंची। तब प्रति हिंसा के प्यासे नर-पिशाच अधिकारी मार्सस्मिथ ने ४० बेंत फिर लगाये। और उसके चूतड़ों को तेज सँगीनों से छेदा गया। बाद में फौजी सरकार द्वारा उसे ७ वर्ष की कठोर कारावास की सजा सुनाई गई और सींकचों में बन्द कर दिया।

इधर लोगों का उत्साह सरकार को उलटने में कम नहीं हुआ था। सत्याग्रहियों का एक जत्था सोनवरस के थाने (जिसमें सूरज बन्द था) कब्जे में करने के लिये थाने में घुस गया। सूरज भी मुक्त होकर जत्थे में मिल गया। सँगठित समूह को देखकर पुलिस भी थर्राने लगी। और अपने पूरे वेग के साथ चारों ओर गोलियों ने देश पुजारियों को घास की तरह जमीन पर बिछा दिया। सूरज के भी सीने

पर गोली लगी और "वह भारत माता की जय" के नारे लगाता हुआ भारत मां के चरणों में सदा के लिये सो गया।

उसके खून के छींटे भारत की छाती पर पक्के हो गये हैं। उसकी मृत-आत्मा, छाया रूप में हमे पुकार पुकार कर कह रही है, मेरे खून को जिन निर्दयी नौकर-शाही ने चूसा है उसे भूलना मत।

क्या आज का स्वतन्त्र भारत इन शहीदों के त्याग का मूल्य आंक रहा है ?

अमर शहीद तिलक डेका

(ब्र० मनुदेव)

आजादी की लड़ाई से बलिदान होने वाले वीरों में प्रहरी तिलक डेका का स्थान भी बहुत ऊंचा है। आसाम प्रान्त का नौगांव जिला सन् ४२ के विद्रोह में किसी प्रकार पीछे नहीं रहा। वह वीर इसी जिले में ग्रान्डट्रन्क रोड से ३-४ मील दूरी पर बसे हुये बरापुजिया ग्राम का निवासी था, और ग्राम का सारा कार्य प्राचीन प्रथा के अनुसार संगठन तथा सहयोग द्वारा बड़े सुचारु रूप से चल रहा था। गांव के प्रत्येक नाके पर गांव के लोगों का क्रमवार पहरा लगा रहता था। और पहरेदार का काम केवल इतना था। कि वह किसी भी सरकारी कर्मचारी, पुलिस या फौज के आने पर अपने साथ रहने वाली तुरही बजाकर गांव वालों को सचेत कर दे। गांव की बनाई गई इस शान्ति सेना का एक सिपाही तिलक डेका भी था, जो अपनी डियूटी बड़ी सतर्कता से दिया करता था।

सहसा एक दिन जब कि वीर तिलक डेका गांव के बाहर पहरा दे रहा था, फौजी सिपाहियों की टुकड़ी गांव पर आक्रमण करने के लिये आ पहुंची। उसने तुरन्त ही अपनी तुरही को बजाते हुये जनता को सचेत होने की सूचना दी, किन्तु एक बार बजा चुकने पर जब वह पुनः बजाने की चेष्टा में उसे मुँह के पास लिये जा रहा था, कि तुरन्त ही रिवाल्वर की नली उसकी छाती से आ लगी और एक कड़कते हुए स्वर ने कहा "यदि जीवित रहना चाहता है, तो तुरही बजाने का ख्याल छोड़ दे"।

विस्मित-और-भौंचक्के हो जाने वाले तिलक डेका ने एक क्षण में अपने कर्तव्य पर विचार करते हुए उत्तर दिया।

कर्त्तव्य च्युत होने से मृत्यु अच्छी है। मैं अपनी जिम्मेदारी को अवश्य पूरा करूंगा।

तुरही को बजाना था अस्तु वह बजकर ही रही। उसका गगन भेदी स्वर मीलों तक गूंज उठा, और साथ ही धांय करती हुई रिवाल्वर की एक गोली उसके वक्षस्थल को विदीर्ण करती हुई पार हो गई। कर्त्तव्य परायण वीर भारत माता की जय कहता हुआ वहीं भारत भूमि की पवित्र गोद में गिर पड़ा। और उसकी गुलामी सदैव के लिये छूट गई।

तुरही की आवाज पाकर गांव के सब आदमी घटना-स्थल पर आ पहुँचे और वीरात्मक तिलक डेका की लाश उठाने का प्रयत्न करने लगे, यद्यपि फौज वालों ने लाश देने में बहुत विरोध किया, यहां तक कि गोली चला दी। २-३ आदमी और शहीद हो गये, लेकिन शान्त और संगठित जनता अन्त में विजयी होकर शहीदों को धूम-धाम से उठा ले गई।

१९४७ का नरमेध

(वेदव्रत सिद्धान्त शिरोमणि)

१५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ। अखंड भारत को भारत और पाकिस्तान दो खंडों में विभक्त कर दिया यह अंग्रेजों की चाल थी। वे विवश होकर भारत को छोड़ तो रहे थे किन्तु अपनी जड़ जमाने के लिये उन्होंने भारत के दो खंड किये थे। उनकी नीति थी कि भारत और पाकिस्तान दोनों परस्पर लड़ेंगे तो हम फिर भारत को पराधीन बना सकेंगे। गत ११ वर्षों में तो उनका यह मनोरथ सफल हुआ। किन्तु यह कौन कह सकता है कि भारत और पाकिस्तान के बीच कब युद्ध छिड़ जाये। अब भी अनेक बार पाकिस्तानियों ने भारत के सीमान्त प्रदेशों पर आक्रमण किया है और काश्मीर के मामले में अनेक बार युद्ध की आशंका पैदा भी हो चुकी है।

भारत का जो भाग पञ्जाब और बंगाल का पाकिस्तान को मिला, उस प्रदेश के निवासी हिन्दुओं पर बे लोम हर्षण अत्याचार यवनों ने किये हैं जिनका वर्णन करना भी हृदयद्रावक है। हिन्दुओं की बहन बेटियों को नंगा कर लाइने बना-बनाकर गोलियों से उड़ाया गया। दूध पीते बच्चों को तेल में पकाकर उनकी माँताओं के मुख में उनका मांस ठोंस-ठोंस कर पूछा गया कि जायका कैसा है? हिन्दू महिलाओं को धर्मभ्रष्ट कर बुरी तरह उनकी बेइज्जती की गई। असंख्य नर नारियों को मौत के घाट उतार दिया गया। हिन्दू महिलाओं को मुसलमानों ने छिपा-छिपा कर बलात् अपने घरों में रख लिया, उनमें से कुछ बाद में भारत सरकार को लौटाई गईं। अपने धर्म की रक्षा के लिए हजारों अबलाओं ने कुएँ में पड़कर आत्महत्या की। बहुत थोड़ी संख्या में लोग प्राण बचाकर भारतमें आ सके। शायद ही कोई परिवार उस सङ्कट में सकुशल भारत पहुँच सका हो। किसी का पुत्र मारा गया किसी की पुत्री। कोई विधवा हो गई, कोई विधुर। किसी के माता पिता मारे गये किसी के भाई बहिन। हजारों असहाय बालक तड़फ-तड़फ कर मर गये और हजारों अनाथ हो गये।

इस हिंसा का प्रतीकार इधर भारत में हिन्दुओं ने भी किया। प्रतिहिंसा की अग्नि धधक उठी हिन्दुओं ने भी असंख्य मुसलमानों को मौत के घाट उतार दिया वह समय इतना भयंकर था कि किसी को भी अपने प्राण और धन सम्पत्ति की रक्षा का विश्वास नहीं रहा था। लाखों नर-नारी रोटी वस्त्र और मकान के अभाव में दर-दर के भिखारी बन गये। उस समय के उजड़े हुए परिवार अब तक भली भांति नहीं बस पाये हैं, अनेक परिवारों की स्थिति अब भी डांवाडोल है। उस समय के मूक बलिदानों की करुण कहानी आज तक किसी ने लिखने का कष्ट अथवा साहस नहीं किया है। इन्हीं शब्दों के साथ सन् ४७ के नरमेध का इतिहास लिखने का निवेदन इतिहास लेखकों से करता हुआ, उस नरमेध के सभी ज्ञात अज्ञात शहीदों को मैं श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

—:•:—

सार्वजनिक जीवन के संस्मरण

(रामनारायण चौधरी मन्त्री भारत सेवक समाज)

क्रान्तिकारी जमाना

सन् १९१२ की बात है। मैंने सोलहवें साल के साथ ही इंटरक्लास में कदम रखा। गर्मी की छुट्टियों में कलकत्ते का 'टेलीग्राफ' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक देखा। मेरे लिये अखबार के ये पहले दर्शन थे। शुरू में तो मेरी दिलचस्पी अंग्रेजी भाषा की योग्यता बढ़ाने में ज्यादा थी। मगर बाद में समाचार पत्रों का चस्का सदा के लिये लग गया। फिर भी देशप्रेम की दीक्षा नहीं मिली। वह मिली १९१३ के जुलाई मास में। मुझे अपने छोटे भाई युगलकिशोर को स्कूल में भर्ती करवाना था। महाराजा हाईस्कूल में जगह नहीं थी। पं० अर्जुनलाल सेठी का नाम सुनकर उन्हीं की जैन वर्द्धमान पाठशाला में भाई को लेकर पहुँचा। एक पुराने ढंग के नोहरे में सेठी जी से पहली मंजिल के झरोके पर मुलाकात हुई।

पहली ही भेंट का खूब असर पड़ा। हमारे स्कूल व कालेज में पोशाक तो सभी अध्यापकों और अधिकांश विद्यार्थियों की देशी ही थी, मगर शौकीनी में बहुतेरे एक दूसरे से होड़ लगाते थे। यहां आचार्य महोदय एक मोटे झोटे कुर्ते में बैठे थे। प्रकाश नामक एक जोहरी का पांच छः साल का लड़का वहीं लकड़ी के खिलोने से मकान बना रहा था। और 'स्वदेशी का बजे डंका' 'स्वदेशी का बजे डंका' गुनगुना रहा था। सेठी जी ने हम दोनों भाइयों को देखा और बालक से पूछा बेटे, क्या बना रहे हो? फौरन जवाब मिला, "अंग्रेजों को निकालने के लिये किला"। सेठी जी की तेज आंखों ने बालक के शब्दों का असर मेरे चेहरे पर देखा और कहा, आप चाहें तो भाई को मेरे पास छोड़ जाइये। यह पाठशाला में पढ़ेगा और छात्रालय में रहेगा। खर्च की चिन्ता मैं ही कर लूंगा। मेरे लिये यह चुपड़ी और दो दो वाली बात थी। मैं उत्तर भी न देने पाया था, कि पाठशाला की घंटी बजी। हम दोनों भाई भी उनके साथ चौक में जा खड़े हुए। प्रार्थना क्या थी पराधीन भारत के हृदय की पीड़ा, स्वतन्त्रता देवी के आवगहन और कर्मण्यता की पुकार का सजीव गान था। मन ने उसी घड़ी ठान लिया कि जीवन भारतमाता की गुलामी की बेड़ियां तोड़ने में ही कुर्बान होगा। ३० वर्ष के इस लम्बे अर्से में बहुत से उतार चढ़ाव आये, मगर उस दिन के निश्चय में कोई फर्क नहीं पड़ा, इतना प्रबल वह मन्त्र था। युगलकिशोर सेठ जी की छत्रछाया में रहने लगा। मैंने देखा कितना जबरदस्त अन्तर है सरकारी तालीम और राष्ट्रीय शिक्षा में। एक महाराजा कालेज था, जहां देशभक्ति की गन्ध भी छू न पाती थी, नैतिक वातावरण गन्दा था। नौकरी ही वहां के पढ़ाने और पढ़ने वालों का एक मात्र ध्येय था, प्रिंसिपल से लगाकर पहले वर्ग के शिक्षक तक छड़ी, जुर्माना और डांट फटकार से काम लेते थे। दूसरी ओर सेठी जी का विद्यालय था, जहाँ छोटे छोटे बच्चों को 'आप' कहकर पुकारा जाता था, प्रेम स्वातन्त्र्य और कौशल ही अध्यापकों के अस्त्र थे, किंडरगार्टन ढँग से पढ़ाई होती थी, राष्ट्रीयता की सुगन्ध वहां के सारे वायुमण्डल में समाई हुई थी, समाज और देश की सेवा ही विद्यार्थी के जीवन का मकसद बनाया जाता था। शिक्षक खुद आचरण से त्याग का पाठ पढ़ाते थे। मुझे याद है सीनियर इण्टर में जब प्रोफेसर ने एक दिन 'देश प्रेम' पर बहस रखने पर सूचना दी तो प्रिंसिपल

साहब को उसमें राजनीति की बू आई और वह विषय नहीं रखने दिया। जैन वर्द्धमान पाठशाला में ऐसी चर्चायें रोज होती थीं। एक समय तो राज्य की भीरुता यहां तक बढ़ी कि बम बनाने के डर से कालेज में कई साल तक साईंस की पढ़ाई बन्द रखी गई।

इधर तो यह हाल था कि जब फुरसत मिलती सेठी जी का ख्याल आता और मैं रोज उनके यहां जाने लगा। उधर उन्होंने भी एक युवक को मुझसे संसर्ग बढ़ाने के लिये मुकर्रर कर दिया। उन्हीं दिनों स्व० छोटेलाल जैन हार्डिंग बमकेस से छूटकर दिल्ली से जयपुर लौट आये थे। वे मेरे सहपाठी थे। उनसे घनिष्टता होने में देर न लगी। सेठी जी के कार्य का हाल बताते और जोशीली पुस्तकें पढ़ने को देते।

श्री सेठी जी के जीवन के हाल चाल ने मुझ पर काफी असर किया। वे जब कालेज के तपस्वी ग्रजुएट थे। अंग्रेजी के अलावा हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, और पाली भाषा के पण्डित थे। जैन धर्म के गहरे विद्वान् तेज सुधारक और जैन समाज की नई पीढ़ी के नेता थे। उस हैसियत से उनकी धाक भारत भर में थी। वे प्रभावशाली वक्ता थे। देशियों में उस समय जयपुर में बिरले ही सेठी जी के सानी थे। वे चाहते तो राज्य के ऊंचे से ऊंचे पद पर पहुँच सकते थे। एक अच्छा ओहदा उन्हें पेश भी किया गया था, मगर वे तो भारतमाता की सेवा का व्रत ले चुके थे। उसी व्रत को पूरा करने में उन्होंने अपनी उम्र का सबसे अच्छा और बहुत बड़ा भाग पूरा किया। सेठी जी के संसर्ग में मुझे पहले पहल गीता. स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यान, सावरकर की 'वार आफ इण्डियन इंडिपेंडेंस' अरविन्द का 'कर्म-योगी' व 'युगान्तर' देउस्कर की 'देश की बात' डिब्बी की 'प्रास्पेरस इण्डिया' और बंकिम बाबू का 'आनन्द मठ' वगैरह पुस्तकें पढ़ने को मिलीं। इस साहित्य ने अध्यात्म, इतिहास और राष्ट्रीयता का ज्ञान कराने के साथ साथ अंग्रेजी राज्य के अन्याय और उसे उखाड़ फेंकने के संकल्प को मेरे मानस पटल पर अमिट रूप से अंकित कर दिया।

जयपुर में मैं जिस मकान में रहता था। वहां चार पांच विद्यार्थी और भी रहते थे। ज्यादातर उम्र में बड़े मगर पढ़ाई में मुझसे पीछे थे। मैं उन्हें पढ़ने लिखने में सहायता दिया करता था। मैंने उन्हीं में जोशीली बातों और विप्लव साहित्य का प्रचार शुरू कर दिया। और एक छोटी सी मंडली बना दी। इस बीच में सेठी जी की संस्था का विस्तार हो चला था। और वे उसे मुख्य दानी की इच्छा पर इन्दौर ले गये। उनकी गैर मौजूदगी में जयपुर के क्रान्तिकारी दल की बागडोर बा० व्रजमोहनलाल जी के हाथों में आ गई थी। ये दिल्ली के कायस्थ, जयपुर के स्कूल आफ आर्टस् के वाइस प्रिंसिपल और हार्डिंग बम केस के मुखिया मास्टर अमीरचन्द व लाला हरदयाल के मित्र थे। प्रचारक थे. लेकिन संगठन की शक्ति बहुत नहीं थी। इस समय १६१४ का महायुद्ध छिड़ गया। उससे पहले क्रान्तिकारी दल की राजपूताना शाखा संगठित हो चुकी थी। सेठी जी उसके नेता थे। कोटा के ठाकुर केसरीसिंह जी बारहठ, साखा के राव गोपालसिंह जी और ब्यावर के सेठ दामोदरदास जी राठी इस संगठन के स्तम्भ थे। सेठी जी के जिम्मे युवकों को तैयार करने और शिक्षितों में प्रचार करने का विशेष काम था। जैन समाज उनका मुख्य कार्यक्षेत्र था। उसके साधनों से वे राष्ट्रीयता की साधना करते थे। उन्होंने महाराष्ट्र और काश्मीर जैसे दूर दूर के प्रान्तों से चुन चुनकर नौजवान इकट्ठे किये थे। वे कैसे जीवन के लोग थे, इसके दो दृष्टान्त मुझे याद हैं। श्री मोतीचन्द उस युवक दल के अगुआ थे। एक बार उनका आपरेशन हुआ। डा० डलजँगसिंह की राय में वह इतना गम्भीर था कि क्लोरोफार्म सुँघाये बिना चीरा लगाने की उनकी हिम्मत न हुई। मोतीचन्द का आग्रह यह था कि होश में ही चीर फाड़ की जाये। आखिर वैसा ही हुआ

और मोतीचन्द ने उफ तक नहीं की। डाक्टर दांतों तले उँगली दबाकर रह गया। आरा के महन्त की हत्या के अभियोग में जब उन्हें फाँसी लगी तो कहते हैं बलिदान की खुशी में उनका कई पौण्ड वजन बढ़ा हुआ पाया गया, लेकिन असली अपराधी तो थे जयचन्द जो आखीर तक पुलिस के हाथ न आये। उनके साथ मेरा गहरा सम्बन्ध हो गया था। उनका किस्सा विचित्र था। वे काश्मीर राज्य के पूंछ टिकाने में किसी छुटभैय्या के लड़के थे। एक दूसरे युवक के साथ अनन्य मित्रता हो गई। प्लेग आया तो दोनों में कौल करार हुआ कि जो बच रहे वह घर से निकल पड़े और उम्र भर अपने साथी के लिये तपस्या करे। जयचन्द बच गये। सीधे हरद्वार पहुँच कर जाड़े में गंगा में और गर्मी में बालु रेत में तपस्या करने लगे। गाने का शौक था। एक दिन सेठी जी का वहां भाषण था। उसमें संगीत का भी कार्यक्रम था। जयचन्द कोने में बैठ सुन रहे थे। सेठी जी की पारखी दृष्टि ने उन्हें पहिचान लिया कि काम का आदमी है। साथ ले आये। वह निर्भय इतने थे कि कई बार वारण्टधारी पुलिस के बीच से निकल गये। चलने में इतने तेज कि एक दिन घुड़सवार पुलिस का पीछा बचाते हुए ७० मील तय करके शाम को मेरे पास पहुंच गये। दो मँजिल से कूद कर भाग जाने का उन्हें इतना पक्का विश्वास था कि हमारे प्रबल आग्रह पर भी वे धीरे बोलने या दूसरी सावधानी रखने को तैयार न होते थे।

बारहठ केसरीसिंह जी का कार्यक्षेत्र राजपूताने के रईसों और जागीरदारों में था। उदयपुर, जोधपुर, और बीकानेर में उनका काफी प्रभाव था। चारणों में तो उन्होंने कई क्रान्तिकारी तैयार कर दिये थे। कुछ राजा और बड़े उमराव भी सहानुभूति रखते थे। एक दो आदमियों के दिमाग में राठौर साम्राज्य स्थापित करने की कल्पनायें भी घूमने लगीं।

रावसाहब खरवा का कार्यक्षेत्र छोटे जागीरदारों और भूमियों में था। अजमेर मेरवाड़ा और मेवाड़ में इनकी प्रवृत्तियों का केन्द्र था। हथियार इकट्ठे करना उनका खास काम था। पथिक जी रावसाहब के दाहिने हाथ थे। उस समय वे भूपसिंह के नाम से रहते थे।

सेठ दामोदरदास जी धनी थे। क्रान्तिकारी आन्दोलन को रुपये की मदद देना इनका खास काम था। जन्म से वैश्य होकर भी गजब के साहसी थे। बा० श्याम जी कृष्ण वर्मा और अरविन्द बाबू को इन्होंने जोखम उठाकर अपने यहां ठहराया था। इन्होंने राजस्थान में स्वदेशी की भावना को मूर्तिरूप देने के लिये व्यावर में कपड़े का पहला कारखाना खोला और बा० सँचेतन गंगोली जैसे देशभक्त को इसका मैनेजर बनाया।

महायुद्ध छिड़ने पर सेठी जी नजरबन्द करके पहिले जयपुर जेल में रखे गये। और बाद में मद्रास प्रान्त के वेलोर जेल में भेज दिये गये। उनके कई युवक अनुयायी गिरफ्तार या फरार हो गये। बारहठ जी को आरा व जोधपुर के मामलों में लम्बी सजा हो गई। शाहपुरा के 'आर्यनरेश' नाहरसिंह जी ने उनकी जागीर व कोठी जब्त कर ली। उनके छोटे भाई जोरावरसिंह लापता हो गये। खरवा रावसाहब और पथिक जी टाडगढ़ के किले में नजरबन्द कर दिये गये। बाद में पथिक जी तो चुपके से मेवाड़ में निकल गये। राव सा० अजमेर जेल में रख दिये गये। सेठ दामोदरदास भी चल बसे। बाकी रहे बारहठ जी के बड़े लड़के प्रतापसिंह, छोटेलाल जैन, और जयपुर की हमारी मण्डली। हमारे सलाहकार भले ही बाबू बृजमोहनलाल जो थे, मगर असली सेनानी छोटेलाल जी थे। नौजवानों को बातों से कुरबानी और प्रत्यक्ष काम ज्यादा भाता है। छोटेलाल जी थे भी बड़े सख्त आदमी। वे न अपने को छोड़ते और न दूसरों को। जाड़े के दिनों में तड़के ही हमारा द्वार खटकटाते. जोहरी बाजार से सूरजपोल तक दौड़ाते

और घाटी चढ़ाकर गल्ता के कुण्ड में तैराते। इस तालीम से हमारा जोश ज्यूं ज्यूं बढ़ता गया, त्यूं त्यूं कुछ कर गुजरने की चाह भी बढ़ती गई। छोटेलाल जी की राय हुई कि सेठ जी को जयपुर जेल से निकाल ले जाने की योजना बनाई जाय। बाबू जी ने इसे ख्याली पुलाव समझा। इसमें तरह-तरह के जोड़ तोड़ वाले साहस का कोई आदमी भी न था। बाबू जी ने एक होटल खोलकर उसके द्वारा पश्चिम के ढंग पर काम करने की कल्पना दी। छोटेलाल जी को वह पसन्द न आई। महात्मा गांधी का खुला क्रान्तिवाद उन्हें खींच चुका था। वे साबरमती चले गये। हमारी 'व्यञ्जन विलास कम्पनी' खुल गई। रामछिब नामक एक साथी को स्कूल छुड़ाकर मैनेजर बना दिया। जयपुर में उस समय नागरिक स्वतन्त्रता की कैसी दुर्दशा थी, इसका अन्दाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि हमें बर्फ सोडा बेचने के लिये ठेठ कौंसिल से मन्जूरी लेनी पड़ी।

उन्हीं दिनों हमारे दल में उमरावल नामक एक जैन वकील शरीक हुए। दुबले पतले और चिररोगी थे, परन्तु गजब की कष्ट सहिष्णुता का परिचय दिया। बात यह हुई कि १९१५ में हम लोगों ने जयपुर के रेजीडेन्ट और राज्य के प्रधान मन्त्री के खिलाफ एक पर्चा बाँटने का निश्चय किया। उसे मैंने लिखा, उमरावल ने साईक्लोस्टाइल पर छापा और रामछिब ने वितरण किया। मेंह आँधी की रात थी, वह दो बजे उठा एक कम्बल ओढ़ा और कोट की जेब में पर्चे और एक हाथ में लेई का डिब्बा लेकर चल पड़ा। दिन निकलने से पहले-पहले वह काम करके लौट आया। सुबह होते ही शहर में सनसनी फैल गई। स्कूल, कालेज, कौन्सिल, महलों के दरवाजों, कोतवाली और मुख्य-मुख्य रास्तों के नुक्कड़ पर पर्चा चिपका हुआ था। नई चीज थी, जगह-जगह झुण्ड के झुण्ड पढ़ रहे थे। पुलिस के आने व परचे उखाड़ ले जाने से पहले हमारा काम सफलता के साथ हो चुका था। बड़ी दौड़ धूप हुई। मगर अपराधियों का पता न चला। बहुत अर्से बाद उमरावल के यहाँ साईक्लोस्टाइल पकड़ा गया। सवा लाख की बस्ती में किसी दूसरी गैर-सरकारी जगह वैसी मशीन नहीं थी। वकील जी को पुलिस ने खूब यातनायें दीं, परन्तु सब कुछ सह कर भी उन्होंने भेद जाहिर नहीं किया।

जयपुर में यूं तो सभा सोसाइटियों की मुमानियत थी, परन्तु अंग्रेजों के लिये सब छूट थी। मिशन हाईस्कूल के प्रिंसिपल पादरी लो साहब अड़ल्ले से एक डिबेटिंग क्लब चलाते थे मुख्य उद्देश्य तो था ईसाई धर्म और उसकी आड़ में साम्राज्यवाद का प्रचार करना, लेकिन आदमी होशियार और साधारण व्यवहार में सज्जन और परोपकारी थे। इन दो गुणों के कारण युवक उनकी तरफ खिंचते थे। हमारे बाबू जी की तेज बुद्धि ने यह देखकर हमें भी उधर लगा दिया। हम भी क्लब में जाने लगे और थोड़े दिन में वहां की हवा काफी पलट दी।

१९१५ का साल शुरू हुआ ही था कि एक दिन अन्धेरे-अन्धेरे छोटेलाल जी कम्पनी में एक ऐनकधारी युवक को लेकर आये। छोटी-छोटी आंखें सांवला रंग और ठिकना कद था, प्रतापसिंह थे। इन दिनों हिन्दुस्तानी फौज में गदर की तैयारी की जा रही थी। इसके संयोजक बा० रासबिहारी बोस थे। उनका केन्द्र बनारस से दिल्ली भेजा था। प्रतापसिंह उनके साथ थे। इसी खास काम में एक सन्देश ले जाने वाले की जरूरत थी। छोटेलाल जी की सलाह से प्रताप जी ने मुझे पसन्द किया। दूसरे ही दिन प्रताप जी और मैं दिल्ली के लिये रवाना हो गये। शहर के पुराने हिस्से में एक मकान की पहली मंजिल पर पहुंचे तो एक गठीले जवान ने हमारा स्वागत किया। यह शचीन्द्र थे। एक कोठरी में अखबार बिछे थे। वहीं उनका बिस्तर था। शाम तक मुझे योजना का पता लग गया। वह यह थी कि भारत सरकार के होम

मेम्बर सर रेजीनाल्ड क्राडक को गोली का निशाना बनाया जाय, यह काम करे जयचन्द, और मैं उन्हें हरद्वार से बुला लाऊं, संकेत यह था कि जैसे ही क्राडक साहब वाली घटना के समाचार प्रकाशित हों, मेरठ वगैरह की भारतीय सेना विद्रोह कर दे। जहाँ तक मुझे याद है इसके लिये २५ फरवरी १६१५ की तारीख मुकर्रर हुई थी। अस्तु मैं रात की गाड़ी से हरद्वार के लिये चल पड़ा। भारत रक्षा कानून का शिकन्जा इतना कड़ा था कि हर जगह पुलिस किसी नौजवान को देखते ही सन्देह करती और उसे पूछ-ताछ किये बिना आगे न बढ़ने देती। लेकिन मुझे मारवाड़ी भेष भाषा ने अच्छा काम दिया। हरद्वार में उन दिनों कुम्भ का मेला था, परन्तु काली कमली वाले बाबा का स्थान ढूँढने में विशेष अड़चन नहीं हुई। हमारे जयचन्द बाबा के दाहिने हाथ बन बैठे थे। देखते ही लिपट गये। लेकिन मेरे साथ दिल्ली चलने में असमर्थता प्रगट करते हुए बोले, 'मैंने यहां एक अच्छा दल तैयार कर लिया है। अभी कल परसों ही एक सफल डाका डाला है। हाथ में लिया हुआ काम छोड़कर जाना ठीक नहीं। हां चाहो तो पांच दस हजार रुपया ले जाओ। डाके का माल भी है और बाबा का भंडार भी भरपूर है। धन लाने की मुझे आज्ञा न थी। मैं खाली हाथ वापिस आ गया। शचीन्द्र और प्रताप जी को निराशा हुई। जो काम जय-चन्द् के सुपुर्द होने वाला था वह प्रताप जी को सोंपा गया। मगर संयोग से क्राडक साहब मुकर्रर तारीख को बीमार हो जाने से बाहर नहीं निकले। और बच गये। मैं उसी रात जयपुर लौट आया।

इधर हमारी कम्पनी कुछ चली चलाई नहीं और न उसके जरिये जो 'ठोस' काम सोचा गया था वही हुआ। हम उसे उठा देने की सोच ही रहे थे कि प्रताप जी पर बनारस सिलसिले के षड्यन्त्र में वारण्ट निकल गये। और वे भागकर हैदराबाद सिन्ध में जा छिपे। खुफिया पुलिस तलाश करती हुई जयपुर पहुंची और एक ओसवाल गृहस्थ के पीछे पड़ी। कमजोरी में आकर उन्होंने हैदराबाद तो बता दिया मगर फिर सम्भल कर सिन्ध के बजाय निजाम की राजधानी का पता दिया। डिप्टी सुपरिंडेण्ट पांगे यह सुराग पाकर दक्षिण की तरफ रवाना हुए। इधर हमारी मण्डली को प्रताप जी को बचाने की फिक्र हुई। इस बार भी मुझ को चुना गया। मारवाड़ी पोशाक में चल पड़ा। मुझे हिदायत दी थी कि मारवाड़ के भीनमाली स्टेशन पर उतर कर चारणों के गांव पांचेरिया में पहले तलाश कर लूं। शायद प्रताप जी वहां हों। हमारे देहाती समाज में अनजान लोगों से खूब पूछताछ होती है। इससे मेरे काम में बड़ी बाधा पड़ रही थी। आखिर एक किस्सा घड़ लिया और जो कोई पूछता उसी को सुनाकर पिण्ड छुड़ाता। गांव के निकट पहुँचते पहुंचते मालूम हो गया कि जिस घर पर प्रताप जी ठहरा करते थे उसे पुलिस ने घेर रखा है। मैं समझ गया कि पंछी अभी पकड़ में नहीं आया है, मैं व्यर्थ में क्यों फंसूं? मैंने सिन्ध की राह ली। हैदराबाद पहुंचकर दिन भर की खोज के बाद प्रताप जी से भेंट हुई। उन्होंने एक खानगी दवाखाने में कम्पाउण्डर की जगह काम शुरू कर दिया था और फुरसत के समय वाचनालयों में जाने वाले नौजवानों में क्रान्तिकारी प्रचार करने लग गये थे। दूसरे ही दिन हम दोनों बीकानेर के लिये चल पड़े। सोचा यह था कि मैं तो राजधानी में कोई नौकरी कर लूंगा। प्रताप जी कहीं देहात में जा बसेंगे, और दोनों मिलकर विप्लववादी दल खड़ा करेंगे। थोड़ी सहूलियत भी थी, मेरे एक चचा बा० शिवगुलाम जी बीकानेर कौंशिल में रेवेन्यू सेक्रेटरी थे और गांवों में प्रताप जी के कुछ सम्बन्धी रहते थे। लेकिन एक गल्ती ने योजना पर पानी फेर दिया। जोधपुर स्टेशन के पास आया तो प्रताप जी की इच्छा आशानाडा स्टेशन पर उतर कर वहां के स्टेशनमास्टर से मिल लेने की हुई। वह दल का सदस्य था। मगर कुछ दिन पहले उसके यहां बम का पार्सल पकड़ा जा चुका था और वह अपनी खाल बचाने को

पुलिस का मुखबिर बन गया था। उसकी हमें किसी को खबर न थी। तय यह हुआ कि मैं जोधपुर उतर कर शहर देख लूं और दूसरे दिन शाम की गाड़ी से बीकानेर के लिये चल पड़ूँ। रास्ते में आशानाडा के प्लेटफार्म से प्रताप जी को 'माधो' के नाम से पुकारूं। अगर कोई जवाब न मिले तो समझ लूं कि प्रताप जी फिलहाल देहात में घुस गये हैं और मैं बीकानेर पहुँचकर उनका इन्तजार करूं। लेकिन प्रताप जी तो आशानाडा उतरते ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। मेरी आवाज का कोई असर न देखकर मैं बीकानेर पहुँच गया।

चचा ने बड़े प्रेम से स्वागत किया और कोई जगह दिलवाने का आश्वासन दिया। कोई एक सप्ताह गुजर गया, परन्तु प्रताप जी का कोई समाचार न मिला।

इधर हरद्वार की कारगुजारी के सिलसिले में मुझे प्रताप जी ने बोस बाबू की तरफ से जो घड़ी और शाल भेंट की थी वह चोरी चली गई। ये पुरस्कार मुझे बहुत प्रिय थे। प्रताप जी के वियोग की पीड़ा भी कम न थी। वह आदमी ही ऐसा प्यारा था। जितने विप्लववादी देशभक्तों से मेरा परिचय हुआ उनमें प्रताप की छाप मुझ पर सबसे अच्छी पड़ी थी। वे बड़े कोमल स्वभाव के निहायत शिष्ट और सदा खुश रहने वाले जीव थे। गीता को उन्होंने जिस रूप में समझा था उसी के अनुसार उनकी सारी चेष्टायें होती थीं। धन और स्त्री की इच्छा को उन्होंने खूब जीता था। शरीर इतना सधा हुआ था कि जयपुर में जब वे मेरे पास रहे थे तो एक बार लगातार ७२ घण्टे जागते रहे और बिना खाये पीये बराबर काम करते रहे, और फिर सोये तो तीन दिन तक उठने का नाम न लिया। गलता के कुण्ड में घण्टों तैरते भी उन्हें देखा। सच तो यह है कि महात्मा गान्धी को छोड़ कर और किसी पर मेरी इतनी श्रद्धा नहीं हुई जितनी प्रताप जी पर। वे देश की खातिर हिंसा के पक्षपाती जरूर थे, लेकिन उन का दूसरा सारा व्यवहार किसी अहिंसावादी से कम न था। वे जहां रहते वहीं का वातावरण सरलता प्रेम और पवित्रता से भर देते थे। मेरा विश्वास है कि वे जिन्दा रहते तो गांधी जी के एक खास साथी होते।

हाँ तो पुरस्कार और प्रताप जी को खोकर उस दिन रंज ही रंज में मैंने आशानाडा के स्टेशन मास्टर को प्रताप जी की पूछताछ का एक खत लिख डाला। लिखने में सावधानी तो काफी बरती थी, मगर पुलिस के लिये इतना सा धागा काफी था। तीसरे दिन एक बाबा जी मेरे कमरे के चारों तरफ चक्कर काटते हुए दिखाई दिये। और चौथे रोज सी० आई० डी० के इंसपेक्टर आ धमके। उनके पास मेरी गिरफ्तारी का सामान था। बनारस षड्यन्त्र के साथ मेरा सम्बन्ध जोड़ा गया। चचा बहुत घबराये। वे पुराने ढंग के राजभक्त आदमी थे। मगर उतना ही मुझ पर स्नेह रखते थे। अपने द्वार पर मेरा गिरफ्तार होना वे अपने लिये बदनामी की बात समझते थे। इन्सपैक्टर थे राजस्थान के जाने पहचाने व्यास मगनराज जी। उन्हें मैंने जो किस्सा घड़कर बताया उस पर तो उन्हें क्या विश्वास होता, परन्तु चचा के बड़े ओहदे का लिहाज और उन पर अहसान करके बोले—"आपके बयान से मेरी तसल्ली नहीं होती, पर मैं और खोज करूंगा और जरूरत हुई तो फिर मिलेंगे।" मैंने उसी दिन बीकानेर छोड़ दिया। उस थोड़े से कयाम में मैंने देख लिया कि वहां का वातावरण जयपुर से भी गया बीता है और इसमें क्रान्तिवाद का अंकुर जल्दी फूट न सकेगा। लेकिन मैं सीधा जयपुर न जाकर नीम के थाने होकर गया। देशभक्ति के नये रंग में रंगे जाने के बाद पत्नी से मुलाकात नहीं हुई थी। सोचा उसे भी नवजीवन का परिचय देकर आने वाली घटनाओं के आघात के लिये कुछ तैयार कर दूँ। जयपुर में सलाह मश्विरे के बाद तय हुआ कि मैं सांभर जाकर छिप रहूं। वहां मेरे बड़े भाई मुन्शी छगनलाल जी अदालत में अहलकार थे।

आदमी शुरू से ही गम्भीर और साहसी थे। वहीं पिता जी भी आ गये। वे उन लोगों में से थे जो सन्तान के लिये सब कुछ करने और सहने को तैयार रहते हैं. दोनों के रुख से मुझे बल मिला। सांभर में श्रीकृष्ण जी सोढ़ाणी से परिचय हुआ। उन्हें भी कलकत्ते में क्रान्तिवाद की हवा लग चुकी थी।

उन दिनों की एक घटना याद है। मेरे किसी पत्र से छोटेलाल जी को भ्रम हुआ था या एहतियातन उन्होंने जरूरी समझा यह तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु स्व० माधवशुक्ल की ये पंक्तियां उन्होंने लिख भेजीं।

तुम नौकरी इस राक्षसी के, फंद में ऐसे फंसे।
निज शक्ति मन मस्तिष्क, बलयुत जा रहे नीचे धंसे॥
हा स्वैरिणी के हाथ तुमने, रत्न जीवन दे दिया।
वह भूमि रोती रह गई, जिसने तुम्हें पैदा किया॥
यदि दुःख पड़ने पर हृदय का भेद जाहिर कर दिया।
डरपोक बनकर शत्रु पग पर, शीश अपना धर दिया॥
दो रोज के उपवास में ही धीरता जाती रही।
रोने लगे टुक दण्ड से, गम्भीरता तब क्या रही॥
यदि कष्ट सहने के लिये तन मन सभी असमर्थ हैं।
तो देशभक्ती छोड़ दो, आशा तुम्हारी व्यर्थ है॥

कहना न होगा कि मौनी छोटेलाल के इस प्राणदायक संदेश ने सरकारी नौकरी न करने और दल के प्रति वफादार रहने के मेरे निश्चय को और भी दृढ़ कर दिया।

१९१५ का नवम्बर मास आ गया था। बनारस षड्यन्त्र केस में शचीन दादा और प्रताप जी को लम्बी सजायें हो गई थीं। मैंने समझा मामला खतम हुआ, जरा घर की भी सुध लेनी चाहिये। दूसरे दिन नीम के थाने पहुंच गया। साथ साथ श्रीमान् मगनराज व्यास जी फुलेरे से उसी गाड़ी में बैठे मगर मुझे पता नहीं चलने दिया। वे मजिस्ट्रेट के पास गये। मजिस्ट्रेट पिता जी के मिलने वाले थे। उनका इशारा पाकर पिता जी ने घर पर सूचना भेज दी। मैं घर से निकल कर गांव के बाहर एक मन्दिर म जा छिपा। लेकिन घर वालों के लिए एक नये ढंग की गम्भीर विपत्ति थी। आखिर मजिस्ट्रेट के बीच बचाव से यह समझौता हुआ कि व्यास जी मुझे वहां गिरफ्तार न करेंगे। और थोड़ी पूछताछ करके चले जायेंगे व्यास जी ने मिलते ही उलाहना दिया, आपने बीकानेर में तो घिस्सा दिया। अब तो सच-सच कह दीजिये। मुझे उस वक्त तक तो इतना अनुभव हो चुका था कि पुलिस की नरमी खाली उदारता नहीं हो सकती, उसका मामला जरूर कमजोर होगा। मैंने व्यास जी पर इसी आशय की एक नजर डाली और इस बार थोड़ा गंगा जमनी जवाब दे दिया। वे चले तो गये, मगर महीने भर बाद ही उनका खत आया कि जयपुर में मिलिये। वचन के अनुसार पिता जी के साथ उनसे जयपुर में मिला।

राजपूताने के दल को व्यास जी पर बड़ा रोष था। प्रताप जी की गिरफ्तारी और सजायाबी से हमारा बड़ा नुकसान हुआ था। इसका बदला लेने के लिये व्यास जी को वहीं 'रख लेने की तजवीज हुई। तय हुआ कि पिस्तौल एक किशोर साथी लावें जिनके ससुर एक बड़ी जागीर के दीवान थे, मैं व्यास जी को एडवर्ड मेमोरियल में बातों में रोके रक्खूं और छोटेलाल जी उन पर वार करें। परन्तु मारने वाले से बचाने वाला बड़ा है। योजना पार न पड़ी। उन दिनों जयपुर शहर के पुलिस सुपरिण्टेण्डेंट

ग्रौर मजिस्ट्रेट तिवाड़ी दीन दयाल जी थे। उनके बड़े लड़के स्व० शिवराज मेरे मित्र थे। उनसे व्यास जी की कार्यवाहियों का हमें रोज पता लगता रहता था इस कारण वे हमारे दल का बहुत कुछ न बिगाड़ सके। ग्रादमी भी शरीफ थे। व्यर्थ किसी को तंग भी नहीं करते थे। मेरे खिलाफ सबूत नहीं मिला, यह कहकर चले गये।

(वर्तमान राजस्थान से उद्धृत्)

सन् १८५७ के स्वतन्त्रता युद्ध में करनाल के वीरों ने ग्रंग्रेजों के दांत खट्टे किये

(श्री बलदेवसिंह बी० ए०)

प्रथम स्वातन्त्र्य समर में देहली से जब स्वतन्त्रता की लहरें उठीं तो इसका पूरा प्रभाव जिला करनाल पर भी पड़ा। देहली ग्रौर ग्रम्बाला के बीच में जिला करनाल एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है ग्रौर जिला करनाल को यह ग्रधिकार जगत्प्रसिद्ध महाभारत-युद्ध के काल से ही पितृ-सम्पत्ति की भांति प्राप्त है। जिला करनाल भारत के इतिहास को सदा उज्ज्वल करता रहा है। सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-समर में यह किस प्रकार से पीछे रह सकता था ? सन् १८५७ के युद्ध के नेता श्री नानासाहब की दूरदर्शिता तथा ग्रजीम ग्रल्लाह के सहयोग के कारण इलाहाबाद, झांसी ग्रौर देहली के लोग स्वातन्त्र्य युद्ध के लिये कटिबद्ध हो गये। १६ ग्रप्रैल सन् १८५७ में नानासाहब ग्रौर ग्रजीमग्रल्लाह तीर्थयात्रा के मिष (बहाना) से थानेसर पधारे। उस समय ग्रंग्रेज प्रधान सेनापति डानसन का केन्द्र ग्रम्बाला ही था।

नानासाहब की योजना थी कि जब देहली के लोग ग्रंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करें, तब ग्रम्बाला से ग्रंग्रेजी सेना ग्रौर उनका प्रधान सेनापति ग्रंग्रेजों की सहायता न कर सके। इसके लिए थानेसर, करनाल ग्रौर पानीपत जैसे पुराने ऐतिहासिक नगर जो बड़ी सड़क देहली ग्रम्बाला विभाग में निवास करते थे, उनको उत्साहित किया। जिस से ग्रंग्रेजी सर्प यदि देहली की ग्रोर बढ़े तो मध्य में ही उसके सिर को कुचल दें। नानासाहब ग्रौर इनके सहयोगी ग्रजीम ग्रल्लाह ग्रंग्रेज की प्रत्येक कूटनीति को भली प्रकार से जानते थे। थानेसर के पश्चात् नानासाहब करनाल ग्रौर पानीपत गये। इन नगर निकट-वर्त्ती देहातों के प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिले। योजना तैयार की गई। थानेसर की ब्राह्मण पञ्चायत ने नानासाहब से प्रतिज्ञा की कि हम ग्रापका यह सन्देश हरयाणा प्रान्त के प्रत्येक ग्राम में पहुँचायेंगे। वास्तव में ऐसा ही हुग्रा। एतत्पश्चात् कुछ क्षेत्र के पवित्र तीर्थों का 'लाल कंवल' संदेश हरयाणा प्रान्त के प्रत्येक घर पहुँचा।

नानासाहब के चले जाने पर जिला करनाल के नेताग्रों ने गुप्त सभा करके ग्रम्बाला के स्वतन्त्रता को दबाने वाले प्रत्येक कर्मचारी के घर को फूंकने का प्रस्ताव पास किया। इसके पश्चात् प्रतिदिन कर्मचारियों के घरों में ग्राग लगाने की सूचना प्रधान सेनापति ग्रम्बाला के पास जाने लगी। ग्रपराधियों की खोज के लिये सहस्रों रुपये का पारितोषिक रक्खा गया परन्तु सफलता प्राप्त न हुई ग्रौर विवशता वश गवर्नर जनरल को भी लिखना पड़ा।

जब १८ मई सन् १८५७ को करनाल में देहली पर आक्रमण की सूचना मिली तो थानेसर में स्थित सैनिकों ने जनता के साथ मिल कर अंग्रेज कर्मचारियों को मार कर शहर पर अधिकार कर लिया। २० मई तक देहली अम्बाला सड़क सर्वथा बन्द रही और अंग्रेजी सेना देहली में सहायतार्थ जाने से रोकी गई। २१ मई सन् १८५७ को स्वतन्त्रता के शत्रु महाराजा पटयाला की सेना ने अंग्रेजों की सहायता की। स्वतन्त्रता प्रेमियों को कुचल दिया गया। स्वराज्य के दीवाने हिसार के रांघड़ों को थानेसर की जेल में बन्द करके कड़ा पहरा बिठाया गया। परन्तु अंग्रेजों को भय था कि कैथल के राजपूत ३१ मई सन् १८५७ को इनको छुड़ाने के लिये आक्रमण करेंगे। इसलिये स्वतन्त्रता के प्रेमियों को अम्बाला की जेल में भेजना पड़ा।

१६ जून १८५७ को महाराजा पटियाला अपनी सेना सहित अपने राज्य की रक्षा के लिये चला गया। प्रान्त के लोगों ने पुनः थानेसर पर अधिकार कर लिया। देशद्रोही थानेसर के चौहान राजपूतों ने अंग्रेजों की सहायता की।

सन् १८५७ में कैथल में अंग्रेज रेजिडेन्ट मिस्टर मेकब था। जून १८५७ में पाटी के जाटों ने कैथल पर आक्रमण कर उस पर अपना अधिकार कर लिया। अंग्रेजी सेना को तलवार का पानी पिलाया। मिस्टर मेकब अपने परिवार सहित ग्राम मोढ़ी में छुपे। फतहपुर के कलालों ने मिस्टर मैकब को परिवार सहित मार दिया। जिस समय अंस की आज्ञानुसार प्रधान सेनापति हैडसन फतहपुर को तोपों से उड़ाने के लिये करनाल से रोहतक जा रहा था। एक कलाल ने मिस्टर मैकब को मारने का उत्तरदायित्व लिया परन्तु तोप के मुंह पर उड़ाया गया। इस वीर के बलिदान ने समस्त ग्राम को बचा लिया, निर्दयी हैडसन ग्रामों में जनता के साधारण लोगों को मारता हुआ रोहतक की ओर चला गया।

कम्पनी सरकार की आज्ञा से महाराज पटियाला और महाराजा जीन्द ने थानेसर और पानीपत को अधिकृत करके अंग्रेजों को पञ्जाब की ओर से निश्चिन्त कर दिया। सिख आरम्भ में ही अंग्रेजों के साथ थे। जिला करनाल के जाटों और राजपूतों को बुरी तरह कुचला गया। २५ मई सन् १८५७ को अंस अम्बाला से देहली की ओर जा रहा था परन्तु विसूचिका से मार्ग में ही जीवन से हत्यारे को हाथ धोने पड़े।

अंग्रेजों ने करनाल को मेरठ पर आक्रमण करने का केन्द्र बनाया। जमना पार आक्रमण किया गया, परन्तु असफलता मिली। अम्बाला से देहली के मार्ग में हजारों लोगों को पकड़ कर कोर्ट मार्सल के पश्चात् अत्यन्त बुरे ढंग से मारा जाता था। हजारों हिन्दुस्तानियों को फांसी की रस्सी से लटका दिया गया। इनके सिरों के बाल एक-एक करके उखाड़े गये। इनके शरीरों को संगीनों से नोचा गया। भालों और संगीनों से हिन्दू व देहातियों के मुख में गो-मांस डाल कर उनका धर्म भ्रष्ट किया गया। इस प्रकार जिला करनाल के असंख्य लोगों ने असंख्य बलिदान इस स्वतन्त्रता युद्ध में दिये।

भारत का प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध

(चौ० कबूलसिंह मन्त्री सर्वखाप पंचायत)

सं० १९१४ वि०—१८५७ ई० में भारतीयों ने अंग्रेजी राज्य को भारत से उखाड़ फेंकने के लिए प्रथम यत्न किया। सैनिक विद्रोह भी हुआ। जनता ने भी पूरी शक्ति लगाई। यह यत्न यद्यपि सफल न हो सका परन्तु इससे अंग्रेजों की मनोवृत्ति अवश्य बदली।

विरोधी

अंग्रेजी राज्य के विरोधी और विरोध का कारण नीचे लिखे जाते हैं।

१—अंग्रेजों का प्रथम विरोधी हरयाणा सर्वखाप पंचायत का संघठन था क्योंकि—

क—अंग्रेजों ने गरीब किसानों पर अत्याचार किये। अन्न बलपूर्वक लेते थे। किसानों और गरीबों से बेगार लेते थे। कारीगरों की देशी चीजों को बाहर नहीं जाने देते थे। छोटे मोटे व्यापार और धन्धे नष्ट कर डाले।

ख—अदालतें बना कर पंचायतों के संगठन और शक्ति को नष्ट कर डाला लोगों के आपसी झगड़े अदालतों में जाने लगे। गरीबों की लुटाई होने लगी। झूठ, मक्कारी, बेईमानी और रिश्वत फैलाई जाने लगी। लोग तंग हो गये।

ग—किसानों पर साहूकारों के अत्याचार बढ़ने लगे।

घ—अंग्रेजी माल जबरदस्ती बेचा जाने लगा।

ङ—अच्छे अच्छे आचार वाले कुलों को दबाया जाने लगा।

च—पञ्चायती नेताओं का अपमान किया जाने लगा।

इन कारणों से सर्वखाप पंचायत ने सबसे पहिले अंग्रेजों के विरोध में झंडा ऊंचा किया। हरयाणा सर्वखाप के दो भाग किये। जमना आर और पार। पंचायत ने दोनों ओर देहली को केन्द्र मानकर मेरठ मुजफ्फरनगर सहारनपुर और बुलन्दशहर तथा बहादुरगढ़, रेवाड़ी रोहतक और पानीपत में अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फैंका जिसके कारण भारी कष्ट सहन किये। जनता कोल्हू में पेली गई। जायदाद छीन ली गई। खेद है कि यह जायदाद अब तक नहीं लौटाई गई है।

२— दूसरा विरोधी दल मराठों का था क्योंकि मराठों का राज्य छिन गया था।

३—तीसरा दल उन मुसलमानों का था कि जिनको अंग्रेजों ने अपमानित किया था और जागीरें हड़प ली थीं। नवाबों को कंगाल बना दिया था।

४—यह दल पण्डे पुजारियों और मुल्ला मौलवियो का था। क्योंकि इनके पास धर्म और मजहब के नाम पर जो जायदाद थी वह छीनी गई।

५—अनेक जागीरदारों की भूमि छीन ली गई और दूसरों को दे दी गई।

६—पुराने कर्मचारी नौकरी से निकाल दिये गये थे।

७— जनता के साथ की गई प्रतिज्ञाओं को तोड़ दिया गया और अंग्रेजों के बचन से विश्वास उठ गया।

८—ईसाई धर्म का प्रचार राज्य के बल पर किया जाने लगा था। इङ्गलैंड की पार्लियामेंट में ऐसा करने का भाषण दिया गया था।

९—पण्डारी दल के मार्ग में बाधा डाली गई।

१०—बड़े-बड़े राजनीतिक कुल समाप्त किये जा रहे थे।

११ भारतीय सेना में नये कार्तूस दिये गये जो कि दान्त लगा कर काटने पड़ते थे। इससे हिन्दू और मुसलमान सैनिकों में असन्तोष बढ़ा।

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न कारणों से भारतीय जनता, राजा नवाब और अन्य दलों में असन्तोष हुआ

बहादुरशाह का पत्र

देहली के बहादुरशाह बादशाह ने ऐसे समय सर्वखाप पंचायत के प्रधान को एक पत्र लिखा जिसका आशय यह है—

"सर्वखाप पंचायत के नेताओ! अपने पहलवानों को लेकर फिरंगी को निकालो। आप में शक्ति है। जनता आपके साथ है। आपके पास योग्य वीर और नेता हैं। शाही कुल में नौजवान लड़के हैं। परन्तु इन्होंने कभी युद्ध में बारूद का धूआँ नहीं देखा। आपके जवानों ने अंग्रेजी सेना की शक्ति की कई बार जाँच की है। आजकल यह राजनीतिक बात है कि नेता राज घराने का हो। परन्तु राजा और नवाब गिर चुके हैं। इन्होंने अंग्रेजों की गुलामी स्वीकार कर ली है। आप पर देश को अभिमान और भरोसा है। आप आगे बढ़ें। फिरंगी को देश से निकालें निकालने पर एक दरबार किया जाय और राज पाट स्वयं पंचायत सभाले। मुझे कुछ उजर नहीं होगा।"

इस पत्र को पाकर पंचायत ने अपनी शक्ति का संग्रह करना आरम्भ किया, और अन्य शक्तियों से सम्पर्क बढ़ाया।

हरिद्वार में नाना साहिब और अजीमुल्ला पंचायत नेताओं से मिले।

नेता

आन्दोलन के मुख्य नेता यह थे—नानासाहिब, तात्या टोपे, झांसी की रानी, कुंवरसिंह, अजीमुल्ला बख्तलां पठान आदि। पंचायतों के दो नेता चुने गये। नाहरसिंह सूबेदार और हरनामसिंह जमादार।

परिणाम

जो कुछ परिणाम हुआ वह सब को ज्ञात है। आन्दोलन सफल न हो सका।

विफलता के कारण

यद्यपि सब पेशों और सम्प्रदायों के लोग आन्दोलन में थे परन्तु शीघ्रता करने से शक्ति संग्रह न हो सका। अंग्रेजों ने फाड़ने की नीति से काम लिया और उनकी सेना नये शस्त्रों से सुसज्जित थी। राजा और नवाबों की शक्ति अलग रही। मराठों में आपसी झगड़े थे। यह कारण सब को ज्ञात है। हमने उन बातों पर ही प्रकाश डाला है कि जो इतिहास के पत्रों पर नहीं दी गई।

हिन्दी सत्याग्रह के बलिदान

(वेदव्रत सिद्धान्त शिरोमणि)

तीन शताब्दियाँ व्यतीत हो चुकी हैं, प्रत्येक शताब्दी में सन् सत्तावन खाली नहीं जाता। कुछ न कुछ भयंकर कर्म अथवा कोई न कोई विशेष बलिदान का अवसर अवश्य ही उपस्थित हो जाता है। १८५७ में प्लासी का युद्ध हुआ। १८५७ में भारत का प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम हुआ जिसका विस्तृत वर्णन इस ग्रन्थ के आदि में प्रकाशित किया गया है। १९५७ के आने से पूर्व ही प्रायः कहा जाता था कि सन् सत्तावन खाली नहीं जायेगा। हुआ भी यही, सन् सत्तावन के प्रथम चरण में गोआ सत्याग्रह चल ही रहा था, इसके पश्चात् पञ्जाब में हिन्दी रक्षा सत्याग्रह प्रारम्भ हो गया।

सन् १९५० के प्रारम्भ में जब गुरुमुखी को बलात् थोपने पर हरयाणा में विरोध हुआ था तब सरकार ने फार्मूले को लागू करना स्थगित कर दिया था। अगस्त ५५ तक सरकार को स्वयं यह पता नहीं था कि फार्मूले के प्रति उसका रुख क्या है। जब से पञ्जाब में गुरुमुखी की अनिवार्य पढ़ाई की चर्चा चली तभी से पञ्जाब के हिन्दी प्रेमियों ने अपने प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये थे। स्वामी आत्मानन्द जी महाराज की अध्यक्षता में 'हिन्दी रक्षा समिति' की स्थापना की गई। इस समिति ने अपनी सात माँगें सरकार के सन्मुख रखीं और आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। वे सात मांग ये हैं—

समिति की सात मांग

१—सम्पूर्ण नये पञ्जाब राज्य में एक ही भाषा योजना लागू होनी चाहिये।

२—शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा के माध्यम का चुनाव पूरी तरह माता-पिता की इच्छा पर छोड़ देना चाहिये।

३—किसी भी विशेष स्तर पर दोनों भाषाओं में से किसी एक भाषा का, द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाया जाना अनिवार्य नहीं होना चाहिए।

५—शासन के प्रत्येक स्तर पर अंग्रेजी भाषा का स्थान हिन्दी को दिया जाना चाहिये।

५—जिले के स्तर या उसके नीचे की सरकार की सब सूचनायें और निर्देश दोनों भाषाओं में होने चाहिये।

६—किसी भी भाषा में प्रार्थना पत्र देने की आज्ञा होनी चाहिए। उनका उत्तर भी उसी भाषा में होना चाहिये।

७—जिले के स्तर तथा उसके नीचे सरकारी कागजात दोनों लिपियों में होने चाहिये।

इन में १, ३ और ७ मांगें मुख्य हैं और सबसे मुख्यतम है तीसरी।

सभी वैधानिक कार्यवाहियां करने के उपरान्त भी जब सरकार ने समिति की उपरिलिखित मांगों

फिरोजपुर जेल काण्ड के शहीद

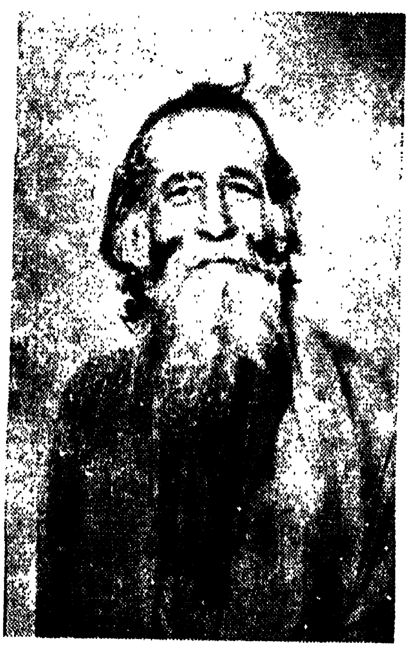


श्री सुमेर सिंह जी (नया बास)

मोहरी दुर्घटना के शहीद



श्री पावनदास जी (अजमेर)



श्री स्वामी आनन्द भिक्षु जी महाराज



श्री स्वामीईशानन्द जी महाराज

रोहतक के भव्य जलूस का एक दृश्य



१ जनवरी ५८ को रोहतक के जलूस में हाथी पर श्री सुमेरसिंह की माता जी और पिता जी तथा श्री घनश्याम सिंह गुप्त, श्री आचार्य भगवानदेव, श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती।

की ओर कोई ध्यान न दिया तब हिन्दी रक्षा आन्दोलन के सर्वाधिकारी स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने अपने पांच अन्य साथियों के साथ ३० मई ५७ ई० को सद्भावना यात्रा प्रारम्भ की और चण्डीगढ़ पहुँच कर पञ्जाब के मुख्य मन्त्री सरदार प्रतापसिंह कैरों के आगे अपनी सातों मांग उपस्थित कीं। इस प्रकार ७ जून ५७ तक इन्होंने तीन बार सद्भावना यात्रा की। दो बार मुख्य मन्त्री से भेंट हुई थीं किन्तु तीसरी बार मुख्य मंत्री महोदय इनके चण्डीगढ़ पहुँचने से पूर्व ही कुल्लू चले गये। इस बार सचिवालय के मुख्य सेक्रेटरी नकुलसेन और वित्तमंत्री मोहनलाल से भेंट हुई। सात मांगों के सम्बन्ध में विचार विमर्श भी हुआ, किन्तु परिणाम कुछ न निकला। ३० मई की प्रथम सद्भावना यात्रा में स्वामी जी के साथ अच्छा व्यवहार किया गया और पुलिस सबको कार में बैठाकर यमुनानगर छोड़ गई। १ जून की द्वितीय यात्रा में स्वामी जी से अच्छा व्यवहार नहीं किया गया, मध्याह्नोत्तर ३ बजे तक स्वामी जी को भोजन नहीं मिला। पुलिस जबर्दस्ती कार में बैठा कर साथियों सहित प्रातः ३॥ बजे यमुनानगर में पुनः छोड़ गई। ७ जून की तृतीय यात्रा में भी यही दुर्व्यवहार रहा, पुलिस बलात् मोटर में बैठा कर यमुनानगर छोड़ गई।

६ जून को स्वामी रामेश्वरानन्द जी के नेतृत्व में सद्भावना यात्रा का दूसरा जत्था रोहतक से चण्डीगढ़ पहुँचा। इस जत्थे के साथ पुलिस ने बहुत बुरा व्यवहार किया, उन्हें मारा पीटा गया और लारियों में ठूँसा गया, ब्र० विजयपाल पुलिस की चोट के कारण ४ घण्टे तक बेहोश रहा।

सद्भावना के विफल हो जाने पर १० जून को स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी। घोषणा के पश्चात् सत्याग्रहियों के जत्थों का तांता बंध गया। प्रारम्भ में सरकार ने सत्याग्रह को विफल करने के लिए सत्याग्रहियों को पकड़ पकड़ कर सुदूर जंगलों और भयानक स्थानों में छोड़ दिया किन्तु सत्याग्रही दुबारा चण्डीगढ़ पहुँच कर सत्याग्रह करने लगे। तब सरकार ने सत्याग्रहियों को बुरी तरह मारना पीटना और तपती हुई सड़कों पर घसीटना शुरु कर दिया। सत्याग्रहियों को मारने के लिए गुप्त हथियारों का भी प्रयोग किया गया जिससे सत्याग्रही बेहोश होकर गिर पड़े। नाक से खून की धार बह निकली। स्वामी सन्तोषानन्द जी और स्वामी ईशानन्द जी आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। सत्याग्रहियों को लात घूँसों से मारना नोकदार कीलों से युक्त बूँट पहनकर सत्याग्रहियों को कुचलना सिर के बाल और टांग पकड़ पकड़ कर गरम सड़कों पर घसीटना, बलात् मोटरों में ठूँस-ठूँस कर घण्टों तक धूप में तपाना, पानी-पानी चिल्लाते हुए बन्दी सत्याग्रहियों को दो घूँट पानी भी के लिये न देना। भयंकर जंगलों में छोड़ आना जहां पर कुछ भी खाने को न मिले और रेल मोटर आदि कोई सवारी भी निकट न मिल सके। सत्याग्रहियों को मारने पीटने के लिये कुछ गुण्डे भी छोड़ रखे थे। धार्मिक चिह्न ओ३म्ध्वज को फाड़ डालना। यज्ञ वेदी पर जूतों सहित चढ़ कर धार्मिक भावना को ठेस पहुँचाना इत्यादि जघन्य कुकर्म पञ्जाब पुलिस ने किये।

सभी कांग्रेसियों को आन्दोलन में भाग न लेने का आदेश दिया गया। इससे असली और नकली अवसर वादियों की छांट हो गई। आन्दोलन से सहानुभूति रखने वाले सरकारी कर्मचारियों को नौकरी से पृथक् कर दिया, कुछ को चण्डीगढ़ से स्थानान्तरित कर दिया। वीर अर्जुन प्रताप और हिन्द समाचार अखबारों पर १३ जुलाई को प्रतिबन्ध लगा दिया। यह है पञ्जाब में कैरोशाही के कुछ नमूने आज के प्रजातन्त्र में।

हिन्दी रक्षा आन्दोलन को कुचलने के लिए पञ्जाब सरकार ने सभी उचित अनुचित साधनों का सहारा लिया। किन्तु "रोग बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।" सरकार के अत्याचारों ने जलती हुई अग्नि में ईंधन और तेल का काम दिया। साधु महात्माओं के मारने पीटने और सत्याग्रहियों के साथ किये गए दुर्व्यवहार को देखकर तथा सुनकर पञ्जाब की जनता में विशेषतया हरयाणा की जनता में अन्याय का प्रतीकार करने की भावना भड़क उठी।

२८ जुलाई ५७ को अनाज मण्डी रोहतक में एक विराट् सभा हुई जिसमें हरयाणा के सभी प्रतिनिधियों ने भाग लिया। उसी दिन पुलिस ने स्वामी रामेश्वरानन्द जी को गिरफ्तार कर लिया, इससे जनता में रोष और जोश की लहर बिजली की तरह दौड़ गई।

३० जुलाई को रोहतक में दूसरे मोर्चे का श्री गणेश हुआ। जिलाधीश सरदार लालसिंह की कोठी पर सत्याग्रह किया गया। सत्याग्रहियों के साथ लगभग २० हजार अन्य जनता भी थी। भीड़ इतनी थी कि पुलिस लाइन को तोड़ कर अन्दर घुस गई। पुलिस की लाठियों से ७ सत्याग्रही भी घायल हुये। इस दिन के सत्याग्रह का दृश्य देखने योग्य था। जिस उत्साह और जोश के साथ सत्याग्रही नारे लगा रहे थे। उसका वर्णन लेखनी से नहीं, अपितु आंखों से देखने और कानों से सुनने से ही समझने योग्य था।

इस दिन के सत्याग्रह के कारण अनेक नेताओं को गिरफ्तार किया गया और वारण्ट जारी किये गये। डी० सी० की कोठी में डाका डालने का अभियोग चलाया गया। श्री आचार्य भगवान्देव और श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती पर डी० सी० की छोरी की चप्पल उठाने तक का जुर्म लगाया गया। जब कि ये दोनों महापुरुष उस दिन वहां उपस्थित भी न थे।

रोहतक के पश्चात् करनाल आदि अनेक स्थानों पर सत्याग्रह केन्द्र खोले गये। धारा १४४ के कारण प्रत्येक नगर सत्याग्रह केन्द्र बन गया था। तीस हजार से अधिक हिन्दी प्रेमियों ने सत्याग्रह किया और १० हजार से अधिक जेल में बन्द किये गये।

रोहतक का मोर्चा सबसे तगड़ा था। अतएव पञ्जाब सरकार ने इसके दमन के लिए भीषण अत्याचार किये। रोहतक जिले के किसानों पर लगभग दो लाख रुपया जुर्माना किया गया। जुर्माना लेने का ढंग भी विचित्र ही था। लोगों के भैंस और हल में चलते बैल निकाल कर ले जाये गये। डराना धमकाना पृथक् था। भोले भाले किसानों को धमकियां दी गईं कि तुम सत्याग्रह में भाग लोगे तो तुम्हारे बच्चों को सरकारी नौकरियों में नहीं लिया जायेगा, तुम्हारे घर जला दिये जायंगे इत्यादि।

१५ अगस्त को लाल किले पर झण्डा लहराया जा रहा था और अहिंसा तथा पञ्चशील का उपदेश दिया जा रहा था किन्तु १६ अगस्त को ग्राम बहू (अकबरपुर) में पञ्जाब पुलिस ने जो जुल्म ढाये हैं वे ऐसे हैं जो किसी भी सभ्य नागरिक के साथ नहीं होने चाहिये।

१५ अगस्त को लाल किले पर झण्डा लहराया जा रहा था और अहिंसा तथा पञ्चशील का उपदेश दिया जा रहा था, किन्तु १६ अगस्त को ग्राम बहू (अकबरपुर) में पञ्जाब पुलिस ने जो जुल्म ढाये हैं वे ऐसे हैं जो किसी भी सभ्य नागरिक के साथ नहीं होने चाहिए।

२४ अगस्त ५७ को वीर सुमेरसिंह को फिरोजपुर जेल में लाठियों से मार-मार कर प्राण निकाल दिये ऐसा निर्भय अत्याचार इससे पूर्व संसार की किसी भी जेल में बन्दी के साथ नहीं हुआ। जस्टिस कपूर ने अपनी रिपोर्ट में इस अत्याचार के लिये लिखा है कि 'न भूतो न भविष्यति'

चण्डीगढ आर्यसमाज के अपमान पर अनशन व्रती—



ब्र० बालकराम जी



स्वामी आनन्द भिक्षु जी महाराज
अनशन की अवस्था में

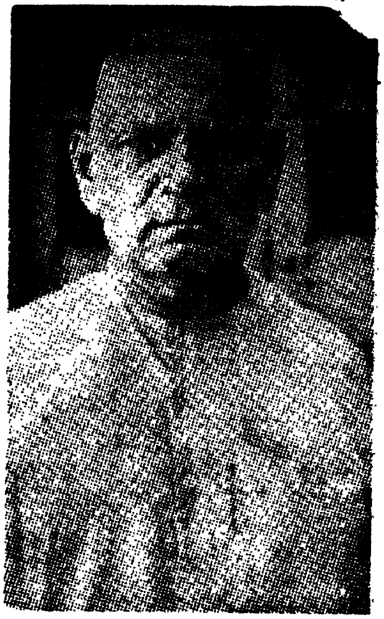


आर्यसमाज चण्डीगढ का अपमान



चण्डीगढ में पुलिस का दुर्व्यवहार

हिन्दी रक्षा आन्दोलन के सूत्रधार-

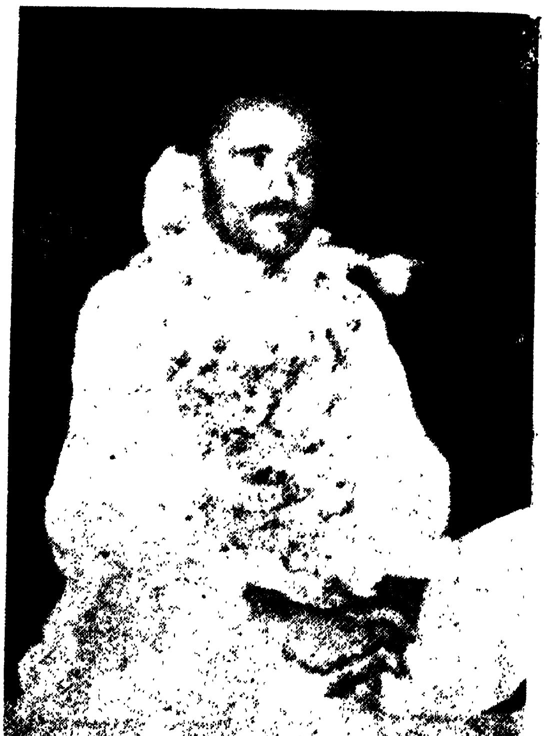


श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज

भाषा स्वातन्त्र्य समिति के अध्यक्ष-



श्री घनश्यामसिंह गुप्त



श्री पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामन्त्री श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती ने देहली-गांधी ग्राऊंड की भारी सभा में अपने आपको ११ अगस्त १९५७ को गिरफ्तारी के लिये पेश किया। पंजाब पुलिस यत्न करने पर भी आपकी खोज नहीं कर सकी थी।



भाषा स्वातन्त्र्य समिति के कार्यकर्त्ता प्रधान श्री पं० नरेन्द्र

फिरोजपुर जेल में लगभग सभी सत्याग्रहियों पर लाठियां बरसाई गईं। वीर सुमेरसिंह वीरगति को प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त २९ सत्याग्रही ऐसे हैं जो लाठियों की मार से हड्डियां टूट जाने के कारण बेकार और अपाहिज हो गये हैं।

बटाला और कानपुर के श्री धर्मवीर एवं प्रियदर्शन अम्बाला में वीरगति को प्राप्त हुये। संगरूर के पास दो संन्यासी रात्रि में कत्ल किये गये, उनमें से एक का नाम ईशानन्द था। ग्राम सिलानी तहसील झज्जर का सत्याग्रही जेल से छूटकर ग्राम में शहीद हुआ। बिहार का कर्मठ कार्यकर्ता तारिणीप्रसादसिंह मार्ग में ही पटना में रोगी होकर शहीद होगया, वह चण्डीगढ़ तक भी न पहुँच सका। प्रो० किशोरीलाल (बनारस) का बलिदान जेल से छूटने के पश्चात् हस्पताल में हुआ।

२८ दिसम्बर ५७ को मुक्ति का आदेश प्राप्त हो जाने पर भी किराया न देने के कारण अम्बाला जेल में ही रुके रहे सत्याग्रही किराया मिलने पर १ जनवरी ५८ को अपने घरों को जा रहे थे लेकिन अम्बाला छावनी के निकट ही मोहरी रेलवेस्टेशन पर ट्रेन दुर्घटना में निम्नलिखित ७ शहीद हुए—

१—श्रीकृपाराम जी लुधियाना, २ श्री नेतरामजी अम्बाह ग्वालियर, ३ श्रीपावनदास जी आर्य-समाज केसरगंज अजमेरी ४ श्री कैलाशचन्द्र जी मुरार छावनी ग्वालियर, ५ श्री दर्शनलालजी (निवास स्थान अज्ञात) ६ श्री अमरसिंह जी तहसील जीन्दा, ७ श्री सुवर्णसिंह जी तहसील जीन्द, ।

८ फरवरी ५८ को जालन्धर में श्री घनश्यामसिंह गुप्त के जलूस पर पुलिस द्वारा गोली चलाई गई इसके कारण १ श्री सोमदत्त जी (जालन्धर) और २ श्री गिरधारीलाल जी (पटियाला) शहीद हुए। हिन्दी रक्षा आन्दोलन में १८ बलिदान हुए हैं जिन में से १७ का संक्षिप्त वर्णन मैंने यहां किया है, एक शहीद का ज्ञान नहीं।

३० मई ५७ से ९ जून ५७ तक ११ दिन सद्भावना यात्रायें हुईं और १० जून से २८ दिसम्बर ५७ तक ६ मास १८ दिन तक हिन्दी रक्षा सत्याग्रह बड़ी शान के साथ चलाया गया। सत्याग्रह के इतिहास में आज तक ऐसे सत्याग्रह का उदाहरण नहीं मिलता। इससे पूर्व सत्याग्रहियों पर इतने अत्याचार भी किसी सरकार ने नहीं किये। फिर भी यह सत्याग्रह सर्वथा हिंसा शून्य और शान्त था।

इस सत्याग्रह का विस्तृत इतिहास हरयाणा हिन्दी रक्षा-समिति दयानन्द मठ रोहतक के तत्त्वाव-धान में तैयार किया जा रहा है जो कि शीघ्र ही प्रकाशित किया जायेगा।



हिन्दी सत्याग्रह में १६ वां बलिदान

प्रो० किशोरीलाल का निधन

प्रो० किशोरीलाल बनारस का निधन हिन्दी सत्याग्रह में १६ वां बलिदान है इससे पूर्व अम्बाला ट्रेन दुर्घटना में ७ तथा अन्य प्रकार से ८ और व्यक्तियों ने पंजाब में हिन्दी माता की रक्षा के लिए अपनी बली दी थी।

प्रो० किशोरीलाल जो २ अगस्त १९५७ को बनारस से श्री रामजी प्रसाद गुप्त मुख्य उप मंत्री आर्य प्रतिनिध सभा उ० प्र० के प्रथम प्रान्तीय जत्थे में एक सत्याग्रही के रूप में सम्मिलित हुए थे और पंजाब में जेल यातना भुगतने के बाद २० दिसम्बर ५७ को अम्बाला सेन्ट्रल जेल से रिहा हो कर बेहोशी की हालत में खान खाना पहुंचे २६ दिसम्बर को उन्हें लुधियाना अस्पताल में दाखिल कराया गया और २ जनवरी ५८ को अस्पताल में ही उनका देहान्त होगया।

वह बनारस में इन्जीनियरिंग कालेज में अध्यापक थे उनका मासिक वेतन ३२५)रु० था उनके सम्बन्ध में निम्न बातें ऐसी हैं जो भुलाई नहीं जा सकतीं।

उन्होंने २ अगस्त ५७ को सत्याग्रही जत्थे में सम्मिलित होने के लिए १५ जौलाई ५७ (१५ दिन पूर्व) से ही अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। जेल में ही कालेज की ओर से उन्हें नोटिस मिला कि या तो अपने स्थान पर आकर काम करें अन्यथा नियमानुसार चार महीने का वेतन १६३०) रु० उनके प्राविडेण्ड फण्ड से काट लिया जायगा उन्होंने जेल से ही यह सहर्ष उत्तर दे दिया कि "मैं नौकरी नहीं करूंगा १३३०)रु० मेरे प्राविडेण्ड फण्ड से काट लिया जाये।

२३ अगस्त को उन्होंने चण्डीगढ़ में सत्याग्रह किया और २४ अगस्त से १९ दिसम्बर तक अम्बाला सेन्ट्रल जेल में रहे। जेल से छूटते समय वह इतने दुर्बल हो गये थे कि अधिक दिनों तक जी नहीं सके। उनकी आयु २५ वर्ष की थी वह एक सच्चे आर्य सत्याग्रही थे जो जेल में अन्य सत्याग्रहियों की सेवा करना ही अपना धर्म समझते थे।

("आर्यमित्र" १९ जनवरी १९५८)

आदर्श वीर सुमेरसिंह

(श्री स्वामी नित्यानन्द जी भजनोपदेशक)

भजन

टेक—आज्ञा दे दो श्रीमान लगन चण्डीगढ़ जाने की।
छिड़ी सत्याग्रह लड़ाई, हिन्दी पर आपत्ति आई।
कैरों करता उत्पात साथ गुरुमुखी पढ़ाने की ॥१॥
जबरन गुरुमुखी पढ़ावें, आर्यों को गुलाम बनावें,
वह करके विश्वासघात बात करे धर्म मिटाने की ॥२॥
मैं जत्था लेकर जाऊं, जा वैदिक धर्म बचाऊं।
मेरे धरो शीश पर हाथ, बात कहें धर्म बचाने की ॥३॥
आज्ञा दो मात हमारी फले आशीर्वाद तुम्हारी।
यही चिन्ता है दिनरात, तेरा आशीर्वाद पाने की ॥४॥

दोहा

माता आशीर्वाद दे कहने लगी हर्षाय।
बेटा जाओ धर्महित, ईश्वर करे सहाय ॥

भजन

टेक—सुन सुमेरसिंह मेरे जाये, हिन्दी पर संकट आये,
देवो टार ३ ॥
मैंने इसी दिन के लिये जाया, तू पाला और पढ़ाया,
पिला दूध की धार ॥१॥
तू चण्डीगढ़ में जाइये, माता के कष्ट मिटाइये,
न लाइये वार ॥२॥
बेटा यह जोश जवानी, फिर मनुष्य की जिन्दगानी,
न मिलती बार-बार ॥३॥
बेटा मेरा कहन पुगाना, मत पीछे कदम हटाना,
सह कष्ट अपार ॥४॥
तू चण्डीगढ़ जावेगा, वहां नित्यानन्द पावेगा,
करे तुम्हारा सत्कार ॥५॥

दोहा

भोजन जिमाया मात ने बड़े प्रेम के साथ,
तिलक लगाया खुश हुई धरा शीश पर हाथ ॥
आशीर्वाद ले माता का चल दिया वीर सुमेर,
साथी ले लिये साथ में तनिक न लाई देर ॥

भजन

टेक—चले रणधीर धर्म सिपाही,
बलदेव ब्रह्मचारी, साथ कर तैयारी।
रतनसिंह वीर थे उत्साही ॥१॥
जिलेसिंह चले, पृथ्वसिंह मिले,
संग वृद्ध शरीर जत्थे के माही ॥२॥
उमेदसिंह साथ है ले झण्डा हाथ है,
होलिये सीर हरिराम भाई ॥३॥
चले हर्षाते ये नारे लाते,
पड़े लम्बे बहीर साम्ले की राही ॥४॥
साम्पले आते गाड़ी में चढ़ जाते,
नित्यानन्द आखिर तेरी कविताई ॥५॥

दोहा

देहली होते हुए पहुँचे चण्डीगढ़ दरम्यान।
जय के नारे ला रहे ऐसे लग रहे गान ॥

भजन

टेक—अब रास्ता लर दो खाली आई फौज दयानन्द वाली।
दयानन्द के वीर सिपाही चले हाथ ओ३म् ध्वजा उठाई ॥
चलें चाल मतवाली, आई० ······ ॥१॥
हरयाणे के वीर हैं आये, हिन्दी की रक्षा के नारे लाये।
सब से शान निराली, आई० ······ ॥२॥
हिन्दी की रक्षा करने को, कैरो की जेल भरने को।
आये हाली पाली, आई० ······ ॥३॥
लाठी गोली से न घबरावें, हिन्दी मा के बन्ध छुड़ावें।
कर क्या सकें अकाली, आई० ······ ॥४॥
हिन्दी की जय का ला रहे नारा 'नित्यानन्द' रहे देख नजारा।
ओ३म् करे रखवाली, आई० ······ ॥५॥

दोहा

हिन्दी भाषा अमर रहे वीर रहे ललकार,
आगे भारी पुलिस थी बांधे हुए कतार।
करपात्री जी साथ में पब्लिक कई हजार,
आगे वीर सुमेरसिंह नारे रहा है मार ॥

भजन

टेक—ऐसे कह रहे वीर सिपाही, नहीं चलेगी कैरों शाही।
जब जवानों ने धक्का मारा, पुलिस का घेरा तोड़ डारा ॥
खड़े देखें ना पार बसाई ॥१॥
पुलिस ने आगा घेरा जा के, दरवाने को बन्द करवा के।
लाठी से ही लाठी अड़ाई ॥२॥
होकर निडर जब चले दिवाने, दरवाजे पर चढ़े मस्ताने।
ओ३म् का झंडा दिया लहराई ॥४॥
सैकरेटियट में कूद पड़े थे, देख के सारे अफसर खड़े थे।
दरवाजे बन्द सांकल लाई ॥४॥
खम्भे फोड़े तार तोड़ कर, अन्दर घुस गये दौड़-दौड़ कर।
देख के अफसर गये घबराई ॥५॥
फिर पुलिस ने अवसर पाकर, एक सौ एक जवान कब्जा कर।
लारी अन्दर लिए बिठाई ॥६॥
चण्डी मन्दिर में ले जाकर, हवालात में रोके आकर।
बाहर ताला दिया लगाई ॥७॥
वहां से अम्बाला जेल ले जाकर, पन्द्रह दिन में रेल बिठाकर।
फिरोजपुर जेल में दिए पहुँचाई ॥८॥
सुमेरसिंह ने जेल में जाकर नौजवां से प्रेम बढ़ाकर।
आर्यवीर दल लिया बनाई ॥९॥
तरह तरह के खेल दिखाते, नित उठ सन्ध्या हवन रचाते।
"नित्यानन्द" सख्त आफत आई ॥१०॥

भजन

टेक—फिरोजपुर की जेल का आँखों देखा अत्याचार।
जबाँ से गाया ना जाता ॥
चौबीस अगस्त को शाम के बजे थे सवाचार।
वह हाल बताया ना जाता ॥१॥
सैकड़ों सिक्ख आ गये एक दम लेकर तरह-तरह के
हथियारों का नाम गिनाया ना जाता ॥२॥
कुछ बैठे कुछ सोतों पर एक दम पड़ी गजब की मार,
और वार बचाया ना जाता ॥३॥
बुड्ढे जवान साधु तक मार मार दिये पसार।
यह सार जताया ना जाता ॥४॥

टट्टियों में भी जा मारे बह चली थी खून की धार।
वह वक्त भुलाया ना जाता ॥५॥
शिर फूटे, कहीं टूटे हाथ ऐसे हो गये लाचार।
भोजन खाया ना जाता ॥६॥
कुछ बचे कुछ जख्मी हो गये रोवें कर रहे हा-हाकार।
धोया नहाया ना जाता ॥७॥
"नित्यानन्द" बाल-बाल बच गये, सुमेरसिंह गये स्वर्ग सिधार,
यह घाव मिटाया ना जाता ॥८॥

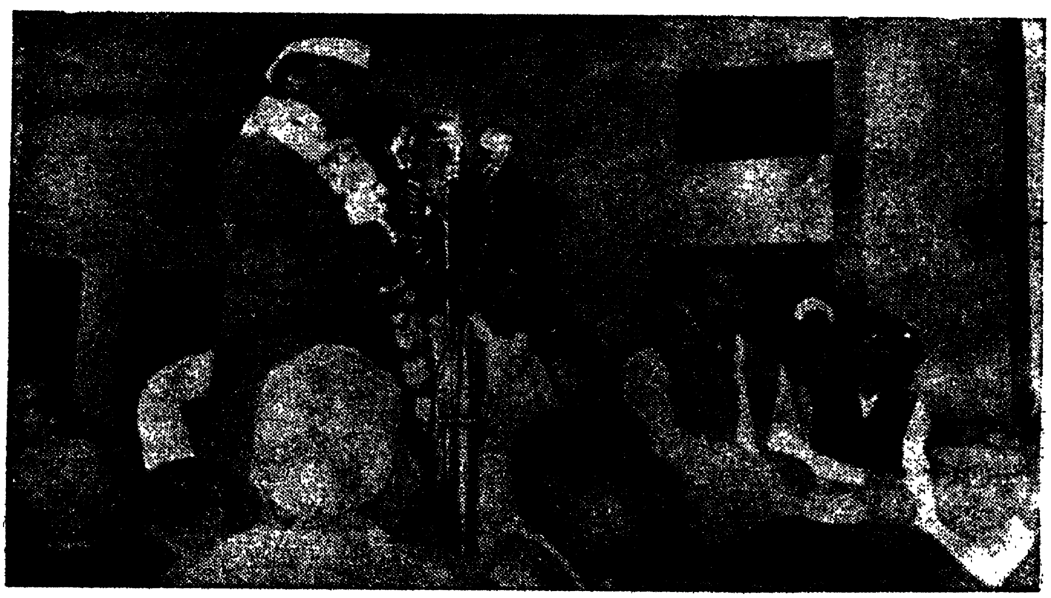
भजन

टेक—हो गये सुमेरसिंह बलिदान जग में नाम अमर कर गये।
रोहतक जिला ग्राम नया बाँस साम्पला स्टेशन के पास।
प्रभुदयाल घर सन्तान जनमा सब कारण सरगे ॥१॥
पाला पढ़ाया कर दिया जवान, माता पिता खुशी हर आन।
लाया ब्रह्मचर्य में ध्यान शादी करने से नटगे ॥२॥
होकर सत्याग्रह में तैयार बनकर आये जत्थेदार।
पहुँचे चण्डीगढ़ दरम्यान जाके पुलिस अगाड़ी अड़गे ॥३॥
कुछ नौ जवानों ने शिर जोड़ घेरा दिया पुलिस का तोड़।
अन्दर कूद पड़े नौ जवान देख कर सब अफसर डरगे ॥४॥
कर दिये पुलिस ने गिरफ्तार करके लारी में सवार।
चण्डीमन्दिर में शैतान करके बन्द ताला जड़गे ॥५॥
फिर ले गये अम्बाला जेल बिठाकर फिर वापिस किए रेल,
पहुंचे फिरोजपुर में आन यहाँ आ जेल बीच बड़गे ॥६॥
यहां पर सारे नौजवान रोज खेलें कूदें करें थे मौज।
मजहबी दिवाने कुछ नादान यह ढंग देख जलगे ॥७॥
चौबीस अगस्त बजे सवा चार एक दम पड़ी गजब की मार
सारे हो लहुलुहान कितनों के फट शिर गये ॥८॥
बैठा सुमेरसिंह एक ठौर मार कर गये दुष्ट शिर फोड़।
देख कर सभी हुए हैरान सब के नयन नीर भरगे ॥९॥
रात के दो बजे जा हस्पताल सुमेरसिंह हरयाणे का लाल।
पहुंच स्वर्ग बैठे विमान "नित्यानन्द" छन्द घड़गे ॥१०॥

गुरुकुल झज्जर का सत्याग्रह जत्था—



नाम १. ब्र० हरिशरण, २. ब्र० दयानन्द ३. ब्र० देशपाल, ४. ब्र० सत्यदेव, ५. श्री वेदप्रकाश,
६. श्रीमालसिंह, ७. ब्र० यशपाल, ८. ब्र० सोमवीर, ९. ब्र० चन्द्रपाल, १०. ब्र० भीमसेन
११. श्री फतहसिंह, ११. ब्र० श्री फतहचन्द १२. ब्र० कँवरपाल, १३. ब्र० मनुदेव ।

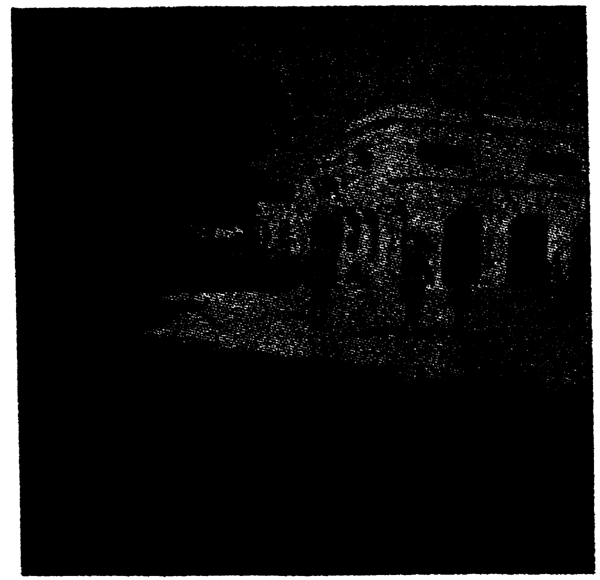


गुरुकुल झज्जर के कुलपति

श्री प्रो० शेरसिंह जी स्वागत भाषण देते हुए



श्री आचार्य भगवान् देव जी



श्री आचार्य भगवानदेव जी बन्दी के रूप में
२४ फरवरी ५८ को रोहतक में के० के० पुरी
की अदालत में ले जाये जाते हुए।

हिन्दी सत्याग्रह और गुरुकुल झज्जर

(वेदव्रत सिद्धान्त शिरोमणि)

गुरुकुल के आचार्य श्री भगवान् देव जी और श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती इन दो नेताओं ने ही हिन्दी रक्षा सत्याग्रह की नींव डाली। इन दोनों नेताओं के कारण ही हरयाणा प्रान्त ने, विशेषतया रोहतक जिले के निवासियों ने सत्याग्रह में उस वीरता का परिचय दिया है जिसको देख और सुनकर संसार चकित रह गया। आचार्य जी पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान हैं और सिद्धान्ती जी हैं महामन्त्री। संवत् १९९९ वि० के प्रारम्भ से संवत् १९९९ के १६ कार्तिक तक श्री सिद्धान्ती जी गुरुकुल झज्जर के अवैतनिक मुख्याधिष्ठाता रह चुके हैं और अब भी आप गुरुकुल के प्रतिष्ठित सदस्य हैं। हरयाणा के सत्याग्रह का संचालन श्री आचार्य भगवान्देव जी ने उत्तर प्रदेश राजस्थान आदि में हरयाणा के निकटतम स्थानों में रहकर गुप्त रीति से किया है।

गुरुकुल के कुलपति श्री प्रो० शेरसिंह जी एम. एल. ए. भू० पू० सिंचाई बिजली मन्त्री पंजाब ने सत्याग्रह में बढ़ चढ़ कर भाग लिया है, सत्याग्रह के लिये आपने बड़े बड़े प्रलोभनों को ठुकरा कर सच्चे आर्य होने का प्रमाण दिया है। अब आप भाषा स्वातन्त्र्य समिति की संघर्ष समिति के अध्यक्ष हैं।

१४ अगस्त ५७ को ब्र० महावीर जी ने जत्थे सहित सत्याग्रह किया किन्तु गिरफ्तार नहीं किये गये। २० दिसम्बर को भिवानी में आपने जत्थे सहित पुनः सत्याग्रह किया और गिरफ्तार होकर हिसार जेल में रहे।

१८ अक्टूबर को रोहतक में गुरुकुल के ११ ब्रह्मचारियों ने सत्याग्रह किया जिनके नाम हैं—

१ सोमवीर, २ मनुदेव, ३ देशपाल, ४ सत्यदेव, ५ दयानन्द, ६ भीमसेन, ७ यशपाल, ८ चन्द्रपाल, ९ कंवरपाल, १० वेदप्रकाश, १२ मालाराम।

यह सब रोहतक जेल में सत्याग्रह स्थगन तक रहे। २८ दिसम्बर को रात्रि के १२ बजे जेल से मुक्त होकर दूसरे दिन गुरुकुल में पहुँचे। जेल के द्वार पर और झज्जर में आप लोगों का सत्कार किया गया।

श्री हरिशरण जी तथा श्री फतहसिंह जी के वारण्ट थे। किन्तु आचार्य भगवान् देव जी के आदेशानुसार कार्य कर रहे थे। इनको गिरफ्तार करने के लिए पुलिस ने बहुत प्रयत्न किये। किन्तु श्री फतहसिंह को अन्त तक गिरफ्तार न कर सके। श्री हरिशरण जी २२ दिसम्बर को पृथ्वीसिंह बेधड़क के साथ प्रचार करते हुए रोहणा में गिरफ्तार कर रोहतक जेल में भेज दिये गये।

औषधालय के कार्य कर्त्ता ब्र० दलीपसिंह जी ने पं० सोहनलाल (लूखी) के जत्थे के साथ सत्याग्रह किया और अन्त तक रोहतक और अम्बाला जेल में रहे।

गुरुकुल के कृषि विभाग के कार्यकर्ता श्री सत्यदेव जी दयानन्दमठ रोहतक में भोजन का प्रबन्ध कार्य भार उस समय सम्भाला जिस समय वहां सत्याग्रहियों के भोजन प्रबन्ध के लिए कोई जाने को तैयार न था। और पुलिस मठ को घेरा लगाये रखती थी। २२ सितम्बर को आपको मठ से गिरफ्तार कर रोहतक जेल में भेज दिया और ३१ अक्टूबर को अन्य साथियों सहित छोड़ दिया। किन्तु छूटते ही

आपने रोहतक जेल के सामने ही दुबारा सत्याग्रह कर दिया। इस बार आपको ३ मास का सख्त कारावास दण्ड मिला और ४५०) जुर्माना किया गया। जुर्माना अपील पर रद्द हो गया और आपको रोहतक से अम्बाला जेल में भेज दिया।

औषधालय के कार्यकर्ता श्री ओमप्रकाश जी ने १८ सितम्बर को सत्याग्रह किया, आप रोहतक जेल में अन्त तक रहे। गुरुकुल के मन्त्री श्री प्यारे लाल जी ने दो बार सत्याग्रह किया। गुरुकुल के भजनोपदेशक स्वामी नित्यानन्द जी महाराज ने चण्डीगढ़ में कड़कती धूप और वर्षा में डेढ़ मास तक तपस्या की और बाद में फिरोजपुर की खूनी जेल में बन्द रहे।

ब्र० अतरसिंह जी ने दयानन्द मठ रोहतक में पुलिस के दमन काल में वीरता पूर्वक प्रशंसनीय कार्य किया है। बुधराम मिस्त्री, पं० गङ्गाराम जी, पं० सुदर्शन देव जी, श्री बलदेवसिंह जी, श्री देवशर्मा जी आदि महानुभावों ने भी प्रचार कार्य में पर्याप्त भाग लिया है। लगभग गुरुकुल के सभी कार्यकर्त्ता सदस्य और प्रेमियों ने हिन्दी रक्षा आन्दोलन और सत्याग्रह में यथा शक्ति तन, मन, धन से बढ़ चढ़ कर भाग लिया।

तहसील झज्जर में गुरुकुल आन्दोलन का प्रचार केन्द्र रहा, यहीं से प्रचारक और उपदेशकों की व्यवस्था की जाती थी। अतः हमें भारी यातनायें सहन करनी पड़ीं। दयानन्द मठ रोहतक की भाँति गुरुकुल झज्जर भी सरकार की आंखों में चुभता था। दयानन्द मठ की भांति पुलिस का पहरा बैठाने की भी धमकियां दी गईं। गुरुकुल के लाइसेन्स रद्दकर शस्त्र जब्त कर लिये जो बाद में लौटाये गये। आयुर्वेद महाविद्यालय के लिये आर्थिक सहायता सरकार से मिलती थी, वह रुक गई। केसधारी सरकारी कर्मचारी अब भी गुरुकुल के प्रति क्रूर दृष्टि रखते हैं।

—:०:—

गुरुकुल झज्जर के संस्थापक—

श्री पं० विश्वम्भरदयाल जी "दीवान"

(श्री सुदर्शनदेव शास्त्री)

स्वनामधन्य स्व० पं० विश्वम्भरदयाल जी का जन्म झज्जर (रोहतक) के एक प्रतिष्ठित घराने में हुवा था। यह घराना आज भी झज्जर में दीवान नाम से प्रसिद्ध है। आपके पिता जी का नाम पं० पारसलाल जी था। झज्जर निवासी स्व० पण्डित जी को आज भी "दीवान जी" नाम से याद करते हैं।

आपने स्कूल में मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त करके गुरुकुल कांगड़ी में भी कुछ अध्ययन किया था। आप भारतीय संस्कृति और वेशभूषा में अगाध श्रद्धा रखते थे।

कहा जाता है कि आप सेना में भर्ती होकर जब अफ्रीका गये तब आपको सौभाग्य से पढ़ने के लिए महर्षि का सत्यार्थप्रकाश नाम ग्रन्थ रत्न उपलब्ध हो गया। सत्यार्थप्रकाश के श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय से आपकी काया पलट हो गई। सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में प्रतिपादित पठन-पाठन विधि को दत्तचित्त होकर पढ़ा। आपने इस रामायण, महाभारत कालीन पाठ विधि के महत्त्व को जाना और भारत के गत-गौरव को फिर से उच्चपदासीन करने के लिए इस पाठ्य-प्रणाली को सर्वथा उपादेय समझा, और मन में दृढ़ निश्चय किया कि निज जन्म भूमि झज्जर में एक आर्ष पाठविधि के केन्द्र महाविद्यालय की स्थापना की जाये। सर्विस से त्याग पत्र देकर अफ्रीका से भारत पधारे और गुरुकुल कांगड़ी

के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज से मिले। झज्जर में महाविद्यालय की स्थापना के लिए अहर्निश प्रयत्न करने लगे। उनके सतत प्रयत्न से महाविद्यालय के लिए १३८ बीघे भूमि प्राप्त हो गई। पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के करकमलों द्वारा गुरुकुल महाविद्यालय की आधार शिला रखवाई।

आप नंगे पैर और नंगे सिर ही रहा करते थे। नीचे एक लङ्गोट रखते थे और ऊपर से चोगा पहिन लिया करते थे। आपने झज्जर के निकटवर्ती ग्रामों में आर्यसमाज का बहुत प्रचार किया।

कलकत्ते के एक सेठ से मिल कर आपने गुरुकुल संचालन के लिए चन्दा किया था। सेठ ने इस शर्त पर वह रुपया व्यापार में लगा दिया कि इसमें जो लाभ होगा, आपका ही रहेगा। मूलधन तो आपका है ही।

सेठ जी को व्यापार में आशा से अधिक लाभ हुआ। सेठ जी के मन में विकार आ गया और मूलधन देने से भी हाथ हिला दिया। इससे विश्वम्भर जी के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। जिससे सन् १९२० में मस्तिष्क में भी कुछ विकार आ गया। जिससे गुरुकुल का कार्य छोड़कर हरिद्वार की ओर चले गये।

हरिद्वार में "रानी इकड़ी की हवेली" नाम से एक स्थान प्रसिद्ध है वहां आप निवास किया करते थे। हरिद्वार से झज्जर तक पदाति (पैदल) ही यात्रा किया करते थे। आप अन्तिम दिनों में नमक और घृत भी नहीं खाते थे। घृत में तले हुए पदार्थों का भी आप सेवन नहीं करते थे।

सन् १९३३ में आप हरिद्वार से झज्जर आ रहे थे। शरीर आपका जर्जरित हो चुका था। गाजियाबाद में मार्ग में ही आप इस नश्वर पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़कर स्वर्ग सिधार गये।

पंडित जी के गुरुकुल कार्य छोड़ देने के पश्चात् स्वा० परमानन्द जी तथा स्वा० ब्रह्मानन्द जी महाराज ने गुरुकुल के कार्यभार को सम्भाला। १९४० में स्वा० परमानन्द जी स्वर्ग सिधार गये। स्वा० ब्रह्मानन्द जी भी अतिवृद्ध हो चुके थे। गुरुकुल की अवस्था शोचनीय होती जा रही थी। १९४२ में श्री पं० जगदेवसिंह सिद्धान्ती आदि महानुभावों की प्रेरणा से श्री आचार्य भगवान्देव जी ने गुरुकुल के कार्यभार को सम्भाला और महर्षि प्रदर्शित आर्षपाठ विधि गुरुकुल की पावनभूमि में चालू किया।

आज ईश्वरानुकम्पा से गुरुकुल सुचारु रूप से चल रहा है। आज गुरुकुल में संस्कृत विद्यालय, आयुर्वेद महाविद्यालय, आर्यवैदिक रसायनशाला, गोशाला, विश्वम्भर वैदिक पुस्तकालय आदि सभी विभाग उन्नति पथ पर हैं।

गुरुकुल से "सुधारक" नामक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया जा रहा है। जो भारतीय संस्कृति का देश और विदेश में प्रचार का उत्कृष्ट साधन है।

इस प्रकार श्री पं० विश्वम्भर दयाल जी द्वारा लगाया यह गुरुकुल वृक्ष आज विकसित होकर जनता को सौख्य प्रदान कर रहा है। भगवान् इस वृक्ष को अधिकाधिक समृद्ध करें यही कामना है।

हरयाणा प्रान्त में सत्याग्रह की ज्वाला जलाने वाला तपस्वी आचार्य भगवान्देव

(वेदव्रत सिद्धान्त शिरोमणि)

आचार्य जी की जन्मभूमि नरेला (देहली) है। आपके पिता श्री कनक सिंह जी गांव के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। और थे सच्चे आर्यसमाजी। आप अपने पिता के इकलौते पुत्र हैं। आपका जन्म का नाम भगवान्सिंह था। किन्तु कुटुम्बी लोग भानु कहा करते थे। श्री आचार्य राजेन्द्रनाथ जी ने आप का नाम भगवान्देव रखा। सन् इकत्तीस में जब सरदार भगतसिंह आदि को फांसी दी गई और गान्धी जी ने अंग्रेजी शिक्षा के वहिष्कार का नारा लगाया तब आपने कालेज छोड़ दिया और देश सेवा में जुट गये।

अपने ग्राम नरेला में विद्यार्थी आश्रम की स्थापना कर उसको शिक्षा का केन्द्र बनाया। हरिजनों के घर जा जाकर उनको पढ़ाना, दूसरे उन्नति के साधन बतलाना उस समय आपका प्रमुख कार्य था। नरेला में ईसाइयों का बहुत प्रचार था। वहां पर एक चर्च भी था, किन्तु आपके प्रचार से उनका कार्य समाप्त हो गया।

१९३९ ई० में आप हैदराबाद सत्याग्रह में निजाम की जेल काट चुके हैं। तत्पश्चात् आपने दयानन्द वेदविद्यालय गुरुकुल चित्तौड़गढ़ आदि संस्कृतवाङ्मय का अध्ययन किया।

अक्तूबर १९४२ में आपने गुरुकुल झज्जर के आचार्य पद को ग्रहण किया। तब से आज तक निरन्तर देश सेवा में लगे हुए हैं। ऋषि दयानन्द में आपकी अगाध श्रद्धा है। ऋषि प्रदर्शित पाठविधि के आप अनन्य उपासक हैं।

भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में आपने बढ़ चढ़कर भाग लिया है। आपकी इतिहास और क्रान्तिकारी साहित्य में विशेष रुचि है, आप स्वयं क्रान्तिकारी हैं। परतन्त्र भारत में अंग्रेज सरकार का सी० आई० डी० विभाग आप की डाइरियां भरता रहता था। और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस सरकार ने भी वही कार्य चालू कर रखा है।

हिन्दी सत्याग्रह काल में एक ही नेता पंजाब में ऐसा बचा है जिसको वारंट होते भी पँजाब सरकार गिरफ्तार न कर सकी। आपको गिरफ्तार करने के लिये पंजाब सरकार ने सभी उचित अनुचित साधनों का आश्रय लिया। पकड़ने वाले के लिये पारितोषिक देने की घोषणा की। गोली से उड़ा देने की धमकियां भी सुनने में आईं किन्तु सब निष्फल रहीं। विदेश में ब्रह्मचारी सुभाषचन्द्र बोस द्वारा आजाद हिन्द फौज के संगठन की भांति ब्रह्मचारी भगवान्देव जी ने भी पंजाब से बाहर जाकर सत्याग्रहियों की सेना तैयार की और बाहर रहते हुए भी हरयाणा प्रान्त के सत्याग्रह का संचालन किया।

निरन्तर साइकिल द्वारा सफर, अत्यधिक कार्य और चिन्ता से आचार्य जी का स्वास्थ्य बिगड़ गया, किन्तु इस धुन के धनी ने पीछे कदम न हटाया। जिस कार्य में आप लग जाते हैं उसको पूरा करके ही दम लेते हैं। *गाँधी जी के 'करो या मरो' सिद्धान्त के आप साक्षात् प्रतीक हैं। सत्याग्रह काल में आपने*

एक अपील में लिखा था कि "हरयाणा के वीर की गर्दन टूट तो सकती है किन्तु झुक नहीं सकती।"

१२ अगस्त ५७ को आपके वारण्ट जारी किये गये। २० अगस्त को आपके घर को ताला लगाकर मोहरबन्द कर दिया। और शीघ्र ही आत्म-समर्पण का नोटिस लगा दिया। अब तक आचार्य जी का घर मोहरबन्द पड़ा है।

१० फरवरी ५८ को जालन्धर गोलीकांड के सम्बन्ध में रोहतक की एक सार्वजनिक सभा में आपत्तिजनक भाषण देने के आरोप में आपको २१ फरवरी को गिरफ्तार कर लिया गया। २४ फरवरी को बीस हजार की जमानत पर आपको छोड़ा गया और केस चलता रहा। ५ मार्च को जूआं ग्राम में आपत्तिजनक भाषण देने का मिथ्या अभियोग चलाकर १२ मार्च को जमानत कौंसिल करवाकर पुलिस ने आपको पुनः बन्दी बना लिया। ५ अप्रैल को तीस हजार की जमानत पर आपको मुक्त कर दिया गया। अभी तक आप पर दोनों अभियोग चल रहे हैं। आगामी तारीख २२ अगस्त लगी है। केस न्यायालय में हैं इसलिये अधिक लिखना उचित नहीं।

वास्तव में यह पिछले दिनों का बदला लिया जा रहा है। आचार्य जी पहले तो हाथ न आये, अब पंजाब सरकार अपनी मनमानी कर रही है। न्यायालय के नाम पर नाटक रचाया हुआ है।

क्रान्तिकारी अमर शहीदों को श्रद्धाञ्जलि

(पं॰ सत्यदेव वासिष्ठ)

वेद ज्ञान गवेषणारतधियो लोके प्रभूता जना,
दृश्यन्ते च धनैषणार्तमनसः कष्टां दशां संगताः।
किन्तूद्धर्तुमिमां महीं तु विरला पाशेन लुप्तासवः
साशा यान्ति नरान् प्रणीय सुनये तेऽङ्गधारव्रतः ॥१॥

वेद ज्ञान की खोज में तत्पर मनुष्य संसार में बहुत हैं तथा धनप्राप्ति की इच्छा से बहुत से व्यक्ति संसार में कष्टमय दशा को प्राप्त होते हुए दिखाई देते हैं। किन्तु इस विश्व का उद्धार करने के लिए पाश रज्जु (फांसी) से लुप्त हो गए हैं प्राण जिनके, वे विरक्त ही (सच्चे) मनुष्य हैं क्योंकि वे अन्य मनुष्यों को न्याययुक्त मार्ग में प्रवृत करके अपने ध्येय की पूर्ति की आशा साथ लिए मरते हैं अतः उनका व्रत असिधार के तुल्य है।

क्रव्यादग्निशिखां समिन्धितुमितः क्रामन्ति नित्यं मृताः
त्यक्त्वा यौवनभूषितां नववधूं हृद्यां सुरूपान्विताम्।
ये देशोपकृतौ रताः सुमनसोः हित्वा तमो मोहजं,
धैर्येणाप्य पदं व्रजन्ति सुधियो धन्यास्तु ते नापरे ॥२॥

अपनी यौवनवती सुरूपा, प्रियतमा नव वधू को छोड़ कर श्मशान की अग्निशिखा को बढ़ाने के लिये यहां से मृत मनुष्य लोगों के कन्धों पर आरूढ़ होकर नित्य अन्तिम यात्रा करते हैं। परन्तु जो देशोपकार में रत सज्जन मोह से उत्पन्न अन्धकार को त्याग कर धैर्य पूर्वक प्राप्तव्य पद की प्राप्ति के निमित्त मरते हैं। वे सुधी जन धन्य हैं। अन्य नहीं।

समीक्ष्य दीपं ज्वलितं पतंगा. यथा विनाशाय समुत्पतन्ति।
तथा महान्तो व्रत काम्यया ये, जहत्यसूँस्ते कर वाल धाराः ॥३॥

जैसे जलते हुए दीपक को देखकर उसमें जलने के लिए पतंगे उड़ते हैं वैसे ही जो महान् व्यक्ति अपने व्रत की पूर्ति के लिए अपने प्राणों का परित्याग कर देते हैं उनका व्रत असिधारा के समान है।

नित्यं जनाः स्वार्थे विषक्त, चित्ता व्रजन्ति मृत्युं किलचात्र चिन्त्यम्।
विश्वस्य सन्ताप हृतौ रतानां, नाशं सदोत्पादयतीह खेदम् ॥४॥

स्वार्थ में आसक्त चित्त वाले मनुष्य नित्य मृत्यु को प्राप्त करते हैं। इसमें चिन्ता की क्या बात है। किन्तु विश्व के सन्ताप को मिटाने में तल्लीन पुरुषों का मरण निरन्तर खेद को उत्पन्न करता है।

मृतिः समाना नहि तत्र भेदः स्वार्थे परार्थे च रतस्य जन्तोः
ये क्रान्ति मुद्धाब्य मृता महान्त स्ते सन्ति धन्या मनुजेश्च मान्याः ॥५॥

स्वार्थ में और परमार्थ में लगे हुए प्राणी की मृत्यु तो समान ही है। उस में भेद नहीं है। किन्तु जो क्रान्ति करके मरते हैं वे महापुरुष धन्य हैं और वे ही मनुष्यों में भाग्यवान् हैं।

देशोद्धिर्धीर्षोरवस्था वर्णनम्—

शांतिर्द्रुह्यति भिद्यते परिजने गृह्णाति भूमिं नृपः
प्राणा नित्यमिहाग्निवास-सदृशं दुःखं सहन्ते सदा ॥६॥
भैक्ष्यं चापि कदापि भूमिशयनं भ्रान्तिर्वने वाधने,
देशोद्धारणपरायणाः सुकृतिनः किं नो सहन्ते मुरा ॥६॥

देशोद्धारकों की अवस्था का वर्णन करते हुए बतलाया है—

देश का उद्धार करने में तत्पर बुद्धिमान् पुरुष जब देश सेवा में लग जाते हैं तब जाति के व्यक्ति उससे द्वेष करते हैं, परिवार के लोग अलग हो जाते हैं, राजा जमीन, जायदाद छीन लेता है, उसके प्राण मानों नित्य अग्नि में ही निवास करते हैं। इस तरह अनेक कष्ट सहन करते हैं। कहीं भीख मांगकर कभी भूमि पर सोकर, कभी गहन वन में घूमकर वे अपने दिन बिताते हैं। इस प्रकार वे किन-किन कष्टों को प्रसन्न होकर सहन नहीं करते? अपितु सब कष्ट सहन करते हैं।